UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182804

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891.09 J25A Accession No. H3746

Author जैन, निर्मला

Title आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधान - 1963

This book should be returned on or before the date last marked below.

आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएँ

आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएँ

(1900 - 1957)

डा० निर्मला जैन
हिन्दी विभाग, लेडी श्रीराम कालेज, दिल्ली

हिन्दी अनुसंधान-परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, के निमित्त
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
२६ ए, जवाहरनगर, दिल्ली
बिक्री केन्द्र : नई सड़क, दिल्ली

प्रथम संस्करण
सितम्बर, १९६३

मूल्य
२५ ००

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स
दिल्ली

हमारी योजना

'आधुनिक हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएँ' हिन्दी-अनुसधान-परिषद् ग्रन्थमाला का छब्बीसवाँ ग्रन्थ है। 'हिन्दी अनुसधान परिषद्' हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की सस्था है, जिसकी स्थापना अक्तूबर, सन् १९५२ मे हुई थी। परिषद् के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं : हिन्दी-वाङ्मय-विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के है—एक तो वे जिनमे प्राचीन काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थो का हिन्दी-रूपान्तर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है, दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है; और तीसरे ऐसे जिनका अनुसधान के साथ उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनो पक्षो के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं—(१) हिन्दी काव्यालकार सूत्र, (२) हिन्दी वक्रोक्ति-जीवित, (३) अरस्तू का काव्यशास्त्र, (४) हिन्दी काव्यादर्श, (५) अग्निपुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग (हिन्दी अनुवाद), (६) पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, तथा (७) होरेस-कृत 'काव्यकला', (८) हिन्दी अभिनव भारती, (९) हिन्दी नाट्य-दर्पण।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ है—(१) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, (२) हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, (३) सूफी मत और हिन्दी साहित्य, (४) अपभ्रश साहित्य, (५) राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, (६) सूर की काव्य-कला, (७) हिन्दी मे भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, (८) मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, (९) हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, (१०) मतिराम : कवि और आचार्य, (११) आधुनिक हिन्दी-कवियों के काव्य-सिद्धान्त, (१२) ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य-भक्ति, (१३) प्रेमचन्द-पूर्व हिन्दी-उपन्यास।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत तीन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है :

(१) अनुसंधान का स्वरूप, (२) हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, (३) अनुसंधान की प्रक्रिया।

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वितीय वर्ग का चौदहवाँ प्रकाशन है, जिसे हम आधुनिक हिन्दी काव्य एवं कला के मर्मज्ञों की सेवा में अर्पित कर रहे हैं।

परिषद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने मे हमें हिन्दी की अनेक प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिषद् की ओर से कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं।

हिन्दी अनुसंधान परिषद्
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-६

नगेन्द्र
(अध्यक्ष)

स्मृति-शेष
पूज्य पिता
एवं चिर सङ्घर्षलीना
माँ
को !

आत्माभिव्यक्ति

यह प्रबन्ध सन् १९५६ से १९६१ की अवधि में दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए लिखा गया था। हिन्दी-साहित्य का आधुनिक युग बहुविध प्रयोगों का युग है। इस युग की अनेकरूपात्मक परिस्थितियों और क्षिप्र गत्यात्मकता का प्रभाव साहित्यिक चेतना एव कला दोनों पर पड़ा है। विषयापेक्षी होने के कारण काव्य-रूपों में भी नानाविध नव्य प्रयोग तथा प्रगतिशील परिवर्तन उपस्थित हुए। बीसवीं शती का कवि ग्रहण के प्रति उदार और परिवर्तन में विशेष सजग रहा है। काव्य-रूपो की यही नानारूपात्मकता उनके स्वतन्त्र अध्ययन की अपेक्षा को जन्म देती है। इस उत्तरदायित्व का वहन प्रस्तुत प्रबन्ध में सफलता से हो सका है या नहीं, इसका निर्णय तो पाठक ही करेगे। अपनी ओर से प्रबन्ध के समग्र मे परम्परा से प्रयोग और प्रगति के व्यावर्त्तन और सम्यक् रूप से विवेचन का यत्न किया गया है। इसीलिए 'भूमिका' भाग में परम्परा के सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक दोनों रूपों का स्पष्टीकरण करने के उपरान्त, उसके आलोक में विवेच्य काव्य का विवेचन शेष ग्रन्थ में प्रस्तुत है।

काव्य-रूपों का अध्ययन इससे पूर्व नही किया गया हो, ऐसा निश्चित रूप से कहा नही जा सकता। इस दिशा मे विभिन्न विद्वानों द्वारा अनेक प्रयास समय-समय पर किये गए है, परन्तु वे प्रस्तुत ग्रन्थ से किस रूप में भिन्न है ? यह सहज ही पाठकों की पहचान मे आ जायगा। अतः पूर्वकृत रचनाओं की तुलना में इस प्रबन्ध की व्यापकता, भिन्नता या मौलिकता का प्रतिपादन अनावश्यक है। मौलिकता अनुसन्धान की पहली शर्त है। उसके अभाव में शोध-प्रयास लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाता है। अतः नवीनता का प्रचार न अनुसन्धाता का इष्ट होता है न कथ्य। इस विशेषता का अभिज्ञान तो प्रमाता द्वारा ही सम्भव है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सन् १९०० से १९५७ का समय इसलिए लिया गया है कि यद्यपि नवोनता का उन्मेष भारतेन्दु-युग से ही आरम्भ हो गया था फिर भी काव्य-रूपों की दृष्टि से वास्तविक प्रयोगारम्भ १९०० ई० के उपरान्त ही हुआ। काव्य-रूपों का विवेचन करते हुए हमने अपने विषय को काव्य-रूपों की शिल्पगत एव कला-सम्बन्धी विशेषताओं तक ही सीमित रखा है। विषयगत विशेषताओं का सस्पर्श वही किया गया है, जहाँ वे काव्य-रूपों को समझने में सहायक हैं। प्रबन्ध की रूपरेखा और विवेचन-पद्धति को स्थान-स्थान पर आवश्यकतानुसार स्पष्ट किया गया है, अतः यहाँ उसके पूर्वकथन की विशेष अपेक्षा नहीं।

दो शब्द इसकी परिसीमाओं के सम्बन्ध में कह देने भी उचित होंगे। विवेच्य युग में विरचित सभी काव्य-कृतियों का पठन कर उनको विषय बनाने का प्रयास करने पर भी, इस दुस्साध्य कार्य की कठिनाइयाँ स्वतः स्पष्ट हैं। इस व्यापक काव्य-राशि के सभी मणि-रत्नों का उल्लेख स्थानाभाव और पुनरावृत्ति की आशंका से असम्भव था, अतः चयन की पद्धति यह रही है कि प्रमुख कवियों की महत्त्वपूर्ण कृतियों और प्रत्येक रूप-विधा की प्रतिनिधि रचनाओं को

आधार बना लिया जाय। बहुत सी रचनाओं का विस्तार-भय से नामोल्लेख न करने पर भी पर्याप्त विस्तार हो गया है। कदाचित् विषय अत्यधिक व्यापक है और मेधा व प्रयत्न की निश्चित सीमाएँ। ऐसी स्थिति में सफलता का दावा कैसे किया जा सकता है ? अधिक से अधिक अपनी ओर से इस दिशा में ईमानदारी और विवेकपूर्ण न्याय का यथासम्भव प्रयास ही किया जा सकता है।

इस कार्य-पूर्ति की दिशा में प्राप्त सम्बल और बाधाओं के सम्बन्ध में दो शब्द कह देने भी संगत होंगे। मार्ग में उद्भूत विघ्नों की अपेक्षा पाथेय में ही अधिक बल रहा होगा, अन्यथा, संघर्षों से हारा मन गन्तव्य तक पहुँच कैसे पाता ? अतः अवलम्ब देने वाले वे सभी व्यक्ति धन्यवाद के पात्र हैं, जिनकी सदाशयता के अभाव में यह कार्य पूरा नही हो पाता। जब कभी विगत पुनःस्मृत होकर सद्य हो जाता है, तो आज भी इस कार्य की पूर्ति मे अविश्वास होने लगता है। दुर्भाग्य से जिन कतिपय व्यक्तियो का मेरे कार्य से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नही था, उन्होंने भी अवांछित रुचि लेकर उदारता से मेरी राहों में कण्टक बिखराए। बदले में मैं न फूल बिखरा सकी, न एक गाल पर तमाचा खा कर दूसरा प्रस्तुत कर सकी। मन में छिपा कबीर और क्राइस्ट न जागा; परन्तु मेरे मन का दानव भी सोता ही रहा और बदले मे मैंने काँटों की खेती नही बोयी, यही मुझे सन्तोष है। विचित्र सयोग है। इस कार्य का अथ और इति मेरी सन्तति के जन्म और मृत्यु से अभिन्न हो गए। इसका आरम्भ 'संजय' के जन्म से एकाकार होकर, चरम परिणति 'अपर्णा' की मृत्यु से तदाकृत हो गई। मैंने उस घटना को इस अनुष्ठान की पूर्णाहुति मानकर आत्मसात् कर लिया। परन्तु इस विचित्र दैविक संयोग से आत्मबल क्षत हो गया, परिणामतः जो अश शेष रह गया था उसका शोधन सम्भव न हो सका।

जिन हितैषियों से मुझे आद्यन्त बल प्राप्त हुआ है, उनके प्रति आभार-प्रदर्शन औपचारिकता मात्र है, क्योकि वैसा करके उनके आभार से मुक्ति असम्भव है, फिर भी ऐसा न करना एक मधुर कर्त्तव्य की अवहेलना होगी। अतः मैं इस प्रबन्ध की निर्देशिका माननीया डा० सावित्री सिन्हा के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करती हूँ। डा० (श्रीमती) एच० पी० दस्तूर की भी मैं हृदय से आभारी हूँ। उन्होंने अंगरेज़ी साहित्य से सम्बद्ध मेरी अनेक जिज्ञासाओं का समय-समय पर समाधान कर मार्ग-दर्शन किया। संगीत-सम्बन्धी शंकाओं के निराकरण के लिए डा० विश्वम्भरनाथ भट्ट, संस्कृत उद्धरणो के शोधन के लिए डा० सत्यदेव चौधरी एवं प्रकाशन-व्यवस्था के आरम्भ के लिए डा० दशरथ ओझा आदि गुरुजनों की मैं कृतज्ञ हूँ।

उस व्यक्ति का इस प्रसंग में उल्लेख न करना कृतघ्नता होगी, जो इस प्रबन्ध की पूर्ति के लिए परोक्ष रूप मे पूर्णतः उत्तरदायी है। मेरा आशय स्मृति-शेष दिवंगत ला० श्रीराम से है। उनकी स्नेह-वर्षण छत्रछाया और असीम अनुकम्पा मे जीवन के जो अमूल्य क्षण बीते, उनकी पुनरावृत्ति असम्भव है। संघर्षबोझिल मन को उनसे अधिक नैतिक सम्बल मिलना दुष्कर था। भाईजी की प्रसन्नता मेरी सिद्धि में है, यह जानते हुए कोई ऐसा काम कर पाना मेरे लिए असम्भव हो जाता था जिससे उन्हें कष्ट हो। रुग्णावस्था में भी जब वे मुझसे पूछ बैठते "निर्मला, तुम्हारा कितना काम और बाकी है ?" तो मन ही मन अनेक बार संकल्प करने पर भी उनसे

यह कहना असम्भव हो जाता कि मेरी सामर्थ्य हार गई है, अथवा मेरे पग डगमगाने लगे हैं; विशेषकर ऐसी स्थिति मे, जब अनेक बार हताश होने पर, वे अपने विवेक से मुझे राह दिखा दिया करते थे। आज आत्मविश्लेषण करने पर लगता है उन्हे प्रसन्न रखने का आग्रह भी वह बहुत बड़ा कारण था जिसने मुझे जीवन के दुर्बल क्षणों मे शक्ति दी।

श्रद्धेय गुरुवर डा० नगेन्द्र के आभार की स्वीकृति सम्भव नही। उनकी अनुकम्पा के प्रतिदान में 'धन्यवाद' आदि शब्द अत्यन्त हलके और असमर्थ लगते हैं। उन्हें देखकर उन समर्थ गुरु द्रोणाचार्य की कल्पना साकार होने लगती है जिनकी प्रतिमा मे भी एकलव्य से साधकों को सिद्ध बनाने की क्षमता एवं प्रेरणा व्याप्त थी, अर्जुन से धनुर्धारियों के प्रत्यक्ष शिष्यत्व का तो प्रश्न ही क्या ? शिष्य के दृष्टिकोण से मुझे एकलव्य का आदर्श ही मुग्धकर लगता है। ईश्वर मुझे उसके पालन की क्षमता दे तथा उनके चरणों मे आस्था एवं सबल बनाये रखे। उनके विवेकपुष्ट ज्ञान के प्रकाशपुञ्ज से जो आलोक के स्फुलिंग मिले, उनके बीच यदि कही अंधकार भासित हो, तो प्रमाता उसे मेरे अज्ञान का परिणाम मान लें।

सुहृदय मित्रो में अग्रवाल-दम्पति विशेष उल्लेख के अधिकारी हैं। डा० बिन्दु अग्रवाल ने इस प्रबन्ध के लिए जिस कष्ट-साधना से विवेच्य साहित्य जुटाया और कवि बन्धु भारतभूषण अग्रवाल ने अनेक रूपों मे जो तत्पर सहयोग दिया, उसे देखकर लगता है कि स्नेही आत्मीयजनों की सहायता से दुष्कर कार्य भी कितने सुलभ हो जाते है। प्रबन्ध के अतिरिक्त भी उन बहुत-सी बातों के लिए जिनका उल्लेख मैं यहाँ नही कर सकती, धन्यवाद देकर, उनके प्रति नैकट्य एवं स्नेहानुभूति को कम नही करना चाहती। वे इतने अपने हैं, दु:ख-सुख के समभागी हैं कि औपचारिकता का प्रश्न ही नही उठता।

परिवार के सदस्यों का सहयोग तो मानो मेरा अधिकार ही रहा। वात्सल्यमयी मां ने सहर्ष गृहस्थी के बहुत से भार उठाए। भाई-बहिन उल्लसित हो उत्साह-वर्द्धन करते रहे। और श्री जैन, उनके लिए क्या कहूँ। मेरी समस्त उपलब्धियों के प्रति अलिप्त रहते हुए भी, उनके कारण प्राप्त होने वाली समस्त असुविधाओं को वे अपने नाम के अनुरूप 'सागर' की सी गुरु-गम्भीरता से पचा लेते हैं। उनकी उदारता ने ही मुझे आत्मबल दिया है। लगता है, मेरा सुख और उनका स्वार्थ अभिन्न हो गए हैं।

अन्त में नेशनल पब्लिशिंग हाउस के संचालक महोदय के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करती हूँ, जिन्होंने बीच मे अनेक बार मेरे रुग्ण हो जाने पर भी असीम धैर्य से इस विशालकाय ग्रंथ का प्रकाशन-भार वहन किया। वे और उनके कार्यकर्ता इस सहृदयता के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

शोध की दिशा में उठाया मेरा यह पहला पग ठीक दिशा में पड़ा या नहीं यह तो प्रमाता ही जानें।

—विमला जैन

विषयानुक्रम

भूमिका

१

सैद्धान्तिक विवेचन

१. **रूप-विधा शब्द का अर्थ** ३

रूप—३, विधा—५

२. **काव्यसृजन-प्रक्रिया और रूप-विधा** ६

काव्यसृजन-प्रक्रिया—६, रूप-विधा और भाषा—१२, रूप-विधा और छन्द—१३, रूप विधा और अलकार—१४, रूप-विधा और शैली—१४, काव्य सृजन-प्रक्रिया मे रूप-विधा का महत्त्व—१५।

३. **काव्य-रूपों में परिवर्तन के कारण** १८

४. **काव्य-रूपों का विभाजन** १६

संस्कृत के आचार्यों का मत—१६, आधुनिक आचार्यों द्वारा काव्य-रूपों का विभाजन और विवेचन—२४, पाश्चात्य विद्वानो के मत—३०।

५. **प्रस्तुत प्रबन्ध मे गृहीत विभाजन** ३२

२

काव्य-रूपों की ऐतिहासिक रूपरेखा

१. **प्रबन्ध-काव्य** ३५

महाकाव्य—३६ खण्डकाव्य—३६, वर्णनात्मक प्रबन्ध—४०

२. **मुक्तक** ४०

दोहा-शैली—४१, कवित्त-सवैया-शैली—४२, गेय मुक्तक—४४, लोक-गीत—४४।

३. **भारतेन्दु-युग में प्रयुक्त काव्य-रूप** ४६

(क) परम्परा से गृहीत रूप-विधाएँ ४७

(ख) विदेशी, बंगला एव उर्दू के प्रभाववश गृहीत विधाएँ व मौलिक प्रयोग ४६

(ग) लोक-साहित्य से गृहीत रूप-विधाएं ५५

४. **सन् १६०० से पूर्व हिन्दी-साहित्य में उपलब्ध काव्य-रूपों की तालिका** ५५

खण्ड १

प्रबन्ध या निबद्ध काव्य

प्रथम अध्याय

महाकाव्य

(पृष्ठ ५९—२०२)

१. संस्कृत के आचार्यों की महाकाव्य-विषयक धारणा ६०

विविध आचार्यों का लक्षण-निरूपण—६०, आचार्य कुन्तक का मत—६७, संस्कृत साहित्य-शास्त्र में प्रस्तुत महाकाव्य-सम्बन्धी लक्षणों का संक्षेपण—७२

२. पाश्चात्य विद्वानों की महाकाव्य-विषयक मान्यताएँ ७५

१. अरस्तू का मत—७५, यूरोपीय शास्त्रीय महाकाव्यों की अन्य विशेषताएँ—८०, महाकाव्य-सम्बन्धी अन्य यूरोपीय विद्वानों के मत—८२

३. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य ९१

(क) लक्षणबद्ध प्रबन्ध ९१

(i) कथानक—९२, संघटना—९७, परिमाण और समग्र रूप—१००

(ii) शिल्प—सर्ग-विभाजन, नामकरण—१००, वर्णन-रूढ़ियाँ—१०१, छन्द-विधान, अलंकरण एवं अभिव्यंजना शैली—१०३

(iii) परम्परागत तत्त्व—१०७, अन्य प्रभाव—१०८, स्वतन्त्र एवं नवीन उद्भावनाएँ—१०९

(ख) अंशत: नवीन प्रयोग ११०

(i) कथानक—स्वरूप—१११, संघटना—११३, घटनाओं का स्वरूप—१२३ घटनाओं मे गति, प्रवाह एव वर्णन विस्तार—१२५, परिमाण और समग्र रूप—१२८

(ii) शिल्प—सर्ग-विभाजन, नामकरण, वर्णन-रूढ़ियाँ—१२९, छन्द-विधान —१३०, अलंकृति—१३२, शैली—१३७

(iii) परम्परागत तत्त्व—१४१, अन्य प्रभाव—१४२, स्वतन्त्र व नवीन उद्भावनाएँ—१४३

(ग) सर्वथा नवीन प्रयोग १४४

(i) कथानक—स्वरूप और संघटना—१४६, घटनाओं का स्वरूप—१६०, गति-प्रवाह—१६३, वर्णन-विस्तार—१६६, परिमाण एवं समग्र रूप—१७१

(ii) शिल्प—सर्ग-विभाजन—१७२, नामकरण, वर्णन-रूढ़ियाँ—१७३,

छन्द-विधान—१७४, अलंकरण—१७८, शैली—१८७

(iii) परम्परागत तत्त्व—२००, अन्य प्रभाव—२००, स्वतन्त्र एवं नवीन उद्भावनाएँ—२०१

द्वितीय अध्याय

खण्डकाव्य

(पृष्ठ २०३—२९३)

१. **लक्षण**—२०३, कथानक—२०४, शिल्प—सर्ग-विभाजन, छन्द-विधान—२०६, शैली सम्बन्धी अन्य वर्णन-रूढियाँ—२०७, वर्ग-विभाजन—२०८

२. **महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य**— २०८

(क) कथानक—२०९, वस्तु-विन्यास २०९, घटनाओं का स्वरूप—२११, वर्णनात्मकता—२१३, गति-प्रवाह—२१४

(ख) शिल्प—२१५, वर्णन-शैली—२१६, अलकरण—२१९, छन्द-योजना—२२१

३. **लघु प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य**— २२३

(क) सर्गबद्ध खण्डकाव्य— २२३

(i) वस्तुविन्यास—२२४, घटनाओं का स्वरूप—२२६, वर्णनात्मकता—२२७

(ii) शिल्प—सर्ग-विभाजन, नामकरण, वर्णन-शैली—२२८, अलकृति, छन्द-विधान—२२९

(ख) सर्गविहीन खण्डकाव्य— २३०

(i) घटनाप्रधान खण्डकाव्य—२३१, वस्तुविन्यास—२३१

(ii) भाव या विचारप्रधान खण्डकाव्य—२३४, घटनाओं का स्वरूप—२३८ वर्णनात्मकता—२४२, गति-प्रवाह—२४३

(iii) शिल्प—२४६, वर्णन-शैली—२४६, अलंकृति—२५४, छन्द-योजना—२५५

४. **खण्डकाव्य (नवीन प्रयोग)**— २५९

(क) यशोधरा—२६१-२७३

(ख) विष्णुप्रिया—२७३-२८३

(ग) कुरुक्षेत्र—२८३-२९३

तृतीय अध्याय

लघु प्रबन्ध-काव्य

(पृष्ठ २९४—३२५)

लघु प्रबन्ध-काव्य—२९४, वर्ग-विभाजन—२९६

१. पद्यकथाएँ—२९६, वासवदत्ता—३०५, राम की शक्तिपूजा—३०९,

२. आख्यानक गीतियाँ— ३१४

३. पर्यायबन्ध— ३१७

४. पद्यात्मक-निबन्ध— ३२०

चतुर्थ अध्याय

काव्य-रूपक

(पृष्ठ ३२६—३८३)

१. काव्य-रूपक—३२६, वर्ग-विभाजन—३२७, अँग्रेज साहित्य में काव्य-रूपक—३२८

२. काव्य-नाटक या पद्यबद्ध नाटक— ३३०

(क) घटनाप्रधान नाटक—३३०, विशेषताएँ—३३२, करुणालय— ३३३, अनघ—३३५, स्वर्णविहान—३३७, दिवोदास—३३९

(ख) विचारप्रधान काव्य-रूपक—३४५, विशेषताएँ—३४६, उन्मुक्त—३४७ संवर्त्त, महाकाल—३५०, रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण—३५२

३ गीति-नाट्य—३५९, विशेषताएँ—३६३, तारा—३६४, विश्वामित्र, मत्स्यगन्धा, राधा—३६६

४. नाटकीय कविता— ३७०

(क) सम्भाषणात्मक कविता— ३७१

(ख) स्वगतकथनात्मक नाटकीय कविता— ३७४

खण्ड २

मुक्तक या अनिबद्ध-काव्य

पंचम अध्याय

स्फुट मुक्तक

(पृष्ठ ३८७—४४७)

१. विधा-विवेचन—३८७, वर्ग-विभाजन—३९२

२. वस्तुपरक या विषय-प्रधान मुक्तक— ३९२

३. **आत्मपरक-मुक्तक**— ४०४

(क) भावप्रधान मुक्तक—४०६

(ख) विचारप्रधान मुक्तक—४१३, उपदेशात्मक मुक्तक ४१३, आलोचनात्मक मुक्तक ४१६, विवेचनात्मक मुक्तक—४१८

४. **अभिव्यंजना शैली**—४३१, इतिवृत्तात्मक शैली—४३२, प्रगीतात्मक शैली—४३४, चमत्कारप्रधान शैली—४३६, विचारात्मक या विश्लेषणात्मक शैली—४३६, सूक्ति और अन्योक्ति शैली—४४०

५. **अलंकरण-कला**— ४४१

६. **छन्द-विधान**— ४४४

छठा अध्याय

संयुक्त मुक्तक

(पृष्ठ ४४८—६००)

१. **विषय-विवेचन**—४४८, विभाजन—४५२

२. **वर्णनात्मक कविताएं**— ४५३

३. **कथात्मक निबद्ध मुक्तक**— ४६५

४. **भावात्मक निबद्ध-मुक्तक**—४६८, प्रगीत—४७१, प्रगीत के प्रकार—४७८

(क) सम्बोधन-गीति—४८४

(ख) शोक-गीति—४६५

(ग) पत्र-गीति—५०२

(घ) गीत—५०६, गीतों के प्रकार—५१०,

(ङ) आधुनिक युग में उपलब्ध गीत काव्य—५१२

५. **सॉनेट**— ५२६

६. **बौद्धिक कविताएँ**—५४०, छायावादोत्तर बौद्धिक कविता—५४८

७. **पद्य-संवाद**— ५५६

८. **अभिव्यंजना-शैली**—५६०, इतिवृत्तात्मक शैली—५६०, चमत्कारप्रधान वर्णन-शैली—५६३, गीति-शैली—५७६, बौद्धिक-शैली—५८३, नवीन प्रयोग-प्रधान अभिव्यजना-शैली—५८६

९. **अलंकार-योजना**— ५८९

१०. **छन्द-विधान**— ५९३

उपसंहार

(पृष्ठ ६०१—६०७)

परिशिष्ट

(पृष्ठ ६०९—६११)

भूमिका

: १ :

सैद्धान्तिक विवेचन

रूप-विधा शब्द का अर्थ

रूप—साधारण जीवन मे 'रूप' शब्द का प्रयोग जिस अर्थ मे होता है, हम सभी उससे परिचित हैं। हमारी पचेन्द्रियो के विभिन्न विषयो—रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गंध मे से रूप हमारे चाक्षुष ज्ञान का विषय है। अत. रूप शब्द का सामान्य एव व्यावहारिक अर्थ हुआ—किसी भी चेतन प्राणी अथवा जड़ पदार्थ का वह अंश जो हमारे नेत्रों का विषय हो सकता है; अर्थात् बाह्याकार।[1] इसके अतिरिक्त रूप शब्द का कोई अन्य अर्थ नहीं है, ऐसा नही कहा जा सकता। प्रसग तथा प्रयोग के भेद से इस शब्द के अर्थ की परिधि में भी संकोच-विस्तार होता गया है, परन्तु उसका परीक्षण और विवेचन प्रस्तुत प्रसंग से असम्बद्ध होगा। हमारे विवेचन का सम्बन्ध काव्य की रूप-विधाओं से है, अतः दूसरा सहज प्रश्न है—काव्य के प्रसंग मे रूप का क्या अर्थ होगा? काव्य-कृति के रूप से तात्पर्य उसके उस निश्चित आकार अथवा रूप-रेखा का है जिसके अन्तर्गत एक नियमित विधान अथवा पद्धति के अनुसार शब्दो के माध्यम से कवि की अनुभूति पाठक तक प्रेषणा पाती है। रूप-निर्माण की ये पद्धतियाँ विषय और आवश्यकता के अनुकूल भिन्न हो सकती हैं।[2]

प्रत्येक काव्य-कृति का एक निजी आकार होता है, उसका बाह्य ढाँचा होता है जो

---

1. "In general the external shape, appearance, configuration of an object in contradistinction to the matter of which it is composed.
Encyclopedia Britanica—Volume IX—Page 518.

2. "These thoughts and experiences which are put in different ways in different poems of the poet we call that particular way their 'Form' or 'Poetical form.'"
Form and style in poetry—W.P. KER—Page 97.

हमारे मनश्चक्षुओं के सम्मुख उसके नाम-मात्र से स्पष्ट हो जाता है, वही उसका रूप है।[1] उदाहरण के लिए 'कामायनी' संज्ञा हमारे सम्मुख जिस काव्य का चित्र प्रस्तुत करती है, ठीक वही चित्र निराला का 'तुलसीदास' नही प्रस्तुत कर पाता। दोनों में विषय का अन्तर पर्याप्त होते हुए भी साम्य है। दोनों मे मनोविज्ञान को शब्द-बद्ध करने का सफल प्रयास है, परन्तु एक में सम्पूर्ण मानव-संस्कृति के विकास की कथा का अन्तर्भाव है, दूसरे मे व्यक्ति-विशेष के जीवन की एक विशिष्ट घटना का मनोवैज्ञानिक अनुलेखन है। विषय की सीमा में विस्तार और सक्षेप ने आकार मे भी अन्तर प्रस्तुत किया है। पहला विभिन्न छन्दों में अनेकसर्ग-बद्ध महाकाव्य है और दूसरा एक विशेष छन्द में रचित खण्डकाव्य, जिसका परिमाण एक शतक छन्दों में सीमित है; अतः दोनो मे विषय-भेद के अनुरूप जिस बाह्याकार का भेद है, वही उनमे काव्यरूप-सम्बन्धी अन्तर प्रस्तुत करता है—ठीक उसी प्रकार जैसे व्यक्ति-व्यक्ति मे भेद हम अनेक अन्य कारणों के साथ उनके बाह्य रूप द्वारा भी स्थापित करते है।

इसी प्रसग मे एक अन्य प्रश्न उपस्थित होता है—यदि किसी काव्य-कृति का काव्य-रूप ही उसका बाह्य दृष्टि से, अन्य काव्य-कृतियों से व्यावर्त्तन करता है, तो क्या शास्त्रीय दृष्टि से पारिभाषिक अर्थ मे एक ही काव्य-रूप के अन्तर्गत आने वाले समस्त काव्यो मे परस्पर कोई रूपभेद नही होगा ? कहना न होगा कि काव्य-रूपो मे निश्चित नियमो का विधान हमारे मनीषी आचार्यों ने किया है, वह अपने समय की उपलब्ध सामग्री को प्रमाण मान कर। काव्य-रूपों की वे सीमाएँ अत्यन्त स्थूल तत्त्वों को लेकर निश्चित की गई थी अतः समय के साथ उनमें अपवाद प्रस्तुत होते रहे। आधुनिक काव्य से ही उदाहरण ले तो 'कामायनी' और 'साकेत' दोनों इस युग के श्रेष्ठ महाकाव्य है, परन्तु विषय-भेद के साथ दोनो के काव्य-रूपो में भी भेद है। दोनों एक-दूसरे से भिन्न होकर भी महाकाव्य है, पर उसी परम्परागत अर्थ मे नही, जिसका विधान हमारे काव्यशास्त्रीय ग्रथों मे हुआ है। कारण स्पष्ट है—हर काव्य-रूप के निर्माण पर उसके विषय, रचयिता के व्यक्तित्व और सामयिक परिस्थितियो का समवेत प्रभाव पड़ता है और ये समस्त तत्त्व विषय से भिन्न, अभिव्यजना-कला से भिन्न, उसके बाह्य आकार मे भी सूक्ष्म अन्तर प्रस्तुत करते है। यही कारण है कि स्थूल समानताओ के आधार पर दोनों महाकाव्य की कोटि मे आने पर भी, सूक्ष्म अन्तर के कारण, एक-दूसरे से पृथक् है। जाति-गत साम्य होने पर भी दोनो मे व्यक्तिगत भेद है। उनका अपना विशिष्ट काव्य-रूप उनमे अन्तर प्रस्तुत कर दोनों के पार्थक्य का विधान करता है और यही तत्त्व, जो विषय और अभिव्यजना-कला से भिन्न, उनके बाह्य विधान मे अन्तर की स्थापना करता है, उनका काव्य-रूप है।

रूप का यह अन्तर जिस प्रकार महाकाव्य जैसे बृहद् काव्य-रूप मे दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार मुक्तक के विभिन्न लघु रूपों मे भी। विद्यापति, मीरा और सूर तीनों का काव्य

---

1. "The commonest meaning of 'form' in poetry is perhaps that of metrical pattern or frame."

Ibid—Page 95.

कृष्ण-लीला की मधुरिमा से रस-सिक्त है और गेय होने के कारण तीनों ने पद-शैली को अपनी अभिव्यजना का माध्यम स्वीकार किया है; परन्तु मात्र बाह्याकार अर्थात् छन्दविधान की दृष्टि से भी इस कवि-त्रयी के पदों में परस्पर कितना वैषम्य है, यह तथ्य साहित्य-जगत् मे अविदित नही। तीनों के पदों का एक-दूसरे से पृथक्, एक नितान्त निजी काव्य-रूप है, जो उनमे अनेक समानताओ के होते हुए भी वैपम्य की सृष्टि करता है।

छायावादी कवियों द्वारा अंगीकृत काव्य-रूपों मे भी यह विशेषता यथावत् दिखायी पड़ेगी। यह कविता मुख्यत: व्यक्तिगत कविता है, अत: सभी कवियों के काव्य का मूल दृष्टि-कोण एक है। अपने अतिरिक्त बाह्य जगत् की बात कहने की चेष्टा उन्होने कम की है और जहाँ ऐसा हुआ है, वहाँ उनकी कविता छायावाद की रेशमी जाली को हटाकर बाहर आ गई है। फिर भी महादेवी वर्मा, पन्त और निराला के उन गीतो में, जिनके मध्य छायावाद के प्राण स्पन्दित होते है, मूल चेतना एक होने पर भी काव्य-रूपों का भेद द्रष्टव्य है। एक ओर महादेवी चिरकाल से भारतीय लोक-जीवन के माधुर्य और राग-विराग को प्रतिध्वनित करने वाले लोक-गीतों के आकार को अपनी समृद्ध कला से रजित करने में लीन रही, दूसरी ओर नूतनता के प्रेमी निराला ने अनेकानेक शास्त्रीय छन्द-रूपों को आवश्यकतानुसार बन्धन-मुक्त किया, विभिन्न छन्दो के योग से नूतन छन्द-निर्माण किया और क्रमश: अँगरेज़ी साहित्य के प्रभाव से अनेक नवीन काव्य-रूपो को भी आत्मसात् किया। लय की स्वच्छन्दता के साथ उनके छन्द भी यति और मात्रा के बन्धन को छोड़ स्वच्छन्द व उन्मुक्त हो उठे। हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में काव्य-रूपो के नव-निर्माण मे उनका यह कलात्मक व ऐतिहासिक महत्त्व सदा अक्षुण्ण रहेगा। पन्त यद्यपि रूढिवादी नही, पर नूतनता का आग्रह उनके काव्य मे कभी सीमाहीन नही हो पाया। अंगरेज़ी साहित्य का प्रभाव उनकी कला और विषय-चयन पर तो है ही, उनके काव्य-रूपो पर उससे भी अधिक रहा है।

कहने का अभिप्राय है कि हर काव्य-कृति का अपना एक निश्चित काव्य-रूप होता है—वह शास्त्रानुमोदित नियमित विधान मे आबद्ध हो, अथवा इन रूढ़ि-बन्धनों में परिवर्तन कर नूतन प्रयोग उपस्थित करे, उसमें लोक-जीवन में चली आती किसी सजीव परम्परा का पालन हो, अथवा वह रचयिता के व्यक्तित्व मे बाह्य प्रभावो को ग्रहण करने की क्षमता तथा नव-निर्माण की क्षमता को प्रतिबिम्बित करे; चाहे वह महाकाव्य अथवा प्रबन्ध-काव्य जैसा कोई बृहद् काव्य-रूप हो, अथवा मुक्तक, प्रगीत काव्य-सा लघु गीति रूप हो—उसका एक निश्चित आकार अवश्य होगा। उसका काव्य-रूप ही वह तत्त्व है जो काव्य-सृजन में योगदान देने वाले विभिन्न तत्त्वों की तथा कवि के इन बिखरे अनुभव-खंडों की, जो उसकी कला का स्पर्श पा शब्द-रूप में अवतरित होते है—एकाग्रता मे रक्षा करता है।

कला की सफलता साकार रूप धारण करने मे है। रूप का महत्त्व कला के लिए असंदिग्ध है। रूप ही कला का वह बाह्य वस्तु-रूप है जो हमारी चेतना अथवा इन्द्रियज्ञान का विषय होता है, जिसके अभाव में कला की सत्ता असम्भव है।

विधा—रूप की ही भाँति 'विधा' शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं। स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त होने पर 'विधा' का अर्थ उस स्थल से भिन्न होगा, जहाँ उसका प्रयोग किसी संज्ञा के साथ

होता है। इसके साथ ही मूल सज्ञा के भेद से भी 'विधा' शब्द के अभिप्राय मे अन्तर होता जाता है।

प्रस्तुत प्रसंग में, काव्य के क्षेत्र मे रूप संज्ञा के साथ प्रयुक्त 'विधा' शब्द विचारणीय है। काव्य मे रूप-विधा का अर्थ है वह नियमित रीति अथवा पद्धति, जिसके अनुसार काव्य के बाह्याकार तथा रूपरेखा का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए, महाकाव्य और गीति-काव्य दो भिन्न प्रकार के काव्य-रूप है—अपनी विषय-वस्तु को महाकाव्य का आकार देने के लिए रचयिता को एक निश्चित पद्धति का आश्रय लेना होगा। अधिक स्पष्ट शब्दो में वह अनेक सर्गबद्ध एक विशाल काव्य की रचना करेगा, जिसमे छन्दो का विस्तार और वैविध्य अपेक्षित होगा। विषय की गरिमा और अभिव्यजना के कौशल के साथ उसमे आकार का विस्तार भी नितान्त आवश्यक है; परन्तु इस विस्तार की भी सीमा है, निश्चित रीति है। जहाँ एक ओर विस्ताराभाव मे रचना विशेष महाकाव्य की श्रेणी मे नही आ पाएगी, वहाँ दूसरी ओर अत्यधिक महत् आकार धारण करने पर वह पुराणों की कोटि मे जा पड़ेगी। अतः एक विशेष काव्य-रूप के लिए एक रीति-विशिष्ट ही प्रयोग मे लायी जाएगी और वही उसकी विधा है।

ठीक इसी प्रकार प्रबन्ध-काव्यों की रचना के लिए जो रीति प्रयुक्त होगी, मुक्तक काव्य-रूपों के लिए उससे सर्वथा भिन्न पद्धति का आश्रय लेना होगा। एक पद अथवा एक गीत विषय तथा शैली के साथ रूप की दृष्टि से भी अपने-आप मे पूर्ण और स्वतन्त्र होगा। गेयात्मकता उनका गुण होने के कारण कवि को आकार के विस्तार और छन्द तथा मात्राओ की विविधता के स्थान पर लय और गति के माधुर्य के प्रति सजग रहना होगा। मुक्तक काव्य के इस रूप-विशेष में लय और गति का उचित नियमन प्रथम अनुबन्ध है। सरलता से वह संगीत-साधना का विषय बन सके, इस कारण वह बड़े एवं जटिल छन्दो से बचने का प्रयास करेगा, अधिक मात्राओ वाली पक्तियो को भी यथासम्भव नही अपनायेगा; और यदि मुक्त छन्द का आश्रय लिया तो लय उसकी रचना-विधि का आवश्यक अग बनकर रहेगी। कहने का अभिप्राय यह है कि उसे कोई न कोई निश्चित रीति अपनानी होगी।

समग्र रूप से ही नही, काव्य के इन दो भेदों के उपभेदों मे भी, प्रत्येक के लिए एक-दूसरे से पृथक् विधा को स्वीकार करना होगा। महाकाव्य, प्रबन्ध-काव्य और खण्ड-काव्य की विधाएँ परस्पर भिन्न होगी। साथ ही मुक्तक के विभिन्न रूपो—गीत, प्रगीत, पद तथा आधुनिक युग में एक ओर अँगरेज़ी साहित्य के प्रभाव से आने वाले विभिन्न काव्य-रूपो तथा दूसरी ओर हमारे अपने नवीनता के प्रेमी साहित्यकारों द्वारा किये गए नूतन प्रयोगों मे—सभी की विधा एक-दूसरे से भिन्न होगी।

नवीन चेतना की प्रेरणा से साहित्य मे नवीन काव्य-रूपों का प्रादुर्भाव होता है। हिन्दी का आधुनिक साहित्य इस कथन का पोषक प्रमाण है। इस युग का लेखक नवीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए एक ओर परम्परा से चली आती रूप-विधाओ का परस्पर एकीकरण करता है—उदाहरण के लिए, गीति-नाट्य की रूप-विधा मे गीति और नाटक के तत्त्वों का समीकरण किया गया है। वस्तु-जगत् से विषय अपनाने के कारण कवि संवाद

के रूप मे नाट्यतत्त्व का आश्रय लेता है, और पात्रों की आत्माभिव्यक्ति प्रधान होने के कारण कथोपकथन के माध्यम के रूप मे गीति-शैली का प्रयोग करता है। नवीन चेतना का दूसरा प्रतिफलन काव्य-रचना के क्षेत्र मे रूढ़ियो के विरोध और नये प्रयोगों के आविर्भाव के रूप मे दृष्टिगत होता है। प्रयोगवादी कविता मे काव्य-रूपों के आविष्कारकों के रूप में एक दल उन रूढि-विरोधी लेखकों का है जिन्होने साहित्य के क्षेत्र मे हर परम्परागत बात के साथ काव्य-रूपों का भी विरोध किया है। नूतनता की सृष्टि इनके दृष्टिकोण का एक अनिवार्य आग्रह है। नयी बात को नये ढग से नये रूप मे प्रस्तुत करना, उनका मुख्य ध्येय है। हर काव्याग में प्रयोग की नवीनता एकमात्र लक्ष्य है। अतः काव्य-रूपों के क्षेत्र में भी उन्होने एक सर्वथा नवीन अध्याय प्रस्तुत किया। इन नवीन प्रयोगों के पीछे प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा का सम्बल नही, चिराचरित विधाओं का उनके साहित्य में तिरस्कार है; परन्तु फिर भी उनकी कोई निश्चित रीति नही, यह कहना अन्याय होगा। रूढि से भिन्न सर्वथा नूतन प्रयोग करने की लालसा ही उनके काव्य-रूपो की निर्मात्री विधा है। हर बात को ऐसे काव्य-रूपो मे अभिव्यक्त करना, जिनका ग्रहण उनसे पूर्व कभी न हुआ हो—यही वह विधा या रीति है जिसे वे अपनाते है।

रीति का अभिप्राय स्पष्ट कर देना अप्रासगिक न होगा। 'रीति' शब्द का प्रयोग यहाँ लक्षण-ग्रन्थो मे उपलब्ध काव्याग-विवेचन के लिए नही किया गया, और न ही सम्प्रदाय-विशेष मे—'विशिष्ट पद-रचना' के अर्थ मे प्रयुक्त 'रीति' शब्द से इसका कोई सम्बन्ध है। विधा के अर्थ में उपर्युक्त प्रसंग मे रीति शब्द का प्रयोग व्यापक एव सामान्य अर्थ में ही किया गया है। इस शब्द का प्रयोग हमारे रीतिकालीन आचार्यों और कवियों ने प्रकार-प्रणाली के अर्थ मे किया है, और जैसा कि डा० नगेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'रीति-काव्य की भूमिका' मे स्पष्ट किया है, इस अर्थ मे यह शब्द रीतिकाल के उत्तरकाल मे सर्वसाधारण मे स्वीकृत था। क्रमशः इसका प्रयोग शुक्लजी तक आते-आते निश्चित और व्यवस्थित हो गया और शुक्लजी ने ऐसे ग्रन्थो के साथ जिनमें विभिन्न काव्यागो की रीति का कथन हो, उन ग्रन्थो को भी रीतिकाल के अन्तर्गत परिगणित किया जिनमे "रीति-कथन तो नही है, परन्तु रीति-बन्धन निश्चित रूप से है।"[1] इस प्रकार हिन्दी-साहित्य मे रीति शब्द का सहज सम्बन्ध एक काल-विशेष के काव्य-विशेष के साथ सामान्यतः स्थापित हो गया। अतः विधा के अर्थ में रीति शब्द का प्रयोग शुक्लजी के द्वारा प्रदत्त विशिष्ट अर्थ मे भी नही किया गया है। विधा के अर्थ मे रीति से हमारा अभिप्राय उस प्रणाली अथवा प्रद्धति से है जिसके अनुसार किसी काव्य का बाह्य रूप निर्माण किया जाता है। यह पद्धति लक्षण-ग्रन्थो के विधान के अनुकूल हो सकती है, उसमे एक विशिष्ट काव्य-रूप को न अपनाकर दो विभिन्न रूपों के मिश्रण से एक नये रूप का निर्माण हो सकता है, अथवा इन सबसे भिन्न वह विषय, रचयिता के व्यक्तित्व, रचना-काल और समकालीन परिस्थितियो के प्रभाव से सर्वथा नव-निर्मित रूप हो सकता है; परन्तु वह सफल तभी होगा जब उसके पीछे किसी प्रकार के तर्क का आधार हो, उसकी कोई

१. रीति-काव्य की भूमिका : डा० नगेन्द्र; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिग हाउस, द्वितीय संस्करण; पृष्ठ १२६

निश्चित प्रणाली हो। ऐसा कोई भी प्रयोग सर्वथा अनर्गल नही हो सकता। काव्य-सृजन भावना, कल्पना एवं बुद्धि की मिश्र प्रक्रिया का परिणाम होता है; परन्तु काव्य को अनुकूल रूप देने में बुद्धि-तत्त्व विशेष सक्रिय रहता है और बुद्धि विवेक का आधार ग्रहण करके ही सक्रिय होती है। स्वभावतः प्रत्येक काव्य-रूप के पीछे एक विवेकसम्मत प्रणाली का आधार होता है, वह रचयिता की स्व-आविष्कृत प्रणाली हो, शास्त्रविहित पद्धति हो, अथवा विषय और परिस्थिति के वैशिष्ट्य के कारण गृहीत विधा-विशेष हो।

विधा के विभिन्न अर्थों मे एक अर्थ, जो उपर्युक्त अर्थ के पर्याप्त निकट एव काव्य-रूप के सम्बन्ध मे समीचीन भी जान पडता है, वह है प्रकार अथवा भेद। काव्य-रूप के साथ इस अर्थ में विधा के प्रयोग से अभिप्राय हुआ, काव्य-रूपो के विभिन्न प्रकार अथवा भेद। काव्य के क्षेत्र मे रूप-संज्ञा के साथ यद्यपि विधा शब्द का यह अर्थ सर्वथा अग्राह्य तथा प्रसंग से असम्बद्ध नही है, परन्तु साथ ही एक अन्य प्रश्न सामने आता है कि क्या 'भेद अथवा पद्धति या प्रणाली'—इन दो अर्थों मे से एक के ग्रहण तथा दूसरे के त्याग से प्रस्तुत प्रसग मे कोई उल्लेखनीय अन्तर या औचित्य आयेगा ?

इस प्रश्न का उत्तर होगा कि इन दोनो ही अर्थों मे स्थूल रूप से अन्तर भासित होने पर भी यदि सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया जाये, तो कोई विरोध अथवा असगति नही मिलेगी। वस्तुतः काव्य-रूपों के प्रकार का भेद उनकी पद्धति-प्रणाली के भेद पर ही आधृत होगा। काव्य-रूपों के विभिन्न प्रकारो व भेदो के स्वरूप-निर्माण के लिए स्वभावतः विभिन्न पद्धतियो अथवा प्रणालियों का आश्रय ग्रहण करना होगा, और रूप-विशेष के निर्माण मे प्रयुक्त प्रणाली के विवेचन-विश्लेषण की सीमा-रेखाओ के अन्तर्गत रूप के प्रकार का विवेचन स्वतः आ जाएगा। किसी काव्य-रूप की रचना के लिए गृहीत प्रणाली का परीक्षण करने से पूर्व उस रूप के प्रकार-विशेष का निरीक्षण-परीक्षण अनिवार्य ही होगा।

ठीक इसी प्रकार किसी काव्य-रूप के प्रकार अथवा भेद के विवेचन का अर्थ मात्र उसके बाह्य रूप का परीक्षण नही होगा, उस रूप की निर्मात्री विधा और उस विधा-विशेष के ग्रहण में प्रेरक तत्त्वों का निर्धारण, उसकी व्याख्या के लिए अपेक्षित ही होगा। रूप-प्रकार का विवेचन करने के साथ यदि आलोचक यह निर्देश नही कर पाता कि उसके पीछे परम्परा या शास्त्र का सम्बल है अथवा परिस्थिति का—जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत, विषयगत एव युगीन, हर प्रकार की विशेषताओं का परिगणन किया जाएगा, तो उसका विवेचन व्यावहारिक दृष्टि से अधूरा होगा। दूसरी ओर सैद्धान्तिक दृष्टि से बाह्य रूप-प्रकार के विवेचन के अन्तर्गत इनका विवेचन यद्यपि परिहार्य नही है, परन्तु साथ ही अनिवार्य भी नही। व्यवहार में ऐसा करना उसके लिए श्लाघ्य होगा। आलोचना-सम्बन्धी एक पूर्णता उसके विवेचन में आ जाएगी, परन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से वह ऐसा करने को बाध्य नही। रूप-भेद अथवा रूप-प्रकार के विवेचन का अर्थ, उस रूप-विशेष की निर्मात्री विधा का भी अनिवार्यतः विवेचन कदापि नही हो सकता। उदाहरण के लिए, 'यशोधरा' का काव्य-रूप एक ऐसा प्रकार-विशेष है जिसके निर्माण मे विभिन्न काव्य-शैलियों का सम्मिश्रण किया गया है। यदि रूप-विधा का अर्थ रूप-प्रकार अथवा रूप-भेद किया जाए, तो आलोच्य कर्म की इति केवल

उसमे प्रयुक्त विभिन्न शैलियो की ओर निर्देश कर अधिकाधिक अपने कथन की पुष्टि में उन शैलियो के तत्त्व-विश्लेषण पर ही हो सकती है—उससे आगे बढकर उस प्रकार के ग्रहण करने मे प्रेरक तत्त्व तथा उसका औचित्य-निर्णय उसी व्यक्ति का उत्तरदायित्व होगा जो काव्य-रूप के प्रकार के साथ उस प्रकार-विशेष की निर्मात्री पद्धति पर भी अपनी लेखनी उठायेगा।

अतः निष्कर्ष-रूप मे, पूर्व-विवेचित दोनो अर्थों मे यद्यपि कोई सूक्ष्म एव तात्त्विक अन्तर नही है, परन्तु साथ ही प्रथम की सीमा-रेखाओ के अन्तर्गत जहाँ दूसरा अर्थ स्वतः प्रकारान्तर से अन्तर्भूत है, वहाँ दूसरे अर्थ मे प्रथम का समावेश व्यवहार की दृष्टि से स्पृहणीय भले हो, परन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से अनिवार्य नही। इसलिए परिधि की व्यापकता और प्रसंग से अधिक सम्बद्ध होने के कारण प्रथम, अर्थात् पद्धति-प्रणाली वाले, अर्थ का ग्रहण ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। प्रस्तुत निबन्ध मे इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया जाएगा। कहने का अभिप्राय यह है कि काव्य की रूप-विधा का अर्थ काव्य-विशेष के बाह्याकार-निर्माण मे परिचालित पद्धति अथवा प्रणाली है। इसी अर्थ को स्वीकार कर आधुनिक हिन्दी-काव्य मे गृहीत विभिन्न रूप-विधाओ का अध्ययन और विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

काव्यसृजन-प्रक्रिया

सम्पूर्ण कलाओ का उद्भव सहजानुभूति अथवा कल्पना की प्रक्रिया के क्षणो मे होता है। परन्तु यह सहजानुभूति अथवा कल्पना निश्चय ही सहज ज्ञान से भिन्न होती है और केवल उन क्षणो मे पूर्णतः वर्तमान रहती है जब कलाकार सजग हो वस्तुरूप मे उसकी प्रस्तुति का प्रयास करता है। कल्पना अथवा सहजानुभूति की यह प्रक्रिया अपने प्रकृत रूप में मन की एकाग्रता अथवा तनाव की स्थिति है। काव्यसृजन-प्रक्रिया का पूर्वांश इस कल्पना को अपने यथावत् रूप मे रक्षित रखना है और उत्तरांश है उसे शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्त करना। शब्द साधारणतः (गद्य मे) मानसिक स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं, परन्तु काव्यसृजन-प्रक्रिया मे, कवि की उस विशिष्ट मानसिक उत्तेजना की स्थिति के पर्यायवाची शब्दो का उसके चेतन मन मे एक सर्वथा भिन्न वस्तु-रूप मे उन्मेष होता है। इन शब्दों का आनुक्रमिक अथवा लयात्मक विधान कर उसकी स्थिति उस क्षण तक अक्षुण्ण रहती है जब तक कवि की यह मानसिक उत्तेजना श्रान्त हो जाए अथवा अपनी वस्तुरूप अभिव्यक्ति पाकर वह उससे मुक्त हो जाए।[1]

---

1. All art originates in an act of intution or vision but such intution or vision must be identified with knowledge, being fully present only when consciously objectified. This act of vision or intution is physically, a state of concentration or tension in the mind. The process of poetry consists firstly in maintaining this vision in its integrity, and secondly in expressing this vision in words. Words are generally (in prose) the

कवि अपने और अपने विषय के मध्य एक सम्बन्ध स्थिर करता है (जिसका अपने-आप मे स्वतन्त्र रूप मे ज्ञान सम्भव नही), तदुपरान्त वह उस सम्बन्ध-विशेष के प्रति अपनी भावना को भाषा मे रूपान्तरित कर उस सम्बन्ध का, उस सत्य का, अभिज्ञान कर ज्ञातव्य बना लेता है।[1]

एक कलाकृति, कलाकार के किसी अमूल्य अनुभव के प्रसार का माध्यम है, और यह विस्तार मात्र मानसिक, आत्मिक तथा अनुभूति की सीमा तक ही नही रहता, बल्कि स्थूल वस्तुरूप मे अभिव्यक्ति का विषय बन जाता है। कलाकार का अनुभव अपनी आत्मिक विशिष्टता की रक्षा करते हुए भी किसी न किसी रूप मे अवतरित हो साकार हो जाता है। वस्तुगत सत्ता के कारण यह दूसरे के द्वारा भी प्राप्य हो जाता है। सहृदय प्रमाता स्वयं को शारीरिक और मानसिक दोनो रूपों मे उस कलाकृति में सलग्न कर उसी अनुभव मे प्रवेश पा सकता है जिसे कलाकार ने कृति मे मूर्तिमत किया है। अत: कला के लिए कवि, कविता और पाठक का त्रिकोण एक अविभाज्य अपेक्षित एकाई है। काव्य का वस्तुरूप वह केन्द्र है जिसके द्वारा तीनो के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित होता है और इस पारस्परिक सम्बन्ध-स्थापना के क्षणो में कवि और पाठक की क्षणिक अनुभूति मे, तथा काव्यसृजन-प्रक्रिया तथा काव्य-पाठन प्रतिक्रिया मे एक साम्य होना सहज है। कलाकार का अनुभूत सत्य उसकी कृति मे अभिव्यक्त होता है। आत्मानुभूतियो को वस्तु-रूप देकर उन्हे मूर्तिमान कर वह अपने प्रति, अपने और जगत् के स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण करता है—यह अन्वेषण अपने-आप में महत्तम है, क्योकि इसका विस्तार अपने से भिन्न अन्य व्यक्तियो तक है।

कवि मात्र एक सूक्ष्म प्रेक्षक नही होता, बल्कि वह सवेदनशील तथा सृजन-सामर्थ्य से सम्पन्न होता है, और उसकी यह क्षमता उसे वस्तुओ के अन्तरतम मे प्रवेश करने की अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है। वस्तुओं के सत्त्व, चेतना, आकार तथा उनकी आन्तरिक प्रकृति आदि का स्पष्ट रूप मे परिज्ञान ही कला की आत्मा है। इस सूक्ष्म दृष्टि के साथ सहानुभूतिपूर्ण समीकरण की सामर्थ्य भी काव्य-रचना के लिए अनिवार्य है। किसी वस्तुरूप पदार्थ, सहज घटना अथवा विचार को काव्य-रूप देने मे हमारी स्मरण-शक्ति का भी विशिष्ट

---

analysis of a mental state. But in the process of poetic composition words rise into the conscious mind as isolated objective things with a definite equivalence in the poet's state of mental intensity. They are arranged or composed in a sequence or rhythm which is sustained until the mental state of tension in the poet is exhausted or released by this objective equivalence.

Forms in Modern Poetry by Herbert Read, 1948—edition, P. 45.

1. The poet having established a particular relation between himself and something else (unknownable in itself) dicovers and makes known to himself that relation, that reality, by transmitting into language his feeling for that relation.

Ibid—Page 234.

महत्त्व है। हमारी स्मृति विभिन्न आकृतियों को केवल संचित ही नही रखती, बल्कि वह उन्हे स्थिर रूप देती है, उनमे एकरूपता का सचार करती है, उनमे विशाल परिवर्तन उपस्थित करती है, उनका अपूर्व तथा कभी-कभी अद्वितीय रूप मे आकार निर्माण करती है। उपर्युक्त सत्य हमारे साधारण अनुभव एव काव्य-सृजन दोनो ही से सहज सिद्ध है।

काव्य-रचना मात्र शिल्पात्मक सिद्धि से कही अधिक है; यह किसी प्रकार का आश्रित प्रतिबिम्ब नही है, विशेष प्रकार के अनुभवों के स्पष्टीकरण की आकांक्षा से प्रेरित केवल यान्त्रिक प्रत्युत्तर भी नही है। कवि की चेतना का प्रत्येक रूप सृजनात्मक एव स्वत:पूर्ण होता है। उसकी बोध-वृत्ति, उसकी स्मृति, उसकी भावना, किसी अनुभूति-विषयक घटना की उसके द्वारा प्राथमिक पकड़ अपने-आप मे पूर्ण है, मात्र अर्थ-बोध अथवा कल्पना का कार्य नही है।

काव्यसृजन-प्रक्रिया का आरम्भ बोध से होता है, यह विचार एव कल्पना की अपेक्षा भावना का विषय है। ज्ञान एव बुद्धिमत्ता का महत्त्व इस अनुभव का परिष्कार करने एवं समृद्ध बनाने मे है, परन्तु प्रक्रिया-विशेष मे इनका कार्य क्षुद्र है। कविता का उन्मेष किसी ऐसे उद्योग से नहीं हो सकता जो एकान्त बौद्धिक हो। यह प्रक्रिया अपने-आप में एक मिश्र प्रक्रिया है जिसमे कवि की चेतना के विभिन्न अश अनुभूति, कल्पना, स्मृति एवं बुद्धि—सभी सक्रिय हो उठते है। सम्पूर्ण प्रक्रिया के विभिन्न अवयवों के लिए यह निश्चित रूप से कहना असम्भव है कि एक अश-विशेष चेतना के किस रूप-विशेष की सक्रियता का परिणाम है। इस प्रकार का कोई सूक्ष्म व्यावर्तन अपने-आप मे असम्भव है। परन्तु, स्थूल रूप से यह निर्देश करना असम्भव न होगा कि स्थिति-विशेष मे कवि की चेतना का कौन-सा अंग अधिक सक्रिय होता है। वह आरम्भ से इति तक क्रमश बोध से अनुभूति, अनुभूति से कल्पना, कल्पना से विवेक-युक्त विचार-विश्लेषण—तथा अन्त मे समग्र रूप से अभिव्यक्ति की ओर बढता है। कविता के किसी भी विषय का रूप—चाहे वह वस्तु अथवा घटना-जैसा स्थूल हो अथवा विचार और अनुभूति-जैसा सूक्ष्म—सर्वप्रथम कवि की मनसा के सम्मुख बोधगम्य होकर प्रत्यक्ष होना अनिवार्य है। तदुपरान्त कवि उसका भावन करके उसे निजी अनुभूति का विषय बना लेता है। कोई भी काव्य-विषय कवि की अनुभूति का विषय हुए बिना ही कविता के रूप मे सफल अभिव्यक्ति पा जाए, यह असंभव है। कविता के लिए विचार अथवा दर्शन व चिन्तन जैसे सूक्ष्म एव नीरस विषय भी कवि की स्वानुभूति का विषय बने बिना सरस अभिव्यक्ति का कारण नही हो सकते—और सरसता काव्य का प्रथम अनुबन्ध है।

अनुभूति का विषय होने के पश्चात् कवि का कल्पना-कोष, विषय को रूप-रंग देकर शब्दो के माध्यम से अभिव्यक्त करने मे सहयोग देता है। कवि की अभिव्यजना की समृद्धि और वैभव उसकी कल्पना की समृद्धि एवं प्रसार की कसौटी है। काव्य का कलापक्ष बहुत अंशों में कल्पना के वैभव पर निर्भर है। कल्पना का यही ऐश्वर्य और रगीनी छायावादी काव्य की मसृण और नानारगिणी कला के लिए उत्तरदायी है। कल्पना की असीमता ने विषय की ससीमता को पीछे छोड़ दिया और इन कवियों की निर्मित परिधि में बद्ध विषय भी नाना रूप-रंगों में बिखर गए।

परन्तु किसी भी क्षेत्र मे सीमाहीन होना दुस्साहस के अन्तर्गत परिगणित किया जाएगा और कविता इसका अपवाद नही। काव्य-सृजन मे कल्पना का सर्वथा सीमाहीन हो विचरण करना भी श्लाघ्य नही हो सकता। उसके लिए वाणी का विषय बन पाने से पूर्व विवेक और बुद्धि के अकुश द्वारा नियमन अनिवार्य है। कल्पना का कुरुचिमय हो जाना भी असम्भव नही, अतः प्रतिभा के उद्दाम वेग को समाहित करने के लिए अभीष्ट शक्ति का सद्भाव चेतना का बुद्धि-तत्त्व ही करता है। बुद्धि की उपस्थिति में कल्पना एवं प्रतिभा का संयम-मुक्त होकर प्रवाहित होना सम्भव नही, और यही हमारे आचार्यों द्वारा प्रणीत काव्य-कारणों का उपयोग परिलक्षित होता है—

शक्तिर्निपुणतालोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥१३॥

परन्तु उपर्युक्त तीनो कारणों के होने पर भी उनमें व्यवस्था को जन्म देने वाले तत्त्व विवेक, और संयम को जन्म देने वाले तत्त्व मनन का सद्भाव अपेक्षित है। अभिव्यक्ति से पूर्व बुद्धि-तत्त्व उसे विवेकसम्मत रूप देता है। इसके साथ ही एक अन्य कार्य भी, जो अभिव्यंजना का एक अंग-मात्र है, बुद्धि इन्ही क्षणों मे सम्पन्न करती है, और वह है विषय के अनुरूप रूप-विधा की खोज करके, अभिव्यंजना-कौशल के द्वारा उसी विशिष्ट रूपरेखा मे विषय को आबद्ध करना।

कहने का तात्पर्य यह नही कि रूप-विधा का अन्वेषण और निर्धारण शुद्ध बौद्धिक प्रक्रिया है। जैसा कि आरम्भ मे कहा जा चुका है, सम्पूर्ण काव्यसृजन-प्रक्रिया एक मिश्र प्रक्रिया है, एक अश-विशेष मे चेतना के तत्त्व-विशेष के सक्रिय होने का अभिप्राय केवल उन क्षणों में उस तत्त्व का प्रधान होना है—और रूपविधा-निर्धारण के क्षणो मे कवि की विवेकयुक्त बुद्धि अधिक सक्रिय रहती है।

हमने अब तक यह स्पष्ट किया कि रूप-विधा का सम्बन्ध काव्य के बाह्य रूप और उसकी निर्मात्री विधा से है। संक्षेप मे यह जान लेना भी उचित होगा कि काव्य-शरीर के वाहक अन्य तत्त्वों—भाषा, छन्द, अलंकार, शैली आदि से रूप-विधा का क्या सम्बन्ध है।

रूप-विधा और भाषा

भाषा काव्य का ही नही, सम्पूर्ण वाङ्मय और हमारे भाव व विचारों के नित्य-प्रति व्यावहारिक आदान-प्रदान का माध्यम है। प्राणि-मात्र के अन्तरंग की वाचिक अभि-व्यक्ति के लिए भाषा का साधन अपेक्षित है। जीवन में जिस प्रकार हम विषय और प्रसंगानुसार भाषा का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार साहित्य का माध्यम बनकर उसके विवि-धांगों की भाषा एक-दूसरे से भिन्न हो जाती है, अतः विषयानुकूल भाषा का चयन और प्रयोग साहित्यिक भाषा की पहली विशेषता है। यह भाषा जब काव्य की वाहिनी होती है तो उसे छन्दो में बाँधकर उसमें सर्वत्र लय और गति के संगीत, और कहीं-कहीं स्वर के संगीत का विधान भी किया जाता है। मुक्तक काव्य में भाषा का यही विशिष्ट छन्दोबद्ध रूप किसी विशेष अनुभव-खण्ड का काव्य-रूप है। इस प्रकार के अनेक अनुभव-खण्डों का

क्रमबद्ध आयोजन या किसी महत् और विराट् अनुभूति के लिए जब ऐसे अनेक छन्दाकारों का समीकरण कर उन्हें किसी निश्चित विधि से कवि सँजो देता है, तो बृहद् काव्य-रूपों का विधान होता है। इस प्रकार काव्य-रूप मे भाषा का वही स्थान है जो वास्तुकला मे ईंट और पत्थर का, तथा चित्रकला में रेखा और तूलिका का। भाषा काव्य-रूप का अनिवार्य माध्यम है जिसके बिना काव्य-रूप का निर्माण सम्भव नही, परन्तु भाषा काव्य-रूप का पर्याय नही। किसी भी कला के मूर्त्त आधार की भाँति भाषा काव्य-कला का मूर्त्त आधार है—वह अनगढ़ आधार, जिसमे मनस्तत्त्व के योग से कवि अनेकानेक रूप-आकृतियों का निर्माण करता है। संयोजनाएँ उसकी अपनी होती हैं; इन्ही योजनाओं मे ढली, सजी-सँवरी भाषा काव्य का रूप है। परन्तु भाषा को काव्य-रूप की स्थिति तक पहुँचाने के मार्ग में उसका अनेक बार पुनर्विधान अनिवार्य है और कवि का कौशल इस प्रक्रिया के लिए अपेक्षित है। रेखा सब खीच सकते है, परन्तु चित्र सभी नही बना सकते; उसी प्रकार भाषा के व्यवहार से सभी परिचित है, परन्तु काव्यरूप-निर्माण मे सब समर्थ नही। उसके लिए विशेष कलाक्षमता अनिवार्य है, अतः भाषा और काव्य-रूप मे वही अन्तर है जो सामान्य रेखा और चित्र की रूपरेखा मे।

रूप-विधा और छन्द

छन्द काव्य का बाह्याकार है और उसका अनिवार्य लक्षण, अतः काव्य-रूप और छन्दोमय रूप मे अभिन्नता की भ्राति हो सकती है; परन्तु काव्य-रूप उसका छन्दोबद्ध रूप ही नही, उससे कुछ अधिक है। काव्य-रूप और छन्द मे अग और अगी का सम्बन्ध है। काव्य-शरीर में छन्दों की स्थिति अंग-प्रत्यंग के समान और काव्य-रूप की स्थिति इन विभिन्न अगो के संस्थान, परस्पर निश्चित विधि से निबंधन के समान है। काव्य-रूप से हमारा अभिप्राय काव्य-विशेष के समग्र बाह्याकार से है जिसका निर्माण कवि की किसी विशिष्ट अनुभूति के व्यंजक अनेक छन्दो के किसी विशेष रूप मे आयोजन से होता है। छन्द कविता का बाह्य शरीर है, परन्तु इस छन्दोमय रूप को कवि जिस रूप मे गुम्फित करता है, उसी से काव्य-रूप का निर्णय होता है। छन्दो को कवि अपनी अनुभूति की काव्यमय अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है, फिर कविता के वाहक इन छन्दो का, वह अपने विषय के अनुकूल एक ढाँचे मे, आकार मे, विन्यास करता है और यह सम्पूर्ण आकार काव्य-रूप कहलाता है। यदि छन्द को हम काव्य-रूप मान लें तो एक ही छन्द में रचित प्रबन्ध और मुक्तक काव्य में कोई भेद नहीं रहेगा; परन्तु यह अनुभव से सिद्ध है कि दोनों के विषय, प्रभाव, आकार—सभी में छन्द एक होने पर भी अन्तर बना रहेगा। वास्तव में छन्द काव्य का लक्षण है, अतः उसका अंग है, समग्र रूप नही।

छंद का काव्य-रूप के अग की स्थिति में काव्य-शरीर मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जितना महत्त्व शरीर में अंग-संस्थान, उनकी गठन और उनके अनुपात का है, उससे कम अंग-प्रत्यंग के सौंदर्य और रूप का नहीं। यदि शरीरांग कुरूप या बेडौल होंगे, तो कितनी भी सचेष्ट व सानुपात योजना समग्र रूप में सौंदर्यविधायिनी नही हो सकती। प्रबन्ध मे तो कुछ

सीमा तक काव्य-रूप का समवेत प्रभाव छन्दों की आंशिक अनुपयुक्तता को आवृत करने मे समर्थ हो सकता है, परन्तु प्रकीर्ण काव्य या लघु काव्य-रूपो का प्राण-तत्त्व ही उनका छन्द-विधान है। मुक्तक कविता का काव्य-रूप उसका छन्द ही है, अतः वहाँ विषयानुरूप रूप-विधान मे कवि को और भी अधिक सतर्क रहना पडता है। छन्दों की इसी महत्ता को दृष्टि मे रखते हुए हमने विवेच्य साहित्य के छन्द-विधान का भी यथाप्रसग अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। छद को भाषा की अपेक्षा महत्ता इसलिए अधिक दी गई है कि यद्यपि दोनों ही काव्य के माध्यम है, दोनों का सम्बन्ध काव्य-शरीर से है, परन्तु छन्द का सम्बन्ध कविता से अधिक घनिष्ठ है। भाषा भाव-मात्र की वाहिनी है, केवल कविता की नहीं। यहाँ उसकी विशेषता काव्योपयोगी होने में ही है। भाषा, कविता या काव्य-रूप का वाहन है, लक्षण या व्यावर्त्तक धर्म नहीं। छन्द का सम्बन्ध अपेक्षाकृत घनिष्ठ और स्थिति काव्य-रूप में अंग-समान है।

रूप-विधा और अलंकार

अलंकार का सम्बन्ध सौदर्य के प्रसाधन से है और काव्य-रूप का सम्बन्ध काव्य-शरीर से। अतः जो सम्बन्ध शरीर और आभूषणो मे होता है, वही काव्य-रूप और अलंकारो मे है। वे उसके अनिवार्य नही अतिरिक्त अग है, जिनका स्वरूप आरोपित और कार्य सौदर्य-वर्द्धन है; अतः काव्य-रूप और अलंकारो मे ऐक्य का तो प्रश्न ही नही उठता, उनकी स्थिति काव्य-रूप के लिए नितान्त अनिवार्य भी नही। बाह्य सज्जा और अलकरण के अभाव मे भी काव्य-रूप मे अनावृत और नैसर्गिक सौदर्य का विधान सम्भव है; परन्तु अलंकार काव्य-रूप के साधक अन्य तत्त्वो के साथ मिलकर सौन्दर्य की अतिरिक्त साधना के हेतु होते है। इसी कारण हमने विषय का अध्ययन करते समय काव्य-रूप के साथ रूप-सज्जा के साधक उपकरण अलकारो का भी सक्षेप मे अन्तर्भाव कर लिया है। रूप-विधान के साथ अलकरण-विधि का भी इस रूप में समावेश है।

शैली और रूप-विधा

अभिव्यजना के तत्त्व—भाषा, छन्द, अलंकार—और रूप-विधा का पारस्परिक सम्बन्ध और अन्तर स्पष्ट हो जाने के उपरान्त काव्य-विशेष की शैली और रूप-विधा का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करना अप्रासंगिक न होगा। अभिव्यजना का अर्थ कला का वह समस्त बाह्य पक्ष होता है जिसके माध्यम से कोई आन्तरिक भाव, विचार अथवा अनुभूति अभिव्यक्ति पाती है। जब हम किसी काव्य की शैली का निर्देश करते है, तब शैली के अन्तर्गत उस विशिष्ट रचना-पद्धति के भाव एवं कला, अन्तर एवं बाह्य, दोनो पक्ष अन्तर्भूत हो जाते हैं। अर्थात् शैली का साधारण अर्थ हुआ रचना-पद्धति, और शैली-विशेष का अर्थ हुआ विशिष्ट रचना-पद्धति, जिसमें एक विशेष प्रकार की अनुभूति और अभिव्यजना का समावेश हो। उदाहरण के लिए, जब हम किसी काव्य के लिए कहते है कि वह काव्य-विशेष गीति-शैली मे रचित है; तब हमारा अभिप्राय केवल उसके अभिव्यंजना-पक्ष से नही होता, बल्कि

कहने का तात्पर्य यह होता है कि उसकी रचना में उन समस्त तत्त्वों का समावेश है जो गीति-काव्य के लिए आवश्यक है—अर्थात्, उसमें गीत की भावना और अभिव्यंजना दोनों पक्षों का विधान है।

रूप-विधा का सम्बन्ध शैली के अभिव्यंजना-पक्ष से ही होता है। किसी शैली का केवल उतना पक्ष रूप-विधा के अन्तर्गत आता है जहाँ कोई भाव-विशेष तदनुकूल काव्यरूप-विशेष के माध्यम से अभिव्यक्त होता है, और रूप-विधान की विशिष्ट प्रणाली उसकी रूप-विधा है। गीति-शैली का सम्बन्ध जहाँ भाव की एकाग्रता, आत्मपरक अभिव्यक्ति, अनुभूति की प्रबलता, कल्पना-वैभव और स्वतःपूर्ण आकार के मध्य उसकी अभिव्यक्ति—सभी से होता है, वहाँ रूप-विधा का सम्बन्ध केवल उस रूपगठन की प्रणाली से, उस बाह्याकार की एकसूत्रता से है जो इन विभिन्न अवयवों को समग्र रूप में बाँधकर एक ढाँचे में प्रस्तुत करती है। भाव के साथ अनुकूलता इस सम्बन्ध मे उसके लिए आवश्यक है, परन्तु भाव उसका अश नही।

काव्यसृजन-प्रक्रिया में रूप-विधा का महत्त्व

जैसा पहले भी कहा जा चुका है, काव्यसृजन-प्रक्रिया एक मिश्र प्रक्रिया है और इस मिश्र प्रक्रिया के फलस्वरूप उद्‌भूत काव्य के समवेत रूप मे संश्लिष्ट विभिन्न अंग-उपांगों को एक-दूसरे से पृथक् कर उनका विशिष्ट महत्त्व-निर्देश करना सर्वथा असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। जिस प्रकार सम्पूर्ण प्रक्रिया मे रचयिता की सृजन-शक्ति के विभिन्न अग—भावना, कल्पना एवं बुद्धि—परस्पर इतने घुले-मिले होते है कि उनमे से यह निर्देश कर पाना कि अमुक अश अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा काव्य-कृति का अश-विशेष एक प्रक्रिया-विशेष का परिणाम है, एक दुष्कर कार्य है; ठीक इसी प्रकार काव्य-कृति की विषयवस्तु, उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम रूप-आकार, एव इस विषयवस्तु को उपयुक्त माध्यम द्वारा अभिव्यक्ति देने वाली उसकी अभिव्यजना-कला—तीनो तत्त्व परस्पर इतने सम्बद्ध है कि उनका स्वतन्त्र महत्त्व-निर्देश कर सकना कठिन है।

रूप-विधान का प्रश्न जहाँ तक है, वास्तव मे साहित्य की विभिन्न रूप-विधाओ का पारस्परिक अन्तर सतही विशेषताओं का नही, किसी भी अश मे आकार का नही, मात्र अभिव्यंजना-प्रकार का भी नही; यह अन्तर आत्मा का, सत्त्व का अन्तर होता है। उदाहरण के के लिए, गद्य और पद्य साहित्य की दो भिन्न शैलियाँ है। इसी प्रकार महाकाव्य और गीति-काव्य, काव्य की दो भिन्न रूप-विधाएँ है। इनका पारस्परिक अन्तर केवल इनके पृष्ठ भाग का, आकार का अन्तर नही। इनकी मूल आत्मा, इनके विषय, इनका मूल तत्त्व परस्पर भिन्न होगा। रूप-विधा का ग्रहण विषय के, काव्य की मूल आत्मा के, अनुरूप होगा। किसी भी वस्तु की सरल एवं सहज अभिव्यक्ति अपने-आप मे श्लाघ्य है; परन्तु किसी ऐसे भाव अथवा विचार की अभिव्यजना, जो सश्लिष्ट एव गम्भीर है, यदि सीधे सरल माध्यम से की जाएगी, तो बहुत अंशो मे उसका सहज आकार आन्तरिक गाम्भीर्य को आवृत कर लेगा। वस्तु-तत्त्व की जटिलता, रूप-विधा की जटिलता का ही एक उचित कारण है। सारांश में रूप-विधा काव्य के वस्तु-तत्त्व से सर्वथा असम्पृक्त एवं स्वतन्त्र हो सके, यह सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य केवल इतना ही है कि काव्य का आन्तर और बाह्य दोनों एक अविभाज्य एकाई है; परन्तु इससे यह आशय नही कि किसी भी काव्य-कृति के रूपाकार का महत्त्व उसके वस्तु-तत्त्व की अपेक्षा न्यून होता है। कारण स्पष्ट है—रूप-आकार से विहीन कला का अस्तित्व ही असम्भव है। दूसरे शब्दो मे, आकार ही कला है; क्योकि कला की अभिव्यक्ति एक ऐसे माध्यम द्वारा ही सम्भव है जो वस्तु-रूप हो, साकार हो और जिसका अभिज्ञान हमारी ऐन्द्रिय चेतना के द्वारा सम्भव हो सके।

रूप-आकार का यह महत्त्व कला के हर क्षेत्र मे यथावत् द्रष्टव्य है। मूर्तिकला अथवा चित्रकला से ही यदि आरम्भ करे तो जहाँ उनकी रूपरेखा को अनुप्राणित करने वाली कलाकार की सजग-सरस-चैतन्य आत्मा के अभाव मे ये प्रस्तर-प्रतिमाएँ केवल प्रस्तर ही रह जाएँगी, चित्रों के रूप-रग का वैभव निर्जीव हो बिखर जाएगा, वहाँ कलाकार की सचेत कल्पना, अनुभूति और सरस भावना समस्त प्रसाधनो से युक्त होकर भी यदि उपयुक्त रूप-आकार मे निबद्ध न हो पायी, तो वह उसकी आत्मा का विषय होगी, जगत् के आकर्षण का विषय नही। कला की सार्थकता इसी मे है कि वह अभिव्यक्ति का विषय बन सके, कलाकार स्वानुभूत आनन्द का समभोक्ता सहृदय प्राणि-मात्र को बना सके; और यह तभी सम्भव है जब कला की आत्मा स्वानुरूप रूप-आकार मे आबद्ध होकर अभिव्यक्त हो जाए।

प्रतिमा अथवा चित्र की ही भाँति कविता भी वह बाह्य तत्त्व है जो एक आन्तरिक अनुभूति का प्रेषण करती है; तथापि आन्तर और बाह्य के इस ऐक्य का सम्बन्ध नित्य है। कला रूप-आकार द्वारा प्रकाशित आत्मा का विषय है, जिसमे कलाकार अपने माध्यम द्वारा आकाक्षित हर स्थिति मे आत्म-समर्पण करता जाता है।

चित्र, मूर्ति अथवा कविता—जो भी हो, यह वह माध्यम है, जिसके द्वारा कलाकार के सदेश का संसार के मध्य प्रवहण होता है। अत कला के बाह्याश का महत्त्व इस क्षेत्र मे प्राथमिक है; क्योकि कवि के लिए मात्र यही विचारणीय नही है कि काव्य के अर्थ का ध्वनन एव प्रतीति किस रूप मे होगी, बल्कि यह भी है कि अभिव्यक्ति के उपरान्त वह अपने प्रतिपाद्य को, अपनी अनुभूति को, यथार्थत कितने अशो मे पाठक तक पहुँचा सका। पाठक, पृष्ठो पर अंकित शब्द-सकेतों को देखकर एक सहज स्वाभाविक सम्बन्ध-स्थापिका शक्ति के द्वारा अपने मस्तिष्क मे कतिपय ऐसे शब्दो और ध्वनियो का स्मरण करता है, जिन्हें एक आकार मे व्यवस्थित रूप दिया गया है और ये शब्द एव वह आकार, जिसमे इनका क्रमानुसार नियोजन किया गया है, अविलम्ब नियत अभिप्रायों का सकेत करते है, और क्रमशः जैसे वह एक पृष्ठ के उपरान्त दूसरे पर आगे बढता जाता है, उसे ज्ञात होता है कि इनका नियोजन एक निश्चित विधानानुसार हुआ है—और यह विधान, चाहे इसका प्रकार कुछ भी हो, मानव-अनुभव की एक निश्चित स्थिति को प्रतिबिम्बित करता है।

काव्य-कृति के विभिन्न अवयव और कृति की निर्मात्री प्रक्रिया, यद्यपि दोनो ही संश्लिष्ट होते है, तथापि उसके विभिन्न अगों के महत्त्व का निर्णय एवं विवेचना की सरलता के निमित्त सम्पूर्ण काव्य-कृति का एक अत्यन्त स्थूल विभाजन सम्भव है। हर कला-कृति मे उसके दो पक्ष सर्वथा स्पष्ट होते है—अनुभूति अथवा उसका भाव-पक्ष, एव अभिव्यंजना

अथवा कला-पक्ष। हर कला-कृति के ये दोनों पक्ष यद्यपि अन्योन्याश्रित तथा एक-दूसरे से इतने सम्बद्ध है कि एक के अभाव में दूसरे की स्थिति असम्भव है, परन्तु साथ ही विश्लेषण के निमित्त वे एक होते हुए भी विभाज्य है।

अब प्रश्न है कि काव्य-कृति की रूप-विधा का स्थान इन उभय पक्षों मे से कहाँ होगा, एव उसका काव्य-सृजन मे क्या महत्त्व है ? निश्चय ही रूप-विधा का निर्माण, भाव अथवा विषयानुकूल होने पर भी उसका परिगणन काव्य के भाव तथा वस्तु-पक्ष के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त कथन मे दो मत होने की सम्भावना नही, अत. आगामी सहज प्रश्न है कि अभिव्यजना अथवा कला-पक्ष मे रूप-विधा का क्या स्थान है ?

अभिव्यजना के विभिन्न तत्त्वों के अन्तर्गत काव्य की भाषा, अलकार, छन्द, रीति, वृत्ति, गुण के अतिरिक्त एक अन्य तत्त्व ऐसा है जिसका पृथक् महत्त्व-निर्देश हमारे साहित्य-शास्त्र मे अत्यल्प है; परन्तु वही तत्त्व अभिव्यजना के इन पृथक् अवयवो को एकत्र कर एकसूत्रता प्रदान करता है और कहने की आवश्यकता नही, वह तत्त्व काव्य का रूप-विधान है। अभिव्यजना के ये सभी तत्त्व हर काव्य-कृति मे सहज उपलब्ध होते है, परन्तु इन विभिन्न तत्त्वो का सयोजन प्रत्येक काव्य-कृति मे एक भिन्न प्रणाली से किया जाता है और इस प्रणाली का ग्रहण प्राय: काव्य के प्रतिपाद्य के अनुरूप होता है।

उदाहरण के लिए, रामकाव्य-परम्परा के दो प्रमुख ग्रन्थ 'रामचरितमानस' और 'साकेत' के बाह्याकार मे जो महत् अन्तर दृष्टिगत होता है, उसका कारण यदि लेखको का प्रतिपाद्य कहा जाये, तो अनुचित न होगा। दोनो मे अभिव्यजना के सभी अवयव वर्तमान हैं, परन्तु उनका नियोजन दो ऐसी भिन्न प्रणालियो से हुआ है, जिनके मूल मे रचयिताओ के उद्देश्य सक्रिय है। मानस के कवि का उद्देश्य प्राणि-मात्र का हर दृष्टि से (धार्मिक, सामाजिक एव सास्कृतिक) उत्थान है, अत उसने साहित्य की लपेट मे सम्पूर्ण युग-चेतना को आत्मसात् कर लिया और परिणामस्वरूप महत् उद्देश्य की अभिव्यक्ति महत् आकार के माध्यम से हुई है, परन्तु इससे भिन्न 'साकेत' के कवि का उद्देश्य निपट साहित्यिक है। धर्म, समाज, सस्कृति यहाँ साहित्य के मार्ग मे आड़े नही आये है और जीवन के रसमय पक्ष का अकन, निश्चय ही उद्देश्य की एकागिता के कारण आकार की वही विशदता नही धारण कर पाया। अभिप्राय यह नही कि गुप्तजी ने युग और समाज को सर्वथा भुला दिया। मानव-सम्बन्धों के चित्राकन मे समर्थ उनकी लेखनी और युग-चेता कलाकार की दृष्टि के लिए यह असम्भव है; पर साथ ही यह उनका मूल उद्देश्य नही। रामकथा के वर्णन मे उनके और तुलसी के उद्देश्य को एक ही स्तर पर रखना अन्याय होगा और ऐसी आवश्यकता भी नही—लेखक ने कही इस प्रकार का दावा भी नही किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि अभिव्यजना के भिन्न अवयवों को परस्पर एक निश्चित प्रणाली के अनुरूप आबद्ध करने का कार्य अभिव्यजना-कला का वह तत्त्व करता है, जिसे काव्य की रूप-विधा कहा जाता है और इस विधा का ग्रहण काव्य के प्रतिपाद्य के, उसके मूल भाव एव विषय-वस्तु के अनुरूप होता है।

बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए नित्य जीवन से उदाहरण ले तो मानव-शरीर परम शक्ति की वह कलाकृति है जिसका आत्म-तत्त्व अथवा भाव-पक्ष उसके अन्तर का प्राण है—

जिसके बिना सत्ता सम्भव नही। रक्त-मास से निर्मित बाह्य शरीर वह अभिव्यजना-कला है—जिसके माध्यम से वह आत्म-तत्त्व अभिव्यक्ति का विषय बन नाना रूपरगों से रंजित हो प्रकट होता है। परन्तु इस अभिव्यजना-कला का एक ऐसा तत्त्व, जिसके बिना विभिन्न अवयवों की रूप-आकृति का सुदृढ आकार में सम्बद्ध रहना असम्भव है, उसको रूप-रेखा प्रदान करने वाला अस्थिपिंजर है। आत्मतत्त्व के बिना इस अस्थिपिजर में प्राणो का स्पन्दन नही मिलेगा। अपने-आप मे सर्वथा स्पष्ट होने पर भी चैतन्य का सचार नही होगा। अभिव्यंजना के कौशल और रगीनी के बिना वह आकर्षक प्रतीत नही होगा, परन्तु साथ ही बिना रूप-आकृति की सुदृढता के इन समस्त अन्य तत्त्वो की कल्पना असम्भव है—परन्तु अस्थिपिजर मानव का स्थानापन्न नही हो सकता।

ठीक यही स्थिति काव्य-कृति मे रूप-विधा की है। वह सम्पूर्ण अभिव्यंजना-कला का स्थानापन्न नही हो सकती, अभिव्यंजना के विभिन्न अवयवो को अन्विति व एकसूत्रता देने के माध्यम-स्वरूप उसका अग-मात्र है और उसका ग्रहण बहुत-कुछ काव्य के अन्य अगो पर (मुख्यतः प्रतिपाद्य पर) निर्भर है। रूप-विधा का अन्य अगो—भाव और अभिव्यजना के अन्य तत्त्वो के साथ एक अनुकूल और सहज सतुलन अपेक्षित है; अन्यथा यदि रूप-विधा का ग्रहण काव्य की विषयवस्तु और अभिव्यजना के अनुकूल नही हुआ, तो सम्पूर्ण काव्य मे प्रभाव-सम्बन्धी एक असगति आ जायेगी। भाव की महानता, अभिव्यजना के वैभव और समृद्धि के अनुकूल आकार में भी महानता अपेक्षित होगी। प्रतिपाद्य विषय का विस्तार और सकोच रूप-विधा मे भी विस्तार और सकोच प्रस्तुत करेगा। ठीक इसी प्रकार काव्य के रूप-सम्बन्धी विस्तार, महत्ता अथवा जटिलता के लिए भाव की कृशता और अभिव्यजना की असमर्थता उत्तरदायी नही हो सकती। निष्कर्ष रूप मे रूप-विधा का ग्रहण काव्य के प्रतिपाद्य के अनुकूल होगा।

काव्य-रूपों में परिवर्तन के कारण

काव्य-रूप और विषय या प्रेरक चित्तवृत्ति के इस अभिन्न सम्बन्ध के कारण ही सम्भवत. पाश्चात्य विद्वानो ने काव्य का विभाजन रूप-विधान के अनुसार करने के स्थान पर कवि के दृष्टिकोण और उसकी मनोवृत्ति के अनुसार—विषयीप्रधान, विषयप्रधान आदि भेदो मे किया है। कवि की चित्तवृत्ति पर निर्भर होने के कारण ही काव्य के अनेक भेद और एक विशिष्ट भेद के अनेक रूप दृष्टिगत होते है, क्योकि हर कृतिकार की मनोवृत्ति, अत उसका कृतित्व दूसरे से भिन्न होता है। काव्य-रूप प्रत्यक्ष रूप से कवि की चित्तवृत्ति को प्रभावित करने वाले कारणो पर निर्भर होते है। अन्य कारणो से हमारा अभिप्राय सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियाँ तथा वातावरण, कवि के व्यक्तिगत सस्कार और जीवन के प्रति दृष्टिकोण, रचना के अवसर, अन्य साहित्य से सपर्क और उसके प्रभाव और इन सबसे निर्मित उसकी भीतरी प्रेरणा, अन्तश्चेतना, अनुभूति, उसका विस्तार और स्वरूप सभी से है। उदाहरण देने की आवश्यकता नही; काव्य के मर्मज्ञ इस तथ्य से अभिज्ञ है और काव्य-रूपो का इतिहास इस कथन का साक्षी है कि काव्य-रूपों मे निरन्तर और उत्तरोत्तर होनेवाले परिवर्तनो मे किसी-न-किसी रूप मे उक्त कारणों का प्रभाव रहा है। प्रत्यक्ष रूप से काव्य-रूपो मे होनेवाले परिवर्तनो का सम्बन्ध पूर्व-कथित कारणो

मे केवल अन्य साहित्य के सम्पर्क से जोड़ा जा सकता है. शेष का प्रभाव कवि की मनोवृत्ति पर और मनोवृत्ति का प्रभाव काव्य के रूप-विधान पर पडता है।

काव्य-रूपों का विभाजन

संस्कृत के आचार्यों का मत

सस्कृत काव्य-शास्त्र मे सभी आचार्यो ने बन्ध की दृष्टि से काव्य का विभाजन और विवेचन नही किया। जिन काव्य-रूपो का उल्लेख किया गया है, उनमे से भी महाकाव्य के अतिरिक्त किसी काव्य-रूप का सर्वाग विवेचन सस्कृत काव्य-शास्त्र मे नही मिलता। अत· हम यहाँ सक्षेप मे उन सभी विधाओ का उल्लेख करेगे, जिनको इन आचार्यों ने अपने ग्रन्थो मे किसी भी रूप मे स्थान दिया है। इन विधाओ के विस्तृत लक्षण तथा उपलब्ध विवेचन का अध्ययन यथा-प्रसंग तत्सम्बन्धित अध्यायों मे किया जायेगा। इस प्रसग मे इन काव्य-रूपो का उल्लेख केवल इसलिए किया जा रहा है कि हमे इस बात का ज्ञान हो जाये कि रूप-विधाओ की दृष्टि से हिन्दी का आधुनिक काव्य प्राचीन परम्परा का कहाँ तक उपजीवी है और बन्ध की दृष्टि से आधुनिक काव्य मे प्राचीन विभाजन किस सीमा तक मान्य हो सकता है।

काव्य-शास्त्र के रचयिता विद्वानो की परम्परा सस्कृत-साहित्य मे बहुत लम्बी है; परन्तु हमारा प्रयोजन उन्ही ग्रन्थों से है जिनमे काव्य-रूपो के विषय मे रूप-विधान की दृष्टि से कुछ लिखा गया, अथवा रूप के आधार पर उनका विभाजन किया गया। इस दृष्टि से उल्लेखनीय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निम्नाकित है—

'अग्निपुराण', भामह का 'काव्यालकार', दडी का 'काव्यादर्श', वामन का 'अलकारसूत्र', रुद्रट का 'काव्यालकार', आनन्दवर्द्धन का 'ध्वन्यालोक', कुन्तक का 'वक्रोक्तिजीवितम्', राजशेखर की 'काव्यमीमासा', मम्मट का 'काव्यप्रकाश' और विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण'।

इनके अतिरिक्त अन्य काव्य-शास्त्र के ग्रन्थो मे या तो इन्ही आचार्यों द्वारा किये गए विभाजन या विवेचन का शब्द-भेद से पुनराख्यान किया गया है, अथवा किसी विशिष्ट काव्य-रूप पर विचार किया गया है—सभी काव्य-रूपो पर नही, अत विस्तार-भय से सभी विद्वानो के मत का उल्लेख नही किया जा रहा है।

संस्कृत काव्य-शास्त्र मे इन्द्रियो की ग्राहकता के आधार पर काव्य अर्थात् साहित्य के दो भेद किये गए—दृश्य और श्रव्य। शैली के आधार पर श्रव्य का पुन· कही गद्य और पद्य दो मे और कही गद्य, पद्य एव मिश्र—तीन भेदो मे विभाजन किया गया।[1] इस विभाजन मे हमारा

१. (क) शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्य पद्य च तदद्विधा।
—काव्यालकार (भामह) पृ० २; प्रथम परिच्छेद; चौखम्बा सस्कृत सीरीज, बनारस; स० १९८५
(ख) गद्य पद्य च मिश्र च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्।
पद्य चतुष्पदी तच्च वृत्त जातिरिति द्विधा ॥१।११॥
—काव्यादर्श (दण्डी), पृ० १४; चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी; १९५८
(ग) काव्यं गद्यं पद्य च।१-३-२१
—काव्यालकारसूत्रवृत्ति (वामन), पृ० ५५; आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली; १९५४

सम्बन्ध केवल पद्य और मिश्र शैली के काव्य-रूपो से है। पद्य-शैली मे उपलब्ध काव्य-रूपो का विभाजन, निबद्ध और अनिबद्ध, दो मुख्य भेदो व तदुपरान्त अनेक उपभेदो मे किया गया है।[1] इस विभाजन मे एक विशेषता है—निबद्ध और अनिबद्ध काव्य के विभिन्न प्रकारों का विभाजन नही, आचार्यों ने परिगणन कराया है। ये भेद निवद्ध अथवा अनिवद्ध के है, यह

(घ) श्रव्य श्रोतव्यमात्र तत्पद्यगद्यमयं द्विधा ॥३१३॥

—साहित्यदर्पण (विश्वनाथ), पृ० २२४

(ङ) काव्य प्रेक्ष्य श्रव्य च ॥१॥

—काव्यानुशासन (हेमचन्द्र), पृ० ४३२, रसिकलाल पारीख, स० १९३८, प्रथम सस्करण

१. (क) सर्गबन्धोऽभिनेयार्थ तथैवाख्यायिकाकथे।
अनिबद्ध च काव्यादि तत्पुनः पचधोच्यते ॥
अनिबद्ध पुनर्गीथारलोकमात्रादि तत्पुनः।
युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या .....॥

—काव्यालकार (भामह), पृ० ४

(ख) मुक्तकं कुलक कोशः सघात इति तादृशः।
सर्गबन्धांगरूपत्वादनुक्तः पद्यविस्तरः ॥१।१३॥ पृ० १५
गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ॥१।३१॥

—काव्यादर्श (दण्डी), पृ० २९

(ग) पद्यमनेकभेदम् ।१-३-२६।
पद्य खल्वनेकेन समार्धसमविषमादिना भेदेन भिन्नं भवति ॥२६॥ पृ० ५७
तदिद गद्यपद्यरूप काव्यमनिबद्ध निबद्ध च। अनयोः प्रसिद्धत्वाल्लक्षण नोक्तम् ॥२७॥

—काव्यालकारसूत्रवृत्ति (वामन), स० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ५९

(घ) यत. काव्यस्य प्रभेदा मुक्तकं सस्कृतप्राकृतापभ्रशनिबद्ध, सन्दानितक—विशेषक —कलापक—कुलकानि, पर्यायबन्धः, परिकथा, खण्डकथासकलकथे, सर्गबन्धो,अभिनेयार्थं, आख्यायिकाकथे, इत्येवमादयः।

—ध्वन्यालोक; स० डा० नगेन्द्र; पृ० २४८; गौतम बुकटिपो, दिल्लीः १९५२

(ङ) मुक्तकप्रबन्धविषयत्वेन। तावपि प्रत्येक पञ्चधा। शुद्ध', चित्र', कथोत्थ', सविधानकभू', आख्यानकवांश्च। तत्र मुक्तेतिवृत्त' शुद्ध.। स एव सप्रपञ्चश्चित्रः। वृत्तेतिवृत्त कथोत्थः। सम्भावितैतिवृत्तः सविधानकभू। परिकल्पितैतिवृत्तः आख्यानकवान्।

—काव्यमीमासा (राजशेखर), नवम् अध्याय, पृ० ११४; विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

(च) छन्दोबद्धपद पद्य तेन मुक्तेन मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मक सदानितकं त्रिभिरिष्यते ॥६।३१४॥
कलापक चतुर्भिश्च पचभिः कुलक मतम्।
सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ॥६।३१५॥
... . . .
खडकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।
कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षक' ॥६।३२९॥

—साहित्यदर्पण (विश्वनाथ)

निर्णय हम उनके लक्षण-निरूपण के आधार पर करते है। शीर्षको के अन्तर्गत व्यवस्थित विभाजन बहुत कम किया गया है। पद्य की ही नही, गद्य और पद्य दोनो शैलियो की विधाओ का एक साथ उल्लेख प्रायः सभी आचार्यों ने कर दिया। आचार्य विश्वनाथ के विवेचन मे अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्था है। सस्कृत के आचार्यो ने प्रबन्ध-काव्य मे महाकाव्य, एकार्थकाव्य, खण्डकाव्य, पर्यायबन्ध और चम्पूकाव्य का उल्लेख किया। मुक्तक के स्फुट रूप के साथ दो, तीन, चार छन्दो के सयुक्त मुक्तको का सख्या के आधार पर तथा सकलन के आधार पर भी अलग-अलग नामकरण किया गया। मुक्तक के गेय या प्रगीत रूप का स्पष्ट उल्लेख तो इन आचार्यो ने नही किया, किन्तु आचार्य भामह ने रीति-विवेचन के "वैदर्भगौडीयोर्भेद." प्रसग मे इस विधा की ओर सकेत अवश्य किया है। उक्त प्रसग मे वैदर्भ और गौडीय के तथाकथित भेद को मिथ्या प्रमाणित कर दोनो के बीच भेद-स्थापना का कारण बुद्धिहीनता बताते हुए वैदर्भी की विशेषताओ का उल्लेख करते है—

अपुष्टार्थमवक्रोक्ति प्रसन्नमृजु कोमलम्।
भिन्नं गेयमिवेदं तु केवलं श्रुतिपेशलम् ॥१।३४॥[1]

अर्थात्, 'जिसमे अर्थ अपुष्ट हो, वक्रोक्ति का अभाव हो, प्रसाद गुण हो, सरल और कोमल हो, वह वैदर्भ होता है। वह गेय (गीत) की भाँति भिन्न होता है, केवल सुनने मे सुन्दर होता है।'

स्पष्ट है कि 'काव्यालकार' की रचना के समय गेय काव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व अवश्य था। सम्भावना है कि उसका महत्त्व शास्त्रीय विवेचन मे स्थान पाने योग्य न रहा हो, परन्तु इस विशेष काव्य-रूप मे गेयता के अतिरिक्त कुछ ऐसी विशेषताओ का उल्लेख किया गया है जो अन्य काव्य-रूपो से विशिष्ट, परवर्ती गीति-शैली के निकट तथा इस विधा के नित्य गुण है—वक्रोक्ति का अभाव, प्रसाद गुण का सद्भाव, सारल्य और कोमलता—जो कि वैदर्भी के गुण है और यही वैदर्भी गेय की भाँति भिन्न—अर्थात् औरो से विशिष्ट होती है और यह गेय काव्य केवल सुनने मे सुन्दर होता है। यहाँ गेय-काव्य मे श्रुति-सौन्दर्य के कैवल्य का निर्देश कर उसका पृथक् अस्तित्व घोषित किया गया है। यदि गेय का साधारण अर्थ —जिसे गाया जा सके, अथवा

भाषाविभाषानियमात्काव्य सर्गसमुत्थितम्।
एकार्थप्रवणैः पद्यै सन्धिसामग्र्यवर्जितम् ॥६।३२८॥
यथा—भिन्नाटनम्, आर्याविलासश्च।
गद्यपद्यमयं काव्य चम्पूरित्यभिधीयते।
—साहित्यदर्पण, पृ० २२४-२२७। मोतीलाल बनारसीदास, १९५६

(छ) श्रव्य महाकाव्यमाख्यायिका कथा चम्पूरनिबद्ध च ॥५॥ पृ० ४४९
अनिबद्ध मुक्तकादि ॥१०॥
एकद्वित्रिचतुश्छन्दोभिर्मुक्तक- सदानितक- विशेषक- कलापकानि ॥११॥
पचादिभिश्चतुर्दशान्तैः कुलकम् ॥१२॥
स्वपरकृतमुक्तिसमुच्चय. कोष. ॥१३॥
— काव्यानुशासन (हेमचन्द्र), पृ० ४६५-४६६; चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी

१. काव्यालकार (भामह), पृ० ४

जो गाने के योग्य हो, लिया जाए तो काव्य की अन्य रूप-विधाओं के मध्य भी ऐसे अश सहज उपलब्ध हो जायेंगे जिनमे गेय श्रुति-सौन्दर्य के साथ अर्थ-गाम्भीर्य भी हो; अत. यहाँ उक्त गेय काव्य निश्चय ही कोई ऐसी रूप-विधा है जो अन्य से भिन्न तथा केवल सुनने मे सुन्दर है। निश्चय ही इसका रूप विशेष गम्भीर नही रहा होगा, अन्यथा इस काव्य-रूप की ओर अन्य विद्वानों का ध्यान जाना स्वाभाविक था।

काव्य-रूपो के विवेचन के सम्बन्ध मे सस्कृत के आचार्यो मे एक प्रवृत्ति निरपवाद रूप से सर्वत्र मिलती है। सभी आचार्यो ने मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध को, और प्रबन्ध मे महाकाव्य को, सर्वाधिक महत्त्व दिया है। मुक्तक विधाओ का उल्लेख-भर किया गया है; और प्रबन्धो मे भी विस्तृत विवेचन केवल महाकाव्य का ही उपलब्ध है। कही-कही तो स्पष्टतया तुलनात्मक दृष्टि से मुक्तक की महत्त्वहीनता घोषित कर उसे विवेचन का अनधिकारी ठहराया गया है। आचार्य दण्डी ने अपने काव्य-विभाजन मे मुक्तक के विभिन्न रूपो को महाकाव्य का अवयव-मात्र मानकर उनके विवेचन न करने के कारण की घोषणा की। वामन ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया। उन्होने भी मुक्तक को महाकाव्य या प्रबन्ध-काव्य का अवयव-मात्र माना है, उसका स्वतन्त्र महत्त्व स्वीकार नही किया। दोनो काव्य-रूपो का महत्त्व-निर्धारण उन्होने निम्नलिखित उदाहरण देकर किया—

क्रमसिद्धिस्तयोः स्रगुत्तंसवत्। १-३-२८

.....अनिबद्धसिद्धौ निबद्धसिद्धि.। यथा स्रजि मालायां सिद्धायां, उत्तंसः शेखरः सिद्ध्यतीति ॥२८॥[1]

"माला और मौर (शेखर) के समान उन दोनो (अनिबद्ध और निबद्ध काव्यो) की सिद्धि क्रमशः होती है। अनिबद्ध (मुक्तक) की सिद्धि हो जाने पर निबद्ध (प्रबन्ध-काव्य) की सिद्धि होती है। माला और मौर के समान। जैसे स्रक् अर्थात् माला के बन जाने पर (उससे ही) उत्तस अर्थात् मौर (मुकुट, शेखर) बन जाता है।

इस कथन से पाठक को एक क्षण के लिए इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि कदाचित् रचयिता का मुख्य लक्ष्य मुक्तक की रचना है और तदुपरान्त प्रबन्ध-रचना एक गौण उपलब्धि के रूप मे उसका श्रेय हो जाती है। परन्तु उन्होने अगली पक्तियो मे अपना अभिप्राय स्पष्ट कर शंका का अवकाश ही नही दिया। स्वत.पूर्ण मुक्तक के विषय मे उन्होने कहा—

केविदनिबद्धा एव पर्यवसितास्तद्दूषणार्थमाह—

नानिबद्ध चकास्त्येकतेजः परमाणुवत् ॥१-३-२९

न खल्वनिबद्ध काव्य चकास्ति, दीप्यते। यथैकतेजः परमाणुरिति। अत्र श्लोकः —

असंकलितरूपाणां काव्यानां नास्ति चारुता।

न प्रत्येकं प्रकाशन्ते तेजसाः परमाणवः ॥२९॥

अर्थात्—

"कुछ (काव्य) मुक्तको (की रचना) मे ही समाप्त हो जाते है।" उनका दोष दिख-

---

१. भारतीय काव्य-शास्त्र की परम्परा : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ८३

लाने के लिए कहते है—

"अग्नि के अकेले परमाणु के समान मुक्तक अकेला शोभित नही होता है।" (१-३-२९)

"जैसे अग्नि का एक परमाणु नही चमकता है, इसी प्रकार अनिबद्ध (मुक्तक) काव्य प्रकाशित नही होता है।" इसी विषय मे यह निम्न श्लोक है—

"असंकलित (मुक्तक) काव्यो मे चारुता नही आती। जैसे अग्नि के अलग परमाणु नही चमकते है (मिलकर ही चमकते है), इसी प्रकार प्रबन्ध-काव्य ही शोभित होते है, मुक्तक उतने शोभित नही होते।" (२९)[1]

अतः अग्नि और उसके पृथक् परमाणुओ का दृष्टान्त देकर आचार्य ने इस तथ्य का पुन-पुन. स्पष्टीकरण किया है कि मुक्तक काव्य केवल साधन है, साध्य नही। वह उसी प्रकार प्रबन्ध का अवयव है जिस प्रकार अग्नि का एक परमाणु उसका अश होता है; वह सम्पूर्ण अग्नि के समान कदापि शोभित नही हो सकता, साथ ही इस प्रकार के अनेक परमाणु अग्नि के प्रज्ज्वलन के साधन-मात्र होते है। ठीक इसी प्रकार मुक्तक-रूप विभिन्न अशो के सयोग से प्रबन्ध-काव्य की रचना सम्भव होती है—उसी प्रकार जैसे मौर के निर्माण के लिए साधन, माला का निर्माण पहले आवश्यक है। वामन के अनुसार मुक्तक की रचना, रचयिता के लिए प्रबन्ध-रचना की सिद्धि का साधनमात्र होगी। चरम साध्य अथवा लक्ष्य प्रबन्ध-काव्य रचना ही है। यदि इस उपलब्धि के पूर्व ही मुक्तक-रचना स्वत.पूर्ण अथवा स्वतःसिद्ध होकर कवि की चरम सिद्धि या प्राप्य बन गई तो उसमे चारुत्व अथवा शोभा की प्राप्ति, उसी प्रकार नही होगी जैसे अग्नि के अभाव मे उसकी निर्मिति का एक अश—अकेला परमाणु—दैदीप्यमान नही होता। आचार्य कुन्तक ने भी प्रबन्ध को महाकवियों का कीर्तिकन्द अर्थात् उनके यश का मूल आधार माना है—

प्रबन्धेषु कवीन्द्राणां कीर्त्तिकन्देषु किं पुनः।

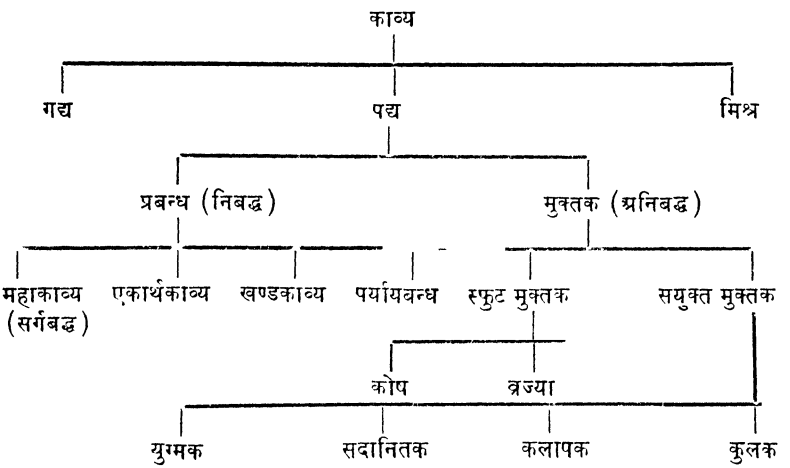
अभिनवगुप्त ने भी, विभावादि समस्त रसागो के सम्यक् वर्णन का अधिक अवकाश होने के कारण, प्रबन्ध को श्रेष्ठ माना है। मुक्तक मे इन समस्त रसावयवो की पूर्वपीठिका मन मे कल्पित करनी पडती है—इसके विपरीत प्रबन्ध मे इनका प्रत्यक्ष वर्णन सम्भव रहता है।

पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के आदि आचार्य अरस्तू ने भी दु खान्तकी को सर्वश्रेष्ठ काव्य-रूप मानकर प्रबन्ध की महत्ता स्वीकार कर ली, और हिन्दी के आलोचक-प्रवर आचार्य शुक्ल प्रबन्ध के पक्षपात के कारण, कभी श्रेष्ठतम मुक्तककार व गीति-कवि को प्रबन्धकार की उच्चता न प्रदान कर सके। इस प्रकार प्रबन्ध का महत्त्व प्राय. सर्व-स्वीकृत रहा।

रूप-विधान के अतिरिक्त सस्कृत काव्य-शास्त्र मे काव्य का विभाजन काव्य की आत्मा के आधार पर भी किया गया, परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे हमारा सम्बन्ध केवल काव्य-रूप से है, अतः हम उसका उल्लेख अप्रासगिक विस्तार-भय से नही कर रहे है। वन्ध के आधार पर सस्कृत-आचार्यों द्वारा जिन काव्य-रूपों का उल्लेख व विवेचन किया गया, वे इस प्रकार है—

---

१. भारतीय काव्य-शास्त्र की परम्परा : स० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ८४



उपर्युक्त काव्य-रूपो का उल्लेख रूप-विधा को दृष्टि मे रखते हुए किया गया है। इनके अतिरिक्त जिन काव्य-रूपों का उल्लेख अथवा विवेचन सस्कृत-आचार्यो ने किया है, या तो उनका अन्तर्भाव रूप-विधा की दृष्टि से इन्ही विधाओ मे किया जा सकता हे, अथवा उनका विवेचन किसी भिन्न दृष्टिकोण से प्रेरित होने के कारण, वे विवेच्य विषय की परिसीमा के बाहर है। गेय-काव्य का अन्तर्भाव हमने उपर्युक्त तालिका मे इस कारण नही किया कि उसका स्पष्ट उल्लेख अथवा विवेचन आचार्य भामह ने नही किया।

आधुनिक आचार्यो द्वारा काव्य-रूपों का विभाजन और विवेचन

आधुनिक काल मे काव्य के रूप-विधान पर स्वतन्त्र रचनाएँ बहुत अल्प सख्या मे हुई है। अधिकांश कृतियो मे काव्य के अन्य अगो का विवेचन करते समय काव्य-रूपो का भी सक्षिप्त विवरण दे दिया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल के विद्वानो ने प्राय परम्परा-गत काव्य-रूपो का विवेचन सस्कृत काव्य-शास्त्र के आधार पर और नवीन काव्य-रूपो का विवेचन अँगरेजी साहित्य के आधार पर किया है। हमारे कवियो ने परम्परागत और नवीन काव्य-रूपो का ग्रहण कहाँ तक और किस रूप मे किया है, इस ओर उन्होने बहुत कम इगित किया है। उदाहरण देते हुए कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचनाओ का उल्लेख, उनकी रूप-विधा की परीक्षा और कही-कही प्रयोग-सम्बन्धी नवीनता का निर्देश इन विद्वानो ने कर दिया है, परन्तु समग्र रूप मे इनके काव्यरूप-विवेचन मे कोई उल्लेखनीय मौलिकता नही, इसके अति-रिक्त इनका क्षेत्र प्राय लक्षण-निरूपण तक ही सीमित रहा है। आधुनिक काव्य मे प्रयुक्त रूप-विधाओ की व्यावहारिक समीक्षा इन ग्रन्थो मे नही की गई। सैद्धान्तिक दृष्टि से इनका विवेचन निश्चय ही गम्भीर है। इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—बाबू श्यामसुन्दरदास का 'साहित्या-लोचन', प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का 'वाङ्मयविमर्श' और बाबू गुलाबराय का 'काव्य के रूप'। इसके अतिरिक्त पं० रामदहिन मिश्र के 'काव्यदर्पण' मे अत्यन्त सक्षिप्त विवेचन तथा आचार्य

रामचन्द्र शुक्ल व डा० श्रीकृष्णलाल के इतिहास-ग्रन्थो मे भी इस विषय से सम्बन्धित सकेत उपलब्ध है।

बा० श्यामसुन्दरदास ने काव्य-विभाजन बन्ध के आधार पर न करके पश्चिमी दृष्टि-कोण से प्रभावित होकर वर्ण्य विषय और दृष्टिकोण के आधार पर किया। उन्होने काव्य-विभाजन दो भागो मे किया—

"कविता को हम दो मुख्य भागो मे विभक्त कर सकते है—एक तो जिसमे कवि अपनी अन्तरात्मा मे प्रवेश करके अपने अनुभवो और भावनाओ से प्रेरित होता तथा अपने प्रतिपाद्य विषय को ढूंढ निकालता है, दूसरा वह जिसमे वह अपनी अन्तरात्मा से बाहर जाकर सासारिक कृत्यो और रागो मे पैठता है और जो कुछ ढूंढ निकालता है उसका वर्णन करता है।"[1]

इस प्रकार बा० श्यामसुन्दरदास ने पश्चिमी ढग पर कविता के—विषय-प्रधान और आत्माभिव्यजक—दो भेद स्वीकार किये है। पहले मे उन्होने प्रबन्ध का और दूसरे मे मुक्तक का अन्तर्भाव कर लिया है।

शुक्लजी ने, विदेशी साहित्य के प्रभाव से गृहीत काव्य-रूपो की चर्चा तो की, परन्तु उन्होने दृष्टिकोण-भेद से किये गए विभाजन 'सब्जेक्टिव' और 'ऑब्जेक्टिव' को उचित नही माना—

"यहाँ पर यह सूचित कर देना आवश्यक है कि स्वानुभूति-निरूपक और बाह्यार्थ-निरूपक यह भेद स्थूल दृष्टि से ही किया हुआ है।"[2]

शुक्लजी ने रूप के आधार पर कोई स्वतन्त्र काव्य-विभाजन तो प्रस्तुत नही किया, परन्तु उनके इतिहास-ग्रन्थ मे सभी प्रचलित काव्य-रूपो के सकेत उपलब्ध है। उन्होने वीर-गाथा-काल की साहित्यिक विशेषताओ का उल्लेख करते हुए कहा है—

"इस वीरगाथा को हम दो रूपो मे पाते है—मुक्तक-रूप मे और प्रबन्ध-रूप मे भी। फुटकल रचनाओ का विचार छोडकर यहाँ वीरगाथात्मक प्रबन्ध-काव्यो का ही उल्लेख किया जायगा।

ये वीरगाथाएं दो रूपो मे मिलती है—"प्रबन्ध-काव्य के साहित्यिक रूप मे और वीर-गीतो (Ballads) के रूप मे।"[3] इस प्रकार शुक्लजी ने प्रबन्धकाव्य, मुक्तक काव्य और वीर-गीतो का उल्लेख किया। गीत को उन्होने मुक्तक का एक अग ही माना—

"कृष्णोपासी कवियो ने मुक्तक के एक विशेष अग गीत-काव्य की ही पूर्ति की, पर राम-चरित को लेकर अच्छे-अच्छे प्रबन्धकाव्य रचे गए।"[4]

कथात्मक प्रबन्धो से भिन्न, शुक्लजी ने वर्णनात्मक प्रबन्धो का भी वर्णन किया—

"कथात्मक प्रबन्धो से भिन्न एक और प्रकार की रचना भी बहुत देखने मे आती है जिसे हम वर्णनात्मक प्रबन्ध कह सकते है। दानलीला, मानलीला'''इसी प्रकार की रचनाएँ है।

१. साहित्यालोचन : श्यामसुन्दरदास; पृ० ६५, ६३
२. गोस्वामी तुलसीदास : रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ७७
३. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३८-३९
४. ,, ,, ,, पृ० १८२

बडे-बडे प्रबन्ध-काव्यो के भीतर इस प्रकार के वर्णनात्मक प्रसग रहा करते है। "इनमे बड़े विस्तार के साथ वस्तुवर्णन चलता है "।"[1]

शुक्लजी ने रीतिकाल में स्फुट मुक्तको की रचना-पद्धति के लिए अनेक स्थलो पर 'फुटकल कविता' तथा 'फुटकल पद्य' शब्द का प्रयोग किया है।

आधुनिक काल के साहित्य का विवेचन करते हुए उन्होने नवीन काव्य-रूपो की रचना-विधि का भी निर्देश किया। पद्यात्मक निबन्धो के विषय मे उन्होने कहा—

"विषयो की अनेकरूपता के साथ-साथ उनके विधान का ढग भी बदल चला। प्राचीन धारा मे 'मुक्तक' और 'प्रबन्ध' की जो प्रणाली चली आती थी, उससे कुछ भिन्न प्रणाली का भी अनुसरण करना पडा। ' 'अनेक प्रकार के सामान्य विषयो पर—जैसे बुढापा, विधिविडम्बना, जगत-सचाई-सार, गोरक्षा, माता का स्नेह, सपूत, कपूत—कुछ दूर तक चलती हुई विचारो और भावो की मिश्रित धारा के रूप मे छोटे-छोटे प्रबन्धो या निबन्धो की चाल न थी।.....

पर नवीन धारा के आरम्भ मे छोटे-छोटे पद्यात्मक निबन्धो की परम्परा भी चली जो प्रथम उत्थान काल के भीतर तो बहुत कुछ भावप्रधान रही, पर आगे चलकर शुष्क और इतिवृत्तात्मक (Matter of fact) होने लगी।"[2]

आ० शुक्ल ने मुक्तक के क्षेत्र मे फारसी और उर्दू के छन्द-प्रयोग, 'बेतुके पद्य' रचना तथा गजल और 'लावनीबाजी' शैलियो के प्रचलन का भी सकेत किया है। प० श्रीधर पाठक के द्वारा खड़ीबोली-पद्य के लिए सुन्दर लय और चढाव-उतार के कई नये ढाँचो के आविष्कार का उल्लेख भी आचार्य शुक्ल ने किया।

प्रबन्ध के चिरपरिचित खण्डकाव्य और अपेक्षाकृत लघु रूप—कथा-प्रसग का भी उन्होने वर्णन किया—

"त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता इत्यादि के अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसग पद्यबद्ध हुए, जिनके बीच-बीच मे जन्मभूमि-प्रेम, स्वजाति-गौरव, आत्म-सम्मान की व्यजना करने वाले जोशीले भाषण रखे गए। जीवन की गूढ, मार्मिक या रमणीय परिस्थितियाँ झलकाने के लिए नूतन कथा-प्रसगो की कल्पना या उद्भावना की प्रवृत्ति नही दिखाई पड़ी।[3]

" 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' नामक इनके तीनो खडकाव्यो में इनकी कल्पना ऐसे मर्मपथ पर चली है जिस पर मनुष्य-मात्र का हृदय स्वभावत. आया है।"[4]

आधुनिक काल के विभिन्न कवियो की रचना-शैली के प्रसग मे शुक्लजी ने मुक्तक की प्राचीन शैलियो, जैसे—पद, कवित्त-सवैया, दोहा आदि, उर्दू के प्रभाव से गृहीत—गजल, बहर और लावनी व खयाल आदि, तथा सस्कृत के वर्णवृत्तों की शैली, अतुकान्त व मुक्त-छन्द रचना की पद्धति का उल्लेख तो किया ही है, प्रगीत के लिए उन्होने 'प्रगीत-मुक्तक' शब्द का प्रयोग

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३८६-८७
२. वही, पृष्ठ ७१०
३. वही, पृष्ठ ७५१
४. वही, पृ० ७५८

किया और इस शैली की विशेषताओ की ओर भी सकेत किया—

"कला-कला की पुकार के कारण योरुप मे प्रगीत-मुक्तको (Lyrics) का ही अधिक चलन देखकर यहाँ भी उसी का जमाना यह बताकर कहा जाने लगा कि अब ऐसी लम्बी कविताएँ पढने की किसी को फुरसत कहाँ जिनमे कुछ इतिवृत्त भी मिला रहता हो। अब तो विशुद्ध काव्य की सामग्री जुटाकर सामने रख देनी चाहिए जो छोटे-छोटे प्रगीत-मुक्तको मे ही सम्भव है। इस प्रकार काव्य मे जीवन की अनेक परिस्थितियो की ओर ले जाने वाले प्रसगो या आख्यानो की उद्भावना बन्द-सी हो गई।"[1]

प्रगीत-मुक्तक के अतिरिक्त गीत का उल्लेख भी आचार्य शुक्ल ने किया।

आचार्य शुक्ल-कृत हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे इस प्रकार उनके समय तक प्रचलित सभी काव्य-रूपो का सकेत और कही-कही विशेषताओ की व्यजना मिलती है। प्रबन्ध मे महाकाव्य, खण्डकाव्य, वर्णनात्मक प्रबन्ध, कथा-प्रसग और पद्यात्मक निबन्ध, तथा मुक्तक मे छन्द के आधार पर कवित्त-सवैया और दोहा-शैली, अतुकान्त और मुक्त छन्द, उर्दू के बहर, गजल, लावनी, झूलना तथा अन्य प्रकारो मे फुटकल पद्य, प्रगीत-मुक्तक आदि विधाओ का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने किया है। दृष्टिकोण ऐतिहासिक होने के कारण उन्होने स्वभावतः इन विधाओ का विस्तारपूर्वक रूप-विवेचन तो नही किया, परन्तु रूप-सम्बन्धी विशेषताएँ व्यजित अवश्य हो जाती है।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी काव्य का विभाजन शैली के आधार पर कर, पद्य का विभाजन, प्रबन्ध और निर्बन्ध, दो भेदो मे किया। प्रबन्ध के अन्तर्गत उन्होने महाकाव्य, एकार्थ-काव्य और खण्ड-काव्य को; तथा निर्बन्ध के अन्तर्गत मुक्तक, गीत एव प्रगीत को रखा है।[2]

प० रामदहिन मिश्र ने काव्य-विभाजन कुछ भिन्न ढग पर किया है। उन्होने भी काव्य का विभाजन सस्कृत काव्य-शास्त्र के अनुकरण पर क्रमश. श्रव्य और दृश्य मे, तथा बंध के आधार पर श्रव्य का विभाजन प्रबन्ध, निबन्ध और निर्बन्ध तीन भेदो मे किया है। प्रबन्ध के उन्होने महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य पुन तीन भेद किये।[3] उनके इस विभाजन मे आशिक नवीनता है। प्रबन्ध का भेद 'काव्य' शब्दभेद से सस्कृत के आचार्य विश्वनाथ का एकार्थ-काव्य ही है, कोई नवीन काव्य-रूप नही। परन्तु उन्होने लघु प्रबन्ध-काव्यो का पृथक् विभाजन करके इन्हे निबन्ध सज्ञा प्रदान की, और इस निबन्ध-काव्य के अन्तर्गत खण्डकाव्य और मुक्तक की मध्यवर्त्तिनी विधाओ का समावेश कर लिया। आचार्य शुक्ल यद्यपि इस ओर अपने इतिहास मे सकेत कर चुके थे, पर काव्य-रूपो के विवेचन मे इस प्रकार का निश्चित वर्ग-विभाजन उन्होने नहीं किया। निबन्ध के अन्तर्गत प० रामदहिन मिश्र ने उस प्रकार की रचनाओ का अन्तर्भाव

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७८९

२. वाङ्मयविमर्श : प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३३

३. [क] निबन्ध के भेद से श्रव्य काव्य के तीन भेद होते है—१. प्रबन्ध-काव्य, २. निबन्ध-काव्य और ३. निर्बन्ध काव्य। —काव्यदर्पण (पण्डित रामदहिन मिश्र), पृ० ३२६

[ख] प्रबन्ध-काव्य के तीन भेद होते है—(क) महाकाव्य, (ख) काव्य और (ग) खडकाव्य।

—काव्यदर्पण (रामदहिन मिश्र), पृ० ३२७

किया है जिनको आचार्य शुक्ल ने वर्णनात्मक प्रबन्ध व कथा-प्रसग कहा था।[1] मुक्तक के उन्होने दो भेद माने—मुक्तक और गीत; और गीत के पुन. दो प्रकार—ग्राम्य और नागर।[2] गीति-काव्य का गणना काव्य-भेदो में न करके पंडित रामदहिन मिश्र ने उसका स्वतन्त्र विवेचन किया है। वस्तुत गीत—प्रगीत अथवा गीति-काव्य का एक प्रकार है; परन्तु मुक्तक के भेदो मे मिश्रजी ने प्रगीत की गणना न करके गीत का उल्लेख किया और गीति-काव्य का पृथक् विवेचन कर उसके प्रकारो का वर्णन किया। उन्होने गीति के प्रकारो मे व्यग्य-गीति, पत्र-गीति, शोक-गीति, भावना-गीति, आध्यात्मिक गीति आदि को मुख्य माना।[3]

डा० श्रीकृष्णलाल ने भी आधुनिक कविता के 'रूप और शैली' का विवेचन बन्ध के आधार पर वर्ग-विभाजन करके किया। उन्होने काव्य को रूप के आधार पर तीन वर्गो मे बाँटा —"भारतीय साहित्य मे साधारणतया तीन प्रकार के काव्य-रूपो का प्रचार है—(१) प्रबन्ध काव्य, जिसके अन्तर्गत महाकाव्य और खण्डकाव्य की गणना है, (२) गीतिकाव्य और (३) मुक्तक काव्य।"[4] सर्वप्रथम मुक्तक की शैलियो का विवेचन करने के उपरान्त उन्होने प्रबन्ध के अन्तर्गत परम्परागत विधा खण्डकाव्य तथा अपेक्षाकृत नवीन काव्य-विधा आख्यानक गीतियो का विवेचन किया। गीति-काव्य की शैलियो मे उन्होने व्यग्य-गीति, पत्र-गीति, शोक-गीति, आध्यात्मिक गीति और सबोध-गीति की विशेषताओ का वर्णन किया। इन परम्परागत काव्य-रूपो के अतिरिक्त 'अन्य काव्य-रूप' शीर्षक देकर डा० श्रीकृष्णलाल ने 'नाटक-काव्य' (Dramatic poetry) और 'गीत' (Songs) साहित्य का परिचय दिया। 'गीत' तो गीति-काव्य का ही गेयता-विशिष्ट प्रकार है और 'नाटक-काव्य' प्रबन्ध-रूपो के अन्तर्गत आ जाता है; अत: प्रकार नही। प्रयोग और शैली नवीन होने के कारण इनका विवेचन पृथक् शीर्षक देकर किया गया है। इस प्रकार उन्होने आधुनिक काव्य मे दो नवीन काव्य-रूपो का परिचय दिया—'आख्यानक गीति' और 'नाटक-काव्य'।

बाबू गुलाबराय ने भी काव्य-भेदो के विभाजन और विवेचन का मूल आधार भारतीय समीक्षा-पद्धति को ही बनाया है। उन्होने भी श्रव्य काव्य के दो भेद—प्रबन्ध और मुक्तक, किये तथा मुक्तक के 'स्फुट' और 'सयुक्त मुक्तक' दोनो रूपो की चर्चा की। प्रबन्ध को उन्होने महा-काव्य और खण्डकाव्य दो भेदो मे विभाजित किया। गुलाबरायजी के विवेचन मे एक विशेषता है। उन्होने इन काव्य-रूपो के विषय मे पाश्चात्य धारणाओ का भी उल्लेख किया है और साथ ही काव्य-रूपो के प्राचीन एव वर्तमान आदर्शो पर सक्षेप मे तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला है। मुक्तक काव्य के पाठ्य और गेय दो रूपों मे दृष्टिकोण-भेद की चर्चा करते हुए उन्होंने पाठ्य

१. निबन्ध साधारणता का द्योतक है। कथात्मक व वर्णनात्मक जो कविता कई पद्यो में लिखी जाती है, वह निबन्धकाव्य कहलाती है। वह अपने कुछ पद्यो के भीतर ही सम्पूर्ण होती है।
—काव्यदर्पण (रामदहिन मिश्र), पृ० ३२७

२. इसके दो भेद होते है—(क) मुक्तक और (ख) गीत।··· ··गेय होने के कारण इन्हें गीत कहते है। ये दो प्रकार के होते है—(क) ग्राम्य और (ख) नागर। —काव्यदर्पण (रामदहिन मिश्र), पृ० ३२८

३. गीति-काव्य विभिन्न प्रकार के होते है। उनमें व्यंग्य गीति, पत्र-गीति, शोक-गीति, भावना-गीति, आध्यात्मिक गीति आदि मुख्य है। —काव्यदर्पण (रामदहिन मिश्र), पृ० ३३४

४. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास : डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० ९२

और गेय का—विषयप्रधान और विषयीप्रधान दृष्टिकोण का अन्तर स्वीकार किया और प्रगीत व गीत को अभिन्न माना है।[1] इसी अभेद स्थापना के कारण उन्होंने 'गीत-काव्य के अँगरेजी रूप और उनके अनुकरण' शीर्षक में प्रगीत के भेदों की ही गणना की है—"अँगरेजी गीत-काव्य मे प्राय निम्नलिखित प्रकार प्रचलित है—(१) सॉनेट (Sonnet) अर्थात् चतुर्दशपदी, (२) ओड (Ode) अर्थात् सबोधन-गीत, (३) एलिजी (Elegy) अर्थात् शोक-गीत, (४) सेटायर (Satire) अर्थात् व्यग-गीत, (५) रिफ्लेक्टिव (Reflective) विचारात्मक और (६) उपदेशात्मक (Didactive)।[2] सॉनेट के प्रयोग मे भारतीय कवियो द्वारा प्रस्तुत प्रयोग-सम्बन्धी नवीनताओ पर भी उन्होंने प्रकाश डाला।

डा० शकुन्तला दुबे ने काव्य के समस्त प्राचीन और अर्वाचीन रूपों का विभाजन तीन वर्गो मे किया—प्रबन्ध, अबन्ध और बन्धाबन्ध।[3] प्रबन्ध और अबन्ध भेद तो प्राचीन आचार्यों के प्रबन्ध और मुक्तक ही है, परन्तु उन्होंने जिस तीसरे नवीन काव्य-वर्ग की उद्भावना की है, उसके सम्बन्ध मे उनकी धारणा है कि "ऐसे काव्य-रूप मे प्रबन्ध और अबन्ध दोनो ही वर्गों के अन्यान्य भेदो की कुछ-न-कुछ विशेषताएँ अवश्य मिलती है।"[4] इसी आधार पर उन्होने 'बन्धाबन्ध' वर्ग के अन्तर्गत आने वाले काव्यो को 'मिश्र काव्य' भी कहा है। हम इस वर्ग को अधिक-से-अधिक मिश्र काव्य कहने के पक्ष मे तो है, परन्तु सर्वत्र इन कृतियो मे 'प्रबन्ध' और 'अबन्ध' दोनो के तत्त्वो का मिश्रण होता हो, ऐसा निश्चित नही है। कभी-कभी इनमे दो प्रबन्ध-शैलियों का भी योग दृष्टिगत होता है। उदाहरण के लिए, पद्यबद्ध नाटक मे ही प्रबन्ध-काव्य के आख्यान-तत्त्व और नाटक के कथनोपकथन, संवाद आदि तत्त्व मिलते है। कही गीति और नाट्यशैलियो का योग होता है। इसी प्रकार पद्यात्मक निबन्धो मे प्रबन्ध-काव्य के प्रबन्धत्व और निबन्ध-शैली की विचारात्मकता का योग हो जाता है, दोनो ही प्रबन्ध-विधाएँ है। ऐसे प्रयोग मे कवि एक विधा का प्रयोग मुख्य या अगी-रूप मे और दूसरी शैली का प्रयोग अंग-रूप मे करता है, अत काव्य-रूप का निर्णय बन्ध की दृष्टि से समस्त काव्य-रूपो मे दो ही प्रकार सम्भव है—प्रबन्ध या निबद्ध तथा मुक्तक या अनिबद्ध। इनमे अन्तर का आधार है—रचित पद्यों की सापेक्ष या निरपेक्ष स्थिति। यदि किसी काव्य-विशेष मे विभिन्न पद्यो व प्रसगो की रचना परस्पर-सापेक्ष है एव उनकी अन्विति के लिए पूर्वापर क्रम व तारतम्य अनिवार्य है, तो वह रचना प्रबन्ध के अन्तर्गत तथा निरपेक्ष स्वतन्त्र पद्य-रचना मुक्तक या अनिबद्ध के अन्तर्गत आयेगी। कही-कही कुछ पद्य किसी भाव या विचार-क्रम से परस्पर सम्बद्ध होते है, पर वे किसी क्षणिक या खण्डानुभूति के अभिव्यजक होते है—ऐसी कविताएँ सयुक्त मुक्तक कही जा सकती है। इन दो प्रमुख प्रकारो मे रूप, विस्तार और शैली के अन्तर से अनेक रूप सम्भव है, परन्तु उनका प्रकार प्रबन्ध अथवा मुक्तक मे से एक होगा। किसी कृति मे प्रबन्ध और मुक्तक का मिश्रण अगागी-रूप से तो स्वीकार किया जा सकता है,

१ काव्य के रूप : बा० गुलाबराय, पृ० ११९-१२०
२. वही, पृ० १२४
३. काव्य-रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास : डा० शकुन्तला दुबे, पृ० ३७
४. वही, पृ० ४०

परन्तु कोई रचना अशत: प्रबन्ध व अशत: अबन्ध हो, ऐसा सम्भव नही है। इन दोनों प्रकारों मे अन्तर मूलभूत विधा का है, अत: डा० दुबे ने 'बन्धाबन्ध' वर्ग में जिन काव्य-रूपों का उल्लेख किया है, उनमें से सभी का अन्तर्भाव हमने उनकी प्रधान विधा के आधार पर 'प्रबन्ध' या 'मुक्तक' मे कर लिया है। इनमे से अधिकाश प्रबन्ध और मुक्तक के प्राचीन व परम्परागत भेदों से भिन्न नवीन विधाएँ है, अत. उनके लिए नवीन वर्ग बनाकर उनका विवेचन प्रस्तुत किया गया है, और यदि यह नवीनता आशिक है तो उसकी ओर परम्परागत रूप का विवेचन करते हुए इगित कर दिया गया है। इस प्रकार 'प्रबन्ध' और 'मुक्तक' के अन्तर्गत कुछ अन्यान्य नवीन वर्गों की उद्भावना तो की गई है, परन्तु बन्ध के आधार पर इनसे भिन्न कोई अन्य वर्ग मानने के पक्ष मे हम नही है।

पाश्चात्य विद्वानों के मत

भारतीय आचार्यों की भाँति रूप-विधान के आधार पर काव्य का विभाजन पाश्चात्य विद्वानो ने नही किया। पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के आदि आचार्य अरस्तू ने अपने समय मे प्रचलित काव्यरूपो का परिचय दिया, परन्तु काव्य-रूप के आधार पर कोई वर्ग-भेद प्रस्तुत नही किया। काव्य-प्रकारो का स्वतन्त्र विभाजन तो उन्होने नही किया, परन्तु काव्य-मात्र को अनुकरण का प्रकार मानते हुए उन्होने विभिन्न काव्य-रूपों का विवेचन किया है। इस प्रसग में उन्होंने महाकाव्य, त्रासदी, कामदी और रौद्रस्तोत्र का उल्लेख किया।[१] उपर्युक्त काव्य-रूपों मे त्रासदी और रौद्रस्तोत्र कविता के व त्रासदी व कामदी नाटक के भेद है। आगे चलकर महाकाव्य के रूप-विधान-सम्बन्धी सकेत तो उनके काव्य-शास्त्र मे विस्तारपूर्वक मिलते है, परन्तु रौद्रस्तोत्र के विषय मे हम इतना अनुमान-भर कर पाते है कि यह काव्य विशिष्ट धार्मिक अवसरो से सम्बद्ध गेयकाव्य, अत मुक्तक का प्रकार रहा होगा। परवर्ती विद्वानों ने भी बन्ध के आधार पर काव्य-विभाजन नही किया। काव्य के रूप-विधान के सम्बन्ध मे पाश्चात्य विद्वानो ने सस्कृत के आचार्यो की भाँति कठिन नियम-निर्धारण तथा लक्षण-निरूपण की पद्धति को नही अपनाया। विशेष काव्य-ग्रथो का मूल्याकन करते हुए उनकी रूप-सम्बन्धी विशेषताओ का उल्लेख परिचयात्मक ढग पर किया गया है। काव्यरूपो का पारस्परिक अन्तर वे रूप की अपेक्षा मूल दृष्टिकोण का मानते है। इस प्रकार, जैसा पहले सकेत किया जा चुका है, काव्य का विभाजन दो प्रमुख भेदो मे किया गया—(१) आत्माभिव्यक्ति-प्रधान साहित्य—जिसके अन्तर्गत प्रगीत, निबन्ध तथा आलोचनात्मक साहित्य का समावेश किया गया, तथा (२) बाह्यार्थ-निरूपक साहित्य, जिसमे महाकाव्य, वीरगीत (Ballad) इतिहास व जीवनी, प्रेमाख्यानक साहित्य—सभी का अन्तर्भाव किया गया। इसके अतिरिक्त एक तीसरे वर्ग का उल्लेख भी विद्वानों ने किया—वर्णन-प्रधान साहित्य, जिनके अन्तर्गत यात्राओ के विवरण, वर्णनात्मक निबन्ध व कविता

१. Epic poetry, tragedy, comedy, dithyrambics, as also for the most part, ·····are, in the most general view of them imitations, differing, however from each other in three respects, according to the different means, the different objects or the different manner of their imitation.

Poetics : Aristotle; Edited by Rev.T.A. Moxin, Page 5, Edition—1943.

को स्थान दिया।[1] महाकाव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, आख्यानक कविताओं आदि की शैली को इन विद्वानों ने समाख्यानक (Narrative) व प्रगीतादि की शैली को प्रगीतात्मक (Lyrical) स्वीकार किया। महाकाव्य, प्रगीत व अन्य काव्य-रूपों का वर्णन करते हुए उनका उपभेदों मे विभाजन भी किया गया, परन्तु उस विभाजन का आधार भी काव्य-रूप न होकर विषय अथवा शैली आदि है, इसलिए हम उसका विस्तारपूर्वक उल्लेख इस प्रसंग मे नही कर रहे है। प्रगीत के कुछ भेदो मे आकारगत विशेषता भी है—यथा शोकगीत (Elegy) और सॉनेट (Sonnet) मे, परन्तु सभी काव्य-रूपो मे ऐसा नही है। काव्य-रूपो के क्षेत्र में परिवर्तनशील प्रवृत्तियों के प्रति पाश्चात्य विद्वान् सजग रह कर यत्र-तत्र समीक्षा-ग्रन्थों मे इन नवीनताओ की ओर सकेत करते रहे है। आधुनिक साहित्य मे परम्परागत काव्य-रूपो के परस्पर मिश्रण—विशेषकर नाट्य और कविता के तत्त्वों के मिश्रण से उद्भूत नवीन काव्य-रूपो का परिचय विद्वानो ने निरन्तर अपने समीक्षा-ग्रन्थों मे दिया है।[2] परन्तु उन्होने लक्षण निर्धारण या नियम निश्चित करने का प्रयास नही किया। काव्य के रूप-विधान के आधार पर विभाजन, और काव्य-रूपों का सैद्धान्तिक विवेचन पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे व्यवस्थित और नियमित रूप से नही मिलता।[3] अन्य विशेषताओ के वर्णन के बीच जो रूप-विषयक सकेत बिखरे

१. We have, first, the literature of self expression, which includes the different kinds of lyric poetry, the poetry of meditation and argument, and the elegy, the essay and treatise where these are written from the personal point of view, and the literature of artistic and literary criticism. We have, secondly, the literature in which the writer, instead of going down into himself goes out of himself into the world of external human life and activity, and this includes history and biography, the ballad and the epic, the romance in verse and prose, the story in verse and prose, the novel and the drama and, thirdly, we have the literature of description, not in itself a large or important division, since description in literature is ordinarily associated with, and for the most part subordinated to, the interests of self expression or narrative, but comprising in the book of travel, and the descriptive essay and poem, some fairly distinct minor forms of literary art.

An Introduction to the Study of Literature—W.H Hudson – Page 13.

२. It might often be said that modern literature takes a pleasure in mixing the kinds We have 'dramatic lyrics' like Browning's and lyrical dramas like the 'Pronethus Unbound' as a prose epic To a Greek that would seem a contradiction in terms. Is the "Dynasts" an epic or a drama or both ? Examples might be multiplied

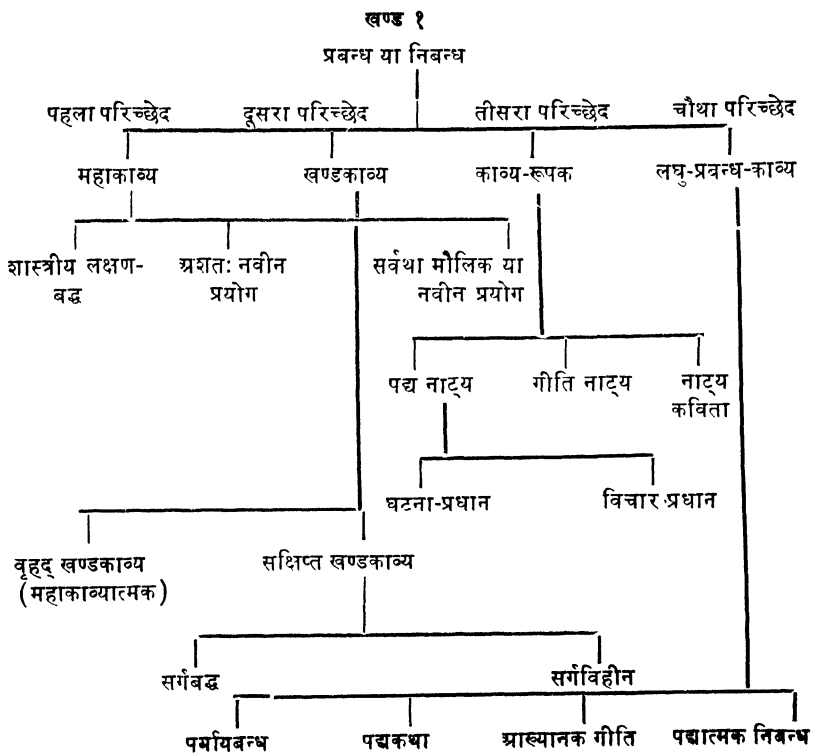
The classical background of English literature .K Thompson ..page 33.

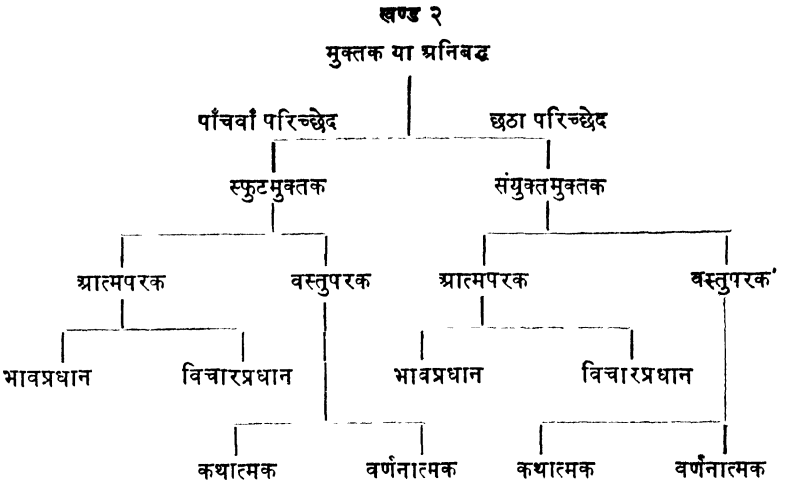
३. The use of classification in English Poetry is not in the recognition of different species, the labelling of poems as narrative, lyric and so forth .....THE THREE kinds are there, (Epic, Lyric & dramatic) but they are not severed from one another !

Forms & Style in poetry...W.P Ker, Page 110.

है, उन्हे जिज्ञासु पाठक को खोज कर एकत्रित करना पड़ता है। हम यथाप्रसग काव्य-रूपो का विवेचन करते समय तत्सम्बन्धी पाश्चात्य मान्यताओं का उल्लेख करेगे। जिन काव्य-रूपों का प्रत्यक्ष ग्रहण पाश्चात्य साहित्य से किया गया है—यथा सॉनेट, ओड आदि—उनके विषय में तो पाश्चात्य मत को प्रमाण मानना उचित ही है, परन्तु जिन काव्य-रूपो के मूल भारतीय परन्तु वर्तमान रूप समानान्तर पाश्चात्य काव्य-रूपो से अत्यधिक प्रभावित है, जैसे—गीतिनाट्य, प्रगीत के विभिन्न प्रकार आदि, उनके विषय मे भी पाश्चात्य विचारधारा और समानताओ का उल्लेख प्रसग आने पर किया जायगा। पाश्चात्य साहित्य मे काव्य के जिन रूपो का सर्वाधिक विवेचन किया गया, उनमे प्रमुख है—महाकाव्य और प्रगीत तथा उनके विभिन्न प्रकार। परन्तु, जैसा हम पहले कह चुके है, रूप-विधान की दृष्टि से किसी प्रकार के वर्ग-विभाजन तथा नियमित व व्यवस्थित रूप से लक्षण-निरूपण का पाश्चात्य साहित्य मे अभाव है। जो विभाजन प्राप्त है उनका आधार रूप या बन्ध नही; अतः विवेच्य काव्य-रूपो के सम्बन्ध मे उपलब्ध मान्यताओ का उल्लेख हम तत्सम्बन्धित अध्यायो मे करेगे।

जैसा पहले निवेदन किया जा चुका है, हमने समस्त काव्य-रूपों का 'प्रबन्ध' व 'मुक्तक' शीर्षको के अन्तर्गत उपविभाजन निम्नलिखित तालिका के अनुसार कर, दो खण्डो मे उनका विवेचन प्रस्तुत किया है—




खण्ड २
मुक्तक या अनिबद्ध
पाँचवाँ परिच्छेद
छठा परिच्छेद
स्फुटमुक्तक
संयुक्तमुक्तक
आत्मपरक
वस्तुपरक
आत्मपरक
वस्तुपरक
भावप्रधान
विचारप्रधान
भावप्रधान
विचारप्रधान
कथात्मक
वर्णनात्मक
कथात्मक
वर्णनात्मक

: २ :

काव्य-रूपों की ऐतिहासिक रूपरेखा

आधुनिक काव्य की रूप-विधाओ का अध्ययन करने से पूर्व उस साहित्य का सिहावलोकन कर लेना भी समीचीन होगा जो विरासत के रूप मे इस युग को परम्परा से प्राप्त हुआ है। हिन्दी भाषा और साहित्य का सम्बन्ध हम सदा से सस्कृत तथा उससे विकसित विविध भारतीय भाषाओं से जोड़ते आये है, परन्तु काव्य की रूप-विधाओ के प्रसग मे, और विशेषकर आधुनिक काल मे, प्रसंग को एक बार पुन· सस्कृत-साहित्य तक लौटा ले जाना निरर्थक विस्तार होगा। इस युग के साहित्यकारो ने हिन्दी के मध्ययुग व प्राचीनकाल के साहित्य को एक बार ही लाँघकर सीधे सस्कृत, प्राकृत आदि से काव्य-रूपो का ग्रहण किया होगा, ऐसा अनुमान करना निराधार और दुरूह कल्पना का ही विषय हो सकता है। इन हिन्दी-पूर्व भाषाओ के साहित्य से हिन्दी के वर्त्तमान साहित्य का सम्बन्ध स्थापित करने वाली दीर्घ परम्परा की कडियाँ पर्याप्त स्पष्ट और सुव्यवस्थित है, अतः विवेच्य युग मे प्रयुक्त रूप-विधाओ की परम्परा को समझने के लिए इस युग से पूर्व हिन्दी-साहित्य के काव्य-रूपो का अध्ययन ही पर्याप्त होगा।

कोई भी साहित्य किसी क्षेत्र-विशेष मे परम्परा से समूल उच्छिन्न नहीं हो सकता, अतः परम्परा-प्राप्त अंश को समझने के लिए परम्परा का ज्ञान आवश्यक है। इसके अतिरिक्त साहित्य मे उद्भूत नवीन सरणियो को समझने मे, परम्परा से अनभिज्ञता की स्थिति मे, न्याय नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त दोनों कारणो को दृष्टि मे रखते हुए अत्यन्त सक्षेप मे १९०० ई० से पूर्व काव्य-रूपो की परम्परा का परिचय देने का प्रयत्न किया जायेगा।

आधुनिक साहित्य मे विषयो की अनेकरूपता के साथ रूप-विधाओ का जो वैविध्य उपलब्ध है, उसके लिए परम्परा की अपेक्षा सामाजिक चेतना, राजनीतिक परिस्थितियाँ, सास्कृतिक संसर्ग और इन सबके प्रभाव से निर्मित साहित्यकारो का व्यक्तित्व उत्तरदायी है; परन्तु मूल विषय की विवेचना करते हुए यह सकेत करना अनिवार्य होगा कि हमारे आधुनिक कवियो ने विभिन्न प्रयोगो मे कितना परम्परा से अपनाया, किन नवीन प्रयोगों के लिए वे विदेशी संस्कृति और साहित्य के प्रति उत्तरदायी है, तथा कितने अश का श्रेय उनकी नवोन्मेषिनी प्रतिभा को दिया जा सकता है, अतः इस प्रसंग में परम्परा-ज्ञान का महत्त्व स्वत·सिद्ध है।

काव्य-रूपों का सैद्धान्तिक दृष्टि से विवेचन करते हुए हम संस्कृत के विद्वानों, आधुनिक काल के मनीषियों और पश्चिम के विद्वानो के मतानुसार उपलब्ध महत्त्वपूर्ण काव्य-रूपो का उल्लेख पिछले पृष्ठो में कर चुके है। बन्ध के आधार पर काव्य के दो प्रमुख भेदों—प्रबन्ध व मुक्तक, मे से प्रत्येक के निम्नलिखित प्रकारो का उल्लेख पूर्व या पश्चिम अथवा दोनो के विद्वानो द्वारा किया गया—

प्रबन्ध—महाकाव्य, खण्डकाव्य, एकार्थकाव्य, अन्य लघु प्रबन्ध-काव्य जिसके अन्तर्गत प्रसग-कथा, पद्यात्मक निबन्ध, पर्यायबन्ध तथा आख्यानक-गीतियाँ आती है, तथा काव्य-रूपक।

मुक्तक—स्फुट मुक्तक, सयुक्त मुक्तक, प्रगीत, सम्बोधन गीति, शोक-गीति, पत्र-गीति, व्यग्य गीति, गीत (लोक-गीत, कला-गीत), सॉनेट, वीर-गीत आदि।

देखना होगा, उपर्युक्त काव्य-रूपो मे से कितने और किस रूप में विवेच्य युग से पूर्व हिन्दी-साहित्य मे प्राप्त है। प्रबन्ध को पूर्व और पश्चिम के विद्वानो ने एकमत से मुक्तक की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया है, अत. हम प्रबन्ध-रूपो से ही विषयारम्भ करेगे।

प्रबन्ध-काव्य

हिन्दी-साहित्य के अभ्युदय-काल मे उपलब्ध प्रबन्धो मे पाठक का परिचय अनेक प्रकार के काव्य-ग्रन्थो से होता है। बाह्य दृष्टि से इन काव्य-रूपो मे परस्पर अन्तर होने पर भी एक सामान्य तथ्य सब मे विद्यमान है—और वह है इनके रचयिताओ का धार्मिक दृष्टिकोण। जहाँ तक इन ग्रन्थो के काव्य-रूप का प्रश्न है, सस्कृत-प्राकृत मे चली आती चरित-काव्य लिखने की परम्परा को अपभ्रश और तदुपरान्त देशभाषा-काव्यो मे यथावत् अपना लिया गया। हिन्दी-साहित्य के आदि-काल मे पाये जाने वाले प्रबन्धो का बहुलाश चरित-काव्यो के रूप मे मिलता है। जिन प्रदेशो मे बाद मे अवधी और ब्रज का साहित्य लिखा गया, वहाँ के निवासी कवियों की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नही है। एक ओर राजस्थान मे रचित साहित्य, और दूसरी ओर सुदूरपूर्व विहार मे विद्यापति की रचनाएँ प्राप्त है। अत मध्य भाग मे विरचित काव्य-रूपो की इन्ही के आधार पर कल्पना की जा सकती है, अथवा हमे सस्कृत से चले आने वाले चरित-काव्य, कथा-आख्यायिका और चम्पू-रूप में लिखित रोमास (कीर्तिलता) तथा ऐतिहासिक काव्य, आदि का आधार ग्रहण करना होगा। हम इस प्रसग मे अनुपलब्ध काव्य-रूपों की कल्पना न करके, उपलब्ध सामग्री के आधार पर, विवेचन करेगे। प्रबन्ध-रूप मे प्राप्त हिन्दी के आरम्भिक चरित-काव्यो से पूर्व, अपभ्रश-परम्परा मे इस प्रकार की अनेक कृतियाँ उपलब्ध है—'नेमिनाथचरित', स्वयभू का 'पउमचरिउ', 'जसहरचरिउ', 'णयकुमारचरिउ', 'करकण्डु-चरिउ' आदि। इन काव्यों के रचयिता मुख्य रूप से जैन कवि ही रहे है और उनका उद्देश्य है धर्मोपदेश देना, परन्तु जैसा कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट किया है—"वस्तुत. लौकिक निजन्धरी कहानियो को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिराचरित प्रथा है। कभी-कभी ये कहानियाँ पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रो के साथ घुला दी जाती है। यह तो न जैनो की निजी विशेषता है, न सूफियों की। बौद्धो, ब्राह्मणों और जैनो के अनेक आचार्यों ने

नैतिक धार्मिक उपदेश देने के लिए लोक-कथानकों का आश्रय लिया था।"[1] साहित्य में इनका महत्त्व इनके काव्य-सौन्दर्य के साथ ही इस दृष्टि से भी है कि चरित-नायकों का गुणानुवाद करने की यही परम्परा 'पृथ्वीराज रासो', जायसी के 'पद्मावत' (धार्मिक सिद्धान्तों के वैशिष्ट्य के कारण नायिका-प्रधान है) और तुलसी के 'रामचरितमानस' मे अपनायी गई है। मध्ययुग के साहित्य की प्रधान प्रेरणा धर्म-साधना ही रही है।

चरित-काव्यो की इस परम्परा को राजस्थानी के काव्यो में भी ग्रहण किया गया और चरित-नायक के नाम के साथ—'रासो', 'विलास', 'रूपक' आदि शब्द जोडकर काव्य-रचना करना रूढ़ हो गया—'जग-विलास', 'भीम-विलास', 'राणा रासो', 'संगतसिंह रासो', 'राज-रूपक', 'गजसिंहरूपक'—आदि काव्य इसी प्रवृत्ति के द्योतक है, अतः रासो शब्द वास्तव मे चरित-काव्य का परिचायक है, वीरगाथा का नही (जैसा सन्देह शुक्लजी ने बीसलदेव रासो के विषय मे प्रकट किया था)। परन्तु आरम्भ मे रासो-नामधारी अनेक वीर-काव्यो की उपलब्धि के कारण इस प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न हुई थी—चरित-काव्यो के लिए चरित शब्द से भिन्न अन्य सज्ञाओ का प्रयोग अपभ्रश के चरित-काव्यो के लिए भी नवीन नही। 'भविसयत्त कहा' और विद्यापति की 'कीर्तिलता' इसके उदाहरण है। वास्तव मे चरित-काव्यो की कथा कहने की प्रणाली बाद तक प्रचलित रही। तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' को, और विद्यापति ने 'कीर्तिलता' को कथा भी स्वीकार किया है। कथा को गद्य मे लिखने का बन्धन सस्कृत-साहित्य तक ही सीमित रहा, अन्य भाषाओ मे लिखी जाने वाली रचनाएँ पद्य मे भी लिखी गई। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य के आदिकाल मे एक वर्ग प्रबन्ध-रूप मे प्राप्त उपर्युक्त चरित-काव्यो का है। जिनमे से आकार, विषय, विस्तार, शैली आदि की दृष्टि से कुछ महाकाव्य और कुछ खण्डकाव्यो के अन्तर्गत आ जायेगी। इन चरित-काव्यो की कतिपय विशेषताओ का परिपालन परवर्ती काव्यो मे भी हुआ, जिनकी ओर सक्षेप मे सकेत कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है।

महाकाव्य

कथानक—नायक का चयन इतिहास (पृथ्वीराज, हम्मीर, वीरसिंह, नेमिनाथ आदि) तथा पुराण (राम—नामान्तर से पउमचरिउ के नायक) से होने के कारण मूल कथानक का ग्रहण भी ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा तत्सम्बन्धित पूर्ववर्ती काव्य-ग्रन्थो से हुआ है। इस आधारभूत सामग्री की नीव पर कवियो ने अपनी प्रतिभा से काल्पनिक भवन-निर्माण किया। कल्पना का प्रयोग निश्चित रूप से दो दिशाओं मे हुआ—

(क) जहाँ लेखक का उद्देश्य धर्मोपदेश देना है, वहाँ कथा को धार्मिक रंग देने के लिए इतिहास के तथ्य के साथ धार्मिक प्रसगो की कल्पना की गई है। अधिकाश जैन धर्मानुयायी कवियो के प्रयास इसी कोटि के है। सूफी कवियो ने भी अपने कथानकों को धार्मिक सिद्धान्त के अनुकूल मोड देने का सचेष्ट प्रयत्न किया है। गोस्वामीजी के 'रामचरितमानस' मे इस प्रकार

---

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल—आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्; द्वितीय संस्करण; पृष्ठ ११

के अनेक स्थल है, परन्तु वहाँ उनका उद्देश्य कथा को केवल धार्मिक रग देना नही। राम का व्यक्तित्व उनसे पूर्व धर्मप्राण भारतीयो की श्रद्धा का आलम्बन रहा है, अत. रामचरितमानस मे वाल्मीकिरामायण से जो भिन्नता दृष्टिगत होती है वह कथा मे नवीनता, रमणीयता और प्रभावोत्पादकता के हेतु भी है, केवल धार्मिक सिद्धान्तो के प्रकाशन के लिए नही।

(ख) इन चरित-काव्यो की दूसरी धारा वह है जहाँ इनकी रचना ऐतिहासिक पात्रो तथा आश्रयदाताओ के व्यक्तित्व का शौर्य-प्रधान पक्ष अकित करने के लिए हुई है। यह तथ्य सर्व-विदित है कि इन वीरगाथाओ की पृष्ठभूमि मे जीवन के शौर्य के साथ शृगार प्रेरक सूत्र के रूप मे रहा है। अतः शृगार की पटभूमि पर वीरता के चित्र प्रस्तुत करने के प्रयास ने विषयवस्तु के क्षेत्र मे भी अनुबन्ध प्रस्तुत किये है। कुछ काव्यो मे मूल कथानक के साथ अनेक उपाख्यानो की कल्पना की गई। इन उपकथाओ के मूल मे किसी काल्पनिक सुन्दरी के प्रति नायक का आकर्षण और चरम परिपाक के क्षणो मे उपलब्धि के हेतु युद्ध की योजना—आश्रित कवियो की कल्पना ने की। इस प्रकार युद्ध और प्रेम दोनो ही कल्पना के विषय बन गए। ऐसी कल्पनाओ से इन काव्यो के प्रबन्ध-विधान मे जटिलता उत्पन्न हो गई है। अनेक अवान्तर प्रसग काव्य की आधिकारिक कथावस्तु के साथ बेतरतीबी से जोड दिये गए है। परिणामस्वरूप वस्तु-विन्यास प्रबन्धोचित नाट-कीय शैली मे न होकर पुराण के ढग पर हुआ है। 'पृथ्वीराज रासो' इस प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष उदाह-रण है। सामान्यतः इन महाकाव्यो का वस्तु-विन्यास, भारतीय विधि के अनुकूल नाटकीय पद्धति पर हुआ है। कथानको मे आधिकारिक कथा के साथ प्रासगिक वृत्तो की योजना, कार्यावस्थाओ व नाट्य-सन्धियो का सफल निर्वाह, अधिकाश रचनाओ मे मिल जायेगा। समस्त कार्यव्यापार फलप्राप्ति की ओर उन्मुख होता है और मार्ग मे उपस्थित बाधा और बाधा-शमन की पद्धति भी भारतीय विधान के अनुकूल है।

उपर्युक्त धारा के ग्रन्थ है—'पृथ्वीराजरासो', 'विजयपालरासो', 'हम्मीररासो', 'खुमान-रासो' तथा रीतिकाल मे लिखे जाने वाले ग्रन्थ 'वीरसिहदेवचरित', 'राजविलास', 'सुजानचरित्र', 'गोरा-बादल की कथा', 'जगनामा', 'करहिया कौ रायसौ' आदि।

प्रबन्ध-काव्यो के क्षेत्र मे, उपर्युक्त दोनो प्रवृत्तियो के अपवाद-रूप मे केशव की 'राम-चन्द्रिका' उपलब्ध है। ग्रन्थ के नायक राम और उनकी जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन करने पर भी किसी प्रकार की कल्पना या मार्मिक उद्भावना का प्रयत्न केशव ने नही किया। राम-कथा-सम्बन्धी पूर्ववर्ती ग्रन्थो से सामग्री चयन कर उन्होने सारा ध्यान रामचन्द्र की चन्द्रिका का, छन्द-वैविध्य मे 'भूषन बिन न राजई कविता' के अनुसार, अलकृत वर्णन करने मे लगा दिया; अतः कथानक-सम्बन्धी कोई विशेषता इस काव्य मे नही; बल्कि इस कृति की प्रबन्धात्मकता इतनी खडित है कि कथा-तारतम्य के अभाव मे इस काव्य को विद्वान् 'प्रबन्ध' कहने मे भी संकोच करते है।

रचना-शैली की दृष्टि से प्राय इन सभी प्रबन्धो में साहित्य-शास्त्र मे निर्दिष्ट मुख्य लक्षणो का पालन हुआ है। सभी नाम-भेद से सर्गों मे विभक्त हैं। 'करकडुचरिउ' तथा 'भविसयत्त कहा' का विभाजन सन्धियों मे, 'पृथ्वीराजरासो' का समयो मे, 'पद्मावत' का खण्डो में, 'रामचरित मानस' का काण्डों मे, और 'रामचन्द्रिका' का प्रकाशो मे हुआ है। मगलाचरण, वर्णन-रूढ़ियाँ, छन्द-प्रयोग

आदि से सम्बन्धित सभी नियम इन काव्यो मे परिपालित है। अन्य काव्यो से भिन्न एक विलक्षणता जायसी के 'पद्मावत' मे द्रष्टव्य है—और वह है रूपक के रूप मे द्वयर्थक कथा-विधान। ऐसे प्रयोग उनसे पूर्व विरल थे। जैन कवि सोमप्रभ के अपभ्रंश मे लिखे सन्दर्भों मे इस प्रकार का प्रयास ढूँढा जा सकता है, परन्तु इतने बडे पैमाने पर जायसी से पूर्व ऐसी रचनाएँ उपलब्ध नही। तदुपरान्त यह पद्धति अन्य सूफी कवियो के काव्यो मे भी प्रतिफलित हुई। नूरमुहम्मद का 'अनुरागबाँसुरी' काव्य-शरीर, जीवात्मा और मनोवृत्तियो आदि को आधार बनाकर रचित अध्यवसित रूपक है।

छन्द की दृष्टि से अपभ्रंश के महाकाव्यो मे प्रयुक्त कडवक शैली का प्रयोग रूपान्तर से जायसी और तुलसी के काव्य मे दोहा-चौपाई शैली के रूप मे मिलता है। अनेक छन्दो मे कथा कहने की प्रवृत्ति भी केशव की नवीनता नही। यह प्रवृत्ति 'करकडुचरिउ', 'णयकुमारचरिउ', विद्यापति की 'कीर्तिलता' आदि रचनाओ मे मिलती है और रासो के छन्द-वैविध्य की तो सीमा ही नही।

जायसी आदि सूफी कवियो द्वारा प्रयुक्त दोहा-चौपाई से बने कडवको का प्रयोग भी अपने बीज-रूप मे बौद्ध सिद्धो मे मिल जाता है। बाद मे यह शैली (दोहा-चौपाई मे कथा कहना) सूफी कवियो मे तथा प्रेम-कहानी कहने के लिए अन्य कवियो मे लोकप्रिय रही। आलम का 'माधवानल कामकदला' ऐसा ही ग्रन्थ है।

कथा-बन्ध मे वर्णन-पद्धति की दृष्टि से दो पात्रो के बीच कथा को प्रश्नोत्तर-रूप मे कहने की पद्धति पुष्पदत के 'महापुराण', धनपाल की 'भविसयत्त कहा', विद्यापति की 'कीर्तिलता', चन्दबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' और तुलसी के 'रामचरितमानस' मे अपनायी गई। यह पद्धति अन्य जैन कवियो और सूफी कवियो मे अधिक लोकप्रिय नही हुई। इसके अतिरिक्त किस प्रकार कुछ विशिष्ट कथानक-रूढियाँ कतिपय अपभ्रंश के काव्यो मे, तत्पश्चात् रासो और उसके उपरान्त सूफी-साहित्य मे, कथानको को मोड देने के लिए अपनायी गई—यह हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रभृति विद्वानो ने सिद्ध कर दिया है—विस्तार तथा विषयान्तर-भय के कारण उनका उल्लेख निरर्थक होगा। इन चरित-काव्यो के अतिरिक्त अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यो की पुराण-शैली परवर्ती साहित्य मे प्रचलित नही हुई। पुष्पदत का 'महापुराण' तथा स्वयभू का 'हरिवशपुराण' इसी कोटि की रचनाएँ है।

अपभ्रंश के महाकाव्यो मे महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है—'पउमचरिउ', 'जसहरचरिउ','करकडुचरिउ', 'भविसयत्त कहा', 'नेमिनाथचरिउ', 'णयकुमारचरिउ' आदि। तदुपरान्त हिन्दी के महाकाव्यो मे उल्लेखनीय काव्य है—चन्दवरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', जायसी का 'पद्मावत', तुलसी का 'रामचरितमानस' और उल्लेख-मात्र के लिए केशव की 'रामचन्द्रिका,' 'वीरसिहदेवचरित', 'राजविलास', 'हम्मीर रासो' आदि। इनके अतिरिक्त कुछ रचनाएँ कथानक, बन्ध, रस, उद्देश्य आदि की दृष्टि से यद्यपि महाकाव्य-पद की अधिकारी है, परन्तु गद्य और पद्य दोनो शैलियो के प्रयोग के कारण उन्हे शास्त्रीय शब्दावली मे 'चम्पू' कहना होगा। विद्यापति की 'कीर्तिलता' इसी प्रकार का काव्य है। गद्य और पद्य-शैली के मिश्रण के अतिरिक्त, उसमे सभी विशेषताएँ चरित-वर्णन-प्रधान महाकाव्यो की ही है। कहा नही जा सकता कि इस प्रकार के

प्रयोग उस काल मे विशेष प्रचलित न थे, या आज उपलब्ध नही।

खण्डकाव्य

पूर्वोक्त विशेषताएँ जो विवेच्य काल के पूर्व महाकाव्यो मे दिखाई पड़ती है, खण्डकाव्यों मे भी स्वभावत एक सीमित कलेवर मे यथावत् उपलब्ध है। उसी प्रकार विषय-वैविध्य, रचयिताओ के दृष्टिकोण, चरित्राकन, रस आदि मे मूल विषयानुसार विभिन्नता खण्डकाव्यों मे भी सहज प्राप्त है। केवल विषय की व्यापकता मे सकोच के अनुरूप काव्य-रूप मे भी जीवन की सर्वांगता अन्तर्निहित न होने के कारण, खण्ड-चित्रो का अकन सीमित कलेवर मे हुआ है। कुछ उल्लेखनीय खण्डकाव्य है—राजशेखर सूरि का 'नेमिनाथफागु', तुलसीदास का 'नहछू', नन्ददास के 'भ्रमरगीत' और 'रासपचाध्यायी', जटमल की 'गोरा-बादल की कथा', श्रीधर का 'जगनामा', सदानन्द का 'रासा भगवतसिह' आदि।

इनके अतिरिक्त प्राचीन खण्डकाव्यो मे कुछ अपनी निजी विशेषता के कारण पृथक् रूप से उल्लेखनीय है। खण्डकाव्यो की एक परम्परा बगाल मे मगल-काव्यो के रूप मे प्राप्त होती है। तुलसीदास के 'जानकी-मगल' और 'पार्वती-मगल' तथा कबीर के नाम पर पाये जाने वाले 'आदिमगल', 'अनादिमगल' और 'अगाधमगल' नामक तीन काव्य मिलते है। नरहरि कवि और नन्ददास ने भी 'रुक्मिणीमगल' की रचना की। परवर्ती साहित्य में यह परम्परा बहुत लोकप्रिय नही हुई, अत· हम विशेषताओ का विस्तारपूर्वक उल्लेख नही कर रहे है।

इसी प्रकार 'सदेशरासक' और 'ढोला-मारू रा दूहा' दोनो खण्डकाव्यो का पृथक् उल्लेख अभीष्ट होगा। ये दोनो, दोहाबद्ध कथाकाव्य होते हुए भी मुक्तक काव्य की स्फुटता के गुण से भी युक्त है। दोनो काव्यो मे जीवन के एक पक्ष—विशेष विरह दशा की अनुभूतियो का वर्णन है। कथानक-सूत्र विद्यमान होने पर भी इस विशेषता के लिए—एक ओर मुक्तक के लिए ही सफल वाहन दोहा छन्द का प्रयोग, और दूसरी ओर कथा की अपेक्षा विरह-भाव की मुखरता उत्तरदायी है। मूलतः भावात्मक होने के कारण कथा के गुणो की अपेक्षा मुक्तक के गुण उक्त काव्यो मे अधिक है। 'सदेशरासक' को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'गेय रूपक' भी माना है। उनकी इस मान्यता का आधार हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' मे दिया रासक-काव्य का लक्षण है। रूपक शब्द इन काव्यो मे न्यूनाधिक मात्रा मे अभिनेयता का परिचायक है, अतः गीति और नाट्य-शैलियो के मिश्रण की कल्पना यद्यपि आधुनिक काल से सर्वथा भिन्न रूप मे थी, परन्तु हेमचन्द्र के समय मे भी और यदि कहा जाये तो उनसे पूर्व भी (लक्षण-ग्रन्थो का निर्माण सदा लक्ष्य-ग्रन्थो के अवलोकन के उपरान्त ही होता है।) विद्यमान थी, तो अत्युक्ति न होगी।

उपर्युक्त काव्यो के अतिरिक्त कुछ अन्य कथात्मक प्रबन्ध है जिनमें गेयता विद्यमान है। इनमे प्रथम है—'बीसलदेव रासो', जिसकी रचना, जैसा लेखक ने स्वय कहा है, गाने के लिए हुई है। और दूसरा ग्रन्थ है 'आल्हाखण्ड'। इनमे से प्रथम कथाश्रित गेय-प्रबन्ध है और दूसरे का वर्तमान रूप यद्यपि मौखिक परम्परा मे प्रचलित रहने के कारण प्रामाणिक नही, परन्तु अपने मूल रूप मे इसका रूप भी वीरोल्लास-प्रधान गीतो का ही रहा होगा। यह काव्य मानव-मन की मौलिक प्रवृत्तियो, युद्ध और प्रेम की निसर्ग अभिव्यक्ति का प्रतीक है। इसी प्रकार का काव्य-रूप विदेशो मे 'बैलेड' संज्ञा से अभिहित है। इन काव्यो को कथाश्रित तथा घटनाश्रित होने के कारण

प्रबन्ध और गेय होने के कारण प्रगीतात्मक—अत. प्रगीतात्मक प्रबन्धकाव्य कहा जा सकता है।

वर्णनात्मक प्रबन्ध

महाकाव्य और खण्डकाव्य से भिन्न छोटे-छोटे प्रबन्ध लिखने की एक और शैली अन्य कवियों में सामान्यत., और कृष्ण-भक्तों मे विशेषत', प्रचलित थी। इन प्रबन्धो मे प्राय कृष्ण-लीला के विविध प्रसंगो का, अथवा प्रकृति के किसी उपकरण व ऋतु का वर्णन होता था। ये प्रबन्ध आकार में छोटे परन्तु मुक्तक नही, तथा आख्यान-काव्य भी न होकर निबद्ध-मुक्तक अथवा वस्तु-वर्णनात्मक प्रबन्ध होते थे। इनमे प्रयुक्त छन्द परस्पर विषय अथवा प्रसग के तारतम्य से सम्बद्ध रहते थे। विषय—दानलीला, मानलीला, चीरहरण, वसन्त आदि होते थे। ऐसे निबद्ध काव्यो को वस्तुवर्णनात्मक लघु प्रबन्ध कहा जा सकता है, अथवा नवीन शब्द-उद्भावना के स्थान पर आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा ऐसे काव्य के लिए प्रयुक्त शब्द 'पर्याय-बन्ध' का प्रयोग किया जा सकता है। इन्हे पद्यात्मक निबन्ध कहना इसलिए उचित प्रतीत नही होता, क्योकि निबन्ध की शैली मे एक विशिष्ट आत्मीयता तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण की आशा की जाती है, जिसका इनमे अभाव है। इन छोटे-छोटे प्रबन्धो की रचना नन्ददास, सूरदास आदि कृष्ण-भक्तो ने और ध्रुवदास आदि राधावल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तों ने पर्याप्त मात्रा मे की। सम्पूर्ण मध्ययुग में इनका प्राचुर्य रहा।

प्रबन्धो की परम्परागत रचना-शैली का आधुनिक काल के आरम्भ (भारतेन्दु-युग) मे विशेष उत्कर्ष नही हुआ। प्रबन्ध-रचना के नाम पर कुछ अत्यन्त साधारण स्तर की रचनाएँ इस युग में की गई, जिनमे रूप-सम्बन्धी कोई वैशिष्ट्य नहीं है। पूर्व कालो मे मुख्य रूप से पद्य-रचना करने वाले साहित्यकारो की एकनिष्ठ मनोवृत्ति शत-शत साहित्यिक विधाओ मे प्रवहमान हो उठी। पद्य-रचना के साथ-साथ गद्य-विधाओ (नाटक, निबन्ध आदि) का विकास होने के कारण जहाँ एक ओर सामान्यत रूप-विधाओ मे समग्र रूप से क्षेत्र-विस्तार और वैविध्य उपस्थित हुआ, वहाँ पद्य-मात्र के क्षेत्र मे और भी सकोच हो गया। प्रबन्धो का इस काल मे लगभग अभाव ही रहा, परन्तु पद्य-रचना का क्षेत्र और भी सीमित हो जाने के कारण मुक्तक-रचना में रूप-विधा सम्बन्धी पर्याप्त वैविध्य दृष्टिगत होता है। साहित्य के क्षेत्र मे उस काल के प्रमुख साहित्य-कार भारतेन्दु के ही काव्य की परीक्षा करने से इस बात का सहज ज्ञान हो जाता है कि किस प्रकार एक ओर प्रबन्ध-काव्य के अभावमय अश को मानो नाना रूपो मे मुक्तक के सद्भाव ने कुछ सीमा तक पूरा किया है। अकेले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य मे तत्कालीन अन्य कवियो द्वारा प्रयुक्त समस्त मुक्तक-शैलियाँ उपलब्ध है, परन्तु उनके काव्य के अध्ययन से पूर्व, हिन्दी-साहित्य के आदिकाल से विवेच्य युग तक प्रवाहित होने वाली मुक्तक काव्य की अजस्र परम्परा का ज्ञान अनिवार्य है।

मुक्तक

मुक्तक की भी पाठ्य और गेय दोनो शैलियाँ आदिकाल से ही हिन्दी-साहित्य में प्रयुक्त होती रही हैं। सयुक्त मुक्तक-रचना की प्रथा आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी के कवियों मे बहुत लोकप्रिय नही रही।

दोहा-शैली

हिन्दी-साहित्य के आदि-काल मे पाठ्य मुक्तको की परम्परा अपभ्रंश के दोहों मे प्राप्त है। दोहा अपभ्रंश के कवियो का प्रिय छन्द रहा है; अतः प्राय. धर्म तथा नीति के उपदेश दोहो मे एक ओर राजस्थान की मरुभूमि और मध्यभारत मे जैन कवियो द्वारा दिये गए, दूसरी ओर सुदूर पूर्व मे 'दूहा' के माध्यम से वज्रयानी सिद्धो ने अपने धार्मिक सिद्धान्तो का प्रचार किया। किस प्रकार इन उपदेश-प्रधान पाठ्य मुक्तको की परम्परा निर्बाध गति से भक्तिकालीन कवियो तक चली आई, और अत्यन्त लोकप्रिय होने के कारण तुलसी जैसे कुशल कवियो ने भी अध्यात्म तथा धर्मनीति के उपदेश दोहो मे दिये—यह बात अनेक विद्वानो द्वारा सिद्ध की जा चुकी है, अत उनके मतो का पुनराख्यान निरर्थक विस्तार होगा। यही दोहो की परम्परा गिरधर, रहीम, वृन्द आदि कवियो द्वारा नीति-उपदेश के लिए अपनायी गई। इन दोहो के लिए नाथ-सम्प्रदाय और कबीर-पथियो के मध्य 'साखी' शब्द का व्यवहार हुआ और जैनो मे वे साखी न कहलाकर दोहे ही कहलाये, परन्तु इनका मूल स्वर हिन्दी-साहित्य के परवर्ती सन्त लेखको के दोहो का ही है। अपभ्रंश मे इनका प्रयोग एक ओर जोइन्दु कवि के 'परमात्म-प्रकाश' और 'योगसार' तथा मुनि-रामसिंह के 'पाहुड दोहा' आदि ग्रन्थो मे हुआ है, दूसरी ओर कण्ह और सरह आदि सिद्ध कवियो के उपदेशो मे हुआ है। सिद्धो की यह रचनाएँ 'बौद्ध गान औ दोहा' के नाम से प० हरप्रसाद शास्त्री ने प्रकाशित करायी थी तथा निकट वर्तमान मे प० राहुल साकृत्यायन ने 'दोहा-कोष' नामक ग्रथ मे इस प्रकार की रचनाओ का सकलन किया है। इन शुद्ध विषय-प्रधान उपदेशात्मक दोहो की अविरल धारा संतो और नीतिकारो तक चली आई। तुलसी ने भी अध्यात्म और नीति के उपदेश के लिए इस छन्द का प्रयोग किया, परन्तु दोहा छन्द का उपयोग उपदेश या नीतिकथन-मात्र के लिए हुआ हो, ऐसा नही—वीर और शृगार को विषय बनाकर भी समय-समय पर दोहो के माध्यम से कवियो ने भावप्रवण रचनाएं की है। 'सन्देशरासक' और 'ढोलामारू' के दोहो मे विरह-दशा के मार्मिक वर्णन है और हेमचन्द्र के व्याकरण मे भी इनके सधर्मी दोहो का अभाव नही। 'ढोलामारू' मे प्राप्त कुछ दोहे किंचित् शब्दभेद से कबीर के साहित्य मे भी मिलते है। यद्यपि डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'ढोला-मारू रा दूहा' को "हेमचन्द्र के व्याकरण मे प्राप्त दोहो और बिहारी-सतसई के बीच की कड़ी"[1] कहा है; परन्तु उनका अभिप्राय कदाचित् छन्द और विषय (शृगार) की समानता से है, अन्यथा दोनो के रचयिताओ के दृष्टिकोण मे मूलत. भेद है। 'ढोलामारू', जैसा उन्होने स्वीकार किया है, गीतिकाव्य के रूप में प्राप्त है। अत. स्पष्ट है कि कवि का दृष्टिकोण विषयीप्रधान, अर्थात् आत्मपरक और साथ ही कथाश्रित है। कथा मे लोक-जीवन से रस ग्रहण किया गया है। लोक-साहित्य की पूर्ण प्रतिच्छाया इस काव्य पर है। दूसरी ओर 'बिहारी-सतसई' के कवि का काव्य पूर्णतया लक्षण-बद्ध विषय-प्रधान काव्य है। कवि का उद्देश्य नायिका-भेद, दूती-प्रसग, सयोग-वियोग आदि के शास्त्रबद्ध उदाहरण आश्रय-दाता को रिझाने और अर्थ-प्राप्ति के लिए प्रस्तुत करना है। आत्मपरक दृष्टि का बिहारी की रचनाओ मे सर्वथा अभाव है, अतः उसका सम्बन्ध 'ढोलामारू' से अत्यन्त सीमित अर्थों मे ही

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ९

स्थापित किया जा सकता है। वस्तुत भावप्रवण, तीव्र और स्पष्ट हृदयोद्‌गार-प्रधान सरल प्रेमाख्यान-काव्यो की जो परम्परा 'ढोलामारू', 'सदेशरासक', 'हेमचन्द्र-व्याकरण' के सधर्मी दोहो, और कही-कही कबीर के इने-गिने दोहों मे प्राप्त होती है—वह बाद मे हिन्दी-साहित्य मे उपलब्ध नही होती। रीति-काव्य मे जिस लक्षणबद्धता तथा अलकरण के दर्शन होते है, उसी कोटि का काव्य जो नायिका-भेद और दूती-प्रकरण की शृखलाओ मे जकडा हुआ हो, अपभ्रश मे उपलब्ध नही। बिहारी से पूर्व इस प्रकार के काव्य का सर्वथा अभाव हो, ऐसा नही—कृपाराम एक सीमित परिमाण पर इस प्रकार का प्रयोग अपनी 'हिततरगिणी' नामक रचना मे कर चुके थे। 'हिततरगिणी' के कई दोहे बिहारी के दोहो से मिलते-जुलते है। उनकी भाषा का परिमार्जन, भावपूर्णता एव सरसता किसी अश मे बिहारी से कम नही, परन्तु विषय-क्षेत्र बहुत सीमित होने के कारण ही यह पुस्तक उपेक्षित रही।

इस दिशा मे प्रयोग बिहारी के समकालीन कवियो मे 'रसलीन' और 'रसनिधि' द्वारा किये गए। रसलीन के दोहो की उत्कृष्टता प्रसिद्ध है। अत्यधिक समानता के कारण कुछ दोहे बिहारी के काव्य मे प्रक्षिप्त हो गए है। इसके विपरीत काव्य-रचना मे उत्कर्ष की दृष्टि से रसनिधि का महत्त्व बिल्कुल नही। दोहो मे इस ब्रजभाषा-काव्य की चमत्कार-पद्धति का भारतेन्दु-युग मे पुनरुद्धार करनेवाले कवियो मे दुलारेलाल भार्गव का नाम उल्लेखनीय है। अपनी 'दुलारे-दोहावली' मे आपने बिहारी के दोहो की काल के गर्त मे विस्मृत परम्परा को पुनः जीवन प्रदान किया। वही रस की स्निग्धता, उक्ति-वैचित्र्यजनित चमत्कार और बारीकी आपके दोहो मे उपलब्ध है।

दोहो का प्रयोग वीररस के लिए भी यदा-कदा किया गया, परन्तु बहुत लोकप्रिय नही रहा। आधुनिक काल मे वियोगी हरि की 'वीर-सतसई' इसी परम्परा की रचना है।

कवित्त-सवैया-शैली

मुक्तको की दूसरी प्रधान धारा स्फुट कवित्त-सवैयो के रूप मे हिन्दी-साहित्य मे उपलब्ध है। जिस प्रकार सस्कृत मे 'श्लोक', प्राकृत मे 'गाथा' और अपभ्रश मे 'दोहा' छन्द विशेष लोकप्रिय रहे, उसी प्रकार ब्रजभाषा कवियो के प्रिय छन्द कवित्त और सवैया थे। ब्रजभाषा मे काव्य-रचना के साथ इन छन्दो का उदय होता है। यद्यपि कवित्त का प्रयोग चन्द के 'रासो' मे भी हुआ है, परन्तु वहाँ इसका अर्थ है छप्पय। वस्तुत. भाषा-विशेष के साहित्य मे छन्द-विशेष के अधिक प्रयोग का कारण उस भाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल छन्द का ग्रहण होता है। स्फुट मुक्तक के रूप मे कवित्त-सवैया-शैली का प्रयोग यद्यपि तुलसी ने भी किया है, परन्तु जहाँ उन्होने ऐसा किया, वहाँ भाषा भी ब्रज ही अपना ली है—यथा 'कवितावली' मे।

तुलसीदास के बाद कवित्त-सवैयो मे रचना की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विस्तार पाती गई। इसका कारण था कि ये छद तत्कालीन काव्य-विषय और भाषा के लिए विशेष अनुकूल सिद्ध हुए। इनका प्रयोग, शृगार और वीर, दोनो रसो के लिए समान अधिकार से अनेक कवियो ने किया। भक्तिकाल मे माधुर्य भाव से भक्ति करने वाले ब्रजभाषा के कवियों और रीतिकाल के शृगार-प्रिय कवियों को ये छन्द विशेष मनोनुकूल प्रतीत हुए। भक्तिकाल में इस शैली के प्रमुख कवि थे

'रसखान'—जिन्होने लौकिक प्रेम का कृष्ण-भक्ति मे उन्नयन कर प्रेम-रस से सराबोर सवैयो की रचना की। उनके अतिरिक्त ध्रुवदास ने लीला-वर्णन कवित्त और सवैया दोनो छन्दो मे किया। महाराज टोडरमल ने नीति-सम्बन्धी कवित्तों की रचना की, बीरबल और गग आदि कवियो ने शृगारपरक कवित्तो की रचना के साथ वीररस मे भी रचना की। बीरबल ने कुछ नीति-सम्बन्धी सवैये भी लिखे। केशव ने कवित्त और सवैये दोनो का ही प्रयोग शृगार रस की रचना के लिए किया। रहीम ने भी नीति-उपदेश और शृगारपरक दोनो प्रकार के वर्णनो के लिए यह शैली अपनायी। सबसे अधिक विविधतापूर्ण प्रयोग इस क्षेत्र मे सेनापति ने किया। उन्होने भक्ति, शृगार रस, नीति-उपदेश, रामचरित-वर्णन तथा ऋतु-वर्णन, सभी विषयो का सफल माध्यम कवित्त-शैली को बनाया।

भक्तिकाल के उपरान्त सम्पूर्ण रीतिकाल मे कवित्त-सवैये की इस शैली का विशेष उत्कर्ष दिखायी दिया। इस समय कविता की भाषा ब्रज, रस शृगार, और छन्द कवित्त-सवैया अभिव्यक्ति के माध्यम रहे। रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध और रीतिमुक्त—तीनो ही वर्ग के कवियो ने समान रूप से इस शैली को अपनाया। दो सौ वर्ष के इस दीर्घ समय मे इस शैली का सम्पूर्ण साहित्य मे निरपवाद प्रयोग इसके उत्कर्ष का परिचायक है। प्रबन्ध-रचना रीतिकाल मे नाम गिनाने मात्र के लिए हुई। मुक्तक का ही विशेष प्राचुर्य रहा और मुक्तको मे भी विशेष रूप से कवित्त-सवैया-शैली का। दोहो मे 'बिहारी-सतसई' की रचना इस प्रवृत्ति का विशेष अपवाद है। अन्यथा, काव्य-रूप की दृष्टि से कवित्त-सवैयो के रूप मे स्फुट मुक्तक का इस काल के साहित्य मे एकछत्र आधिपत्य रहा। इनमे पाठ्यरूप का ही, गेय की अपेक्षा, अधिक प्रयोग किया गया।

इस प्रसग मे एक विशेष बात उल्लेखनीय है—यद्यपि प्रत्येक वर्ग के कवियो ने इस शैली को काव्य-रचना के लिए स्वीकार किया, परन्तु काव्य-रचना के उद्देश्य और कवियो के मूलभूत दृष्टिकोण मे अन्तर है, और इस अन्तर ने काव्य की आत्मा को मुख्यत और काव्य के स्वरूप को प्रकारान्तर मे प्रभावित किया है। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियो के काव्य मे लक्षणो और उदाहरणो का निरूपण जितना है, आत्माभिव्यजना उतनी नही। आश्रयदाता को रिझाने या अपना रचना-कौशल प्रकट करने की लालसा जितनी अधिक है—उतनी अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति नही। रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियो का काव्य वस्तुपरक है, कवि का दृष्टिकोण इतिवृत्तात्मक है, दूसरी ओर रीतिमुक्त कवियो का काव्य मूलत आत्मपरक है। इसी कारण इन कवियों की रचनाओ मे भावप्रवणता, आत्मद्रव और सहज अन्त स्फूर्ति का गुण अधिक मिलता है। इन विशेषताओ के कारण इस काव्य मे प्रगीत-काव्य के तत्त्वो का समावेश हो गया है। घनानन्द के अनेक कवित्त-सवैये राग-रागिनियो मे बँधे है, और इस प्रकार आन्तरिक भाव-सगीत के साथ बाह्य सगीत का समावेश करने का भी प्रयत्न किया गया है। इनमे गीति-तत्त्व का प्राचुर्य है, परन्तु गीतो का आकार (बाह्य) इनमे नही। कहने का अभिप्राय यह है कि इनकी आत्मा गीतो की है, परन्तु इनकी गेयता—पदो, कला-गीतो अथवा लोक-गीतों की-सी सहज और सरल नही, अपितु आरोपित और साध्य है। इस प्रकार रीतिकाल मे लिखे गए इन कवित्त-सवैयों के दो स्वरूप हो गए—एक वर्ग स्फुट वस्तुपरक पाठ्य मुक्तको का था और दूसरा भावप्रवण प्रगीत मुक्तको का।

आधुनिक काल के आरम्भ से पहले हिन्दी-साहित्य मे पाठ्य मुक्तको की दो शैलियाँ प्रधान रूप से प्रचलित थीं—एक दोहा-शैली और दूसरी कवित्त-सवैया-शैली। दोहो के भी विषय और दृष्टिकोण-भेद से अनेक रूप हो गए, और कवित्त-सवैयो मे भी पर्याप्त विषय-वैविध्य दिखायी दिया, परन्तु बाह्याकार की दृष्टि से यही दो मुक्तक-रूप प्रधान रहे। इनके अतिरिक्त नाम गिनाने-मात्र के लिए समय समय पर कवियो ने दोहा-चौपाई मे भी स्फुट रचनाएँ की। ध्रुवदास और कबीर ने 'रमैनी' सज्ञा के अन्तर्गत यही शैली अपनायी। अवधी मे रचना करने वाले कवियो मे तुलसीदास और रहीम ने अवधी के विशेष छन्द 'बरवै' का भी यदा-कदा प्रयोग किया। सोरठा का भी रहीम आदि कवियो ने प्रयोग किया, परन्तु ये शैलियाँ कभी प्रचलन नही पा सकी।

गेय मुक्तक

ऊपर पाठ्य मुक्तको का विवेचन किया गया। मुक्तक का दूसरा रूप गीतो के रूप मे पाया जाता है। गेय मुक्तको की दो रूपो मे स्वीकृति साहित्य मे की गई है कलागीत और लोकगीत। कलागीतो मे लेखक का दृष्टिकोण अधिक सजग होता है और अभिव्यक्ति सचेष्ट एव अलकृत। कभी-कभी भावप्रवणता के साथ उसी अनुपात मे कल्पना एव विचार का भी मिश्रण हो जाता है। इसके विपरीत लोक-गीतो मे लोक-जीवन से रस ग्रहण किया जाता है—लेखक की सहज अनुभूति और तीव्र अन्त.स्फूर्ति एव भावोद्रेक इनका विशेष गुण होता है। विषय प्राय: लोक-जीवन के विशेष प्रसगो और मानव-मन की मौलिक प्रवृत्तियो से सम्बद्ध होते है और इनकी कला सचेष्ट न होकर प्राय. अनगढ होती है। गीतो का यह स्वरूप निसर्ग-सुन्दर होता है। प्रस्तुत प्रसग मे हम पहले कला-गीतो के परिचय से ही विवेचन आरम्भ करेगे। पाठ्य मुक्तको की दोहा-शैली की ही भाँति, गेय मुक्तको के अकुर भी सिद्ध-साहित्य मे ही प्राप्त होते है। इन बौद्ध कवियो के चर्या-गीतो आदि मे जो पद-रचना उपलब्ध है, उसी की अविच्छिन्न धारा बाद मे कबीर आदि सन्तो मे प्रवाहित हुई। कबीर ने 'शब्द' के रूप मे गेय पदो की रचना की। इन गेय पदो को राग-रागिनियो के नाम से लिखने की प्रथा भी बहुत प्राचीन है। सिद्धो मे यह प्रवृत्ति स्पष्ट मिलती है। 'कबीर-ग्रन्थावली' और 'गुरु-ग्रन्थ साहब' आदि के गेय पदो मे भी रागो का निर्देश है। यही पद्धति सूरदास, तुलसीदास, दादू आदि कवियो मे पायी जाती है। मीरा ने भी यही विधि अपनायी है। इस शैली का आरम्भ कब हुआ यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, परन्तु साहित्य मे बाह्य सगीत का यह आग्रह और आरोप सिद्धो मे निश्चित रूप से मिलता है।

गेय पदों की दूसरी धारा कृष्ण-लीला के वर्णनात्मक पदो के रूप मे उपलब्ध है। इन पदो के आरम्भ के विषय मे भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता; परन्तु इस प्रकार के उपलब्ध साहित्य की परम्परा जयदेव से आरम्भ होकर विद्यापति, चडीदास आदि के पदो मे होती कृष्ण-भक्तो के साहित्य में चरम प्रकर्ष को प्राप्त हुई। तुलसी जैसे मर्यादाबद्ध कवि भी इसके प्रभाव से अछूते नही बचे। भक्तिकाल के उपरान्त रीतिकाल मे यह धारा क्षीण हो गई। इसका पुनरुद्धार आधुनिक काल मे भारतेन्दु और उनके समसामयिक कवियों द्वारा हुआ।

लोक-गीत

लोक-गीतों का स्थान ग्रन्थो मे नहीं, जनता के कठ में सुरक्षित रहता है। इनके रचयिता

यशोलिप्सा के अभाव में या सदा अज्ञात रहते है, या अधिक से अधिक गीत की अन्तिम कड़ी के साथ उनका नाम जुडा रहता है, जो समय के साथ प्राय. रूप बदलता जाता है। मध्ययुग में इस प्रकार के जनगीतों को लिखित रूप देने का सचेष्ट प्रयत्न नही किया गया, अतः लोकगीतों की प्राचीन व मध्ययुगीन परम्परा का प्रामाणिक साहित्य आज प्राप्त नहीं। इन लोकगीतों की कला का अनुमान उस काल के कवियो की साहित्यिक रचनाओं पर पडे इनके प्रभाव, अथवा इस प्रकार के एकाध लिखित प्रयोगो से लगाया जा सकता है।

लोकगीतो मे प्रधानत दो प्रकार के गाने मिलते है—वे गीत जो किसी विशेष उत्सव या अवसर पर गाये जाते है। इन गीतो मे व्यक्तिगत भावना की अपेक्षा सामूहिक या जातिगत भावना की प्रधानता होती है। दूसरे प्रकार के गीत विरह, मिलन आदि किसी व्यक्तिगत तीव्र अनुभूति से प्रेरित होने है; परन्तु इनका सम्बन्ध भी किसी ऐसी भावानुभूति से होता है जिसकी सत्ता सार्वभौम और नैसर्गिक होती है। इन गीतो मे भाषा की स्थानीय विशेषता और 'हे, हो' आदि सम्बोधन-वाचक शब्दो का प्रयोग पक्ति के आरम्भ मे मिलता है। 'आली, माई' आदि को सम्बोधित कर ये गीत प्राय. गाये जाते है।

लोक-गीतो की इस परम्परा का आरम्भ अपभ्रश-साहित्य से ही मिल जाता है। जैन सन्तो ने फाग, चर्चरी आदि विशेष अवसरों पर गाये जाने वाले लोक-गीतो की रचना की है। जिनदत्त सूरि ने चर्चरी के साथ लोक-प्रचलित रासक जाति के गीतो को भी अपनाया था। चर्चरी से कवि-परिचय की सूचना तो सस्कृत के बाणभट्ट और हर्षदेव आदि की रचनाओं मे भी मिल जाती है। इसी चर्चरी का प्रयोग कबीर ने 'चाचर' नामक अध्याय मे अपने बीजक मे किया है। कबीर ने चर्चरी को उसके लोक-प्रचलित विषय शृगार तक ही सीमित न रखकर आध्यात्मिक उपदेश देने का भी प्रयत्न किया है। उनसे पूर्व यह शृगार रस-प्रधान निबद्ध गान नाच-नाचकर गाया जाता था।

निर्गुण सन्तो की रचना मे यह चाचर के रूप मे प्राप्त है। इसके अतिरिक्त कबीर ने हिडोला, विरहुली, कहरा, वेलि आदि जैसे कुछ लोकगीतो को भी अपनाया। तुलसीदास के काव्य मे जिस सोहर को स्थान मिला, उसकी लिखित परम्परा उनसे पूर्व प्राप्त नही। कृष्ण-भक्तो के काव्य में कही-कही होली आदि का वर्णन करते समय लोकगीतो की कला का प्रभाव पडा है, परन्तु उन्होंने कृष्ण के रूप और उनके जीवन से सम्बन्धित जिन विविध प्रसगों के अलकृत वर्णन किये है वे साहित्य की विभूति है और उनकी कला प्रयत्नसाध्य कला है। इन गीतो मे बधाई तथा अन्य सस्कारों के अवसर पर गाने के लिए लिखे गए गीतो की गणना तो लोकगीतो के अन्तर्गत ही की जाएगी।

मीरा के काव्य पर लोकगीतो का स्पष्ट प्रभाव है। उन्होने कुछ होलियाँ लिखीं; इसके अतिरिक्त नारी होने के नाते यह कला उनके सस्कारो मे विद्यमान थी। अतः उनके अनेक पदो मे शब्दो के ठेठ स्थानीय प्रयोग हैं—'हो, री, आली, माई' आदि सम्बोधनवाचक शब्दों का प्रयोग भी प्रचुर है। कही-कहीं उनके पदो की मार्मिकता, ग्राम्य जीवन से गृहीत ठेठ उपमाएँ तथा विरह-वर्णन भी इसी ढग का है।

कृष्ण-भक्तों के काव्य पर—हिंडोला, फाग, रास आदि के लीला-वर्णनों में, और चर्चरी

जैसे गानों में प्रायः लोक-साहित्य की छाप मिलती है। यही परम्परा रीतिकाल में होने वाले नागरीदास आदि कृष्ण-भक्तों द्वारा परिपालित है। रीतिकारों की चमत्कार-प्रधान सचेष्ट कला में इस प्रकार के सहज काव्य-रूपों का अभाव है। बाद में भारतेन्दु-युग मे गाने के लिए रचित काव्य-रूपों मे पुन· इस कला की छाप मिलती है।

भारतेन्दु-युग में प्रयुक्त काव्य-रूप

अब तक जिन मुक्तक काव्य-रूपो का विवेचन किया गया, उनसे आधुनिक युग के आरम्भ से पूर्व रीतिकाल के अन्त तक की साहित्यिक गतिविधि पर प्रकाश पडता है। भारतेन्दु-युग के उदय के साथ जीवन के अन्य क्षेत्रो की ही भाँति साहित्य के क्षेत्र मे भी एक नवीन चेतना का अभ्युदय होता है। इसके साथ ही यह साहित्य प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य काव्य की पृष्ठभूमि के रूप मे हमारे सम्मुख है। अत. भारतेन्दु-युग के कवियो की साहित्यिक उपलब्धियो पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इस युग के कवियो द्वारा प्रयुक्त रूप-विधाओ का पर्यवेक्षण करते समय कुछ तथ्य सामान्य रूप से दृष्टि मे रखने अनिवार्य है—

१. इस युग की रचनाओ मे प्राचीन काव्यधारा ने आकर एक नवीन मोड़ लिया, परन्तु यह दिशा-परिवर्तन रूप-विधाओ की अपेक्षा विषयो, कवि की अन्तश्चेतना, और अभिव्यंजना-शैली मे अधिक दृष्टिगत हुआ। गद्यभाषा के रूप मे खडीबोली की स्वीकृति हो जाने पर भी काव्य-रचना के लिए ब्रजभाषा के त्याग का प्रयत्न नही किया गया। परम्परा-प्राप्त भाषा के साथ उसके प्रचलित छन्दो को भी यथावत् अपना लिया गया। कदाचित् भाषा की प्रकृति, शब्द-योजना आदि के लिए यही छन्द विशेष उपयुक्त सिद्ध हो चुके थे।

२. यह नही कहा जा सकता कि किसी प्रकार के नवीन प्रयोग इस काल मे हुए ही नही। उर्दू-साहित्य के प्रभाव की छाया पहले से ही धीरे-धीरे हिन्दी-साहित्य पर पख पसार रही थी। इस काल मे उर्दू के कुछ छन्द प्रयोग मे लाये गए, गजल आदि काव्य-रूपो को भी अपनाया गया तथा साथ ही कुछ रूप-विधाएँ अँगरेजी साहित्य के प्रभाववश भी अपनायी गई, जिनका उल्लेख यथास्थान किया जाएगा। परन्तु परम्परा से भिन्न रूप-विधाओ का जो वैविध्य, परवर्ती खडीबोली-काव्य की विभूति है, वह भारतेन्दु-युग मे प्राप्य नही। विविधता का अभाव नही, परन्तु विषय-परिवर्तन तथा प्राण-चेतना के परिवर्तन पर भी उसी अनुपात मे रूप-विधाओ मे परिवर्तन दिखायी नही पडता। अकेले भारतेन्दु के काव्य मे लगभग सभी (मुक्तक के क्षेत्र मे) पूर्ववर्ती काव्य-रूपो का प्रयोग प्राप्य है, परन्तु भाषा के साथ प्रयोग के ढाँचे भी परम्पराभुक्त है। अपने से पूर्व सभी काव्य-विधाओ तथा लोक-साहित्य मे प्रचलित अनेक काव्य-रूपो के प्रयोग उनकी प्रतिभा, कौशल और लेखनी की सिद्धहस्तता के परिचायक है—इस क्षेत्र मे उनकी अद्भुत शक्ति और सामर्थ्य श्लाघ्य है।

३. जैसा पहले सकेत किया जा चुका है, इस युग की कविता मे मौलिक प्रबन्ध-रचना की प्रवत्ति का लगभग पूर्णत अभाव है। बृहद् प्रबन्धो मे केवल महाराज रघुराजसिह की रचना 'रामस्वयवर' का उल्लेख किया जा सकता है। इस रचना में राम और सीता के विवाह का विस्तृत वर्णन नामपरिगणन-प्रधान इतिवृत्त-शैली मे किया गया है। भारतेन्दु व अन्य कवियों

ने यद्यपि मौलिक प्रबन्ध नही लिखे, परन्तु संस्कृत के कुछ ग्रंथों का अनुवाद ब्रजभाषा के प्रचलित छन्दों में हुआ। राजा लक्ष्मणसिंह और ठाकुर जगमोहनसिह ने 'मेघदूत' का अनुवाद किया। लाला सीताराम ने दोहा-चौपाइयों में 'रघुवंश' और घनाक्षरी मे 'मेघदूत' का अनुवाद किया। श्रीधर पाठक ने 'ऋतुसंहार' का रसपूर्ण ब्रजभाषा मे अनुवाद किया और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने भी 'मेघदूत' का शीर्षक-सहित अनुवाद 'धाराधर-धावन' नामक रचना मे किया। इस प्रकार अनुवादों के रूप मे कुछ प्रबन्ध-ग्रन्थो का प्रणयन इस काल मे किया गया। यद्यपि 'हरिऔध' आदि प्रतिभाशाली विद्वानो का आविर्भाव इसी युग मे हो गया था, परन्तु उल्लेखनीय प्रबन्धो की रचना उनके द्वारा द्विवेदी-युग मे ही हुई। अतः इस युग मे मुक्तक-विधाओ का विवेचन ही मुख्य रूप से अभिप्रेत है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि मे रखते हुए इस युग की रचनाओं का विभाजन तीन मुख्य वर्गो के अन्तर्गत करने के उपरान्त उनका परिचय देना अधिक सुलभ होगा—

१. परम्परा से गृहीत साहित्यिक रूप-विधाएँ।

२. विदेशी, बँगला तथा उर्दू-साहित्य के प्रभाववश गृहीत रूप-विधाएँ व अन्य नवीन प्रयोग।

३ लोक-साहित्य से गृहीत रूप-विधाएँ।

भारतेन्दु अपने युग के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। उनके द्वारा प्रयुक्त रूप-विधाओं के परीक्षण से समकालीन सभी कवियो द्वारा गृहीत रूप-विधाओ का ज्ञान सम्भव हो सकेगा। भारतेन्दु के द्वारा प्रयुक्त काव्य-विधाओ के अतिरिक्त एकाध नवीन प्रयोग को छोडकर कोई विशेष महत्त्वपूर्ण और मौलिक प्रयोग इस क्षेत्र मे नही हुआ। अपने काव्य मे भारतेन्दु ने उस काल मे प्रचलित सभी मुक्तक-विधाओं का उपयोग किया। उपर्युक्त विभाजन के अनुसार सर्वप्रथम वर्ग (परम्परा-प्राप्त साहित्यिक विधाएँ) के अन्तर्गत उन्होने अपने काव्य मे निम्नलिखित प्रयोग किये.

पद-शैली

कृष्ण-भक्त कवियो की परम्परा से गृहीत राग-रागिनियो मे बँधे पदो मे, एक ओर कृष्ण-भक्तो के स्वर मे राधा का विरह-वर्णन है, कही-कही भाव तक परम्परा-प्रभावित है, और दूसरी ओर तुलसी और सूर का-सा विनय-प्रधान दैन्य व प्रलाप। इन पदों की एक विशेषता द्रष्टव्य है—जहाँ भारतेन्दु ने कुछ पदो को राग-रागिनियो मे बाँधा है, वहाँ दूसरी ओर कुछ अन्य पदो मे ताल-सम्बन्धी विशेषता का निर्देश किया है। राग स्वर के भावानुकूल उतार-चढाव का द्योतक होता है और ताल छन्द की गति का नियमन करती है। सगीत के इन युग्म तत्त्वो को समान महत्ता प्रदान करने का अभिप्राय कदाचित् यही है कि काव्य मे, विशेषकर गीति मे, जहाँ एक ओर भाव और स्वर का सगीत अनिवार्य है, वहाँ लय और गति का सगीत भी होना अपेक्षित है। उनके यह पद गीति-काव्य के अन्तर्गत आते है।

कवित्त-सवैया-शैली

दूसरा प्रयोग उन्होंने रीतिकालीन कवियों की लोकप्रिय कवित्त-सवैये की शैली मे किया। निश्चय ही उस काल के कवियों की अपेक्षा विषयों के क्षेत्र मे भारतेन्दु की गति कहीं अधिक

व्यापक है। इन कवित्त-सवैयों मे शृंगारपरक रचनाएँ भी हैं, और वर्णन-प्रधान तथा समस्या-पूर्ति आदि के उद्देश्य से लिखे गए छन्द भी। निश्चय ही, काव्य के स्तर की दृष्टि से शृंगारपरक कवित्त-सवैये कही अधिक सजीव है, और रीतिकालीन काव्यधारा के पर्याप्त निकट, कहीं-कहीं अद्भुत भावसाम्य है।

दोहा-शैली

भारतेन्दु से पूर्व दोहो की परम्परा विषय-भेद से तीन मुख्य रूपों में मिलती है—कबीर आदि सत कवियो की धर्मोपदेश-प्रधान साखी; वृन्द, रहीम आदि कवियों के नीति-उपदेश-प्रधान दोहे, तथा बिहारी, रसलीन आदि के शृगारपरक दोहे। विषय की दृष्टि से भारतेन्दु के दोहा-काव्य को उपर्युक्त धाराओ के अन्तर्गत स्थान नही दिया जा सकता। शृगारपरक दोहे उनके काव्य मे अल्प सख्या मे है, वे भी नायिकाभेद, अभिसार, दूती-प्रसग आदि से उतने सम्बन्धित नही, जितने वसन्त-आदि ऋतुओं के वर्णन से। कुछ दोहे वीररस के व्यजक है तथा भगवद्भक्ति के प्रसग मे विभिन्न रूप-सम्बन्धी चिह्नो आदि के वर्णन से सम्बद्ध दोहो की सख्या भी पर्याप्त है। नीति-विषयक दोहो का भी अभाव नही, परन्तु इन दोहो की आत्मा परम्परा से भिन्न है। सदाचार, नीति, व्यवहार-कौशल आदि पर उपदेश न होकर हिन्दी की उन्नति जैसे प्रसगो पर व्याख्यान-सा देने का प्रयत्न दिखायी पडता है।

छप्पय-शैली

छप्पय छन्द का प्रयोग प्राय पूर्व-परम्परा मे वीररस के प्रसंगो में ही कवियो द्वारा किया गया। प्रबन्धों के मध्य अन्य छन्दो मे रचना करते समय भी वीररसात्मक प्रसंग आने पर कवियों ने छप्पय के प्रयोग मे विशेष रुचि दिखायी—'पृथ्वीराज रासो' तथा 'रामचरितमानस' दोनों ही सुप्रसिद्ध ग्रन्थ इस प्रवृत्ति के द्योतक है; परन्तु छप्पय का प्रयोग कृष्ण-स्तुति जैसे विषय के लिए भारतेन्दु से पूर्व सर्वथा अपरिचित नही, तो विरल निश्चय ही था। परन्तु भारतेन्दु ने कृष्ण-स्तुति तथा प्रबोधिनी आदि जैसे प्रसगो का वर्णन उपर्युक्त छन्द मे किया है।

भारतेन्दु द्वारा कतिपय ऐसी मुक्तक विधाओं का प्रयोग किया गया, जिन्हें सरसता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्वीकार नही किया जा सकता और न ही ये प्रयोग उच्च कोटि की साहित्यिक अभिरुचि के प्रतीक है; बल्कि इन प्रयोगो से काव्य के क्षेत्र मे वैविध्य-प्रदर्शन के दुराग्रह की गन्ध आती है। इस बहुमुखी प्रतिभा का प्रयोग रूप-विभिन्नता के स्थान पर काव्य मे सरसता, सजीवता और अभिव्यजना-कौशल आदि के लिए देखने की आकांक्षा होती है। प्रतीत होता है, रूप-विधाओ के क्षेत्र मे वैचित्र्य प्रस्तुत करने का आग्रह भारतेन्दु के हृदय मे निश्चय ही विद्यमान था, अन्यथा खुसरो के उपरान्त दीर्घकाल से उपेक्षित मुकरियो जैसी विधा को पुनरुज्जीवन प्रदान करने के मूल मे कोई तर्क-सम्मत औचित्य प्रतीत नही होता। इसी प्रकार का एक और प्रयास उन्होने चित्रकाव्य-रचना के रूप मे किया है। भारतेन्दु की मुकरियो के विषय आधुनिक हैं, तथा 'इंगलैंडा-पारसीक-वर्ण-चित्रिता' 'अथ-अकमयी' आदि कविताओ मे उन्होने नये ढग से चित्र-अलंकार का प्रयोग किया है। उर्दू और अँगरेजी की वर्णमाला तथा कही-कहीं अंको का प्रयोग, उनकी उच्चारण-ध्वनि के आधार पर किया गया है। परन्तु दोनों ही प्रयोग (मुकरियाँ और

चित्रकाव्य) काव्य-कला की दृष्टि से उच्च कोटि की रचना स्वीकार नहीं किये जा सकते।

उपर्युक्त मुक्तक-रूपों के अतिरिक्त कुछ रचनाएँ भारतेन्दु ने शुक्लजी के शब्दों में 'वस्तु-वर्णनात्मक प्रबन्ध' अथवा आनन्दवर्द्धनाचार्य के अनुसार 'पर्याय-बन्ध' शैली में कीं। इनमें 'दान-लीला', 'देवी-छद्म-लीला' तथा विभिन्न छन्दों मे वर्णित 'रानी-छद्म-लीला' आदि प्रसगो के वर्णन आते हैं। इस प्रकार के प्रसगों का वर्णन भक्तिकाल एव रीतिकाल के कवियो मे भी प्रचलित था। कृष्ण के साथ रामलीला का वर्णन भी कवि ने दोहा, कवित्त, सवैया आदि परम्परागत छन्दों मे किया है। इन छन्दो मे अयोध्या-काण्ड तक की कथा का वर्णन है। कथाश्रित होते हुए भी छन्दों में स्फुट मुक्तक के गुण विद्यमान है। बीच-बीच में गद्य की पक्तियों में वर्णन करके छन्दों मे पारस्परिक तारतम्य और क्रम बैठाया गया है। इस प्रकार का प्रयोग भी उपर्युक्त विधाओ मे ही आयेगा।

दूसरे वर्ग मे आने वाली रचनाओ म भारतेन्दु ने कही-कही उर्दू-कविता का प्रभाव ग्रहण किया। बंगला के एकाध छन्दो के प्रति रुचि दिखायी तथा कुछ ऐसे प्रयोग किये जिनमे सम्मिलित रूप से लोक-प्रचलित रासलीला, रामलीला, नौटकियों और पारसी थियेट्रिकल कम्पनियो आदि का प्रभाव और उनकी मौलिक प्रतिभा का विचित्र सयोग था।

उर्दू कविता के शेरो और गजलों की शैली मे भारतेन्दु ने कुछ रचनाएँ की। बंगला के 'पयार' छन्द का प्रयोग भी उन्होने 'प्रात. समीरन का वर्णन' नामक कविता मे किया। उक्त कविता मे बन्ध की नवीनता न होकर छन्द की विशिष्टता है (बाद मे 'निराला' ने भी इस छन्द को ग्रहण किया), अन्यथा बन्ध की दृष्टि से यह रचना 'वस्तुवर्णनात्मक प्रबन्ध' ही है। अन्य भाषाओ के छन्द-प्रयोग के साथ-साथ भारतेन्दु ने विक्टोरिया की स्तुति मे सस्कृत के कुछ छन्दों की रचना भी कर डाली। इनके अतिरिक्त कुछ दोहाबद्ध कोरस (वृन्द-गान) भी उन्होने लिखे। कोरस का विधान पारसी-नाटक-कम्पनियो के द्वारा अभिनीत नाटको की विशेषता थी। ये कोरस रूप-विधा की दृष्टि से सयुक्त मुक्तक ही कहलायेगे।

उर्दू की नाटकाभास-पद्धति 'इन्दरसभा' के अनुकरण पर भारतेन्दु ने 'बन्दरसभा' नामक पद्यबद्ध नाटक की रचना की, परन्तु यह रचना उच्च कोटि के साहित्य के रूप मे स्वीकार नही की जा सकती।

भारतेन्दु ने अपने काव्य में कुछ प्रयोग इस प्रकार के किये, जो सर्वथा नवीन नही कहे जा सकते। संख्यावाचक शीर्षको के अन्तर्गत उन्होने ऐसे मुक्तको की रचना की, जिनमे परस्पर भाव की एकान्विति तथा सम्बन्ध है। विषय तथा प्रसंग की दृष्टि से ये मुक्तक सापेक्ष नही। उनमें किसी प्रकार का पूर्वापर-सम्बन्ध नही और अर्थ की दृष्टि से प्रत्येक छन्द स्वत.पूर्ण है; परन्तु इनके साथ ही इन छन्दो मे परस्पर मूल भावना का सम्बन्ध है, अर्थात् सबकी रचना एक ही मूल भाव के प्रतिपादन के लिए हुई है—'अपवर्ग-पंचक', 'अपवर्गाष्टक' आदि इसी वर्ग की रचनाएँ हैं। एक सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत निबद्ध होने के कारण ही इनमे परस्पर-सम्बन्ध है, अन्यथा ये स्फुट छन्द भावैक्य के कारण एक विशेष शीर्षक के अन्तर्गत संकलित हैं। परवर्ती काव्य में रत्नाकर के 'वीराष्टक' आदि प्रसंग भी इसी प्रकार की रचनाएँ है। इनमें प्रयुक्त छन्द नवीन नही।

उपर्युक्त प्रयोगों के अतिरिक्त भारतेन्दु ने कुछ इस प्रकार की मुक्तक-विधाओ में भी

रचना की जिनके पीछे न परम्परा का बल है, और न किसी विशेष साहित्य का प्रभाव। ये प्रयोग एक विशेष प्रकार की स्वच्छन्दता के प्रतीक है। छन्द परम्परा-प्राप्त है, भाषा भी नवीन नही, अभिव्यजना-शैली मे भी किसी प्रकार की उल्लेखनीय नवीनता नही; परन्तु इस प्राचीन सामग्री का नियोजन सर्वथा नवीन ढंग से किया गया है। इन कविताओ के विषय निश्चित रूप से तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति की देन है, अत: सर्वथा नूतन है। साहित्य के क्षेत्र मे गद्य के विकास ने भी इन विधाओ के निर्माण में योगदान दिया है। इस प्रकार का एक प्रयोग ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत-आगमन के अवसर पर 'सुस्वागत-पत्र' शीर्षक मे किया गया है। उनकी स्तुति में दो दोहो से इस कविता का आरम्भ हुआ और तदुपरान्त ही पद्य से कवि गद्य की ओर झुक गया है। राजभक्त हृदय के उद्‌गार उनकी लेखनी द्वारा भावमयी गद्य-शैली मे व्यक्त होने लगे, यह मानो आगामी काव्य-रचना की पृष्ठभूमि थी, अत कवि पुन: इस भावप्रवण गद्य-भूमिका के उपरान्त पद्य-रचना मे प्रवृत्त हो गया है। कवित्त छन्दो मे उनकी महत्ता का वर्णन और स्तुति करने के उपरान्त दोहों मे रूपक अलकार के प्रयोग द्वारा षट्‌ऋतु-वर्णन करते हुए इस कविता की इति हुई है। काव्य-रूप का प्रश्न जहाँ तक है, इसे न स्फुट मुक्तक ही कहा जा सकता है, क्योकि प्रत्येक छन्द परस्पर-सम्बद्ध है, यह कविता प्रबन्ध भी नही कही जा सकती, क्योकि विभिन्न छन्दो की सम्बद्धता किसी कथा व प्रसंग को लेकर नही, स्तुति के प्रशंसात्मक भाव के कारण है। पद्यात्मक निबन्ध की गठन और भाव व विचार की दृढ अन्विति का भी यहाँ अभाव है। गद्य के प्रयोग का भी औचित्य नही। इस प्रकार के प्रयोग उनकी स्वच्छन्द प्रकृति के परिचायक है।

ऐसा ही एक प्रयोग उन्होने स्वर्गवासी प्रिंस अलबर्त की मृत्यु पर 'स्वर्गवासी श्री अलबरत-वर्णन अंतर्लापिका' लिखकर किया। अंतर्लापिका-लेखन की प्रवृत्ति उनसे पूर्व हिन्दी-साहित्य मे अप्राप्य नही। खुसरो ने भी बहुत पहले ऐसे प्रयोग किये थे, परन्तु उन्होने दो पक्तियो से अधिक बडे छन्द मे यह चमत्कार दिखाने का साहस नही किया था। भारतेन्दु ने छप्पय जैसे बड़े छन्द मे यह प्रयोग करके दिखाया है।

उपर्युक्त विधाओ के अतिरिक्त भारतेन्दु ने विभिन्न विषयो पर कुछ लम्बी कविताएँ भी लिखी है। इन कविताओ मे कही एक ही विषय पर पूर्वापर क्रम से आबद्ध एकाधिक छन्द लिखे गए है, तथा कही आद्योपान्त एक ही छन्द की पक्तियो का प्रयोग किया है। प्रथम वर्ग मे 'भारत-भिक्षा', 'राजकुमार शुभागमन वर्णन', 'विजयिनी-विजय-पताका', 'भारत-वीरत्व' आदि कविताएँ, और दूसरे मे 'मानसोपायन' आदि कविताएँ आती है। इन कविताओ को एक ओर शास्त्रीय अर्थ मे मुक्तक नही कहा जा सकता, क्योकि रचित छन्द परस्पर पूर्वापर क्रम से मुक्त नही, उनमे प्रसग और भाव की अन्विति है। दूसरी ओर खण्डकाव्यों के लिए अपेक्षित घटना और निश्चित सीमा तक उसके विस्तार का भी इनमे अभाव है। विषय की दृष्टि से इन कविताओ मे अवसर-विशेष पर पाठ करने के लिए लिखे गए कवि के प्रशसामूलक भाव है—जिनकी अभिव्यक्ति भाव की एकता से निबद्ध एकाधिक मुक्तको मे हुई है, अत: इन्हे सयुक्त मुक्तक कहा जा सकता है, अथवा मुक्तक शब्द के व्यापक अर्थ मे एक भाव-विशेष की एक उचित सीमा तक मुक्त (अन्य प्रसंगो अथवा घटनाओं से स्वतन्त्र) अभिव्यक्ति मानकर इन्हें मुक्तक छन्द नही, अपितु मुक्तक

कविता स्वीकार किया जा सकता है। भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी-साहित्य में या तो स्फुट छन्दो—दोहा, कवित्त, सवैया मे मुक्तक-रचना करने की परिपाटी अधिक प्रचलित रही, अथवा कवियों ने विभिन्न घटनाओं अथवा कृष्ण के जीवन के कथामूलक प्रसगो—दान-लीला, मान-लीला, चीर-हरण आदि को लेकर छोटे-छोटे खण्डकाव्य तथा पर्यायबन्ध लिखे। भाव या विचार-विशेष से पूर्वापर क्रम मे बद्ध, परस्पर अन्योन्याश्रित छन्दो मे, छोटे-बडे आकारो की कविताएँ लिखने का प्रचलन आधुनिक युग मे ही अधिक हुआ। भारतेन्दु की इन कविताओ मे प्रायः दोहा, चौपाई आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। श्री रवीन्द्रसहाय वर्मा ने अपने प्रबन्ध 'हिन्दी-काव्य पर आँग्ल-प्रभाव' मे इन कविताओ को अँगरेजी के 'ओड' अर्थात् संबोधन-गीत की शैली की रचनाएँ स्वीकार किया है। ऐसी मान्यता व्यक्त करने से पूर्व विद्वान् लेखक ने स्वय 'ओड' की परिभाषा देते हुए लिखा है—

"ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार 'ओड' गाने के उद्देश्य से रचित कविता होती थी, किन्तु अपने आधुनिक रूप मे वह कोई भी गीति (Lyric) हो सकती है, जिसे सबोधन के रूप मे तुकान्त अथवा अतुकात ढग से ५० और २०० पक्तियो के मध्य के आकार मे लिखा जाये। ·· भारतेन्दु ने विशेष अवसरो पर पढने के लिए अनेक सबोधन-गीतो की रचना की। उनकी 'वैजयन्ती-विजय पताका', 'भारत-भिक्षा' और 'भारत-वीरत्व' आदि कविताएँ 'ओड' की शैली मे लिखी गई है।"[1]

स्पष्टतः लेखक ने आधुनिक 'ओड' मे गेयता को यद्यपि अनिवार्य तत्त्व स्वीकार नही किया, परन्तु प्रगीत (Lyric) होने के नाते सम्बोधन-गीतियो मे भाव-प्रवणता, आत्मपरक दृष्टिकोण और वैयक्तिक रागात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति होना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त यह कविता निश्चय ही किसी जड अथवा चेतन के प्रति सम्बोधन के रूप मे लिखी जानी चाहिए। अन्यथा सामान्य प्रगीत और सम्बोधन-गीति मे व्यावर्त्तन सम्भव न हो सकेगा। भारतेन्दु की उदाहरण-स्वरूप कथित कविताएँ इन सभी गुणो से शून्य है। कहा नही जा सकता, विद्वान् लेखक की उक्त धारणा का आधार क्या है।

प्रगीत और गीत का अन्तर जितना बाह्य-स्वरूप का है, उतना आन्तरिक आत्मा का नही। गीत के लिए गेयता—अर्थात् स्वर का सगीत, अनिवार्य है, प्रगीत के लिए नही। परन्तु पाठ्य मुक्तक और प्रगीत मे आत्मा का अन्तर है। प्रथम मे कवि का दृष्टिकोण वस्तुपरक हो सकता है, वह आचार, नीति के उपदेश दे सकता है; परन्तु प्रगीत-काव्य में आत्मद्रव, भावना का सगीत व रागात्मकता का होना अनिवार्य है। पन्त की दो कविताओ—'मौन-निमन्त्रण' तथा 'ग्राम-युवती' मे यह पारस्परिक अन्तर स्पष्ट है। पहली प्रगीत का सुन्दर उदाहरण है और दूसरी वस्तुपरक मुक्तक का। दोनो कविताओ का पारस्परिक अन्तर आत्मा का है—बाह्य कलेवर का उतना नही। यद्यपि कोई भी काव्य बिना कवि की आत्मा का सस्पर्श पाये अभिव्यक्ति का विषय नहीं हो सकता, कवि वस्तुजगत् का चित्रण भी निजी अनुभूति और दृष्टिकोण के आधार पर करता है। इसी प्रकार बाह्य-जगत् से सर्वथा असम्पृक्त, आधारशून्य, कवि की आत्माभि-

---

१. हिन्दी-काव्य पर आंग्ल प्रभाव : रवीन्द्रसहाय वर्मा, प्रथम सस्करण, पृष्ठ ८

व्यक्ति काव्य नही हो सकती। कही न कही, प्रत्यक्ष नही तो परोक्ष रूप मे, प्रेरक अनुभूति के मूल मे बाह्य-जगत् का सश्लेष अनिवार्य है। परन्तु काव्यरूप का निर्णय करते समय हमें ध्यान मे रखना होता है कि कविता-विशेष मे वस्तुपरक अभिव्यक्ति है या आत्मपरक, कवि के प्रेरक भाव में बहिर्जगत् महत्त्वपूर्ण है या अन्तरात्मा, वह इतिवृत्तात्मक वर्णन करता है या आत्मनिष्ठ।

भारतेन्दु की 'भारत-भिक्षा' कविता राजकुमार अलवर्त के भारत-आगमन के अवसर पर दोहा-चौपाई आदि छन्दो मे लिखी गई प्रशस्तिमूलक कविता है। उनके आगमन पर भारत में होने वाली प्रसन्नता, स्वागत के आयोजन आदि का अत्यधिक वस्तुपरक इतिवृत्तात्मक वर्णन है। परिस्थिति का इतना स्थूल वर्णन किसी भी इतिवृत्त की तुलना मे श्रेष्ठ सिद्ध होगा—

सिरन झुकाइ सलाम करि, मुजरा करहु जुहारि।
जटितहु जूतन त्यागि के, स्वच्छ बूट पग धारि॥[1]

न इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति प्रगीत की आत्मा के अनुकूल है और न दोहा-छन्द।

कविता के आरम्भ की पक्ति—

अहो आज का सुनि परत, भारत भूमि मँझार।

का 'अहो' शब्द सम्बोधन-वाचक नही, अपितु विस्मय-बोधक है। अत इस कविता का अन्तर्भाव अँगरेजी की 'ओड' शैली पर लिखी गई कविताओ मे नही किया जा सकता। दूसरी कविता 'भारत-वीरत्व' अफगान-युद्ध के अवसर पर भारतीयो को अँगरेजो के पक्ष से लडने के लिए उत्साहित करने के हेतु लिखी गयी। कवि का दृष्टिकोण प्रसग-भेद मे उसी प्रकार का है जैसा 'भारत-भिक्षा' कविता की रचना के समय था। तीसरी कविता 'वैजयन्ती-विजय-पताका' (कदाचित् लेखक का अभिप्राय 'विजयिनी-विजय-पताका' मे है) का स्वर भी पहली दो रचनाओ से भिन्न नही। अवसर पृथक् है—इसकी रचना सन् १८९२ ई० मे अँगरेजो की मिस्र पर विजय-प्राप्ति के अवसर पर हुई, परन्तु कवि का दृष्टिकोण वही इतिवृत्तात्मक वस्तुपरक है।

हमारे विचार से इस प्रकार की मान्यता को स्वीकार करने के लिए 'ओड' शब्द मे अति-व्याप्ति-दोष की प्रतिष्ठा करनी होगी, या 'ओड' सम्बन्धी धारणा के साथ बलात्कार करना होगा। आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे 'ओड' का आरम्भ भारतेन्दु की इन कविताओ से स्वीकार नही किया जा सकता।

इन कविताओं को आनन्दवर्धन द्वारा कथित विधा 'पर्यायबन्ध' के अन्तर्गत रखा जा सकता है। बाह्याकार की दृष्टि से इन्हे सयुक्त मुक्तक भी कह सकते है। परन्तु यह शब्द सामान्य रूप से सभी छोटी-बडी कविताओ के लिए प्रयोग मे लाया जा सकता है, इससे कविता की भावगत या शैलीगत विशेषता का आभास नही मिलता। अत. प्रसग-विशेष (वसन्तादि) के वर्णन मे प्रवृत्त रचनाओ को आचार्य आनन्दवर्धन ने पर्यायबन्ध कहा। ये कविताएँ भी अवसर-विशेष के उपलक्ष्य मे लिखी गई वर्णन-प्रधान कविताएँ है, अत· इन्हे वस्तुवर्णनात्मक लघु प्रबन्ध अथवा पर्यायबन्ध कहना ही उचित होगा। पद्यात्मक निबन्ध इन्हे इसलिए नही कहा जा सकता कि इनमे विचार, चिन्तन उतना नही, जितना प्रशस्तिमूलक भाव प्रधान है। साथ ही मूल विषय के प्रति-

---

१. भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृष्ठ ७०३

पादन और सुदृढ भावान्विति पर इतना बल प्रदान नहीं किया गया है, जितना उल्लासमय और स्फूर्तिदायक भावो की अभिव्यक्ति पर।

ऊपर जिन साहित्यिक विधाओ का विवेचन किया गया है, इनके अतिरिक्त भारतेन्दु ने मुक्तक रूपो मे कुछ लोक-साहित्य से प्रभावित रचनाएँ भी की। रागो मे बँधी होली एक ओर, और दूसरी ओर 'डफ की होली' लिखकर उन्होंने सगीत-मर्मज्ञता के साथ अपनी रसिकता का परिचय दिया।

सारांश मे भारतेन्दु के साहित्य मे विचित्र वैविध्य है। मुक्तक के लगभग सभी परम्परागत काव्य-रूप उनकी रचनाओ मे प्राप्त है। भाव की दृष्टि से कही प्रतिपाद्य विषय, मूलभूत भावना भी परम्परागत है और कही युग-चेतना के अनुसार परिवर्तित हो गई है। काव्य-रूपो की दृष्टि से भी यथासभव उन्होने बहुत कुछ उर्दू-साहित्य से, एव नाम गिनाने को बँगला और अँगरेजी साहित्य से भी लिया, परन्तु भारतेन्दु के काव्य की आत्मा और बाह्य परम्परागत ही है। उनके साहित्य मे उच्च कोटि की काव्य-कला कृष्ण-भक्त कवियो की गेय पद शैली और रीतिकालीन कवियो की शृगार-प्रधान कवित्त सवैये की शैली मे ही दृष्टिगत होती है। ये दोनो शैलियाँ भारतेन्दु की रसिकहृदयता, सगीत-मर्मज्ञता और अनुरागी स्वभाव के अधिक अनुकूल थी। शेष रचनाओ मे विविधता का आग्रह और चमत्कार की आकाक्षा, भावाभिव्यक्ति की सहज प्रेरणा से अधिक प्रबल प्रतीत होती है। सगीत पर उनका अप्रतिम अधिकार और काव्य-रचना की अद्‌भुत क्षमता यदि कुछ विशेष सरणियो मे ही प्रवाहित होती, तो विस्तार मे वे जो कुछ खोते, गहराई मे उससे कही अधिक प्राप्त करते। काव्य-शैली की दृष्टि से रूप-विधाओ मे उनकी देन हिन्दी-साहित्य को विशेष नही है। उन्होने प्राय: जीवित परम्परा को आगे बढाने और काल के गर्त मे विस्मृत रूप-विधाओ को पुनरुज्जीवन प्रदान करने का कार्य ही अधिक किया है, ऐसे अनेक प्रयोगो का कोई तर्कसम्मत औचित्य भी नही है।

भारतेन्दु ने जिस परम्परा का निर्वाह अपने काव्य मे किया और जिस प्रकार उन्होने उर्दू-साहित्य का नाममात्र के लिए तथा अँगरेजी-साहित्य का नही के बराबर प्रभाव ग्रहण किया, लगभग वही स्थिति उस युग के अन्य कवियो की है। अन्य कवियो की भी अधिकांश कविता पुरानी परिपाटी की ही है। नवीन प्रयोग चिन्ताधारा, विषय, दृष्टिकोण के क्षेत्र मे जितने दिखायी पडते है उतने रूप-विधा के क्षेत्र मे नही।

भक्ति-सम्बन्धी सरल पद-रचना करने वालो मे ललितकिशोरी विशेष उल्लेखनीय है। भारतेन्दु के अतिरिक्त शृगारपरक कवित्त-सवैये लिखने वाले पुरानी परिपाटी के अन्य कवि हैं उपाध्याय बदरीनारायण 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहनसिह और प० प्रतापनारायण। बदरीनारायण के सवैयो मे समस्या-पूर्ति का आग्रह है।

इन परम्परागत विधाओ के अतिरिक्त, उर्दू-साहित्य से जिस प्रकार भारतेन्दु ने प्रभाव ग्रहण कर गजलो और शेरो की रचना की थी, ललितकिशोरी ने भी गजलो की रचना की। भारतेन्दु ने 'दशरथ-विलाप' नाम की अपनी खड़ी बोली की रचना में फारसी छन्द का प्रयोग पहले ही किया था।

इशाअल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' में कुछ ठेठ खड़ी बोली के पद्यो की रचना

उर्दू के छन्दो मे की। नागरीदास मे तो स्पष्ट ही फारसी की गजलबाजी के साथ इश्क की फारसी पदावली का भी शौक दिखाई पडा।

इसके उपरान्त धीरे-धीरे उर्दू के छन्दो का प्रयोग बढने लगा। मिरजापुर के तुकनगिरि गोसाई ने ज्ञानोपदेश देने के लिए लावनी की लय का प्रचलन किया था। इन लावनियो मे बाद मे उर्दू के छन्द ही अधिकतर लिये जाने लगे। 'खयाल' भी लावनी के ही अन्तर्गत आते है। श्रीधर पाठक का 'एकान्तवासी योगी' इसी लावनी के ढग पर लिखा गया।

उर्दू और फारसी के अतिरिक्त अँगरेजी साहित्य से कुछ काव्य-रूपो का ग्रहण हिन्दी-साहित्य मे हुआ। इनमे एक था 'एलेजी' (Elegy) अथवा शोक-गीति। आरम्भिक अँगरेजी-साहित्य मे एलेजी की रचना एक छन्द विशेष--एलेजियक (Elegiac), मे की जाती थी। बाद मे यह शब्द किसी भी शोक-सम्बन्धी गीत के लिए रूढ हो गया। हिन्दी मे इस रूप-विधा का सूत्रपात कामता-प्रसाद गुरु द्वारा 'ग्रे' की 'Elegy written in a country churchyard' के अनुवाद से हुआ। तदुपरान्त 'प्रेमघन' ने भारतेन्दु की मृत्यु पर 'शोकाश्रुबिन्दु' नामक सुन्दर शोकगीति की रचना की। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द आदि ने भी शोक-गीतियाँ लिखी।

अँगरेजी काव्य के प्रभाववश एक अन्य उल्लेख-योग्य काव्य-रूप का ग्रहण हिन्दी-साहित्य मे हुआ, यह था 'सॉनेट'। अँगरेजी 'सॉनेट' की चौदह पक्तियो का बन्धन स्वीकार करते हुए श्रीधर पाठक ने अपनी रचना 'श्रान्त पथिक' मे समर्पण (dedication) के रूप में चौदह पक्तियो की एक कविता लिखी।

भारतेन्दु के प्रसग मे जैसा पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, आधुनिक काल से पूर्व, मुक्तको मे एक पद्य मे ही स्फुट रचना की प्रणाली अधिक प्रचलित थी—'कुछ दूर तक चलती हुई विचारो और भावो की मिश्रित धारा के रूप मे छोटे-छोटे प्रबन्धो या निबन्धो की चाल न थी।' भारतेन्दु ने जो कविताएँ अवसर-विशेष पर पढने के लिए लिखी, उनमे स्थिति-वर्णन और भावाभिव्यक्ति अधिक प्रधान है। उनके सहयोगियो मे से प० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेन्दु का ही अनुसरण किया, परन्तु भक्त और अनुयायी प० प्रतापनारायण मिश्र ने 'बुढापा', 'गोरक्षा' आदि जैसे सामान्य विषयो पर रचनाएँ की। इन रचनाओ मे विचार, भाव और विनोद का अपूर्व सयोग है, शैली मे एक विचित्र आत्मीयता है, अर्थात् ये रचनाएँ निबन्ध की शैली के अधिक निकट है। इस प्रकार जहाँ भारतेन्दु-युग मे गद्य-निबन्धो का सूत्रपात हुआ, वहाँ इस प्रकार के विषयो पर पद्यबद्ध निबन्ध भी लिखे गए। शैली के अतिरिक्त इन रचनाओ मे निबन्ध के गुण वर्तमान है। इन्हे कवि के मूलभूत दृष्टिकोण और अभिव्यक्ति की विशेष प्रणाली के कारण वस्तुवर्णनात्मक लघु प्रबन्ध या पर्यायबन्ध न कहकर आ० शुक्ल के शब्दो मे 'पद्यात्मक निबन्ध' कहना ही अधिक समीचीन होगा। इनकी आत्मा भारतेन्दु-विरचित प्रशस्ति-मूलक कविताओं से भिन्न है। यह पद्यात्मक निबन्धो की शैली इस युग की निजी विशेषता है। रूप-विधान की दृष्टि से यह नवीन प्रयोग उस युग की परम्परा-पालन की सहज प्रवृत्ति का अपवाद है।

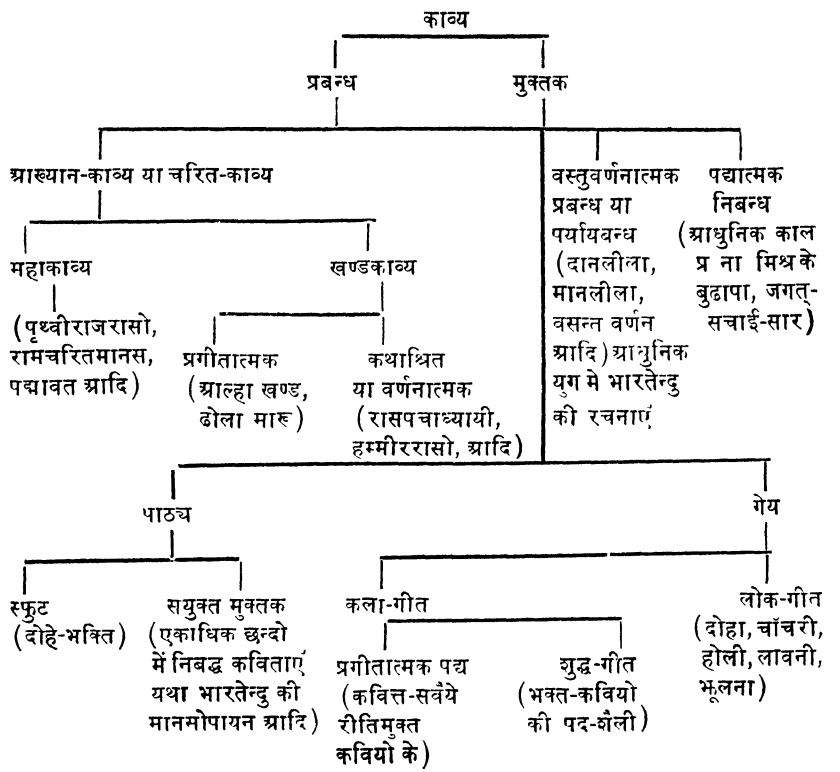
एक और नवीन प्रयोग, रूप-विधान की दृष्टि से नही, अपितु पद्य-रचना की दृष्टि से प० अम्बिकादत्त व्यास ने किया। उन्होने कुछ 'बेतुके पद्य' या अतुकान्त छन्द लेखनी आजमाने के लिए बनाये, परन्तु इन्हे सफलता न मिली। ये छन्द कुछ पुरानी पत्रिकाओं मे छपे थे। इस

दिशा मे उस युग मे अन्यत्र कोई विशेष उत्साह दिखायी नही दिया—कालान्तर मे यह परिपाटी नवीन उत्साही कलाकारो मे बहुत लोकप्रिय रही।

लोक-साहित्य से विशेष उल्लेखनीय प्रभाव इस काल के कवियो ने ग्रहण नही किया। भारतेन्दु ने कुछ वसन्त, होली आदि गाने की चीजे लिखी थी। इसी प्रकार लावनी की लय यद्यपि लोक-साहित्य के अधिक निकट है, परन्तु बाद मे उर्दू छन्दो के प्रयोग और 'ख्याल' की गायकी के प्रवेश से उस पर साहित्यिक मुलम्मा चढ गया। होलियो के साथ कुछ कजलियाँ भी इस युग मे लिखी गई। गाने की चीजों मे ही ये प्रयोग विशेषतया दिखायी पडे। 'ललितकिशोरी' और 'ललितमाधुरी' ने 'झूलना' छन्दो मे इसी ढग की कुछ रचनाएँ की।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि मे ही विवेच्य युग की कविता (१९००-५७) का विकास हुआ। अब तक हिन्दी-साहित्य का रूप-विधाओ की दृष्टि से जो सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया, वह इस दृष्टिकोण से कि हमारे सम्मुख इस काव्य को परम्परा अथवा विरासत के रूप मे मिलने वाली रूप-विधाओ की रूपरेखा स्पष्ट हो जाये जिससे नवीनता के निर्धारण का कार्य सरल हो सके।

सन् १९०० से पूर्व हिन्दी-साहित्य मे उपलब्ध काव्य-रूपो का स्वरूप निम्नलिखित तालिका से इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है —



उपर्युक्त शैलियाँ हिन्दी-साहित्य के निजी काव्य-रूप थे। जिनका प्रयोग १९०० ई० से पूर्व उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त मुक्तक काव्य-रूपों मे उर्दू के 'शेर' और अँगरेजी के 'सॉनेट' तथा गीति-काव्य के क्षेत्र मे उर्दू की 'गजल' और अंगरेजी की 'एलेजी' भी साहित्य मे प्रवेश पा चुकी थी।

खण्ड १

प्रबन्ध या निबद्ध काव्य

प्रथम अध्याय

महाकाव्य

काव्य का विभाजन हमने अनेक भेदो-उपभेदो मे न करके 'प्रबन्ध' और 'मुक्तक' मे क्यो किया ? यह भूमिका मे स्पष्ट किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त यह विभाजन निम्नाकित कारणो को दृष्टि मे रखकर किया गया है—

१. विवेचन अधिक स्पष्ट और सुगम होगा तथा काव्य-कृतियो के रूप-निर्धारण मे उलझन के लिए कम अवकाश रहेगा।

२ कोई रचना-विशेष, अपने मूल रूप मे किस प्रकार की रचना है, और उस प्रकार-विशेष मे उसकी निजी विशेषताएँ क्या है ? इसका स्पष्टीकरण उपर्युक्त विभाजन के अनुसार अधिक सरलता व स्पष्टता से हो सकेगा।

३ परम्पराप्राप्त तत्त्वो से, नवीन उद्भावनाओ और उपलब्धियो का व्यावर्त्तन अधिक सुगमता से किया जा सकेगा।

काव्य के इन दोनो भेदो मे से प्रबन्ध, और प्रबन्ध के विविध रूपों मे से महाकाव्य की श्रेष्ठता और महत्ता निर्विवाद रूप से भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-जगत् मे स्वीकृत है। इसी काव्य-रूप के लक्षण-विवेचन से हम विषयारम्भ करेगे।

यह बात सिद्धान्त और व्यवहार दोनो से सिद्ध हो चुकी है कि लक्षणो का निर्माण लक्ष्य ग्रन्थ देखकर किया जाता है। हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञ पाठको से यह बात भी छिपी नही कि मौलिक लक्षण-ग्रन्थो का हिन्दी मे लगभग अभाव है। काव्यशास्त्र-सम्बन्धी सभी विषयो के लिए अब तक प्राय. सस्कृत काव्यशास्त्र का ही आधार ग्रहण किया जाता रहा है, परन्तु अपने समय के अनुसार लक्ष्य-ग्रन्थों को दृष्टि मे रखकर बनाये गए ये लक्षण साहित्य-रचना के शाश्वत मानदंड कैसे स्वीकार किये जा सकते है ? प्रत्येक युग और परिस्थिति के साथ जीवनगत मूल्यो और विचारधारा मे अन्तर प्रस्तुत होता है। जो एक युग मे महान् था वह दूसरे में नही, और सम्भवतः जिसे हम आज महान् स्वीकार करते हैं वह भविष्य मे नही रहेगा। प्रत्येक युग की हर विषय-सम्बन्धी मान्यताओ और धारणाओ मे परिवर्तन होता जाता है। अतः आज भी बहुत-से काव्य-ग्रन्थ हमारे सामने इस रूप मे विद्यमान है, जिन्हे परम्परागत लक्षणो के आधार पर महाकाव्य स्वीकार नही किया जा सकता, परन्तु सहृदय पाठक का जिज्ञासु हृदय बार-बार प्रश्न करता है कि वे महाकाव्य नही तो क्या है ? स्थूल बाह्य लक्षण न सही, परन्तु उन काव्यो की आत्मा और कला दोनो उनकी महानता की परिचायक है। इसके विपरीत अनेक रचनाओ मे महाकाव्य के निर्दिष्ट लक्षण बहुलाश मे परिपालित होने पर भी, न उनकी आत्मा महान् है

और न अभिव्यक्ति, अतः वर्तमान साहित्य-अध्येता के सम्मुख दो मार्ग सम्भव है—प्रथम सम्भावना यह है कि हम प्राचीन लक्षणो को स्वीकार कर 'अपवाद' रूप मे इन ग्रन्थो का स्थान निर्धारित करते जाएँ तथा दूसरा सम्भव मार्ग यह है कि समस्त सीमाओं और सम्भावनाओं को दृष्टि मे रखते हुए कुछ ऐसे लक्षणो का निर्माण करे जो अपेक्षाकृत व्यापक हो। केवल मूलभूत तत्त्वो का उनमे अन्तर्भाव हो, जिससे स्थिति और आवश्यकता के अनुसार उनमे सकोच-विस्तार सभव हो सके। निश्चय ही ऐसे लक्षण अपेक्षाकृत अधिक स्थायी और व्यापक होगे, और यही मार्ग (लक्षण-निर्माण) अधिक श्रेयस्कर और काम्य है। सकेत करना अनुचित न होगा कि इस दिशा मे कतिपय विरल प्रयत्न मनीषियो द्वारा किये भी गए है।

नवीन लक्षण-निर्माण से पूर्व प्राचीन एव प्रचलित धारणाओ का अध्ययन अनिवार्य है। हिन्दी-साहित्य की वर्तमान गतिविधि पर एक ओर सस्कृत साहित्य की समृद्ध परम्परा का, और दूसरी ओर विदेशी साहित्य के सम्पर्क के कारण पाश्चात्य चिन्ताधारा का प्रभाव रहा है। सिद्धान्त और व्यवहार, दूसरे शब्दो मे काव्यशास्त्र और काव्य-रचना, दोनो ही क्षेत्रों मे यह प्रभाव घटित हुआ। अतः समुचित न्याय करने के हेतु उपर्युक्त परम्पराओ मे महाकाव्य-सम्बन्धी धारणा का परिचय प्राप्त करना आवश्यक होगा।

संस्कृत के आचार्यों की महाकाव्य-विषयक धारणा

महाकाव्य के विषय मे सर्वप्रथम निर्देश करने वाले आचार्य भामह ने अपने लक्षण मे केवल महाकाव्य के मूलभूत तत्त्वों का अत्यन्त सक्षेप मे निरूपण किया। उनके लक्षण मे न वर्णनीय विषयो की विस्तृत सूची थी और न ही उन्होने बाह्य रूढियाँ स्थिर करने का प्रयत्न किया। महाकाव्य की रूप-सम्बन्धी विशेषताएँ उनके अनुसार निम्नलिखित है—

१ सर्गबद्धता।

२ अग्राम्य अर्थात् नागर पदावली तथा अलकृति।

३. जीवन के विविध पक्षों व घटनाओं का अकन।

४. नाट्य-सन्धियो का सद्भाव।

५. अति व्याख्या का अभाव—दूसरे शब्दो मे सगठन एव प्रभावान्विति।

६. ऋद्धिमत्ता।[1]

भामह के उपरान्त दूसरे प्रमुख आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' मे पूर्ववर्ती आचार्य के लक्षणो का अन्तर्भाव करने के साथ ही अनेक अन्य स्थूल नियमों और गौण तत्त्वो की विस्तृत सूची उक्त लक्षणो मे जोड़ दी। परिणाम यह हुआ कि महाकाव्य के अनिवार्य तत्त्व व मूलभूत विशेषताएँ पीछे पड गई, और बाह्य लक्षणो और गौण विशेषताओ की एक बड़ी सूची तैयार

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्चयित्।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्त नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥
भामह : काव्यालंकार १-१९, २०, पृष्ठ ३

हो गई। इन्ही लक्षणों को दीर्घकाल तक प्रमाण मानकर कवि और आचार्य काव्य-ग्रन्थो और काव्य-शास्त्र की रचना करते रहे। फलत. कालान्तर में इन लक्षणों में अतिव्याप्ति या अव्याप्ति का दोष सामने आया। 'रामायण', 'रामचरितमानस' आदि मान्य महाकाव्य भी इन लक्षणों की दृष्टि से महाकाव्य स्वीकार नही किये जा सकते, 'पृथ्वीराजरासो', 'पद्मावत' और 'कामायनी' जैसे ग्रन्थो का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसके साथ महान् आत्मा के अभाव मे केवल महाकाव्य के बाह्य लक्षणो की खानापूरी करके कवि-वर्ग यदा-कदा अपनी रचनाओं को महाकाव्य उद्घोषित करता रहा है।

दण्डी द्वारा निर्दिष्ट लक्षण ही पन्द्रहवी शताब्दी तक मान्य रहे, और उन्ही' में कुछ जोड-तोडकर परवर्ती आचार्यो की लक्षण-परम्परा का विकास होता रहा। परन्तु पन्द्रहवी शताब्दी मे विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' की रचना काव्यशास्त्र के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उन्होने विभिन्न काव्यागो का निरूपण करते हुए कुछ इस प्रकार पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समाहार कर दिया कि उनका यह ग्रन्थ पूर्णत मौलिक न होते हुए भी सस्कृत काव्य-शास्त्र के अनेक प्रश्नो का सारभूत पुनराख्यान व विवेचन होने के नाते विशेष मान्य रहा। यही बात महाकाव्य के लक्षण के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। परन्तु कुछ ही समय पूर्व डाक्टर शम्भूनाथसिह ने अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास' मे इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि सातवी शताब्दी मे होने वाले आचार्य रुद्रट का महाकाव्य-लक्षण, दण्डी और विश्वनाथ से भिन्न, व्यापक और माननीय है। उक्त मान्यता की पुष्टि मे उन्होने कतिपय तर्क प्रस्तुत किये है। उनका कथन है—

"किन्तु दण्डी के बाद सातवी शताब्दी के दूसरे महान् आचार्य रुद्रट ने महाकाव्य की जो परिभाषा अपने काव्यालकार मे दी है, वह संस्कृत के अन्य सभी आलकारिको से बहुत कुछ भिन्न, तथा महाभारत, रामायण और प्राकृत-अपभ्रश के महाकाव्यो को भी ध्यान मे रखकर बनायी गयी प्रतीत होती है। यही नही रुद्रट की महाकाव्य-सम्बन्धी मान्यता यूरोपीय महाकाव्यो के लक्षणो को भी पूर्णतया व्यक्त करती है। '''रुद्रट के महाकाव्य-सम्बन्धी लक्षण यूरोपीय वीर-काव्यो के लक्षणो से भी मिलते है क्योकि उन्होने नायक और प्रतिनायक दोनो का वर्णन, दोनो का परस्पर युद्ध और नायक की विजय को बहुत महत्त्व दिया है और उनमे अवान्तर कथाओ का होना भी एक लक्षण बताया है। अन्य बाते उन्होने दण्डी के समान ही रखी है। रुद्रट की परि-भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमे युग-जीवन के विविध रूपों, पक्षों और घटनाओ को चित्रित करने की बात बहुत स्पष्ट रूप मे और विस्तार के साथ कही गयी है। अतः इस परिभाषा को मानने पर केवल खानापूरी करने वालो का काम किसी प्रकार नही चल सकता था। सम्भवत इसीलिए दण्डी और विश्वनाथ कविराज की परिभाषाओं का जितना प्रचार हुआ उतना भामह और रुद्रट की परिभाषा का नही, क्योंकि भामह ने तो सूत्र रूप मे महाकाव्य के मूल तत्त्वो को कह दिया था और रुद्रट ने उनका पूरा विश्लेषण ही दे दिया जिसे पूरा-पूरा अपनाकर चलना सामन्ती युग के दरबारी कवियो के लिए सम्भव नही था।"[1]

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डा० शम्भनाथसिह, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ५१-५३

डा० शम्भूनाथसिंह की उपर्युक्त मान्यता अशतः स्वीकार की जा सकती है। निश्चय ही रुद्रट की परिभाषा दण्डी और विश्वनाथ आदि आचार्यों से भिन्न है। यह भी सत्य ही है कि उन्होने कुछ ऐसे लक्षणो की ओर निर्देश किया है जो अपेक्षाकृत व्यापक है, अर्थात् उनकी परिभाषा की सीमा मे विश्वनाथ और दण्डी की परिभाषाओं की अपेक्षा अधिक ग्रन्थों का समावेश किया जा सकता है। परन्तु इस बात से यह निष्कर्ष निकालना कि उनके द्वारा प्रस्तुत लक्षणों की पूर्ति अधिक कठिन थी, और इसी कारण उनकी परिभाषा का प्रचार नही हुआ, बहुत उचित प्रतीत नहीं होता। लेखक ने स्वय स्वीकार किया है कि उनके लक्षणो मे व्यापकता अधिक है—स्वभावत· उनकी पूर्ति भी अपेक्षाकृत सरल होनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त मौलिकता के साथ कही-कही उन्होने दण्डी, भामह और विश्वनाथ की परिभाषाओ मे व्यग्य लक्षणो को वाच्य बना दिया है—उदाहरणार्थ महाकाव्य की कथा मे अवान्तर कथाओ का समावेश, जिस पर उन्होने बल दिया है, कोई मौलिक मान्यता नही। अन्य आचार्यों के नाटच-सन्धियो की स्वीकृति करने से नाटक के समान अर्थप्रकृतियो और कार्यावस्थाओं की स्वीकृति कथानक मे स्वतः हो जाती है। अर्थप्रकृतियो के रूप मे पताका, प्रकरी आदि अवान्तर कथाओं का सयोजन स्वय ही मूलकथा के साथ हो जायगा। इनके अतिरिक्त मूलकथा से असम्बद्ध कथाओ का समावेश प्रबन्ध-निर्वाह और कथा-सगठन की दृष्टि से कभी भी शुभ नही हो सकता।

जहाँ तक नायक और प्रतिनायक के परस्पर सघर्ष-वर्णन और नायक की विजय के उल्लेख का प्रश्न है—उनकी यह मान्यता पाश्चात्य वीरकाव्यों के लक्षणो से कैसे मिलती है? यह भी बहुत स्पष्ट नही हो पाया। निश्चय ही पाश्चात्य चिन्ताधारा मे नायक के जीवन मे सघर्ष और प्रतिनायक आदि के वर्णन पर बल दिया गया है, परन्तु इस सघर्ष की चरम परिणति नायक की विजय मे हो, इस प्रकार का वहाँ कोई निश्चित विधान नही। पाश्चात्य महाकाव्यो के नायक, जीवन मे दुर्घटना अथवा दैवी कोप के भाजन बनकर अन्त मे असफल भी हो सकते है। इसके विपरीत महाकाव्य मे किसी-न-किसी फल की नायक द्वारा उपलब्धि भारतीय महाकाव्य का अनिवार्य लक्षण है। काव्य का अन्त सुख मे ही होना चाहिए, यह धारणा भारतीय चिन्ताधारा मे इस प्रकार अनुस्यूत है कि आचार्यों ने इसके पृथक् कथन की चेष्टा नही की, परन्तु हमारी चिन्ताधारा मे (विशेषत· प्राचीन) जीवन मे सघर्ष और असफलताओ की सम्भावना की अपेक्षा शान्ति, सुख और सिद्धि पर सदा बल दिया गया। मूलतः आनन्दवादी चिन्तन-प्रणाली मे सदा नायक और प्रतिनायक—सत् और असत् पक्ष के प्रतिनिधि पात्रो के रूप मे देखे गए और इन दोनो का परस्पर सघर्ष जीवन के मगल के लिए सात्विक और तामसिक मनोवृत्तियो के सघर्ष के रूप मे चित्रित किया गया—अन्त मे सदा विजय सत् पक्ष के हाथ आई। इस प्रकार रुद्रट की यह मान्यता भारतीय लक्षणो के ही अधिक अनुकूल है। अन्तर केवल इतना है, जिस बात का अन्य आचार्यों ने स्पष्टीकरण नही किया था, उसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे कह दिया। यह निश्चय ही उनकी सिद्धि है। अन्य आचार्यों की परिभाषा में नायक के अतिरिक्त अन्य पात्रो का उल्लेख भी नही किया गया है। परन्तु आज के युग में रुद्रट की इस मान्यता को विशेष महत्त्व नही दिया जा सकता, क्योंकि परिस्थितियो और विभिन्न सभ्यताओ के परस्पर सम्मिलन से आज जीवन के मूल्य सर्वथा परिवर्तित हो चुके है। आज के

जीवन मे महाकाव्य मे न प्रतिनायक की स्थिति अनिवार्य है (यथा कामायनी) और न अन्त में नायक की सफलता। कैसी भी स्थिति मे कवि को पाठक के लिए एक आदर्श अथवा युग-सन्देश छोडना चाहिए, यही महत्त्वपूर्ण है और सब-कुछ गौण।

डा० शम्भूनाथ के अनुसार रुद्रट की परिभाषा की सबसे बडी विशेषता है कि उसमें युग-जीवन के विविध रूपो, पक्षो और घटनाओ को चित्रित करने की बात बहुत स्पष्ट रूप मे और विस्तार के साथ कही गई है। जहाँ तक वर्ण्य विषयो की सूची का प्रश्न है इस सम्बन्ध मे अस्पष्ट न दण्डी की परिभाषा है और न विश्वनाथ की। हाँ, रुद्रट की परिभाषा मे निश्चित रूप से विस्तार अधिक है, परन्तु जीवन के विविध प्रसगो और व्यापारों की सूची बनाना, और विशेष वस्तुओ और घटनाओ का ब्यौरा प्रस्तुत करना और अधिक अपवादो को ही आमन्त्रण देना है, क्योकि इस प्रकार के प्रसग और विषय विविध और असीम होते है। महाकाव्य के लिए उनकी सीमा निर्धारित नही की जा सकती। विषय से सम्बन्धित और घटनानुकूल वर्णनो के चुनाव की स्वतन्त्रता वस्तुत कवि को होनी चाहिए। इस दिशा मे जिन वस्तुओ के नाम विश्वनाथ ने गिनाए है न वही पर्याप्त है, और न रुद्रट की सूची। दोनो मे ही अपवादो का पूरा अवकाश है। किसी विशेष महाकाव्य मे दोनो के द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों से भिन्न प्रसगो का ग्रहण भी हो सकता है। परिभाषा के लिए इस प्रकार के बाह्य और अस्थिर लक्षणो का निर्माण ही अनावश्यक है। डा० शम्भूनाथसिह का यह कथन अवश्य ही अक्षरशः सत्य है कि भामह ने सूत्र-रूप मे महाकाव्य के मूल तत्त्वो और स्थायी लक्षणो की ओर सकेत किया था। दण्डी ने उसका अपने ढग से विस्तार किया और रुद्रट ने अपने। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व जिसकी ओर भामह ने सकेत किया था और उसका विस्तार या विश्लेषण करना अनिवार्य था, परवर्ती सभी आचार्यो द्वारा भुला दिया गया और वह था महाकाव्य की शैली के सम्बन्ध मे निर्देश। इस ओर न रुद्रट ने ध्यान दिया और न दण्डी एव विश्वनाथ ने।

डा० सिह के अनुसार रुद्रट की परिभाषा में निर्दिष्ट रूपविषयक लक्षण इस प्रकार है—

"१ महाकाव्य मे उत्पाद्य या अनुत्पाद्य, कोई लम्बी पद्यबद्ध कथा होती है।

२ उसमे प्रसगानुकूल अवान्तर कथाएँ होती है, अर्थात् उसमे पुराण और कथा-आख्यायिका के भी तत्त्व होते है।

३ कथा सर्गबद्ध और नाटकीय तत्त्वो से युक्त होती है।

४ उसमे जीवन की समग्रता का चित्रण होता है और किसी प्रधान घटना—जैसे युद्ध या साहसिक कार्य के आश्रय से अलकृत वर्णन, प्रकृति-चित्रण और विभिन्न नगरो, देशो और भुवनो (स्वर्गादि) के वर्णन का विधान होता है।

५ उसमे प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।

६ उसमे अन्त मे नायक की ही विजय दिखायी जाती है, प्रतिनायक की नही।

७ उत्पाद्य महाकाव्यो मे प्रारम्भ मे सन्नगरीवर्णन और नायक के वश की प्रशसा होती है।

८ उसमे अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्व होते है पर मनुष्यकृत असम्भव या अस्वाभाविक घटनाएँ नही होती।"[1]

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डा० शम्भूनाथसिह, पृष्ठ ५३-५४

उपर्युक्त मत मे कुछ बाते विश्वनाथ से भिन्न और उल्लेखनीय है। ऐसी पहली मान्यता कथानक-सम्बन्धी है। विश्वनाथ ने जहाँ कथा को इतिहास से गृहीत और सज्जनाश्रित ही स्वीकार किया है, वहाँ रुद्रट ने कथा के अनुत्पाद्य और उत्पाद्य दोनो रूपो को महाकाव्य के लिए उचित माना है। वस्तुतः यह ठीक भी है। इतिहास का सत्य देश और काल की सीमाओं मे बद्ध होता है। इसी प्रकार देश-विशेष की सदाश्रित कथाएँ उसकी निजी विभूति होती है। काव्य का सत्य सार्वभौमिक और देश-काल की सीमाओ से मुक्त होता है। एक देश का इतिहास तथा लोकप्रसिद्ध कथाएँ दूसरे देश के लिए उतनी ही रसात्मक होती है जितनी कोई अन्य काल्पनिक अथवा उत्पाद्य कथा, क्योकि एक देश का इतिहास और दन्तकथाएँ दूसरे देश-निवासी के ज्ञान का विषय नही होती, परन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि एक देश मे रचित काव्य-विशेष को दूसरे देश के पाठक महाकाव्य स्वीकार नही करेगे, क्योंकि उसकी कथा के ऐतिहासिक अथवा लोकप्रसिद्ध स्वरूप से उनका परिचय नही। उनके लिए उस काव्य की कथा उत्पाद्य अथवा काल्पनिक कथा के ही समान है। वास्तव मे महाकाव्य जैसे विशाल काव्य-रूप के लिए मात्र कल्पना से कथा-निर्माण करना व्यवहार मे असम्भव नही तो दुष्कर अवश्य है, इसलिए प्राय. महाकवि इतिहास अथवा लोकप्रसिद्ध कथानकों को ग्रहण करके उसमे अपनी प्रतिभा के बल से नवीन उद्भावनाएँ करते है। महाकाव्य की कथा के लिए इतिहास अथवा लोकप्रसिद्धि के प्रतिबन्ध व्यर्थ ही हैं। यदि कोई कवि कल्पना से महाकाव्योचित महान् कथा की उद्भावना कर सके तो उसे स्वतन्त्रता होनी ही चाहिए।

इस क्षेत्र मे रुद्रट की दूसरी सिद्धि नायकेतर पात्रो पर विश्वनाथ की अपेक्षा अधिक प्रकाश डालने मे है। डा० सिह ने जैसा कहा है कि रुद्रट ने महाकाव्य की रूढियाँ स्थिर नहीं की—अर्थात् उन्होंने मगलाचरण, आरम्भ मे वस्तु-निर्देश, एक ही छन्द मे सर्ग-रचना आदि नियम नहीं बनाये वह ठीक ही है परन्तु उन्होने वर्ण्य विषयो की सूची मे दण्डी की अपेक्षा कही अधिक विस्तार कर दिया और इसके साथ ही उत्पाद्य महाकाव्यो के आरम्भ मे सन्नगरीवर्णन और वश की प्रशसा की रूढि ही स्थिर कर दी है। जहाँ तक अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्वो के चित्रण मे सयत कल्पना के प्रयोग का प्रश्न है—इसके पृथक् उल्लेख की आवश्यकता नही थी। कल्पना का अतिचार किसी भी स्थिति मे शैली का दोष ही होगा और ऐसे स्थलो पर पाठक का साधारणीकरण सम्भव नही हो पायेगा। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष ग्रहण करना अनुचित न होगा कि आचार्य रुद्रट की परिभाषा मे कोई ऐसी उल्लेखनीय विशेषता नही है—(विशेषकर शिल्प-सम्बन्धी) जिसके आधार पर उनकी परिभाषा को विश्वनाथ और दण्डी की तुलना मे श्रेष्ठ और व्यापक ठहराया जा सके। केवल कथानक के चयन के विषय मे उन्होने अवश्य ही उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है अन्यथा रूढियाँ स्थिर करने में वे किन्ही अशों मे कम नही रहे।

संस्कृत काव्यशास्त्र की आचार्य-परम्परा मे अन्तिम लक्षण आचार्य विश्वनाथ का है। वस्तुतः भामह द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य की परिभाषा अत्यन्त सक्षिप्त एवं महत्त्वपूर्ण होते हुए भी बाद में दण्डी की विस्तृत व्याख्या के सम्मुख भुला दी गयी और कालान्तर में विश्वनाथ ने कुछ जोड़-तोड़कर दण्डी के लक्षणों के आधार पर ही अपना लक्षण-निरूपण किया। उनके द्वारा दिये

गए महाकाव्य के लक्षण में दण्डी के मत का ही परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप प्राप्त होता है, अतः उनके मत की परीक्षा से दण्डी के मत का ज्ञान स्वतः सिद्ध हो जायेगा। महाकाव्य की विश्वनाथ द्वारा दी गई परिभाषा[1] के अनुसार शिल्प-सम्बन्धी निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

कथानक—१ महाकाव्य की कथा इतिहाससम्मत अथवा सज्जनाश्रित होती है।

२ कथा मे (क) सन्ध्या, सूर्य, रजनी, दिवस, प्रात:, मध्याह्न, मृगया, ऋतु, पर्वत, वन, सागर—अर्थात् प्राकृतिक जीवन का विस्तृत वर्णन होना चाहिए।

(ख) सयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ यात्रा, पुत्र आदि का—अर्थात् सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का सागोपांग वर्णन होना चाहिए।

(ग) युद्ध, प्रयाण, अभ्युदय, मन्त्रणा—अर्थात् जीवन के राजनैतिक पक्ष का भी यथासभव वर्णन होना चाहिए।

उपर्युक्त मान्यता का अभिप्राय यही है कि मानव-जीवन के विविध पक्षो का सागोपांग वर्णन महाकाव्य मे अभीष्ट है, अथवा जीवन की समग्रता का महाकाव्य की कथा मे अन्तर्भाव होना चाहिए। यह कथानक के स्वरूप के विषय मे उनकी मान्यता है। कथानक के निर्वाह और सगठन के सम्बन्ध मे उन्होने निर्देश किया—

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्यम् .. ॥३१५॥
अगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसधय. ॥३१७॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
... .
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीना सता च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥३२०॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया सूचनं भवेत्॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासरा:।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ॥३२२॥
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥३२३॥
वर्णनीया यथायोग सागोपागा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ॥३२४॥
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसज्ञकाः ॥३२५॥
प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सर्गा आश्वाससज्ञकाः।
छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद् गलितकैरपि ॥३२६॥
—षष्ठ परिच्छेदः साहित्य-दर्पण, पृष्ठ २२५

३. महाकाव्य के कथानक मे सभी नाटक-सन्धियाँ होती है। अर्थात् नाटक के समान ही समस्त नाटकीय गुणों से इसकी कथा युक्त होती है। अन्तर केवल अभिव्यक्ति या शैली का है। महाकाव्य समाख्यान शैली मे रचित काव्यरूप है, अन्यथा कथा मे नाटक की ही भाँति उपाख्यान—पताका, प्रकरी आदि का समावेश, तथा सम्पूर्ण कथा की प्रगति व निगति नाटक की ही भाँति इसमे भी अनिवार्य है।

४. कथानक विभिन्न सर्गो मे विभाजित होता है। ये सर्ग न बहुत बडे और न बहुत छोटे, तथा सख्या मे अष्टाधिक होते है। अर्थात् महाकाव्य मे आकार-सम्बन्धी विस्तार भी अपेक्षित है।

शैली—चरित्र, रस, उद्देश्य के विषय मे यथासम्भव निर्देश करने के उपरान्त रूप-निर्माण के महत्त्वपूर्ण अग शैली के विषय मे आचार्य विश्वनाथ ने प्रकाश नही डाला। महाकाव्य के महत् विषय (घटना, चरित्रादि) को शब्दबद्ध करने के लिए यथायोग्य सक्षम शैली की अपेक्षा है—इस विषय मे वे मौन है। उन्होने केवल कुछ वर्णन-रूढियाँ स्थिर की है तथा छन्दादि सम्बन्धी कतिपय गौण और बाह्य बातो का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

(क) आरम्भ मे आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु का निर्देश होना चाहिए।

(ख) कही खलो की निन्दा और सज्जनो का गुण-कथन होता है।

(ग) प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द प्रयुक्त होना है जो अन्त मे बदल जाता है। उन्होने इस विशेषता को अनिवार्य नियम न बनाकर तुरन्त ही अपवाद स्वीकार करते हुए कहा कि कही-कही सर्ग मे अनेक छन्द भी मिलते है। उक्त कथन का अभिप्राय यही है कि यद्यपि विश्वनाथ के समक्ष विद्यमान महाकाव्यो मे सर्ग मे एक ही छन्द के प्रयोग की प्रधानता थी, परन्तु कुछ ऐसे ग्रन्थ भी थे जिनमे छन्द-वैविध्य होने पर भी उनको महाकाव्य माना जा सकता था। इस प्रकार यह महाकाव्य का प्रमुख एव अनिवार्य लक्षण नही है।

(घ) सर्ग के अन्त मे अगली कथा की सूचना होनी चाहिए।

(ङ) महाकाव्य का नामकरण कवि, चरित्र या चरितनायक के नाम से होना चाहिए, परन्तु कही कही इसके अपवाद भी स्वीकार्य है। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नामकरण किया जाता है। इन्ही सर्गो को आख्यान, आश्वास, कुडबक आदि भी काव्य और भाषा-भेद से कहा जाता है।

डा० शम्भूनाथसिह ने विश्वनाथ द्वारा दिये गए लक्षणो मे कतिपय स्थलो पर दण्डी से प्रस्तुत ऐसी भिन्नताओ की आलोचना की है जिनका सम्बन्ध महाकाव्य की रूप-विधा से है। वे इस प्रकार है—

दण्डी द्वारा निर्दिष्ट एक ही छन्द मे सर्ग-रचना के लक्षण मे विश्वनाथ ने अपवाद स्वीकार कर लिए, और इसकी कटु आलोचना करते हुए डा० सिह ने लिखा—"यह मान लेने के बाद फिर यह महाकाव्य का लक्षण नही रह जाता।"[1] परन्तु यह अपवाद उचित सीमा तक ही स्वीकार किये जा सकते है। महाकाव्य के सर्गो को छन्दो की प्रदर्शनी बनाने की स्वतन्त्रता कैसे

---

१. हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डा० शम्भूनाथसिह, पृष्ठ ५९

प्रदान की जा सकती है ? 'रामचन्द्रिका' सरीखे प्रयोगो के विरुद्ध यह लक्षण उचित बन्धन का कार्य करता है। ऐसा कहना कि यह लक्षण अपवाद स्वीकार करने के बाद लक्षण नही रहता उचित नही। विश्वनाथ ने अवश्य ही अपवादो के लिए तर्कसम्मत सीमा निर्धारित नही की, परन्तु कदाचित् इसका कारण यही था कि उनके सामने प्रत्येक पद्य मे छन्द-परिवर्तन से युक्त महाकाव्यो के उदाहरण प्रस्तुत नही हुए थे, अत: इस प्रकार के अतिचार के प्रति वे सचेत नहीं हो सके। ऐसे प्रयोग काव्य के सहज प्रवाह मे बाधक ही होंगे।

महाकाव्य के सर्गो के विषय मे आचार्य विश्वनाथ का यह कथन कि जहाँ वे दण्डी के कथनानुसार बहुत बडे न हो वहाँ छोटे भी नही होने चाहिएँ, उचित ही है। अन्यथा नाममात्र के लिए सर्ग-विभाजन कर छोटे-छोटे काव्यो को महाकाव्य विशेषण मे अलकृत किया जाएगा। सर्गों की सख्या निश्चित करना उचित नही। विस्तार वस्तुत: सम्पूर्ण काव्य मे होना चाहिए तदुपरान्त उसको प्रसगानुकूल सर्गो मे बाँधा जा सकता है। ये सर्ग सख्या मे कितने हो ? यह तथ्य तो सर्वथा गौण और कथा के स्वरूप एव घटनाओ पर निर्भर है।

प्रबन्ध-विधान के सम्बन्ध मे सस्कृत के जिन आचार्यों के मत का विवेचन अभी तक किया गया, उन सबसे भिन्न, मौलिक युक्तिसगत एव विशद विवेचन इस विषय में आचार्य कुन्तक का है। कालक्रम की दृष्टि से वे आचार्य विश्वनाथ से बहुत पूर्व अपना मत प्रस्तुत कर चुके थे, परन्तु उनके परवर्ती आचार्यो ने इस विषय का निरूपण करते समय लक्षण-निर्धारण के लिए उनके मत को आधार नही बनाया। इस उपेक्षा का एक कारण सम्भवत यह रहा होगा कि उन्होने प्रबन्ध-विवेचन वक्रोक्ति के विविध प्रकारो का क्षेत्र-विस्तार और निरूपण करते हुए अग रूप मे किया है, काव्य-रूपो के लक्षण-निर्धारण के स्वतन्त्र प्रसग मे नही। अन्यथा प्रबन्ध की वस्तु-सघटना एव शिल्प के विषय मे आचार्य कुन्तक का मत सबसे कम रूढिग्रस्त और अत्यन्त आधुनिक है। उनके विवेचन मे एक अन्य उल्लेखनीय एव महत्त्वपूर्ण विशेषता है—प्रबन्ध के रूप-विधान मे उन्होने काव्य-शरीर से सम्बद्ध बाह्य एव गौण रूढियो का परिगणन न कराके, वस्तु-सघटना की प्राणभूत और अन्तरग विशेषताओ का ग्रहण तथा विश्लेषण किया है। प्रत्यक्ष रूप से यद्यपि आचार्य कुन्तक ने अपना मत महाकाव्य के रूप-विवेचन तक सीमित नही किया फिर भी इतना स्पष्ट है कि सामान्यत प्रबन्ध-विधान की विशेषताओ का निरूपण करते समय उनकी दृष्टि जिस प्रबन्ध-रूप पर टिकी रही वह घटना-वैविध्य, विविध उपाख्यानो और प्रकरणों आदि से युक्त कथा का जटिल और गरिमामय रूप था, किसी एकदेशीय घटना अथवा प्रसग का निरूपक सरल-सक्षिप्त कथानक नही। उनके विवेचन मे यह बात कथित नही परन्तु व्यग्य है कि प्रबन्ध का यह बृहद् रूप जो उनके विश्लेषण का आधार है, महाकाव्य के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता। सस्कृत-काव्य-शास्त्र मे प्रबन्ध-कृतियो के इस बृहद् उदात्त, और गरिमामय स्वरूप को महाकाव्य विशेषण प्रदान किया जा चुका था। आचार्य कुन्तक ने प्रबन्ध के विषय में जो कहा उसका सम्बन्ध वस्तु-विन्यास से ही अधिक है। सक्षेप मे उनका मत इस प्रकार है—

आचार्य कुन्तक ने प्रमुख रूप से प्रकरण मे—जिसका अर्थ प्रबन्ध का एक देश अर्थात् कथा का एक प्रसग है, निहित काव्य-चमत्कार के विविध प्रकारों का वर्णन किया है। उन्होने प्रमुख रूप से—प्रधान कार्य से सम्बद्ध प्रकरणो की सम्बन्ध-भावना, पूर्वापर-अन्विति-क्रम,

प्रसंग-विधान-कौशल अथवा प्रकरण-नियोजन तथा कवि की सयोजक कल्पना आदि प्रसंगों का विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रकरण-वक्रता के चौथे भेद मे उन्होने स्पष्ट किया कि प्रधान-कार्य से सम्बद्ध प्रकरणों का सम्बन्ध उपकार्य-उपकारक भाव से होना चाहिए। अर्थात् प्रत्येक प्रकरण अथवा अग, अन्य प्रकरणो से सम्बद्ध व प्रधान कार्य का उपकारक, और इस प्रकार अगों से समन्वित होकर वह अंगी का उत्कर्ष-विधायक हो। इसी को आचार्य अरस्तू ने कार्यान्विति कहा है।[1]

पूर्व प्रकरणो का उत्तर प्रकरणो के साथ सामजस्य आचार्य कुन्तक नाट्य-सन्धियो के संविधान से ही स्वीकार करते है।[2] यह पूर्वापर-अन्विति-क्रम, प्रकरण-वक्रता का वह प्रकार है जो प्रबन्ध मे वस्तु-विन्यास की सुदृढ अन्विति और सघटना का निमित्त होता है। आचार्य कुन्तक ने प्रसग-विधान-कौशल को ही प्रबन्ध-काव्य के सौन्दर्य का निमित्त माना है, इतिवृत्त को नही, और यह कौशल कवि की सयोजक कल्पना पर आश्रित रहता है। "इस सौन्दर्य का आधार तो कवि का प्रबन्ध-कौशल है, तभी तो एक ही इतिवृत्त को लेकर अनेक सफल प्रबन्ध-काव्यो की सृष्टि होती रही है जिनका चमत्कार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। अर्थात् प्रबन्धत्व घटनावली मे नही वरन् उनके विधान मे निहित रहता है।"[3]

प्रकरण-नियोजन की इस कला को कुन्तक प्रबन्ध-विधान का प्राण स्वीकार करते है। इस सम्बन्ध मे उनके कतिपय स्पष्ट सकेत है, जिनमे वस्तु-सघटना-सम्बन्धी उनकी मान्यताएँ सूत्रबद्ध है। प्रकरण-नियोजन के मूल तत्त्वो मे—जिनका सम्बन्ध वस्तु-शिल्प से है, आचार्य कुन्तक ने घटनाओ के सजीव वर्णन, पूर्वापर-क्रम-बन्धन, और मूल उद्देश्य के सम्बन्ध मे घटनाओ के उपकार्य-उपकारक सम्बन्ध, सामजस्य तथा एकसूत्रता पर बहुत बल दिया है।[4] इसके अतिरिक्त उन्होने मनोरम प्रसंगो की अतिरजना द्वारा रोचकता का समावेश भी प्रबन्ध मे काम्य माना है। कवि की उद्भावक कल्पना उक्त गुण की साधक होनी है। औचित्यादि की रक्षा के लिए प्रतिकूल अथवा अनावश्यक प्रसगो का आचार्य कुन्तक ने निषेध किया।

"भारतीय काव्य-शास्त्र मे प्रबन्ध-कौशल का यह सर्वप्रथम मौलिक तथा सागोपाग विवेचन है। कुन्तक ने पहली बार कवि-कौशल की दृष्टि से प्रबन्ध के शिल्प-विधान का विश्लेषण किया है। व्यावहारिक रूप मे निगमन-विधि पर आधृत होने पर भी इस विवेचन मे कला के सामान्य एव मौलिक सिद्धान्तो का यथावत् निरूपण है। इसका प्रमाण यह है कि भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों के प्रबन्ध-विवेचन के प्राय सभी मूल तत्त्व इसके अन्तर्गत आ गए है।"[5]

भरत से कुन्तक तक भारतीय काव्य-शास्त्र मे वस्तु का विवेचन नाट्य-विधान की दृष्टि से ही किया गया। वस्तु-विधान का यह विवेचन तीन भागो मे उपलब्ध है—(१) कथावस्तु के विविध प्रकार (२) कथा मे कार्य-व्यापार के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ और (३) विविध कार्यावस्थाओ और अर्थ-प्रकृतियो के अन्विति-सूत्रो को जोडने वाली पच-

१ विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—'भारतीय काव्य-शास्त्र की भूमिका'—डा० नगेन्द्र, पृ० २७९
२. वही, पृष्ठ २८२
३. वही, पृ० २९२
४. वही, पृ० २९३
५. वही, पृ० २९३-२९४

सन्धियाँ। आचार्य कुन्तक ने स्पष्ट शब्दो में अवस्था, अर्थ-प्रकृति और सन्धि आदि के पूर्वकृत विवेचन की पुनरावृत्ति करने का प्रयत्न तो नही किया, परन्तु उनके अस्तित्व की स्वीकृति कुन्तक के विवेचन मे निर्विवाद रूप से रही है। प्रकरण-वक्रता तथा प्रबन्ध-वक्रता के अनेक रूपो के निरूपण मे विविध वस्तु-भेदो, अवस्था-भेदो और सन्धियो की पृष्ठभूमि निश्चय ही वर्त्तमान है। प्रकरण-वक्रता तथा प्रबन्ध-वक्रता मे अनेक रूपो के निरूपण मे आधिकारिक और प्रासगिक कथा-भेदो का उल्लेख अनेक स्थलो पर हुआ है। वास्तव मे प्रधान-अप्रधान अथवा आधिकारिक-प्रासगिक वस्तु का पार्थक्य-ज्ञान और पारस्परिक सम्बन्ध-योजना ही तो प्रबन्ध-कौशल का प्रमुख आधार है। इन दोनो वस्तु-भेदो के परस्पर अग-अगी रूप मे सानुपात नियोजन, प्रबन्ध मे इनकी सम्बन्ध-भावना के औचित्य आदि पर ही सम्पूर्ण प्रबन्ध-रचना की सजीवता, कथा की एकान्विति, रोचकता, आदि निर्भर है। अपने पूर्ववर्ती आचार्यो द्वारा नाटक के प्रसग में वस्तु-विन्यास के लिए नियमित विधान को इसीलिए स्वीकार करते हुए, प्रबन्ध के क्षेत्र मे कुन्तक ने वस्तु-सघटना की मौलिक आवश्यकताओ की युक्तिसम्मत व्याख्या-विवेचना की। प्रबन्ध के वस्तु-विधान मे सन्धि-सध्यगो की रचना का उद्देश्य ही कथा के विविध अगो मे सामजस्य की योजना है। प्रधान कार्य को कथा का केन्द्र व लक्ष्य मानते हुए समस्त अन्य प्रकरणो का परस्पर समजन वस्तु-विन्यास की मौलिक आवश्यकता है। कुन्तक ने प्रकरण-वक्रता के दो भेदो मे इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का विवेचन करते हुए कथा के विविध प्रकरणो और प्रधान कार्य की सम्बन्ध-भावना को स्पष्ट किया है, तथा प्रबन्ध मे इनके सापेक्ष महत्त्व और बलाबल के प्रश्न को सुलझाया है। विविध प्रकरणो और प्रधान-कार्य के बीच यह समंजन उचित पूर्वापर-क्रम और उपकार्य-उपकारक भाव से होना चाहिए।

प्रकरण-वक्रता के विविध प्रकारो मे उन्होने प्रकरण और प्रधान कार्य मे पारस्परिक सम्बन्ध-रूप को तो स्पष्ट किया ही, वस्तु-रूप-कौशल की सिद्धि के लिए उत्पाद्य-लावण्य हेतु का मार्मिक विवेचन किया। प्रकरण-वक्रता के लिए कल्पना से अविद्यमान प्रसगो की उद्भावना और प्रख्यात कथा मे विद्यमान का सशोधन, इस उत्पाद्य-लावण्य नामक हेतु के दो उपभेद है। उक्त वक्रता के प्रयोग से कथा मे ही वैचित्र्य-सृष्टि नही होती, यह रसौचित्य-निर्वाह का भी साधक होता है।

आचार्य कुन्तक के मत की विशेषताएँ एव सार इस प्रकार है—

१ भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास मे प्रबन्ध-कौशल का यह सर्वप्रथम मौलिक एव सागोपाग विवेचन है।

२. कुन्तक के पूर्ववर्ती एव परवर्ती आचार्यो ने नाटक के प्रसग मे तो वस्तु-विन्यास की आवश्यकताओ और तत्त्वो का सागोपाग वर्णन किया, परन्तु प्रबन्ध के वस्तु-शिल्प का इतना सूक्ष्म एव तात्त्विक विवेचन उनके पूर्व और उपरान्त दृष्टिगत नही हुआ।

३ प्रबन्ध का लक्षण-निरूपण करते हुए अन्य आचार्यों ने काव्य-शरीर से सम्बद्ध बाह्य एव गौण रूढियो का परिगणन कराया, इससे भिन्न आचार्य कुन्तक ने वस्तु-संघटना की मूलभूत और अन्तरग विशेषताओ का ग्रहण तथा विश्लेषण किया है।

४. आचार्य कुन्तक का उक्त विवेचन प्रबन्ध-काव्य अथवा महाकाव्य के लक्षण-निरूपण

के रूप मे नही, वरन् वक्रोक्ति-सिद्धान्त का भेद-विस्तार एव प्रतिष्ठा करते हुए अग-रूप मे किया गया है।

५ आचार्य कुन्तक ने वस्तुशिल्प का जो निरूपण किया है उसमे मुख्यत: प्रबन्ध-कौशल के तीन पहलुओ पर प्रकाश पडता है। यह समस्त विवेचन प्रकरण-वक्रता एव प्रबन्ध-वक्रता नामक वक्रोक्ति-भेदो के अन्तर्गत आता है। इस विवेचन के तीन कोण निम्नलिखित है—

(क) वस्तु-संघटना, (ख) वस्तु-विकास, (ग) वस्तु-वैचित्र्य।

(क) वस्तु-संघटना मे आचार्य कुन्तक ने प्रमुख रूप से प्रधान कार्य एव विविध प्रकरणो की पारस्परिक सम्बन्ध-भावना का स्पष्टीकरण किया है। कथा के विविध अगो का सामजस्य उनके अनुसार दो आधारो पर घटित होता है—

१. प्रधान कार्य और विविध प्रकरणो मे उपकार्य-उपकारक भाव-सम्बन्ध।

२. इन विविध कथाशो मे औचित्यपूर्ण पूर्वापर-अन्विति-क्रम।

उक्त निरूपण से स्पष्ट है, यद्यपि कथित नही कि प्रबन्ध (महाकाव्य) का कथानक प्रधान कार्य के साथ अनेक प्रकरण-सयुक्त जटिल बृहद् कथानक होता है, एकदेशीय कथा का निरूपक सरल कथानक नही।

(ख) वस्तु-विकास के सम्बन्ध मे कुन्तक ने पूर्ववर्ती आचार्यो द्वारा निरूपित नाटक के वस्तु-विन्यास के विधान को स्वीकार कर लिया। नाटक की कथा जिस प्रकार आधिकारिक और विविध प्रासगिक वृत्तो से गुम्फित होती है, जिस प्रकार नाटक मे कार्य-विकास क्रमबद्ध योजना के अनुसार होता है, और इन विविध अर्थ-प्रकृतियो एव कार्यावस्थाओ को कथा-मोड पर अन्विति-सूत्र मे बाँधने वाली सन्धियो का विधान किया जाता है, उसी प्रकार प्रबन्ध मे भी कथा-सूत्रो के समजन और नाटकीय विकास के लिए आचार्य कुन्तक ने इस समस्त विधान को काम्य माना।

(ग) वस्तु-वैचित्र्य एव औचित्य के साधक हेतु उन्होने दो माने। जिनमे एक का स्वरूप भावात्मक एव दूसरे का अभावात्मक है—

१. उत्पाद्य-लावण्य की सृष्टि—जो दो रूपो मे सम्भव है—कल्पना-प्रसूत अविद्यमान प्रसगो की उद्भावना एव प्रख्यात कथा के विद्यमान प्रसगो मे सशोधन। मनोरम प्रसगो की विवेक-सयुत अतिरजना से भी प्रबन्ध की कथा में रोचकता की वृद्धि होती है। यह हेतु वस्तु-वैचित्र्य का भावात्मक साधन है।

२. दूसरे साधन का स्वरूप अभावात्मक है। प्रबन्ध-विधान मे औचित्यादि की रक्षा के लिए प्रतिकूल एव अनावश्यक प्रसगो का आचार्य कुन्तक ने निषेध किया।

प्राचीन विद्वानो मे सर्वाधिक प्रचार आचार्य विश्वनाथ की परिभाषा का हुआ। आधुनिक मनीषियो ने भी महाकाव्य की कसौटी के रूप मे प्राय. इसी मत को आधार बनाया। किन्तु आचार्य शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका मे प्रबन्ध के वस्तु-विन्यास की विशेषताओ पर

भी प्रकाश डाला है। बात वही थी जिसका निरूपण बहुत पहले आचार्य कुन्तक कर चुके थे। जिसे सस्कृत मे आचार्य ने कथाशो मे उचित पूर्वापर-अन्विति-क्रम कहा था, उसे आचार्य शुक्ल ने सम्बन्ध-शृखला और स्वाभाविक क्रम का ठीक निर्वाह कहा है—

"प्रबन्ध-काव्य मे मानव-जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमे घटनाओ की सम्बन्ध शृखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक ठीक निर्वाह के साथ-साथ हृदय को स्पर्श करने वाले—उसे नाना भावो का रसात्मक अनुभव कराने वाले—प्रसगो का समावेश होना चाहिए।"[1]

'सम्बन्ध-निर्वाह' से उनका क्या अभिप्राय है? इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने पुन. लिखा—

"सम्बन्ध-निर्वाह पर विचार करते समय सबसे पहले तो यह देखना चाहिए कि प्रासगिक कथाओ का जोड आधिकारिक वस्तु के साथ अच्छी तरह मिला हुआ है या नही, अर्थात् उनका आधिकारिक वस्तु के साथ ऐसा सम्बन्ध है या नही जिससे उसकी गति मे कुछ सहायता पहुँचती हो। जो वृत्तान्त इस प्रकार सम्बद्ध न होगे वे ऊपर से व्यर्थ ठूंसे हुए मालूम होगे चाहे उनमे कितनी ही अधिक रसात्मकता हो।"[2]

उपर्युक्त कथन से दो बाते स्पष्ट है—

१. आधिकारिक वृत्त के साथ प्रासगिक कथाओ का सम्बन्ध आरोपित नही, सहज और सुसम्बद्ध होना चाहिए, अर्थात् एक घटना अन्य का सहज परिणाम या कारण प्रतीत हो। इसी को आचार्य कुन्तक ने उचित पूर्वापर-अन्विति-क्रम कहा था और पाश्चात्य आचार्यो ने कार्यान्विति।

२ आधिकारिक कथावस्तु के साथ उन्ही प्रासगिक वृत्तो का समावेश होना चाहिए जो प्रधान वस्तु की गति मे सहायक हो अर्थात् प्रासगिक कथावस्तु को आधिकारिक कथावस्तु का उपकारक होना चाहिए। ये वृत्तान्त काव्य के प्रधान कार्य के साधक होते है। आचार्य कुन्तक ने इस सम्बन्ध-भावना को 'उपकार्य उपकारक भाव' कहकर सूत्रबद्ध किया था।

आचार्य शुक्ल ने भी उक्त आशय का पुन -पुन' स्पष्टीकरण किया है—

"अत. घटना-प्रधान प्रबन्ध-काव्य मे उन्ही वृत्तान्तो का सन्निवेश अपेक्षित होता है जो उस साध्य 'कार्य' के साधन-मार्ग मे पडते है अर्थात् जिनका उस कार्य से सम्बन्ध होता है। प्राचीन यवन आचार्य अरस्तू ने इसका विचार अपने 'काव्य-सिद्धान्त' के आठवे प्रकरण मे किया है और यह अब भी पाश्चात्य समालोचको मे 'कार्यान्वय' (Unity of Action) के नाम से प्रसिद्ध है।"[3]

जिस 'कार्यान्वय' की चर्चा आचार्य शुक्ल ने पाश्चात्य समालोचको के प्रसग मे उठायी है उसका निर्देश अत्यन्त प्रबल एव स्पष्ट शब्दो मे बहुत पूर्व आचार्य कुन्तक कर चुके थे।

प्राचीन काव्य-शास्त्र मे महाकाव्य के लक्षणो का निरूपण करते समय आचार्यो की दृष्टि प्राय. उपलब्ध महाकाव्यो पर टिकी रही। उनके लक्षणो मे व्यक्त दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि

---

१. जायसी ग्रन्थावली—भूमिका—आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६८
२. वही, पृष्ठ ७२
३. वही, पृष्ठ ७३

उनकी दृष्टि मे महाकाव्यो में प्रायः क्या होता है ? अधिक प्रधान रहा है, क्या होना चाहिए ? या क्या हो सकता है ? पर बहुत कम ध्यान दिया गया। दूसरे शब्दो मे उनकी दृष्टि सम्भावनाओ और आदर्शों की अपेक्षा सीमाओ पर अधिक केन्द्रित रही। यह उनके समय की परिसीमा थी। आज हमारे सामने अनेक परिभाषाएँ और उनकी सफलता और असफलता की कसौटी के रूप मे विविध काव्य-ग्रन्थो की विपुल राशि प्रस्तुत है, और व्यवहार से यह सिद्ध हो चुका है कि काव्य-रूपो के लिए बनाई गयी किसी परिभाषा मे मूल तत्त्वो का निर्देश करके कवि की स्वतन्त्र प्रतिभा के लिए जितना अधिक अवकाश छोड़ा जायगा, उतना ही उस परिभाषा मे अपवादो के लिए कम अवकाश होगा और वह परिभाषा अधिक सफल होगी। जितना अधिक बाह्य और गौण तत्त्वो का समावेश परिभाषा मे किया जायगा—उतनी ही वह परिभाषा रूढिबद्ध काव्य-रचना की प्रेरक होगी, अथवा उसमे अपवाद अधिक होंगे। महाकाव्य के मूल तत्त्वो की ओर निर्देश करने का प्रयत्न यद्यपि आचार्य भामह ने ही किया, परन्तु सक्षेप मे सस्कृत साहित्य-शास्त्र मे प्रस्तुत महाकाव्य-सम्बन्धी लक्षण इस प्रकार है—

कथानक

(क) कथा उत्पाद्य (काल्पनिक), अनुत्पाद्य (ऐतिहासिक अथवा सदाश्रित) और मिश्र तीनो प्रकार की हो सकती है।

(ख) कथानक न बहुत छोटा और न बहुत बडा होना चाहिए।

(ग) जीवन के विस्तृत और सागोपाग वर्णन से कथानक युक्त होना चाहिए—प्राकृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि विविध पक्षो, अर्थात् जीवन की समग्रता का उसमें अन्तर्भाव होना चाहिए। इन वर्ण्य विषयो की लम्बी सूची विभिन्न आचार्यो द्वारा प्रस्तुत की गई है।

इन काव्यों मे अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्वो का भी समावेश होता है, परन्तु ऐसी घटनाएँ तदनुकूल पात्रो द्वारा ही सम्पन्न होती है।

(घ) विविध वर्ण्य प्रसगो में—मनोरम प्रसगो की अतिरजना द्वारा कथानक मे रोचकता की वृद्धि और प्रतिकूल अथवा अनावश्यक प्रसगो के त्याग से औचित्य की रक्षा—कवि को करनी चाहिए।

(ङ) महाकाव्य की कथा नाटक-सन्धियो से युक्त होती है, ऐसा सस्कृत के सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। मूल कथा के साथ कुछ अवान्तर कथाएँ भी उसमे सहायक होती हैं। नाट्य-सन्धियो की स्वीकृति के रूप मे यह तथ्य अन्य आचार्यों की परिभाषाओं मे व्यंग्य है, परन्तु रुद्रट ने उसका पृथक् उल्लेख करके उसे स्पष्ट और वाच्य बना दिया है। ये प्रासंगिक कथाएं मूल कथा से भली प्रकार सम्बद्ध होनी चाहिएँ। महाकाव्य की आधिकारिक कथा एव अन्य प्रकरणो का पारस्परिक सम्बन्ध उपकार्य-उपकारक भाव से तथा इन विविध कथाशो मे औचित्यपूर्ण पूर्वापर-अन्विति-क्रम विद्यमान रहना चाहिए। यदि ऐसा नही होगा तो महाकाव्य पुराण शैली के अधिक निकट होगा और उसमे नाट्य गुण का अभाव हो जाएगा।

शैली

शैली के अत्यन्त बाह्य और स्थूल तत्त्वो पर सस्कृत-काव्य-शास्त्र मे विचार किया गया। उसके मुख्य गुण—गरिमा, गम्भीरता, प्रसंगानुकूल अभिव्यक्ति की क्षमता और महान् विषयोचित महाप्राणता आदि पर इन आचार्यो ने बहुत कम विचार किया। कुछ अत्यन्त स्थूल और बाह्य तत्त्व जिनके विषय मे इन्होने लिखा है, निम्नलिखित है —

(क) महाकाव्य के सर्ग न बहुत छोटे और न बहुत बडे होते है। इनकी सख्या विश्वनाथ के अनुसार आठ से अधिक होती है। सर्गो का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखना चाहिए। ऐसा सदा सम्भव नही हो सकता।

(ख) महाकाव्य का नामकरण कवि,कथावस्तु या चरितनायक के नाम पर होना चाहिए। यह उपबन्ध भी सदैव ग्राह्य नही हो सकता। काव्य के प्रधान भाव, उद्देश्य आदि के आधार पर भी नामकरण सम्भव है।

(ग) सस्कृत के आचार्यो द्वारा महाकाव्य के आरम्भ मे आशीर्वचन, मगलाचरण, इष्ट देवता को नमस्कार, वस्तु-निर्देश या कथा की प्रस्तावना का विधान किया गया, परन्तु सस्कृत के ही 'कुमारसम्भव', 'शिशुपालवध' आदि महाकाव्यो मे उक्त लक्षण का उल्लघन हुआ। इसी प्रकार अन्त के विषय मे रुद्रट ने सकेत किया कि नायक का अभ्युदय अन्त मे होना चाहिए। वस्तुतः इस प्रकार की रूढियाँ सदैव रक्षित नही रह सकती। इनका पालन बहुत कुछ कवि की व्यक्तिगत मनोवृत्ति, विषय, परिस्थिति आदि पर निर्भर है, अतः इनका विधान व्यर्थ ही है। इस दिशा मे लेखक को पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(घ) उपर्युक्त रूढि के समानान्तर ही एक अन्य रूढि का उल्लेख रुद्रट और विश्वनाथ आदि ने किया। रुद्रट ने उत्पाद्य कथानको के आरम्भ मे सन्नगरी-वर्णनऔर नायक के वश की प्रशसा को अनिवार्य ठहराया, तथा विश्वनाथ ने दुर्जन-निन्दा और सज्जनो के गण-कीर्तन को महाकाव्य मे कथनीय स्वीकार किया।

शैली के अन्य उपकरणो—छन्द, अलकार, भाषा आदि के विषय मे भी सस्कृत-आचार्यो ने बहुत कम लिखा।

छन्द

भामह ने इस विषय मे कुछ नही कहा था। बाद मे दण्डी ने अपने विवेचन मे उल्लेख किया कि महाकाव्य मे पढने-सुनने मे रम्य छन्दो (श्राव्यवृत्तो) का प्रयोग होना चाहिए। प्रत्येक सर्ग की रचना एक ही छन्द मे होनी चाहिए और अन्त मे छन्द-परिवर्तन होना चाहिए। विश्वनाथ ने इस नियम मे अपवाद भी स्वीकार कर लिये।

भाषा

भाषा के विषय मे भामह ने सकेत किया था कि महाकाव्य की भाषा अग्राम्य शब्दार्थमयी अर्थात् शिष्ट नागरजनों की भाषा होनी चाहिए। उनके अतिरिक्त परवर्ती आचार्यो मे से किसी ने इस विषय मे विशेष कुछ नही कहा। यद्यपि स्वाभाविक है कि महाकाव्य के रचयिता का भाषा पर कुछ सीमा तक अधिकार अवश्य होगा, परन्तु महाकाव्य मे वर्णन-वैविध्य तथा जीवन

के अनेक विरोधी प्रसगो के वर्णन के लिए निश्चय ही ऐसी भाषा अपेक्षित है जो विराट और क्षुद्र, भव्य और कोमल, तिक्त और मधुर, सभी प्रकार के वर्णन की सामर्थ्य से युक्त हो। महाकाव्य अपनी समग्रता मे गरिमामय, उदात्त काव्य-रूप है—उसकी भाषा भी यथावत् गम्भीर और गरिमामयी होनी चाहिए, परन्तु इसका अभिप्राय शब्द-शक्तियो के अतिचार, दुरूहता और अतिशय अलकरण से नही है। प्रसाद गुण हर भाषा-प्रयोग के लिए शुभ होगा।

अलंकार

भामह ने तो भाषा के लिए 'सालकार' विशेषण का प्रयोग किया ही था, दण्डी ने महाकाव्य का अलकृत होना आवश्यक कहा है। विश्वनाथ इस विषय मे मौन है। काव्य मे अलकृति वही सुन्दर व मनोहारी होगी जिसके मूल मे सहज कवि-प्रतिभा की प्रेरणा हो, जिसका आधार पाण्डित्य प्रदर्शन और वाग्वैदग्ध्य मात्र न हो, जहाँ भाव-व्यजना के साथ अलकार इतने घले-मिले हो कि उनकी योजना अन्त स्फूर्त और सहज प्रतीत हो। भाव और कला का समन्वय तो काव्य मात्र का विभूषण है, महाकाव्य के लिए अलकार-प्रयोग मे औचित्य निश्चय ही काम्य होगा।

समग्र काव्य-रूप

महाकाव्य अपने समग्र रूप मे किस प्रकार का काव्य-रूप है ? इस विषय मे सस्कृत के आचार्यो ने स्पष्ट रूप से कुछ नही कहा। पाश्चात्य आचार्यो ने 'एपिक' को समाख्यानात्मक तथा वस्तुपरक काव्य-रूप स्वीकार किया है। परन्तु भारतीय आचार्यो ने कथानक के सघटन मे नाट्य-सन्धियो की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए भी दोनो विधाओ की समानताओ और विषमताओ के विषय मे कुछ नही कहा। नाट्य-सन्धियो की स्वीकृति प्रभावोत्पादकता और प्रबन्धान्विति की दृष्टि से की गयी। ऐतिहासिक व सदाश्रित कथा-ग्रहण करने के कारण उसमे वर्णनात्मक शैली से विशृखलता न उत्पन्न हो सके, इसीलिए समन्वित प्रभाव की दृष्टि से नाटकीय गुणो की अवस्थिति भारतीय आचार्यो ने आवश्यक मानी है। परन्तु महाकाव्य मे घटनाओ का वर्णन किया जाता है, प्रदर्शन नही। पात्र स्वय अभिकर्त्ताओ के रूप मे उपस्थित नही होते। यदा-कदा प्रसग और स्थिति के अनुकूल कथोपकथन आदि के रूप मे लेखक नाटक की शैली का उपयोग प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से कर लेता है। इसी प्रकार यद्यपि महाकाव्य विषयीप्रधान, आत्मपरक काव्य-रूप नही होता, वस्तुजगत् तथा किसी न किसी रूप मे मूर्त घटनाओ का आधार महाकाव्य मे सुदृढ एव स्पष्ट होता है, परन्तु पात्र विशेष की सुखदुखात्मक आत्माभिव्यक्ति के स्थलो पर कविगण प्राय प्रगीत के तत्त्वो का उपयोग करते है। वर्णनात्मक शैली मे कथा-वर्णन के रूप मे कथा-आख्यायिका के तत्त्व सुस्पष्ट ही है। इस प्रकार महाकाव्य मुख्यत. समाख्यानात्मक शैली मे रचित बृहद् काव्य-रूप है, जिसमे कवि—नाटक, कथा-आख्यायिका, गीति आदि सभी साहित्यिक विधाओ के तत्त्वो का यथासम्भव आवश्यकतानुसार प्रयोग करता है।

समय के साथ-साथ काव्यो मे वाह्य अलकरण की प्रवृत्ति बढती गयी और महाकाव्य के मूल तत्त्व उपेक्षित और गौण होते गये। भामह के उपरान्त क्रमश. वाह्य और ऊपरी बातो पर जितना बल दिया गया उतना महाकाव्य के मूल तत्त्वो पर नही। मगलाचरण, आशीर्वचन, सर्गों की निश्चित सख्या, छन्द-सम्बन्धी प्रयोग आदि बाते लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थो मे रचना-

रूढियाँ बनकर रह गयी। इस प्रवृत्ति का द्विविध दुष्प्रभाव हुआ—एक ओर समय-समय पर स्वतन्त्र प्रतिभा वाले कवियो ने इन रूढियो का उल्लघन किया और उनकी रचनाओ के काव्य-रूप के विषय मे प्रश्नवाचक चिह्न प्रस्तुत होते रहे। महाकाव्य के मूल तत्त्वो के सद्भाव मे उन्हे महाकाव्य ही स्वीकार किया गया, परन्तु अपवाद रूप मे। दूसरी ओर कुछ तथाकथित महाकाव्यो की रचना हुई जिनमे वस्तु-वर्णन गिनाई हुई सूची के बाहर नही गया, कही-कही तो यह वस्तु-वर्णन अनुचित है, तथा केवल महाकाव्य की लक्षण-पूर्ति के लिए किया गया है। रूढि-पालन के अतिरिक्त इन काव्यो मे महाकाव्य की आत्मा, महाप्राणता का सर्वथा अभाव है, परन्तु आचार्यो द्वारा गिनाये लक्षणो की अक्षरश पूर्ति के कारण ऐसे ग्रन्थो को महाकाव्य अस्वीकार करने मे विरोध सम्मुख आया। आधुनिक महाकाव्य के स्वरूप पर ही नहीं अपितु समग्र रूप मे हिन्दी काव्य-रूपो पर पाश्चात्य चिन्ताधारा और काव्य-धारा का पर्याप्त प्रभाव रहा है। पाश्चात्य आचार्यो की महाकाव्य-सम्बन्धी धारणा से अवगत होना इसलिए अनिवार्य है।

पाश्चात्य विद्वानों की महाकाव्य-विषयक मान्यताएं

पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के आद्याचार्य अरस्तू ने महाकाव्य के स्वरूप का स्वतन्त्र विवेचन नही किया, परन्तु त्रासदी से महाकाव्य का साम्य व वैषम्य स्पष्ट करने के लिए उन्होने जो कुछ कहा, उससे इस काव्य-रूप पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थो मे उनका विवेचन ही महाकाव्य विषयक तत्कालीन धारणाओ को स्पष्ट करता है। अत हम उन्ही के मत-विवेचन से विषय का आरम्भ करेगे।

अरस्तू का मत

महाकाव्य के विषय मे उन्होने कहा कि महाकाव्य, काव्य की वह विधा है जिसमे षट्पदी छन्द मे समाख्यानात्मक अनुकरण होता है, जिसकी कथा का निर्माण त्रासदी के समान नाटकीय ढग से होना चाहिए, तथा जिसका विषय एक सम्पूर्ण (आद्यन्त) उचित आदि, मध्य, अवसान से युक्त अन्वितिपूर्ण घटना होती है, और इस प्रकार यह घटना प्राणी के समान एक एकाई प्रतीत होती है तथा समुचित आनन्द प्रदान कर सकती है। महाकाव्य के रूप-सघटन मे इतिहास से बहुत अन्तर होता है। इतिहास मे अनिवार्यत. एक घटना या कार्य का विवरण नही होता, बल्कि एक युग की कथा होती है जिसमे उस युग-विशेष मे एक, अथवा अनेक व्यक्तियो के साथ घटित सभी घटनाओ का समावेश होता है—इन घटनाओ का पारस्परिक सम्बन्ध सयोग मात्र होता है—इससे भिन्न होमर ने युद्ध के एक भाग-विशेष का चयन करके शेष के लिए अवान्तर कथाओ, जैसे समुद्री पोतों की सूचियाँ, आदि का समावेश कर अपने काव्य को वैचित्र्य प्रदान किया है। अन्य कवि भी विषय-रूप मे किसी एक व्यक्ति के, अथवा युग-विशेष के कार्यों को चुन लेते है, या ऐसे कार्य को, जो एक होते हुए भी नाना भागो से युक्त होता है।[1] अरस्तू के इस कथन का

१. "With respect to that species of poetry which imitates by narration and in hexametre verse, it is obvious that the fable ought to be dramatically constructed like that of tragedy, and that it should have for its subject one entire and perfect action, having a beginning, a middle and an end; so that,

अभिप्राय यही है कि महाकाव्य का कथानक मुख्य कथा के साथ अनेक उपाख्यानो से युक्त होता है। इसके अतिरिक्त अरस्तू ने कवि द्वारा प्रयुक्त काल्पनिक और सम्भाव्य तथ्यों, तथा अति-प्राकृत और अलौकिक तत्वो के प्रयोग, भाषा एव शब्द-चयन आदि पर भी विचार किया।

अवान्तर कथाओ या उपाख्यानो से युक्त मुख्य कथा के ग्रहण पर अरस्तू ने बारम्बार बल दिया। उनका मत था कि इस प्रकार की योजना से महाकाव्य मे गरिमा और गुरुत्व आ जाता है। विभिन्न उपाख्यानो मे विविध चरितो और दृश्यो की योजना से पाठको की उत्सुकता को भी त्रासदी की अपेक्षा अधिक सन्तोष प्राप्त होता है। महाकाव्य के विषय से अरस्तू का अभिप्राय अनेक भागो अथवा उपकथाओ से युक्त कथा-विशेष से है।[1] अरस्तू ने महाकाव्य के लिए जहाँ आधिकारिक वृत्त के साथ उपाख्यानो की योजना अनिवार्य मानी, वहाँ इस बात पर भी बल दिया कि ये प्रासगिक वृत्त प्रधान कथा के साथ उचित रूप से सम्बद्ध होने चाहिएं।[2]

इस प्रकार त्रासदी की अपेक्षा लम्बे कथानक, वैविध्य और विस्तार आदि पर बल देते हुए भी उन्होने कथानक मे अन्विति और क्रमबद्धता को आवश्यक ठहराया। उनका निश्चित मत था कि अनेक घटनाओ से युक्त होने पर भी कथानक के सूत्र शिथिल नही होने चाहिएँ। महाकाव्य मे नाटक के समान कार्यान्विति होने पर भी उसका आकार अपेक्षाकृत बडा होता है। उसमे एक स्वत-पूर्ण घटना का क्रमबद्ध वर्णन होना चाहिए। परन्तु आदि, मध्य और अन्त किसी प्राणी के समान एक इकाई के रूप मे, एक ही दृष्टि मे दिखाई देना चाहिए। नाटक की अपेक्षा महाकाव्य मे विस्तार का अवकाश इस कारण अधिक है, कि नाटक मे एक ही समय पर घटित होने

forming like an animal a complete whole, it may afford its proper pleasure, widely differing in its construction from history, which necessarily treats not of one action, but of one time, and of all the events that happened to one person or to many during that time, events the relation of which, to each other is merely casual . ...Instead of this selecting one part only of the war, he (Homer) has from the rest introduced many episodes—such as the catalogue of the ships and others—by which he has diversified his poem. Other poets take for their subject the actions of one person or of one period of time, or an action which, though one, is composed of too many parts

Aristotle's Poetics—Part III, Edited by T. A. Moxon, P 46-47.

१. And this gives it a great advantage, both in point of magnificence and also as it enables the poet to relieve his hearer and diversify his work by a variety of dissimilar episodes, for it is to the satiety naturally arising from similarity that tragedies frequently owe their ill success —Ibid 48

By an epic I mean a fable composed of many fables, as if any one . .. —Ibid, P 36.

२. ". . , the poet, when he has given names to his characters, should proceed to the episodes, of his action, and he must take care that these belong properly to the subject,....." —Ibid, P. 34

वाली कई घटनाएं अभिनीत नहीं हो सकती, परन्तु महाकाव्य में एक समय पर घटित होने वाली अनेक घटनाओं का वर्णन किया जा सकता है।[1] एक ही समय मे घटित होने वाली अनेक घटनाओ के वर्णन का अभिप्राय होगा घटनास्थलों मे भिन्नता। इस प्रकार अरस्तू ने महाकाव्य मे स्थान-ऐक्य के निर्वाह को आवश्यक नही माना।

महाकाव्य के आकार के विषय मे अरस्तू ने अनेक स्थानो पर बल दिया है। उन्होने घटनाओ का विस्तार उपाख्यानो की दृष्टि से ही नही, समय की दृष्टि से भी विशद माना है। उनके अनुसार समय की दृष्टि से महाकाव्य का कार्य-व्यापार असीम हो सकता है। इस प्रकार का मत उन्होने त्रासदी और महाकाव्य का अन्तर स्पष्ट करते हुए व्यक्त किया।[2]

महाकाव्य के विस्तार, कथानक के निर्माण, कार्यान्विति आदि विशेषताओ के बाद अरस्तू ने कथानक मे कल्पना के प्रयोग पर भी विचार किया। उनके विचार मे आश्चर्योत्पादन महाकाव्य की अनिवार्य विशेषता है और ऐसा उनके अनुसार अनुत्पाद्य कथानक (ऐतिहासिक) मे कल्पना के प्रयोग से ही हो सकता है। उत्पादक कल्पना का आश्चर्यचकित करने वाला प्रभाव दो प्रकार से डाला जा सकता है—अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वो के मिश्रण से, और असम्भव बातो के वर्णन से। असम्भव और अविश्वसनीय बातो मे आश्चर्योत्पादन की विलक्षण शक्ति होती है।[3]

भारतीय आचार्यो की ही भाँति अरस्तू ने भी मुख्य प्रसग से सम्बन्धित जीवन की समग्रता के यथासम्भव चित्रण को महाकाव्य के लिए आवश्यक माना है। मुख्य कथा-चयन करने के उपरान्त, कवि अन्य वस्तुव्यापार-वर्णन के लिए अपनी कल्पना का प्रयोग करता है। नाटक के समान

---

१ The epic poem differs from tragedy in the length of its plan and in its metre With respect to length a sufficient measure has already been assigned It should be such as to admit of our comprehending at one view the beginning and the end, and this would be the case if the epic poem were reduced from its ancient length, so as not to exceed that of such a number of tragedies as are performed successively at one hearing But there is a circumstance in the nature of epic poetry which affords its peculiar latitude in the extension of its plan . but the epic imitation, being narrative, admits of many such simultaneous incidents properly related to the subject which swell the poem to a considerable size —Ibid, p 47-48

२ It also differs in length, for tragedy endeavours, as far as possible, to confine its action with the limits of a single revolution of the sun or nearly so, but the time of epic action is indefinite

—Ibid, page. 13

३ The surprising is necessary in tragedy; but the epic poem goes further and admits even the improbable and incredible, from which the highest degree of surprising results, because there the action is not seen "

—Ibid, page 49

ही महाकाव्य मे भी क्रान्ति, अन्वेषण, दुर्घटनाओं का भी वर्णन होता है।[1]

शैली—शैली के प्रसग मे अरस्तू ने महाकाव्य की अभिव्यजना कला, उसके कलात्मक सौन्दर्य के विषय मे विशेष कुछ नही कहा। शैली के अन्तर्गत यदि कुछ परिगणित किया जा सकता है तो वह है विषयवस्तु की नियोजना-सम्बन्धी उनका विचार। वस्तुत शैली के विषय मे उन्होने प्रत्यक्ष कुछ लिखा ही नही। घटनाचक्र के सयोजन, और प्रकारान्तर से अभिव्यजना पर पडने वाले प्रभाव का ही उन्होने वर्णन किया है। नाटक के समान महाकाव्य भी उन्होने सरल और जटिल दो प्रकार के माने। इनके भी प्रत्येक के कथा के स्वरूप के अनुसार नैतिकतापूर्ण और दुर्घटनापूर्ण—दो भेद किए। जटिल कथानको मे उन्होने रोमाचक तत्त्व तथा घटना-वैविध्य अधिक माना, और सरल मे अपेक्षाकृत कम घटनाएँ और कार्यान्विति अधिक। इसी आधार पर 'इलियड' को सरल शैली का दुर्घटनापूर्ण काव्य और 'ओडेसी' को जटिल और नैतिकतापूर्ण काव्य माना गया है।[2] शैली और छन्द के विषय मे एक सकेत उन्होने अनेक प्रसगो मे दिया है। जैसा हम आरम्भ मे स्पष्ट कर आए है—महाकाव्य की रचना उन्होने षटपदी छन्द और समाख्यान शैली मे मानी है। इसी मत की उन्होने एकाधिक स्थलो पर पुनरावृत्ति की और महाकाव्य की रचना आद्यन्त एक ही छन्द मे उचित मानी।[3]

भाषा और शब्द-चयन के विषय मे भी अरस्तू ने विस्तारपूर्वक विचार नही किया। उन्होने केवल भाषा और भाव के अनुकूलत्व पर ही विशेष बल दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होने यह भी कहा कि भाषा सहज अलकृत होनी चाहिए। जहाँ इस प्रकार का प्रयत्न सचेष्ट होता है वहाँ प्राय वह घटनाक्रम की शिथिलता को आवृत्त करने के लिए किया जाता है।

अरस्तू द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य की विशेषताएँ सक्षेप मे इस प्रकार है—

कथानक

१ महाकाव्य मे समाख्यानात्मक शैली मे लिखी गयी कोई महान् और लम्बी पद्यबद्ध कथा होती है।

२ मूल कथा के साथ अनेक अवान्तर कथाओ का समावेश होता है अथवा मुख्य कथा अनेक भागो मे विभक्त होती है।

---

१ Its parts also, setting aside music and decorations are the same, for it requires revolutions, discoveries and disasters . ...
—Ibid, p 47.

२ Again, the epic poem must also agree with the tragic as to its two kinds, it must be simple or complicated, moral or disastrous Thus his (Homer's) two poems, the Iliad is of the simple and disastrous kind, the Odyssey complicated (for it abounds through out discoveries) and moral. —Ibid, p. 47

३. Epic poetry agrees so far with tragic as it is an imitation of great characters and actions by means of words, but in this it differs, that it makes use of only one kind of metre throughout and that is narrative. —Ibid, page 13

३. कथानक का विकास नाटकीय होता है, और घटनाओं मे एक निश्चित कार्यान्विति होती है। अन्विति से अभिप्राय एक व्यक्ति की कथा से नही, कार्य की एकसूत्रबद्धता से है। एक व्यक्ति की कथा मे भी अन्विति के अभाव मे अनेकता हो सकती है अत प्रबन्ध की भिन्न-भिन्न घटनाएँ इस प्रकार सूत्रबद्ध होती है कि उनमे से एक के भी इधर-उधर होने से सम्पूर्ण विधान अस्त-व्यस्त हो जाता है। इतिहास और महाकाव्य मे यही अन्तर है।

४ महाकाव्य के लिए घटना-विस्तार अनिवार्य है, परन्तु विस्तृत आकार होने पर भी, महाकाव्य की कथा स्वत पूर्ण और एक ही दृष्टि मे दिखाई पडने वाले प्राणी के समान आदि, मध्य और अन्त से युक्त इकाई के समान होती है। कथानक के आदि, मध्य और अवसान—यह तीनो चरण स्थिति की दृष्टि से सर्वथा निश्चित रहते है और इनकी अनिवार्यता स्वत सिद्ध होती है। इनका पूर्वापर-क्रम-बन्धन भी इस प्रकार निश्चित होता है कि एक के बिना दूसरे का सगत विकास सम्भव प्रतीत नही होता।

५ महाकाव्य मे यथासम्भव, जीवन का सागोपाग वर्णन किया जाता है। विस्तृत वस्तु-व्यापार-वर्णन के साथ अतिप्राकृत तत्त्वो और असम्भव घटनाओ का भी समावेश होता है, क्योकि आश्चर्योत्पादन और पाठक के कौतूहल की सन्तुष्टि का गुण महाकाव्य मे नाटक की अपेक्षा अधिक होता है। परन्तु कथानक के सभी प्रसगो मे सम्भाव्यता होनी चाहिए। अर्थात् कथानक की घटनाओ का विकास एक-दूसरे मे से सहज रूप मे हो, सयोग पर आश्रित रहकर मनमाने ढग से नही, अन्यथा वे पाठक के मन का उचित परितोष नही कर सकती।

६ महाकाव्य के कथानक-सगठन मे अरस्तू ने घटना-ऐक्य को तो काम्य स्वीकार किया, परन्तु देश और काल की एकता आवश्यक नही मानी। महाकाव्य मे वर्णित घटनाएँ परस्पर सम्बद्ध, परन्तु एक ही समय या भिन्न-भिन्न अवसरो पर एक अथवा अनेक स्थानो मे घटने वाली अनेक घटनाएँ हो सकती है।

शैली

७ महाकाव्य की शैली पर विस्तारपूर्वक उन्होने बहुत कुछ नही कहा। महाकाव्य की शैली समाख्यानात्मक होती है। इसके अतिरिक्त शैली के विषय मे उन्होने जो कुछ कहा वह अभिव्यजना या रचना शैली की विशेषता न होकर कथा-संघटन की पद्धति को ही अधिक व्यक्त करता है।

८ उन्होने सरल और जटिल दो भेद—घटनाओं के स्वरूप और कथा मे प्रयुक्त तत्त्वो के आधार पर माने है।

९ भाषा और शब्द-चयन—भाषा और भाव का परस्पर अनुकूलत्व और भाषा मे सहज अलकृति उन्होने महाकाव्य की भाषा के गुण स्वीकार किए।

१० छन्द—उपलब्ध साहित्य के आधार पर अरस्तू ने महाकाव्य की रचना आद्यन्त एक ही छन्द मे उचित मानी और षटपदी (Hexametre) के रूप मे उसका प्रकार निश्चित कर दिया।

उपर्युक्त मान्यता यद्यपि विकासशील महाकाव्यो की विशेषताओ को ही व्यक्त करती परन्तु व्यवहार मे शास्त्रीय, रोमाचक और अलकृत महाकाव्यो की निरन्तर रचना होने पर

भी सिद्धान्त मे उन्हे लक्षणबद्ध करने अथवा परिभाषा निश्चित करने का कोई विशेष उल्लेखनीय प्रयत्न सोलहवी शताब्दी तक नही दिखाई पडता।

यूरोपीय शास्त्रीय महाकाव्यो मे अरस्तू द्वारा निर्दिष्ट विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएँ भी पाई जाती है। जो इस प्रकार हैं—

कथानक

१. इन काव्यो के कथानक इतिहास, पुराण, बाइबिल आदि से ग्रहीत किसी गुरु गभीर विषय के आधार पर कवि-कल्पना द्वारा निर्मित है।

२. इन काव्यो मे होमर के काव्यो की अपेक्षा कार्यान्विति अधिक प्राप्त होती है। होमर के काव्यो का कथानक अधिक विस्तृत और घटनाएँ अपेक्षाकृत विशृखल थी।

३. होमर के महाकाव्यो मे अवान्तर कथाओ का बाहुल्य है। घटनाएँ भी अधिक है (कदाचित इसीलिए अरस्तू ने अवान्तर कथाओ की अधिकता और अनिवार्यता पर इतना बल दिया) इन काव्यो मे घटनाओ और अवान्तर कथाओं का इतना प्रपच नही मिलता।

४. वस्तु व्यापार-वर्णन मे कुछ कथानक-रूढियो का पालन इन सभी काव्यो मे दृष्टिगत होता है। जीवन के विविध पक्षो का वर्णन करने का प्रयत्न भी इनमे पाया जाता है।

५. भारतीय रूढियो की भाँति इन कृतियो मे प्रस्तावना, वस्तु-निर्देश और मगलाचरण की पद्धति को अपनाया गया है।

६. अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वो के प्रयोग मे, कल्पना का अतिचार इनमे नही दिखाई पडता। इस प्रकार के स्थलो पर बौद्धिक सयम और कल्पना का नियत्रित प्रयोग किया गया है।

शैली

१. इन काव्यो की शैली होमर की भाँति निसर्ग और सहज नही, अपितु प्रयत्न-साध्य और सचेष्ट कलात्मक शैली है। इनमे शब्द और अर्थ के चमत्कारयुक्त प्रयोग मिलते है। होमर की रचनाओ की सी पुनरुक्ति की प्रवृत्ति का भी इनमे अभाव है।

२. इनके वर्णनो मे पुस्तकीय ज्ञान का प्रभाव और पाडित्य-प्रदर्शन की भावना भी दिखायी देती है।

शास्त्रीय-अलकृत-महाकाव्य[1] और रोमाचक महाकाव्यो का पारस्परिक भेद बाह्य रूप, आकार और कला का उतना नहीं जितना घटनाओ के स्वरूप और कथानक के तत्त्वो का है। भिन्न वातावरण मे रचना होने के कारण अवश्य ही दोनो के स्वरूप मे अन्तर आ गया है। शास्त्रीय-अलकृत-महाकाव्यो का विकास दरबारो, और रोमाचक काव्यों का लोक-जीवन के मध्य हुआ। उनमे स्वभावत उतनी बौद्धिकता नही प्राप्त होती जितनी भावुकता व कल्पना। इस प्रकार के काव्य साधारण जनता की मनोवृत्तियो के अधिक अनुकूल थे।

वस्तुत काव्य-रूप तथा शैली की दृष्टि से रोमाचक-महाकाव्य कोई पृथक् भेद नही।

1. Classical epic of art.

महाकाव्य के अन्य रूपो से यह भेद अन्तरात्मा का अधिक है और उसीके परिणामस्वरूप इनकी बाह्य अभिव्यक्ति मे अन्तर दिखाई पड़ता है। ये महाकाव्य लोक-साहित्य के अधिक निकट होते है। महाकाव्य की रचना जब रोमाचक कथा तथा कार्य-व्यापार को लेकर होती है तभी वह इस कोटि मे आ जाता है। इनमे कल्पना की अतिशयता, विशेष भावुकता, उच्च उद्देश्य का अभाव, कथा कहकर केवल मनोरजन करने की प्रवृत्ति और तदनुकूल कला दृष्टिगत होती है। इन काव्यो तथा इनकी रूप-सम्बन्धी धारणा का प्रभाव आधुनिक हिन्दी-महाकाव्य पर नही मिलता, अत. रूप-सम्बन्धी विशेषताओ का विस्तार से वर्णन करना यहाँ विशेष प्रसगानुकूल नही होगा। इस विषय मे केवल इतना सकेत कर देना अनिवार्य है कि यद्यपि रोमास और महाकाव्य दोनो एक-दूसरे से भिन्न काव्य-रूप नही है—रोमाचक तत्त्वो से युक्त महाकाव्य रोमांचक महाकाव्य कहलाता है, और महाकाव्य की विशेषताओ से विहीन रोमान्स—रोमाचक कथा-काव्य, परन्तु महाकाव्यो मे रोमाचक तत्त्वो के अतिशय प्रयोग को पाश्चात्य चिन्तको ने महाकाव्य की नाटकीयता के लिए घातक माना है।

महाकाव्य के जिन विविध रूपो का अभी तक वर्णन किया गया, वे यूरोपीय साहित्य मे अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक प्राप्त होते है। सामान्यत. महाकाव्य को विषयगत या वस्तुगत दृष्टिकोण से रचित काव्य रूप स्वीकार किया गया है। अत अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, जब जीवन के हर क्षेत्र मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की भावना ने प्राचीन मान्यताओ के प्रति विद्रोह किया, तब साहित्य के क्षेत्र मे भी विषयीप्रधान व्यक्तिवादी भावनाओ के अनुकूल रूप-विधाओं को ग्रहण किया जाने लगा, विशेषकर गीति-काव्य के विभिन्न प्रकारो को। आग्ल-साहित्य मे प्राचीन धाराओ और मान्यताओ से सर्वथा निरपेक्ष प्रबन्धो की रचना हुई। बायरन, वर्डस्वर्थ, कॉलरिज, कीट्स सभी ने इस दिशा मे स्वच्छन्द प्रयोग किये, परन्तु किसी उल्लेखनीय महाकाव्य की रचना इस समय नही हुई।

कुछ समय बीत जाने पर महाकाव्य की प्राचीन प्रचलित विधाओ के परस्पर मिश्रण और नवीनता के समावेश से कुछ नये प्रकारो का आविर्भाव हुआ। इन महाकाव्यो मे दो विशेषताएँ प्रधान रूप से दिखाई देती है। नाट्य शैली मे कथा-वर्णन का प्रवृत्ति, तथा पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का अपेक्षाकृत अधिक प्रयत्न। बाह्य जीवन मे कार्यान्वित होने वाली घटनाओ के प्रेरक रूप मे मानव-मन का विश्लेषण, उस पर पडने वाले प्रभाव का वर्णन तथा विभिन्न मानसिक दशाओ का उद्घाटन इन रचनाओ मे किया गया है। १९वी शताब्दी के कवियो ने सिद्ध कर दिया कि महाकाव्य अनिवार्यत. समाख्यानात्मक शैली मे रचित काव्यरूप नही, अपितु नाट्य शैली मे भी महाकाव्य की रचना सम्भव है। इस प्रकार के उदाहरण टेनीसन का 'आडिल्स आफ द किंग' जिसमे आर्थर के दरबार मे विभिन्न दरबारियो द्वारा कथाएं कहलाई गयी है, तथा बीसवी शताब्दी मे हार्डी द्वारा रचित 'द डाइनेस्ट्स' जिसकी कथा पात्रो के स्वगत कथन के रूप मे कही गयी है, आदि है। ब्राउनिंग के 'द रिंग एण्ड द बुक' मे मनोवैज्ञानिक महाकाव्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होता है। एक घटना-विशेष का अनेक व्यक्तियो के मुख से अनेक रूपो मे वर्णन कराया गया है। कवि का उद्देश्य महत् घटना व चरित्रो का वर्णन नही, वरन् मनोवैज्ञानिक चित्रण है। काव्य की घटनाएं अमूर्त है।

स्पष्ट है कि महाकाव्य के स्वरूप के विषय मे अरस्तू के उपरान्त क्रमशः शैली, विषय, कला आदि, सभी दृष्टियो से इतनी विविधता उपस्थित हो चुकी थी कि आधुनिक आलोचको को महाकाव्य की एक सामान्य और निश्चित परिभाषा बनाना असम्भव प्रतीत होने लगा। हर देश की महाकाव्य-विषयक धारणा मे, और हर कवि की व्यक्तिगत प्रतिभा मे दूसरे से अन्तर होता है और तदनुसार उनकी कृतियो मे परस्पर अन्तर प्रस्तुत होता है। इसी कारण आचार्यो की परिभाषाओ मे —जिनका आधार उनके अपने समय की वर्तमान सामग्री होती है, परस्पर पर्याप्त मतान्तर मिलता है। भारतीय आचार्य लक्षणो मे निरन्तर अन्तर प्रस्तुत करते रहे और अपवाद स्वीकार करते रहे। 'द बुक आफ एपिक' के लेखक ने इसी कारण भूमिका मे लिखा—

"ससार मे जितने राष्ट्र और जितने कवि है, महाकाव्य की सचमुच ही उतनी ही परिभाषाएं है और महाकाव्य-रचना के उतने ही नियम है।"[1]

उपर्युक्त मत मे महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करने की कठिनाइयो का ही सकेत है। इसी प्रकार की एक अनिश्चित और अस्थिर परिभाषा 'एवरक्रोम्बी' ने दी। उन्होने कहा कि "महाकाव्य की परिभाषा देना यद्यपि विशेष उपयोगी नही, परन्तु सरल ढग यह है कि—महाकाव्य वह काव्य है जिसके पढने के उपरान्त मन मे वैसी ही भावनाओ का उन्मेष हो जैसी 'पैराडाइज लॉस्ट', 'बियोवूल्फ', 'इलियड', 'सॉग आफ रोला' आदि के पढने के उपरान्त होता है।"[2]

इस परिभाषा में किसी प्रकार के स्थिर और निश्चित मानदण्डो को आधार नही बनाया गया। हृदय पर पडने वाले प्रभाव के स्वरूप को स्पष्टत. जानना बहुत कठिन है। मनोवृत्तियो का स्थूल मूर्तरूप अथवा सीमा निश्चित नही की जा सकती—वह अमूर्त का विषय है, और साथ ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की भावनाओ मे और प्रभाव ग्रहण करने की क्षमता मे अन्तर होता है। भिन्न-भिन्न महाकाव्यो का सभी व्यक्तियो पर एक जैसा ही प्रभाव पडेगा, अथवा एक ही ग्रन्थ का भिन्न-भिन्न व्यक्तियो पर पृथक् प्रभाव नही पडेगा यह कैसे कहा जा सकता है।

आधुनिक आलोचको मे से 'बावरा' ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए कहा—

"सर्वसम्मति से महाकाव्य बृहद् आकार का एक समाख्यानात्मक काव्य-रूप है तथा उसमे ऐसी महत्त्वपूर्ण और भव्य घटनाओ का वर्णन होता है जिनका सम्बन्ध सक्रिय जीवन से होता है, विशेषकर युद्ध आदि जैसे भयकर कार्यों मे। इसमे (महाकाव्य से) हमे विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है, क्योकि उसकी घटनाएं और पात्र मानव की उपलब्धियो के महत्त्व तथा उसके गौरव और कुलीनता के प्रति हमारी आस्था को दृढ करते है।"[3]

१. 'द बक आफ एपिक' का अनुवाद—विदेशी के महाकाव्य—अनु० गोपीकृष्ण गोपेश, पृ० १३

२. An easy way to define epic, though not a very profitable way, would be to say simply that an epic is a poem which produces feelings similar to those produced by Paradise Lost, or the Illiad, Beowulf or the Song of Roland

The Epic : Abercrombie, page 51

३ An epic poem is by common consent a narrative of some length and deals with events which have a certain grandeur and importance and

उपर्युक्त मत से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है—

१. महाकाव्य एक बृहदाकार कथात्मक काव्य-रूप है।

२ इसमें भव्य और महत्त्वपूर्ण घटनाओं का, विशेषकर जिनमे गति हो, जिनका युद्धादि भयकर और क्रियाशील जीवन की घटनाओ से सम्बन्ध हो, वर्णन होता है।

३ जीवन के सद्मूल्यो के प्रति आस्था उत्पन्न करके आनन्द प्रदान करना इसका उद्देश्य होता है। इस प्रकार यह परिभाषा केवल महाकाव्य के अन्तरग पर कुछ सीमा तक प्रकाश डालती है, परन्तु अभिव्यक्ति और बहिरग स्वरूप इससे बिल्कुल स्पष्ट नही होता।

इस परिभाषा से थोडी भिन्न एक अन्य परिभाषा एबरक्रोम्बी ने दी है। उन्होने कहा कि केवल बृहद् आकार मात्र से कोई रचना महाकाव्य नही हो पाती। आकार से भिन्न घटना, चरित्र, उद्देश्य और शैली आदि, सभी की महानता उसके लिए अनिवार्य है। उसमे गरिमा और गाम्भीर्य होना चाहिए।[1]

इस परिभाषा मे यद्यपि महाकाव्य के अपेक्षाकृत अधिक तत्वो पर विचार किया गया है, परन्तु महाकाव्य की रूपगत विशेषताएं इससे भी स्पष्ट नही होती। वस्तुतः यूरोपीय आचार्यों ने यद्यपि भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से अपनी महाकाव्य सम्बन्धी धारणा को व्यक्त किया है, परन्तु वहाँ भी ऐसी कोई परिभाषा उपलब्ध नही, जो महाकाव्य के स्वरूप को चारो ओर से घेर ले। किसी भी परिभाषा को पूर्णतः सर्वांगनिरूपक नही कहा जा सकता। इसका मुख्य कारण यही है कि हर युग मे महाकाव्य के नए प्रयोगो के साथ तत्सम्बन्धी धारणाएँ भी बदलती रही है। प्रत्येक युग मे अपने से पूर्व के महाकाव्यो के महाकाव्यत्व को स्वीकार करते हुए भी उनमें परिपालित गौण और महत्त्वपूर्ण, हर प्रकार की विशेषताओ का उल्लघन किया जाता रहा। नए प्रयोग बार-म्बार किये गए और उन्हे फिर महाकाव्य स्वीकार कर लिया गया। इसी स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति को दृष्टि मे रखते हुए स्वच्छन्दतावादी विचारक वाल्टेयर ने महाकाव्य को सकीर्ण लक्षणो मे बाँधने का विरोध किया। उनका विचार था कि प्रत्येक महाकाव्य कुछ ऐसे गुणो से युक्त होता है जिनका साक्षात्कार समाज अपनी बुद्धि द्वारा करने के उपरान्त उन्हे महाकाव्य का पद प्रदान कर देता है—

---

come from a life of action, especially of violent action such as war. It gives a special pleasure because its events and persons enhance our belief in the worth of human achievement and in the dignity and nobility of man.

From Virgil to Milton, by C M. Bowara, p 1.

१ What epic quality, detached from epic proper, do these poems possess, then, apart from the mere fact that they take up great many pages? It is simply a question of their style the style of their conception and the style of their writing, the whole style of their imagination, in fact, they take us into a region in which nothing happens that is not deeply significant, a dominant, noticeable symbolic purpose presides over each poem, moulds it greatly and informs it throughout.

The Epic, by L Abercrombie, p. 52

"व्यवहार के आधार पर विशेषत कुछ ऐसे काव्य-ग्रन्थो को जिनमे किसी महान् घटना का वर्णन होता है 'महाकाव्य' सज्ञा प्रदान की गई है। घटना चाहे सरल हो अथवा जटिल, इलियड का तरह उसका क्षेत्र चाहे स्थान-विशेष हो, चाहे 'ओडेसी' की भाँति उसका नायक सारे ससार मे भटकता फिरे, उसका नायक एक हो अथवा अनेक, भाग्यवान हो या अभागे, एचिलीस की तरह क्रोधी हो अथवा एनियास की तरह धर्मप्रवण, वे राजा हो या सेनापति या इनमे से कुछ भी नही । वह काव्य तब तक महाकाव्य कहलाने का अधिकारी होगा जब तक उसके गुणो के अनुरूप आप उसका कोई दूसरा नामकरण नही कर देते।"[1]

इस प्रकार महाकाव्य के लिए वाल्टेयर केवल एक लक्षण अनिवार्य मानते है—घटना का महान् और गरिमायुक्त होना। इसके अतिरिक्त अन्य बाह्य लक्षणो और परम्परागत रूढियो को उन्होने व्यर्थ माना है।

डिक्सन ने भी उक्त मत का समर्थन करते हुए महाकाव्य को सकीर्ण लक्षणो मे बाँधने के प्रति विद्रोह किया है। उनका मत है कि 'महाकाव्य' शब्द की सकीर्ण अर्थों मे व्याख्या नही होनी चाहिए। यद्यपि उसका अर्थ निश्चित है, परन्तु सकीर्ण लक्षणो मे उसे नही बाधा जा सकता।"[2]

प्राचीन और आधुनिक पाश्चात्य आलोचको के महाकाव्य विषयक मतो का सिहावलोकन करने के उपरान्त सार का स्पष्टीकरण अब सभव होगा। कोई एक परिभाषा यद्यपि ऐसी नही, जिसमे महाकाव्य की सभी विशेषताओ को ग्रहण कर लिया गया हो, परन्तु विभिन्न विद्वानो के मताधार पर महाकाव्य का स्वरूप निश्चित किया जा सकता है—

१ सभी आलोचको ने महाकाव्य को प्रकथनात्मक (नैरेटिव) काव्य-रूप स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध मे जिन समीक्षक विद्वानो का उल्लेख किया जा चुका है उनके अतिरिक्त मेकेन्जी,[3] बर्टन आदि ने भी कथात्मक काव्य की परिभाषा देते हुए[4] इसी धारणा को पुष्ट किया

१. "Use alone has prefixed the name of epic particularly to those poems which relate some great action Let the action be simple or complex, let it lie in one single place, as in the Iliad or let the hero wander all the world over, as in the Odyssey, let there be one single hero, or a great many, happy or unhappy furious as Achilles, or pious as Aeneas, let them be king or generals, or neither of them, the poem will equally deserve the name of epic, unless you have a mind to honour it with another title proportionate to its merit"

Quoted by Macnielle—Dixon—English Epic & Heroic poetry, p 9

२ And we may remind ourselves, and before all things that the term epic, definite enough in meaning, can bear no narrow interpretation. Ibid, p.9

३. The typical "creative form of literature is that which contains an element of narrative This includes the novel . the epic....."

Process of Literature—by A M. Mackenzie, p. 129.

४. *Narrative poetry* –Poetry which tells a story (e. g. short tales

है। वस्तुतः आरम्भ मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप से लक्ष्य है। क्योकि आरम्भिक महाकाव्य का स्वरूप होमर की 'इलियड' और 'ओडेसी' रचनाओ के रूप में निश्चित हो गया।[1] और होमर की ये कृतियाँ निश्चित रूप से इतिवृत्तात्मक शैली मे लिखी विषय-प्रधान रचनाएँ थीं। कवि के सामने निजी दृष्टिकोण गौण था। प्रधान था सुनी सुनाई कथा को काव्यबद्ध कर जनता को सुनाना। इस प्रकार के काव्य-रूप मे आत्माभिव्यक्ति-प्रधान शैली के प्रयोग की आशा नही की जाती थी।[2]

धीरे-धीरे समय के साथ इस दृष्टिकोण मे अन्तर आ गया और विशेषकर पुनर्जागरण काल के पश्चात् लेखको ने गीति-तत्त्वो और आत्मपरक शैली को महत्त्व प्रदान करते हुए महाकाव्य मे भी उसका प्रवेश करा दिया।[3] इस प्रवृत्ति का सबसे मुखर रूप मिल्टन के 'पैराडाइज लॉस्ट' मे प्राप्त होता है—जहाँ कवि द्वारा प्रदत्त आत्म की महत्ता कथा के प्रवाह मे बाधक हुई है।[4]

२. महाकाव्य के आकार मे भी एक निश्चित विस्तार आवश्यक माना गया है—अर्थात् महाकाव्य एक बृहदाकार काव्य-रूप है। हरबर्ट रीड ने इलियड के विषय मे अपना मत देते हुए

---

in verse : epic, romance)

The criticism of poetry—Burton, p 167

१. ..., the character of the epic form had been fixed once for all If a later poet wished to compose a narrative of a heroic story he had to do it in the Homeric manner or not at all

Classical background of English literature, by J A K Thomson, p 33

The Epic is Homer, that is to say the Illiad and the Odyssey Ibid, p. 38

२ If it be asked how Homer produced this effect of impersonality, we may answer that it is by two principal means, a traditional poetic diction and an objective manner of narration ..In telling his story Homer is not concerned to give his own point of view, his attitude is that of the monk in scott —

I cannot tell how the truth may be,
I say the tale as'twas said to me. Ibid, p 41

३ When christianity became the source of poetic inspiration, we find the purely epic character of a poem modified by the introduction of a lyric element.

Cambridge history of English Literature, Volume I, p. 63.

४ Thus he has nothing like those passages in "Paradise Lost" in which Milton speaks of himself and which, however interesting they may be and they are among the most moving in our literature—undoubtedly interrupt the flow of the narrative. In fact they tend to be more interesting than the narrative itself.. In Homer on the other hand the story is always predominent.

Classical background...J. A. K. Thomson, p. 42

कहा कि सभी महाकाव्य अनिवार्यतः बृहद होने चाहिएँ।[1] इसी प्रकार की धारणा 'एलेजी' और 'एपिक' का अन्तर स्पष्ट करते हुए अंग्रेजी साहित्य के इतिहास मे व्यक्त की गई।[2]

३ महाकाव्य की कथानक-सम्बन्धी तीसरी विशेषता पाश्चात्य मनीषियो ने अवान्तर कथाओ की अवस्थिति मानी है। मूल कथा को विस्तार देने के लिए उसके साथ उपाख्यानों (एपिसोड्स) का होना अनिवार्य है। इन उपाख्यानों की सख्या जितनी अधिक होगी और जितने कौशल से वे कथा में अनुस्यूत होगे उतनी ही इस क्षेत्र मे कवि की सिद्धि मानी जायेगी।[3]

इसी प्रकार का एक तर्क अपने काव्य की महाकाव्य-सम्बन्धी विशेषताएँ स्पष्ट करते हुए 'डॉन जान' के कवि ने दिया है।[4]

४ अवान्तर कथाएँ या उपाख्यान मूल कथा से भली-भाँति सम्बद्ध होने चाहिएँ। अर्थात् कथा मे अन्विति, घटना-सम्बन्धी सम्बद्धता महाकाव्य के लिए अनिवार्य है।

इस विषय में प्राचीन और आधुनिक सभी आचार्य एकमत है। अवान्तर कथाएँ होने पर भी उनमे अपने ढग की अन्विति होती है।[5] साथ ही ये अवान्तर कथाएँ मुख्य कथा से निश्चित अनुपात मे सम्बद्ध और उसकी सहायक मात्र होती है।[6]

---

१ 'Iliad' is lengthy by reason of its story and so I think is all true epic poetry. Forms in modern poetry, Herbert Read, p. 63

२. It is customary to classify the early national poems in two groups, epic & eligiac. The former, if we may judge from Beowulf, ran to very considerable length, while all the extent specimens of the latter are quiet short. Cambridge history of English Literature, Vol. I, p 20.
"The action of an heroic poem must be of a certain magnitude"
Epic & Romance—W. P. Ker, p. 20

३ The structural art—what Arnold calls the architectonics of the Odyssey is even more remarkable. It is not like the Illiad concerned with a single episode, but with a series of episodes covering a period of ten years
The Classical background of English Literature, J A. K. Thomson, p 46

४. "My poem's epic, and is meant to be
....
New characters, the episodes are three.
(Don Juan)
Quoted by Burton—'The Criticism of poetry', p. 165

५. ...the epic being so long, admitted more episodes. But it did also confirm to its own kind of unity of action
The English Epic & its Background, E M W. Tillyard, p. 108

६. ···The various episodes in the earlier books are nicely proportioned and subordinated to the main theme (about Cyropedia by Xenophen)

५. अवान्तर कथाओ के साथ दृश्य वैचित्र्य और वर्णन वैविध्य भी महाकाव्य के कथानक में पाश्चात्य विद्वानों ने स्वाभाविक माना। महाकाव्य मे पात्रो की सजीव कल्पना के कारण उनकी विभिन्न चित्तवृतियो और समस्याओं से सम्बद्ध विविध वर्ण्य विषयो और दृश्यो का सहज रूप मे अन्तर्भाव हो जाता है, अत जीवन का सर्वांगीण कार्य-व्यापार कथा की सीमा-रेखाओं मे सिमट आता है। महाकाव्य इस प्रकार वैविध्यपूर्ण और जटिल काव्य-रूप है।[1]

६ यद्यपि पाश्चात्य आचार्यो ने भारतीय-आचार्यो के समान सर्गो की सख्या, विस्तार आदि निश्चित नही किया, परन्तु इस आशका के प्रति वे भी सचेत थे—कि बृहदाकार काव्य-रूप होते हुए भी, घटनाओ की बहुलता अथवा अत्यधिक विस्तार महाकाव्य के लिए घातक हो सकता है, तथा पाठक के हृदय मे उलझन की सृष्टि कर सकता है। इसलिए उन्होने महाकाव्य के विस्तार-नियमन के लिए सामान्य व्यक्ति की स्मरण शक्ति को प्रमाण मानकर निर्णय किया कि महाकाव्य की घटनाओ का विस्तार उसी सीमा तक होना चाहिए, कि उसका समस्त विवरण सामान्य पाठक की स्मृति मे पढते समय सुरक्षित रह सके। अर्थात् अत्यधिक विस्तार के कारण यदि पाठक को उलझन का अवकाश होगा तो वह महाकाव्य की सीमा का अतिक्रमण समझा जायगा।[2] तासो के उपर्युक्त मन्तव्य से पुस्तक के लेखक ने भी सहमति प्रकट की है।[3]

७. सर्ग और अध्यायो मे विभाजन के नियम का लक्षण-रूप मे यद्यपि पाश्चात्य आचार्यों ने विधान नही किया, परन्तु व्यवहार मे सभी महाकाव्य सर्गबद्ध है, और महाकाव्य के लक्षण के रूप मे वहाँ के कवियो के हृदय मे यह धारणा बद्धमूल है।[4]

१ In an epic poem where the characters are vividly imagined, it follows naturally that their various moods and problems involve a variety of scenery and properties, and so the whole business of life comes into the story

Epic poetry is one of the complex and comprehensive kinds of literature; Epic & Romance Essays on Medivial Literature W P Ker, p. 16-17

२ Such a limit he believes to exist and he finds it in the extent of a man's powers of memory, in other words, a man of average memory should be able to retain in his head, while reading, all the details of an Epic.

(Tasso's view) Ibid, p. 231

३. This is surely a sound principle if you postulate unity in an epic

Ibid, p. 231

४. My poem's epic, and is meant to be
Divided in twelve books; each book containing,
With love, and war, a heavy gale at sea,
A list of ships, and captains, and kings reigning,
....
A panoramic view of hell's, in training

"Don Juon"

quoted from 'The Criticism of Poetry'—Burton, p 165

८ आरम्भिक महाकाव्यों मे घटनाओं का रंगस्थल भौतिक वस्तु-जगत् ही रहा। इतिवृत्तात्मक कथा के बीच घटित होने वाली घटनाओं का सम्बन्ध बाह्य-जीवन और स्थूल जगत् से था। होमर आदि कवियों की कृतियों मे अंकित ये घटनाएँ मूर्त थीं और वस्तु-जगत् का आधार इनमें सर्वथा स्पष्ट था, परन्तु वर्तमान युग तक आते-आते यह धारणा मिल्टन द्वारा निर्मूल सिद्ध कर दी गई कि महाकाव्य में वर्णित घटनाएँ शरीरी एव भौतिक ही हो सकती है। यद्यपि महाकाव्य मे मनोवैज्ञानिकता का सूत्रपात ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी के कवि एपोलौनियस ने ही कर दिया था, परन्तु मूर्त की अपेक्षा अमूर्त को प्रधानता मिल्टन ने दी, और यह सिद्ध कर दिया कि महाकाव्य मे अमूर्त घटनाओं या मानसिक और बौद्धिक जगत् से सम्बन्धित विषयो का चित्रण भी उतनी ही सफलता से किया जा सकता है जितना सासारिक रगस्थल पर घटित होने वाली घटनाओं का। इस प्रकार अमूर्त और मूर्त दोनो प्रकार की घटनाएँ ही महाकाव्य का विषय हो सकती हैं।[1]

९ महाकाव्य की घटनाओ का स्वरूप कैसा भी हो, पात्रो की नाटकीय उपस्थिति महाकाव्य के लिए भी आवश्यक है। यह नाट्य गुण ही महाकाव्य और इतिहास व रोमास का व्यावर्त्तक तत्त्व है। पात्रों के बीच होने वाले संघर्ष की नाटकीय उपस्थिति में महाकाव्य का वैविध्य और प्राणशक्ति रक्षित रहती है। सवादों की यह सफल योजना और उचित स्थलो पर उनका विधान होमर की सफलता का कारण है।[2]

कथानक के स्वरूप, संघटन, परिमाण, प्रभावान्विति आदि उपर्युक्त विशेषताओ के अतिरिक्त पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य के अन्य तत्त्वों—चरित्र, रस, उद्देश्य और शैली पर भी प्रकाश डाला। प्रस्तुत प्रसंग में शैली-सम्बन्धी अभिमत का उल्लेख ही अभीष्ट है। महाकाव्य की अभिव्यंजना के विभिन्न अग-उपांगों के विषय मे यद्यपि विशेष विस्तृत रूप से विवेचन नही किया गया। परन्तु उल्लेखनीय विशेषताएँ निम्नाकित है—

१ महाकाव्य अनिवार्यतः पद्य-रचना है—ऐसा पाश्चात्य मनीषियो ने स्वीकार नही

---

१ ...But Milton, in his poem, had more in mind than the story, the story of the fall is merely the Kernel, or theme round which he elaborates, firstly a dramatic myth, and secondly a philosophical thesis; Here the epic, we might say, is dominated by an idea.

Forms in Modern Poetry—Herbert Read, p. 63

२. Without dramatic representation of the characters, epic is mere history or romance, the variety and life of epic are to be found in the drama that springs up at every encounter of personages

Homer is the only poet who knows the right proportions of epic narrative, when to narrate, and when to let the characters speak for themselves. Other poets for the most part tell their story straight on, with scanty passages of drama and far between

Epic & Romance—W P. Ker, p 17

किया। उनके मत मे 'एपिक' की रचना गद्य-शली में भी सम्भव है।[1] परन्तु इस प्रकार का मत अधुनातन विचारकों का है। मध्ययुग मे महाकाव्य को छन्दोबद्ध काव्य-रूप ही स्वीकार किया गया था।[2]

२ शैली के विशेष गुण भाव और अभिव्यंजना की स्पष्टता, गरिमा और प्रवाह जो होमर के काव्य की मुख्य विशेषताएँ थी—महाकाव्य मात्र के अभीष्ट शैलीगत गुण मान लिये गए। मैथ्यू आर्नल्ड ने इस ओर सकेत किया और यवन कवियो के काव्य मे शैली के प्रवाह या गतिमत्ता को उनकी विशेष सिद्धि और महाकाव्य मे अपेक्षित विरल गुण माना।[3]

३ स्पष्टता, गरिमा आदि गुणो से युक्त महाकाव्य जैसे बृहद् एवं भव्य काव्य-रूप की शैली के लिए अलकरण भी पाश्चात्य विद्वानो ने अनिवार्य माना है। क्योकि महाकाव्य का आरम्भ मौखिक साहित्य के रूप मे हुआ—इस कारण यह पद्धति समाप्त हो जाने पर भी रूढि बनी रही कि कवि श्रोतावृन्द को सम्बोधित कर रहा है। यही कारण है कि वर्जिल और मिल्टन की शैली मूलत: वाचन शैली है।[4]

४ प्रवाह और अलकृति यद्यपि महाकाव्य की शैली के अनिवार्य गुण है, कथात्मक काव्यो मे शब्दो द्वारा घटनाओं का वेगमय वर्णन होना चाहिए, परन्तु शैली मे प्रवाह का अभि-

१. Not every critic would assign to the epic exactly the same qualities, but here are the most important. The epic must be a heroic narrative (though not necessarily in verse) and it must be ample in scope Here is an early statement of a common Renaissance doctrine that you could have an epic in prose.

The English Epic and its background, E M. W Tillyard, page 182.

२. In medivial times there existed a large body of narrative poetry to which the general title of Epic has usually been given

Encyclopedia Britanica—Volume VIII, page 647

३. In Mathew Arnold's 'Lectures on Translating Homer' there is an admirable analysis of the Homeric poetry, of which he thinks the four cardinal qualities are these Plainness of thought, plainness of style, nobleness and rapidity

As for the rapidity of the Homeric style, it is certainly very notable in the Greek. .Rapidity is a rarer quality in narrative poetry than might be expected.

Classical background of English Literature, J A K Thomson, page 42-43.

४. The epic style can hardly avoid being at least tinged with rhetoric. For the epic, began as oral literature, and after it had ceased to be this the convention remained that the poet was addressing a listening multitude That accounts for the fact that Virgil's style—and same may be said of Milton's—is fundamentally oratorical.

Ibid, page 54

प्राय विस्तार से नही। महाकाव्य की शैली में भाषा-लालित्य, भावोत्तेजना की क्षमता, परन्तु अतिव्याख्या की प्रवृत्ति का अभाव होना चाहिए। उक्त मान्यता आचार्य भामह की शैली-सम्बन्धी मान्यता के बहुत निकट है।[1]

५ आरम्भ मे महाकाव्य मे छन्द-प्रयोग सम्बन्धी एक प्रतिबन्ध अरस्तू आदि आचार्यों ने प्रस्तुत किया। उन्होने महाकाव्य की वीर-भावात्मक अभिव्यक्ति के विशेष अनुकूल होने के कारण षटपदी वृत्त (हैक्सामीटर) को महाकाव्य रचना के लिए मान्य ठहराया। परन्तु कालान्तर मे यह धारणा सर्वथा छिन्न हो गई और छन्द-प्रयोग के विषय मे कवि को इतना स्वातन्त्र्य प्रदान किया गया कि अतुकान्त वृत्त को मिल्टन आदि कवियों ने प्रवहमानता के कारण महाकाव्य के अधिक अनुकूल माना।[2] परन्तु यह धारणा लोकसम्मत-रूप नही प्राप्त कर पाई।

पाश्चात्य मनीषियो द्वारा महाकाव्य को समग्रत अत्यन्त गुरु-गम्भीर बृहद् काव्य-रूप स्वीकार किया गया, यह अभी तक प्रस्तुत किये गए विवेचन से सर्वथा स्पष्ट है। महाकाव्य मे रूप सम्बन्धी बाह्य व औपचारिक विशेषताओ पर इन विद्वानो ने उतना बल नही दिया जितना उसकी अनिवार्य और प्रमुख विशेषताओ पर। उनकी दृष्टि मे महान् कथानक—उसमे विस्तार और वैविध्य, तर्क-सम्मत जटिलता, नाटच गुण, जीवन की समग्रता का अन्तर्भाव, बृहद् आकार और समर्थ शैली ही महाकाव्य की अनिवार्य विशेषताएँ है। इनके अतिरिक्त छन्द-प्रयोग आदि से सम्बन्धित जो कतिपय रूढियाँ कुछ समय के लिए स्थिर हो गई थी, आधुनिक युग तक आते-आते कवियो ने उनकी नितान्त अवहेलना कर दी और प्रयोगो के आधार पर इस काव्यरूप की परिभाषाएँ भी परिवर्तित हो गई। निषेधात्मक रूप मे विद्वानो ने जिन विशेषताओं का एपिक के प्रसग मे उल्लेख किया वे इस कथन की पुष्टि करेगी।[3] महाकाव्य मे गरिमा और घनत्व पर पाश्चात्य मनीषियो ने सर्वाधिक बल दिया।[4]

इसी प्रकार की धारणा आधुनिक हिन्दी-साहित्य के कवियों के मन मे भी घर कर गई थी, यह उनकी रचनाओ से स्पष्ट है। जिन कवियो ने सही अर्थ मे महाकाव्यो की रचना की उन्होने भी रूढियों व अपेक्षाकृत गौण विशेषताओ पर उतना बल नही दिया जितना महाकाव्य

---

१ In narrative poetry the words must convey the action with speed and economy, but they must be fine emotive words.

Forms in Modern poetry, page 72

२ Finally Trissino is like Milton in making the unpopular plea that the continuity of blank-verse suits the epic better than the interruption of rhyme

The English Epic and its Background, E. M W Tillyard, page 225

३. and the Epic catagory fails to fit it most conspicuously It is too short, confined, and simplified for the necessary epic variety and it quite lacks choric character. Ibid, page 447

४. Whatever Epic may mean, it implies some weight and solidity.

Epic & Romance—W P Ker, page 4

के उपर्युक्त प्राणभूत गुणो पर।

पौरस्त्य और पाश्चात्य आचार्यों की महाकाव्य-विषयक मान्यताओ को जान लेने के उपरान्त विवेच्य साहित्य का अध्ययन अब सुकर होगा। अनेक नवीन काव्य-रूपों के प्रवेश और कुछ मौलिक प्रयोगो के अतिरिक्त परम्परागत काव्य-रूपो मे भी समय के साथ अनेक परिवर्तन होते रहे है। आधुनिक काल मे विशेष रूप से रूढियो के प्रति अनास्था की प्रवृत्ति पूर्ववर्ती युगो की अपेक्षा हर क्षेत्र मे अधिक परिलक्षित होती है और महाकाव्य इस प्रवृत्ति का अपवाद नही। परन्तु परम्पराओ के विद्रोह की भावना ने आधुनिक युग के कवियो मे दुराग्रह का रूप धारण नही किया। कही-कही प्राचीन भारतीय परम्परा और विदेशी साहित्य के प्रभाव से गृहीत नवीन पद्धतियो के सयोग से इन कवियो ने अनेक सुन्दर प्रयोग किए तथा अपनी मौलिक प्रतिभा के आधार पर अन्यत्र परम्परा का पुनर्निर्माण किया। इस प्रकार विभिन्न कारणो के परिणाम-स्वरूप इस युग के काव्य-रूपो मे पर्याप्त वैविध्य उपलब्ध है। तत्सम्बन्धी पूर्व और पश्चिम की चिन्ताधारा के प्रकाश मे अब हम विवेच्य साहित्य मे उपलब्ध महाकाव्यो, अथवा इस नाम से अभिहित अन्य बृहद् प्रबन्धो के रूप-विवेचन का प्रयास आगामी पृष्ठो मे करेंगे। यथास्थान इन काव्यो की परम्परागत, प्रभावगत और मौलिक विशेषताओ पर प्रकाश डालने का प्रयत्न भी इस प्रसग मे किया जाएगा।

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य

रीतिकाल तथा भारतेन्दु-युग के दीर्घ अन्तराल के उपरान्त बीसवी शताब्दी में एक बार अनेक बृहद् प्रबन्धो की रचना हुई। इन सभी प्रबन्ध काव्यो को निश्चित रूप से महाकाव्य तो नही कहा जा सकता, किन्तु आधुनिक काल के महाकाव्यो की रूप-विधा सम्बन्धी विशेषताओ का परीक्षण करते समय ऐसे सभी महत्त्वपूर्ण प्रबन्धो का उल्लेख और रूप-विवेचन अभीष्ट होगा जिनके रचयिताओ ने महाकाव्य की रूपरेखा को दृष्टि मे रखकर उनकी रचना की, या स्वय उन्हे महाकाव्य घोषित किया है। ये सभी ग्रथ महाकाव्य विशेषण के अधिकारी है या नही, यह भिन्न प्रश्न है। इनके अतिरिक्त हमने अपने विवेचन मे उन रचनाओ को भी विषय बनाया है जिनके रचयिताओ ने विनम्रतावश उनके महाकाव्यत्व की विज्ञप्ति तो नही की, परन्तु अन्य विद्वानो ने जिन्हे महाकाव्य मानकर उनका रूप-विवेचन किया है। विवेच्य युग के प्रमुख बृहद् प्रबन्धो का विभाजन काव्य-रूप के आधार पर तीन वर्गों मे किया जा सकता है—

१ लक्षणबद्ध प्रबन्ध
२ अशतः नवीन प्रयोग
३ सर्वथा नवीन प्रयोग

१. लक्षणबद्ध प्रबन्ध

इस वर्ग के सभी प्रबन्ध काव्यों मे सचेष्ट रूप से महाकाव्य के रूढिबद्ध शास्त्रीय लक्षणो का पालन करने का प्रयत्न किया गया है। अधिकाश प्रबन्धो की भूमिका मे कवि ने स्वय स्वीकार किया है कि उनकी रचना महाकाव्य के निर्दिष्ट लक्षणो को दृष्टि मे रखकर की गई है, तथा

जिन ग्रथों मे इस प्रकार की स्वीकृति नही है, वहाँ भी ग्रथ के मुखपृष्ठ पर नाम के साथ प्रायः कोष्ठक मे अनेक अन्य विशेषणो सहित उसके महाकाव्य होने का उल्लेख है। इन ग्रंथों मे से अधिकांश मे—विषय का चयन कर तदनुकूल आकार अपनाने के स्थान पर, पहले ग्रथ का रूपाकार निश्चित कर तत्पश्चात् सामग्री का अनुसन्धान व ग्रहण किया गया है। यह प्रक्रिया काव्य सृजन की सहज अभिव्यजना-प्रणाली के विपरीत है, अत इस प्रवृत्ति का स्वाभाविक दुष्परिणाम यही हुआ है कि विषयवस्तु और काव्य-रूप मे जो परस्पर अनुकूलत्व अपेक्षित है उसके अभाव मे इन ग्रन्थो का बाह्याकार तो महाकाव्य के परम्परानुमोदित स्वरूप के अनुकूल हो गया, किन्तु कही उस आकार के लिए पर्याप्त सामग्री नही है अत कथानक घटना-विरल हो गया है, कही अपेक्षा से अधिक घटनाएँ विद्यमान है, और कही कथा-सघटन मे विशृखलता, उचित अनुपात तथा नाटकीयता का अभाव है। इनकी स्थिति कुछ इस प्रकार के प्राणी की-सी है जिसके शरीर का आकार बृहद् होने पर भी वह रक्त-मास के अभाव मे कृश दिखाई पडता है, अथवा उस पृथुलाग व्यक्ति के सदृश जिसके शरीर का अग-प्रत्यग अस्थि-पजर मे कठिनाई से बँधा हो, या उस निरीह दीर्घाकार मानव के समान जिसके विभिन्न अगो मे समानुपात का अभाव हो। इन प्रबन्धो मे से एकाध मे रचयिता का झुकाव युगानुरूप नवीन चेतना की ओर अवश्य दिखाई पडता है, किन्तु शिल्प मे प्राचीनता का मोह यथावत् विद्यमान है। इस वर्ग के प्रमुख काव्य है—

१ प्रियप्रवास
२ रामचरित चिन्तामणि
३ सिद्धार्थ
४ रामचन्द्रोदय
५ कोशल-किशोर
६. वैदेही-बनवास
७ कृष्णायन
८. वर्द्धमान
९. पार्वती
१० अगराज
११. जननायक

उपर्युक्त काव्यो के अतिरिक्त भी अनेक प्रबन्धो की रचना समय-समय पर होती रही, किन्तु प्रबन्ध-रूप मे विशेष महत्त्व या प्रसिद्धि के अभाव मे सभी कृतियो का परिगणन व्यर्थ होगा। इस कारण प्रवृत्ति-विशेष के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध काव्यों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

इन ग्रन्थो की रचना के मूल मे एक सामान्य प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है। सभी लेखको ने महाकाव्य के निर्दिष्ट लक्षणो को दृष्टि मे रखते हुए सचेष्ट रूप से काव्य-रचना की है, अतः बाह्याकार मे लगभग सभी शास्त्रीय लक्षणो की उपलब्धि सहज रूप से हो जाती है। रूप-विधान सम्बन्धी विशेषताएँ इस प्रकार है—

कथानक—इन रचनाओं के कथानक इतिहास-प्रसिद्ध या सज्जनाश्रित है। सभः

का सम्बन्ध भारतीय सस्कृति के किसी महापुरुष से है। 'रामचन्द्रोदय', 'रामचरित चिन्तामणि,' 'कोशल-किशोर' और 'वैदेही-बनवास' मे राम के जीवन मे घटित होने वाली किसी महत्त्वपूर्ण घटना या घटनाओ का चित्रण है। 'प्रियप्रवास' और 'कृष्णायन' कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध है। 'सिद्धार्थ' काव्य मे भगवान बुद्ध और 'वर्द्धमान' मे जैन धर्म के चौबीसवे तीर्थकर महावीर की जीवन-कथा है। 'पार्वती' मे शिव के पार्वती-परिणय और कार्तिकेय की तारक-विजय का वर्णन है। 'अगराज' मे महारथी कर्ण की गौरव-गाथा है, और 'जननायक' राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की आत्मकथा से ली गई अनेक प्रासगिक-अप्रासगिक घटनाओ का पद्यबद्ध आलेख है। दूसरे शब्दो मे इसे भारतीय स्वतत्रता-सग्राम मे बापू से सम्बद्ध 'घटना-कोष' कहा जाय तो विशेष अनुचित न होगा।

इस प्रकार इन काव्यो के कथानक का स्वरूप परम्परानुमोदित है। ऐतिहासिक या सास्कृतिक महापुरुषो के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण घटनाओ का स्वरूप भी मूर्त है। समस्त कार्य-व्यापार का रगमच इनमे बाह्य जगत् है, मानव के अन्तर्मन मे होने वाली भौतिक घटनाओ के आन्तरिक स्वरूप के उद्घाटन का प्रयास प्राय. कवियो ने नही किया है। लगभग सब काव्यो मे स्थूल वस्तु-वर्णन या अभिधात्मक शैली मे इतिवृत्त कथन की प्रवृत्ति प्रधान है। सभी की रचना द्विवेदी-युग मे नही हुई, अत 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान', 'पार्वती', 'अगराज', 'जननायक', 'रामचन्द्रोदय', 'वैदेही-बनवास', 'कृष्णायन' आदि कृतियो के विषय मे यह कहना भी उचित न होगा कि इनके कवि युग-प्रवृत्ति से प्रभावित थे और द्विवेदी-युग इतिवृत्तात्मक दृष्टिकोण, वस्तुपरक मूल्यो की महत्ता, व सामाजिक नैतिक आदर्शो की प्रधानता का युग था। ये काव्य समय की दृष्टि से आगे बढ जाने पर भी रचना-पद्धति की दृष्टि से उसी प्रवृत्ति से आबद्ध है।

महाकाव्य जैसे विस्तृत काव्य-रूप के लिए उसमे वर्णित घटनाओ का महत् और गरिमामय होना जितना अनिवार्य है उतना ही गतिमान होना। कार्य-व्यापार का नियोजन इस प्रकार होना चाहिए कि घटनाएँ एक के बाद एक सहज रूप मे विकसित होती जाएँ, पाठक की जिज्ञासा आद्यन्त बनी रहे, और अत्यधिक विस्तार के कारण कथा मे गत्यवरोध या घटना-बाहुल्य के कारण कथाक्रम मे शिथिलता नही आ पाए। सक्षेप मे प्रबन्ध-शृखला सुसम्बद्ध और सुगठित होनी चाहिए जिससे इस शृखला की समस्त कडियाँ परस्पर उचित अनुपात मे कार्य-कारण सम्बन्ध से गुँथी रहकर प्रबन्ध के समग्र रूप को उचित सतुलन प्रदान कर सकें। कथानक के सम्यक् निर्वाह मे कवि की सचेष्टता उतनी ही अनिवार्य है जितनी किसी अन्य रूढि के पालन मे। प्रबन्ध-निर्वाह प्राय निम्नलिखित स्थितियो मे बाधित होता है—

(क) कथानक घटना-विरल हो।

(ख) घटनाओ की बहुलता हो।

(ग) वर्णित घटनाओ मे परस्पर सम्बन्ध, पूर्वापर क्रम व सघटन की उचित सयोजना न हो।

पहली स्थिति मे—अर्थात् घटनाओ के अभाव मे कवि जब ग्रन्थ को आकार देना चाहता है तो प्राय: कार्य-व्यापार के चित्रण का स्थान अप्रासगिक वर्णन ले लेते है, कथा आगे नही बढती तथा गत्यवरोध उपस्थित होता है।

दूसरी स्थिति मे पाठक की जिज्ञासा की पूर्णत. उद्बुद्धि और शान्ति का प्रश्न नही उठता।

न उसके हृदय मे आवेग होता है और न परिशमन। उसके तत्पर होने से पहले घटना प्रस्तुत हो जाती है और ग्रहण एव तादात्म्य करने से पहले पटपरिवर्तन।

तीसरी स्थिति मे पाठक पर पडने वाले सारभूत प्रभाव मे बाधा प्रस्तुत होती है। पाठक को यदि एक घटना दूसरी घटना का सहज परिणाम प्रतीत न हो, अथवा उनके वर्णन मे उचित अनुपात न हो तो स्वभावत वह न कथा के साथ तादात्म्य कर पाएगा और न उसकी मनोवृत्ति परितुष्ट होगी। यदि कृति के साथ पाठक का तादात्म्य या शास्त्रीय शब्दावली मे साधारणीकरण नही हो पाया तो कदाचित् यह लेखक की सबसे बडी असफलता होगी।

जिन प्रबन्धो का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है उनमे से अधिकाश घटना-सघटन-सम्बन्धी उक्त दोषो मे से एक अथवा दूसरे से ग्रस्त है। इस वर्ग का पहला प्रबन्ध 'प्रियप्रवास' ही प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से असफल रचना है। आचार्य शुक्ल के शब्दो मे उसकी कथा—"एक महाकाव्य तो क्या प्रबन्ध के लिए भी पर्याप्त नही है।" इसी प्रकार हरिऔधजी की दूसरी रचना 'वैदेही-बनवास', रमानाथ ज्योतिषी के 'रामचन्द्रोदय', बलदेव मिश्र के 'कोशल-किशोर' और अनूप शर्मा के 'वर्द्धमान' मे भी महाकाव्य के लिए पर्याप्त कथा-सामग्री का अभाव है।

'प्रियप्रवास' मे—ब्रज मे कृष्ण की लोकप्रियता, उनका मथुरा-प्रवास, वियोग मे ब्रजवासियो की विरह-व्यथा, उद्धव का आगमन, यशोदा, नन्द, ब्रजवासियो आदि का विलाप और कृष्ण के जीवन मे घटित कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाओ का स्मृति-रूप मे वर्णन—यही इस ग्रन्थ की सक्षिप्त कथा है। इस प्रकार कृष्ण का जीवन इस काव्य मे अपनी समग्रता मे स्थान नही पा सका। ऐसी घटनाएँ जिनमे कथानक को गति देने की सामर्थ्य थी प्रत्यक्ष प्रस्तुत नही की गई है। वे प्रायः अन्य पात्रो के मुख से पूर्व-स्मृति के रूप मे वर्णित है। इन घटनाओ द्वारा कथा-प्रवाह मे जिस गत्यात्मकता और सक्रियता की सृष्टि सम्भव थी वह भी अप्रत्यक्ष वर्णन के कारण नष्ट हो गई है। कृष्ण कही प्रत्यक्ष रूप से कार्य-व्यापार का सम्पादन कर, कथा मे सजीवता और वेग नही लाते। घटनाएँ मूर्त होने के कारण उनमे गत्यात्मकता का समावेश अधिक सहज था, परन्तु उनकी न्यूनता और अप्रत्यक्ष वर्णन की प्रवृत्ति के कारण कथानक का प्रवाह सर्वत्र बाधित है। वर्णन-विस्तार की अतिशयता से आकार मे विस्तार किया गया है। एक प्रसग से दूसरे प्रसग का सम्बन्ध, स्वाभाविक रूप से पूर्वापर का न होकर अत्यन्त शिथिल और बरबस स्थापित किया गया प्रतीत होता है। प्रबन्ध के विस्तृत कलेवर मे अल्पसख्यक घटनाएं जहाँ-तहाँ बिखरी होने के कारण वर्णनो मे प्राय: एकरसता आ गई है। एक प्रसग पर स्थिर होने के उपरान्त कथा आगे बढना ही नही चाहती। इतने बृहद् आकार मे अपर्याप्त सामग्री की स्थिति मे ऐसा होना स्वाभाविक ही था।

'रामचन्द्रोदय' मे भी इसी प्रकार समस्त कार्य-व्यापार ग्रन्थ के अर्धाश मे समाप्त हो गया है। उसके उपरान्त वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था, आश्रम-धर्म, राजनीति, वेदान्त आदि विषयो पर कवि ने अपना मन्तव्य व्यक्त किया है, तथा अन्त मे ग्रन्थ-परिचय, कवि-परिचय, देव-वन्दना आदि है। प्रबन्ध के उत्तराश मे इस प्रकार के विवरण सर्वथा अनपेक्षित और मुख्य कथा से असम्बद्ध, अत कथानक की गति और घटनाओ की निरतरता को बनाये रखने मे पूर्ण रूप से असमर्थ है। ग्रन्थ को आकार की दृष्टि से विस्तार देने के कारण ही कदाचित् ऐसा किया गया

है, अन्यथा मुख्य कथा से असम्बद्ध इन विषयो पर स्वतन्त्र रचना भी की जा सकती थी। इस प्रकार ग्रन्थ के उत्तराश मे कथा अवरुद्ध व अप्रासगिक हो गई है तथा मुख्य वस्तु से सम्बद्ध घटनाओ का एक बार ही अभाव हो गया है।

'वैदेही-बनवास' की कथा का सम्बन्ध राम के जीवन के जिस अश से है, उसमे लव-कुश से रामाश्वमेध के प्रसग मे होने वाले युद्ध के अतिरिक्त किसी प्राणवान घटना का अभाव है। यह प्रसग मूलत उनके जीवन का अत्यन्त कारुणिक व दुखद प्रसग है, किन्तु इस रचना मे कवि ने मूल प्रसग की इस एकमात्र सशक्त घटना का भी त्याग कर दिया है। इसके अतिरिक्त भी कथा मे घटनाएं अत्यन्त विरल है, और जिन घटनाओ का ग्रहण किया गया है उनमे गति और वेग का सर्वथा अभाव है। लव-कुश द्वारा अश्व के पकडे जाने की कथा के त्याग से सम्पूर्ण प्रबन्ध की प्राणवत्ता और वेग को क्षति पहुँची है। कवि का दृष्टिकोण उतना करुणापूर्ण नही जितना नैतिक है, अत स्थान-स्थान पर नैतिक विषयो पर लम्बे-लम्बे वक्तव्य और उपदेशो की योजना है। घटना-सूत्र सर्वथा शिथिल है, और अनेक प्रसगो मे एकरसता व अनावश्यक विस्तार है।

'सिद्धार्थ' और 'वर्द्धमान' के कवि को अपनी कथावस्तु जिस रूप मे परम्परा से प्राप्त हुई उसमे कथानक को तीव्र गत्यात्मकता देने के योग्य घटनाओ का स्वत अभाव था। शान्ति और अहिसा का उपदेश देने वाले महापुरुषो—बुद्ध और वर्द्धमान के जीवन मे आध्यात्मिक तथा अलौकिक घटनाओ का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु किसी महाकाव्य के लिए उचित उपादान प्रदान करने की दृष्टि से उनका वैराग्य-प्रधान जीवन घटना-शून्य ही था, अत: वास्तविक कथा की परिसीमा कवि के प्रबन्ध-निर्वाह की बाधा है। 'सिद्धार्थ' काव्य मे घटना-विरलता तो नही है, किन्तु घटनाओ मे जीवन्तता का अभाव है। कारण स्पष्ट है—अहिसा के प्रतिष्ठाता इन दोनो धर्मप्राण नायको के जीवन मे आध्यात्मिक दृष्टि से जितनी महत् घटनाएं घटी उनकी तुलना मे बाह्य वस्तु-जगत् मे धर्मसिद्धि और प्रचार के अतिरिक्त किसी ऐसी विशद घटना की कार्यान्विति नही हुई जिसका बाह्य दृश्य-रूप महाकाव्य मे जीवन-रस और महाप्राणता का सचार कर सके। यदि कवि का दृष्टिकोण अन्तर्मुखी होता, और वह इन बाह्य घटनाओ की आन्तरिक प्रक्रिया के उद्घाटन का प्रयत्न करता जैसा 'निराला' ने अपने लघु काव्य 'तुलसीदास' मे किया है, तो इन रचनाओ का स्वरूप कुछ भिन्न होता। किन्तु कवि की दृष्टि इनके जीवन के उस बाह्य पक्ष पर केन्द्रित है, जिसमे जीवन्त कार्य-व्यापार की विरलता है, अत वह महाकाव्योचित कथा-सामग्री का चयन नही कर पाया है। 'वर्द्धमान' काव्य का स्वरूप उपदेशात्मक है। कथा के सूत्र उपलक्ष्य मात्र है, जैन धर्म के सिद्धान्तो का वर्णन प्रधान है। अन्तिम सर्गों मे कथा बिल्कुल रुकी सी जान पडती है। आरम्भ मे भी घटनाओ मे तीव्र घात-प्रतिघात अथवा किसी प्रकार का सघर्ष अप्राप्य है। लेखक ने अनेक स्थलो पर घटना के अभाव मे अवान्तर प्रसगो की उद्भावना और वर्णन-विस्तार का परिचय दिया है। यह प्रयास कुछ स्थलो पर अप्रासगिक है। राजा सिद्धार्थ की रति-क्रीडा-वर्णन मे इसी प्रकार का अनपेक्षित विस्तार है। इसके अतिरिक्त विराग-भाव, स्वप्न-दर्शन, धर्म-चर्चा तथा अलौकिक घटनाओ के प्रसग मे धार्मिक रग अधिक गाढा हो गया है और वे सर्वथा नीरस और शिथिल जान पडते है।

इस वर्ग के सभी काव्यो मे घटना-विरलता है या उनमे गति व प्राणवत्ता नही है, ऐसा

नही कहा जा सकता। 'रामचरित-चिन्तामणि', 'कृष्णायन', 'पार्वती' और 'अगराज' के कवियो ने अपने नायको के समग्र जीवन अथवा कुछ महत्त्वपूर्ण और विस्तृत घटनाओं को काव्य-विषय बनाया है। 'रामचरित-चिन्तामणि' मे राम के जन्म से रामाश्वमेध तक की सम्पूर्ण कथा काव्य-विषय बनाई गई है। इस दृष्टि से कथा का विस्तार और घटनाओ का वाहुल्य पर्याप्त से अधिक है। किन्तु कवि ने प्रसगो का उचित अनुपात मे नियोजन एव विस्तार नही किया। मार्मिक स्थलो की प्राय. उपेक्षा की गई है, और कतिपय गौण स्थलो पर अनावश्यक विस्तार है। इस प्रकार यद्यपि घटना-विरलता और गति-अवरोध तो इस काव्य मे नही मिलता किन्तु विविध प्रसगों और घटनाओ का उचित अनुपात मे वर्णन नही हुआ। 'पार्वती' के कवि ने जिस प्रसिद्ध कथानक को अपनाया है उसमे विशदता भी है और गति भी। देश-काल की दृष्टि से भी इस काव्य के कथानक मे अपूर्व विस्तार है। स्थान की दृष्टि से उमा-जन्म से त्रिपुर-उद्बोधन तक की समस्त घटनाएँ इस कथानक मे ग्रहण की गई है, किन्तु आरम्भ से बाइसवें सर्ग तक कथा का विकास जितने सुचारु रूप से हुआ है और घटना-चक्र जितनी नियमितता और सहज वेग से आगे बढ़ा है—उसमे अन्त के तीन सर्ग जिनमे क्रमश शिव-धर्म, शिव-नीति और शिव-सस्कृति का वर्णन किया गया है, सर्वथा गतिहीन और घटना-शून्य जान पड़ते हैं। इन तीनो सर्गों मे किसी घटना का एक बार ही अभाव हो गया और इनका स्वर बहुत कुछ चिन्तन-प्रधान प्रतीत होने लगा है। तीनों सर्गों मे एक भी घटना नही घटती। कवि की वाणी से उसकी आदर्श धर्म, नीति और संस्कृति सम्बन्धी मान्यताएँ मुखरित है। इस अंश में काव्य का स्वरूप सर्वथा उपदेशात्मक और नैतिक-चिन्तन-प्रधान हो गया है। प्रबन्ध-निर्वाह और पाठक पर पड़ने वाले सारभूत प्रभाव की दृष्टि से ये प्रसग सर्वथा घातक हैं। किन्तु इन अन्तिम तीन सर्गों से पूर्व, प्रबन्ध-निर्वाह में पर्याप्त गति और उचित सगठन है।

अन्य प्रबन्धों की भाँति 'अगराज' का कथानक भी ऐतिहासिक है। महारथी कर्ण के जन्म से लेकर पाडवो के स्वर्गारोहण तक की कथा इस काव्य मे वर्णित है। स्वभावत: कुरुक्षेत्र जैसा महत्त्वपूर्ण युद्ध अपनी समग्रता मे जिस काव्य का विषय होगा उसमें सशक्त और प्राणवान घटनाओं का समावेश अत्यन्त सहज रूप मे हो जाएगा। इस काव्य मे घटनाओ का चित्रण 'पार्वती' की ही भाँति विशाल फलक पर किया गया है। किन्तु इस वर्ग के अन्य काव्यो की भाँति घटनाओ की रगस्थली बहिर्जगत् है अन्तर्मन नही, फलत: उनमे विस्तार है गहराई नही। एकाध स्थलों पर कवि ने महत्त्वपूर्ण घटनाओ का उल्लेखमात्र करके चलता कर दिया है यथा दूसरे व छठे सर्ग मे, तथा अन्यत्र अनावश्यक वर्णन-विस्तार किया है। युद्ध के अवसर पर शस्त्रास्त्रो की सूची परिगणना (सत्रहवाँ सर्ग) तथा प्रकृति-वर्णन आदि के प्रसगो मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप से लक्षित की जा सकती है। परन्तु सम्पूर्ण काव्य मे यह एकरसता कतिपय स्थलो को छोडकर सामान्यत नही मिलती। घटनाओ की पारस्परिक नियोजना व्यवस्थित है, कथा मे प्रवाह और वेग है। कथा का सम्बन्ध राजनीति, और उसमे भी युद्ध से होने के कारण सम्पूर्ण काव्य मे एकाध ऐसे स्थलो को छोड़कर जहाँ सक्षम अभिव्यजना का अभाव है, सर्वत्र घटनाओं मे एक विशेष आवेग, ओज और प्राणवत्ता दृष्टिगत होती है।

अधुनातन प्रबन्धों में प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से सबसे अधिक असमर्थता का परिचय

'जननायक' के कवि ने दिया। मौलिक उद्भावना का तो प्रश्न ही नही उठता, क्योकि समस्त वर्णित घटनाएँ ज्यों की त्यों बापू की आत्मकथा से ले ली गई है। इसके अतिरिक्त ऐसी स्थिति में काव्योचित प्रसगों और घटनाओ का ग्रहण और अनुचित अशों का त्याग भी वे नही कर पाए है। इतने महत् आकार की प्रबन्ध-रचना करने वाले कवि से प्रबन्ध के इस मूलभूत अनुबन्ध के सफल निर्वाह की आशा की ही जाती है। 'जननायक' की घटनाओ के विकास मे नाटकीयता का लेश नही, अप्रासगिक और सर्वथा उपेक्षणीय प्रसगो की भरमार सर्वत्र है। एक के बाद एक, छोटी-बडी वे सभी घटनाएँ जो राष्ट्रपिता के जीवन मे स्वतन्त्रता-सग्राम मे घटी थी प्रस्तुत होती है। कही-कही एक घटना दूसरे से सर्वथा असम्बद्ध है। प्रबन्ध की दृष्टि से व्यर्थ होते हुए भी उसे स्थान मिल गया है। कवि उपलब्ध सामग्री के प्रदर्शन का न लोभ-सवरण कर पाया है, और न उसकी उचित नियोजना (घटनाओ की विविधता और परस्पर असम्बद्धता की स्थिति मे ऐसा सम्भव भी नही था)। कथा मे किसी प्रकार के उतार-चढाव का अभाव है। बहुत कम घटनाओ मे परस्पर कार्य-कारण सम्बन्ध दृष्टिगत होता है। न कही पाठक की जिज्ञासा उद्बुद्ध होती है और न उसकी रुचि बनी रहती है, आद्योपान्त कथा एकरस है।

सघटना—महाकाव्य मूलत प्रकथनात्मक काव्य-रूप है। फिर भी कथा-सघटन मे नाट्य-सधियो का निर्वाह कथा को रोचक बनाए रखने के लिए अनिवार्य माना गया है। आधुनिक नाटको व काव्यो मे कही पचसधियो की प्राचीन भारतीय मान्यता का, और कही पाश्चात्य काव्य-शास्त्र मे निर्दिष्ट घटना-चक्र की पाँच स्थितियो की समानान्तर मान्यता के निर्वाह का प्रयत्न किया गया है। उपर्युक्त दोनो ही मान्यताएँ एक-दूसरे के पर्याप्त निकट है और दोनों का लक्ष्य कथानक मे एक विशिष्ट नाटकीयता, उचित जिज्ञासा और रमणीयता को बनाए रखना है। भारतीय चिन्तको की धारणा अपेक्षाकृत अधिक सश्लिष्ट है और उनकी दृष्टि अन्तिम फल की प्राप्ति पर केन्द्रित रही है। इसके विपरीत पाश्चात्य चिन्ताधारा मे सघर्ष पर अधिक बल देते हुए नाटक मे कार्य-व्यापार की सबसे महत्त्वपूर्ण स्थिति चरम-घटना को स्वीकार किया गया है। भारतीय नाट्य विधान मे समस्त घटनाचक्र कार्य को अन्तिम फल की ओर उन्मुख करता है और घटनाएँ उसी चरम उद्देश्य की ओर बढती है। पाश्चात्य मान्यता के अनुसार एक विशेष चरम घटना तक प्रगति के उपरान्त कार्य-व्यापार मे निगति आरम्भ हो जाती है, और शेष घटना-चक्र कथानक को किसी अन्य महत्त्वपूर्ण परिणाम या उद्देश्य की ओर अग्रसर करने के स्थान पर स्वय किसी महत्त्वपूर्ण या चरम घटना से निस्तृत परिणाम प्रतीत होता है। इस प्रकार एक मे अन्त महत्त्वपूर्ण है, दूसरे मे मध्यवर्ती चरम घटना।

कथानक-सघटना की दृष्टि से इन प्रबन्धों मे अन्य विशेषताओ के समान पंचसन्धियो के भारतीय विधान को ही अपनाने का प्रयत्न किया गया है। जिन कृतियों के कथानक मे नाटकोचित विकास का अभाव है वहाँ वह कवि के काव्य-कौशल मे कमी के कारण आ गया है, किसी नवीन प्रभाव या आधुनिकता के आग्रहवश नही। नाटकीयता का यह अभाव दृष्टिकोण की आधुनिकता का नही, कला की असमर्थता का परिचायक है। इस प्रकार की शिथिलता 'हरिऔध' की दोनो रचनाओं 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही-बनवास', रमानाथ के 'रामचन्द्रोदय' और रघुवीरशरण के 'जननायक' मे प्राप्त होती है। कथानक-संघटना की दृष्टि से 'सिद्धार्थ' और

'वर्द्धमान' भी विशेष सफल रचनाएँ नही है। ढूँढने से कथानक मे पचसन्धियों का निर्वाह भले ही मिल जाय, किन्तु समग्र कथा की घटनाओं में संघर्ष, तीव्र घात-प्रतिघात और नाटकोचित रोचकता का अभाव है। 'रामचरित चिन्तामणि', 'कृष्णायन', 'पार्वती' और 'अंगराज' आदि काव्यो मे नाट्यसन्धियो का निर्वाह सम्यक् रूप से हुआ है। मूल कथा के साथ प्रासगिक कथाओ या उपाख्यानो का समावेश भी यथोचित रूप मे किया गया है। कही अनपेक्षित वर्णन-विस्तार और तज्जन्य एकरसता, अन्यत्र मार्मिक स्थलो की उपेक्षा, तथा कही-कही कथा मे गत्यवरोध के अतिरिक्त अन्य प्रबन्धो की अपेक्षा इन कृतियों के कथानक पर्याप्त सुगठित है। कथा आद्योपान्त नियमित रूप से फलागम की ओर अग्रसर होती है। विभिन्न कार्यावस्थाएँ, अर्थप्रकृतियाँ व उनके सगम-स्थलो के रूप मे सन्धियाँ सभी काव्यो मे सहज प्राप्य है। भारतीय नाटकीय विधान से इन सभी लेखको की दृष्टि आबद्ध है। फल-प्राप्ति की भारतीय मान्यता के प्रति अत्यन्त सजग होने के कारण 'अगराज' के कवि ने काव्य के अन्त मे लौकिक दृष्टि से नायक की पराजय होने पर भी, सुखान्त रूप देने के लिए नायक कर्ण द्वारा उच्चतर व अलौकिक सिद्धि की ओर संकेत किया है। सम्पूर्ण कथानक मे पुरातन मान्यताओ के प्रति विद्रोहात्मक दृष्टि का परिचय देने के उपरान्त अन्त मे परम्परावद्ध शास्त्रीय मान्यता के प्रति आत्म-समर्पण उनकी लक्षण-बद्ध दृष्टि का परिचायक है। रूप-निर्माण मे कवि शास्त्रीय मान्यताओ के प्रति अत्यन्त सजग रहा है।

मूल कथा के साथ उपाख्यानो की योजना इन सभी काव्यो मे मिलती है। यह प्रबन्ध-योजना कुछ रचनाओ मे सघटित और सुचिन्तित है (पार्वती, अगराज, कृष्णायन), तथा कुछ कृतियों मे कार्य-कारण शृखला व मूल एव सम्बद्ध प्रासगिक कथाओ की योजना अपेक्षाकृत शिथिल है (रामचरित चिन्तामणि, कोशल-किशोर, वर्द्धमान और रामचन्द्रोदय)। 'जननायक' के विषय मे सुगठित प्रबन्ध-योजना का प्रश्न ही नही उठता। प्रबन्ध मे आकार की दृष्टि से जितना विस्तार हुआ है, प्रबन्ध-गुण का उसी अनुपात मे ह्रास। घटनाओ मे कार्यकारण-शृखला का निर्वाह, वर्ण्य-विषयों का उचित चयन, मूलकथा तथा प्रासगिक कथाओ के पारस्परिक सम्बन्ध आदि की सुचिन्तित योजना का सर्वथा अभाव है।

'हरिऔध' की दोनो रचनाएँ—'वैदेही-बनवास' और 'प्रियप्रवास' भी प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से विशेष सफल नही कही जा सकती। दोनो प्रबन्धो मे घटनाओ की कृशता है। कवि का दृष्टिकोण नैतिक और उपदेशात्मक है। आकार की दृष्टि से कथा अपर्याप्त है, अत समुचित विकास और नाटकीयता की सम्भावना का प्रश्न नही उठता। 'वैदेही-वनवास' की कथा मे कवि ने अनेक पूर्व-प्रख्यात समर्थ प्रसगो का त्याग कर दिया है, जिससे कथानक की गति और नाटकीयता दोनो को आघात पहुँचा है। एक सरल रेखा के समान अत्यन्त घटना-विरल कथा-सूत्र बढता है। उसमे न स्वय कहीं उतार-चढाव या वक्रता है, और न उपाख्यानो से जटिलता उत्पन्न हुई है। कवि ने प्रासगिक कथाओं की विधान-सम्बन्धी भारतीय मान्यता की भी अवमानना की है। घटनाओ का स्थान अनेक प्रसगो मे लम्बे-लम्बे वक्तव्यो ने ग्रहण कर लिया है, जिन्हे प्रबन्ध के लिए उत्कर्षक कदापि नहीं माना जा सकता।

'प्रियप्रवास' का जहाँ तक सम्बन्ध है, प्रबन्ध-निर्वाह के विषय मे आचार्य शुक्ल का बहुत

समय पहले दिया गया निर्णय सर्वथा उचित है—"इसकी कथा-वस्तु एक महाकाव्य क्या अच्छे प्रबन्धकाव्य के लिए भी अपर्याप्त है। अतः प्रबन्ध काव्य के सब अवयव इसमें कहाँ आ सकते ?"[1] घटनाओं की विरलता की दृष्टि से इस ग्रन्थ के कथानक का कलेवर इतना कृश है कि सम्बन्ध-निर्वाह भी समुचित ढग से नही हो पाया है। कृष्ण के जीवन में घटने वाली अनेक घटनाओं—असुरों के दमन आदि के वर्णन या तो ब्रजवासियों द्वारा पूर्व-स्मृति के रूप मे, अथवा कवि द्वारा अत्यन्त सक्षेप मे चलते कर दिये गए है। ये प्रसग मूल प्रसग—वियोग-वर्णन के साथ अवान्तर प्रसंगो के रूप मे जुड़े से प्रतीत होते है। उपाख्यानो, अवान्तर कथाओ आदि का नियोजन कवि ने किया ही नही है। घटनाओ की न्यूनता, सम्बन्ध-निर्वाह की शिथिलता, और कार्य-व्यापार मे सक्रियता के अभाव के कारण नाटकीय गुण का 'प्रियप्रवास' में सर्वथा अभाव है। एक ओर भारतीय काव्यशास्त्र मे निर्दिष्ट नाट्य-सन्धियो, कार्यावस्थाओं आदि की समुचित योजना कथानक मे नही मिलती, और दूसरी ओर चरम घटना की महत्ता के पाश्चात्य सिद्धान्त से भी कवि प्रभावित नही हुआ। पाश्चात्य धारणा के अनुसार चरम घटना से पूर्व आने वाली समस्त घटनाओ की प्रगति कारण-रूप मे, और समस्त परवर्ती घटनाओ की निगति कार्यरूप मे होती है। पूर्व भाग की घटनाएँ कार्य को चरम बिन्दु की ओर अग्रसर करती हैं, और उत्तराश की घटनाएँ उस चरम घटना के परिणाम रूप में अन्त की ओर बढती है। इस प्रकार सबसे प्रधान कार्य चरम घटना होती है और समस्त घटना-चक्र उस केन्द्र से सम्बद्ध व उस पर निर्भर होता है। नाटक मे सघर्ष और सक्रियता को विशेष महत्त्व वहाँ प्रदान किया गया है।

'प्रियप्रवास' की चरम घटना जैसा नाम से स्पष्ट है ब्रजवासियो के प्रिय कृष्ण के मथुरा-गमन का प्रसग है। परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ पढने के उपरान्त प्रतीत होता है कि ब्रजवासियो का विरह-वर्णन इस घटना की अपेक्षा अधिक प्रधान हो गया है। कृष्ण के मथुरा-गमन की घटना काव्य के अर्द्धांश से बहुत पूर्व—पाँचवे सर्ग के अन्त मे ही सम्पन्न हो जाती है, और उसके बाद बारह सर्गों और लगभग दो सौ से अधिक पृष्ठो मे ब्रजवासियो की विरह-गाथा व्याप्त है। इस विरह का भोक्ता भी कोई पात्र-विशेष नही। निकट-सम्बन्धी, सखा-वृन्द, प्रेयसी राधिका, और इन चेतन प्राणियो के साथ जड प्रकृत्ति, सभी इस दु ख के समभोक्ता है। कहा नही जा सकता कि कवि किस को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करना चाहता है। क्रमपूर्वक यशोदा, नन्द, गोप-वृन्द, गोपियाँ सभी एक के बाद एक आकर विरह-दु ख की अभिव्यक्ति करते है—कौन इस दुःखद अनुभूति से सर्वाधिक पीडित है यह निर्णय करना कठिन है। इसी भावाभिव्यक्ति के मध्य पूर्व-स्मृति के रूप मे कृष्ण के जीवन की घटनाएँ अन्य पात्रो द्वारा वर्णित है। इन घटनाओं द्वारा कथानक-प्रवाह मे जिस गत्यात्मकता और सक्रियता की सृष्टि सभव थी अप्रत्यक्ष वर्णन के कारण वह भी नष्ट हो गई है। यदि इन घटनाओ की प्रत्यक्ष प्रस्तुति की जाती, और अभिकर्त्ता के रूप मे कृष्ण इनके भागी होते, तो प्रबन्ध-निर्वाह मे अधिक वेग और सजीवता आ जाती। घटना-चक्र की निष्क्रियता के कारण चरम घटना का निर्णय करना भी दुष्कर हो गया है। प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से आरम्भिक घटनाएँ किस चरम बिन्दु की ओर कथानक को अग्रसर कर रही हैं, स्पष्टत

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ७३४

ज्ञात नही होता—किसी भी घटना के लिए पर्याप्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत नही की गई है। ब्रजवासियो के विरह-वर्णन को, जो अपेक्षाकृत अधिक प्रधान है, काव्य की चरम घटना नही माना जा सकता। क्योकि चरम घटना की स्थिति सापेक्ष है। कार्य-व्यापार की निगति द्वारा उसका अनुगमन अनिवार्य है—और इस दृष्टि से वह 'प्रियप्रवास' की चरम घटना स्वीकार नही की जा सकती, क्योकि उसकी व्याप्ति प्रबन्ध के अन्त तक है। इस प्रकार यदि स्वीकार कर लिया जाय कि महाकाव्य की प्रमुख विशेषता प्रबन्ध तत्त्व के समुचित निर्वाह का 'प्रियप्रवास' मे एकान्त अभाव है, तो अनुचित न होगा। कथानक मे नाटकीय गुण, घटनाओ की तर्क-सम्मत सम्बन्ध-योजना, दूसरे शब्दो मे सुसगठित वस्तु-विन्यास और प्रबन्ध-निर्वाह इस ग्रन्थ मे नही मिलता। इसका प्रधान कारण है घटनाओ मे महाकाव्योचित सघनता का अभाव।

परिमाण और समग्र रूप—इस वर्ग के सभी ग्रन्थो के विषय मे एक प्रवृत्ति सामान्य रूप से द्रष्टव्य है। सभी रचनाओ को सायास बृहद् आकार प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। जैसा पहले भी उल्लेख किया जा चुका है अधिकाश ग्रन्थो मे घटना-सम्बन्धी विरलता, विशृखलता, या अव्यवस्था व्याप्त है, किन्तु सभी का विभाजन अनेक सर्गों मे हुआ है और पृष्ठ-विस्तार भी वर्णन-बहुलता या अप्रासगिक घटना-विस्तार आदि का आश्रय लेकर किया गया है। घटनाओ मे महाकाव्योचित गरिमा, विशदता और महाप्राणता अप्राप्य होने पर भी एकाध अपवाद (वैदेही-बनवास) के अतिरिक्त ये सभी रचनाएँ आकार मे बृहद् है। आकार की यह विशदता आत्मा-सम्बन्धी न होकर केवल बाह्य शरीर या कलेवर-सम्बन्धी है। 'कृष्णायन', 'पार्वती', 'अगराज' आदि प्रबन्धो के अतिरिक्त सभी रचनाओ मे यह विषय और आकार का पारस्परिक असतुलन वर्तमान है।

शिल्प

सर्ग-विभाजन—इस वग के सभी प्रबन्ध आठ से अधिक सर्गो मे विभाजित है। एकमात्र अपवाद द्वारिकाप्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' है जिसका विभाजन अनेक सर्गो मे न होकर सात काण्डों मे किया गया है। कारण—कवि की शैली एव रचना-विधान पर 'रामचरितमानस' का प्रभाव है। कदाचित् मर्यादा-पुरुषोत्तम के चरित्र की भाँति सोलह कलावतार लीलाप्रिय कृष्ण के चरित्र को भी उसी रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया गया है। सात काण्डो मे विभाजित होने पर भी 'कृष्णायन' का आकार अनेक अन्य प्रबन्धो की अपेक्षा कही विस्तृत और कथा-सामग्री व संघटना पर्याप्त सुनिश्चित है। अतः शास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि कवि ने निर्दिष्ट लक्षणो की उपेक्षा की है किन्तु एक पूर्व-रचित आदर्श महाकाव्य का अनुकरण करने के कारण उनका यह विधान परम्पराभुक्त ही स्वीकार किया जायगा, मौलिक नही। अन्य प्रबन्ध इस दृष्टि से पूर्णतया रूढिबद्ध है। अधिकांश रचनाओ मे अनावश्यक प्रसगो पर पूरे सर्ग की रचना कर एक ओर सर्ग-सख्या, और दूसरी ओर पृष्ठ-संख्या मे वृद्धि की गई है, जो किसी दृष्टि से श्रेयस्कर नही है।

नामकरण—इन ग्रन्थों का नामकरण रचयिताओ द्वारा विविध आधारो पर किया गया है। ये आधार मुख्यतः तीन प्रकार के है—

(क) प्रधान पात्र या नायक के नाम पर, यथा 'कोशल-किशोर', 'अगराज', 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान', 'पार्वती' और 'जननायक'।

(ख) वर्ण्य-विषय या कथावस्तु के आधार पर यथा 'रामचन्द्रोदय', 'रामचरित-चिन्तामणि' तथा 'कृष्णायन'।

(ग) काव्य की प्रमुख घटना के आधार पर जैसे 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही-वनवास'।

नामकरण की उपर्युक्त तीनो पद्धतियो मे प्रथम दो का अनुगमन सस्कृत और हिन्दी-साहित्य मे समान रूप से किया जाता रहा है, किन्तु प्रधान घटना के आधार पर सम्पूर्ण प्रबन्ध का नामकरण करने की पद्धति का अनुसरण हिन्दी के किसी महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध म नही किया गया। हरिऔधजी पर सम्भवत. इस दिशा मे भी सस्कृत-साहित्य का प्रभाव रहा है।

वर्णन-रूढ़ियाँ—आधुनिक युग के इन प्रबन्धो मे रूप-विधान की दृष्टि से यदि किचित् नवीनता का आभास मिलता है तो वह शास्त्र-निर्दिष्ट वर्णन रूढियो के परित्याग मे है। सभी लेखको ने ऐसा किया हो, यह तो नही कहा जा सकता। कुछ रचयिताओ ने अत्यन्त सचेष्ट रूप से उनका परिपालन भी किया है, किन्तु इन रूढियो के प्रति उपेक्षा तथा विद्रोह की भावना का सूत्रपात इन रचनाओ मे हो गया था, ऐसा निश्चित रूप से दिखाई देता है। इन वर्णन-रूढ़ियो मे प्रधान है—आरम्भ मे मगलाचरण, आशीर्वचन, वस्तु-निर्देश, प्रसगवश सज्जन-प्रशसा व दुर्जन-निन्दा, जीवन के विविध पक्षो का विधिवत् वर्णन तथा सर्ग के अन्त मे भावी कथा-निर्देश आदि।

उपर्युक्त रूढियो मे से सभी का पालन इन कवियों द्वारा नही किया गया। मगलाचरण, कवि का परिचय, वस्तु-निर्देश सब प्रबन्धो मे नहीं मिलता। कही मगलाचरण और सक्षिप्त वस्तु-निर्देश के उपरान्त कथा का आरम्भ हो गया है—'पार्वती', 'कृष्णायन', 'अगराज', 'कोशल-किशोर', 'रामचरित-चिन्तामणि' और 'रामचन्द्रोदय' के कवियो ने यही पद्धति अपनाई है। 'वर्द्धमान' के आरम्भ मे मगलाचरण तो नही, किन्तु जन्मभूमि का स्तवन-वन्दन मिलता है जो बहुत अशो मे मगलाचरण का स्थानापन्न ही है। हरिऔधजी ने अपने दोनो प्रबन्धो मे सीधे प्रकृति-वर्णन से आरम्भ कर किचित् नवीनता का परिचय दिया है। इसी पद्धति का अनुगमन 'सिद्धार्थ' के कवि ने किया। आत्मलघुता-प्रदर्शन और पूर्व कवियो की प्रशसा का कार्य हरिऔधजी ने अपनी गद्य-भूमिका मे किया है। अन्य कवियों ने ऐसा करने का प्रयास नही किया। कवि-परिचय का एक उदाहरण 'पार्वती' के कवि ने ग्रन्थ के अन्त मे प्रस्तुत किया है, किन्तु इस कवि-परिचय का स्वरूप बहुत कुछ भावात्मक है, तथ्यपरक या इतिवृत्तात्मक नही, अत: इसे विशेष प्रयोजनीय और परम्परागत स्वीकार नही किया जा सकता। 'रामचन्द्रोदय' के कवि ने अन्त मे अपने वश, रचना आदि का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। इस परिचय का स्वरूप पूर्णत. परम्परागत ही है।

सज्जन-प्रशसा और दुर्जन-निन्दा की योजना सभी काव्यो मे जाने-अनजाने हो गई है। प्रबन्ध मे सघर्ष की योजना के मूल म सत् और असत् के प्रतिनिधिरूप—दो पक्षों का चित्रण प्राय: किया ही जाता है। सहृदय पाठक की सहानुभूति सत् पक्ष के प्रति बनी रहे, इस कारण कृतिकार केवल परम्परा-पालन के लिए ही नहीं, अपितु पाठक का कथा के परिणाम से सहज

तादात्म्य स्थापित कराने के लिए, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सत् के प्रति आकर्षण और असत् से विकर्षण का प्रयत्न कथा मे यथावसर करता है। परिणामत ऐसे स्थलो की योजना, जिनमे सज्जन-प्रशसा और दुर्जन-निन्दा हो, प्रबन्ध के कलेवर मे हो ही जाती है। सचेष्ट रूप से प्रसगोद्भावना की इसके लिए अनिवार्यता नही, और ऐसा ही इन रचनाओ मे हुआ है।

अन्य वर्णनो का जहाँ तक प्रश्न है, जैसा पहले भी कथा-सघटना के प्रसग मे सकेत किया जा चुका है—वर्णनीय प्रसगो का सम्बन्ध मुख्य रूप से कथा मे वर्णित घटनाओ और उनके विस्तार और सक्षेप से होता है। इस प्रकार कथा की परिसीमा वर्णनीय प्रसगो की परिसीमा बन जाती है। जहाँ इस सीमा का उल्लघन कर वर्णन-विस्तार का प्रयत्न किया जाता है वहाँ ये वर्णन अप्रासगिक और अनुचित प्रतीत होते है। इन प्रबन्धो मे प्राय यही हुआ है। जिन रचनाओ की कथावस्तु मे जीवन के विविध पक्षो से गृहीत घटनाओ का अभाव है—स्वभावत वर्णनीय प्रसगो मे भी वैविध्य नही मिलता। 'कोशल किशोर', 'रामचरित-चिन्तामणि', 'रामचन्द्रोदय', 'प्रियप्रवास', 'वैदेही-बनवास', 'वर्द्धमान', सभी कृतियो मे जीवन की समग्रता के प्रति यह उपेक्षा-भाव खटकता है। जिन रचनाओ के फलक अपेक्षाकृत विस्तृत है (पार्वती, अगराज, कृष्णायन, सिद्धार्थ) उनमे वर्णित प्रसगो मे प्रभावान्विति, महाकाव्योचित गाम्भीर्य और प्राणवत्ता का अभाव है। किस प्रसग को काव्य मे कहाँ और कितना स्थान मिलना चाहिए—इस विषय मे कोई सुनिश्चित योजना कवियो के सामने रही है, ऐसा प्रतीत नही होता। 'पार्वती' के अन्तिम तीन सर्गों मे धर्म, नीति और सस्कृति का वर्णन है। 'अगराज' मे रिमा और भव्यता का अभाव है, किन्तु कवि महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो के प्रति सचेष्ट है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। कही-कही युद्धादि के प्रसग मे सेना, अस्त्रशस्त्रादि के वर्णन केवल वर्णन के लिए नामपरिगणन-शैली मे किये गए है। प्रबन्ध के मध्य इस प्रकार के स्थल क्षेपक से प्रतीत होते है। 'कृष्णायन' की कथा मे वर्णन-वैविध्य भी है और जीवन की समग्रता भी, किन्तु कथा के विविध प्रसगो मे परस्पर अन्विति और प्रभावोत्पादन की क्षमता नही है। विविध वर्णित प्रसग और घटनाएं परस्पर सुगठित और सुसम्बद्ध नही। उनका पारस्परिक सम्बन्ध हेतु और परिणाम का, कार्य और कारण का नही, वरन् एक प्रसग दूसरे के साथ बरबस जोडा गया प्रतीत होता है।

जिन प्रबन्धों मे जीवन का समग्र रूप मे ग्रहण नही किया गया हे, उनके कवि भी महाकाव्यो के लिए निर्दिष्ट वर्णनीय विषयो का यथासम्भव समावेश करने मे सावधान रहे है—परिणामस्वरूप यह वर्णन प्रायः अन्त. स्फूर्त और कथा मे स्वाभाविक रूप से अनुस्यूत नही वरन् ऊपर से बरबस लदे से जान पडते है। 'प्रियप्रवास' के नवम सर्ग का प्रकृति-वर्णन, 'वर्द्धमान' के आरम्भ मे नगर-वर्णन, 'वैदेही-बनवास' मे सीता द्वारा आदर्श मानव-धर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य की व्याख्या, इसी प्रकार के प्रसग है। कथा मे जितनी घटना-विरलता है उतना ही इस प्रकार के प्रसगों मे वर्णन विस्तार करके प्रबन्ध के कलेवर को बढाने का प्रयत्न किया गया है। पूरे-पूरे सर्गों की सृष्टि ऐसे प्रसगो द्वारा की गई है। इन वर्णनो का स्वरूप सर्वथा परम्पराभुक्त है, तथा रूढि-पालन के लिए ही इनका अन्तर्भाव किया गया है। इनकी शैली प्राय इतिवृत्तात्मक एव नामपरिगण-शैली है, जिसका विस्तारपूर्वक विवेचन इस प्रसग मे अभीष्ट नही, अन्यथा यह

सिद्ध करना कठिन नही कि इन काव्यो मे किये गए अनेक वर्णन सर्वथा परम्परानुमोदित है तथा केवल रूढि परिपालन के लिए किये गए है, न अभिव्यजना मे नवीनता है न परम्परा का त्याग।

छन्द-विधान—इस विषय मे आचार्य दण्डी ने यद्यपि एक ही छन्द मे सर्ग-रचना का निर्देश किया था, किन्तु परवर्ती आचार्य विश्वनाथ ने इस दिशा मे स्वतन्त्रता के लिए अवकाश प्रस्तुत किया। सर्ग के अन्त मे छन्द-परिवर्तन की आवश्यकता को उन्होने भी स्वीकार किया। किन्तु व्यवहार मे महाकाव्य के लिए यह नियम अनिवार्य अनुबन्ध के रूप मे कवियो द्वारा कभी परिपालित नही हुआ। कथा का प्रवाह यथाप्रसग ऋजु-सरल और ओजपूर्ण गति से बहता रहे, इस औचित्य को दृष्टि मे रखते हुए 'रासो', 'पद्मावत', 'मानस' आदि सभी के कवियो ने इस क्षेत्र मे स्वतन्त्रता बरती है। अत आधुनिक काल का कवि यदि नियम का अशत अतिक्रमण कर ले तो विशेष अचरज की बात नही। 'कृष्णायन' और 'पार्वती' के अतिरिक्त इन सब रचनाओ मे एक सर्ग की रचना एक ही छन्द मे नही की गई, परन्तु 'पार्वती' के कवि ने अन्त मे छन्द-परिवर्तन की रूढि का पालन नही किया, तथा अन्य कवियो ने मध्य मे भी आवश्यकतानुसार छन्द-परिवर्तन किया है।

छन्द-प्रयोग की दृष्टि से किसी प्रकार की नवीनता इन काव्यो मे दृष्टिगत नही होती। सभी की रचना मात्रिक छन्दो या सस्कृत के वर्णवृत्तो मे की गई है। आधुनिक युग मे 'हरिऔध' के इस दिशा मे प्रयत्न के उपरान्त सस्कृत के वर्णवृत्तो के प्रति प्रनूप शर्मा ने भी आग्रह दिखाया तथा 'अगराज' के कवि ने भी वर्णवृत्तो का प्रयोग किया। अन्य कवियो ने प्राय. मात्रिक छन्दो मे ही रचना की है। छन्दो के प्रयोग की दृष्टि से किचित् नवीनता का श्रेय 'अगराज' के कवि को दिया जा सकता है। छन्द के रूप की दृष्टि से यद्यपि उन्होने नवीन प्रयोग नही किया किन्तु प्राचीन छन्दो का परस्पर सयोजन विविधता और सुरुचिपूर्ण नवीन योजना से किया है। उन्होने अपने काव्य मे सस्कृत के वर्णवृत्त, हिन्दी के अनेक मात्रिक छन्द—दोहा, चौपाई, कुण्डलिया तथा सवैया और कवित्त, व इनके अतिरिक्त युद्ध के प्रसग मे आल्हा की लय अर्थात् वीर छन्द का भी प्रयोग किया है। कवि की दृष्टि एक ओर साहित्यिक परम्पराओ के प्रति जागरूक है तथा दूसरी ओर लोक-साहित्य की कला को भी वह उपेक्षणीय नही मानता। इस प्रकार उन्हे नवीन छन्दोद्भावना का नहीं तो प्राचीन सामग्री की नूतन सयोजना का श्रेय निश्चित रूप से दिया जा सकता है। 'जननायक' के कवि ने सर्गों के मध्य मे जहाँ-तहाँ प्रगीतात्मक शैली मे रचना की है। स्तुति-वन्दना आदि के रूप मे यह प्रयोग सम्पूर्ण काव्य मे बिखरे है, परन्तु जिस युग मे इस काव्य की रचना हुई, उस समय तक प्रगीत-रचना के क्षेत्र मे इतने उच्च स्तर की कलात्मक सिद्धि काव्य-जगत् म हो चुकी थी कि इस दृष्टि से उनका योगदान नगण्य ही माना जाएगा। प्रबन्धों मे भी वर्णनात्मक वस्तुपरक शैली के अतिरिक्त प्रसग और विषय के अनुरूप अनेकानेक कलात्मक प्रयोग कलाकारो द्वारा प्रस्तुत किये जा चुके थे। मित्रजी के इन प्रयोगो मे वैचित्र्य तो है किन्तु सुरुचि और प्रसंगानुकूलता नही। कही-कही मध्य मे छन्द-परिवर्तन भी सर्वथा अप्रत्याशित और अनियमित रूप से हुआ है।

अलंकरण एवं अभिव्यंजना शैली—शैली और विषय एक अविभाज्य इकाई है। एक के

साथ दूसरे का पारस्परिक अनुकूलत्व काव्य की प्रभावात्मकता के लिए सर्वथा अनिवार्य है। विषय को दृष्टि मे रखते हुए ही कवि उसके लिए तदनुकूल शैली का आश्रय लेता है। अत. जैसा पहले भी सकेत किया जा चुका है इन प्रबन्धो के वर्णनबहुल कथानको, मूर्त वस्तुप्रधान जगत् से सम्बन्धित घटनाओ और प्रसगो के लिए सभी कवियो ने वर्णनप्रधान, इतिवृत्तात्मक शैली का ही आश्रय लिया है। कारण स्पष्ट है—मूर्त और वाह्य जगत् से सम्बद्ध वर्ण्य-विषय का इन रचनाओ मे इतना प्राधान्य है कि अन्तर्मन की गहनता मे प्रवेश कर सूक्ष्म और अमूर्त के विश्लेषण और प्रकाशन का कवि प्रयत्न ही नही करता। शैली मे फलत. भाव और विचार-विश्लेषण उतना नही मिलता जितना इतिवृत्तकथन और वस्तु-वर्णन। इन काव्यो की शैली मुख्यत: वर्णनात्मक है। इसलिए इस शैली के स्वाभाविक गुण-दोष इनमे स्वतः सन्निविष्ट है। इस शैली मे ऋजु सरल गति, स्फीतता, पदलालित्य तथा कही-कही अर्थ-गाम्भीर्य तो विद्यमान है, किन्तु महाकाव्य के लिए जिस ओज और विशदता, गति और प्रवाह, शक्तिमत्ता और प्राणवत्ता, तथा गरिमा और भव्यता की अनिवार्यता है, वह समान रूप से सभी रचनाओ मे नही मिलती। ये सभी ग्रथ इस अनिवार्य गुण से शून्य है, यह तो नही कहा जा सकता। इनमे अनेक स्थलो पर श्रेष्ठ कवित्व का परिचय मिलता हे किन्तु काव्य के समवेत प्रभाव मे सक्षम अभिव्यजना का अभाव प्रतीत होता है। यह प्रवृत्ति, जो ग्रथ द्विवेदी-युग के जितना निकट है, उसमे उतनी ही अधिक है। 'अगराज' और 'पार्वती' के कवियों की कला पर छायावादी रचना-शैली का भी प्रभाव कही-कही दृष्टिगत होता है—विशेष रूप से प्रकृति-चित्रण के स्थलो पर, किन्तु छायावादी कला भी जितनी कोमल और मसृण के अकन मे समर्थ है, उतनी सशक्त चित्रणों मे नही। फलत' इन काव्यो मे इस प्रभाव के परिणामस्वरूप कही-कही आत्मपरक दृष्टिकोण, अत अभिव्यजना मे विशेष कान्ति और लालित्य तो आ गया है, किन्तु प्राणशक्ति का सचार नही हो पाया।

अभिव्यजना की रमणीयता अनेक अन्य तत्त्वो पर निर्भर है। जिस काव्य की मूल प्रेरणा जितनी निसर्ग होगी, जिस कवि की कल्पना जितनी अधिक समृद्ध होगी, उसके मानस मे जितने सुन्दर एव नूतन अप्रस्तुत-विधान का कोष सचित होगा, और जिसमे इस समस्त सामग्री के परस्पर अनुकूल रूप मे सयोजन की जितनी निपुणता होगी, उतना ही वह अभिव्यक्ति-कुशल होगा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक काव्य-रचना पर उस युग की विभिन्न विषयगत और कलागत प्रवृत्तियो का प्रभाव होता है। इन समस्त कृतियो की प्रेरणा निसर्ग नही अर्जित है। कहने का अभिप्राय यह है, कि कवि स्वत. विषय के अनुकूल अभिव्यजना का आश्रय नही लेता, वरन् काव्य के शिल्प, रूप-आकार का ढाँचा स्थिर करके उसमे अनुकूल सामग्री भरने का प्रयास करता है। इसी कारण सहज अन्तःप्रेरणा के अभाव मे इन रचनाओ मे महाकाव्योचित जीवन्तता के लिए जिस प्राण-रस के सचार की अपेक्षा होती है, वह सहज प्राप्य नही। इस प्रकार काव्य की अभिव्यजना के लिए निसर्ग अन्त:प्रेरणा का अभाव इन काव्यो की वह पहली बाधा है जिससे अभिव्यजना-सामर्थ्य को आघात पहुंचा है।

दूसरी परिसीमा इन काव्यों पर द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक वस्तुवर्णन-शैली का प्रभाव है। वे काव्य जिनकी रचना समय की दृष्टि से इस युग मे हुई निश्चित रूप से इसी यथावत् तथ्यपरक वर्णन की प्रवृत्ति मे निबद्ध है, किन्तु इस वर्ग की वे रचनाएँ भी जो कालक्रम की

दृष्टि से परवर्ती रचनाएँ है—यथा 'अगराज','पार्वती','कृष्णायन','वर्द्धमान' आदि, रचना-प्रवृत्ति की दृष्टि से समय के साथ आगे नही बढ पाई है। वे आधुनिक युग मे उसी लक्षणबद्ध प्रबन्ध परम्परा की कडियाँ मानी जाएंगी जिसका आरम्भ 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' से आधुनिक काल मे हुआ। शैली की दृष्टि से द्विवेदी-युग की छाया इन सभी काव्यो पर अपने पख पसारे विद्यमान है। यदि सक्षेप मे कहना हो, तो कहा जा सकता है कि इस काव्य का अधिकाश अभिधा का काव्य है। लक्षणा और व्यंजना का वैभव, सूक्ष्म और समर्थ कल्पना का चमत्कार इन ग्रथो के बहुलाश मे नही मिलना। इस कथन का अभिप्राय किसी भी दृष्टि से इन काव्यो की कला का अवमूल्यन करना नही है। कविता मे प्रसाद गुण की व्याप्ति, परिष्कृत शैली, स्फीतता आदि उसके निश्चित गुण है। किन्तु महाकाव्य के लिए अभिव्यजना मे जो गरिमा, महाप्राणता, भव्यता, अलकरण, उदात्तता और प्रवाह आदि गुण अपेक्षित है, वे इन ग्रन्थो मे प्राप्त नही होते। इस वर्ग की मान्य रचना 'प्रियप्रवास' से एक उदाहरण देकर शैली की इस असमर्थता की ओर सकेत करना अप्रासगिक न होगा। लेखक एक प्रसग से दूसरे प्रसग पर कथा को मोड़ देना, या एक लम्बे प्रसग को करवट देना चाहता है, ऐसे स्थल पर चमत्कारमुक्त वर्णन-पद्धति देखिए—

समाप्त ज्योही इस यूथ ने किया,
अतीव प्यारे अपने प्रसंग को।
लगा सुनाने उस काल ही उन्हें,
स्वकीय बातें फिर अन्य गोप यों।

यह उदाहरण केवल प्रतीक है, इस प्रकार के अनेक प्रयोग 'प्रियप्रवास', 'सिद्धार्थ', 'वैदेही-बनवास', 'जननायक', 'रामचरित-चिन्तामणि', 'रामचन्द्रोदय', 'कोशल किशोर' में स्थान-स्थान पर, तथा अन्य कृतियो मे भी कही-कही मिल जाते है। जो रचना द्विवेदी-युग से जितनी दूर होती गई है उसम यह प्रवृत्ति उतनी ही न्यून हो गई है। 'पार्वती', 'अगराज', 'वर्द्धमान', 'कृष्णायन' आदि कृतियो मे कही-कही शैली मे अद्भुत रम्यता और भव्यता है किन्तु ऐसे स्थल बहुत नही मिलते। केवल गिने-चुने प्रसगो मे समर्थ शैली के प्रयोग प्राप्त होते है। काव्य का समग्र रूप महाकाव्योचित शैली का आदर्श नही कहा जा सकता।

शैली को आशिक रूप से प्रभावित करने वाली एक अन्य विशेषता, इन सभी काव्यो मे मात्रा-भेद से दिखाई पडती हे। एक सीमा तक नैतिक दृष्टिकोण कहीं सर्वथा प्रत्यक्ष, और कही किचिन् अव्यक्त रूप मे इन रचनाओ मे मिलता है। जहां पर उपदेशात्मक प्रवृत्ति अथवा नैतिकता, काव्य-रचना मे अपना स्थान बना लेती है वहाँ निश्चित रूप से काव्य की रसात्मकता के लिए बाधक सिद्ध होती है और शैली की सरसता को भी आघात पहुँचता है। नैतिकता का सम्बन्ध बुद्धि से अधिक है और काव्य का हृदय से, अत काव्याभिव्यक्ति का विषय जब मेधा-जनित सिद्धान्त होते है, तब अभिव्यजना में एक प्रकार की गद्यमयी निविडता, नीरसता या एकरसता प्रवेश कर जाती है। इन समस्त काव्यो की शैली में इनमे से एक या अधिक विशेषताएँ दृष्टिगत होती है। 'प्रियप्रवास', 'सिद्धार्थ', और 'वर्द्धमान' आदि रचनाओं मे अनेक पक्तियाँ ऐसी मिलेगी जिनको शब्दो के थोडे से स्थल-परिवर्तन से गद्य में रूपान्तरित किया जा सकता है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है, 'पार्वती', 'रामचरित-चिन्तामणि', 'वैदेही-वनवास', 'प्रियप्रवास',

'कृष्णायन', मे प्राय, तथा कुछ स्थलो पर 'वर्द्धमान', और 'अगराज' की कथा मे ऐसा गत्य-वरोध उपस्थित हो गया है, कि शैली मे भी सर्वथा नीरसता आ गई है, और जहाँ कवियो ने औचित्य का अतिक्रमण कर नैतिक उपदेशों से पृष्ठ के पृष्ठ रग डाले है, वहाँ नीरसता और एकरसता का समागम हुआ है। ये प्रसग बुद्धि-क्रीडा के अतिरिक्त और कुछ नही जान पडते।

शैली की उपर्युक्त विशेषताओ के लिए बहुत अशो मे इन काव्यो की कथा का स्वरूप या विषयवस्तु उत्तरदायी है। इनमे से अधिकाश रचनाओ मे घटनाओ की विरलता का अन्तराय शैली की सामर्थ्य से भरने मे कृतिकार असमर्थ रहे है। जीवन की महाप्राणता के अभाव मे चित्रण की सक्षमता की आशा करना व्यर्थ है। ऐसा प्रायः दो स्थितियों मे हुआ है—गृहीत कथानक के आख्यात रूप मे ही समर्थ घटनाओ का अभाव था और किसी काल्पनिक घटना की उद्भावना कवि की मनीषा नही कर पाई—'वर्द्धमान' और 'सिद्धार्थ' काव्यो की निष्प्राणता का मुख्य कारण यही है। अन्य रचनाओ मे आख्यात वृत्त को नवीन रूप मे प्रस्तुत करने के आग्रह से, अथवा निजी अभिरुचि के कारण कवियो ने अवकाश होने पर भी एकपक्षीय वर्णन किया है जैसे 'प्रियप्रवास', 'वैदही-बनवास', 'कोशल-किशोर', 'रामचरित-चिन्तामणि' और 'रामचन्द्रोदय' मे। जहाँ कवियो ने जीवन की समग्रता को ग्रहण कर लिया है—यथा कृष्णायन', 'अगराज', 'पार्वती', 'जननायक'—वहाँ प्रबन्ध-गुण की न्यूनता के कारण काव्य के समवेत् प्रभाव मे भव्यता और गरिमा बाधित है। ऐसा भी दो स्थितियो मे हुआ है—(१) अप्रासगिक वर्णनों द्वारा आकार या कथा मे विस्तार करने के कारण 'पार्वती' तथा कही-कही 'अगराज' मे यह दोष आ गया है। (२) अन्य कृतियो मे कथा के विभिन्न अगो मे परस्पर उचित सयोजन तथा प्रबन्ध-सौष्ठव का अभाव है। कथा के अवयव परस्पर सुचारु रूप से सम्बद्ध और सुसगठित नही है। 'जननायक' मे तो प्रबन्ध-गुण का एकान्त अभाव है। 'कृष्णायन' मे अन्य महाकाव्योचित गणो की पर्याप्त विद्यमानता होते हुए भी प्रभावान्विति का अभाव इस रूप मे उसकी स्वीकृति के मार्ग मे बाधक है।

एक विशेषता जिसकी ओर अन्य प्रसगो मे पहले भी सकेत किया जा चुका है—इन काव्यो की कथा का विस्तार समतल रूप मे हुआ है उसमे घनत्व नही। कथा की रेखाएँ विस्तृत है, गहरी नही। कुछ ऐसी ही बात शैली के विषय मे है। शैली मे घनत्व लाने वाले गुण—गरिमा, व्यंजना-वक्रता, सप्राणता और भव्यता उतने नही मिलते, जितनी उसमे स्पष्टता, प्रसादमयता, स्फीतता और तारल्य प्राप्त होता है।

इन काव्यो की अलकरण-कला मे भी नवीन कहने को बहुत कम मिलेगा। काव्य-सामग्री सर्वथा रूढ है। परम्परागत साम्य-वैषम्यमूलक अलकारो का प्रयोग, शब्दालकारो की अपेक्षा अर्थालकारो का महत्त्व, तथा कवि-परम्परा मे प्रयुक्त और प्रचलित काव्य-सामग्री का ही प्रयोग इन काव्यो मे मिलता है। छायावाद के उन्मेष के उपरान्त रचित कृतियो—'अगराज' और 'पार्वती' आदि मे कही-कही नाम लेने मात्र को कुछ अमूर्त जगत् से काव्य-सामग्री के चयन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। रूप-वर्णन और प्रकृति-चित्रण भी छायावादी ढग से करने का प्रयास किया गया है। ऐसे स्थल समग्र काव्य मे बहुत कम है। हरिऔधजी के 'प्रिय-प्रवास' मे पवन-दूतिका प्रसग के प्रति प्राय. विद्वानो ने प्रशसा का भाव व्यक्त किया है, और उसकी शैली मे

नवीनता के दर्शन किये है। किन्तु जड-चेतन जगत् को दूत-रूप मे सम्बोधित कर पात्रो की आत्म-व्यथा को व्यक्त कराने की पद्धति बहुत प्राचीन है, इसके मूल बडी सरलता से सस्कृत-साहित्य मे खोजे जा सकते है। इसके अतिरिक्त जो शैलीगत नवीनता इस प्रसग में दिखाई पडती है, वह कवि के नैतिक दृष्टिकोण की है कला-विलास की नही। जो नवीन उपमाएँ और उद्भावनाएं इसमे दिखाई पड़ती है वे उनकी उपदेशात्मकता के कारण अधिक है, कला-कौशल और कल्पना-लास्य के कारण कम। इन कवियो की रचना-शैली पर रीतिकालीन चमत्कार-मूलक वर्णन-पद्धति का प्रभाव नही पडा। ऊहा-प्रधान वर्णन और पाठक को चौकाकर चमत्कृत करने वाले प्रसग कदाचित् ही इनमे मिले, किन्तु रीतिकाल पूर्व-साहित्य तथा उससे भी अधिक सस्कृत के परवर्ती प्रबन्ध काव्यो की परम्परा का सम्बन्ध इन काव्यो से निश्चित रूप से स्थापित किया जा सकता है। 'रामचन्द्रोदय' काव्य इस वर्ग की एकमात्र रचना है जिसके काव्य-शिल्प मे कवि ने शास्त्रीय लक्षणो का अन्य काव्यो की अपेक्षा अधिक दृढतापूर्वक पालन किया है तथा शैलीगत विशेषताओ की दृष्टि से इस काव्य पर 'रामचन्द्रिका' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है।

निष्कर्ष रूप मे रूप-विधा की दृष्टि से इन काव्यो के समग्र रूप-निर्माण के विषय मे निम्नाकित स्थापनाएँ की जा सकती है—

परम्परागत तत्त्व—१. इन समस्त कृतियो की रचना शास्त्रीय लक्षणो को दृष्टि मे रखकर की गई है। अधिकाश कृतियो मे लेखक ने स्वय भूमिका मे सचेष्ट रूप से शास्त्रो मे निर्दिष्ट लक्षणो के पालन की स्वीकृति की है। जहाँ यह प्रत्यक्ष विज्ञप्ति विद्यमान नही, वहाँ भी प्रयोग मे लेखक की तद्विषयक सावधानी स्पष्ट है। इनके कवि मानकर चले है कि वे महाकाव्य की रचना कर रहे है।

२ रूप-विधान के सम्बन्ध मे शास्त्रीय लक्षणो का पालन अधिकाश रूप मे बाह्य शिल्प-रूढियो को लेकर ही हुआ है। कथानक का सुसम्बद्ध नाटकीय विधान, जो महाकाव्य क्या श्रेष्ठ प्रबन्ध का भी प्राण-तत्त्व है, इन काव्यो मे से अधिकाश मे उचित ढग से नही बन पडा है। सर्ग-विभाजन, नामकरण, वर्णन-विस्तार, छन्द-विधान, आकार, घटनाओ का बाह्य चित्रण आदि वे गौण शास्त्रीय रूढ़ियां है, जिनका इन कवियो ने सजग होकर पालन किया है। कुछ रचनाओ के भूमिकाश मे तो इन्हे कसौटी बनाकर कृति को महाकाव्य सिद्ध करने का उपक्रम भी किया गया है—(वर्द्धमान, कोशल-किशोर आदि मे)। प्रबन्ध का प्राणभूत तत्त्व नाटकीय कथानक-सघटना जिसका निर्देश प्राचीन आचार्यों ने भी किया था, इन काव्यो मे दुष्प्राप्य है।

३. प्राचीन परम्परा का अनुगमन इन कवियो ने केवल काव्य के बाह्य रूप-निर्माण एव शरीर-सघटना मे ही नही किया, वरन् इनके वर्णनो पर भी बहुत अशो मे काव्य-शास्त्र मे निश्चित वर्ण्य प्रसगो ने परिसीमा का कार्य किया है। इनकी अभिव्यजना कला पर भी उत्तर-कालीन सस्कृत-साहित्य के प्रबन्धो, और पूर्ववर्ती हिन्दी कवियो का विपुल प्रभाव दृष्टिगत होता है। यह कला इस प्रकार परम्परागत या रूढ कला है—उसमे आधुनिकता का समागम नही हुआ। समय की दृष्टि से ये कवि आधुनिक काल मे होने पर भी काव्य-शिल्प और काव्य-कला की प्रवृत्तियो की दृष्टि से परम्परावद्ध रचयिताओं की ही परम्परा मे आएँगे। लीक पर चलने

की प्रवृत्ति इन कवियो मे इतना अधिक है, कि आधुनिक काल मे भी, एक ही प्रकार की काव्य-रचना करने वाले कवियो मे पूर्ववर्ती रचयिता का अनुकरण मिलता है। उदाहरणार्थ 'सिद्धार्थ' की शैली पर हरिऔधजी की सस्कृत-वर्णवृत्तो मे अतुकान्त रचना का तो प्रभाव पडा ही है, लेखक ने राधिका के पवन-दूती-सन्देश के समानान्तर हस-दूत-प्रसग की उद्भावना की और उसके प्रति यशोधरा के जो हृदयोद्गार व्यक्त कराये उनमे और पूर्ववर्ती रचना मे अद्भुत समानता है। सम्पूर्ण प्रसगोद्भावना 'प्रियप्रवास' के अनुकरण पर की गई प्रतीत होती है।

४. इन काव्यो के समग्र आकार-निर्माण मे परम्परावद्ध शास्त्रीय पद्धति को अगीकार किया गया है, तथा इस बृहद् रूप के तिल-तिल निर्माणकारी साधनों में—अर्थात् छन्द-विधान, सर्ग-बन्धन, अलकरण, नामकरण, वर्णन-पद्धति और वर्ण्य प्रसग आदि पृथक्-पृथक् अवयवो मे (बाह्य तथा अन्तरग) भी परम्परा-अनुसरण किया गया है। भाषा के क्षेत्र म भी यद्यपि अधिकाश कवियो ने नए युग की जीवन्त भाषा को अपना लिया किन्तु कुछ एक परम्परा-प्रेमियो ने प्राचीन काव्य-भाषा के प्रति भी अपना मोह यथावत् बनाये रखा। परिणामत 'कृष्णायन' की रचना 'मानस' के अनुकरण पर उसी छन्द और अवधी भाषा मे हुई, और 'रामचन्द्रोदय' काव्य की रचना 'रामचन्द्रिका' के समान विविध छन्दो और ब्रज-भाषा मे। इस प्रकार आधुनिक युग मे भी पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा की उद्धरणी सम्भव हो पाई।

अन्य प्रभाव—विदेशी या अन्य स्वदेशी भाषाओ के साहित्य तथा परिस्थितिजन्य प्रभावों का जहाँ तक प्रश्न है, इन काव्यो मे परायी कहने के लिए कोई विशेषता शायद ही मिले। छायावाद तथा परवर्ती युग मे विदेशी साहित्य के संसर्ग तथा अन्य सामाजिक एव साहित्यिक परिस्थितियो के प्रभाव-स्वरूप जिन प्रगीतात्मक तथा नाटच शैलियो का प्रचलन हुआ वे भी इन काव्यो मे एकाध स्थल पर नाम गिनाने-भर के लिए ही मिलेगी।

इनमे से कुछ पर यदि परिस्थिति तथा नवीनता का प्रभाव दृष्टिगत होता है तो वह उनकी रूप-विधा और शिल्प पर नही, वरन् मूल चेतना और विषय पर। इन काव्यो को इस दृष्टि से यदि दो वर्गों मे विभाजित कर दिया जाय तो बात अधिक स्पष्ट हो सकेगी। कुछ रचनाएँ इनमे ऐसी है जिनका स्वरूप—विषय, मूल चेतना और शिल्प सभी दृष्टियो से सर्वथा रूढ है, ऐसी रचनाओ मे—'रामचन्द्रोदय', 'रामचरित-चिन्तामणि', 'कोशल-किशोर', 'कृष्णायन', 'वर्द्धमान' और 'पार्वती' को गणना की जा सकती है। अन्य कृतियो मे शिल्प की दृष्टि से तो अवश्य लेखको ने शास्त्रीय लक्षणो मे बंधे रहने का प्रयत्न किया है, किन्तु वे एक नवीन उद्देश्य, विषय के परम्परागत स्वरूप तथा चिराचरित मान्यताओ के प्रति विद्रोह और नवीन युग-चेतना को अगीकार कर रचना मे प्रवृत्त हुए है। 'प्रियप्रवास', 'वैदेही-बनवास', 'अगराज' और 'सिद्धार्थ' इसी प्रकार की रचनाएँ है।

इन कृतियों पर अन्य स्वदेशी-विदेशी साहित्यो का प्रभाव रूप-विधा की दृष्टि से पडा ही नही, ऐसा तो नही कहा जा सकता। इनकी मूल विचार-धारा पर जहाँ एक ओर बंगला आदि के साहित्य का प्रभाव पडा है वहाँ इन्होने रूप-निर्मात्री कला मे भी अशत हिन्दी-इतर साहित्य का प्रभाव ग्रहण किया है। इस दिशा मे ये कवि समकालीन साहित्य से प्रभाव ग्रहण करने के स्थान पर प्राचीन साहित्य की ओर पीछे लौटे है। 'प्रियप्रवास' और 'सिद्धार्थ' मे

सस्कृत के वर्णवृत्तो के आकार को अपनाने के साथ सस्कृत भाषा की ही अन्त्यानुप्रास-विहीन रचना-प्रणाली को भी इन्होने अपनाया है। रूप-विधा मे छन्द के इस विशिष्ट प्रयोग के अतिरिक्त कोई विशेष उल्लेखनीय प्रभाव इन कवियो की रचना-विधि मे दृष्टिगत नही होता।

स्वतन्त्र एव नवीन उद्भावनाएँ—निजी प्रतिभा के फलस्वरूप जिन नवीनताओ का क्षेत्र उन्मुक्त हो सकता था, उनकी सिद्धि का प्रयत्न इन कवियो ने बहुत कम किया है। नवीन रूप-विधा-निर्माण की दिशा मे इनका प्रयत्न ग्रहण की अपेक्षा त्याग का ही अधिक रहा है। हिन्दी और सस्कृत साहित्यो मे महाकाव्य का जो शास्त्रीय रूप बहुत समय पहले सिद्धान्त और व्यवहार मे स्थिर हो चुका था, उसमे इन्होने परिवर्तन और परिवर्द्धन करने की अपेक्षा कुछ अत्यन्त गौण और बाह्य रचना-रूढियो का त्याग ही किया है। यह स्वतन्त्रता भी इन सब लेखको ने समान रूप मे नही दिखाई। कुछ कवियो ने सभी मुख्य व गौण अनुबन्धो का निर्वाह किया है, तथा अन्य ने आरम्भ मे मगलाचरण, कवि द्वारा निज-वश-परिचय, निर्दिष्ट वर्णनीय प्रसगो का अन्तर्भाव, सर्गान्त मे भावी कथा-सूचना आदि-आदि उपबन्धो की उपेक्षा की है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि आधुनिक युग मे (१९००-१९५७) जिन उल्लेखनीय शास्त्रीय लक्षणबद्ध प्रबन्धो की रचना हुई, उनमे सामान्य रूप से यद्यपि शास्त्रीय लक्षणो और महाकाव्यो के स्थिर परम्परागत स्वरूप के निर्वाह का मोह वर्तमान है, फिर भी इन लक्षणो के निर्वाह मे परस्पर अनुपात-भेद के कारण स्थूल रूप से वर्ग-निर्धारण किया जा सकता है—

(क) पहला वर्ग उन प्रबन्धो का है जिनमे अधिकाधिक शास्त्रीय लक्षणो का निर्वाह किया गया है तथा जिनका स्वरूप, विषय, चेतना और रूप-विधा, सभी दृष्टियो से शास्त्रीय और रूढ स्वीकार किया जाएगा। ये प्रबन्ध है—'रामचन्द्रोदय', 'रामचरित-चिन्तामणि', 'कोशल-किशोर', 'वर्द्धमान', 'पार्वती' तथा 'कृष्णायन'।

(ख) दूसरे वर्ग मे वे प्रबन्ध आएँगे जिन्होने दृष्टिकोण, उद्देश्य और नवीन युग-चेतना के ग्रहण के साथ शास्त्रीय लक्षणो के निर्वाह के प्रति भी शिथिलता का परिचय दिया है। महाकाव्य के रूढ स्वरूप मे यद्यपि कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तथा नवीनता का समावेश इन कवियो ने नही किया, किन्तु महाकाव्य के रूप-निर्माण मे गौण और बाह्य शिल्प-रूढियो का त्याग भी इनकी महत्त्वपूर्ण सिद्धि है जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। 'प्रियप्रवास', 'वैदेही-बनवास', 'सिद्धार्थ' इसी प्रकार की रचनाएँ है।

(ग) 'अगराज' अपने ढग की वह अकेली कृति है, प्रयोग की दृष्टि से जिसका पृथक् उल्लेख अभीष्ट होगा। रूप-विधा की दृष्टि से 'अगराज' के कवि का नवीन कहने योग्य यद्यपि कोई योगदान नही, किन्तु इस कृति मे चिराचरित मान्यताओ के प्रति घोर अनास्था, प्राचीन विश्वासो के प्रति विद्रोह और जिस नवीन दृष्टि का आलोक मिलता है, उसकी अभिव्यक्ति शास्त्रीय अनुबन्धो से बँधे-बँधाये आकार मे हुई है। प्राचीन शरीर मे नवीन आत्मा की यह अभिव्यक्ति अपना विशेष स्थान रखती है। इस रचना का रूप-विधा की दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नही—किन्तु परम्परागत व शास्त्र-विहित रूप का परिपालन भी समर्थ काव्य-विषय और अभिव्यजना के बीच गुण बन सकता है यह रचना इस बात का प्रमाण है।

अनेक प्रसगो मे पहले भी जैसा स्पष्ट किया जा चुका है इस शास्त्रीय वर्ग के समस्त प्रबन्धो को महाकाव्य स्वीकार नही किया जा सकता, केवल बाह्याकार-सम्बन्धी, अत: गौण लक्षणों का औपचारिक निर्वाह करने मात्र से कोई कृति महाकाव्य-पद की अधिकारी नही हो सकती। 'रामचरितचिन्तामणि', रामचन्द्रोदय', 'कोशल-किशोर', 'वैदेही-बनवास', 'वर्द्धमान', 'जननायक' आदि रचनाओ का महाकाव्यत्व इस दृष्टि से विशेष शकास्पद है।

प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'प्रियप्रवास' के सम्बन्ध मे एक नवीन सुझाव उपस्थित किया है। वे इसे साहित्यदर्पणकार द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य और खण्डकाव्य की मध्यवर्तिनी विधा 'एकार्थ-काव्य' की रचना मानते है, किन्तु उनकी इस धारणा का आधार कथानक-सघटना है, बाह्य-शिल्प और रूप-आकार नही। 'प्रियप्रवास' मे कथा के मोड महाकाव्योचित मात्रा मे तो क्या प्रबन्ध के लिए भी पर्याप्त नही। वस्तुत महाकाव्य का कथानक सश्लिष्ट कथानक होता है, जिसका निर्माण आधिकारिक कथा के साथ प्रासगिक कथाओ अथवा उपाख्यानो के सयोग मे किया जाता है। 'प्रियप्रवास' मे उपकथाओ का तो प्रश्न ही नही, मुख्य कथा का विकास और निर्वाह भी सुचिन्तित रूप से नही हुआ—अत शिल्प अथवा रूप-विधान को दृष्टि मे रखकर उसे 'एकार्थ-काव्य' कहना व्यर्थ है। जहाँ तक रूप-निर्माण अथवा महाकाव्य के बाह्य लक्षण-निर्वाह का प्रश्न है, 'प्रियप्रवास' के कवि ने इनकी सायास पूर्ति की है। अधिकाश लक्षण 'प्रियप्रवास' पर घटित हो सकेंगे, किन्तु 'प्रियप्रवास' के महाकाव्यत्व मे सदेह—रूप-विधान को नही, कथा-सूत्रो की सगुफन-विधि और अपर्याप्त सामग्री को लेकर प्राय. उठाया गया है, और यह प्रश्नवाचक चिह्न उसे 'एकार्थ काव्य' कहकर नही मिटाया जा सकता। 'प्रियप्रवास' मे महाकाव्योचित कथानक एक भिन्न तथा स्वतत्र प्रश्न है, जिसका विवेचन विषयान्तर के कारण यद्यपि प्रस्तुत प्रसंग मे नही किया जा रहा, किन्तु रूप-विधान मात्र का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ परम्परागत लक्षणो को दृष्टि मे रखते हुए उसे निश्चय ही महाकाव्य स्वीकार किया जा सकता है।

२. अंशत: नवीन प्रयोग

आधुनिक काल के बृहद् प्रबन्धो मे दूसरा वर्ग उन रचनाओ का है जिनमे न तो शास्त्रीय लक्षणो में पूर्णत बँधे रहने का आग्रह है और न इन निर्दिष्ट लक्षणो की सर्वथा उपेक्षा की गई है। इनके कवियो ने मध्यम मार्ग अपनाया है। पूर्व-परम्परा के प्रति उनके हृदय मे आस्था और नवीन के ग्रहण मे उदार दृष्टि है—अत इन ग्रन्थो के शिल्प मे प्राचीन और नवीन रचना-विधियो का सुचारु सम्मिश्रण प्राप्त होता है। इस वर्ग के ग्रथ है—

(१) साकेत—(१९३१) मैथिलीशरण गुप्त।
(२) आर्यावर्त (१९४३) मोहनलाल महतो।
(३) साकेत-सत (१९४६) डॉ० बलदेव मिश्र।
(४) रश्मिरथी (१९५२) 'दिनकर'।
(५) जयभारत (१९५२) मैथिलीशरण गुप्त।
(६) ऊर्म्मिला (१९५७) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'।

इस प्रसग मे यह संकेत करना सर्वथा अप्रासंगिक न होगा कि उपर्युक्त काव्य-ग्रंथों के

रचयिता कवियो की चिन्ताधारा पर, उस मात्रा मे पाश्चात्य अथवा प्रगतिवादी विचारधाराओ का प्रभाव कभी नही रहा कि वे उन्हे भारतीय सस्कारो के प्रति आमूल विद्रोह मे प्रवृत्त कर सके। यह वर्ग उन कवियों का है जिन्हे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था, आर्यत्व पर गौरव एव अभिमान है। अत: इन्होने किसी दिशा मे भी इस प्रकार के प्रयोग नही किए जो परम्परा से एक बार ही उच्छिन्न हो गए हो, अथवा जिनमे प्राचीन सस्कारो के प्रति विद्रोह का आभास मिलता हो। इन रचनाओ के रूप-विधान के सम्बन्ध मे भी कुछ इसी प्रकार की बात है। महाकाव्य की परम्परागत रचना-विधि मे आमूल परिवर्तन करने का प्रयत्न इन कवियों ने नही किया, आशिक रूप से बाह्य रूप निर्माण में शिल्प-सम्बन्धी कुछ इस प्रकार की नवीनताओं की स्वीकृति की है, जिनका चिराचरित मान्यताओ मे कोई विरोध नही। यह नयापन जितना शैली के तत्त्वो मे दृष्टिगत होता है उतना भाव या विषय मे नही है। इनका स्वरूप कुछ उस तरुवृन्द का-सा है जिसकी जडें भारतीय सस्कारो की मिट्टी मे गहरी उतरी है, जिसने इसी मिट्टी से जीवन-रस ग्रहण किया है, किन्तु जिसके हरे-भरे बाह्याकार को कुछ विदेशी प्रभाव और कुछ युग-प्रवृत्ति के अनुकूल काँट-छाँटकर एक विशेष रूप-रग दे दिया गया हो। इन काव्यो के स्वरूप-विवेचन से उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण सम्भव होगा।

कथानक

स्वरूप—इन सभी रचनाओ के कथानक प्रख्यात है। कुछ का सम्बन्ध हमारे पुराण साहित्य से और अन्य का इतिहास से है। 'साकेत', 'साकेत-सत', 'रश्मिरथी', 'जयभारत' और 'ऊर्म्मिला' के कथानक अपने मूल रूप मे पुराणो, आदि काव्य, और तदुपरान्त अनेकानेक साहित्यिक रचनाओ मे मिलते है, तथा 'आर्यावर्त' का कथानक अन्तिम आर्य सम्राट् पृथ्वीराज की ऐतिहासिक गाथा से सम्बन्धित है। उस पर इतिहास और 'पृथ्वीराज रासो' दोनो का प्रभाव ढूँढा जा सकता है। 'साकेत-सत' और 'ऊर्म्मिला' मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम की युग-युगान्तर से प्रख्यात कथा के आख्यानो का विभिन्न दृष्टिकोणो और उद्देश्यो से ग्रहण व प्रत्यकन किया गया है। 'जयभारत' मे महाभारत की कथा के एक बृहद् अश—कुरुकुल की आद्योपान्त गाथा को काव्य-विषय बनाया गया है। और 'रश्मिरथी'—महायुद्ध कुरुक्षेत्र मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका के निर्वाहक पात्र महारथी कर्ण की यशोगाथा है। 'आर्यावर्त' की कथा यद्यपि पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध और पराजय की कथा है किन्तु कथा प्रत्यक्ष रूप से न कहकर चन्द कवि को सूत्र-धार बना, उनके मुख से कहलाई गई है। चन्द कवि कथा में वह केन्द्र है जिसके द्वारा कथा के विभिन्न सूत्रो का नियमन व सचालन होता है। इस प्रकार 'आर्यावर्त' की कथा यद्यपि चन्द से प्रत्यक्ष रूपमे सम्बद्ध दिखाई देती है किन्तु वह पृथ्वीराज के निकट सखा व सामन्त के मुख से उनकी ही कथा है। कथा के इस रूप मे नियोजन मे कवि के सामने कोई विशेष अवरोध या वैधानिक बाधा इसलिए उपस्थित नही हुई, क्योंकि चद के कवि-रूप के अतिरिक्त उनकी कथा पृथ्वीराज की ही जीवन-कथा है। उनके जीवन मे घटने वाली समस्त महत्त्वपूर्ण घटनाओ के कारण पृथ्वीराज के साथ घटित होने वाली घटनाओ मे विद्यमान है।

यदि स्थूल रूप से देखा जाय तो ये सभी प्रबन्ध आख्यान-काव्य है, किन्तु सहज प्रश्न है

कि इन लेखको का उद्देश्य क्या केवल चिर-प्रचलित कथाओ को दोहराना मात्र था ? उत्तर होगा—'नही'। केवल कथा कहना, सास्कृतिक मूल्यो की स्थापना करना या लोक-आदर्श का निर्देश करना इनका लक्ष्य नही। इससे भिन्न किसी व्यक्ति की मर्म-व्यथा की अभिव्यक्ति, किसी समस्या पर विचार या 'अपने विचारो को कहानी को बहाना बनाकर' रखने का प्रयत्न किया गया है। अत परवर्ती युग मे जिस अमूर्त-व्यजना, व्यक्तिप्रधान भावाभिव्यक्ति, विचार और चिन्तन का बोलबाला महाकाव्यो मे रहा उसका बीजारोपण इन्ही रचनाओ मे हो चुका था। इन काव्यो मे दिखाई देने वाला क्रिया-कलाप, घटना-चक्र और विविध आधिकारिक और प्रासगिक कथा-सूत्र उपलक्ष्य मात्र है। उनके बीच कवि का मूल उद्देश्य कथा के माध्यम से किसी भिन्न लक्ष्य की सिद्धि है। 'साकेत' और 'ऊर्म्मिला' के कवियो ने राम-कथा मे सर्वाधिक त्याग-मयी सर्वसहा किन्तु उपेक्षिता पात्री उर्मिला की विरह-व्यथा और त्याग की करुण कथा को सजीव रूप दिया है। 'साकेत' के कवि से ही प्रेरणा प्राप्त कर 'साकेत-सत' के कवि ने इस आख्यान के दूसरे त्यागी युगल पर दृष्टि-निक्षेप किया। उन्होने भरत और माण्डवी के उत्सर्ग का महत्त्व सर्वाधिक माना। सरोवर सामने होने पर भी जल-ग्रहण नही करने वाले उस पिपासु का आत्म-सयम उस व्यक्ति की अपेक्षा कही अधिक है, जो पिपासा-शान्ति के प्रसाधन के अलभ्य होने के कारण आत्मतोष कर लेता है। इस प्रकार राम-कथा की पटभूमि मे इस प्रेमी-युगल का चरित्र-विकास, त्याग और विराग का आलेख 'साकेत-सत' के कवि का उद्देश्य है। 'आर्यावर्त' के कवि के शब्दो मे, "अपने विचारो को मैने पृथ्वीराज की कहानी को बहाना बनाकर 'आर्यावर्त' के रूप मे आपके सामने रखने का ही प्रयत्न किया है।"

"यदि ज्वलन्त भारतीय आदर्श की तनिक-सी झलक भी 'आर्यावर्त' दे सका तो इसमे सन्देह नही कि मेरा कवि-जीवन धन्य हो गया।"[1]

स्पष्ट है कवि का उद्देश्य कहानी कहना नही, कहानी के बहाने ज्वलन्त भारतीय आदर्श को सामने रखना है। 'रश्मिरथी' के कवि के सामने भी वर्तमान समाज के अनेक ज्वलन्त प्रश्न —जाति-वर्ण-विभेद की समस्या, कर्म का महत्त्व आदि प्रस्तुत है। नवीनता यही है कि दिनकरजी का उद्देश्य न केवल कथा कहना है, न हृदय की रमणीय काव्यमय अनुभूति को प्रेषित करना, वस्तुत. वे कथा के माध्यम से एक वर्तमान समस्या का सम्बन्ध प्राचीन सस्कृति के सूत्रो से स्थापित कर तद्विषयक मान्यताएँ हमारे सम्मुख रखना चाहते है। 'कुरुक्षेत्र' का चिन्तनशील कवि इस काव्य के समग्र मे तो नही, किन्तु जहाँ-तहाँ बौद्धिक स्तर से कविता करता है। आज के बुद्धि-प्रधान व्यावसायिक युग का कलाकार अनेकानेक ज्वलत समस्याओ की उपेक्षा नही कर पाता। जहाँ इन समस्याओ का रूप व्यक्तिगत होता है वहाँ प्रगीत के माध्यम से, और जहाँ समस्या समष्टिगत अथवा सामाजिक होती है वहाँ प्राय चिन्तन-मनन के द्वारा वह काव्य मे अभिव्यक्त होती है। प्राचीन आख्यानो (ऐतिहासिक एव अन्य) का ग्रहण इसलिए किया गया है कि भारतीय हृदय अभी अपनी परम्परा और सस्कृति के प्रति श्रद्धालु एव आस्थावान है,

---

१. आर्यावर्त —पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी'। पुनश्च। चतुर्थ सस्करण १९५०

प्राचीन के कलेवर में आधुनिक की अभिव्यक्ति, परम्परा-विद्रोह अथवा आमूल उच्छेद कर नवीन की स्थापना की अपेक्षा यहाँ के पाठकों को अधिक ग्राह्य है। प्रबन्ध के लिए कल्पित वृत्त की अपेक्षा प्रख्यात व ऐतिहासिक वृत्त अधिक सुगम और उपयुक्त प्रतीत होते हैं, अतः अनेक पात्रों की व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति और अनेक सामाजिक समस्याओं का निरूपण इन प्रबन्धों की कथा मे—जो मूलतः प्रख्यात आख्यानों से सम्बद्ध हैं, स्थान-स्थान पर हुआ है। बाह्य कथा इनमे उतनी प्रधान नही जितनी उसमे अनुस्यूत भाव-व्यजना अथवा विचार-सूत्र।

'जयभारत' इस वर्ग का वह अकेला प्रबन्ध है जिसमे महाभारत की कथा में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही किया गया। मूल कथा से सम्बन्धित सभी छोटे-बडे प्रसंगों को कुछ सक्षेप मे अनेक सर्गों मे विभाजन कर इस बृहदाकार ग्रथ मे विषय बनाया गया है। कुरुकुल की आद्योपान्त गाथा कहना ही कवि का उद्देश्य प्रतीत होता है। यदि ऐसा नही होता तो अनेक ऐसे उपेक्षणीय प्रसग जिनका न कथा के विकास की दृष्टि से विशेष महत्व है, और न प्रबन्ध-सघटना के लिए, काव्य के कलेवर मे समाहित करने का प्रयत्न नही किया जाता। कुरुकुल के उद्भव से अन्त तक की कथा कुछ सक्षेप मे, 'जयभारत' का कवि हिन्दी के पाठक के लिए अध्ययनार्थ प्राप्य बनाना चाहता है, इसके अतिरिक्त कोई उद्देश्य स्पष्ट नही होता। 'जयभारत' का सम्पूर्ण वृत्त प्रख्यात है। प्राचीन भारत मे घटित होने वाले एक महत्त्वपूर्ण अध्याय से इस कथा का सम्बन्ध है और लेखक ने कथा को बिना किसी उल्लेखनीय व महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के, दूसरे शब्दों में कथा का आधुनीकरण किए बिना आख्यान काव्य के रूप मे ही प्रस्तुत किया है। अपनी अन्य रचनाओं की भाँति कवि का प्रयास न विशेष अमूर्त-व्यजना का है, और न युग-प्रवृत्ति के अनुकूल किसी प्रकार की बौद्धिकता व चिन्तन-मनन से कवि का अन्तर्मन आक्रान्त है। उन्होने कथा कहने के लिए ही 'जयभारत' काव्य की रचना की है, कम से कम कथा इस काव्य मे प्रधान अवश्य है।

संघटना—कथानक का सुचिन्तित सघटन प्रबन्ध काव्य का प्राण-तत्त्व है। प्रबन्ध-शृखला मे नाटकीयता के अभाव, अथवा विशृखल कथा-सूत्रो से अधिक घातक तत्त्व प्रबन्ध-योजना में अन्य नही हो सकता। इसी प्रबन्ध-गुण की रक्षा के लिए भारतीय आचार्यों ने पंचसधियों, अरस्तू ने कथा मे सुनिश्चित आदि, मध्य, अवसान और पाश्चात्य नाट्य-शिल्प मे पाँच अवस्थाओं की अवस्थिति अनिवार्य मानी है। यह नाटकीयता का गुण तथा सुसम्बद्ध प्रबन्ध-योजना इन सभी काव्यो मे मात्रा-भेद से वर्तमान है। कुछ कृतियो मे यथा 'साकेत', 'रश्मिरथी' और 'आर्यावर्त'—यह विधान अधिक सुनिश्चित है तथा शेष मे अपेक्षाकृत शिथिल, किन्तु किसी प्रबन्ध में इस गुण का एकमात्र अभाव अथवा आपत्तियोग्य उपेक्षा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सम्यक् विवेचन से उक्त स्थापना के स्पष्टीकरण का प्रयत्न करेंगे।

'साकेत' की मुख्य कथा चिराचरित राम-कथा न होकर उर्मिला और लक्ष्मण के संयोग-वियोग की कथा है, जिसमे वियोग ही अधिक प्रधान है। आरभिक अश का संयोग-वर्णन भावी वियोग की पृष्ठभूमि तत्पर करता है और अन्त का सयोग-वर्णन विरहजन्य दु ख के रग को और गाढ़ा कर हृदय पर मर्मस्पर्शी प्रभाव अकित करता है। कथा का तारतम्य बनाए रखने के लिए भी इन अशों का महत्त्व है। इस आधिकारिक कथा के साथ राम और सीता की कथा पताका के रूप में तथा अनेक अन्य कथाएँ प्रासंगिक अथवा प्रकरी आदि के रूप में गुथी हैं। कहीं-कही

राम से सम्बद्ध प्रसंगों मे कवि की 'श्रद्धा और पात्रो को न छोड़ सकी' फलतः ये प्रसंग पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हो गए है, किन्तु प्रायः उन्होंने उन्ही प्रसगो का उपयोग किया है जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मूल कथा के विकास से, अथवा किसी प्रधान चरित्र के चरित्रांकन से है। दशरथ-मरण, भरत-आगमन और चित्रकूट-प्रसंग ऐसे प्रसंग है जिनको अपेक्षा से अधिक स्थान दिया गया है। ये प्रसग काव्य की मुख्य कथा से सम्बद्ध है, किन्तु काफी दूर से। ऐसी स्थिति में कवि के सामने दो मार्ग थे। पहला—इन प्रसगो को भी काव्य की अनेक अन्य घटनाओ की भाँति सूच्य बनाया जाता। दूसरा—इन प्रसगो का वर्णन इतने मनोयोग से न करके सक्षेप मे इन्हे चलता कर दिया जाता। कवि की अपनी भावना इन स्थलो पर बाधक हुई है। इसी कारण उनके द्वारा होने वाली असावधानी को लक्ष्य करते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा—

"वह यहाँ रस के प्रवाह मे ठीक उसी प्रकार बह गया है जिस प्रकार प्रेमचन्दजी रगभूमि के कुछ प्रासगिक स्थलो मे। इनका महत्त्व कुछ स्वतन्त्र-सा हो जाने से कथावस्तु के सगठन मे व्यवधान पडता है। कवि को स्वय भी इसका अनुभव हुआ है। 'साकेत' नाम ही इसका प्रमाण है।"[1]

दशरथ-मरण और चित्रकूट-प्रसग के विस्तृत वर्णन का औचित्य कुछ अश तक स्वीकार किया जा सकता है। दशरथ-मरण राम-कथा का एक अत्यन्त मार्मिक और कारुणिक प्रसग है। प्रबन्ध की दृष्टि से इस घटना की महत्ता असदिग्ध है। इसके अतिरिक्त काव्य की मूल भावना उर्मिला के जीवन की करुणा का अकन है, जिसे इस प्रसग ने और अधिक कारुणिक बना दिया है। इस प्रकार कथा-तारतम्य की रक्षा के लिए इस घटना का विशेष महत्त्व है। राम-लक्ष्मण के वनप्रयाण-प्रसग तथा तद्जनित प्रभाव का वर्णन मुख्य कथा के लिए नितान्त अनिवार्य था। दशरथ-मरण की घटना इसी मुख्य कार्य की अनुवर्तिनी है—अत: चित्रकूट-मिलन तक ले जाने के लिए कथा के इस प्रसग का त्याग क्रमिक विकास मे बाधक होता और अप्रत्यक्ष-सूचना इसकी मार्मिकता नष्ट कर देती। यदि कवि इस प्रसग को सक्षेप मे प्रस्तुत करता तो कदाचित् वह पाठक के इस उपालम्भ का पात्र बनता कि मार्मिक स्थलो के अकन-ग्रहण की सामर्थ्य उसमे नही है। चित्रकूट-प्रसग का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। दीर्घ विछोह से पूर्व एक बार लक्ष्मण और उर्मिला का मिलन इस प्रसग मे कवि का लक्ष्य है। साकेत-वासियो के आगमन से पूर्व कवि ने राम-सीता को लेकर अवश्य अनपेक्षित विस्तार किया है, जो मूल कथा या प्रबन्धत्व की दृष्टि से किसी प्रकार भी उपकारी नही माना जा सकता। भरत-आगमन का प्रसग निश्चय ही कवि की सहानुभूति आवश्यकता से अधिक पा गया है। उर्मिला के साथ ही लगे हाथो कैकेयी के उद्धार की कामना ही कदाचित् इस विस्तार का कारण है। किन्तु जो भी हो, आधिकारिक कथा को आगे बढाने, अथवा फल की ओर अग्रसर करने मे, या प्रबन्धत्व की रक्षा के निमित्त भी इस प्रसंग की विशेष उपादेयता स्वीकार नही की जा सकती।

उपर्युक्त स्थलो के अतिरिक्त 'साकेत' का वस्तु-विन्यास सुगठित है। उपलब्ध राम-कथा की घटनाओ के क्रम मे कवि ने फेरफार किया है, परन्तु पूर्वक्रम मे इस परिवर्तन से न कथा के प्रवाह मे बाधा पहुँची है, न घटनाओ मे प्राणवत्ता का अभाव होने पाया है। यद्यपि 'साकेत'

---

१. साकेत एक अध्ययन—डा० नगेन्द्र, सप्तम संस्करण, पृष्ठ १३

के कवि ने भी घटनाओं का स्मृति के रूप में या किसी पात्र के मुख से वर्णन कराया है किन्तु इन घटनाओ में उस प्रकार एकरसता या शैथिल्य नहीं उत्पन्न होता जिस प्रकार 'प्रियप्रवास' मे। इस सफलता का निश्चित कारण है। 'साकेत' मे पूर्वघटित महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करने वाले पात्र बहुत कुछ सूत्रधार की सी भूमिका का निर्वाह करते हुए प्रसंगों के सूत्र जोड़कर एक ओर हो जाते हैं, और फिर कवि उन घटनाओं का प्रत्यक्ष वर्णन करता है। इन विविध घटनाओं मे वे कही-कही प्रबन्ध-शृखला बनाए रखने के लिए व्याख्या-स्वरूप कुछ पक्तियों की रचना करते है, रो-धोकर समाख्यान मात्र नही। परिणामत. उनमे वही जीवन्तता और गति है जो घटनाओं की प्रत्यक्ष प्रस्तुति मे होती है।

वस्तु-विन्यास की दृष्टि से 'साकेत' की घटनाओं का क्रमिक विकास नाटकीय ढंग से हुआ है। वस्तु-सघटना के लिए निर्दिष्ट भारतीय नाट्य-शास्त्र की पचसन्धियों और उन्हीं के समानान्तर पाश्चात्य नाटको की पाँच विकास-स्थितियो का निर्वाह स्पष्ट रूप से 'साकेत' मे देखा जा सकता है। प्रथम सर्ग के लक्ष्मण-उर्मिला सवाद के बीच चित्र-रचना के प्रसग से मुख सन्धि का आरम्भ होता है। इसी स्थल पर—

रंग फैला लेखनी आगे झुकी।
एक पीत तरंग-रेखा-सी बही,
और वह अभिषेक-घट पर जा रही।

पक्तियो मे आगामी विछोह और सघर्ष-रूपी कार्य का आभास होता है। इसके उपरान्त राम के वन-गमन से शूर्पणखा-प्रसग तक प्रतिमुख सन्धि चलती है। इस अश मे कथा चरम फल अर्थात् उर्मिला-लक्ष्मण-मिलन की ओर अग्रसर होती है। शूर्पणखा-प्रसग से लक्ष्मण की मूर्छा भग होने तक गर्भ सन्धि समझनी चाहिए। इस अश में शूर्पणखा के प्रसंग के उपरान्त अनेक बार बाधाओ का उन्मेष और परिशमन वर्णित है। राम और सीता की कथा पताका रूप मे प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था से सयुक्त है। इस समस्त कथाश मे फल अनिश्चित है। लक्ष्मण की मूर्छा से ही विमर्श का आरम्भ मानना चाहिए, क्योकि इस प्रसग मे नई बाधा की उपस्थिति है। मेघनाद-वध के उपरान्त का अश निर्वहण-सन्धि के अन्तर्गत आएगा। इसमे राम-विजय के साथ काव्य के फल तथा अन्तिम कार्य अर्थात् उर्मिला-लक्ष्मण मिलन की सिद्धि है।

पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र मे मानी गई नाटक की पाँच अवस्थाओं का भी 'साकेत' मे स्पष्ट निर्वाह किया गया है। कथारम्भ से कैकेयी के वर-याचना तक की कथा आगामी सघर्ष की पृष्ठभूमि या व्याख्या है। कैकेयी द्वारा वर-याचना की घटना काव्य की प्रारम्भिक संघर्षमय घटना है। इसके उपरान्त कार्य अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं सहित चरम घटना—लक्ष्मण-मूर्छा की ओर बढता है। यह अश सघर्ष की क्रमश घनत्व प्राप्ति का अंश है, जो लक्ष्मण-मूर्छा की घटना में चरम स्थिति को प्राप्त होता है। अतः यह कार्य-व्यापार की तीसरी अवस्था—कार्य-प्रगति है जिसकी परिणति काव्य की चरम घटना लक्ष्मण-मूर्छा के रूप मे होती है। मूर्छा-भंग से कथा का झुकाव कार्य की ओर होने लगता है और इस निगति के उपरान्त उर्मिला-लक्ष्मण के मिलन रूपी अन्तिम कार्य की सिद्धि होती है। इस प्रकार किसी भी दृष्टि से देखे 'साकेत' की कथा में नाटकीयता का पूर्ण सद्भाव है। केवल कुछ विशेष प्रसंगों को कवि ने अनपेक्षित विस्तार

दिया है। इस प्रकार के प्रसगो में—भरत-आगमन, चित्रकूट मे राम और सीता की वार्ता और उर्मिला का विरह-वर्णन (नवम सर्ग) प्रमुख है। उर्मिला-विरह काव्य की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। काव्य-रचना के उद्देश्य और विरह-वर्णन की मार्मिकता की दृष्टि से इस प्रसंग का स्वतन्त्र और निजी महत्त्व है, किन्तु प्रबन्ध-सघटना की दृष्टि से यह प्रसंग स्वतन्त्र तो नही (उर्मिला काव्य की नायिका है और उसके मनोगत भावो का अकन अप्रासंगिक व असम्बद्ध नही हो सकता), पर अपेक्षा से अधिक विस्तृत हो गया है। कवि के पक्ष मे तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि उपेक्षिता उर्मिला का उद्धार, उसके मूक त्याग की व्यजना ही काव्य का प्रतिपाद्य है, अत ऐसी स्थिति मे उक्त प्रसग की अनिवार्यता और उपादेयता स्वय सिद्ध है। किन्तु यह कारण किसी ग्रन्थ के वस्तुशिल्प मे प्रबन्ध-शैथिल्य की व्याख्या करने के लिए पर्याप्त नही। काव्य का प्रतिपाद्य एक बात है, और उसके रूप-विधान मे महाकाव्योचित विषय, शिल्प और कला का होना दूसरी बात। दोनो एक-दूसरे के पूरक नही हो सकते। 'साकेत' मे प्रबन्ध-गुण की दृष्टि से जो आंशिक शिथिलता उत्पन्न हुई है वह उर्मिला के ही प्रसग को लेकर है, और कवि, काव्य को महाकाव्य बनाने मे सफल हो सका है—उसका कारण राम-कथा के प्रति श्रद्धा और उसे अपनाने का आग्रह ही है। महाकाव्य का उपयुक्त विषय केवल कोमल और मधुर, करुण और मसृण नही हो सकते, उसके कलेवर मे जीवन के विराट् और भव्य पक्ष का होना अनिवार्य है। कवि के मन मे ग्रहण और त्याग की इसी द्विधा ने प्रबन्ध-निर्वाह को किंचित् बाधित किया है। उसका हृदय उर्मिला और राम के बीच निश्चय नही कर पाता, किन्तु इस नगण्य-सी त्रुटि को लक्ष्य करके 'साकेत' के प्रबन्धत्व पर कोई महत्त्वपूर्ण दोषारोपण नही किया जा सकता, और न ही उसे महाकाव्य के गौरव से वंचित किया जा सकता है।

'साकेत' के उपरान्त इस वर्ग की दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना 'आर्यावर्त' है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है, इन अधिकाश रचनाओ के वस्तु-विन्यास तथा प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से इनके कवि सफल रहे है। इनके कथानक शास्त्रीय लक्षणबद्ध प्रबन्धो की अपेक्षा कही अधिक सुगठित और प्रबन्ध-योजना सुचिन्तित है। 'आर्यावर्त' की चिर-प्रचलित कथा मे कवि ने यथा-सम्भव अविद्यमान की कल्पना और विद्यमान मे सशोधन किया है, किन्तु घटनाओं का क्रम-विकास सुचारु रूप से हुआ है। 'आर्यावर्त' का कार्य या अन्तिम फल गोरी-वध है। प्रथम सर्ग मे नायक चद द्वारा पृथ्वीराज के अनुसन्धान के प्रयत्न से ही कार्य-व्यापार का आरम्भ स्वीकार किया जा सकता है। आरम्भ मे ही पृथ्वीराज के बन्दी होने और आँखे फोडे जाने के कारण बाधा उपस्थित होती है, किन्तु प्रयत्न जारी रहता है। चौथे सर्ग मे जयचन्द के संकल्प से "धोऊँगा कलक रक्त देकर शरीर का" प्राप्त्याशा का आरम्भ हो जाता है, जो भारत की सयुक्त सेना से गोरी के पराजित होने पर नियताप्ति अर्थात् फल-प्राप्ति के निश्चय में बदल जाता है और अन्त मे पृथ्वीराज के हाथो गोरी-वध रूपी फल की प्राप्ति होती है।

पाश्चात्य नाटको मे निर्दिष्ट पंचअवस्थाओ का भी 'आर्यावर्त' मे निर्वाह किया गया है। पृथ्वीराज की आँखे निकलवाना काव्य की प्रथम सघर्षमय घटना है और उससे पूर्व का अश व्याख्या।[1] इसके बाद कार्य गोरी और आर्यों के संघर्ष के रूप मे चरम घटना की ओर बढ़ता है।

१. exposition

गोरी और सयोगिता के सचालन मे सेनाओं का परस्पर युद्ध नाटक की चरम घटना[1] है। इस चरम घटना से पहले का समस्त कार्य-व्यापार संघर्ष को चरम की ओर उन्मुख करता है और गोरी की पराजय से सघर्ष में एक पक्ष के विजयी होने से झुकाव[2] आ जाता है, और अन्त में गोरी-वध रूप मे अन्तिम कार्य[3] सम्पन्न होता है।

'आर्यावर्त' का प्रबन्ध-विधान पाश्चात्य योजना के अधिक समीप है। कवि ने कथा मे अनेकानेक प्रासगिक कथाओ और उपाख्यानो की योजना नही की। यद्यपि पाश्चात्य मनीषियो ने भी महाकाव्य के कथानक मे अनेक उपाख्यानो की योजना काम्य मानी है, किन्तु उन्होने भारतीय नाटच-शास्त्र की भाँति पताका, प्रकरी का विधान करके उनका स्वरूप निश्चित नही किया। 'आर्यावर्त' के कथानक मे गति है। वह उद्दाम वेग से चरम घटना की ओर उन्मुख होता है, और तदुपरान्त चरम घटना की अनुगामिनी अन्य घटनाएँ कार्य-व्यापार को अन्तिम कार्य की ओर ले जाती है, किन्तु आधिकारिक और प्रासगिक कथाओ की जो सश्लिष्ट योजना महाकाव्य के लिए अभीष्ट है, वह इस काव्य मे नही मिलती। प्रासगिक कथा के नाम पर केवल जयचन्द के प्रसग का उल्लेख किया जा सकता है, अन्यथा 'आर्यावर्त' की कथा उतार-चढाव से युक्त एक एकाकी रेखा के रूप मे आगे बढती है। उसमे न बहुत अधिक मोड है, और न प्रासगिक कथाओ के संश्लेष से कही विशेष जटिलता व चमत्कार उत्पन्न हुआ है। स्पष्टता की दृष्टि से वह प्रबन्ध-योजना का गुण स्वीकार किया जा सकता है और कथानक की समृद्धि व विशदता की दृष्टि से दोष। किन्तु काव्य की मूल कथा मे जो प्रवाह, जीवन्तता व समृद्धि है, उसने इस अभाव को बहुत कुछ भर दिया है।

'साकेत-संत' के कवि पर 'साकेत' का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत होता है। जिस प्रकार 'साकेत' का फल या कार्य लक्ष्मण-उर्मिला मिलन था, उसी प्रकार 'साकेत-सन्त' का अन्त भरत-माण्डवी के मिलन से होता है, किन्तु गुप्तजी जिस कौशल से अपने लक्ष्य की सिद्धि कर ले गये थे, 'साकेत-सत' का कवि उतनी ही दूर तक सफल नही हो पाया। इस असफलता का एक निश्चित कारण है। गुप्तजी के काव्य की नायिका उर्मिला थी, अत: नारी होने के नाते उसके जीवन की मूलभूत अनुभूति—विरह की व्यजना, वे अत्यन्त मार्मिक रूप मे कर सके। उसके अतिरिक्त राम-कथा मे घटित होने वाली समस्त महत्त्वपूर्ण घटनाओ मे लक्ष्मण किसी अश तक समभागी रहे है। उनकी जीवन-कथा मे राम के ही जीवन की कथा का अश होने के नाते—न कार्य-व्यापार की कमी है न महाकाव्योचित गरिमा से युक्त घटनाओ का अभाव। 'साकेत' की नायिका की विरह-व्यजना, और उसी के चरित्र-विकास से सम्बद्ध नायक के जीवन मे घटित होने वाली घट-नाओ ने सम्पूर्ण कथानक को एक सुगठित रूप प्रदान किया है। इसके विपरीत 'साकेत-सत' के नायक भरत के त्याग और शालीनता आदि चारित्रिक गुणो का विशिष्ट महत्त्व होने पर भी, उनके बाह्य जीवन मे ऐसी घटनाओ का अभाव है जो महाकाव्य के लिए उचित कथा-सामग्री

१. crisis
२. denoument
३. catastrophe

प्रदान कर सके। जो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ उनके जीवन मे घटित हुई, उनका स्वरूप भी अन्तरतम में गहन गम्भीरता समाए ऊपर से सागर के समान प्रशान्त दिखाई पडने वाला है। भरत का महत्त्व उनके त्याग, सहिष्णुता और धैर्य मे ही है, बाह्य सघर्ष और द्वन्द्व का उनके जीवन मे एकान्त अभाव है। विरह की विशेष व्यजना — पुरुष और वह भी मर्यादा-पुरुषोत्तम के अनुज के नाते उनके चरित्र मे सम्भव न थी। इसके अतिरिक्त राम और भरत का कार्य-क्षेत्र भिन्न होने के कारण, राम-कथा के विराट और भव्य पक्ष का सश्लेष भरत-कथा के साथ करना अप्रासगिक होता। इन विविध कारणो के फलस्वरूप काव्य का वस्तु-विन्यास बाधित है।

'साकेत' के नायक-नायिका की भाँति आरम्भ मे भरत-माण्डवी के सवाद से कार्य का आरम्भ होता है और वही इस बात का आभास होता है कि कार्य के फल का सम्बन्ध भरत-माण्डवी के मिलन से होगा, किन्तु दूसरे ही सर्ग मे कथा राम की ओर उन्मुख हो जाती है और क्रमश. अनेक सर्गों मे भरत के जीवन के वे मार्मिक प्रसग जिनमे कही-कही उनके अन्तर्द्वन्द्व और मनोवृत्तियो का भी सुन्दर चित्रण है—जिनसे उनके चरित्र की शालीनता, उदारता, त्याग आदि सद्गुणो पर प्रकाश पडता है—वर्णित है।

कथा मे जितने प्रसग है सब का सीधा सम्बन्ध भरत से है। कवि ने कही मूल कथा से असम्बद्ध प्रसगो का समावेश नही किया और जहाँ ऐसे प्रसग आए है वहाँ वे चलते कर दिये गए है, उदाहरण के लिए हनुमान के मुख से समस्त लका-काण्ड एक ही पृष्ठ मे समाप्त करा दिया है। किन्तु इस रचना मे वस्तु-विन्यास-सम्बन्धी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण त्रुटि अक्षम्य है और वह है काव्य के आरम्भ, मध्य और अन्तिम फल मे परस्पर तर्कसम्मत सम्बन्ध अर्थात् पूर्वापर अन्विति-क्रम का अभाव। सम्पूर्ण मध्यवर्ती कथा मे बारम्बार यह भ्रम होने लगता है कि कथा का अन्तिम कार्य राम-भरत-मिलन है। कथा की चरम घटना चित्रकूट-मिलन भी इसी ओर सकेत करती है। 'साकेत' का कवि इस प्रसग मे उर्मिला और लक्ष्मण का मिलन कराना नही भूला है, इसके अतिरिक्त चित्रकूट मे लक्ष्मण के विद्यमान होने, साकेतवासियो के साथ उर्मिला के वहाँ जाने और उनके परस्पर मिलन के कारण मूल कथा से इस प्रसग का विशेष सम्बन्ध स्थापित हो गया है। 'साकेत-सत' मे माण्डवी पाठक के सम्मुख बहुत कम आती है। भरत के व्यवहार से भी कही आभास नहीं होता कि वे माण्डवी से मिलने के लिए प्रयत्नशील है। यदि काव्य का अत राम-भरत मिलन से होता तो बात समझ मे आ जाती, परन्तु अन्त मे कवि भरत-माण्डवी का मिलन कराके चूक गया है। समस्त कथा का कार्य से सहज सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका और प्रबन्ध की दृष्टि से काव्य के रचना-विधान मे दोष आ गया। इसके अतिरिक्त कवि का प्रयत्न चरित-काव्य की रचना करना-सा प्रतीत होता है। काव्य की घटनाएँ पृष्ठभूमि तत्पर करती है और इस पृष्ठ-भूमि में भरत की चारित्रिक विशेषताओ को स्पष्ट करना, उनके और माण्डवी के त्याग का महत्त्व प्रतिपादित करना ही कवि का लक्ष्य है, कथा कहना नही।

'रश्मिरथी' मे कवि का लक्ष्य प्रबन्ध-निर्वाह या घटनाओ का परस्पर सघटन व क्रमिक विकास उतना नही, जितना युद्ध और अनेक अन्य सामाजिक समस्याओ पर विचार करना है। परिणामस्वरूप कवि ने आख्यान पर बल नही दिया। कथा मे अनेक चमत्कार-प्रधान प्रसगों व उपाख्यानों की संश्लिष्ट योजना नही की गई, और न ही कथा की घटनाओ में अनेक

मोड प्राप्त होते है। कवि ने महाभारत की कथा मे महारथी कर्ण के जीवन के उन प्रसगो को विशेषत काव्य का विषय बनाया है जिनमे उन्हे अनेकानेक आधुनिक समस्याओ—जातिवर्ण-भेद, युद्ध के विभिन्न पहलू, जन्म की अपेक्षा कर्म की महत्ता आदि पर विचार व्यक्त करने का अवकाश मिला है। अन्धविश्वासो के प्रति उन्होने शका की और प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया। इस प्रवृत्ति ने एक ओर कथा की सश्लिष्टता और चामत्कारिक कार्य-सघटना को आघात पहुँचाया है, दूसरी ओर कथा का विकास अत्यन्त सहज, स्पष्ट और नाटकीय रूप मे हुआ है। कथा-विकास मे नाटकीयता निश्चित रूप से मिलती है, किन्तु इस नाटकीय सविधान पर पूर्वी नाट्य-पद्धति की अपेक्षा पाश्चात्य रचना-पद्धति का प्रभाव अधिक है। पताका और प्रकरियो की सचेष्ट योजना काव्य मे नही की गई। कथा का नायक कर्ण है और समस्त वर्णित प्रसग उसी के जीवन से सम्बद्ध प्रसग है, किन्तु जिस प्रकार पाश्चात्य नाटको मे फल की अपेक्षा चरम घटना अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, उसी प्रकार प्रस्तुत काव्य मे फल की अपेक्षा मध्यवर्ती कथा पर लेखक ने विशेष बल दिया है। काव्य के चरम फल या कार्य का उपभोक्ता भी नायक कर्ण न होकर विपक्षी अर्जुन है।

कार्य का आरम्भ प्रथम सर्ग मे ही अर्जुन की प्रतिद्वन्द्विता के लिए तत्पर होकर द्रोणाचार्य से अपमानित होने के प्रसग मे शत्रुता के बीजवपन के रूप मे हो जाता है। इसके उपरान्त दोनो पक्षो मे सघर्ष के प्रयत्न नाना रूपो मे वृद्धि-विस्तार पाते है और यह समस्त क्रिया-व्यापार कथा को चरम की ओर उन्मुख करता है। भारतीय शब्दावली मे यह समस्त अश यत्न नामक कार्यावस्था के अन्तर्गत आएगा और पाश्चात्य शब्दावली मे इसे कार्य-प्रगति कहा जा सकता है। कर्ण और कुन्ती की भेंट कथा की चरम घटना है। यही कर्ण के द्वारा कुन्ती के प्रस्ताव की अस्वीकृति को प्राप्त्याशा कहा जा सकता है। तदुपरान्त घटनाचक्र अन्तिम कार्य की ओर उन्मुख होने लगता है। युद्ध मे निरन्तर कौरव-पक्ष की पराजय मे कार्य की निगति लक्षित की जा सकती है। इसी पराजय-प्रसग मे कर्ण-द्वारा विवश होकर घटोत्कच पर एकमात्र अस्त्र एकघ्नी शक्ति का प्रयोग प्राप्त्याशा को नियताप्ति मे बदल देता है, जिसकी अन्तिम परिणति कर्ण-वध रूपी 'कार्य' मे होती है।

इस वस्तु-विन्यास मे घटनाओ के समुचित नाटकीय-विकास के अतिरिक्त एक विशेषता द्रष्टव्य है। लेखक ने बड़ी सतर्कता से उन प्रसगो को विस्तार मे बचाया है, जिनमे कर्ण की कथा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही। यद्यपि उन्होने अनेक अवान्तर प्रसगो का ग्रहण कर सश्लिष्ट कथा-योजना नही की, किन्तु आधिकारिक या मुख्य कथा मे भी अपेक्षित के विस्तार और अनपेक्षित के सकोच मे उन्होने विशेष सुरुचि और सतर्कता से काम लिया है। उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा। भीष्म के पतन और कृपाचार्य के सेनानायक पद पर अधिष्ठित होने की सूचना एक ही छन्द मे दे दी गई है। इसी प्रकार अभिमन्यु-वध और जयद्रथ-वध के प्रसग अत्यन्त सक्षेप मे सकेत देकर चलते कर दिये है। इसी प्रकार द्रोणाचार्य के नायकत्व के विषय मे लेखक का कथन है—

है कथा, द्रोण की छाया में
यों पाँच दिनों तक युद्ध चला।

क्या कहें, धर्म पर कौन रहा,
या उसके कौन विरुद्ध चला ?[1]

कर्ण के अधिनायकत्व मे युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इस प्रकार ग्रहण और त्याग मे लेखक ने सतर्क विवेक का परिचय दिया है। कथा के विभिन्न अश आदि, मध्य, अवसान, सुस्पष्ट व सुसम्बद्ध हैं। कथा मे महाकाव्योचित जटिलता, सश्लिष्टता आदि नही, वह एक सीधी स्पष्ट रेखा की भाँति अपेक्षित उत्थान-पतन के साथ अन्त की ओर अग्रसर होती है। इसमे न विशेष मोड-तोड या बाधाएँ आती है और न अन्य समानान्तर रेखाएँ उसमे मिलकर उसे घनत्व प्रदान करती है। मौलिक व अन्य विशेष चामत्कारिक अशो का भी उसमे एकान्त अभाव है।

प्रबन्ध-योजना की दृष्टि से 'जयभारत' को क्या कहा जाय ? यह एक कठिन प्रश्न है। 'जयभारत' कौरव-कुल का आद्योपान्त इतिहास है। राजा नहुष से आरम्भ कर युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण तक की समस्त घटनाएँ इस विशाल काव्य का विषय है। छोटे बडे, महत्त्वपूर्ण और गौण सभी प्रसगो का वर्णन कवि ने किया है। लेखक का लक्ष्य सुगठित प्रबन्ध की रचना करना नही, कौरव-कुल की गाथा को पद्यबद्ध करना प्रतीत होता है। जिस प्रकार महाभारत संस्कृत के पुराणो की समकक्षी रचना प्रतीत होती है उसी प्रकार उतने बृहद् रूप मे तो नही, किन्तु 'जयभारत' भी खडीबोली का पुराण शैली मे लिखा गया विस्तृत प्रबन्ध स्वीकार किया जा सकता है। घटना-शृखला मे गठन लाने तथा कथा मे प्रबन्ध के प्रभाव को और घनत्व प्रदान करने के लिए कुछ घटनाओ को छोड़ देना अधिक सुरुचिपूर्ण होता। कौतूहल की सृष्टि, जिज्ञासा की उद्बुद्धि तथा चमत्कारपूर्ण रूप से घटनाओ का अन्विति प्रबन्ध-योजना मे सम्भव नही हुई है। उनका विकास यद्यपि एक के बाद एक अत्यन्त सहज रूप मे हुआ है, किन्तु प्रबन्ध-सघटना के लिए अनेक अनावश्यक प्रसगो का समावेश कथा मे किया गया है। ऐसे प्रसग (वन मृगी-प्रसग आदि) क्षेपक से प्रतीत होते है। इसके अतिरिक्त विस्तार-भय से अनेक घटनाएँ अत्यन्त सक्षेप मे वर्णन करके छोड़ दी गई है। जयद्रथ द्वारा द्रौपदी-हरण का प्रयत्न, पाडवो द्वारा रक्षा, जयद्रथ को क्षमा-दान, जयद्रथ की तपस्या और शिव से वर-प्राप्ति—इन समस्त घटनाओ का वर्णन साढे चार पृष्ठो मे हो गया है। कही ऐसी घटनाओ का अन्तर्भाव है जिनसे कथा-विकास और प्रबन्धत्व पर कोई उल्लेखनीय समर्थ प्रभाव न पड़कर केवल पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ का स्पष्टीकरण ही हो सका है। दुर्वासा का आतिथ्य और यक्ष का प्रसग ऐसा ही है। घटनाओ मे परस्पर कार्य-कारण सम्बन्ध सर्वत्र दृष्टिगत नही होता। पाठक की जिज्ञासा सर्वथा शान्त रहती हो, या घटना-विकास मे चमत्कार का एकमात्र अभाव हो, ऐसा तो नही कहा जा सकता, किन्तु घटनाओ मे न उतार-चढाव है, और न विशेष सघन प्रसग। अनेक छोटी-बडी घटनाएँ जिनका प्रबन्ध मे नाटकीयता की अभिवृद्धि से कोई सम्बन्ध नही अनायास आ गई है। प्रत्येक घटना का वर्णन स्वतन्त्र शीर्षक देकर पृथक् सर्ग या अध्याय मे किया गया है। विभिन्न शीर्षको मे यह विभाजन—घटना-वर्णन, कथा-सघटना के नियम, कथानक-विधान की निश्चित योजना आदि के आधार पर नही स्वेच्छाचार से किया गया है। 'जयभारत' का अन्विति-सूत्र सुविन्यस्त, और प्रबन्ध मे उचित सघटन हम इसलिए भी नही पाते कि उसकी रचना एक सश्लिष्ट, समग्र और

१. रश्मिरथी—दिनकर, पृष्ठ १२३

अखण्ड धारणा के परिणामस्वरूप नही हुई। कवि ने उसमे सग्रथित आख्यानो की रचना समय-समय पर पृथक् रूप से की है और 'महाभारत' के कथा-क्रम के अनुसार उनका सकलन कर दिया है। वह हमारे सामने बृहद् प्रबन्ध ग्रन्थ के रूप मे प्रस्तुत है, अतः हम उसमे प्रबन्धत्व की आशा करते है, परन्तु उसके वर्तमान रूप के लिए खड-खड-रूप मे रचना-प्रक्रिया उत्तरदायी है, इसलिए कवि का उत्तरदायित्व इस दिशा मे कम हो गया है। 'जयभारत' के प्रबन्धत्व के विषय मे विद्वानो ने प्राय. शका प्रकट की है—

"महाकाव्य वस्तुत. एक समय की अथवा विशिष्ट मन.स्थिति की रचना होते है, पर 'जयभारत' की रचना-प्रक्रिया का सम्बन्ध कवि के समस्त रचना-काल से तथा कवि-जीवन की विविध मन स्थितियो से है। आश्चर्य यह है कि 'जयभारत' न एक समय की ही रचना है, न विशिष्ट मन स्थिति का ही निर्माण। इसी कारण उसमे कथा का सग्रथन है, पर प्रबन्ध का सघटन नही। सुविन्यस्त कथा-वस्तु की नियोजना 'जयभारत' मे सम्भव नही हुई, क्योकि उसे अखड काव्य के रूप मे नही रचा गया। आख्यान-खडो को सग्रथित करके उसे सम्पूर्ण बनाया गया है।"[1]

" ··किन्तु इसका प्रबन्ध-सूत्र अत्यन्त शिथिल है—वस्तुन समग्र ग्रन्थ एक ही समय की कृति न होकर भिन्न-विभिन्न समयो पर की गई रचनाओ का सग्रह है। यद्यपि कवि ने उनमे कही-कही कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन करके उन्हे ग्रथित करने का प्रयत्न अवश्य किया हे तथापि खण्ड रूप मे निर्मित काव्यो मे अखण्डता लाना असम्भव है।"[2]

प्रबन्ध-गुण मे गुफन, घनत्व और कथानक मे सश्लिष्टता की दृष्टि से कवि की यह योजना विशेष उपकारी सिद्ध नही हुई। कार्यव्यापार मे गहनता और कार्य-विकास मे कहीं-कही ये प्रसग शिथिलता ला देते है। काव्य-विषयो की भाँति काव्य-रूपो मे भी प्रयोग-अनेकता की लालसा इस रचना की प्रेरणा के मूल मे प्रतीत होती है।

प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से इस वर्ग की सब से अशक्त रचना 'ऊर्म्मिला' है। भूमिका मे लेखक ने उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ की रचना अनेक वर्षो मे बीच-बीच मे अन्तराल के उपरान्त अश-अश कर की गई हे। अनेक प्रयत्नो मे और विविध अवसरो पर रचना करने का प्रभाव कृति पर पूर्ण रूप से पडा है। 'साकेत' की ही भाँति 'ऊर्म्मिला' के कवि का उद्देश्य भी नायिका की विरह-व्यजना है। 'साकेत' के कवि की ही भाँति वह इस तथ्य से भी अवगत है कि केवल उर्मिला का विरह महाकाव्य का पर्याप्त विषय नही हो सकता, अतः उसने लक्षणबद्ध महाकाव्यो के से साज-सम्भार से काव्य-रचना आरम्भ की है। 'साकेत' के कवि की ही भाँति राम-कथा के वे अश लेखक ने ग्रहण किए जिनका सम्बन्ध उर्मिला से प्रत्यक्ष रूप से है, किन्तु चयन, प्रस्तुति और प्रबन्ध-निर्वाह का ढग दोनो कवियो का अपना-अपना है, और कहना न होगा कि इस दिशा मे गुप्तजी ने जिस विवेक और कला-कौशल का परिचय दिया है, नवीनजी की कृति मे उसकी छाया भी नही। उनका काव्य एकाग्र प्रयत्न का परिणाम नही है, यह वस्तु-

१. मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य—डा० कमलाकान्त पाठक, पृष्ठ ३४५-३४६

२. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता—डा० उमाकान्त गोयल, पृष्ठ ५१, प्रथम सस्करण १९५८

विन्यास की विशृखलता से अत्यन्त स्पष्ट है। आरम्भिक अश इतिवृत्तात्मक वर्णनो से युक्त है। तृतीय सर्ग तक कथा गिरती-पडती अपने आपको धकेलती-सी आगे बढती है। आरम्भ के तीन सर्गों तक कवि नगर, हाट, दरबार, उर्मिला और सीता की बालक्रीडा आदि का वर्णन करता रहा है। उनकी चारित्रिक विशेषताओ को स्पष्ट करने के उद्देश्य से दोनो के मुख से परीदेश की सी कहानियाँ, जिनसे छोटे से प्रसग को व्यर्थ तूल दिया गया है, वर्णित है। इसके उपरान्त बीच की समस्त कथा को लाघकर कवि विवाहोपरान्त के कुछ पारिवारिक चित्र प्रस्तुत करने मे प्रवृत्त हुआ है, और फिर तुरन्त राम-लक्ष्मण के वन-गमन का प्रसग सामने आ जाता है। यहाँ से कथा की रही-सही प्रबन्ध-शृखला भी खण्डित हो गई है। उर्मिला विशेष अधीर और मुखर रूप मे चित्रित है, वह खुलकर वाचालता से वन-गमन का विरोध करती है। इस प्रसग मे लक्ष्मण के मुख से पचास पृष्ठों में कवि ने सृष्टि के उद्भव, वन-गमन के वास्तविक महत्तर उद्देश्य आदि विषयो पर विस्तृत वक्तृता प्रस्तुत की है। यह प्रसग घटनाओ की अन्विति और प्रबन्ध के सघटित प्रभाव की दृष्टि से घातक है। इस प्रवृत्ति की इति यही नही होती। इसके उपरान्त चतुर्थ सर्ग मे समस्त प्रकृति के उपकरणो और जगत् के कार्य-व्यापार मे विरह और करुणा भाव की व्याप्ति का दर्शनाभास वर्णन 'विरह-मीमासा' शीर्षक मे पचास से अधिक पृष्ठो मे किया गया है, और फिर नायिका उर्मिला के विरह पर परम्परागत छन्द (दोहा), परम्परागत भाषा (ब्रज), और छन्द तथा भाषा से भी अधिक परम्पराभुक्त शैली मे कवि ने सतसई से भी कुछ अधिक लिख डाला है। इस विरह-वर्णन का जिसका क्षेत्र-विस्तार ७०४ दोहो मे हुआ है, प्रबन्ध की दृष्टि से कितना औचित्य है ? कहना व्यर्थ है। यह अश सर्वथा स्वतन्त्र है। सम्पूर्ण प्रसग पढते-पढते अन्त तक पाठक शायद यह भी भूल जाता है कि यह विरह-गाथा किसी प्रबन्ध की सब से महत्त्वपूर्ण घटना है। एक ही मूल भाव की अनेक रूपो मे विस्तारयुक्त व्यजना मुक्तक और प्रगीत का अनुकूल विषय हो सकती है, प्रबन्ध का नही।

तदुपरान्त, उर्मिला को यही छोडकर कवि लकापुरी मे विभीषण-अभिषेक के अवसर पर पहुँच गया है। वहाँ फिर नगर-सज्जा का वर्णन, सभा मे राम के मुख से आत्मवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियो के वर्तमान सघर्ष पर विचार व ऐहिक और आत्मवादी जीवन-मूल्यो का बौद्धिक विश्लेषण कराया गया है। ऐसे चिन्तन-प्रधान प्रसग कथा के मध्य अनुभूति का विषय बनकर ही ग्राह्य हो सकते है अन्यथा वे प्रबन्ध के प्राण-रस का शोषण मात्र ही करते है, सरसता मे अभिवृद्धि नही। काव्य के अत मे कार्य या फल का उल्लेख केवल दो छदो मे है।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि ऊर्म्मिला' मे कही महाकाव्य रचने का आग्रह है, कही उर्मिला की विरह-व्यजना का उपक्रम, और कही आर्य-सभ्यता और आत्मिक मूल्यों की विस्तार-युक्त सिफारिश। अत इन विभिन्न उद्देश्यो की ऊहापोह मे कवि कुछ ऐसा फंस गया है कि वह जमकर तीनो मे से एक का भी निर्वाह नही कर पाया। कही लक्षणबद्ध महाकाव्यों की भाँति उसमे वर्णनात्मकता और कथा-निर्वाह है, कही समस्याओ पर विचार-विश्लेषण के कारण काव्य का स्वर बहुत अशो मे बौद्धिक हो गया है, किन्तु एकान्त चिन्तनप्रधान नही, और कही विरहिणी की आत्माभिव्यंजना के कारण विषयीप्रधान कविता की सी तीव्र भावानुभूति, हृदय की

मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। कारण कुछ भी हो, परिणाम एक ही हुआ है—प्रबन्ध-शृखला पूर्णतः विशृखल हो गई है और प्रबन्ध-गुण का अभाव महाकाव्य के वस्तु-विन्यास के लिए कदापि क्षम्य नही हो सकता।

सक्षेप मे इन प्रबन्धो को वस्तु विन्यास की दृष्टि से तीन वर्गों मे रखा जा सकता है—

(१) वे रचनाएँ जिनकी कथानक-सघटना सुचिन्तित और सुव्यवस्थित है। घटना-चक्र का विकास और सयोजन जिनमे अत्यन्त सुचारु रूप से हुआ है और पाश्चात्य और पौरस्त्य, दोनो रचना-विधियो का निर्वाह जिनके वस्तु-विन्यास मे समर्थ रूप मे किया गया है। इस प्रकार की एकमात्र रचना 'साकेत' है।

(२) दूसरा वर्ग उन प्रबन्धो का है जिनमे घटना-विकास मे नाटकीयता हे किन्तु उनके कथानक सश्लिष्ट और जटिल कथानक न होकर सरल और स्पष्ट है। उनके विकास मे महाकाव्योचित प्रगति-निगति है किन्तु आधिकारिक कथा के साथ अनेकानेक अवान्तर या प्रासगिक कथाओ की योजना नही। इनके वस्तु-विन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव अधिक है—'आर्यावर्त' और 'रश्मिरथी' इसी प्रकार के प्रबन्ध है। इन काव्यो का वस्तु-विन्यास एकार्थ काव्य के ढग पर है।

(३) तीसरे वर्ग मे वे प्रबन्ध आएंगे जिनमे प्रबन्धत्व एक या दूसरे कारण से बाधित हे। कही यह शैथिल्य घटनाओ मे परस्पर उचित सम्बन्ध-अभाव के कारण उत्पन्न हुआ हे। कही इन घटनाओ के वर्णन-सम्बन्धी सकोच-विस्तार मे उचित अनुपात नही है—यथा 'साकेत-सत' मे। अन्यत्र घटना-बाहुल्य इस असमर्थता का कारण है—यथा 'जयभारत' मे तथा 'ऊर्म्मिला' मे इन सभी कारणो को यथास्थान खोजा जा सकता है।

घटनाओ का स्वरूप—ये सभी रचनाएँ अपने प्रतीयमान रूप मे आख्यान काव्य है। अर्थात् कथा का स्वरूप ऐतिहासिक या सज्जनाश्रित होने के कारण वस्तु-जगत् की मूर्त्त घटनाओ की इनमे प्रधानता है। घटनाओ का रगस्थल यद्यपि इन काव्यो मे अधिकतर बाह्य-जगत् है फिर भी अवसर पडने पर यथास्थान कवियो ने घटनाओ के आन्तरिक स्वरूप का उद्घाटन भी किया है। प्रबन्ध काव्य अपने मूल रूप मे समाख्यानात्मक काव्य-रूप है—अतः प्रबन्धो के परम्परागत शिल्प मे प्राय. उन्ही घटनाओ को महत्त्व दिया जाता रहा है जिनका बाह्य रूप सक्रिय हो। मानव-मन की सक्रियता को शब्दबद्ध करने का सचेष्ट प्रयत्न पूर्ववर्ती महाकाव्यो मे और आधुनिक युग के रीतिबद्ध प्रबन्धो मे अत्यल्प है। आत्म के प्रति यह उपेक्षा या अवमानना इन काव्यो मे नही। एक ओर कवि ने बहिर्जगत् मे घटनाओ का विस्तार किया है, दूसरी ओर वह अन्तर्मन की गहराई मे पैठकर अमूर्त भावनाओ और चिन्तन को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। आत्माभिव्यजन की इस प्रवृत्ति पर कुछ दूर तक तत्कालीन छायावादी काव्य का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। इस वर्ग की प्रथम और महत्त्वपूर्ण रचना 'साकेत' मे ही यह प्रयत्न सर्वथा स्पष्ट है। प्रधान पात्री उर्मिला की मनोव्यथा को कवि ने सम्पूर्ण नवम सर्ग मे अनेक शैलियों में व्यक्त किया है। वन मे सीता का हार्दिक उल्लास भी गीत मे मुखरित है। इसी प्रकार 'साकेत-सत' की घटनाएँ यद्यपि मूर्त है किन्तु आन्तरिक भावव्यजना को भी कम स्थान नही मिला। विभिन्न पात्रो—विशेष रूप से भरत के आन्तरिक भावोद्गारो की अत्यन्त सजीव

व मार्मिक अभिव्यक्ति कवि ने की है। अन्तिम सर्ग मे बाह्य की अपेक्षा अन्तःप्रधान हो गया है। जो मूर्त वस्तु-तथ्य है उसे चलता कर दिया है—अमूर्त और भाव-सत्य का विशेष मनोयोग से उद्घाटन अनेक गीतों और प्रगीतो मे किया गया है। 'ऊर्म्मिला' के कवि ने भी मूर्त और अमूर्त दोनो को, और तुलनात्मक दृष्टि से अमूर्त को काव्य मे अधिक स्थान दिया है। मूर्त घटनाओ मे कुछ का अत्यन्त इतिवृत्तात्मक शैली मे वर्णन है और अधिकाश सूच्य है। जैसा पहले भी विवेचन किया जा चुका है, उन्होने विरह-भाव मात्र के लिए सामान्य रूप से पूरे चतुर्थ सर्ग की, और नायिका के प्रसग मे सतसई की रचना कर दी है।

'आर्यावर्त' मे वर्णित अधिकाश घटनाएँ वस्तु-रूप है। कही-कही व्यक्ति-चिन्तन और आर्य हिन्दू राष्ट्र की स्थापना या पृष्ठपोषण के प्रसगो मे काव्य का स्वर कुछ बौद्धिक हो गया है किन्तु ऐसे प्रसग काव्य मे बहुत कम है। अधिकाश घटनाओ का क्षेत्र बहिर्जगत् है। आन्तरिक भाव-व्यजना तो बहुत कम है, केवल राष्ट्र-हित सम्बन्धी चिन्तन कही-कही विभिन्न पात्रो के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। यह चिन्तन भी व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत ही है।

'रश्मिरथी' के कवि ने मूर्त और अमूर्त को समान रूप से ग्रहण करने पर भी स्पष्ट रूप से अमूर्त को अधिक महत्त्व दिया है। कथा के विभिन्न सूत्र निमित्त है, उनके आवरण मे अनेक सामाजिक और राजनैतिक समस्याओ पर विचार करना लेखक का लक्ष्य है। आधुनिक समस्याओ के चिरन्तनत्व को प्रमाणित करना, प्राचीन अधविश्वासो और परम्परागत मान्यताओ को प्रश्नकर्त्ता के रूप मे ग्रहण करना उनका उद्देश्य है, और इस प्रयास मे ग्रन्थ के अनेक स्थलो पर लेखक हृदय के स्थान पर मस्तिष्क के स्तर से बोलने लगता है। कथा का स्वरूप आख्यात्मक है, लेखक ने स्वय भूमिका मे इस ओर इगित किया है, किन्तु आज की अनेकानेक सामाजिक, राजनैतिक समस्याओ पर विचार करता हुआ चिन्तनशील कलाकार इतना तर्क-प्रधान हो गया है कि वह केवल हृदय को रमाने वाली भावप्रवण कला ही नही, विचार के लिए सामग्री भी उपस्थित करता है।

'कुरुक्षेत्र' का कवि इस काव्य मे भी जहाँ-तहाँ बौद्धिक स्तर से कविता करता है। कथा के सूत्र उपलक्ष्य है। नवीनता यही है कि कवि का उद्देश्य न केवल कथा कहना है, न हृदय की रमणीय, काव्यमय अनुभूति को प्रेषित करना। वस्तुत. वह काव्य के माध्यम से एक वर्तमान समस्या का सम्बन्ध प्राचीन सस्कृति के सूत्रो से स्थापित कर तद्विषयक मान्यताएँ हमारे सम्मुख रखना चाहता है। ऐसे स्थल कथा के सरस जलाशय मे उन हिम-खण्डो के समान है जिनसे पाठक के हृदय रूपी पोत को टकराना पडता है। काम्य न होते हुए भी उनकी स्थिति अपरिहार्य है, और जीवन-यात्रा मे उनका निवारण एक प्रश्न।

इन समस्याओ की एक विशेषता है। यद्यपि इनमे अमूर्त की प्रधानता है परन्तु उनमे चिन्तन का ढंग समाजवादी, अत दृष्टिकोण मूलत. वस्तुपरक है, प्रगीत के तत्त्वो का इस कारण एकान्त अभाव है। समस्याएँ व्यक्ति के अन्तर्मन की नही समाज के वस्तु-सत्य से सम्बन्धित है—उदाहरण द्वारा उक्त कथन का स्पष्टीकरण अपेक्षित होगा। किसी निर्धन प्राणी की अपनी निर्धनता के प्रति मन की करुणा और व्यथा, तथा समाज मे आर्थिक दृष्टि से वर्ग-वैषम्य; एक ही समस्या के अन्तः और बाह्य है। 'रश्मिरथी' के कवि ने बाह्य को ही अधिक ग्रहण किया है।

समस्याओ का अकन और ग्रहण समष्टि के धरातल पर किया गया है व्यक्ति-रूप मे नही।

द्वितीय सर्ग मे वर्तमान जाति-वर्ण-विभेद की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। भावानुभूति की अपेक्षा बौद्धिक चिन्तन इस प्रसग में प्रधान है। तृतीय सर्ग के अन्त मे फिर विचार-सूत्र अधिक प्रबल हो गया है। कर्ण की कर्तव्य-पालन मे दृढनिष्ठा और सजगता का वर्णन करते हुए कवि कर्तव्य की महिमा पर विचार करता है। षष्ठ सर्ग मे युद्ध के कारणों और शान्ति की स्थापना के प्रश्न पर विचार किया गया है। 'कुरुक्षेत्र' के समानान्तर विचार-प्रवाह मे कवि बह गया है। उसके सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि पौरुष का प्रदर्शन दूसरे पर विजय पाने या स्वय कष्ट सहने—किस रूप मे अधिक उचित है ? इस प्रकार अनेकानेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर कवि ने विचार किया है और स्थूल वस्तु-कथा से अधिक सूक्ष्म अमूर्त बौद्धिक चिन्तन की अभिव्यक्ति काव्य मे हुई है।

इस वर्ग मे 'जयभारत' वह अकेला काव्य है जिसमे अशरीरी घटनाओ को स्थान नही मिला। इस काव्य मे इतनी अधिक घटनाएँ है और उनका बहिर्जगत् की हलचल से इतना सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध है कि इनके बाह्य स्वरूप को छोडकर आन्तरिक गहराई मे पैठना कवि के लिए सभव नही हो सका। देश और काल की दृष्टि से इन घटनाओ मे विस्तार है किन्तु इनका रगस्थल आत्म से भिन्न नाना रूपात्मक बाह्य जगत् है जिसमे वस्तु-तत्त्व की प्रधानता है। घटनाओ के इसी मूर्त तथ्य-प्रधान रूप के कारण अमर्त और आन्तरिक भाव या बौद्धिक व्यजना का प्रयत्न इस काव्य मे नही किया गया।

घटनाओं मे गति, प्रवाह एवं वर्णन-विस्तार—कथानक मे गति और जीवन्तता की दृष्टि से इस वर्ग की अधिकाश रचनाएँ विशेष सफल बन पडी है। किसी भी कथानक मे प्रवाह-सम्बन्धी बाधा प्राय: तब उपस्थित होती है जब—

(१) घटना-विरलता की स्थिति मे अनावश्यक वर्णन-विस्तार किया जाए।

(२) घटनाओ का प्रत्यक्ष वर्णन न करके उनकी अप्रत्यक्ष प्रस्तुति का प्रयत्न हो।

(३) काव्य मे गृहीत घटनाओ के पारस्परिक सम्बन्ध-निर्वाह मे किसी प्रकार का अनौचित्य हो, अर्थात् घटनाओ की अन्विति या वस्तु-विन्यास सुचारु रूप से नही हो अथवा वर्णन-विस्तार मे उचित अनुपात न हो।

पहली स्थिति मे काव्य मे नीरसता या एकरसता, दूसरी मे निर्जीवता या अशक्तता व तीसरी मे असतुलन उत्पन्न होता है। 'ऊर्म्मिला' के अतिरिक्त ये सभी काव्य उपर्युक्त दोषो से मुक्त है। कुछ कृतियो मे देश-काल की दृष्टि से घटनाओ का विशेष विस्तार और जीवन की समग्रता तो नही मिलती, किन्तु कथा अपने विशेष क्षेत्र या जीवन के पक्ष-विशेष के समर्थ चित्राकन मे पूर्ण है। इस प्रकार विस्तार मे इन कवियो ने जो खोया है वैशिष्ट्य मे वह पा लिया है। घटना-विरलता का इस प्रकार इन काव्यों मे प्रश्न ही नही उठा।

'साकेत' के कवि ने प्रमुख रूप से उर्मिला-उद्धार को लक्ष्य बनाकर भी राम-कथा के समस्त महत्त्वपूर्ण प्रसगो को कथा मे समाहित किया है। नायिका उर्मिला काव्य की सूत्रधारिणी और 'साकेत' उसका निवास स्थान है। अत स्थान और घटना-ऐक्य की रक्षा के निमित्त, दूर-दूरान्तर तक घटित होने वाली घटनाओं को कवि ने घटनास्थल पर प्रस्तुत न करके 'साकेत' मे

विभिन्न पात्रो के मुख से उनका वर्णन कराया है। अभिषेक-पूर्व के समस्त प्रसग उर्मिला की पूर्व-स्मृति के रूप मे, और वनवास की समस्त समर्थ और जीवन्त घटनाएँ हनुमान के मुख से वर्णित है। ऐसी स्थिति मे 'प्रियप्रवास' की भाँति घटनाओ के प्रवाह मे बाधा उत्पन्न होने और उनकी स्फूर्ति और प्राणवत्ता के नष्ट हो जाने की पूरी सम्भावना थी, किन्तु इस प्रसग को अपूर्व सफलता से निवाह ले जाने के लिए गुप्तजी की कला विशेष प्रशसा की अधिकारिणी है। केवल प्रसग के आरम्भ मे यह ज्ञान रहता है कि घटनाएँ घट नही रही, उनका वर्णन या स्मरण किया जा रहा है, किन्तु कुछ ही छदों के उपरान्त पाठक घटनाओ के प्रवाह मे प्रत्यक्ष रसमयता का अनुभव करने लगता है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है पात्र केवल घटनाओ के सम्बन्ध-सूत्र मिलाकर एक ओर हट जाते है और कथा फिर पूर्ण वेग और ऋजु गति से प्रवहमान हो जाती है। घटना-क्रम मे इस योजना से न नीरसता उत्पन्न होती है न एकरसता, और न कथा-क्रम टूटता या बाधित होता है। काव्य के अन्तिम अश मे जहाँ हनुमान के मुख से सीता-हरण के उपरान्त की कथा का वर्णन है, घटनाओं मे आवश्यकता से अधिक त्वरा है। कवि ने जिस परिस्थिति का विधान किया है उसमे कुछ अधिक सभव भी नही था, किन्तु काव्य के आरम्भ मे अपेक्षाकृत प्रवाह की मन्थरता, मध्य मे स्थिरता और अत की यह भाग-दौड अनुपात की दृष्टि से ठीक नही। दूसरी दृष्टि से इस नीरस प्रसग का तेजी से बढ जाना विशेष अनुचित भी नही। आशिक व्यवधान नवम सर्ग मे उर्मिला की विरह-व्यजना मे उपस्थित हुआ है। एक ही मनोभावना की नाना रूपात्मक अभिव्यक्ति और वह भी इतने विस्तारपूर्वक—प्रबन्ध के बीच विशेष उपयुक्त नही प्रतीत होती। कथा की सशक्त गत्यात्मकता मे इस प्रसग के द्वारा विराम प्रस्तुत हो गया है। किन्तु इस विश्राम-स्थल के उपरान्त प्रबन्ध की अधिकाश समर्थ घटनाओ के घटाटोप मे पाठक इस कमी को स्थायी रूप से हृदयगम नही करता। फिर भी सम्पूर्ण काव्य मे कथा-प्रवाह अविच्छिन्न नही है। कथा के प्रमुख दृश्यो को चुनकर उन्हे अन्वित किया गया है। कही यह अन्विति सप्रयास है और कही ये जोड बड़े मनोवैज्ञानिक ढग से लगाये गए है, किन्तु कथा की घटनाओ का पारस्परिक कार्य-कारण सम्बन्ध नष्ट नही हुआ। एक घटना दूसरी का सहज विकास ही प्रतीत होती है।

वर्णन-विस्तार की दृष्टि से जीवन के विविध पक्षों, भौतिक वातावरण और प्राकृतिक दृश्यो, सभी का वर्णन कवि ने किया है। मानव-जीवन से सम्बद्ध वर्णनो मे कवि जितना प्रवीण है, वह मानव-समाज का जितना कुशल कवि है, प्रकृति का क्षेत्र उसका उतना अपना नही, यह दोनो प्रकार के वर्णनो से स्पष्ट है।

'आर्यावर्त' और 'रश्मिरथी' के कवियो ने अपेक्षाकृत सीमित फलक पर चित्र-विस्तार किया है। इन कथानको मे जीवन के विशिष्ट पक्ष (राजनैतिक) को ही ग्रहण किया गया है। 'रश्मिरथी' मे आधुनिक सामाजिक समस्याएं भी घुली-मिली है। अपने इस विशिष्ट क्षेत्र मे ये काव्य खोखले नही है। राजनीति या इतिहास से सम्बद्ध घटनाओ मे सप्राणता प्रायः सहज प्राप्य है और इसके अतिरिक्त इन काव्यो का स्वर विद्रोहात्मक होने के कारण इस गुण की प्रतिष्ठा विशेष रूप से इनमे हुई है। 'आर्यावर्त' के कवि ने आर्य-राष्ट्र की भावना का प्रचार ही अधिक किया है। जीवन की समग्रता के अभाव मे भी पक्ष-विशेष में सजीवता, स्फूर्ति और

गतिमयता है। इस रूप मे विशेष प्रकार की ओजमय ललकार है। काव्य मे विस्तार के स्थान पर हुकार और भव्यता है, और काव्य-विषय की इस आन्तरिक प्राणवत्ता के कारण घटनाएँ पूर्ण वेग से परिचालित हुई है, कवि को विश्राम का अवकाश कहाँ ?

'रश्मिरथी' मे भी विस्तार का अभाव है, कवि का आधार-फलक सकुचित है, और उस पर कुछ इने-गिने रगो के चित्र अकित है। नाना वर्ण-रजित जीवन उसकी सीमा-रेखाओ के भीतर प्रवेश नही कर सका, किन्तु इन इकरगे चित्रो मे भी गति है, प्राण है—वे निर्जीव प्रतीत नही होते। उन्हे लक्ष्य तक पहुँचने के लिए न विश्राम करना पडा है और न ठोकरे खानी पडी है। काव्य के वे अश भी जिनमे कवि चिन्तन और मनन करता है, बुद्धि को विराम नही उत्तेजना ही प्रदान करते है, किन्तु काव्य के समग्र रूप मे महाकाव्योचित विशदता और समग्रता नही मिलती। जीवन के कोमल, मधुर और मसृण प्रसग जिनमे हृदय रमण करे इस काव्य मे नही है। 'आर्यावर्त' के कवि ने भी 'मदमत्त हो प्रलय गान' गाने की आकाक्षा से जीवन के रम्य, मनोहर और मधुर पक्ष को काव्य मे स्थान नही दिया। त्रासद, करुणाजनक और ओजपूर्ण घटनाओ की ही काव्य मे प्रधानता है।

'साकेत-संत' की कथा मे जीवन की समग्रता के समावेश का आभास होता है। मुख्य कथा के साथ प्रसग-रूप मे जीवन के अनेक पक्षो का वर्णन हुआ है, किन्तु विभिन्न घटनाओ मे वर्णनानुपात की दृष्टि से यह स्पष्ट है, कि जीवन के विविध पक्ष केवल उल्लेख के विषय है, प्रधानता राजनैतिक और सामाजिक जीवन के कुछ विशेष पहलुओ तथा प्रकृति-वर्णन को ही प्राप्त हुई है। राजनीति के भी युद्धादि सम्बन्धी विराट् और ओजपूर्ण चित्र नही—त्यागमय और कारुणिक प्रसग ही गृहीत है। कारण स्पष्ट है—काव्य की प्रधान कथा भरत की कथा है और उनका स्वरूप संयमी और त्यागी का है। राम के जीवन मे घटित होने वाली जीवन्त घटनाओ का भरत के जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही। अत घटना-ऐक्य की रक्षा के लिए कवि इन घटनाओ का प्रयोग काव्य मे नही कर सका। विस्तार उसी प्रसग को दिया गया है जिसका सीधा सम्बन्ध भरत से है और इस प्रसग के वर्णन-विस्तार से कथा मे वह अबाध और अप्रतिहत वेग उत्पन्न होना असम्भव था जो सफल प्रबन्ध का प्राण है। यह प्रसग साकेतवासियो के साथ भरत के चित्रकूट-गमन और राम-भेंट का प्रसंग है। इस सम्पूर्ण सदर्भ मे महत्त्वपूर्ण घटना एक ही है—राम-भरत-मिलन, किन्तु कवि ने अनेक छोटी-मोटी घटनाओ की उद्भावना करके इस प्रसग को तूल दिया है। पूरे छ. सर्गों (८-१३) मे यह प्रसग वर्णन-विस्तार करके बढाया गया है। वस्तुत यह घटना भरत के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है, जिसमे त्याग है, तपस्या है, करुणा और मार्मिकता भी है किन्तु जीवन की दुर्दम धारा नही है, अबाध गति और महाकाव्योचित विराटता और प्रवाह नही है। परिणामत इस समस्त मध्य भाग मे जो काव्य का चरम है कथा अपने-आपको बरबस धकेलती-सी आगे बढती है, उसकी गति मे न ऋजु सरल प्रवाह है और न जीवन-धारा का दुर्दम अभियान।

'जयभारत' के घटना-विस्तार के विषय मे शका का प्रश्न ही नही उठता। उसमे जीवन के विविध पक्ष महाकाव्य की अपेक्षा मे भी कुछ अधिक ही आ गए है। घटनाएँ इतनी अधिक है कि एक क्षण के लिए भी अन्तराल प्रस्तुत नहीं होता। एक घटना के पूरी होने से पहले ही दूसरी

अपना स्थान बनाने लगती है। इस प्रकार जीवन के विविध रूप—विराट और कोमल, मधुर और तिक्त, भव्य और स्निग्ध—काव्य मे विद्यमान हैं। घटना-बहुलता के कारण गत्यवरोध का प्रश्न ही नही उठा। विस्तार और वैविध्य एव गति और प्रवाह समान रूप से कथा मे मिलता है। किन्तु घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध सम्भाव्यता या अनिवार्यता के अनुसार न होकर, परम्परा-प्राप्त रूप मे यथावत् स्थापित कर दिया गया है। कथा आगे बढती है, किन्तु उसमे उत्थान-पतन, घात-प्रतिघात से जो तनाव, जिज्ञासा और कौतूहल सर्वत्र बना रहना चाहिए वह नही है। विभिन्न प्रसग एक-दूसरे से शृखला की कडियो के समान इस प्रकार नही जुडे रहते कि एक कडी के निकालने से शृखला टूट जाय, वरन् अनेक प्रसगो के बिना भी प्रबन्धत्व मे किसी प्रकार की बाधा नही पहुँचेगी। कथा मे रोचकता और गति प्रसगो की नवीनता और विविधता के कारण अधिक है, उनकी अनिवार्यता या पारस्परिक सम्बन्ध के कारण नही।

'ऊर्म्मिला' मे घटनाओ की अपेक्षा विरह-भाव की व्यजना ही अधिक प्रधान है। घटनाएँ इस प्रबन्ध मे बहुत कम है। जो है वे प्राय: सूच्य है। पारिवारिक और प्राकृतिक चित्रो के अतिरिक्त जीवन के अन्य पक्षो को बहुत कम स्थान मिला है। अमूर्त-व्यजना की प्रमुखता होने के कारण काव्य को प्रत्यक्ष चित्रमयता और गति प्रदान करने वाले उपादान कम है। अमूर्त मे भी चिन्तन की अपेक्षा कोमल भाव की प्रधानता है। जहाँ बौद्धिक विश्लेषण है वहाँ भी वह उत्तेजक अथवा चिन्तन मे प्रवृत्त करने वाला नही। केवल समस्याओ का विवेचन-विश्लेषण है, अत: बौद्धिक गति की सामग्री भी कथा मे उपलब्ध नही। कथा के सभी प्रधान प्रसग खण्ड-खण्ड रूप मे स्वतन्त्र और असम्पृक्त है। हर प्रसग मे कवि ने इतना वर्णन-विस्तार किया है कि वह अश उस घटना विशेष पर स्वत पूर्ण स्वतन्त्र काव्य जान पडता है। हर प्रसग पर कथा रुकी-सी प्रतीत होती है, काव्य मे आद्योपान्त कथा-प्रवाह का एकान्त अभाव है।

परिमाण और समग्र रूप—'साकेत' से 'ऊर्म्मिला' तक ये सभी रचनाएँ बृहदाकार है। परस्पर तुलनात्मक दृष्टि से कुछ का आकार ('आर्यावर्त', 'साकेत-सत' और 'रश्मिरथी') अपेक्षाकृत सीमित है तथा अन्य ('साकेत', 'जयभारत' तथा 'ऊर्म्मिला') विशालकाय है। बाह्याकार के अतिरिक्त विषय-सामग्री की दृष्टि से कुछ मे जीवन की समग्रता का वर्णन है जैसे 'साकेत' और 'जयभारत' मे, तथा अन्य मे एकपक्षीय कथानक है यथा 'आर्यावर्त' और 'रश्मिरथी' मे। 'साकेत-सत' और 'ऊर्म्मिला' मे जीवन के विशद अनेकपक्षीय चित्रण का आभासमात्र होता है, किन्तु महत्त्व कुछ इने-गिने पक्षो को ही दिया गया है। कथा और आकार-सम्बन्धी इन विशेषताओ ने काव्य के समग्र रूप तथा पाठक पर पडने वाले प्रभाव को काफी सीमा तक प्रभावित किया है। 'साकेत' के पाठक के हृदय पर जो सर्वांगपूर्ण, गरिमायुक्त भव्य और विशद प्रभाव पडता है—उसी मात्रा मे हृदय के रिक्त स्थान को 'आर्यावर्त' और 'रश्मिरथी' के कवि नही भर पाते। जीवन का एकपक्षीय अकन होने के कारण अपने क्षेत्र मे पूर्ण होने पर भी इन काव्यो मे गरिमा और भव्यता तो आ गई है किन्तु विशदता और महाप्राणता नही है। 'साकेत-सत' और 'ऊर्म्मिला' तो अनेक सर्गो मे विभाजित, और अनेक पृष्ठो मे रचित होने के अतिरिक्त प्रबन्धत्व की दृष्टि से महाकाव्य-पद के उाचत अधिकारी ही नही कहे जा सकते। उनमे न जीवन की सर्वांगता है और न घटनाओ तथा बाह्याकार मे पारस्परिक अनुपात। वर्णन-विस्तार,

काव्य के विभिन्न अंशों में घटना-वितरण और उनके संयोजन की प्रणाली में कोई तर्कसम्मत औचित्य नहीं। अतः इनके समग्र प्रभाव मे आकार-विस्तार के अतिरिक्त किसी प्रकार की महत्ता नही। समग्र रूप में न प्राणवत्ता है न भव्यता, और न विराटता एवं सर्वांगता। केवल रमणीय और मधर महाकाव्य का विषय नही हो सकता।

शिल्प

सर्ग-विभाजन—'रश्मिरथी' और 'ऊर्म्मिला' का विभाजन क्रमश सात और छः सर्गों मे तथा अन्य रचनाओ का अष्टाधिक सर्गों मे हुआ है। 'जयभारत' की सर्गविभाजन-पद्धति मे नवीनता है। कवि स्वय 'सर्ग' शब्द का प्रयोग शीर्षको के साथ नही करता और अनेक स्थलों पर इतनी छोटी घटना का वर्णन पृथक् शीर्षक मे किया गया है कि उसे स्वतन्त्र सर्ग कहना भी उचित न होगा। कवि ने हर प्रसग का वर्णन घटना के आधार पर नामकरण करके पृथक् शीर्षक में किया है और इनकी सख्या बढते-बढते सैतालीस तक पहुँच गई है। निश्चित रूप से कवि का अभीष्ट इतने अधिक सर्गों मे काव्य रचना करना नही है, क्योंकि इस दृष्टि से यह विभाजन तर्कसम्मत नही हो सकता। अनेक घटनाएँ ऐसी है जिनको एक सर्ग मे रखा जा सकता है। अतः घटना-सख्या के अनुसार खण्ड-विभाजन की यह पद्धति परम्परागत नही। नवीनजी ने भी 'ऊर्म्मिला' का विभाजन छः सर्गों मे करके—इन सर्गों का विभाजन कुछ स्थलो पर उपखण्डों मे किया है। द्वितीय सर्ग में इसी प्रकार का विधान है। इन उपसर्गों मे कुछ-कुछ नाटक मे अको के मध्य दृश्यों की योजना का सा उपक्रम है। घटना का देश और काल नही, प्रसग बदल गया है। अन्य काव्यो मे विभाजन परम्परानुसार ही किया गया है। सर्गों का पृथक् नामकरण 'ऊर्म्मिला' और 'जयभारत' के अतिरिक्त किसी काव्य मे नही किया गया। प्रत्येक खड के वर्ण्य विषय, पात्र, या स्थल के आधार पर 'जयभारत' मे पृथक् शीर्षक दिया गया है, पर ये विविध प्रसग सर्ग है—ऐसा कवि ने स्पष्ट नही किया। 'ऊर्म्मिला' मे सर्ग-विभाजन सर्गों में ही करके कोष्ठक मे वर्ण्य विषय की सूचना कवि ने दी है।

नामकरण—काव्य का नामकरण करने के लिए इन कवियो ने तीन पद्धतियाँ अपनाई है—

(१) प्रधान पात्र (नायक या नायिका) के नाम पर—'साकेत-सत', 'रश्मिरथी' और 'ऊर्म्मिला'।

(२) घटना-स्थल के आधार पर—'साकेत' और 'जयभारत'।

(३) काव्य के उद्देश्य के आधार पर—'आर्यावर्त'।

उपर्युक्त प्रणालियो मे से प्रथम परम्परागत है और शेष दो पद्धतियाँ नवीन। परवर्ती काव्यो मे भी नामकरण की यह रीति विशेष लोकप्रिय नही हुई। घटना-स्थल के आधार पर तो 'कुरुक्षेत्र', 'हल्दीघाटी' आदि काव्यो का नामकरण किया गया किन्तु काव्य-उद्देश्य के आधार पर काव्य का नामकरण अन्य कवियों ने नही किया।

वर्णन-रूढ़ियाँ—आरम्भ में मगलाचरण की रूढि का पालन इन सभी कवियो ने प्रत्यक्ष या रूपान्तर से किया है। 'साकेत' और 'जयभारत' में आरम्भ प्रत्यक्ष मंगलाचरण से हुआ है,

'आर्यावर्त' के कवि ने अपने विषयानुकूल रणचडी की स्तुति की है। 'साकेत-संत' में कवि ने किसी देवता की स्तुति न कर 'उपक्रम' शीर्षक मे नायक भरत की प्रशस्ति मे चार सवैयों की रचना की है। इसी प्रकार 'ऊर्म्मिला' के कवि ने भी आरम्भ मे लेखनी को प्रोत्साहन देकर ऊर्म्मिला को बहुत कुछ आराध्या का स्वरूप प्रदान करके छ: छन्दो मे उनकी प्रार्थना की है। इस प्रकार इन काव्यों में मगलाचरण देव विषयक-स्तुति के स्थान पर रूपान्तरित होकर आया है। 'रश्मिरथी' के प्रथम छन्द मे अग्नि की स्तुति है जिसे मगलाचरण स्वीकार किया जा सकता है। निष्कर्ष रूप मे किसी न किसी विधि से इस प्रथा का पालन सभी कवियो ने किया है।

मगलाचरण के उपरान्त आशीर्वचन, वस्तु-निर्देश आदि की परिपाटी का इन कवियो ने पालन नही किया, सीधे कथा-वर्णन आरम्भ कर दिया है। 'साकेत' और 'ऊर्म्मिला' के आरम्भ मे आत्मबोध या निज कला का उद्‌बोधन कुछ पंक्तियों मे किया गया है किन्तु इस प्रकार का प्रेरणा-ग्रहण रूढि-पालन के अन्तर्गत नही आएगा।

अन्य वर्णन-रूढियो मे—शास्त्र-विहित वर्ण्य विषयो की सूची के अनुसार सभी प्रसगो के वर्णन, सब कृतियो मे नही मिलते। वस्तुत वर्णनो की समग्रता बहुत कुछ घटना-विस्तार पर निर्भर है। अत: जिन काव्यो मे कथा-विस्तार जीवन के सभी क्षेत्रो मे हुआ है, उनके वर्णनो मे भी वैविध्य और समग्रता मिलती है। अन्य रचनाएँ जिनका घटना-क्षेत्र एकांगी है, उनमे जीवन के उन्ही प्रसगों से सम्बद्ध वर्णन किये गए है। एक विशेषता जो समान रूप से इन सभी काव्यो मे ध्यान आकर्षित करती है वह है प्रकृति का मनोयोगपूर्ण वर्णन। इन सभी रचनाओ का प्रकृति-वर्णन कहीं पूर्णत: और कही अशत: छायावादी दृष्टिकोण से प्रभावित है। प्राकृतिक चित्र केवल रूढि-पालन के लिए अकित नही किये गए, बल्कि बहुत समय के अन्तराल के उपरान्त प्रबन्ध काव्यों में एक बार प्रकृति को स्वतन्त्र और महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इन प्राकृतिक वर्णनों मे कवि का मन रमण करता है, अत: पाठक के मन को भी रमाने की उनमे सहज सामर्थ्य है।

सज्जन-प्रशसा और दुर्जन-निन्दा प्रसगवश कही न कही आ ही गई है। सर्ग के अन्त मे भावी कथा-सूचना के नियम का भी इन कवियो ने नियमित रूप से पालन नही किया। कही यह सूचना अनायास आ गई है, कही नही। सतर्क रूप से अनिवार्य लक्षण मानकर इसका विधान काव्य मे नही किया गया। यह प्रवृत्ति केवल इसी विशेष लक्षण के विषय मे नही, सामान्यत: शास्त्रो मे निर्दिष्ट महाकाव्य की सभी स्थूल और बाह्य शिल्प-सम्बन्धी विशेषताओ के विषय मे देखी जा सकती है। इन कवियो ने उन मान्यताओ को तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे अपनाया है जिनका सम्बन्ध महाकाव्य की आत्मा से है और जो उसके अनिवार्य गुण है, किन्तु स्थूल बाह्याकार-सम्बन्धी रूढियो तथा गौण लक्षणों के पालन मे ये कवि सतर्क तो क्या उदासीन ही रहे हैं।

छन्द-विधान—महाकाव्य के छन्द-विधान के सम्बन्ध मे यद्यपि किसी कठोर नियम का निर्देश नही किया गया किन्तु प्राचीन समीक्षा-शास्त्र मे एक ही छन्द में सर्ग-रचना महाकाव्य के लिए काम्य मानी गई है। पश्चिम के आरम्भिक महाकाव्यो मे तो सम्पूर्ण काव्य की रचना षट्‌पदी छन्द में की गई। इन सब प्रबन्धों में भी प्राय: एक सर्ग की रचना एक ही छन्द मे करने का

प्रयास किया गया है। कही-कही इस रचना-विधि के अपवाद भी दृष्टिगत होते है, किन्तु सर्ग के मध्य में परिवर्तन उसी स्थल पर किया गया है जहाँ भाव या प्रसग मे परिवर्तन हुआ है, अत. इस प्रकार का परिवर्तन कथा-प्रवाह में बाधक न होकर साधक ही हुआ है, उसके पीछे तर्क-सम्मत औचित्य है। प्रसग के अनुकूल छद का चयन इन कवियो की विशेषता है। 'साकेत' के कवि ने इस कला मे कालिदास के समान ही कौशल का परिचय दिया है। प्रत्येक सर्ग की रचना नवीन छद मे की गई है, किन्तु केवल विचित्रता के लिए नही। कवि की विवेकशीला कला ने प्रसग के अनुरूप सस्कृत और हिन्दी दोनो से ही छन्दो का छाँट-छाँटकर प्रयोग किया है। कालिदास के वियोगिनी से लेकर जगनिक के वीर छद तक उनकी गति है। शृगार के लिए पीयूष-वर्षण, रोने-कराहने के प्रसग मे उर्दू की बहर, सरल पारिवारिक प्रसगो मे मानव छंद, विरह के प्रसग मे कालिदास का वियोगिनी छद और आवश्यकता पडने पर आल्हा के वीर छंद को भी उन्होने नही छोडा। सातवे सर्ग मे कथा की स्थिरता की व्यजना के लिए वे स्वय नवीन छद-निर्माण करने मे भी पीछे नही रहे है। इन छन्दो के अतिरिक्त भी लेखक ने सस्कृत के अनेक वृत्तो और हिन्दी के दोहा, सोरठा, घनाक्षरी, सवैया जैसे प्राचीन छन्दो का भी प्रयोग किया है। इन सभी छन्दो मे सर्वत्र प्रसग का ध्यान रखा गया है। साथ ही उनका प्रयोग सर्वथा निर्दोष है। गुप्तजी ने इन छन्दो का अत्यन्त साफ-सुथरा प्रयोग किया है। गति और यति में परिवर्तन करके इन छन्दो के निर्दिष्ट ढांचो मे परिवर्तन उन्होने नही किये। एकाध स्थल पर यति की विभिन्नता से वैचित्र्य का समावेश अवश्य किया गया है।

सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन की परिपाटी का पालन नियमतः सभी कवियो ने नही किया। कुछ ने आद्योपान्त इसका पालन किया है। 'साकेत' और 'साकेत-संत' के कवियो ने यही विधि अपनायी है। 'आर्यावर्त' और 'जयभारत' मे सर्ग की रचना तो एक ही छन्द मे हुई है किन्तु अन्त मे छद-परिवर्तन नही हुआ। 'रश्मिरथी' और 'ऊर्म्मिला' में इस प्रकार की कोई नियमित योजना नही। 'ऊर्म्मिला' मे तो लगभग प्रत्येक सर्ग मे ही आदि, मध्य और अत हर स्थल पर आवश्यकतानुसार छद-परिवर्तन हुआ है। 'रश्मिरथी' मे उपर्युक्त सभी पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। आरम्भ मे एक ही छद मे सर्ग-रचना की गई है, अत मे भी छद-परिवर्तन नहीं हुआ। दूसरे सर्ग के अन्त में छद-परिवर्तन कर दिया है। छठे और सातवे सर्ग के मध्य मे ही छन्द-परिवर्तन हो गया है, और उसके उपरान्त स्थल-स्थल पर यथास्थान इसी क्रम का पालन हुआ है। 'साकेत' और 'साकेत-सत' मे भी क्रमशः नवम और अन्तिम सर्गों मे विविध छन्द-प्रयोग किये गए है। बीच-बीच मे विशेष भावप्रवण प्रसगो मे पात्रो की आत्माभिव्यक्ति के लिए गीतो की रचना भी की गई है।

छन्द-स्वरूप की दृष्टि से मात्रिक छद इन कृतियों मे सर्वाधिक व्यवहृत है। 'साकेत', 'ऊर्म्मिला' आदि मे सस्कृत के वर्णवृत्तो को भी स्थान मिला है, अन्यथा अन्य कवियो ने लघु मात्रिक छंदो की ही स्वीकृति की है। 'साकेत-सत' मे कही-कही सवैया आदि वर्णिक छदो का भी प्रयोग है किन्तु ये छद हिन्दी के ही है सस्कृत-साहित्य की विशेषता नही। दो छदो के योग से कहीं-कही इन कवियो ने मिश्र छंद भी बनाए है। 'रश्मिरथी' के पहले सर्ग का छंद सरसी और शृंगार के दो-दो चरणों के योग से बना है तथा तीसरे सर्ग में कवि ने पद्धरि के चार चरणों में पद-

पादाकुलक का युग्मक जोडकर छः पक्तियो का छद बनाया है। इसके अतिरिक्त उन्होने कुछ अप्रचलित मात्रिक छद जैसे डिल्ला आदि का प्रयोग भी किया। 'आर्यावर्त' के कवि ने इस क्षेत्र मे नई दिशा अपनायी है। सर्वथा मौलिक तो नही, (उनसे पहले गुप्तजी मेघनाद-वध के अनुवाद मे यह प्रयोग कर चुके थे) किन्तु बृहद् प्रबन्ध-रचना के लिए हिन्दी साहित्य मे अप्रचलित अतुकात अमित्राक्षर छद मे उन्होने सम्पूर्ण काव्य की रचना की है। उनके उपरान्त 'जयभारत' मे अन्त्यानुप्रास के प्रति विशेष ममत्व रखने वाले कवि गुप्तजी ने भी काव्य के उत्तराश मे युद्ध-वर्णन इसी अतुकान्त छन्द मे किया।

अलकृति—काव्य-रचना के अन्य अग-उपागो के ही समानान्तर इन रचनाओ की अलंकरण-कला मे प्राचीन और नवीन, परम्परागत और आधुनिक का मिश्रण हुआ है। इस कलागत नवीनता के दो मुख्य कारण थे—

(१) छायावाद की उस प्रगीतात्मक काव्य-पद्धति का प्रभाव—जो स्वय अँगरेजी की रोमानी कविता से प्रभावित थी। अत छायावादी शिल्प का परिष्कार, मसृणता और गढने के साथ जडने की कला भी कुछ सीमा तक इन काव्यो मे आ गई है।

(२) काव्य के परम्परागत मूल्यो के प्रति अनास्था। काव्य-विषय मे उस नई चेतना के उदय के साथ जिसमे स्थूल और वस्तुपरक के स्थान पर सूक्ष्म और आत्मपरक का महत्त्व बढ चला था—अमूर्त और सूक्ष्म को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य-सामग्री मे भी परिवर्द्धन और परिशोधन हुआ। भाषा की अभिव्यजना-शक्ति मे विस्तार हुआ और कुछ सीमा तक अलकरण-कला मे बारीकी और नक्काशी का समावेश होता गया। इस प्रकार चमत्कार की अपेक्षा प्रभाव-व्यजना का महत्त्व कला मे बढ चला।

ये सभी कवि प्रधान रूप से अभिधा के कवि है। अत एक ओर जहाँ इनके काव्य मे नवीन कला का माधुर्य, रमणीयता और सामर्थ्य मिलती है वहाँ सीधे-सादे, चमत्कार-शून्य, वर्णन-प्रधान और कही-कही अनगढ अशों की भी कमी नही। इसीलिए अलकरण-कला की दृष्टि से कही काव्य का स्तर उत्कर्ष की पराकाष्ठा तक पहुँच गया है और कही इनकी अभिव्यजना अत्यन्त साधारण व सामान्य है।

भाव और अभिव्यक्ति का सहज सामजस्य कविता का अनिवार्य गुण है। इन कवियो ने परम्परागत अभिव्यजना के साथ, भाव को उसकी समग्रता मे प्रेषित करने के लिए नवीन प्रयोग भी किये, और काव्य-सामग्री के चयन मे इस प्रयत्न का परिणाम शुभ हुआ है। नये उपमानो का ग्रहण कही नित्य व्यवहार और अनुभव से किया गया है और कही अप्रचलित उपमानो के प्रयोग मे कला की नवीन चेतना का सकेत है। अमूर्त के स्वतन्त्र वर्णन और उपमान-रूप मे प्रयोग तो स्थान-स्थान पर इन काव्यो मे मिलेगे—

पगडंडी थी गई मार्ग से ठीक यो—
शास्त्र छोड बन जाय लोक की लीक ज्यों।[1]

१. साकेत —मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १४७

तथा—

वीणांगुलि-सम सती उतरती-सी चढ धाई,
तालपूर्ति-सी संग सखी भी खिचती आई।[1]

पहले उदाहरण मे कवि ने नित्य व्यवहार-ज्ञान से उपमान का चयन किया है और दूसरे मे सगीत के उपकरणो का अप्रस्तुत-रूप मे प्रयोग। इस प्रकार के विलक्षण और कही-कही अत्यन्त समर्थ व सुष्ठ प्रयोग अन्य काव्यो मे भी मिलते है। सम्राज्ञी सयोगिता का रूप-वर्णन करते हुए अप्रचलित उपमानो के आधार पर 'आर्यावर्त' का कवि सुन्दर उत्प्रेक्षा की योजना करता है—

उन्नत उरोज पर कवच कसे हुए,
वंदिनी है मानो सुकुमारता हृदय की
क्रूर कर्त्तव्य रूपी वज्र के कपाट में[2]

मूर्त के लिए अमूर्त उपमानो का प्रयोग इन काव्यो में प्राय हुआ है। यह प्रवृत्ति छाया-वादी काव्य की सूक्ष्म अशरीरी कला के प्रभाव-स्वरूप धीरे-धीरे प्रबन्ध मे भी प्रवेश कर गई। इस प्रकार के अमूर्त-विधान से कही-कही अभिव्यजना में विशेष गरिमा और प्रभावमयता आ गई है—

बैठी सम्राज्ञी शांत, मानो घोर तर्क में
सजती हो प्रज्ञा स्निग्ध उज्ज्वल प्रभामयी[3]

तथा—

क्षण में स्थिर क्षण में चंचल,
मन की गति सा वह घोड़ा।[4]

पहले उदाहरण मे अप्रस्तुत-विधान ने मूल भाव को गरिमा और गाम्भीर्य प्रदान किया है, दूसरे मे उपमा अत्यन्त सामान्य व चमत्कार-शून्य होते हुए भी सटीक व प्रभावित करने वाली है। अन्यथा सर्वथा रूढिग्रस्त काव्य-सामग्री मे रचित 'ऊर्म्मिला' के कवि भी अमूर्त के इस सम्मोहन से नही बचे—

यों आलिगन करती दीखी
आकुलता से सुस्थिरता
ज्यों गुणमयी सुरति से लिपटी
हो भावना विरति-निरता।[5]

मानव के रूप-वर्णन के लिए प्राकृतिक उपकरणो का प्रयोग अप्रस्तुत के रूप मे सामान्यत. प्रचलित रहा है। इन कवियो ने कही-कही इस क्रम मे विपर्यय किया है—

---

१. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ४७३
२. आर्यावर्त—मोहनलाल महतो 'वियोगी', पृष्ठ ७०
३. वही, पृष्ठ ७१
४. साकेत-संत—डा० बलदेव मिश्र, पृष्ठ ३२
५. ऊर्म्मिला—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १८४

नाथ, सभी कुछ त्याग जानकर झूठ ही,
खड़े तपस्वी-तुल्य कहीं ये ठूठ ही ! [१]

ये पक्तियाँ तुरन्त ही 'कामायनी' के कवि का स्मरण दिला देती है और प्रतीत होता है—

उसी तपस्वी से ऊँचे थे,
देवदारु दो चार खड़े । [२]

की कल्पना-विलासिनी कला के बीज पहले ही अकुरित हो चुके थे । काव्य-सामग्री या अप्रस्तुत-विधान मे नवीनता ही नही, पाश्चात्य आलकारिक विधान का प्रत्यक्ष प्रभाव भी इनकी अलंकार-योजना पर स्पष्ट है । पाश्चात्य कविता और आधुनिक हिन्दी-साहित्य की रम्याद्भुत प्रगीत कला के विशेष लोकप्रिय अलकार—मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, ध्वन्यार्थव्यजक शब्द-योजना आदि के उदाहरण इन कृतियो मे प्रभूत मात्रा मे प्राप्य है—

मानवीकरण—

कहीं सहज तरुतले कुसुम शय्या बनीं,
ऊँघ रही है पड़ी जहाँ छाया घनी । [३]

बिखर गई थी वन फूलो की पंखुरियाँ
वन-पथ पर, मानो रवि की सुकोमला-
प्रेयसी विभा के लाल-लाल कोकनद से
कोमल पदों मे नहीं काँटें चुभें वन के । [४]

इसी प्रकार—

दिग्बाला के गालों पर
लज्जा के भाव निहारे । [५]

विशेषण-विपर्यय का एक उदाहरण देखिए—

फिर हेमन्त आया—व्यग्र हुई वसुधा ।
पीले पड़े पत्ते, आया शिशिर सिहरता । [६]

'साकेत' मे भी—

शशि खिसक गया, निश्चिन्त हँसी हँस बाँकी । [७]

ध्वन्यार्थव्यजक शब्दावली के प्रयोग से भाव-सौन्दर्य तथा वर्णनो की चित्रमयता मे अभि-

---

१. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ १५२
२. कामायनी—जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ ३
३. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ १५३
४. आर्यावर्त—मोहनलाल महतो 'वियोगी', पृष्ठ ७१
५. साकेत-संत—डा० बलदेव मिश्र, पृ० २३०
६. आर्यावर्त—मोहनलाल महतो 'वियोगी', पृष्ठ ११६
७. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ २६४

वृद्धि हुई है। गगा की गति को मानो कवि ने शब्दबद्ध कर दिया है—

लघु लघु लहरातो लहर लहर
छल छल छवि छाती छहर छहर
रविकर रंजित झलमल झलमल
आलोक भरा गंगा का जल।[1]

अन्यत्र भी—

मंद मंद मधुर मराल-जैसी गति से,
मंदिर की ओर चली चिन्तामग्न रूपसी।[2]

उपर्युक्त उदाहरणो मे शब्दो के अनुरणन को आधुनिक शब्दावली में ध्वन्यार्थव्यंजना कह ले या प्राचीन शब्दावली मे वृत्त्यानुप्रास, काव्य मे सौन्दर्य की वृद्धि वे निश्चय ही करते है। अनुप्रास का कही-कहीं अत्यन्त सुन्दर प्रयोग 'ऊर्म्मिला' काव्य मे भी हुआ है—

अंजन-रजित चंचल खंजन-
मद-भंजन इन नैनों मे—
राम निरंजन-रजन, घन-मन—
रण व्यंजन इन सैनो मे—[3]

इनके अतिरिक्त परम्परागत अलकारो का अनेकानेक रूपो मे सुन्दर प्रयोग इन काव्यो मे किस प्रकार हुआ ? यह एक स्वतन्त्र और विस्तृत विषय है, जिसका सम्पूर्ण विवेचन इस प्रसग मे न सम्भव है न आवश्यक। इन काव्यो के (विशेष कर साकेत) अप्रस्तुत-विधान की अद्भुत रमणीयता, सादृश्य व साधर्म्य के आधार पर प्रचुर अलकरण-सामग्री का प्रयोग, बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूपो का कुशल अकन प्रशसनीय है। किन्तु यह सकेत कर देना अनुचित न होगा कि इस रस-राशि और नवोन्मेषिनी कला के मध्य नीरस और परम्परा पर लीक-लीक चलने वाले प्रयोग भी अलभ्य नही। 'जयभारत' का अधिकाश अप्रस्तुत-विधान परम्पराप्रसिद्ध है। 'ऊर्म्मिला' की काव्य-सामग्री मे कही-कही ऐसे चिरपरिचित घिसे-पिटे उपमानो का प्रयोग है जिनसे आज का पाठक सर्वथा ऊब चुका है—

उड़ आते निर्भीक खंजनों के वे दल चंचल थे,
प्रकटाते कन्धों पर बैठे बैठे प्रेम अचल थे,
कभी नासिका देख ऊर्म्मिला की सकुचाता शुक था,
सीता के नयनो से खंजन को होता कुछ दु ख था।[4]

गुप्तजी का अन्त्यानुप्रास-मोह सर्वप्रसिद्ध है किन्तु कही-कही जहाँ यह मोह, ग्राम्य या अप्रचलित प्रान्तीय शब्दो मे सम्पृक्त होकर दुराग्रह बन गया है वहाँ उचित प्रतीत नही होता—

१. साकेत-संत—डा० बलदेव मिश्र, पृष्ठ १०२
२. आर्यावर्त—मोहनलाल महतो 'वियोगी', पृष्ठ ६२
३. ऊर्म्मिला—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ २९२
४. वही, पृष्ठ ३१

अब आँगन भाँय भाँय है,
करता मारुत सांय सांय है।
झड़ते सब फूल फूट के,
पड़ते हैं बस अश्रु टूट के।[1]

ऐसे प्रयोग केवल कला की दृष्टि से ही आपत्तिजनक नही, कोमल भाव की अभिव्यजना इस प्रकार की स्थूल अभिधात्मक शब्दावली मे होने से भाव के सौकुमार्य को आघात पहुंचा है। कही-कही विरह-व्यजना भी शारीरिक व्यापारो व स्थूल आगिक चेष्टाओं के वर्णन द्वारा की गई है। उपर्युक्त उदाहरण मे यह प्रयास सर्वथा हास्यास्पद हो गया है। अधिकाश रूप मे सीधी-सादी स्वच्छता और प्रसादमयता कला मे प्राप्य है। तीसरे, चौथे और छठे सर्ग मे अनेक स्थलो पर निर्जीव, भरती के से वर्णन मिलते है। शब्दो मे काट-छाँट, सुरुचिपूर्ण शब्द-चयन के स्थान पर कही-कही अत्यधिक लचर भाषा का प्रयोग उन्होने किया है। विशेष स्थलो के अतिरिक्त, व्यजना (Suggestiveness) का अभाव ही है। इन रचनाओ मे कही-कही अभिव्यक्ति सर्वथा निरावृत्त हो गई है—उसमे न किसी प्रकार की सज्जा है, न अलकरण, न शब्द-शक्तियो का चमत्कार, अत. ये वर्णन इतिवृत्तात्मक, अति स्पष्ट और आवश्यकता से अधिक सीधे-सादे है। चित्रकूट की ओर अग्रसर साकेत-समाज को देखकर भ्रमित निषादराज प्रत्यारोध के लिए उद्धत है। 'साकेत-सत' के कवि ने उनके मुख से निज पक्ष को अत्यन्त सामान्य, अनलकृत व्यावहारिक भाषा मे उत्तेजना दिलाई है—

सब नाके साधो, लड़ो, अड़ो,
बढ़कर सेना पर टूट पड़ो।
वे खा न सकें, वे सो न सकें,
वे हँस न सकें, वे रो न सकें।[2]

कला की असमर्थता से कुछ स्थलों पर काव्य-दोषो का प्रादुर्भाव हुआ है। श्रुतिकटुत्व दोष का एक उदाहरण लीजिए—

एक ओर पर्त-सा त्वचा का आर्द्र पट था,
फूट-फट रूप दूने वेग से प्रकट था।[3]

'ऊर्म्मिला' की कला अलकरण की दृष्टि से सबसे अधिक रूढ है। इतना ही नही ग्राम-जनोचित भाषा का विचित्र प्रयोग, काव्य मे प्रचुर हुआ है—

मैं जानूं हूं देवि, हृदय यह
हाहाकार कर उठे है,
मैं जानूं हूं, हिय-रस बरबस–
भर-भर आंख झर उठे है।[4]

---

१. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ३८३
२. साकेत-संत—बलदेव मिश्र, पृष्ठ ९७
३. जयभारत—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ७
४. ऊर्म्मिला—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृष्ठ १९३

भाषा ही नही, कही-कही उनका अप्रस्तुत-विधान अभद्रता की सीमा का स्पर्श करने लगा है—

सीता और ऊर्म्मिला दोनों लिपट गई माता से—
मानों दो बछड़ियाँ गाय की चिपट गई माता से।[1]

'रश्मिरथी' के कवि ने अमूर्त का वर्णन किया अवश्य, किन्तु उन्होने हृदयगत रम्यानुभूति की अपेक्षा बुद्धिगत समस्या का विश्लेषण ही अधिक किया है। यह समस्या भी व्यक्ति की अपेक्षा समाज की अधिक थी, फलत उन्होने न प्रतीको का आश्रय लिया न लक्षण-व्यजना के चमत्कार की नियोजना की। अपनी बात को सीधे स्पष्ट शब्दो एवं समर्थ शैली मे कह देना ही उनकी विशेषता है। काव्य के अधिकाश मे अभिधा के सहारे, और कही-कही सर्वथा निरलकृत शैली में उन्होने जीवन के कटु किन्तु यथार्थ और मार्मिक सत्यो की अभिव्यक्ति की है। मानव की निर्मम व्याख्या करते हुए वे कहते है—

झर गई पूछ, रोमांत झरे,
पशुता का झरना बाकी है,
बाहर-बाहर तन सँवर चुका
मन अभी सँवरना बाकी है;[2]

उपर्युक्त पक्तियो मे यदि बाह्य कला-कौशल की दृष्टि से देखा जाए तो वाह-वाह करने के लिए कदाचित् ही कुछ मिले। किन्तु सीधे चोट करने की शक्ति, जीवनगत अनगढ सत्य को प्रतिबिम्बित करने की जितनी सामर्थ्य इस अनलकृत पद्याश मे है, कठिनता से ही अन्यत्र मिलेगी। अलकरण की दृष्टि से सर्वथा अनावरण ही इन पक्तियो का सौदर्य है, किन्तु ध्यान से देखा जाए तो इनमे छिपी चोट और तीखापन व्यक्त सत्य का है, कला-कौशल का नही।

'रश्मिरथी', 'ऊर्म्मिला' और 'जयभारत' के अलकरण पर छायावादी कला की अमूर्त-व्यजना, स्निग्ध-तारल्य, प्रतीकात्मकता, सूक्ष्म काव्य-उपादान, मधुर-मसृण सौदर्य, सकेतात्मकता आदि का प्रभाव नही है। 'ऊर्म्मिला' और 'जयभारत' की कला अधिकाश भाग में एक युग पीछे की कला है, और 'रश्मिरथी' की कला छायावाद के उत्कर्ष से एक दशाब्द आगे की कला—जिसमे जीवन के रक्त-मास को यथार्थ रूप मे ग्रहण और अभिव्यक्त किया गया है।

शैली—महाकाव्य की शैली को भारतीय साहित्य मे व्यवहार मे, और पाश्चात्य काव्य-शास्त्र मे सिद्धान्त-रूप मे समाख्यानात्मक स्वीकार किया गया है। किन्तु आधुनिक काल मे प्रगीत-कला के पुनरुत्थान तथा साहित्य की विभिन्न विधाओ मे नाटच तत्त्व की स्वीकृति और महत्त्व-प्राप्ति के साथ महाकाव्य की शैली मे भी वर्णनात्मकता के साथ प्रगीतात्मक व नाटकीय तत्त्वो के सम्मिश्रण और प्रयोग का महत्त्व बढ चला। पात्र-विशेष की व्यक्तिगत भावना की अभिव्यक्ति के लिए प्रगीतो का, और पात्रों के पारस्परिक सवादो मे या आदान-प्रदान के स्थलों पर पूरी सजीवता से कथोपकथन का प्रयोग इन कवियो ने किया। 'साकेत', 'आर्यावर्त', 'साकेत-सन्त' में

१. ऊर्म्मिला—'नवीन', पृष्ठ ५४
२. रश्मिरथी—दिनकर, पृष्ठ १११

उक्त प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से प्रतिफलित हुई है। आख्यान के साथ अमूर्त भावो और विचारो को भी शब्दबद्ध करने के कारण —विशेषकर बुद्धिगत समस्याओ के निरूपण के स्थलो पर शैली के लिए विश्लेषण का गुण-ग्रहण करना भी अनिवार्य हो गया है। 'रश्मिरथी' में शैली के इतिवृत्तात्मक वस्तुपरक वर्णन-प्रधान रूप के साथ शैली के विश्लेषणात्मक रूप का ही प्रयोग हुआ है। व्यक्तिगत राग-विराग के भावप्रवण स्थल अत्यल्प होने के कारण प्रगीतो की रचना इस काव्य मे विशेष नही की गई। 'जयभारत' और 'ऊर्म्मिला' की शैली परम्परागत वर्णन-प्रधान शैली है। 'ऊर्म्मिला' के विरह-प्रसग मे मुक्तक का आभास भी होने लगता हे।

महाकाव्य की शैली मे उदात्तता, गरिमा, प्रवाह और सभी प्रकार के वर्णनो की सामर्थ्य और सजीवता का होना अनिवार्य है। महाकाव्य की कथावस्तु मे जीवन के विविध रूपो का अतर्भाव होने के कारण, इस वैविध्य की अभिव्यक्ति मे सक्षम शैली भी महाकाव्य का अपरिहार्य गुण है। 'उर्म्मिला' के अतिरिक्त इन सभी रचनाओ की शैली प्रधानत वर्णनात्मक, अभिधाश्रित, इतिवृत्तात्मक और प्रसादमय होने पर भी उक्त सामर्थ्य से युक्त एव सजीव शैली है। लाक्षणिकता और व्यजना का भी उसमे अभाव नही। जहाँ जीवन की सर्वागीणता या शैली के गम्भीर और चटुल, ओजमय और मधुर दोनो रूप नही मिलते वहाँ लेखनी की असमर्थता के कारण नही, अपितु काव्य-विषय की परिसीमा के कारण ऐसा हुआ है। जहाँ जीवन के विविध पक्षो का समावेश है, वही कतिपय अपवादो के अतिरिक्त विराट और भव्य, मृदुल और करुण सभी प्रकार के वर्णन इन कवियो ने पूरे कौशल से किये है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग मे जहाँ कवि ने अनेक रम्य और कोमल चित्र अकित किए है, वहाँ अन्तिम सर्ग मे अत्यन्त समर्थ और सक्षम शैली व अनुकूल शब्दावली मे गुफित ओजमय विराट चित्रो का विस्तार हुआ हे। उनकी शैली मे विलक्षण सामर्थ्य और अद्भुत माधुरी है। कवि घटनाओ और वातावरण के विस्तृत चित्र ही नही अकित करता, बल्कि मानव मुद्राओ के अपेक्षाकृत सीमित चित्र, और भाव एव मनोदशा के सूक्ष्म चित्र भी—जिनमे व्यजना की सहायता से प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न है, अनेक स्थलो पर अकित है। इन चित्रो मे स्थिर और गतिमय दोनो ही प्रकार के चित्र है। इन समग्र स्थलो पर कवि ने सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे—

"साकेत के बृहत् चित्र कही कथा के लिए पृष्ठभूमि उपस्थित करते है, कही मानवकार्यों की रगस्थली का कार्य करते है, और कही उत्सुकता की वृद्धि करते हुए कथा मे नाटकीय रोचकता का समावेश करते है और छोटे चित्र प्राय· भावों को मूर्तिमंत करके कथा मे उभार लाते है।"[1]

आरम्भिक अशो मे एक विशेष लालित्य और रमणीयता है। नाटकीयता का प्रयोग कवि ने सवादों में ही नही किया उनकी शैली मे यह गुण वर्तमान है। कथोपकथन के अन्य रूपो मे स्वगत का प्रयोग भी कवि ने किया है। जहाँ एकाकी पात्र का परिचय वे कराते है, वहाँ भी उनकी शैली में यह गुण बरबस चला आता है। पात्र-परिचय की उनकी यह प्रिय पद्धति है—

१. 'साकेत' एक अध्ययन—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १३२

अरुण-पट पहने हुए आह्लाद मे
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद मे ?[1]

प्रश्न के उत्तर मे किया गया रूप-वर्णन प्रसग मे अनायास मनोहारी नाटकीयता ला देता है। 'साकेत' की समस्त कथा सवादो और दृश्यो द्वारा ही आगे बढती है। इन सवादो की यथावसर उद्दीप्ति, सजीवता और रसमयता ही इनका प्राण है। कथा के ऐसे स्थलो पर जहाँ वे गम्भीर परिस्थिति या भाव-सकुल स्थलो का वर्णन करते है, वहाँ वर्णन-विस्तार न करके वे प्राय वाक्-सयम या मौन से काम लेते है। ऐसे प्रसगो से कथा मे वैचित्र्य आ गया है। पात्रो की आत्माभिव्यक्ति के लिए गुप्तजी ने प्रगीत शैली का प्रयोग किया है। उर्मिला की विरह-व्यजना मे गीति शैली के प्रयोग से अधिक मार्मिकता और स्वाभाविकता उत्पन्न हुई है। सम्पूर्ण काव्य मे अतिशय साकेतिकता या व्यजना की प्रधानता कही नही मिलेगी। उसमे एक विशेष प्रकार की प्रसादमयता है जिसका अपना आकर्षण है।

'आर्यावर्त' और 'रश्मिरथी' का सम्बन्ध जीवन के राजनैतिक पक्ष से है। अत युद्धादि से सम्बन्धित घटनाओ या प्रसगो का इनमे प्राधान्य है। इस प्रकार के वर्णनो के लिए शैली मे जिस सशक्तता और पौरुष की अपेक्षा है, उस पर इन कवियो का पूर्णाधिकार है। 'आर्यावर्त' के कवि ने वातावरण-निर्माण करके घटना के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तत्पर करने मे स्थान-स्थान पर अपूर्व क्षमता का परिचय दिया है। आगामी सम्भावित भयकर घटना का आभास वातावरण के वर्णन से ही पाठक को हो जाता है। महानाश के उपरान्त आगामी कार्यक्रम की योजना से पूर्व रणभूमि में चन्द का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

पश्चिम क्षितिज पर दिन की चिता जली।
अंधकार छा गया चितानल के धूम से॥[2]

इस प्रकार के उदाहरण काव्य मे अगणित है, किन्तु स्थूल इतिवृत्तात्मक वर्णनो की भी कमी नही। कविरानी और सयोगिता-सवाद का सम्पूर्ण प्रसग ऐसा ही है। इसी प्रकार कही युद्ध-वर्णन अत्यन्त पौरुषेय और सशक्त है, अन्यत्र अत्यन्त स्थूल क्रिया-कलापो और युद्ध सम्बन्धी घटनाओ व उपकरणो का वर्णन है। नवम सर्ग मे ऐसे वर्णनो का प्राचुर्य है। त्रासद और ओज-प्रधान घटनाओ की प्रधानता के कारण शैली मे भी माधुर्य और लालित्य बहुत ही कम स्थलो पर मिलेगा।

'रश्मिरथी' मे भी इसी प्रकार सामान्यतः सीधे-सादे, कही-कही अत्यन्त व्यवहारोपयुक्त शैली और भाषा में वर्णन किये गए है—

सहम गया सुन शपथ कर्ण की, हृदय विप्र का डोला,
नयन झुकाए हुए भिक्षु साहस समेटकर बोला,
धन की लेकर भीख नहीं मैं घर भरने आया हूँ,
और नहीं नृप को अपना सेवक करने आया हूं।[3]

---

१. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ २६
२. आर्यावर्त—प० मोहनलाल महतो, पृष्ठ ३३
३. रश्मिरथी—दिनकर, पृष्ठ ६१

यही अनौपचारिक, स्पष्ट वार्ता की-सी शैली, सप्तम सर्ग मे युद्ध-वर्णन के प्रसग मे विलक्षण रूप से समर्थ हो उठी है। युद्ध की भयकरता और हुकार मानो शब्द उगल रहे है—

हेषा रथाश्व की, चक्र-रोर,
दन्तावल का वृंहित अपार,
टकार धनुर्गुण की भीषण,
दुर्मद रणशूरो की पुकार।
खलमला उठा ऊपर खगोल,
कलमला उठा पृथ्वी का तन,
सन-सन कर उड़ने लगे विशिख,
झनझना उठीं असियां झनझन।[1]

'रश्मिरथी' मे कही-कही (कुन्ती-कर्ण मिलन प्रसग) शैली मे द्रवणशीलता और मार्मिकता भी है। इन स्थलो पर करुणा और आत्मद्रव का भी अकन उसी सफलता से हुआ है जिससे जीवन्त और विराट का।

'साकेत-सत' के कवि की बहुत बड़ी परिसीमा उसकी कथा रही है। अन्य रचनाओ की भाँति कवि ने प्रगीत-शैली मे लगभग सम्पूर्ण अन्तिम सर्ग की रचना की है। आन्तरिक उद्‌गारो की सजीव व मार्मिक अभिव्यक्ति है, किन्तु वर्णनप्रधान स्थलो पर अभिव्यक्ति के लाघव का सर्वथा अभाव है। घटनाओ के स्वरूप के कारण काव्य की शैली मे सशक्त प्राणवत्ता की आशा करना व्यर्थ ही है। फिर भी एक प्रकार की स्पष्टता, सफाई और प्रसादमयता इन सभी काव्यो की शैली मे परिव्याप्त है जिसका अपना आकर्षण और महत्त्व है।

'जयभारत' की शैली मे उल्लेखनीय सौन्दर्य एव सामर्थ्य का अभाव है। कवि केवल कथा कहना चाहता है। 'कैसे' ? की प्रायः उसने उपेक्षा ही की है, अत विशेष भव्यता, उदात्तता, व्यजना-वक्रता आदि गुण शैली मे प्रविष्ट नही हो पाए। कही-कही केवल तथ्य को पद्यबद्ध करने की आकाक्षा से कवि ने गद्यात्मक शैली मे छन्द-रचना की है। वर्णन-पद्धति भी अत्यन्त वस्तुपरक है—

कर्ण, एक शक्ति थी, उसे भी तुम खो चुके।
यह तो था बेटा, अभी बाप-काका है सभी।[2]

कुछ इने-गिने प्रसग समर्थ और गरिमायुक्त शैली मे लिखे गए है, किन्तु काव्य के बृहदाकार की दृष्टि से उनकी सख्या अत्यल्प है। 'जयभारत' की शैली की एक विशेषता ने काव्य के समग्र प्रभाव की रक्षा की है, और वह है उसमे गति व प्रवाह का गुण। ग्रन्थ मे आद्योपात विस्तार होने पर भी गत्यवरोध कही नही उपस्थित हुआ है, पाठक को यही सन्तोष होता है।

'ऊर्म्मिला' की शैली मे उक्त गुण की रक्षा भी नहीं हो सकी। काव्य के हर प्रसग मे, चाहे वह नगर-वर्णन हो या नायिका की विरहाभिव्यक्ति, कवि ने अतिशय विस्तार किया है।

---

१. रश्मिरथी—दिनकर, पृष्ठ १४६
२. जयभारत—मैथिलीशरण गप्त, पृष्ठ ३८२

शैली मे भव्यता और गरिमा के लिए अवकाश ही नही था। जीवन के कोमल और मार्मिक प्रसगो की रचना ललित और रम्य शैली में ही हो सकती थी, किन्तु कवि की सर्वथा परम्परा-भुक्त शैली, अनपेक्षित वर्णन-विस्तार, स्थूल वस्तुप्रधान दृष्टि और ग्राम्य भाषा के अक्षम्य प्रयोगों के बीच मे कही-कही अशत अभिव्यक्ति का सौन्दर्य और मनोरमता भी मरुस्थल के जलाशय के समान दुर्लभ और विरल प्रतीत होती है। कही-कही हृदय के कोमल भावों की अभिव्यक्ति माधुर्यसिक्त शैली मे मार्मिक बन पडी है। किन्तु ऐसे स्थल बहुत कम है। सबसे अधिक खटकने वाली बात शैली का स्थैर्य है। हर प्रसग अपने स्थान पर जड है, आगे बढना नही चाहता और यह प्रवाह-बाधा जो बहुत कुछ कथा-संघटना और वर्णन-विस्तार के कारण उत्पन्न हुई है, शैली के कौशल मे भी अन्तर्धान नही हो सकी। असमर्थ शैली से यह रोग और भी असाध्य हो गया है। किसी दृष्टि से यह काव्य महाकाव्य के गौरव का अधिकारी नही बन सका।

विवेच्य ग्रन्थो के अब तक किये गए रूप-विधान सम्बन्धी विश्लेषण के उपरान्त उनके समग्र रूप मे परम्परागत, शास्त्रानुमोदित और नवीन तत्त्वो का व्यावर्त्तन और स्थान-निर्धारण किया जा सकता है।

परम्परागत-तत्त्व

कथानक

(१) इन सभी काव्यो के कथानक प्रख्यात, ऐतिहासिक या पौराणिक है। इन सभी की कथा-सघटना मे यद्यपि अविच्छिन्न धारा-प्रवाह नही फिर भी शास्त्रो मे निर्दिष्ट नाटकीयता के निर्वाह के बन्धन को उन्होने स्वीकार किया है। कुछ मे नाट्य सन्धियो द्वारा, और अन्य मे पाश्चात्य विधानानुसार नाटकीयता का निर्वाह किया गया है।

(२) घटनाओ का स्वरूप मूर्त है। यथास्थान अमूर्त-व्यजना का समावेश होने पर भी प्रधानता मूर्त की ही है। अमूर्त और सूक्ष्म की अपेक्षा मूर्त, स्थूल एव वस्तुप्रधान कही गौण नही हुआ है।

(३) इनका आकार महाकाव्योचित और विस्तृत है। आचार्यो द्वारा वर्ण्य विषयो की सम्पूर्ण सूची का तो नही, किन्तु उसमे से पर्याप्त विषयो का घटना तथा प्रसग के अनुकूल वर्णन-विस्तार भी इन रचनाओ मे हुआ है।

शैली

(१) सर्ग-विभाजन, निर्दिष्ट लक्षणो के अनुसार ही है। सर्ग-संख्या के नियम की अवमानना जो एकाध कृति मे हुई है, वह आधुनिकता के आग्रहवश नही। इस प्रकार के अपवाद मध्ययुगीन साहित्य मे भी मिलते हैं। नामकरण मे भी उल्लेखनीय नवीनता का अभाव है।

(२) बाह्य और औपचारिक वर्णन-रूढियो का सामान्यतः त्याग करने पर भी मगलाचरण की रूढि का निर्वाह किसी न किसी रूप मे किया गया है।

(३) छन्द-विधान मे नवीन और प्राचीन का मिश्रण है, किन्तु बहुलता प्राचीन और शास्त्रीय की ही है। इन कवियो ने ('आर्यावर्त' को छोडकर) छन्दो के सस्कृत और हिन्दी-पिंगल-

शास्त्र मे विहित ढाँचे ही अधिक अपनाए है। मात्रिक और वर्णिक दोनो ही प्रकार के वृत्तो का अत्यन्त साफ-सुथरा प्रयोग इन काव्यो मे प्राप्य है। एक ही छन्द में सर्ग-रचना का नियम प्राय: परिपालित है। सर्गान्त मे छन्द-परिवर्तन की विधि भी कुछ रचनाओं मे विशेष सीमा तक अपनाई गई है, किन्तु ये सभी कवि सर्वत्र इस बन्धन मे नही बँधे।

(४) इन काव्यों की अलकरण-कला मे भी परम्परागत काव्य-सामग्री, सीधी-सादी स्पष्ट अभिव्यक्ति, कवि-परम्परा मे प्रसिद्ध अलकरण के उपादानो का प्रयोग प्रभूत मात्रा मे हुआ है। नवीनता का इस दिशा मे अभाव नही किन्तु प्राचीनता की उपेक्षा भी नही। किसी कृति मे यह प्रवृत्ति अधिक है ('ऊर्म्मिला' और 'जयभारत') अन्य मे उतनी नही।

(५) शैली के प्रसाधनो मे भी कथावस्तु के अनुकूल, इन्होने महाकाव्यापेक्षित गरिमा और उदात्तता का परिचय सामान्यत दिया है। 'ऊर्म्मिला' आदि के अतिरिक्त इन काव्यो की शैली मे सामान्यत. बहुत बडे पैमाने पर विराट दृश्य-शृखला[1] तो सर्वत्र नही किन्तु अश-अश परखने से विराट, भव्य, कोमल और मृदुल-मन्थर चित्र मिल जाएँगे।

अन्य प्रभाव

कथानक

(१) छायावाद के उन्मेष के मूल मे प्रेरणा-रूप से कार्य करने वाली व्यापक नवीन चेतना से इस वर्ग का प्रबन्ध-लेखक भी प्रभावित हुआ है। विभिन्न कारणो से उद्भूत इस नवीन काव्य-सरणी का प्रथम अभियान आत्म के अभिज्ञान और महत्त्व प्रतिपादन की ओर हुआ। इन काव्यो के प्रख्यात कथानको के साथ किसी न किसी रूप मे व्यक्ति या समस्या अनिवार्य रूप से जुडी है। जहाँ व्यक्ति का राग-विराग प्रमुख है वहाँ छायावादी काव्य-चेतना का प्रभाव है, और जहाँ सामाजिक समस्या प्रबुद्ध है वहाँ छायावाद के प्रतिक्रिया-स्वरूप उदित होने वाली समष्टि की पोषक समाजवादी विचारधारा का। 'साकेत,' 'साकेत-सत', और 'ऊर्म्मिला' पर पहली, और 'रश्मिरथी' के कवि पर दूसरी प्रवृत्ति का प्रभाव है। 'आर्यावर्त' और अशत 'जयभारत' राष्ट्रीय-सास्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। किसी न किसी रूप मे एक या दूसरी युग-चेतना से महाकाव्य का परम्परागत रूप परिवर्तित अवश्य हुआ है। उसमे भौतिक घटनाओ, स्थूल वस्तुपरक और ऐहिक जीवन-मूल्यो के साथ समान महत्त्व से मानसिक घटनाओ, सूक्ष्म आत्मपरक मूल्यो और अमूर्त चेतना का भी समागम हो गया है।

(२) कथानक-सघटना मे इन कृतिकारो ने नाटकीयता की रक्षा करते हुए भी जो योजना अपनायी है, वह पाश्चात्य विधि के अधिक समीप है। इन्होने पच-सधियो की व्यजना को तो ग्रहण किया, किन्तु वस्तु-विन्यास के नियमो को नही। इनमे से अनेक मे उपाख्यान से युक्त दोहरी-तीहरी कथा की ही योजना नही, अत सधियो का प्रश्न नही उठता। परन्तु नाटकीय चढ़ाव-उतार एव सुनिश्चित आरम्भ, चरम और अवसान सब मे स्पष्ट है, और यह विकास पाश्चात्य सविधान के अधिक अनुकूल है।

---

१. Panoramic-vision

(३) प्रसंगा के व्यर्थ वर्णन-विस्तार में सकोच की प्रवृत्ति भी कदाचित् इन कवियो ने अँग्रेजी साहित्य से ग्रहण की है। वर्णन-विस्तार इन्होने उसी सीमा तक किया जितना प्रसग के लिए उचित है। समीक्षा-शास्त्र मे गिनाए वर्णनों का बरबस समावेश महाकाव्यत्व की रक्षा के लिए नही किया गया। कही-कही लक्षण-निर्वाह की झोक मे ये कवि बहक गए है, किन्तु बहुत कम।

शैली

(१) इन कवियो के छन्द-विधान पर हिन्दी-इतर साहित्य का प्रत्यक्ष प्रभाव पडा है। प्रगीत-शैली मे रचना तो परोक्ष रूप से अँगरेजी साहित्य के प्रभाववश हुई ही है। बंगला के पयार छन्द के समानान्तर माइकेल मधुसूदन का अमित्राक्षर छन्द 'आर्यावर्त' के समग्र मे और 'जयभारत' के सर्ग-विशेष मे अपनाया गया है। हिन्दी के अपने छन्दो के अतिरिक्त सस्कृत के वर्णवृत्तो और कालिदास के वियोगिनी ('साकेत' दशम सर्ग) आदि छन्दो का प्रयोग भी हुआ है।

(२) अलकरण-कला मे भी अँगरेजी साहित्य के मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, ध्वन्यार्थ-व्यजना आदि अलकारों का ग्रहण तो किया ही गया है, अँगरेजी भाषा की अति विकसित लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ता के समानान्तर भाषा के अनेकानेक लाक्षणिक, व्यजना-वैचित्र्य से युक्त व चित्रमय प्रयोग इन काव्यो मे किये गए। भाषा प्रयोग की पुरानी रीति-नीति के साथ उसे अधिकाधिक शक्ति-सम्पन्न बनाने का आधुनिक प्रयत्न भी इन काव्यो मे प्राप्य है। हर प्रकार की घटनाओ और भावो को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य लक्षणबद्ध प्रबन्धो की अपेक्षा इन कृतियो मे कही अधिक है।

स्वतन्त्र व नवीन उद्भावनाएँ

कथानक

इस क्षेत्र मे इन कवियो की मौलिकता कथानक के चयन मे नही, उसके सयोजन मे है। एक कथा (राम-कथा) का ग्रहण तीन भिन्न कवियो ने किया किन्तु प्रत्यकन का ढग तीनो का अपना-अपना है। घटनाओ का पूर्वापरक्रम-निर्धारण, उनमे परस्पर सम्बन्ध-स्थापना, उपाख्यानो का प्रयोग तथा वस्तु-विन्यास की योजना उनकी अपनी-अपनी है। दूसरे शब्दो मे कथानक परम्परा-प्रसिद्ध है, किन्तु क्रम-निर्वाह सब का मौलिक है। कथा के मौलिक सम्बन्ध-निर्वाह के अतिरिक्त इन कवियो ने कुछ प्रसगों की नवीन उद्भावना अर्थात् अविद्यमान की कल्पना भी की है। विशेष प्रसगो मे विस्तार और सक्षेप भी इनकी निजी मान्यता, आवश्यकता और अभिरुचि के अनुसार हुआ है। कोई अन्य विषय-सम्बन्धी मौलिकता इन कृतियो मे नही मिलती।

शैली

(१) सर्गविभाजन-पद्धति मे मौलिकता के दर्शन दो प्रबन्धो मे होते है। 'जयभारत' और 'ऊर्म्मिला'। एक मे सर्गों का उपविभाजन किया गया है, और दूसरे में कथा का विभिन्न शीर्षकों मे अतिविभाजन। इनके औचित्य का परीक्षण पीछे किया जा चुका है, अत. यहाँ पुनरावृत्ति उचित न होगी किन्तु सर्गविभाजन की यह पद्धति इन कवियों की अपनी है।

(२) मगलाचरण के अतिरिक्त इन कवियो ने वर्णन-सम्बन्धी अन्य बाह्य रूढियो का एक बार ही सर्वथा त्याग कर दिया। इनके प्रति उपेक्षा-भाव का आभास पहले ही 'प्रियप्रवास' आदि काव्यो मे मिलने लगा था। इन कवियो ने इन रूढियो की पूर्णत: अवज्ञा कर दी। सर्गान्त मे भावी कथा-सूचना की रूढि का अवश्य कुछ कवियो ने एक सीमा तक पालन किया है।

(३) छन्द-विधान की दृष्टि से भी इन कवियो ने अनेक मौलिक प्रयोग किये। प्रसंगानकूल छन्द के चयन की क्षमता तो इनमे है ही। कथा की आवश्यकता के अनुसार प्रसग की मन्थरता या त्वरा को दृष्टि मे रखते हुए ही छन्दो की लय के अनुसार प्रसग-विशेष मे उनका ग्रहण किया गया है। इसी आवश्यकता के वशीभूत होकर कही इन कवियो ने छन्दो के मिश्रण से नए ढाँचे बनाये है और कही नवीन छन्द-निर्माण किया है—'साकेत' के सप्तम सर्ग का छन्द कवि का अपना ही है।

(४) शैली मे अप्रस्तुत-योजना या अलकरण की दृष्टि से—कुछ विदेशी साहित्य के सम्पर्क के कारण और कुछ अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर अनेक नवीन प्रयोग इन काव्यो मे किये गए। कहाँ और कैसे ? इस पर विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। 'ऊर्म्मिला' के कवि ने भाषाविषयक मौलिक प्रयोग भी किया। एक ही प्रबन्ध मे खडीबोली और ब्रजभाषा दोनो का प्रयोग किया गया है। कदाचित् उनके अनुसार खडीबोली की खडखडाहट अब तक विरह जैसी मार्मिक और कोमल अनुभूति को अकित करने मे समर्थ नही, इसीलिए उन्होने इस सम्पूर्ण प्रसग मे ब्रजभाषा की माधुरी से लाभ उठाने का प्रयत्न किया है। प्रयोग उचित हो या नही, मौलिक अवश्य है।

रूप-विधान की दृष्टि से शास्त्रीय कसौटी अब इन रचनाओ के महाकाव्यत्व की परख के लिए पिछड चुकी है। उस निकष पर परीक्षा करने से कदाचित् ये सभी ग्रन्थ महाकाव्य के वृत्त से बाहर जा पडेगे। फिर भी प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य सैद्धान्तिक मान्यताओ को दृष्टि मे रखते हुए—विषय, शैली और रूप-विधान सभी दृष्टियो से केवल 'साकेत' एक ऐसी रचना है जिसे निस्सकोच रूप मे महाकाव्य कहा जा सकता है। थोडी-सी खीचातानी करने पर 'आर्यावर्त' और 'रश्मिरथी' भी इस क्षेत्र मे घसीटे जा सकते है, किन्तु 'साकेत-सन्त' और 'ऊर्म्मिला' को किसी आधार पर भी महाकाव्य स्वीकार करने के लिए महाकाव्य के स्तर और कसौटी को बहुत नीचे उतारना होगा। 'जयभारत' प्रबन्ध-रचना का गौरव है, किन्तु महाकाव्य नही। उसका शिल्प-विधान उसे बहुत-कुछ लघु पुराण के निकट ला देता है।

३. सर्वथा नवीन प्रयोग

विवेच्य युग की प्रबन्ध कृतियों मे तृतीय और विशेष महत्त्वपूर्ण वर्ग उन कतिपय रचनाओ का है जिनमे अपने पूर्ववर्ती महाकाव्यो को सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनो ही दृष्टियो से आदर्श नही माना गया और जिनके रूप-विधान मे परस्पर भी वैषम्य अधिक और साम्य बहुत कम है। इस दृष्टि से इस वर्ग की प्रत्येक रचना का अध्ययन और विवेचन उसकी निजी विशेषताओ को दृष्टि मे रखते हुए पृथक् रूप से करना उचित होगा। इनमें शिल्प-सम्बन्धी बहुत कम विशेषताएँ ऐसी हैं, जो समान रूप से एकाधिक प्रबन्ध में प्राप्त होती हैं। एकाध अपवाद के

अतिरिक्त सभी ग्रन्थो के रचना-विधान मे कृतिकार का अपना मौलिक दृष्टिकोण है, स्वनिर्मित आकार-प्रकार है और जहाँ अन्य साहित्य से कला प्रभावित है, वहाँ भी प्रभाव-ग्रहण और प्रयोग एक विशेष निजीपन से किया गया है । एक विशेषता जो इन रचनाओ की सामान्य विशेषता स्वीकार की जा सकती है, वह है इनकी पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्य मे काव्य-रूप-सम्बन्धी नवीनता और मौलिकता । इनका यह वैषम्य ही वह साम्य है जिसके आधार पर इनका वर्गीकरण एक सामान्य वर्ग के अन्तर्गत इनकी नूतन, रूढिमुक्त कला को दृष्टि मे रखते हुए किया गया है। कालक्रमानुसार इस वर्ग की रचनाएँ निम्नलिखित है—

१. कामायनी—प्रसाद ।
२. विक्रमादित्य—गुरुभक्तसिह ।
३. मेधावी—डा० रागेय राघव ।
४ तप्तगृह—प्रभात ।
५. ऋतवरा—प्रभात ।

इन सभी प्रबन्धो मे रूप-विधान की दृष्टि से नया प्रयोग किया गया है, किन्तु शिल्प-सम्बन्धी यह नवीनता इनमे परस्पर समान नही है। 'ऋतवरा' का समग्र रूप अवश्य ही 'कामायनी' की कला से प्रभावित हुआ प्रतीत होता है। 'कामायनी' पढने के उपरान्त इस रचना का पूर्वार्द्ध विशेषकर 'कामायनी' का छायाभास-सा प्रतीत होता है। 'विक्रमादित्य' और 'मेधावी' अपने ढग की स्वतन्त्र रचनाएँ है। उनके शिल्प पर पाश्चात्य प्रभाव ढूँढने का प्रयत्न किया गया है, जो कुछ सीमा तक ठीक ही है, किन्तु इन रचनाओ मे एक-दूसरे का पारस्परिक अनुकरण नही है और न ही इनमे रूप-विधान सम्बन्धी विशेषताएँ समान है, केवल इन सबकी कला शास्त्र-विहित कला नही। 'मेधावी' के शिल्प मे परम्परागत लक्षणो की उपेक्षा अपने चरम पर है, ढूँढने से भी शास्त्रीय महाकाव्य का कोई लक्षण इस रचना में कदाचित् न मिले। दूसरी ओर 'कामायनी' के कवि ने यद्यपि इन बन्धनो के प्रति सायास निष्ठा व्यक्त नही की, किन्तु उन्होने पूर्व-निश्चित लक्षणो का प्रयोग बाधक-रूप मे न करके साधक-रूप मे किया है। उन्होने जहाँ प्रयत्नपूर्वक लक्षणो मे बंधे रहने की ओर प्रवृत्ति नही दिखाई, वहाँ इनकी अवमानना भी सँभलकर नही की है। प्रतीत होता है इस दिशा मे किसी प्रकार का विधि-निषेध कवि के सामने नहीं रहा। उनके विषय और मनोवृत्ति के अनुकूल जो कुछ पड़ा वह उन्होने अनायास अपना लिया, और शेष का त्याग कर दिया। ऐसा करने से पूर्व कदाचित् लक्षणो की सूची का परीक्षण करने की आवश्यकता भी उन्हे न रही होगी। इसीलिए 'कामायनी' मे महाकाव्य के निर्दिष्ट लक्षणो मे से बहुत-से नही मिलने पर भी अधिकाश महत्त्वपूर्ण लक्षण परिपालित मिल जाते है। किन्तु ऐसा करने के लिए कवि को कोई प्रयत्न नही करना पड़ा, योजना नही बनानी पडी, यह 'कामायनी' की कला से, और प्रसादजी की साहित्यिक मान्यताओ से स्पष्ट है। सामान्यतः उनकी कृतियों में हर दृष्टि से प्राचीन और अभिजात्य कला और सस्कारो के प्रति आस्था व्यक्त होती है, मोह नहीं। कुछ ऐसा ही दृष्टिकोण 'कामायनी' के रूप-विधान के सम्बन्ध मे भी प्रतीत होता है।

'विक्रमादित्य' के कवि ने 'मेधावी' और 'कामायनी' के बीच मध्यवर्ती मार्ग अपनाया है। 'विक्रमादित्य' का कवि रूढि-विरोध के लिए कटिबद्ध नही है, किन्तु परम्परागत शिल्प-

विधान के लिए उसके हृदय मे कोई मोह भी नही दिखाई पडता। 'विक्रमादित्य' की कला मे प्राचीन मान्यताओ (शिल्प-सम्बन्धी) मे क्रान्तिकारी परिवर्तन नही मिलता किन्तु परम्परागत विशेषताओ मे से अधिकाश इस काव्य मे अप्राप्य है। प्रतीत होता है कि कवि सिद्धान्तत. रूढि-विरोधी नही किन्तु व्यवहार मे लीक पर चलने की विशेष अनिवार्यता भी उसने नही समझी है। कवि 'प्रभात' की दूसरी रचना 'तप्तगृह' का रूप-विधान भी प्राचीन और नवीन के सयोग से हुआ है, किन्तु 'विक्रमादित्य' और 'ऋतवरा' से पर्याप्त मात्रा मे भिन्न ढग से। महाकाव्य के कुछ गौण एव ऊपरी लक्षण उसमे शास्त्रीय ढग के मिल जाते है किन्तु इस काव्य की मुख्य और अधिकाश विशेषताएँ नवीन चेतना-प्रसूत है। अनेक नवीनताओ के होते हुए भी इस कृति को विवादि रूप से महाकाव्य नही ठहराया जा सकता, क्योकि उसके रूप-निर्माण मे उन समस्त प्रधान विशेषताओ की रक्षा नही हो सकी जो किसी रचना को महाकाव्य के गौरव से अलकृत करती है। कारण—इस काव्य के विषय की सीमाकला की परिसीमा बन गई है। इन रचनाओ के काव्य-रूप का विधिवत् विवेचन करने से उक्त धारणाएँ स्पष्ट हो सकेंगी।

कथानक (स्वरूप और सघटन)

इन रचनाओ के कथानक भारतीय काव्य-शास्त्रानुमोदित—अर्थात् इतिहास शब्द के व्यापक अर्थ मे ऐतिहासिक है। अधिक निश्चित शब्दावली मे—इन कथानको के स्रोत इतिहास और पुराण रहे है। 'कामायनी' और 'ऋतवरा' के कथानक-सूत्र पुराणो मे बिखरे है, जिन्हे दोनो कवियों ने अपनी-अपनी आवश्यकता, उद्देश्य और रुचि के अनुकूल कल्पना और विवेक के डोरो से बाँधा है। 'विक्रमादित्य' का कथानक विशेष प्रख्यात नही, किन्तु ऐतिहासिक है। 'तप्त-गृह' का सम्बन्ध इतिहास के उस मार्मिक प्रसग से है जो प्रसादजी के नाटक 'अजातशत्रु' का प्रेरक रहा है। इस दिशा मे उलझन केवल 'मेधावी' के चिन्तनशील कवि के सामने प्रस्तुत हुई है। अपने काव्य की तथाकथित कथा के मूल का परिचय देते हुए प्राक्कथन मे उन्होने कहा—"दर्शन, भूगोल, इतिहास, काव्य, समाजशास्त्र आदि सबका इसमे सम्मिश्रण है, अत इसकी भूमि बहुत विस्तीर्ण है।"[1] किन्तु इस विस्तीर्ण भूमि को समाहित करने के प्रयास मे कथा का स्वरूप बहुत उलझ गया है। स्पष्ट रूप से 'मेधावी' की कथा, व्यवस्थित और इतिहासबद्ध नही है। उसमे अन्य शास्त्रो का आधार भी एकनिष्ठ रूप मे ग्रहण नही किया गया, अत. उसमे सब-कुछ होते हुए भी कथा के नाम पर कुछ नही है। प्रबन्ध काव्य का अन्य काव्य-रूपो से व्यावर्तक धर्म—उसके विभिन्न प्रसगो और घटनाओ की पारस्परिक एकसूत्रता, और किसी निश्चित अन्त या लक्ष्य की ओर क्रमबद्ध, व्यवस्थित और समुचित विकास है। यह एकसूत्रता आधुनिक-काल के प्रबन्धों मे केवल कथा या आख्यान की न होकर कही-कही विचार-सम्बन्धी भी होती है। 'मेधावी' के समस्त कलेवर मे घटनाएँ नही है। लेखक के अपने शब्दो मे उसके पात्र भी अशरीरी है, जिनका कोई वस्तुरूप नही—"इस काव्य के नायक-नायिका—इतिहास और गति है, और मेधावी के द्वारा प्रगट हुए है।"[2] दूसरे शब्दो मे मेधावी एक कल्पित व्यक्तित्व या बुद्धि का

१. मेधावी—डा० रांगेय राघव, प्रथम सस्करण, प्राक्कथन
२. वही

मानवीकृत रूप है जिसके द्वारा ससार के इतिहास मे घटित घटनाएँ, उनकी क्रमिक गति, कुछ भूगोल और कुछ खगोल मे स्थित नित्य गतिमान तत्त्वो का भावपरक वर्णन, सृष्टि के क्रम-विकास की कथा के कुछ धुँधले सकेत, और इन सबसे प्रतिध्वनित होने वाले कुछ अत्यन्त अस्पष्ट-से निष्कर्ष—यही इस काव्य की कथा है। यदि कुछ शब्दो मे 'मेधावी' की कथा का साराश प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाय, तो यह कार्य सर्वथा असम्भव नही तो दुष्कर अवश्य है। एक बार पढने के उपरान्त 'मेधावी' की विषय-सामग्री को स्मृति मे भी स्पष्टतया धारण नही किया जा सकता। साराश मे, 'मेधावी' का कथानक यद्यपि लेखक के अनुसार अनेक शास्त्रो की विस्तीर्ण भूमि से अपनाया गया है, किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो यह सामग्री काव्य का प्रधान विषय नही है। 'मेधावी' वस्तुत विचार-प्रधान काव्य है जिसमे घटनाएं घटित नही होती, उनकी प्रस्तुति न प्रत्यक्ष होती है, न विगत स्मृति के रूप मे। वे कवि के द्वारा व्यक्त सिद्धान्तो को पुष्ट व उसकी चिन्ताधारा को उद्दीप्त करती है। काव्य का स्वरूप न आख्यानात्मक है, न घटना-प्रधान, और न चरित्र-प्रधान; उसमे प्रमुखता विचारो की है, और काव्य के माध्यम से सिद्धान्तों का परिपोषण कवि का लक्ष्य है।

'मेधावी' के अतिरिक्त विक्रमादित्य' को छोडकर शेष तीनो कृतियो मे इतिहास और पुराण साहित्य से उपलब्ध कथा का नियोजन और प्रयोग कवियो ने अपने ढग से किया है। कथा-निर्माण की विधि यद्यपि अपनी-अपनी है, किन्तु इस नवीनता को इसके मूल मे क्रियाशील दो मुख्य प्रवृत्तियो के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है। ये प्रवृत्तियाँ इन कलाकारो को युग-चेतना से प्राप्त हुई। आधुनिक युग मे समय की प्रगति के साथ जीवन मे स्थूल वस्तु-तथ्य के अतिरिक्त उसके प्रेरक सूक्ष्म भाव-सत्य के अभिज्ञान और उद्घाटन की कामना मानव मे बल-वती होती गई, परिणामत कला के क्षेत्र मे भी शरीरी, मूर्त और बाह्य-सौन्दर्य व जीवन के साथ अशरीरी, अमूर्त और आन्तरिक भाव-जगत् से अधिकाधिक विषय अपनाए जाने लगे। कम से कम घटनाओ के आन्तरिक भावात्मक रूप से असम्पृक्त केवल बाह्य घटनात्मक स्वरूप के इति-वृत्त-कथन या समाख्यान की पद्धति प्रबन्धों मे भी पूर्ववर्ती साहित्य की भाँति नही रही। इति-हास का तथ्य देश और काल से आबद्ध होता है। उसकी घटनाओ से प्रतिध्वनित होने वाले जीवनगत मूल्यो की अपनी सामयिक महत्ता होती है। इन सामयिक मान्यताओ का परित्याग कर उनके मूल मे से दार्शनिक और वैज्ञानिक आधार पर शाश्वत जीवन-मूल्यो को खोज निकालने, और उनकी काव्यमय व्याख्या और स्थापना करने का प्रयत्न इन कवियो ने किया है। इस विषय मे उनका निश्चित मत था—

"आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते है। तब भी उसके तिथि-क्रम मात्र से सन्तुष्ट न होकर, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं। उनके मूल मे क्या रहस्य है ? आत्मा की अनुभूति ! हाँ, उसी भाव के रूप ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बनकर प्रत्यक्ष होती है। फिर वे सत्य घटनाए स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव मे परिणत हो जाती है। किन्तु सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरतन सत्य के रूप मे प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों की और पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति होती

रहती है।"[1]

इस प्रकार मूर्त के साथ अमूर्त की महत्त्व-प्रतिष्ठा, और इतिहास-पुराण के सामयिक स्थूल वस्तु-तथ्य के मूल मे अन्तर्निहित शाश्वत, सूक्ष्म भाव-सत्य को खोज, उसके आधार पर चिरतन जीवन-मूल्यो की स्थापना—इन्ही दो प्रवृत्तियो ने इन काव्यो की प्रेरणा का निर्माण किया। अत मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण शास्त्रो का सहारा आख्यान काव्यो मे भी लिया जाने लगा। यह प्रयोग इन काव्यो मे दो रूपो मे हुआ है। सम्पूर्ण कथा के द्विअर्थक अर्थात् रूपकात्मक रूप-विधान के रूप मे, तथा घटनाओ के अभिकर्ता या भोक्ता पात्रो की मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओ के प्रत्यकन या उद्‌घाटन के रूप मे। पहली पद्धति के सफल निर्वाह के लिए विशेष नवोन्मेषिनी प्रतिभा की अपेक्षा है, अत इस कौशल का अवलम्बन प्रसाद जैसे मेधावी कलाकार ने लिया। दूसरे मार्ग का ग्रहण 'प्रभात' ने 'तप्तगृह' मे किया। 'ऋतवरा' पर 'कामायनी' का प्रभाव पडा, अत. उसमे 'कामायनी' जितने बडे पैमाने पर सम्पूर्ण काव्य मे तो नही, सर्ग-विशेष मे (सातवे) लेखक ने रूपक-योजना का प्रयत्न किया है। किन्तु कवि इस प्रयास मे बहुत दूर तक नही जा सका। 'कामायनी' की सम्पूर्ण कथा द्विअर्थक कथा है। उसकी ऐतिहासिकता और उस रूप की महत्ता पर भूमिका मे पर्याप्त बल देने पर भी प्रसाद ने उसमे केवल स्थूल घटनाओ और पात्रो की नही, सूक्ष्म मनोवृत्तियो और भावनाओ के विकास-क्रम की कथा को भी लिपिबद्ध किया है। उनके अपने शब्दो मे—

"यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बडा ही भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने मे समर्थ हो सकता है।"

"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास मे रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, साकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करे तो मुझे कोई आपत्ति नही। मनु अर्थात् मन के दोनो पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमश. श्रद्धा और इडा से भी सरलता से लग जाता है।" आदि।[2]

उपर्युक्त कथनानुसार कामायनी की कथा मे आद्योपान्त सभी प्रसगो के स्थूल और सूक्ष्म दो अर्थ स्पष्ट है। एक के निर्वाह के लिए कवि को दूसरे के साथ बलात्कार कही नही करना पडा। अत्यन्त सहज क्रम से पौराणिक कथा पर आत्मा की आनन्दानुभूति की कथा आरोपित है। प्रसाद ने जहाँ कल्पना से कथा की कड़ियाँ मिलाई है वहाँ मनोविज्ञान के सहारे भूत और वर्तमान मे भी सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। 'कामायनी' की कथा के कलेवर मे अनेकानेक प्रस्तुत प्रश्न और उनका दार्शनिक ढग से समाधान अन्तर्भूत है, और सब कुछ इस प्रकार, जैसे कथा का सहज अग हो। यही उनकी सफलता है।

'ऋतवरा' के कवि के मन मे भी कुछ इसी प्रकार का मोह रहा है। किन्तु इस कृति की प्रेरणा और परिणति मे समय के अन्तराल के परिणामस्वरूप उनकी चिन्ताधारा मे युग-परि-

---

१. कामायनी—जयशंकर प्रसाद, आमुख, पृष्ठ ४

२. कामायनी—जयशकर प्रसाद, आमुख, पृष्ठ ४, ७

स्थितियों से प्रभावित होकर जो परिवर्तन आते रहे, उनसे काव्य की समग्र कथा में प्राचीन और नवीन के बीच एक भद्दा जोड आ गया है। 'ऋतंवरा' की सम्पूर्ण कथा द्विअर्थक नही है। काव्य का आधे से अधिक भाग नितान्त आख्यानात्मक है। इस अंश का सूत्रपात 'सर्ग' नाम से कवि १९३९ में कर चुका था। उसके उपरान्त विविध कारणों से यह अपूर्ण अश १९५५ से पहले पूर्ण नही हो सका—

"एक दिन प्रात काल जब यह क्रिया चल रही थी अकस्मात् मैंने अनुभव किया कि 'सर्ग' की कल्पना को वर्तमान और भविष्य से मिला सकता हूँ। पुस्तक समाप्त करने के बाद मैंने अनुभव किया कि इसकी कल्पना-भूमि अत्यन्त विस्तृत एव व्यापक हो गई है। यह भी अनुभव किया कि भेद-भरे वैदिक एव पौराणिक शब्दो के अभेद्य जाल मे छिपा हुआ अतीत न केवल वर्तमान मे साकार हो उठा है अपितु भविष्य भी उसके साथ उसी परम्परा मे खडा है और मानवता की एक अविच्छिन्न परम्परा स्पष्ट दीख पडती है।"[1]

इस काव्य मे निश्चय ही प्राचीन, वर्तमान और भविष्य-सम्बन्धी कवि की धारणाएँ व्यक्त हुई है; किन्तु एक युग का दूसरे से किन्ही शाश्वत जीवन-मूल्यो या सत्यो के आधार पर सम्बन्ध स्थापित नही होता, बल्कि प्राचीन का आख्यान, वर्तमान की समस्याएँ और भविष्य का सम्भावित समाधान बरबस जोड दिया गया है, अतः पूर्वाश कथात्मक, मध्यभाग समस्यात्मक और अन्त आदर्शमय है। इस प्रकार पहले छः सर्गों मे कवि का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत इतिवृत्तात्मक और वस्तुपरक है। सातवाँ सर्ग उनके अनसार रूपक है—जिसमे मानव-जीवन को कला के सयोग से कर्ममय बनाने का सन्देश निहित है, और शेष सर्गों में तथ्य का स्थान मानव-जीवन की अनेक आन्तरिक और तद्जनित बाह्य समस्याओ के वर्णन ने ले लिया है। इस अश मे कथा का विषय मूर्त की अपेक्षा अमूर्त, बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अधिक हो गया है।

'तप्तगृह' मे भी केवल कथा कहना, कवि का लक्ष्य नही है। उन्होने वस्तुगत घटनाओ की प्रेरक मानसिक और हार्दिक घटनाओ को व्यक्त करने का प्रयत्न अधिक किया है—"प्रत्येक घटना की पृष्ठभूमि मे मनुष्य का मस्तिष्क रहता है और प्रत्येक ऐसे मस्तिष्क का सम्बन्ध हृदय से होता है। मस्तिष्क और हृदय का अविनाभाव सम्बन्ध है। घटनाओ पर दोनो का स्वल्पाधिक प्रभाव पड़ता है। इतिहासकारो ने बिम्बसार और अजातशत्रु की कथा के निर्माण मे कल्पना से भी बहुत काम लिया है। अनेकानेक प्रश्नो का उत्तर 'सम्भव है, ऐसा हुआ हो' कहकर दे दिया है। मैंने कल्पना के साथ-साथ मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण का सहारा लिया है।"[2] इस काव्य मे घटनाएँ और पात्र इने-गिने है। पात्रो की मानसिक उथल-पुथल का साक्षात्कार ही कवि ने अधिक किया है। बाह्य जीवन मे किसी प्रकार के सघर्ष का विधान भी नही किया गया, जो कुछ द्वद्व प्रस्तुत हुआ है वह पात्रो की अपनी मनोवृत्तियो को लेकर ही अधिक है। जीवन के बाह्य पक्ष की दृष्टि से इस काव्य का विस्तार बहुत सीमित है। इस मार्मिक और महत्त्वपूर्ण राजनैतिक घटना का सशक्त और जीवन्त बाह्य न अपनाकर करुण और द्रवणशील अन्तःरूप ही अपनाया गया है।

---

१. ऋतंवरा—प्रभात, भूमिका, पृष्ठ (ख)

२. तप्तगृह—प्रभात, निवेदन, पृष्ठ १

'विक्रमादित्य' इस वर्ग का वह एकमात्र अपवाद है जिसमे कथानक का ग्रहण और निर्वाह पुराने ढग पर हुआ है। 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटक से गृहीत कथानक की ऐतिहासिकता भूमिका में सिद्ध करने का प्रयत्न करते हुए कवि ने उसके तथ्य रूप को ही अपनाया है। उसमे जो कुछ नवीनता है वह उसकी शैली और बाह्याकार-सम्बन्धी है, कथानक के स्रोत, स्वरूप और प्रयोग मे कोई उल्लेखनीय नवीन सरणी लेखक ने नही अपनायी। काव्य के उत्तराश मे कथा गौण हो गई और असम्बद्ध प्रसगो का विस्तार किया गया है—किन्तु यह विस्तार उसी ढग का है जिस ढग से 'रामचरित-चिन्तामणि', 'पार्वती', 'रामचन्द्रोदय' आदि के कवियो ने अपने ग्रन्थो मे किया था। उसमें न किसी वर्तमान समस्या का दिग्दर्शन है, न किसी मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक सत्य का उद्‌घाटन, न किसी अन्य तर्कसम्मत कारण से कवि ने यह विस्तार किया है।

अन्य तत्त्वो की भाँति कथा-सघटना की विधि मे भी शास्त्रीय नियमों की उपेक्षा इन सभी रचनाओं मे लक्षित की जा सकती है। कथा के कार्य-व्यापार मे विभिन्न कार्यावस्थाओ की योजना के द्वारा नाटकीयता की सिद्धि आचार्यों का लक्ष्य था। अत प्रश्न यह है कि इन कृतिकारो ने इस साध्य की सिद्धि निर्दिष्ट साधनो की अवमानना करने पर भी भिन्न मार्ग से किस सीमा तक की है?

'विक्रमादित्य' के अतिरिक्त एक विशेषता इन सब कृतियो मे समान रूप से विद्यमान है। इनकी वस्तु-सघटना मे आधिकारिक कथा के साथ अनेक उपाख्यानो या प्रासगिक वृत्तो की वह जटिल योजना नही मिलती जिसका विधान पूर्व और पश्चिम दोनो परम्पराओ मे अनिवार्य माना गया है। मूल कथा के विकास-क्रम मे जो प्रेरक या अवरोधक प्रसग प्रस्तुत हुए है—वे व्यक्तियो की अपनी अन्तर्वृत्ति से सम्बन्धित है। बाह्य या सक्रिय जगत् से उपपात्रो ने उपस्थित होकर कथा की प्रगति और सघर्ष मे योग बहुत कम स्थलो पर दिया है। भारतीय काव्य-शास्त्र मे यह विधान पाश्चात्य परम्परा की अपेक्षा अधिक सश्लिष्ट है, अत मूल और प्रासगिक वृत्तो की परस्पर जटिल योजना के अभाव मे इन रचनाओ का वस्तु-सघटन भारतीय की अपेक्षा पाश्चात्य प्रणाली के अधिक निकट है। नाटकीय-विधान की दृष्टि से इन रचनाओ के तीन रूप स्थिर किये जा सकते है—

१. वे काव्य जिनकी वस्तु-सघटना पूर्णरूपेण शास्त्रीय नियमो के अनुसार नही हुई किन्तु नाटकीयता का गुण जिनके वस्तु-विधान मे सम्यक् रूप से रक्षित है—यथा 'कामायनी'।

२ वे काव्य जिनकी रचना मे शास्त्रीय विधि का पालन करने जाने पर भी कथावस्तु का सम्यक् विकास अविच्छिन्न रूप से नही हुआ। कथा के विभिन्न अगों के असतुलित नियोजन से जिनकी वास्तुकला खण्डित है—यथा 'विक्रमादित्य'।

३. वे रचनाएँ जिनकी रचना-विधि अपनी है, किन्तु शास्त्रीय रीति के त्याग के कारण नही, विविध अन्य कारणो से जिनके कथानको मे महाकाव्योचित सम्बद्धता, नाटकीय विकास, जीवन्तता और सशक्त प्रवाह उत्पन्न नही हो सका। अनुपात-भेद से यह दोष 'मेधावी', 'तप्तगृह' और 'ऋतवरा', तीनों कृतियो मे आ गया है।

उपर्युक्त सभी रचनाओं का वस्तु-विधान परस्पर भिन्न है, अत सम्यक् विवेचन के लिए प्रत्येक कृति को पृथक् ग्रहण करना उचित होगा।

कामायनी—उल्लेख किया जा चुका है कि 'कामायनी' का कथानक प्रख्यात है, किन्तु पुराणों मे बिखरी कथा की विभिन्न कडियो मे जोड कवि की अपनी कल्पना के है। कल्पना का प्रयोग करते हुए भी प्रसाद ने आधुनिक युग की लोकप्रिय मनोवैज्ञानिक शैली का अवलम्बन लिया है, अत. उन्होने काल्पनिक घटनाओ की सृष्टि करके कथा को सुसगठित रूप प्रदान नही किया। उन्होने स्थूल घटना-क्रम की अपेक्षा मानसिक वृत्तियों का अधिक ध्यान रखते हुए भी कथासूत्र को क्षीण नही होने दिया और उलझे और अस्पष्ट कथासूत्रो की ऐतिहासिकता बनाए रखी है।

मनोवैज्ञानिक काव्यो के कथानक में घटना-क्रम की जटिलना का अवकाश बहुत कम होता है। 'कामायनी' के कथानक मे अवान्तर प्रसगो के योग से न जटिलता उत्पन्न की गई है और न मूल कथा मे अधिक ऊंचे-नीचे मोड आए है। चिराचरित कथानक-रूढियो के सहारे कथानक को उलझाया और सुलझाया भी नही गया। उसमे एक आधिकारिक और एक ही प्रासगिक कथा है। दोनो ही अत्यन्त स्पष्ट और सरल है। घटनाओ का रगस्थल बहुत विस्तृत न हो जाए इसलिए प्रलय और उससे पूर्व मनु के जीवन की सभी घटनाएँ चिन्ता के प्रसग में पूर्वस्मृति के रूप मे कहला दी गई है। इस कथारम्भ मे बहुत कुछ आधुनिक कहानी और उपन्यास के उस टैकनीक को अपनाया गया है, जहाँ कहानी का आरम्भ, मध्य या अन्त भाग से करके, पूर्व की घटनाएँ पात्र-विशेष की पूर्व स्मृति के रूप मे या दो पात्रो के बीच वार्तालाप के रूप मे कहला दी जाती है। 'कामायनी' का आरम्भ उसमे घटित होने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण घटना के बाद से होता है। कथा को यथासम्भव विस्तार से बचाने के लिए यह मार्ग अपनाया गया है। सक्षेपण की यह प्रवृत्ति सारी कथा मे स्पष्ट है। किलात-आकुलि का अधिक परिचय, इडा का पूर्व-इतिहास, सारस्वत प्रदेश से उसका सम्बन्ध, देवताओ का इस समग्र प्रसग से सम्बन्ध आदि, कुछ ऐसे प्रसग है जिनका विस्तार करने से अवान्तर कथाओ की जटिलता तो बढ जाती किन्तु कथानक मे एक प्रकार की स्पष्टता और स्फीतता का समावेश भी हो जाता। इस विस्तार की बचत से पात्रो और घटनाओ के परस्पर सम्बन्धो की उचित व्याख्या नही हो सकी, किन्तु इस विस्तार के अभाव मे 'कामायनी' का कथा-सूत्र टूटा नही है, न ही उसमे कही बरबस लगाए हुए या भद्दे जोड दिखाई पडते है—आद्योपान्त सहज तारतम्य और गतिशीलता बनी रही है।

अरस्तू ने कथानक के लिए सुनिश्चित आदि, मध्य, अवसान के विधान की जो अनिवार्यता बतायी थी वह भी 'कामायनी' मे स्पष्ट है। श्रद्धा से मनु के मिलन से पूर्व का भाग आदि, श्रद्धा-मिलन से मनु के सारस्वत-पलायन तक की घटनाएँ मध्य, और नटेश के ताण्डव से अन्त तक की घटनाएँ अन्त भाग के अन्तर्गत आती है। इन सब भागो मे परस्पर सुनिश्चित कार्य-कारण-शृंखला वर्तमान है। 'कामायनी' का एक भी प्रसग ऐसा नही है जिसकी अपनी उपयोगिता न हो। किसी न किसी रूप मे हर प्रसग ने कथा-विकास मे योग दिया है। अवान्तर कथाओ और वर्णन-विस्तार के त्याग से यद्यपि कथा में जटिलता और सश्लिष्टता तो नही आई है, किन्तु इस प्रकार की कथा के लिए जिसमें एक वस्तु-प्रधान मूर्त कथा के मूल में दो भाव-प्रधान अमूर्त एव अप्रस्तुत कथाओं की धाराएँ अन्त.सलिला के समान प्रवहमान हो—यह स्पष्टता शुभ ही हुई है। इससे एक प्रकार की सुसंगठित कार्यान्विति और स्पष्ट प्रबन्ध-शृंखला का विधान काव्य

में सम्भव हो सका है।

'कामायनी' की वस्तु-सघटना जिस रूप मे हुई है, उसका आरम्भ और मध्य पाश्चात्य चिन्ताधारा के अनुकूल सघन सघर्ष और असफलताओ की गाथा है, किन्तु अन्त सहसा भारतीय आनन्दवादी फलागम से युक्त हो गया है। इसी कारण उसमे पाँचो कार्यावस्थाएँ सम्यक् रूप मे प्राप्त नहीं होती। कथारम्भ से श्रद्धा-मिलन और उसके द्वारा नवीन प्रेरणा देने तक आरम्भ—चिरन्तन सत्य और आनन्द के प्रति जिज्ञासा और उसकी खोज का प्रयत्न यही आरम्भ हो जाता है किन्तु मनु बारम्बार स्वनिर्मित बाधाओ के द्वारा असफलता का सामना करते रहते है। उनके निरन्तर विपरीत मार्ग का अवलम्बन करने के कारण प्राप्त्याशा जैसी कोई स्थिति काव्य में नहीं बन पडी है। उनके प्रयत्नो से पाठक को कही उनके द्वारा फल-प्राप्ति की आशा नही होती। यह अनिश्चय की अवस्था 'दर्शन' सर्ग तक चलती है, और वहीं सहसा मनु के हृदय मे शिव-ताडव नृत्य के साक्षात्कार के साथ उनके आश्रय मे जाने की कामना बलवती होती है। इसी पट-परिवर्तन के साथ फल-प्राप्ति का निश्चय अर्थात् नियताप्ति नामक कार्यावस्था, और 'आनन्द' सर्ग मे चरम आनन्द की प्राप्ति को फलागम स्वीकार किया जा सकता है।

'कामायनी' का वस्तु-विधान अन्त को छोडकर अपनी साधनावस्था मे पाश्चात्य ढग की कार्यावस्थाओ के अधिक निकट है। कथा के आरम्भ मे प्रलय की घटना के परिणामस्वरूप मनु के हृदय मे उत्पन्न होने वाली घनीभूत वेदना, निराशा और विकलता, व्याख्या के अन्तर्गत आएगी। मनु के हृदय मे उदित होने वाली आशा की किरण, और श्रद्धा से मिलन वह प्रथम घटना है जिससे उनके हृदय मे निराशा की एकरसता मे आशा के सयोग से सघर्ष का सूत्रपात हो जाता है। इसके उपरान्त यह सघर्ष अनेक वस्तुगत और मानसिक परिस्थितियो और प्रसगो के बीच क्रमशः घनत्व-प्राप्ति के उपरान्त सारस्वत प्रदेश मे 'सघर्ष' सर्ग मे चरम को प्राप्त होता है। इस स्थल पर उनके जीवन मे आन्तरिक और बाह्य दोनो प्रकार के विरोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाते है। इससे पूर्व का समस्त अश कार्य-विकास नामक अवस्था के अन्तर्गत आता है। मनु की पराजय और मूर्छा से उनके पतन की कहानी और निगति नामक कार्यावस्था आरम्भ हो जाती है, और पाठक उसी के अनुकूल भयकर परिणाम की आशा करता है, किन्तु सहसा 'दर्शन' सर्ग मे श्रद्धा की प्रस्तुति से परिस्थिति बदल जाती है और समस्त कार्यव्यापार भिन्न परिणाम की ओर मुड जाता है। इस प्रकार पश्चिम की दुखान्त और सघर्षमूलक पद्धति से संयोजित काव्य का पर्यवसान फल-प्राप्ति और आनन्द-प्राप्ति की भारतीय पद्धति के अनुकूल हुआ है। अतएव 'कामायनी' के शिल्प मे भारतीय और पाश्चात्य कला का अद्भुत मिश्रण है।

प्रस्तुत प्रसग मे यह सकेत करना अनुचित न होगा कि नाटक सन्धियो की स्पष्ट योजना 'कामायनी' के कथानक मे नही हुई है। मुख और निर्वहण सन्धि के अतिरिक्त शेष का निर्वाह उसमे नही किया गया। कारण स्पष्ट है—सन्धियो, प्रकृतियो और कार्यावस्थाओ की सम्यक् योजना सापेक्ष व एक-दूसरे की पूर्णता पर अवलम्बित है। इस अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के कारण पताका, प्रकरी और प्राप्त्याशा आदि के अभाव मे इस काव्य मे सन्धियो की खोज करना निरर्थक होगा।

विक्रमादित्य—'कामायनी' के बिलकुल विपरीत 'विक्रमादित्य' के कथानक का धरातल

वस्तुजगत् है। 'विक्रमादित्य' की कथा घटनाप्रधान है और इन घटनाओ का रूप स्थूल तथ्यपरक और उनकी रंगस्थली बहिर्जगत् है। कवि ने चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी की आधिकारिक कथा के साथ वीना, कुबेरनागा, कापालिक, भूधर आदि से सम्बन्धित अनेक उपाख्यानो की योजना की है। इस प्रकार पारिभाषिक शब्दावली मे पताका, प्रकरी आदि अर्थप्रकृतियाँ और कार्यव्यापार की दृष्टि से पचावस्थाएँ भी काव्य मे मिल जाएँगी, किन्तु यह समस्त प्रपच जुटाने पर भी सुगठित कथानक-योजना मे कवि सफल नही हो सका। कथानक-सघटन में इस असफलता के तीन कारण है। कथानक मे मार्मिक स्थलो की उपेक्षा या सक्षिप्ति, असम्बद्ध या अप्रासगिक वर्णनो मे विस्तार की प्रवृत्ति और काव्य की समग्र घटनाओ के वितरण में अनुपात का अभाव। वस्तु-सघटना की उक्त न्यूनताओ के कारण काव्य की प्रभावान्विति और कथा का अविच्छिन्न धारा-प्रवाह विकास बाधित है। काव्य के सम्पूर्ण कथानक का विश्लेषण करने पर उसमे भारतीय दृष्टिकोण से पचावस्थाएँ स्पष्ट रूप से मिल जायेगी। ध्रुवदेवी की प्रथम वार्त्ता मे ही स्वयवर के समय चन्द्रगुप्त के प्रति प्रणय के आरम्भ का सकेत और उससे प्रणय-याचना के साथ यत्न आरम्भ हो जाता है। चन्द्रगुप्त की अस्वीकृति तथा उसके उपरान्त इस यत्न के मार्ग मे अनेक बाधाएँ प्रस्तुत होती है। शकपति के वध और चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी के इसी समय मिलन से प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था आरम्भ हो जाती है, किन्त एक बार फिर विघ्न उपस्थित होता है। चन्द्रगुप्त के पलायन के कारण दोनो वियुक्त हो जाते है पर अस्थायी रूप से। कापालिक के यहाँ दोनो की पुन. भेट और ध्रुवदेवी द्वारा कापालिक-वध के साथ अन्तिम बाधा-शमन और सफलता का निश्चय हो जाता है। यही से नियताप्ति का आरम्भ और निर्वाह फलागम तक होता है। काम के अतिरिक्त काव्य के दूसरे उद्देश्य अर्थ—अर्थात् साम्राज्य-विस्तार और आर्य राज्य के उद्धार के लिए भी इसी समय चन्द्रगुप्त को प्रतिश्रुत कराकर उसकी सिद्धि निश्चित हो जाती है। ध्रुवदेवी और साम्राज्य की प्राप्ति रूपी फलागम के साथ ४४ भागो मे विभक्त कथा सहसा २९ वे भाग मे ही समाप्त हो जाती है। उसके उपरान्त १५ भागो की रचना वैभव-विलास और समृद्धि मे सम्बद्ध अत्यन्त गौण प्रसगो को लेकर की गई है। यह समस्त भाग काव्य-शरीर मे अनावश्यक रूप से बढाया गया है—जिससे न कथा मे किसी प्रकार की नाटकीयता व रोचकता उत्पन्न हुई है और न काव्य की रसमयता मे वृद्धि। यह सम्पूर्ण उत्तराश सर्वथा घटनाशून्य है। उसमे न जीवन्तता है न जिज्ञासा और अभिरुचि बनाए रखने की सामर्थ्य। फल-प्राप्ति के बाद का यह अश फल के उपभोग का वर्णन करने के काम मे लाया गया है—जो काव्य की समग्र प्रभावान्विति के लिए घातक है। ऐसा करके कवि ने पाठक की कल्पना के लिए कुछ नही छोड़ा। फल-प्राप्ति के बाद इस प्रकार के विस्तार का अवकाश भारतीय और पाश्चात्य किसी भी पद्धति मे—वस्तु-विधान मे नही दिया गया। अन्तिम भाग के अतिरिक्त भी 'विक्रमादित्य' के घटना-क्रम मे अविच्छिन्न धारा-प्रवाह नही मिलता। इसका कारण कथा के मार्मिक और जीवन्त स्थलो की उपेक्षा है। पात्रो के लम्बे-लम्बे सवादो या स्वगतो मे अनेक घटनाएँ सूच्य बना दी गई है। यह प्रवृत्ति काव्य के आरम्भ से ही मिलती है। पहले दो भागों मे ध्रुवदेवी और चन्द्रगुप्त की वार्ता मे नायिका की प्रणय-याचना की अस्वीकृति से चन्द्रगुप्त के देश से निकाले जाने की आगामी घटना का सकेत मिल जाता है। तीसरे भाग मे सहसा प्रवेशक के से ढग का एक भाग

जोड़ा गया है जिसमे प्रहरियों के द्वारा आगामी षड्यंत्र की रूपरेखा सूचित है। इसी प्रकार सातवे भाग मे क्षत्रप और भूधर के बीच वार्ता से रामगुप्त के विरुद्ध एक पूर्वयोजित भयकर षड्-यन्त्र सूचित है। घटनाओ के बीच ऐसे अनेक अन्तराय स्थान-स्थान पर मिलेगे। सम्पूर्ण कृति के पढने के बाद कुछ ऐसा प्रभाव पडता है जैसे इस कथा मे घटने वाली पृथक् घटनाओं को कही सम्वादों के, कहीं स्वगतों के और कही एकाकी पात्रों के सस्वर चिन्तन के जोड लगाकर अन्वित कर दिया गया है। उनके विकास-क्रम मे सगठित प्रभाव नही है। कहीं-कही स्थान और प्रसग का परिवर्तन इतना आकस्मिक हुआ है कि कथा-सूत्र झटके से एक बार ही टूट गया है। सोलहवे और सत्रहवे भाग के बीच मे इसी प्रकार का व्यवधान है।

डा० प्रतिपालसिह ने इसकी वस्तु-सघटना के विषय मे अपना मत व्यक्त करते हुए कहा—"जिस प्रणय की याचना प्रथम सर्ग में की गई है, उसकी पूर्ति अन्तिम सर्गों में दिखलाई पड़ती है। नाटच-सन्धियो पर पूर्ण ध्यान रक्खा गया है और उनका निर्वाह सुन्दर रीति से किया गया है।"[1] विद्वान् लेखक से हमारा मतभेद इसी कारण है कि जैसा उन्होने कहा काव्य के उद्देश्य की पूर्ति अन्त मे न होकर मध्य मे ही हो जाती है, और जिस काव्य के अन्तिम एक तिहाई भाग में घटना ही न हो, उसमे नाटच-सन्धियो का निर्वाह सुन्दर कैसे माना जा सकता है ? आधिकारिक और प्रासगिक कथाओ की जटिल योजना इस काव्य मे अवश्य मिलती है। वीना और वीरसेन की कथा पताका और कापालिक, कुबेरनागा, भूधर आदि के प्रसग प्रकरी माने जा सकते है। पाश्चात्य दृष्टिकोण से पचावस्थाओ मे से चौथी अर्थात् निगति इसमे नही मिलती। आरम्भिक वार्ता मे कार्य की व्याख्या और प्रथम सघर्षमय घटना चन्द्रगुप्त के देश-निष्कासन के रूप मे घटित होती है। यही से कार्यव्यापार प्रगति करता हुआ चन्द्रगुप्त के कापालिक द्वारा बन्दी बनाए जाने के स्थल पर अपने चरम सघर्ष को प्राप्त होता है, किन्तु तुरन्त ही ध्रुवदेवी के सयोगवश मिलन और कापालिक-वध की घटना से सफलता का निश्चय और बिना विशेष विलम्ब के प्राप्ति हो जाती है। चरम और अन्तिम परिणाम के बीच कार्यव्यापार मे उचित निगति नही है। दोनो लगभग एक ही समय घटित हो जाते है और फल के उपरान्त फलोपभोग का एक अतिरिक्त भाग काव्य में जुड जाता है। यदि इस कार्यव्यापार के स्वरूप को रेखाओ द्वारा स्पष्ट किया जाय तो भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि से कुछ इस प्रकार होगा—



स्पष्ट है कि कार्यव्यापार का विकास दृढता मे दोनो पद्धतियो मे से किसी एक के अनुरूप नही किया गया, फिर भी वह भारतीय शिल्प के अधिक निकट है।

१. बीसवी शताब्दी के महाकाव्य—डा० प्रतिपालसिह, पृ० २६३

मेधावी—के वस्तु-व्यापार मे किसी प्रकार की नाटकीयता की आशा हा व्यर्थ है। उसमे घटनाएँ नही, मेधावी के माध्यम से कवि का विचार व्यक्त हुआ है। कथानक को वस्तुरूप देने या घटनाप्रधान बनाने के लिए अमूर्त का मानवीकरण भी कवि ने नही किया और पात्रों के माध्यम से या घटनाओ से व्यजित होने वाले सिद्धान्तो के रूप मे विचार-प्रतिपादन की योजना भी उसकी नही रही है। दर्शन, भूगोल, इतिहास, काव्य, समाजशास्त्र आदि सब का इसमे सम्मिश्रण जिस दृष्टिकोण से किया गया है उसमे घटना-प्रस्तुति का भाव उतना नही, जितना विचार-पोषण के लिए उद्धृत करने का है। अत जिस क्षेत्र मे जो कथा-सामग्री कवि ने ली है उसका ठोस रूप समग्रता मे ग्रहण नही किया, केवल उल्लेख मात्र के लिए कुछ ऊपरी बाह्य बाते अपना ली गई है। इसके अतिरिक्त एक बार मे एक क्षेत्र से कवि ने विषय-सामग्री नही उठाई है। वह एक अनिश्चित भाव से दर्शन, भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र सभी के बीच मे भटकता रहा है। परिणामतः 'मेधावी' के विषय मे प्रबन्धयोजना-सम्बन्धी एक विशृखलता उत्पन्न हो गई है। स्थूल तथ्यपरक घटनाओं के अभाव मे विचार-सम्बन्धी एकसूत्रता भी हो सकती है, किन्तु अमूर्त विषय के अकन मे कथा-सगठन और व्यवस्था का कार्य दुष्कर है, अतः कवि का उत्तरदायित्व और भी गुरु हो जाता है। अशरीरी विचार-तत्त्वो को, विशेषकर जब कवि ने उन्हे प्रबन्ध-शृखला मे जोडने के लिए कल्पना मे कोई मूर्त रूप भी प्रदान नही किया हो, कथा-रूप मे नियोजित करना, और वह भी महाकाव्योचित गरिमा, विशदता और सुसम्बद्धता के साथ—अत्यन्त कठिन कार्य है। कथा के उपादानों का इतने विविध क्षेत्र से चयन, इस काव्य की सबसे बडी परिसीमा है। ऐसा करने से किसी प्रकार की जटिलता कथा मे उत्पन्न नही हो सकी, बल्कि उसमे अस्पष्टता व असम्बद्धता आ गई है। कथा की रेखाओ मे न समतल भूमि की सी सरलता और स्पष्टता है, और न पहाडी प्रदेश की सी ऊँचाई या उतार-चढाव, जिससे नाटकीयता या सघर्ष उत्पन्न हो सके। उसमे बजर भूमि का सा ऊबड-खाबडपना है।

यदि ध्यान से देखा जाय तो विचारो के कुहासे के नीचे एक क्षीण-सा कथा-सूत्र मिल जाएगा। समस्त भूगोल और खगोल के विभिन्न तत्त्वो मे कवि ने आरम्भ से परिवर्तन या गति को सृष्टि का मूल तत्त्व या शाश्वत व चिरतन सत्य माना है। सम्पूर्ण सृष्टि के महानृत्य के बाद पृथ्वी पर भूत का स्पन्दन। उस पर नाना रूपात्मक सृष्टि का उद्भव और विकास। मानव के ज्ञान की परिधि मे धीरे-धीरे विस्तार। दर्शन, सभ्यता, धर्म, राजनीति और सस्कृति की दृष्टि से ससार की अनेक जातियो का उत्थान-पतन। विश्व के इतिहास का (तथ्यपरक और सास्कृतिक) विहगावलोकन। सामन्तवाद और साम्राज्यवाद का प्रबल विद्रोह। सोने से मढी सभ्यता का विरोध। पूँजीवाद के प्रति अनास्था और अन्त मे मार्क्सवाद के प्रति आस्था। इन सब विडम्बनाओं का समाधान साम्यवादी जीवन-मूल्यो मे देखने का प्रयत्न। साम्यवाद के दीप के आलोक मे विश्व-जागरण और विश्व-कुटुम्बकम् की भावनाओ के प्रसार का स्वप्न—यह सक्षेप मे 'मेधावी' की विषय-वस्तु है, किन्तु काव्य मे ये कथा-सूत्र कुछ ऐसी बेतरतीबी से बिखरे है, कि एक दृष्टि मे न स्मृति मे धारण किये जा सकते है और न सरलता से ग्रहण।

काव्य-कला मे स्थापत्य, चित्र, सगीत और मूर्तिकला मे से स्थापत्य का प्रयोग प्रबन्ध में उसके विविध अगों के परस्पर सुचारु रूप मे सगठन और कलात्मक ढग से आकार-निर्माण के

रूप मे ही किया जाता है। स्थापत्य का आधार मूर्त उपादान होते है। जितना कृति के आकार मे विस्तार होगा, उतनी ही अवयवों की साकारता अनिवार्य होती जाएगी। इसीलिए प्रबन्ध को स्पष्ट सुगठित और सानुपात आकार प्रदान के हेतु अमूर्त के लिए प्रतीकों, मानवीकरण, अथवा मूर्त माध्यमो का प्रयोग किया जाता है। सम्पूर्ण प्रबन्ध मे कथा, घटना और पात्रों—सभी के अभाव मे केवल उद्दीपक वस्तुरूप प्रसगो, घटनाओ और प्रेष्य विचार के आधार पर सफल प्रबन्ध-रचना या कम से कम सफल वस्तु-सघटना सम्भव नही होती। यही 'मेधावी' के वस्तु-विन्यास के विषय मे सत्य है।

तप्तगृह—के वस्तु-विन्यास को भूमिका मे व्यक्त कवि की धारणा के आधार पर सरलता से समझा जा सकता है—"आरम्भ मे मैने पाँच सर्गो का एक छोटा-सा खण्डकाव्य लिखने का विचार किया था। कथानक का निर्माण हुआ तो पूरे अठारह सर्ग बन गए। परन्तु मैने इस पुस्तक को इतिहास की घटनाओ से बोझिल बनाना उचित नही समझा और बिम्बसार की कथा के सबसे मार्मिक अश को ही अपने प्रबन्ध का आधार बनाया।"[1]

कवि की इस स्वीकृति से दो बाते स्पष्ट है। रचना अपने प्रस्तुत रूप मे यद्यपि घटना-बोझिल नही, किन्तु कवि की दृष्टि मे खण्डकाव्य भी नही, उससे कुछ अधिक है तथा कवि ने रचनारम्भ खण्डकाव्य के लिए ही पर्याप्त विषय-सामग्री से किया था। 'तप्तगृह' के वर्तमान रूप मे न ५ सर्ग है न १८। वह ११ सर्गो की मध्यम आकारवाली रचना है परन्तु 'तप्तगृह' की घटना सामग्री खण्डकाव्य के लिए ही उपयुक्त है। घटनाओ के नाम पर इस काव्य मे दो ही घटनाएँ है—बिम्बसार का बन्दी होना और कारावास मे उनकी मृत्यु। तीसरी घटना—अजातशत्रु के यहाँ पुत्र-जन्म, पिता की मृत्यु के साथ ही घटती है और इन दोनो घटनाओ के संयुक्त प्रभाव से नायक के मन मे प्रतिक्रिया होती है, उस घटना का स्वतन्त्र महत्त्व नही है। वह पिता की मृत्यु के समानान्तर घटित होने के कारण ही महत्त्वपूर्ण हो गई है। इस काव्य का मूल प्रसग यद्यपि अपने आपमे मार्मिक है फिर भी उसमे महाकाव्योचित गरिमा और प्राणवत्ता नही है। इस समस्त प्रसग मे सघर्ष का विधान एक क्षण के लिए भी नही हुआ। बिम्बसार का उदार, क्षमावान, सहिष्णु और ममत्वपूर्ण रूप पाठक की करुणा और सहानुभूति का पात्र हो सकता है, परन्तु उसके मन मे स्फूर्ति, ओज और जिज्ञासा उत्पन्न नही होने देता। आशिक विद्रोह कोणक की माता कुशला के मन मे उत्पन्न होता है, किन्तु इस उद्वेग की वाचिक अभिव्यक्ति होते ही बिम्बसार वात्सल्य की दुहाई देकर उसे सहिष्णुता के शीतल जल से शान्त कर देते है—अत: उसका सक्रिय रूप सामने नही आता। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य मे प्रतिपक्ष से या किसी अन्य रूप मे किसी प्रकार की बाधा, सघर्ष या अवरोध का विधान नही किया गया। कोणक काव्य के अन्त तक अपनी कठोरता और निर्ममता में पूर्ण है, इसलिए उसकी अपनी अन्तर्वृत्तियो ने भी किसी प्रकार की दुविधा, सकोच या अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित नही किया। इस प्रकार जिस फल की प्राप्ति के लिए देवदत्त द्वारा प्रेरित कोणक आरम्भ मे प्रयत्नशील होता है, वह बिना विशेष अन्तर्बाह्य विरोध के उसे काव्य के मध्य मे ही मिल जाता है। इस फल के विषय मे कहीं अनि-

---

१. तप्तगृह—प्रभात, निवेदन, पृष्ठ १

श्चय की भावना उत्पन्न ही नही हुई है, अतः काव्य मे जिज्ञासा उद्‌बुद्ध करने के गुण का अभाव है।

सघर्ष, फलभोक्ता के अपने मन मे फलप्राप्ति के उपरान्त उदित होता है। परिस्थिति-वश उसके हृदय मे अर्जित फलोपभोग के प्रति विरक्ति का भाव जाग उठता है, किन्तु पिता की मृत्यु के उपरान्त उसके सामने अवाछित फल के ग्रहण के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग शेष नही रह जाता—फिर भी इस अन्तिम भाग मे उसके हृदय का पश्चाताप व अन्तर्द्वन्द्व उस सघर्ष के रूप मे माना जा सकता है जिसका समाधान अथवा परिशमन अव्यक्त ही रहता है। इस प्रकार घटना-विरल कथावस्तु व सघर्ष-योजना के अभाव मे, भारतीय या पाश्चात्य किसी भी दृष्टि से सभी कार्यावस्थाएँ इस काव्य मे नही मिलती। प्रयत्न करने पर भारतीय वस्तु-विधान मे निर्दिष्ट पाँच अवस्थाएँ ढूँढी जा सकती है पर पाश्चात्य दृष्टि से उसमे सघर्ष के अभाव मे चरम और निगति दोनो ही अवस्थाएँ नही मिलती। देवदत्त और कोणक की मत्रणा से कार्यारम्भ, बिम्बसार के पिता-वध की इच्छा से महल मे जाने से यत्नारम्भ, वहाँ कुशला की उपस्थिति से विघ्न, किन्तु बाद मे बिम्बसार को बन्दी बनाने से प्राप्त्याशा, कारावास मे बिम्बसार और कुशला के कथोपकथन के बीच, बिम्बसार द्वारा कुशला के अन्तर्द्रोह के शमन मे नियताप्ति, और उनकी मृत्यु के साथ फलागम माना जा सकता है। किन्तु इन विभिन्न घटनाओ मे विशेष अन्तर नही है। यह विभाजन केवल विभाजन के लिए किया गया है, अन्यथा यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम—एक के बाद दूसरी अवस्था इतनी शीघ्रता से उपस्थित होती है कि बीच का अन्तर जीवन्त सघर्ष के अभाव मे अलक्षित ही रह जाता है। वस्तुत अस्थायी रूप से फल की प्राप्ति कोणक को बिम्बसार के बन्दी बनाने से ही हो जाती है। पाठक इस विषय मे आरम्भ से ही आश्वस्त है कि उस ओर से कोई बाधा उपस्थित नही होगी, क्योकि पिता-पुत्र की प्रथम भेट मे ही उनका स्वरूप उसके सामने स्पष्ट हो जाता है, अत बिम्बसार के बदी बनाने की घटना मे यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो प्राप्त्याशा न होकर नियताप्ति ही है। पाश्चात्य दृष्टिकोण से कोणक का बिम्बसार के महल मे वध की इच्छा से जाना पहली सघर्षमय घटना और इससे पूर्व का अश व्याख्या माना जाएगा। इसके उपरान्त कार्यव्यापार का विकास निर्विरोध रूप से होता जाता है और फल-प्राप्ति पर ही विराम होता है। कथा मे कार्य की प्रगति तो है किन्तु न उल्लेख-योग्य सघर्ष है न उसका चरम अर्थात् अनिश्चय की अवस्था, और न उसके उपरान्त निगति। नाट्य सन्धियो की खोज करना इस कथा मे व्यर्थ है। गौतम के विरुद्ध देवदत्त के मन मे प्रतिस्पर्द्धा और प्रतिहिंसा की भावना और प्रयत्न वह प्रासगिक कथा है जो मूल प्रसग के साथ अभिन्न रूप से गुथी है। स्पष्ट रूप से जो आद्यन्त सामने नही आती किन्तु जिसका आभास सारी कथा मे मिलता रहता है, किन्तु यह कथा मूल कथा की सूत्रधारिणी कारण-रूप बन गई है और इसका स्वतन्त्र रूप स्पष्टत दिखाई नही पड़ता। अत ऐसी विषयवस्तु मे जिसकी कार्यावस्थाएँ ही स्पष्ट न हो, जिसकी घटनाओ मे बहुत उतार-चढाव या मोड़ नही हो, जिसमे उपाख्यानो की सश्लिष्ट योजना न हो, नाट्य सन्धियाँ ढूंढना व्यर्थ होगा।

महाकाव्य के लिए अपेक्षित जटिल और जीवन्त वस्तु-विधान का 'तप्तगृह' मे हर दृष्टि

से अभाव है। कवि का अपना इकहरा वस्तु-विधान जिसमें सुचारु प्रवाह है, गठन है, किन्तु जो झझावात के प्रखर वेग से टकराता, उठता-गिरता आगे नही बढता, जिसमे उर्मियो की सी क्षणिक हलचल और थिरकन उत्पन्न होती है और फिर वही ऋजु गति। काव्य का अन्त पाश्चात्य विधान के अधिक अनुकूल है। भयकर अवसाद की भावना पर परदा डालकर कवि सहसा पट-परिवर्तन कर उसे फलागम के सुख मे नही बदलता। अत. इस दुखान्त को फलागम की अपेक्षा अन्तिम घटना या दु खान्त ही कहा जाए तो उचित होगा।

ऋतंवरा—का वस्तु-विन्यास भी नवीन पद्धति पर किया गया है। योजना मे कवि ने स्वतन्त्रता बरती है किन्तु इस नवीन प्रणाली से काव्य मे किसी प्रकार की कलात्मक वृद्धि न होकर उसका वस्तु-विन्यास खण्डित हो गया है। इस काव्य मे स्पष्ट रूप से दो स्वतन्त्र कथाएँ है। एकादश सर्ग तक की कथा का सम्बन्ध पौराणिक युग से है, कवि ने एकाध स्थल पर अप्रस्तुतार्थ के सकेत का प्रयत्न किया, पर वह विशेष महत्त्वपूर्ण नही हो सका। इस भाग की कथा मे प्रलय के उपरान्त सृष्टि के विकास, पृथ्वी के उद्धार, मनु और शतरूपा के जन्म, मिलन, मनु के मन मे उदित मोह, पृथ्वी द्वारा उनकी भर्त्सना और अवसाद का वर्णन है। एकादश सर्ग के उपरान्त कवि की कल्पना मे वर्तमान, भविष्य और विगत को मिलाने की योजना कार्यान्वित हुई है, और एक विशेष भद्दे जोड (मनु के स्वप्न) के द्वारा—वर्तमान जीवन की विडम्बनाओ और ब्रह्मा के नेत्रो मे विराट् भविष्य के आणविक युगीन समाधान के साक्षात्कार की कथा जोडी गई है। एकादश सर्ग के उपरान्त घटना का एकमात्र अभाव हो गया है। छोटे-मोटे प्रसग कथा-शृखला बनाए रखने के लिए रचे गए है, किन्तु आरम्भ का कथात्मक रूप पिछले भाग मे कुछ सामाजिक और कुछ बौद्धिक समस्यायुक्त हो गया है और वस्तुरूप घटनाएँ अमूर्त और सैद्धान्तिक बन गई है। ये समस्याएँ मनु के अपने जीवन मे घटित नही होती। सृष्टि के आरम्भ के पात्रो को स्वप्न द्वारा भविष्य का ज्ञान, आने वाली समस्याओ के प्रति खेद और विषाद तथा समाधान—वर्तमान, भविष्य और पुराण-युग के बीच टूटे टाके झालने का प्रयत्न-सा लगता है। इसका कारण है कि विभिन्न युगो का पारस्परिक भावात्मक सम्बन्ध उन्ही समस्याओ के आधार पर स्थापित किया जा सकता है जो मानव की शाश्वत या चिरन्तन समस्याएँ हो, जिनका सम्बन्ध मानव-मन की मूलभूत प्रवृत्तियो से हो। लेखक ने कथा के पौराणिक अश मे जहाँ दार्शनिक रग देने तथा जीवन मे कर्म की महत्ता का शाश्वत सदेश देने का उपक्रम किया है, वहा परवर्ती भाग मे ऐसी अधिकाश समस्याएँ उठा ली है जिनका रूप केवल सामयिक है। उनका समाधान भी कवि चिरस्थायी, आध्यात्मिक और शाश्वत जीवन-मूल्यो के आधार पर न देकर सामयिक, अस्थायी और व्यावहारिक अनुभवो के आधार पर दे बैठा है। परिणामत कथा के दोनो भागो मे सहज कार्य-कारण सम्बन्ध नही स्थापित हो सका। प्रथम भाग की घटनाओं का अनुवर्तन पिछले भाग की घटनाओ मे आवश्यकता और सम्भाव्यता के नियम के अनुसार न होकर बरबस और आरोपित प्रतीत होता है। 'कामायनी' के अनुकरण पर श्रद्धा-स्वप्न के समानान्तर कदाचित् लेखक ने यह योजना की है। किन्तु दोनो की परिस्थितियो मे महान अन्तर होने से यह प्रसग उससे प्रभाव मे सर्वथा भिन्न और कलाविहीन हो गया है। 'कामायनी' के स्वप्न-दर्शन की घटनाएँ दो युगो की घटनाएँ नही है, और श्रद्धा तथा मनु के बीच दृढ रागात्मक सम्बन्ध होने के

कारण वहाँ यह प्रसग अस्वाभाविक या असम्भव भी नही प्रतीत होता।

उक्त खण्डित प्रभाव के अतिरिक्त कार्यव्यापार मे खटकने वाली एक अन्य त्रुटि सघर्ष का अभाव है। तर्क दिया जा सकता है कि काव्य की अधिकतर घटनाएँ अमूर्त और उनका रग-मच अन्तर्मन है। किन्तु हृदय मे भी भावनाओ के तीव घात-प्रतिघात के रूप मे अन्तर्द्वद्व या आन्तरिक सघर्ष की योजना की जा सकती है। व्यक्ति का मन सघर्ष का सबसे बडा केन्द्र है। यद्यपि अव्यक्त रूप मे, किन्तु वस्तुगोचर नानारूपात्मक जगत् मे घटने वाली समस्त महान, भयकर या विशद घटनाओ के सूत्र मानस मे ही रक्षित रहते है, वही इनका सचालन-केन्द्र है। 'ऋतवरा' के विषाद सर्ग तक, अर्थात् काव्य के अर्द्धाश से भी अधिक भाग मे किसी प्रकार के बाह्य या आन्तरिक सघर्ष का विधान नही किया गया। सघर्ष और द्वन्द्व के अभाव मे घटनाओ मे उद्दाम अप्रतिहत वेग या उतार-चढाव भी नही है। जो कुछ अल्प सघर्ष प्रस्तुत किया गया है वह पात्रो की अपनी मनोवृत्तियो के कारण है, अत. बाधक या साधक प्रासगिक कथाओ और अवान्तर प्रसगो की योजना कथा मे नही की गई। केवल अपूर्व सुन्दरी-रूप मे पृथ्वी के साक्षात्कार से मनु के मन मे उत्पन्न होने वाला मोह क्षणिक द्वन्द्व उपस्थित करता है, किन्तु तत्काल पृथ्वी की भर्त्सना से विरोध-शमन हो जाता है। यह प्रसग मूलकथा मे सघटना के लिए उपकारी कदापि नही माना जा सकता। नायिका की प्राप्ति मनु को अत्यन्त सहज रूप मे हो जाती है इसलिए सघर्ष की बरबस उद्भावना के लिए यह योजना की गई है अन्यथा यह प्रसग मूलकथा से सर्वथा असम्पृक्त है।

आदि, मध्य, अवसान मे से अवसान, मध्य का अनिवार्य और सहज रूप से अनुवर्त्ती प्रतीत न होकर क्षेपक प्रतीत होता है। भारतीय विधानानुसार प्राप्त्याशा और नियताप्ति तथा पाश्चात्य पद्धति के अनुसार चरम और निगति नामक कार्यावस्थाएँ बहुत कुछ सफल सघर्ष की योजना पर निर्भर है। प्रत्येक काव्य मे कोई न कोई कथा—अत उसका आरम्भ और अन्त होना अनिवार्य है, किन्तु आरम्भ से अन्त तक की यात्रा मे मध्यवर्ती मार्ग किन स्थितियो मे होकर जाता है, उसमे कहाँ-कहाँ कैसे मोड व उतार-चढाव आते है? यह बीच की सघर्ष-योजना पर निर्भर है। मार्ग की इन विषमताओ के बीच किसी अश मे तारतम्य न टूटे यह ध्यान रखना कुशल कलाकार का कार्य है। भारतीय नाटकीय विधान, पाश्चात्य नाटकीय विधान की अपेक्षा कुछ अधिक जटिल है, अत आधुनिक प्रबन्धो मे पताका प्रकरियो से युक्त कार्य-व्यापार की सश्लिष्ट योजना तो कठिनाई से मिलती है, किन्तु पाश्चात्य ढग का वस्तु-विन्यास प्राय प्राप्त हो जाता है। कुछ दूर तक यह योजना 'ऋतंवरा' मे भी मिल जाती है। प्रलय-काव्य की प्रथम सघर्षमय घटना, ब्रह्मा का चिन्तन एव मनु-शतरूपा का मिलन—कार्य-प्रगति, मानस-पुत्र मनु के मन का मोह काव्य का चरम, शतरूपा द्वारा उद्बोधन के प्रयत्न, ब्रह्मा का आगमन, विराट भविष्य का दिग्दर्शन आदि निगति और मनु का आत्मबोध अन्तिम कार्य माना जा सकता है। इन समस्त अवस्थाओ के विद्यमान होते हुए भी जैसा पहले कहा जा चुका है 'ऋतवरा' के वस्तुविन्यास मे सुसगठित, उचित और सहज पूर्वापर सम्बन्ध-निर्वाह नही मिलता। दूसरे शब्दो में इस काव्य की घटनाओं मे परस्पर सुनिश्चित कार्य-कारण सम्बन्ध-योजना नही है जो प्रबन्ध की प्रभावान्विति का बहुत बड़ा दोष है।

घटनाओ का स्वरूप—कथा-स्वरूप का विवेचन करते हुए जैसा पहले भी सकेत किया जा चुका है—'विक्रमादित्य' के अतिरिक्त इस वर्ग की चारो रचनाओ मे अपने-अपने ढग से अमूर्त, भावात्मक और बुद्धिगत घटनाओं को मूर्त तथ्यपरक घटनाओ की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया है। अमूर्त विषयो को तीन रूपो मे ग्रहण किया गया—(क) मानवीकरण करके उनका आत्मविश्लेषण और आत्म-परिचय के रूप मे वर्णन—'कामायनी' के काम और लज्जा सर्ग इसी पद्धति पर रचे गए है। (ख) ऐतिहासिक पात्रो पर दोहरे व्यक्तित्व का आरोप कर उनका प्रयोग अमूर्त तत्त्वों के प्रतीक-रूप मे किया गया—इस कौशल का परिचय प्रसाद ने श्रद्धा, मनु और इडा का व्यक्तित्व-निर्माण करके दिया है। (ग) तीसरी पद्धति अपेक्षाकृत सीधी और स्पष्ट है। ऐतिहासिक या काल्पनिक पात्रो के बाह्य क्रिया-कलाप की अपेक्षा काव्य की घटनावली के प्रेरक या उससे प्रभावित आन्तरिक क्रिया-व्यापार का उद्‌घाटन—अर्थात् पात्रो के मन या मस्तिष्क मे घटित होने वाले सघर्ष, मनन या चिन्तन का वर्णन-विश्लेषण। पात्र करता क्या है की अपेक्षा सोचता या अनुभव क्या करता है? इसका वर्णन इन कवियो ने अधिक किया है। यह पद्धति 'कामायनी' की प्रतीक पद्धति 'कामायनी' के कुछ अशो मे तथा 'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' मे अपनायी गई है। 'मेधावी' के कवि के पास पात्र नही, अत उसने मेधावी के रूप मे कल्पित पात्र की सृष्टि की है। किन्तु यह पद्धति मे सर्वथा भिन्न है। 'मेधावी' के माध्यम से कवि के शब्दो मे इतिहास और गति, किन्तु वास्तव मे कवि का अपना विचार-क्रम, और सिद्धान्त व्यक्त हुए है। 'कामायनी' के कवि ने प्रतीको के द्वारा मानव-मात्र की विशिष्ट हार्दिक या बौद्धिक प्रवृत्तियो को जिस रूप मे समझा है, अपने पाठक तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। 'मेधावी' के माध्यम से कवि की अर्थात् व्यक्ति-विशेष की 'वाद' विशेष से प्रभावित चिन्ताधारा व्यक्त हुई है, अत यह कल्पित पात्र के माध्यम से कवि की निजविचाराभिव्यक्ति ही है।

एक बात और—अमूर्त को स्थान देते हुए भी, इन सभी रचनाओ मे घटनाओ का वस्तुरूप तिरस्कृत या उपेक्षित नही है। 'कामायनी' की भूमिका मे बारम्बार कवि ने कथा क ऐतिहासिक रूप के प्रति अपना आग्रह व्यक्त किया है। उसमे वे सफलतापूर्वक एक और अर्थ भर सके, यह उनकी अतिरिक्त सिद्धि है, किन्तु अपने काव्य को अन्योक्ति का रूप देने की योजना उनकी कही नही रही है, यह 'कामायनी' के आमुख मे सिद्ध है। 'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' काव्यो मे द्वि-अर्थक कथाओ का विधान नही, अतः अपेक्षाकृत महत्त्व का प्रश्न कथा मे नही उठा, किन्तु कवि के दृष्टिकोण और 'तप्तगृह' की भूमिका से स्पष्ट है कि कवि की दृष्टि बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अधिक रही है। मनोग्रन्थियो, मनोभावनाओ और बुद्धिजन्य समस्याओ को घटनाओ के मूल मे ढूंढने मे वे अधिक प्रयत्नशील रहे है। ऐसा उन्होने स्वीकार भी किया है। मानव के हृदय और बुद्धि तथा उसके सक्रिय शारीरिक कार्य-व्यापार के बीच पारस्परिक सम्बन्धो की अभिव्यक्ति प्रयत्नपूर्वक की गई है। 'मेधावी' के कवि ने निश्चय ही वस्तुतथ्यो का उपयोग केवल उद्दीपन और प्रमाणों के रूप मे किया है। कथा या घटनाएँ इस काव्य मे वही तक आई है जहाँ तक वे उनकी चिन्ताधारा को उद्दीप्त या पुष्ट करती है, उनका स्वतन्त्र महत्त्व कुछ नही। कहना आवश्यक नही कि 'विक्रमादित्य' की घटनाएँ बहिर्जगत् की तथ्यप्रधान घटनाएँ हैं—उनका सम्बन्ध नानारूप-ससार और उसके कर्मक्षेत्र से है। पात्रो की आन्तरिक मनो-

दशा इस काव्य में उनके बाह्य क्रिया-कलाप की तुलना मे नगण्य है। घटनाओं का रूप मूर्त, और बाह्य-संसार उनका रगस्थल है। इस प्रकार इन घटनाओ मे विस्तार है (विराट् रूप नहीं) गहराई नही। 'मेधावी' में उल्लेख और नाम गिनाने के लिए—प्रसंगों के बीच सारा संसार घटना-क्षेत्र के रूप मे आ गया है, किन्तु ये घटनाएँ उद्धृत की जाती हैं, प्रस्तुत नही। काव्य के प्रस्तुत विषय का सम्बन्ध केवल मेधा से है, और इस क्षेत्र मे कवि अनेक समस्याएँ और समाधान ढूँढने के लिए काफी गहरा उतरा है। 'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' की घटनाएँ बाह्य-जगत् और अन्तर्मन दोनो में घटित होती है। इस प्रकार कथा की रेखाएँ विस्तृत भी हैं और गहरी भी—किन्तु इनमें अपेक्षाकृत गहराई अधिक है, विस्तार कम। कहीं-कहीं महत्त्वपूर्ण घटनाओ की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति न करके उन्हे सूच्य बना देना इस बात का प्रमाण है ('तप्तगृह' मे बिम्बसार के बन्दी होने की घटना)। 'कामायनी' इस वर्ग मे वह अकेली रचना है जिसमें मूर्त और अमूर्त मे अत्यन्त संतुलित सामजस्य स्थापित किया गया है। रूपक के सफल निर्वाह के कारण आद्योपान्त तथ्यपरक ऐतिहासिक घटनाओं और अमूर्त मनोवैज्ञानिक घटनाओं का विकास समानान्तर हुआ है। अमूर्त को मानवीकृत करके कवि ने यथासंभव ठोस व्यवस्थित रूप प्रदान किया है, किन्तु इस प्रयत्न के अतिरिक्त प्रलय से लेकर सृष्टि के विकास और मनु के चरम आनन्द की प्राप्ति तक की घटनाएँ इस काव्य के विषय है। कुछ सर्गों मे आख्यान-तत्त्व अधिक सुदृढ और स्पष्ट हो गया है—'ईर्ष्या', 'श्रद्धा' और 'स्वप्न' सर्ग मे सारस्वत नगर-वर्णन का अश, विशेषत· वस्तु-प्रधान है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण या अमूर्त-व्यजना इन प्रसगो मे अपेक्षाकृत गौण है।

'विक्रमादित्य' की घटनाएँ ऐतिहासिक है और उनका मूर्त रूप ही अकित किया गया है। कही-कही घटनाओ की कमी को वर्णन-विस्तार और वार्ता-विस्तार से पूरा किया गया है, किन्तु इन स्थलो मे भी कवि का दृष्टिकोण विषय-प्रधान है। न घटनाओ का रूप अमूर्त हुआ है और न पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का प्रयत्न कवि ने किया है। घटनाओ की कमी को इतिवृत्तात्मक वर्णन-विस्तार से भरा गया है।

'मेधावी' का आरम्भ ही चिन्तन से होता है। मूर्त घटनाओ का इस काव्य मे एकान्त अभाव है। 'कामायनी' आदि कृतियो मे भावना, विचार, दर्शन, कल्पना आदि अमूर्त उपादानो का महत्त्व होने पर भी उन्हे अनुभूति का विषय बनाकर व्यक्त किया गया है। आख्यान-तत्त्व का एकमात्र अभाव इन कृतियो मे नही मिलता। 'मेधावी' मे अनेक बौद्धिक सिद्धान्तों और विचारों का यथावत् वर्णन है। 'मेधावी' के आत्म-चिन्तन के रूप में कहीं-कही विचार की अतिशयता हो गई है—

ताना बाना सा बुना हुआ
जीवन मरण का अणु अणु में—
मकड़ी सा स्वयं उगल जाला
उसमे ही अपना नृत्य किये
अणु अणु से संचित शक्ति कि
गति में होता है मतवाला

यह अहंकार की स्वप्न प्रभा
जिसमें यह जग है रगभूमि
वह कार्य स्वयं निर्माण बने
वृक्षों से उठते हहर झूम।[1]

इस प्रकार जीवन के पंचतत्त्वो, शाश्वत सत्य, ससार के स्थायित्व, प्रकृति के कार्य-व्यापार, सृष्टि-विकास के इतिहास आदि अनेक बुद्धि-सापेक्ष प्रश्नो पर कवि ने चिन्तन किया और प्रकाश डाला है। जहाँ इतिहास, सस्कृति आदि से प्रसग ग्रहण किये गए है वहाँ उनकी स्मृति है, प्रत्यक्ष वर्णन नही। कवि ने सक्षेप में आर्य जाति की धार्मिक, दार्शनिक, सास्कृतिक और राजनैतिक सभी दिशाओ मे प्रगति का विहगावलोकन स्मृति रूप मे किया है। प्रगति के अभय निःशक चरणो का यह स्मरण केवल उल्लेख के लिए दिग्व्यापी है। ऊपर से दिखायी देने वाले कथानक मे—नाना रूपात्मक जगत् के मूल मे भूत की प्रधानता और परिवर्तन-सृष्टि का मूलमन्त्र है—इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

इसके अतिरिक्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मे विश्वास, मानव मे वर्ग-भेद की समस्या आदि समाजशास्त्रीय प्रश्नो को भी लेखक ने उठाया है। समस्त काव्य मे कवि मस्तिष्क के स्तर से कविता करता रहा है। विचार और सिद्धान्त को अनुभूति का विषय बनाकर व्यक्त करने का प्रयत्न कही नही, चिन्तन अपने यथावत् रूप मे प्रेष्य है।

'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' मे मूर्त और अमूर्त मे से कैवल्य किसी का नही किन्तु दृष्टिकोण 'मेधावी' और 'कामायनी' दोनो से भिन्न है। कथानको मे ऊपर से दिखाई देने वाली घटनाएँ मूर्त है, किन्तु 'तप्तगृह' की भूमिका मे व्यक्त अपनी मान्यता के अनुकूल घटनाओ पर पडने वाले हृदय और मस्तिष्क के प्रभाव को कवि ने टटोला है। अत घटनाओ के चित्रण की अपेक्षा उनकी पृष्ठभूमि के उद्घाटन का प्रयास अधिक है। इस प्रकार मूर्त और अमूर्त के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध का एक वृत्त-सा बन गया है। घटनाओ के मूलवर्ती बौद्धिक या हार्दिक कारण—उनके परिणामस्वरूप घटित होने वाली घटनाएँ—और फिर इन घटनाओ द्वारा मानव-मन पर पडने वाले प्रभाव। 'तप्तगृह' के सम्पूर्ण प्रथम सर्ग मे आगामी घटनाओ के मूल मे कारण-रूप—देवदत्त का आत्मचिन्तन व्यक्त है। कवि ने सम्पूर्ण कथा मे करुणाद्रावक और जीवन्त घटनाओ की प्रत्यक्ष प्रस्तुति को बचाया है—उदाहरणार्थ बिम्बसार के बन्दी किए जाने का प्रसग। यह प्रवृत्ति इस बात का प्रमाण है कि बाह्य सघर्ष उसकी दृष्टि मे विशेष महत्त्वपूर्ण नही। इसी प्रकार 'ऋतवरा' मे कवि की वृत्ति मूर्त घटनाओ के वर्णन मे नही रमी। प्रथम सर्ग मे सृष्टि की सर्वाधिक भयकर एव महत्त्वपूर्ण घटना प्रलय का ही वर्णन अत्यन्त सीमित व एकपक्षीय रूप मे करके तुरन्त ब्रह्मा के चिन्तन, क्षोभ, सृजन के लिए समाधि का सकल्प, जीवन के सिए पंचतत्त्वो की पुकार आदि अमूर्त विषयो मे लेखक प्रवृत्त हो जाता है। इसी प्रसग मे जीवन के अनेक भावात्मक सत्यो का समाख्यान किया गया है। पौरुष का महत्त्व, जीवन मे कर्म की सार्थकता, सृष्टि के उपादान और उनके पारस्परिक सम्बन्ध आदि विभिन्न विश्लेषित अमूर्त विषय है। मूर्त

---

१. मेधावी—डा० रागेय राघव, पृ० २८

वस्तुरूप घटनाओ का कही अत्यन्त स्थूल औपचारिक रूप में वर्णन किया गया है—मनु और शतरूपा का मिलन जैसी सरस घटना भी इसी प्रकार का प्रसग है—जिसे पढकर स्पष्ट भान होता है कि यह कवि की अपनी शैली नहीं ।

निष्कर्ष रूप मे इन सभी रचनाओ मे घटनाओं के स्वरूप की दृष्टि से परस्पर वैषम्य है। 'विक्रमादित्य' पूर्णत· वस्तुनिष्ठ कथा-काव्य है, 'मेधावी' का सम्बन्ध नितान्त अमूर्त चिन्तन से है। 'कामायनी' मे मूर्त और अमूर्त को समान महत्त्व प्रदान किया गया है किन्तु विचार सम्बन्धी तत्त्वों का उल्लेख कवि ने हृदय-रस से सिक्त करके किया है तथा अमूर्त का समान महत्त्व होते हुए भी ऐतिहासिक तत्त्व कही गौण नही हुआ। 'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' मे कथा है, किन्तु मूर्त घटनाओ के प्रेरक या सम्बन्धित अमूर्त कारणो के विश्लेषण, उद्‌घाटन और वर्णन मे कवि की मनोवृत्ति विशेष रमती है और घटनाओं का वस्तु-तथ्य रूप तुलनात्मक दृष्टि से पीछे पड गया है।

गति-प्रवाह—प्रबन्ध मे कथा-तारतम्य, आकार-विस्तार होने के कारण उसकी विविध घटनाओ व प्रसगो मे गति और सहज प्रवाह होना अनिवार्य है। महाकाव्य में घटना-वैविध्य और जीवन के सर्वांग का समावेश होने के कारण आकार महत् होता है, अतः यह गुण और भी अपेक्षित है। घटनाओ मे अविच्छिन्न धारा-प्रवाह प्राय दो स्थितियो मे बाधित होता है—घटना-विरलता की स्थिति मे, अथवा समर्थ घटनाओ के होते हुए भी असमर्थ अभिव्यजना की स्थिति में। इसमे से पहली स्थिति मे दो मार्ग सम्भव हैं—कवि पर्याप्त घटनाओ के अभाव मे अवाछित प्रसगो की उद्भावना से काव्य-कलेवर मे वृद्धि करेगा, अथवा गौण या विस्तार-अनपेक्षी प्रसगो को वर्णन-विस्तार से बढाएगा। दोनो ही पद्धतियो से रसज्ञ पाठक की जिज्ञासा या रुचि खडित होगी। ऐतिहासिक या प्रख्यात कथानको में उपर्युक्त निष्क्रियता का अवकाश उतना नही होता जितना अमूर्त विषय के अकन मे। किन्तु विचित्र सयोग है कि ऐतिहासिक वृत्त अपनाकर भी 'विक्रमादित्य' के अन्तिम अश मे जो गत्यवरोध उपस्थित हुआ है, वह शेष रचनाओ मे अमूर्त व्यजना-प्रधान होने पर भी नही मिलता। घटना-बहुलता का प्रश्न इन काव्यो मे नही उठा। अमूर्त भावनाओ का क्रमबद्ध कथारूप मे इस प्रकार निर्माण या उद्‌घाटन करना, कि वह महाकाव्योचित स्तर पर जीवन्तता और गत्यात्मकता से युक्त हो, दुष्कर कार्य है। किन्तु कही और किसी भी रूप मे घटनाओ की अल्पता को व्यर्थ विस्तार से भरने का प्रयास इन कवियो ने नही किया। इनकी कथा मे जो न्यूनाधिक विरसता या जोड-तोड उत्पन्न हुए है, उनके कारण विभिन्न और रचनागत है।

घटनाओ के नियोजन मे कुछ विशेषताएँ सामान्य रूप से इन सभी रचनाओं मे ('विक्रमादित्य' को छोड़कर) परिलक्षित होती है। इनके वस्तु-विधान मे मूलकथा के साथ अनेक अवान्तर-प्रसगों की सश्लिष्ट योजना के अभाव मे सघनता नही है। इनके कथानको मे विकास-सम्बन्धी स्फीतता, सरलता और स्पष्टता लक्षित की जा सकती है। घटनाओ मे घनत्व नही ऋजु-सरल गति से प्रवहमान होने वाली कृशता है। 'मेधावी' के विषय में शका उठाई जा सकती है, किन्तु उसमें भी सघनता नही उलझन है, जो कवि की विचरणशील बुद्धि के व्यापक विहार से उत्पन्न हुई है। कथा-प्रवाह सीधे ऋजु गति से बढने के स्थान पर टेढ़ा-मेढ़ा होकर बहने लगता

है। कथा के धरातल, स्वरूप और संघटना सब मे यह बात है। उक्त विशेषता से उद्भूत एक अन्य विशेषता इन काव्यो मे है —इनकी गति मे विशेष उतार-चढाव या अधिक मोड नही आते। इनका कथा-प्रवाह बाधाओ से टकरा-टकराकर दुर्दम अप्रतिहत वेग से भी आगे नही बढता। उसकी गति मे ताडव की जीवन्तता नही लास्य की थिरकन है। 'कामायनी' के अतिरिक्त यह बात शेष सभी कृतियो मे है। कथित विशेषता के कारण 'कामायनी' के अतिरिक्त महाप्राण और जीवन्त गति का अभाव शेष सभी रचनाओ मे खटकता है। कारण अपने-अपने और विशिष्ट है।

'कामायनी' मे मूर्त घटनाओ की-सी प्रत्यक्षता सर्वत्र नही, कही-कही है, किन्तु कथा की गति का नियमन अत्यन्त कुशलतापूर्वक हुआ है। जीवन के विराट् एव भव्य तथा कोमल और मधुर दोनो रूपो के अतर्भाव के कारण जहाँ मूर्त और अपेक्षाकृत प्राणवान प्रसग है वहाँ कथा अप्रतिहत वेग और त्वरा से आगे बढती है तथा मादक-मृदुल प्रसगो मे कथा की गति भी उन्मद हो जाती है। इस प्रकार कथा मे भावानुकूल गति और विराम उत्पन्न हुए है। 'चिन्ता' सर्ग मे हृदय की विकलता, विगत की चलचित्र-सदृश स्मृति, भविष्य का अनिश्चय सभी कुछ—एक के बाद दूसरा प्रसग अत्यन्त क्षिप्रता से बढता है। यही भाव-परिवर्तन की क्षण-क्षण गतिमयता 'आशा' के उदय के साथ आश्वस्त होकर मन्थर होती हुई 'काम' सर्ग मे आत्मतोष और आत्म-विश्वास के सहारे ठिठकने लगती है। इसी प्रकार 'वासना' सर्ग मे व्यक्त हृदय की उत्तेजना, उद्वेलन और चाचल्य की तीव्रता 'लज्जा' सर्ग मे सकोच और रति की मादकता के बीच भारी पगो से आगे बढती है। लज्जा का भाव मानो कथा के पगो मे नूपुर-सा लिपट गया है। यह विशेषता 'कामायनी' के कवि की बहुत बडी सिद्धि है जो सम्पूर्ण काव्य मे मिलेगी। प्रसगानुकूल उतार-चढाव गति-विराम के साथ अविच्छिन्न धारा-प्रवाह कथा-विकास इस काव्य की ऐसी विशेषता है जो अन्य रचनाओ मे सहज प्राप्य नही होती।

'विक्रमादित्य' की घटनाएँ मूर्त और पर्याप्त है। कवि थोडे से प्रयास से इन घटनाओ की सुनिश्चित योजना कर कथा के धारा-प्रवाह विकास का विधान कर सकता था, किन्तु शिल्प मे नवीन प्रयोग की आकाक्षा से बाधा उत्पन्न हुई है। घटनाओ के प्रवाह पर कवि का ध्यान उतना नही जितना सवाद-योजना पर। एक के बाद दूसरी घटना पर कवि लाँघ जाता है, इन घटनाओ को कही-कही बिल्कुल बिना जोड के छोड दिया गया है। बीच-बीच मे प्रस्तुत होने वाले इस अन्तराय से झटके से कथा-सूत्र बार-बार टूट जाता है, और पाठक को अनुमान से यह जोड लगाने पडते है। उन्नीसवे सर्ग के बाद तो कथा समाप्त ही हो जाती है, अत. शेष भाग मे पाठक की जिज्ञासा-वृत्ति की परितृप्ति के लिए कुछ बाकी नही रहता, परिणामत वह इस अश को नीरस और निर्जीव पाता है।

'मेधावी' मे घटनाओ का अभाव है एव उसके स्थान पर कवि का चिन्तन व्यक्त है किन्तु विचार-सम्बन्धी एकसूत्रता और तारतम्य से काव्य बँधा नही है। अनेक प्रकार के विचार बिना किसी विकास-योजना या निश्चित क्रम के इस काव्य मे भर दिये गए है। अत· विचारो के पूर्वापर कार्य-कारण सम्बन्ध से शृखलाबद्ध धारा-प्रवाह विकास इस काव्य मे नही मिलता। विचार-सूत्र कुछ उखडा-सा ऊबड-खाबड भूमि पर ठोकरे खाता आगे बढता है। कहीं-कही

विशेष प्रसगो का अनावश्यक विस्तार होने से भी गति मे अवरोध हो गया है। सम्पूर्ण चौथे सर्ग मे तथा कही-कही और भी ऐसा हुआ है।

'तप्तगृह' मे इनी-गिनी घटनाएँ है और आकार सीमित, अतः यद्यपि कथा का प्रवाह रुकता नही, परन्तु पात्रो का आत्मचिन्तन घटनाओ की अपेक्षा अधिक व्यक्त हुआ है और घटना-विरलता केवल बाह्य जीवन को लेकर ही नही अन्तर्द्वन्द्व या मानसिक जगत् के क्षेत्र मे भी है। कही-कही मार्मिक प्रसग कवि की दृष्टि से छूट गए है और बदले मे अत्यन्त स्थूल प्रसगो को व्यर्थ तूल दिया गया है। पहले कथन के उदाहरण-रूप मे कोणक के मन मे पिता को बन्दी बनाने से पूर्व के मानसिक सघर्ष के अभाव का उल्लेख किया जा सकता है और दूसरे मे बन्दीगृह मे होने वाले अत्याचार का (नापित द्वारा पैर चीरने की घटना)। इस प्रकार कही पाठक को पीछे छोडकर कथा आगे बढ जाती है और कही उसके न चाहने पर भी बरबस रुकी रहती है। इसके अतिरिक्त भी घटनाओ मे सशक्त प्राणवत्ता का एकात अभाव है। जिज्ञासा उद्‌बुद्ध करने की शक्ति भी उनम नही है। पाठक को कही सतर्क नही रहना पड़ता। प्रस्तुत घटना आगामी का अनुमान बरबस करा देती है और यह अनुमान प्राय ठीक ही होता है, कही कोई अप्रत्याशित घटना हृदय को झकृत नही करती।

'ऋतवरा' में भी घटनाओ का क्रीडास्थल अन्तर्मन है बहिर्जगत् नही, परन्तु सामान्यतः काव्य मे प्रवाह है। काव्य की सबसे पहली और भयकर घटना है—प्रलय। इसके वर्णन मे गति-अवरोध या जड़ता तो नही, परन्तु सृष्टि-विध्वस की इस भयकर प्रक्रिया को मूर्तिमान करने योग्य निर्बाध गति भी नही। 'पृथ्वी' सर्ग मे, पृथ्वी के प्रालेय नीर मे निमग्न होने का वर्णन है, जिसमे डमरू के डिम-डिम स्वर पर होने वाले विध्वसकारी ताडव का वेग नही, लास्य की मन्थर गति मे बजने वाले नूपुरो की छूम छनन-माधुरी है। इस अवसर पर प्रस्तुत प्रकृति का मानवीकृत चित्र उक्त कथन को पुष्ट कर सकेगा—

बढ़ चला ताप अतिशय प्रचण्ड
ऐसा लगता था—
अतल-वितल-पाताल-लोक
जल-जल कर होगे खण्ड खण्ड
पृथ्वी भयातुरा
सिकुड़ी-सी, सिमटी-सी थी
जल-सिक्त दृगों की रेखाएँ कुछ लाल-लाल
गीला अंचल
गीला कुंतल
गीली-गीली सांवली-सलोनी देह-लता।[1]

कही-कही समर्थ चित्र भी है किन्तु कम। असर्थ की क्रान्ति की अपेक्षा सृजन की छटा ही अधिक सुन्दरतापूर्वक वर्णित है। कुछ समर्थ प्रसंगो मे विशेष ओज, स्फूर्ति और आवेग उत्पन्न हो गया है। ब्रह्मा के मानस-पुत्र मनु के जन्म का प्रसग, तथा अन्तिम अश मे मनु के भविष्य-

१. ऋतंवरा—प्रभात, पृष्ठ ५१

दर्शन का प्रसग विशेष जीवन्त प्रसग है—अन्यथा भाषा के आवरण मे कथा बिछलती-सी चलती है। कामना होती है कि यदि कवि ने प्राचीन और नवीन को इस अनाकर्षक जोड से नही जोडा होता तो कथा मे और अधिक नैरन्तर्य आ जाता।

वर्णन-विस्तार—आचार्यो द्वारा महाकाव्य के लिए जिन वर्ण्य-विषयो की सूची गिनाई गई है, उसके मूल मे तर्क इतना ही है कि महाकाव्यो मे जीवन के विविधाग और यथासम्भव सर्वाग का अन्तर्भाव होना चाहिए। जिन काव्यो को आदर्श स्वीकार करके इस सूची का रूप स्थिर किया गया उनमे जीवन के बाह्य, नाना रूपात्मक, वस्तुप्रधान, सक्रिय रूप की प्रधानता थी, रम्याद्भुत व्यक्तिपरक अमूर्त रूप की नही। फलत वर्णनो का विस्तार जीवन के बाह्य क्षेत्र मे समतल हुआ मनोदेश मे गहरे नही। शास्त्र-निर्दिष्ट सूची मे इसी कारण मानव के बाह्य जीवन से सम्बद्ध विविध पक्षो—राजनैतिक, सामाजिक और प्राकृतिक वर्णनो का समावेश तो किया गया, परन्तु उसके अन्तर्मन मे घटने वाली अमूर्त घटनाओ को स्थान नही दिया गया। ऐसी स्थिति मे जीवन के बाह्य और विविध पक्षो के वर्णन इन काव्यो मे ढूँढने व्यर्थ है—क्योकि जैसा पहले कहा जा चुका है, इनका विषय मूर्त जीवन की अपेक्षा अमूर्त घटनाएँ अधिक है—अतः देखना यह है कि बाह्य जीवन की विविधता के अभाव को मनोदशाओ की विविधता से कहाँ तक भर दिया गया है? अर्थात् अन्तर्मन मे घटने वाली घटनाओ व मानसिक घात-प्रतिघात के अकन मे जीवन की विविध मनोभावनाओ का किस रूप मे ग्रहण किया गया है? जीवन के विविधाग सम्बन्धी बौद्धिक और हार्दिक सक्रियता इनमे कहाँ तक मिलती है?

'विक्रमादित्य' आख्यान-प्रधान काव्य है। उसकी कथा राजनीति से विशेष रूप से सम्बद्ध है, अतः उसमे राजनैतिक और प्राकृतिक वर्णनो की प्रधानता है। सामाजिक जीवन के अधिक वर्णन इस काव्य मे नही मिलते। कही-कही राजनैतिक वर्णन केवल परम्परा-पालन के लिए किये गए है। ऐसे स्थलो पर भौतिक वातावरण का इतिवृत्तात्मक विधि से स्थूल वर्णन है। चौथे सर्ग मे राजदरबार का चित्र सर्वथा निर्जीव और गतिहीन है, जिसमे अत्यन्त स्थूल व यन्त्र-चालित से बाह्य कार्य-कलाप वर्णित है। युद्धो आदि के वर्णन भी विशेष सजीव नही। सामाजिक पक्ष मे कुछ इने-गिने पारिवारिक प्रसगो के अतिरिक्त विशेष विस्तृत वर्णन नही मिलते। प्राकृतिक क्षेत्र मे निश्चय ही कवि सफल हुआ है। प्रकृति-वर्णन की सभी प्रचलित प्रणालियो का प्रयोग कवि ने किया है और केवल उसके रम्य और मनोहर रूप का ही नही, विकराल और भयकर रूप का भी अकन किया गया है। परम्परापालन के लिए वियोग मे षट्ऋतु वर्णन की पद्धति भी उन्होने अपनायी है। इस प्रकार वर्णन-विस्तार मे सफलता की दृष्टि से कवि की सिद्धि एकपक्षीय है।

'कामायनी' मे मूर्त कथा के मूल मे अन्तःसलिला की भाँति अमूर्त कथा की धारा प्रवाहित है, अतः वर्णन-विस्तार की दृष्टि से भी कवि का उत्तरदायित्व दोहरा हो गया है। 'कामायनी' के वर्णनो का सम्बन्ध मानव-जीवन के बाह्य, तथ्य-प्रधान अग से भी है और कवि ने मन और बुद्धि के भीतर गहरे पैठ कर मनोग्रन्थियो, मनोभावनाओ और बौद्धिक क्रियाओ का वर्णन-विश्लेषण भी किया है। घटनाओ मे विस्तार देश और काल दोनो दृष्टियों से विशद है। उनमे प्रसार भी है, गहराई भी। 'कामायनी' मे वर्णित प्रसगो को दो बातें दृष्टि मे रखकर समझना चाहिए। 'कामायनी' की मूर्त कथा का सम्बन्ध उस काल से है जब सामाजिक विषमताओं और

उलझनो का प्रादुर्भाव नही हुआ था। उसकी समस्याएँ व्यक्तियो के सामने आने वाली समस्याएँ है, सामाजिक या सामूहिक समस्याएँ नही—अतः सामाजिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओ या सामाजिक जीवन के चित्र—सभ्यता की आदिम अवस्था से सम्बन्धित इस काव्य मे ढूँढने व्यर्थ है। दूसरी विशेषता इस कृति की यह है कि इसमे जिन मनोवृत्तियो को विषय-रूप मे अपनाया गया है वे व्यक्ति की होने पर भी विशिष्ट नही है। उनका सम्बन्ध मानव-मन की मौलिक या मूलभूत प्रवृत्तियो से है, अतः इस रूप मे वे मानव-मात्र की व्यापक समस्याएँ हो सकती है। व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी उनका स्वरूप देश और काल की सीमा से मुक्त, शाश्वत और सर्वव्यापी है। वे व्यक्ति की समस्याएँ है किन्तु व्यक्तिगत, सामयिक या परिस्थितिजन्य समस्याए नही। उनका स्वरूप सार्वभौमिक व सार्वकालिक है तथा क्षेत्र व्यापक। अत. अपने ढग से 'कामायनी' मे वर्णन-विस्तार है—राजनैतिक विप्लव या सामाजिक हलचल का नही, मानव की सर्वांगीण समस्याओ या प्रश्नो का। इसी व्यापकता और शाश्वतता के गुण के कारण काव्य के अन्तिम अश मे कवि इन्ही प्रश्नो को सामूहिक रूप मे प्रस्तुत करके, व्यक्ति और समाज तथा प्राचीन और आधुनिक मे सम्बन्ध स्थापित कर सका है। समस्त सामाजिक और राजनीतिक क्रिया-कलापो का मूलाधार मानव-मन निवासिनी यही मौलिक प्रवृत्तियाँ है।

शास्त्रो के सूचीबद्ध वर्णन 'कामायनी' मे नही मिलते, किन्तु अपने ढग से जीवन के अत्यन्त व्यापक अग को कवि ने अपनाया है। सामाजिक वर्णनो मे सामूहिक समाज के नही किन्तु उसके एक अवयव परिवार के कुछ अत्यन्त स्वाभाविक चित्र 'ईर्ष्या' सर्ग मे है। इसी प्रकार परवर्ती सभ्यता की अनेकरूपिणी राजनैतिकता तो नही किन्तु अपने ढग से सारस्वत प्रदेश के वर्णन मे नगर-वर्णन व राजनैतिक प्रसग भी मिल ही जाते है। प्रकृति का तो प्रश्न उठाना ही व्यर्थ है। इस समस्त काव्य की घटनाओ की रगस्थली प्रकृति की उन्मुक्त क्रोड़ है। प्रकृति का महत्त्व इस काव्य मे लगभग एक स्वतन्त्र पात्र का-सा है। कवि 'हिमगिरि के उत्तुग शिखर' से आरम्भ कर 'समरस थे जड या चेतन' पर अत करता है। प्रकृति का प्रवेश और निर्गम दोनो किसी भी अन्य पात्र से कम महत्त्वपूर्ण नही। उसके अनेक भव्य, विराट्, भयकर और रमणीय, आह्लादक व उद्दीपक रूप काव्य मे यथास्थान बिखरे है। इन वर्णनो को रूढि-पालन के लिए नही अपनाया गया, अतः इनमे विवरणात्मक प्रवृत्ति नही, नामपरिगणन नही, प्रसग और विषय की आवश्यकता के अनुसार सौन्दर्य का उन्मेष है, सर्वथा नवीन दृष्टि है, नवीन सादृश्य-विधान और बाह्य एव आन्तरिक दोनो प्रकार के सौन्दर्य का उन्मीलन है।

अमूर्त के क्षेत्र मे जिन प्रवृत्तियो को विषय बनाया गया है वे शाश्वत और सर्वव्यापी तो है ही साथ मे विविध और नानारूपिणी भी है। लज्जा, श्रद्धा जैसे कोमल भावो से लेकर ईर्ष्या, वासना आदि उत्तेजक मनोवृत्तियो, काम और इड़ा जैसी व्यापक प्रवृत्तियो और आनन्द और सामरस्य जैसे चरम सत्य के अभिज्ञान को कवि ने विषय-परिधि मे समाविष्ट कर लिया है। कही-कही स्वगत के रूप मे पात्रो की भावनाओ का सुन्दर आत्मविश्लेषण प्रस्तुत है। सम्पूर्ण 'काम' सर्ग मे मनु के द्वारा आत्माभिज्ञान का प्रयत्न ऐसा ही है। प्रश्नोत्तर शैली मे यह आत्म-परीक्षण अत्यन्त सुन्दर बन पडा है—

मेरी अक्षय निधि ! तुम क्या हो,
पहचान सकूंगा क्या न तुम्हें ?
उलझन प्राणों के धागों की
सुलझन का समझूँ मान तुम्हें ?[1]

कही-कही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक तथ्यो का अत्यन्त सरल और विश्लेषणात्मक रूप मे वर्णन है। मनुष्य के अवचेतन की सजगता का नियम इस प्रकार काव्यबद्ध हुआ है—

था व्यक्ति सोचता आलस में
चेतना सजग रहती दुहरी,
कानो के कान खोल करके
सुनती थी कोई ध्वनि गहरी।[2]

इस प्रकार कथा की आवश्यकता के अनुसार मूर्त और अमूर्त अत्यन्त व्यापक रूप मे इस काव्य मे वर्णित है। नियमावला के अनुकूल न सही, परन्तु वर्णन-विस्तार, भव्यता और विशदता 'कामायनी' मे सहज प्राप्य है।

'मेधावी' मे घटनाएँ नही, वर्णन नही, विचारो का विस्तार दूर-दूर तक हुआ है। नाम गिनाने के लिए इतिहास, भूगोल, ग्रह-विज्ञान, समाज शास्त्र सभी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र इस काव्य की परिधि मे है, किन्तु किसी पक्ष-विशेष का जमकर कुछ दूर तक वर्णन कवि ने नही किया। वर्णन और उल्लेख मे अन्तर होता है। इन विविध क्षेत्रो मे घटित होने वाली घटनाओ का कवि उल्लेख करता है वर्णन नही, अत किसी प्रकार का स्थिर व गतिमय दृश्य-विधान या विस्तृत वर्णन 'मेधावी' मे नही मिलता। कवि को प्रसग-विशेष पर रुकने का अवकाश ही नही। केवल प्राकृतिक वर्णन इस काव्य मे रुककर किये गए है। ये स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन कही-कही विशेष गतिमय और विशद है—

हरियाली स्पंदित थी मरकत
सी जगमग डोल रही प्रशांत
अपने गर्जन में महासिंधु
मर्मर का घोष करे नितांत
उस सागर में वह नदी नील
करती थी महा विसर्जन सा
'डेल्टा' की उपजाऊ पृथ्वी
युग युग धारा में क्षण भर था
बादल फटते जाते थे नभ
में करके स्वर्णिम मृदुल हास

---

१. कामायनी—जयशकरप्रसाद, अष्टम संस्करण, स० २०१०, पृष्ठ ६६
२. वही, पृष्ठ ७०

वह झूम झूम चलता समीर
चल चित्र एक रंगीन भास।[1]

आलबन-रूप ही नही, प्रकृति के तत्त्वो की आत्मपरिचय के रूप मे काव्यमय व्याख्या भी कही-कही की गई है। अग्नि का परिचय देखिये—

हिरण्यगर्भा सुलग उठी हूँ
आह सूर्य्य की भीषण प्रतिध्वनि
करती ततु तंतु मे गर्जन
अधकार में किलक उठी हूँ
स्वर्ण मेघ सी
अंध वेग सी
मैं अणु अणु में पुलक उठी हूँ।[2]

प्रकृति के अतिरिक्त जीवन के अन्य पक्षो के वर्णन कवि ने नही किए। अमूर्त भाव या विचारो का भी वह विश्लेषण नही करता, परिचय भी नही देता। इन अमूर्त प्रसगो मे अभिव्यक्ति का स्वर वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक न होकर प्रतिपादनात्मक है। सैद्धान्तिक विचारधारा के परिपोष के लिए जिन मूर्त वस्तुप्रधान घटनाओ का उल्लेख किया गया है उनमे न इतिवृत्तात्मक दृष्टि है और न समाख्यानात्मक, अतः ये प्रसग भी वर्णन न होकर उद्धरण बन गए है। वैसे उनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विविधतापूर्ण है। इतिहास, भूगोल, धर्म, दर्शन समाज और सस्कृति सभी इस काव्य के परिनिवेश मे समाहित है, पर इसी बहुनिष्ठता के कारण एकाग्र या जमे हुए वर्णन किसी पक्ष के भी नही मिलते।

'तप्तगृह' की विषय-वस्तु ने वर्णनीय प्रसगो के लिए भी परिसीमा प्रस्तुत की है। कवि की योजना खडकाव्य लिखने की थी, और उसी के लिए उसके पास सामग्री थी। जीवन के सभी पक्षो का विस्तारपूर्वक अन्तर्भाव कथा मे ही नही है, अत सर्वांगीण वर्णनो का प्रश्न नही उठता। एक पक्ष विशेष (राजनैतिक) का भी अत्यन्त एकागी वर्णन है। इस पक्ष के जीवन्त रूप—युद्ध, विप्लव आदि का नही, षड्यन्त्र, कुमन्त्रणाओ, पारिवारिक और धार्मिक विद्वेष का वर्णन है। प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप मे अनेक प्रसगो मे ग्रहण किया गया है। उसके रम्य, उल्लासमय रूप के वर्णनो का अवकाश, काव्य के करुणा-प्रधान होने के कारण अधिक नही था, किन्तु कही-कही कवि ने वातावरण-निर्माण की कुशल क्षमता का परिचय दिया है। कारावास मे बिम्बसार की नापित द्वारा यातना की घटना से पूर्व का सूर्योदय, कवि की दृष्टि मे ऐसा प्रतीत होता है—

उदित हुआ अम्बर में
भासमान बाल-रवि
मानों कल्पान्त के
ध्वंसक अनल का

---

१. मेधावी—डा० रांगेय राघव, पृष्ठ ६४
२. वही, पृष्ठ ६५

लाल-लाल गोला हो।
व्योम प्रान्त भर गया
प्रखर ज्वाल-माला से
और लगा पिघल-पिघल
चक्रवाल जलने
भट्ठी की आंच से
शुष्क-काष्ठ-खण्ड ज्यों
धाँय धाँय जलता।[1]

इस चित्र मे न उल्लास है न स्फूर्ति, आगामी भयकर घटना का आभास मात्र है। प्रकृति-वर्णन मे कवि समर्थ है—ऐसा इन एकपक्षीय वर्णनो से भी प्रतीत होता है। प्रकृति के अतिरिक्त अन्य पक्ष—विशेषत सामाजिक, प्राय अछूते है। कुछ पारिवारिक प्रसग मिलते है, किन्तु परिवार-विशेष की स्थिति-विशेष मे घटित ये घटनाएं, परिवार-मात्र की नही है। जहाँ व्यक्ति के मानसिक सघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण है, वहाँ मानव-जीवन की शाश्वत समस्याओ या व्यापक प्रश्नो को नही उठाया गया। वे अन्तर्द्वन्द्व या मनोग्रथियाँ विशेष व्यक्तियो की है, जो विशेष प्रकार की परिस्थितियो मे विशिष्ट ढग से कार्यरत होते है। ये समस्याएं देश और काल से बद्ध है, और इस दृष्टि से उनमे शाश्वत्ता या व्यापकता का गुण नही है। इनका सम्बन्ध जीवन की मौलिक एव विविध प्रवृत्तियो से भी नही है। प्रत्येक पात्र आरम्भ से अत तक एक ही लीक पर सोचता और आचरण करता है। केवल अत मे परिवर्तन अजातशत्रु के व्यक्तित्व मे है, किन्तु उसके मूल मे घटना और अवसर का आघात है, वह सहज है मौलिक नही। मूर्त और अमूर्त दोनों दृष्टियो से 'तप्तगृह' मे एकपक्षीय वर्णन मिलते है।

'ऋतवरा' की कथा भी उस युग की कथा है जिससे 'कामायनी' की कथा का सम्बन्ध है। 'कामायनी' की ही भाँति सामाजिक और राजनैतिक वर्णनो का अवसर 'ऋतवरा' मे भी नही मिला। 'कामायनी' मे सारस्वत प्रदेश के प्रसग में राजनैतिक पक्ष का जितना भी समावेश हो सका था, 'ऋतवरा' मे उसका अवकाश भी नही रहा। जहाँ लेखक को मूर्त-घटनाओ के वर्णन का अवसर मिला है, वहाँ भी वह विशेष सफल नही हुआ। प्रलय की आरम्भिक घटना का वर्णन अत्यन्त असमर्थ, प्रभावविहीन और एकागी है। इसके उपरान्त चिन्तन-मनन व अनेक भावात्मक सत्यो का आख्यान है। अन्त मे वर्तमान जीवन की समस्याएं तथा उनके समाधान वर्णित है। इस प्रसग मे अनेक दार्शनिक व व्यावहारिक सत्यों का लेखक ने वर्णन किया है। इस प्रकार मूर्त उपादानो, तत्त्वो व प्रसगो का इतिवृत्त वर्णन करने के स्थान पर लेखक ने अमूर्त-चिन्तन और समस्याओ को अधिक उठाया है। जहाँ तक समस्याओं के विस्तार, चिरस्थायित्व और मौलिकता का प्रश्न है निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कवि ने वर्तमान जीवन के अनेक ज्वलन्त और वैविध्यपूर्ण प्रश्नो को उठाया है और उत्तर देने का प्रयत्न भी किया है। जीवन मे चेतन का महत्त्व, सृष्टि के विभिन्न उपादानों के परस्पर सम्बन्ध आदि दार्शनिक प्रश्न,

१. तप्तगृह—प्रभात, पृष्ठ ७७

व जीवन में कर्म और पौरुष की महत्ता, विभिन्न सामाजिक व आध्यात्मिक विडम्बनाएँ और आणविक युग मे उनके आशावादी समाधान आदि ऐसे अनेक व्यावहारिक प्रश्न है जिन्हे काव्य मे स्थान मिला है। कवि ने इन सब समस्याओ का बाह्य स्थूल रूप ग्रहण न करके आन्तरिक, भावात्मक रूप ही अधिक अपनाया है, उसके समाधान भी अन्तर्जगत्-सम्बन्धी ही है। ये समस्याएँ शाश्वत तो नही कही जा सकती, किन्तु व्यापक अवश्य है। ये व्यक्तियो की समस्याएँ न होकर समाजगत या विश्वव्यापी समस्याएँ है। अतः काल की दृष्टि से नही तो देश या स्थान की दृष्टि से निश्चय ही इनमे विस्तार और विविधता है। यह तो स्पष्ट है कि मूर्त के वर्णन मे कवि का दृष्टिकोण एकपक्षीय और वह भी असफल ही रहा है, अमूर्त की दृष्टि से उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत व्यापक एव सफल है। जीवन की वस्तुरूप समग्रता इस काव्य मे बिल्कुल नही मिलती। प्राकृतिक वर्णन मात्रा मे अधिक है किन्तु शैली नवीन है परम्पराभुक्त नही।

परिमाण एवं समग्र रूप—परिमाण और समग्र रूप का सम्बन्ध यदि बृहदाकार से ही मान लिया जाय, तो 'तप्तगृह' के अतिरिक्त ये सभी रचनाएं परिमाण की दृष्टि से बृहद है। रामचरितमानस-तुल्य तो नही, परन्तु महाकाव्य के लिए पर्याप्त पृष्ठसख्या इन काव्यो मे है ही। प्रश्न है कि केवल बाह्याकार मे विस्तार क्या किसी काव्य को महाकाव्य की कोटि मे परिगणित कराने के लिए पर्याप्त है? उत्तर होगा कि यदि यह विस्तार अन्त प्रेरित हो तो निश्चय ही। अर्थात्, महाकाव्य के बाह्य मे विस्तार विषय के अनुकूल होना चाहिए, अत यदि किसी ग्रन्थ के विषय मे विशदता, विस्तार, महाप्राणता और जीवन्तता हो, और उसका रूप-विधान विस्तारापेक्षी हो तो अन्त. और बाह्य का परस्पर अनुकूलत्व तथा सन्तुलन निश्चय ही शुभ होगा। इस दृष्टि से 'कामायनी' के अतिरिक्त इन सभी प्रबन्धो से निराश होना पडता है। विषय मे महाकाव्योचित प्राणवत्ता और विराट् दृश्य-शृखला किसी अन्य काव्य मे नही मिलती। इन काव्यो मे विस्तार है परन्तु पृष्ठसख्या का, विषय मे युग-जीवन की समग्रता, तथा भव्यता एव विस्तार की प्रेरक विविधता व सर्वांगीणता नही है। 'तप्तगृह' का विषय और बाह्याकार, दोनो ही इस दृष्टि से अपर्याप्त है। किसी काव्य के प्रभाव की गरिमा और महानता उसके आकार की अपेक्षा आत्मा और विषय पर अधिक निर्भर होती है।

'कामायनी' की कथा का आरम्भ प्रकृति के विराट् प्रागण मे हुआ है, विकास भी उसी पृष्ठभूमि मे होता है। मानव-सम्बन्धों और सौन्दर्य आदि का निसर्ग व प्रकृत रूप मे वर्णन होने के कारण उसमे एक प्रकार की जीवन्त और स्फूर्त चित्रमयता है। यह क्रम आद्योपान्त विराट् और कोमल, भव्य और उदात्त सभी प्रसगो मे बना रहा है। काव्य का समापन भी अत्यन्त भव्य, गरिमामय और विराट् दृश्य से हुआ है। प्रसगानुरूप स्फूर्ति, जीवन्तता, माधुर्य और रमणीयता तथा निसर्ग सौन्दर्य व विराट् दृश्य-शृखला सर्वत्र मिलती है। अमूर्त-व्यजना के पक्ष मे यह जीवन्तता मनोभावनाओं के तीव्र घात-प्रतिघात, उदय और विलय के रूप मे प्रतिफलित हुई है। 'विक्रमादित्य' के उत्तराश मे घटनाओ का ही अभाव है—अतः यह अश सर्वथा निर्जीव है। इसके पूर्व भी प्रकृति के कतिपय चित्रों के अतिरिक्त राजनैतिक पक्ष के भी विशद वर्णन, जिनके प्रभाव में सशक्त प्राणवत्ता हो, इस काव्य मे नही मिलते। काव्य के समग्र रूप मे गरिमा और महाप्राणता नहीं है। 'मेधावी' के विषय में विस्तृत दृश्य-योजना या विराट् चित्रमयता का प्रश्न

उठाना ही व्यर्थ है, यह विशेषता इस काव्य की विषय-योजना और कवि के दृष्टिकोण मे ही नही है। इस कृति के अधिकाश का स्वर बौद्धिक है और वह काव्य जो बुद्धि को उत्तेजित करे, अर्थ-ग्रहण करा सकता है, बिम्ब-ग्रहण नही। दृश्य की योजना, कल्पना और अनुभूति का सम्बन्ध राग-तत्त्व से अधिक है, अत. जिस काव्य मे विचार प्रेष्य हो, उसमे चित्रात्मकता या मूर्तिकला उतनी नही मिलेगी। ऐसे काव्य मे विचार-सम्बन्धी व्यापकता, जीवन्तता—और यदि विचार का सम्बन्ध किसी विराट् पक्ष से हो तो महाप्राणता हो सकती है। 'मेधावी' मे स्थान-स्थान पर अनेक विराट् तत्त्वो—ग्रह-नक्षत्रो, पचभूतो, सृष्टि के उपादानो, गतिमयता आदि को प्रसग बनाकर विश्लेषण किया गया है, किन्तु इसमे विश्लेषण अधिक है, वर्णन कम। साथ ही स्थिरता का अभाव है। कही-कही चित्र की कुछ रूपरेखा बनने लगती है तो कवि उसे वही अधूरा छोड किसी अन्य प्रसग पर बढ जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रसगो मे सुनिश्चित क्रमबद्धता या स्पष्ट व्यवस्था न होने के कारण, काव्य के समग्र रूप मे प्रभाव-सम्बन्धी एकाग्रता और जो आशिक चित्रमयता है—वह भी नष्ट हो गई है। विराट् और व्यापक तत्त्वो का जमकर वर्णन नही, उलझा-सा उल्लेख या विश्लेषण ही है।

'तप्तगृह' के विषय मे जैसा अनेक प्रसगो मे कहा जा चुका है—कथा, वर्णन, आदि एकपक्षीय होने के कारण, समग्र रूप मे भी एकागिता आ गई है। जीवन के विराट् और रम्य दोनो ही पक्षो का इस काव्य मे अभाव है। जो कुछ जीवन्तता इसमे मिलती है, उसका रूप अत्यन्त अस्वस्थ और निपट कठोर है, अत प्रभाव मे भव्यता और उदात्तता नही। शेष सब-कुछ करुणासिक्त है, इसलिए उसमे भी प्राणवत्ता और स्फूर्ति की अपेक्षा आर्द्रता ही अधिक है।

'ऋतवरा' की कला अत्यन्त कोमल और मसृण कला है। एकाध स्थल के अतिरिक्त अवकाश मिलने पर भी कवि विराट् और महाप्राण दृश्य अकित नही कर सका। 'कामायनी' मे मनु द्वारा पुन. स्मृत प्रलय की घटना मे भी 'ऋतवरा' की प्रत्यक्ष प्रस्तुति की अपेक्षा कही अधिक वेग और प्राणवत्ता है। 'ऋतवरा' का यह प्रसग अत्यन्त निष्प्राण है। इसके उपरान्त कोई अन्य विराट् घटना काव्य मे अन्त तक नही घटती। अन्त मे मनु को ब्रह्मा द्वारा विराट रूप-दर्शन मे किचित् भव्यता का आभास मात्र मिलता है। किन्तु मध्यवर्ती भाग विशेष चिन्तन-प्रधान होने के कारण जीवन्त नही। कवि ने शैली को कोमल और मधुर आभरणो से अधिक अलकृत किया है, अतः काव्य के समग्र रूप मे महाकाव्योचित महाप्राणता, जीवन्तता और विराट् और कोमल—जीवन के दोनो पक्षो का समान क्षमता से भव्य अकन नही मिलता।

निष्कर्ष रूप मे केवल आकार-विस्तार के अतिरिक्त काव्य के समग्र रूप और प्रभाव की दृष्टि से 'कामायनी' को छोड़कर शेष सभी रचनाओ मे महाकाव्य के लिए अपेक्षित सर्वा-गीणता, प्रभावान्विति, भव्यता और महाप्राणता का अभाव है।

शिल्प

सर्ग-विभाजन—सख्या की दृष्टि से विवेच्य कृतियो मे सभी का विभाजन आठ से अधिक सर्गों मे हुआ है। लक्षण-ग्रन्थो मे सर्ग-सख्या का दूसरा छोर निश्चित नही किया गया, अतः कहीं-कही यह संख्या सीमा का अतिक्रमण कर गई है। 'ऋतंवरा' और 'तप्तगृह' का विभा-

जन ११ सर्गों मे, 'कामायनी' और 'मेधावी' का क्रमशः १५ और १४ सर्गों में तथा 'विक्रमादित्य' का ४४ भागो मे हुआ है। इन ४४ खण्डो को सर्ग तो नही कहा जा सकता, क्योंकि प्रत्येक भाग मे एक सम्पूर्ण सर्ग के लिए पर्याप्त कथा का अभाव है। इस अतिविभाजन का कोई औचित्य प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। कही-कही नगण्य प्रसगो के लिए स्वतन्त्र विभागो की योजना की गई है। सत्ताइसवे सर्ग मे केवल एक प्रगीत मे जीवन की व्याख्या की गई है, अट्ठाइसवे मे एक पृष्ठ मे रानी के शृगार का वर्णन तथा सैंतीसवे मे मन्दिर-निर्माण का और तेतालीसवे मे कालिदास के द्वारा ग्रन्थ भेट करने का वर्णन किया गया है। ये वर्णन प्रायः दो पृष्ठों मे समाप्त हो गये है, अतः ये किसी सर्ग का अग बनाए जा सकते थे, इनके लिए स्वतन्त्र सर्ग-रचना की न आवश्यकता थी न औचित्य। सर्ग के विस्तार की दृष्टि से भी इनमे न उन शास्त्रीय लक्षणों का पालन है--जिसमे सर्गो के न दीर्घ और न अल्प होने का निर्देश किया गया था और न नवीनता की दृष्टि से कोई औचित्य या सिद्धि। शेष रचनाओ मे सर्ग-विभाजन उचित ही है। 'तप्तगृह' मे घटनाओ की न्यूनता के कारण सर्गो का आकार भी सीमित है। सर्गों का पृथक् नामकरण वर्णित कथा के आधार पर 'कामायनी' और 'ऋतवरा' मे किया गया है, शेष मे नही।

नामकरण—काव्य का नामकरण प्रचलित परिपाटी के अनुसार ही प्रधान पात्र (नायक या नायिका), प्रमुख घटनास्थल या काव्य के उद्देश्य पर किया गया है। 'कामायनी' का नामकरण नायिका और 'विक्रमादित्य' का नायक के नाम पर हुआ है। 'मेधावी' लेखक के अनुसार काव्य का नायक तो नही, किन्तु वह कल्पित पात्र है जिसके माध्यम से काव्य की अनेकरूपता को कुछ सीमा तक एकरूपता प्रदान की गई है। कम-से-कम वह केन्द्रबिन्दु है जहाँ से काव्य के परस्पर असम्बद्ध विषय-सूत्र सचालित होते है तथा जिस एकमात्र माध्यम से अन्यथा विशृखल चिन्तन-व्यापार को अन्वित करने का प्रयास किया गया है। मानव-मेधा के मानवीकृत रूप मे मेधावी काव्य का महत्त्वपूर्ण नियामक पात्र ही नही, एकाकी पात्र है। अत. उसकी महत्ता असदिग्ध है। 'तप्तगृह' का नामकरण प्रमुख घटनास्थल के नाम पर 'साकेत' के ढग पर किया गया है। 'ऋतवरा' नामकरण की व्याख्या करते हुए कवि ने भूमिका मे स्वय नाम का आधार स्पष्ट किया है। उन्होने काव्य का पहला नाम 'सर्ग' बदलकर—जिसका आधार महत्त्वपूर्ण घटना था, 'ऋतवरा' रख दिया। इस दूसरे नाम का आधार अपेक्षाकृत व्यापक, अर्थात् काव्य का उद्देश्य है। नामकरण की यह पद्धति अन्य रीतियो की अपेक्षा कम प्रचलित है।

वर्णन-रूढ़ियाँ—वर्णन-रूढियो की जितनी मुक्त मन से उपेक्षा इन काव्यो मे की गई, इनसे पूर्व नही मिलती। परम्परा-परित्याग का थोड़ा-सा प्रयत्न 'प्रियप्रवास' आदि की रचना के साथ हो आरम्भ हो चुका था, किन्तु वह इस आगामी विद्रोह का आभास मात्र था। इन रचनाओ मे एक बार ही रूढियो से मुक्ति पा ली गई। इनकी कला रूढ़िमुक्त कला है। जिन परम्पराओं का पालन इनमे मिल जाता है वह सहज रूप मे आ गया है सायास नही किया गया। 'ऋतवरा' और 'तप्तगृह' के अतिरिक्त तीनों काव्यों का आरम्भ सीधे प्रकृति-वर्णन या कथा-वर्णन से हुआ है। 'ऋतवरा' और 'तप्तगृह' में कवि ने मंगलाचरण की योजना की है। किन्तु आधुनीकरण करके। किसी आराध्य देव की जयजयकार से काव्यारम्भ उन्होने भी नहीं किया। 'तप्तगृह' मे मानव की वन्दना से कवि आरम्भ करता है और 'ऋतवरा' मे वाणी-वन्दना से।

वस्तुनिर्देश, आशीर्वचन, निजपरिचय आदि निर्जीव रूढियाँ सभी ने त्याग दी हैं। वास्तव में गद्य-भूमिकाओं के इस युग में काव्य में छन्दोबद्ध वस्तुनिर्देश की उतनी आवश्यकता भी नहीं। इसी प्रकार मुद्रण-कला और व्यक्तिगत-प्रसिद्धि के अभाव में कवियों को आत्म-परिचय के लिए जो वंशावलियाँ गिनवानी पडती थी उनकी भी आज कोई अपेक्षा नही। काव्य-वस्तु के स्रोत, स्वरूप और प्रेरणा की इन कवियो ने भूमिका मे तर्क और प्रमाण-पुष्ट व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त जो छन्दोबद्ध तथा भावमय वस्तुनिर्देश, युग और परिस्थितिवश किया जाता था उसका वर्तमान समय मे कोई तर्कसम्मत औचित्य भी नही है, अत उसका परित्याग ठीक ही है। सर्ग के अन्त मे आगामी कथा-सूचना भी नियमित रूप से सभी सर्गों मे नही दी गई है। हर काव्य में प्रायः सर्ग के अन्त मे भावी कथा का सकेत मिल जाता है किन्तु ऐसा वही हुआ है जहाँ सहज सम्भव बन पडा है, केवल रूढ़िपालन के लिए नही।

छन्द-विधान—महाकाव्य के प्रसग मे छन्द-योजना सम्बन्धी तीन विशेषताएँ विवेच्य है। प्रयुक्त छन्द का प्रकार, छन्दो की विविधता व परिवर्तन का ढग—जिसमे एक छन्द में सर्ग-रचना व सर्ग के अन्त मे छन्द-परिवर्तन, दोनो ही बाते विचारणीय होगी। रूप-विधान के अन्य अगो की भाँति, छन्द-विधान के क्षेत्र मे भी इन कवियो ने अपने मार्ग का आप निर्माण किया है। इनका छन्द-विधान मौलिक है और परस्पर भिन्न। एक विशेषता इन सभी काव्यो मे समान रूप से विद्यमान है। इनके छन्द शास्त्रीय हो अथवा मुक्त—किन्तु है मात्रिक। वर्णिक छन्दो का प्रयोग इनमे नही किया गया। 'तप्तगृह' और 'मेधावी' की रचना मुक्त छन्द मे हुई है। 'कामायनी' और 'विक्रमादित्य' मे प्रयुक्त छन्द विविध, किन्तु प्राय शास्त्रीय छन्द है और 'ऋतवरा' में शास्त्रीय और मुक्त दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग यथावसर किया गया है। एक सिद्धि जो सहज सभव बन पड़ी है, वह इनके विषय और माध्यम छन्द का परस्पर अनुकूलत्व है। विषय और अभि-व्यक्ति के इस पारस्परिक सामजस्य की सिद्धि के लिए इन कवियो ने पिगलशास्त्र की अवहेलना कर दी किन्तु कृति के कलात्मक उत्कर्ष मे बाधा नही आने दी। जहाँ चिरपरिचित छन्दो का प्रयोग किया गया है वहाँ भी उनके चयन मे विशेष सुरुचि और विवेक का परिचय मिलता है। कुछ विशिष्ट उदाहरणों से उक्त धारणा पुष्ट हो सकेगी। अस्तु—

'कामायनी' मे अधिकतर पूर्व-प्रचलित मात्रिक छन्दो का आश्रय लिया गया है किन्तु परम्परागत ढाँचो मे यति के प्रयोग-वैविध्य से कवि ने अनेक रूपान्तर प्रस्तुत किये है। भाव मे गति व विराम के अनुकूल यति-प्रयोग मे कही-कही विशेष कौशल व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार विराम चिह्नों के यथास्थान कुशल प्रयोग से प्रायः प्रभावोत्पादकता मे वृद्धि हुई है—

जलनिधि के तलवासी जलचर
विकल निकलते उतराते,
हुआ विलोड़ित गृह, तब प्राणी
कौन! कहाँ! कब! सुख पाते ?[1]

अन्तिम पंक्ति मे प्रत्येक शब्द के उपरान्त प्रयुक्त होने वाले विराम-चिह्नों से एक पंक्ति में तीन प्रश्नों का समावेश हुआ है। कवि ने यति और विराम-चिह्नों के प्रयोग मे तो स्वतन्त्रता

१. कामायनी—प्रसाद, पृष्ठ १६

से काम लिया ही है मात्राओं की दृष्टि से भी परम्परागत ढाँचे दृढतापूर्वक नहां अपनाए। मात्राओं की गणना में न्यूनाधिक दोष अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। कदाचित् पढने में छन्द की लय और प्रवाह की रक्षा के लिए मात्राओं में व्यतिक्रम किया गया है, किन्तु मात्राओं के न्यूनाधिक्य से छन्द की गति या लय मे किसी प्रकार का व्यवधान या प्रवाह मे अवरोध उत्पन्न नहीं होता, बल्कि लय की रक्षा के लिए ही कवि ने कुछ स्थलो पर मात्राओ के बन्धन की उपेक्षा की है और अन्यत्र अन्तर्यतियो का प्रयोग किया है। प्रसादजी ने भाव और प्रसग की आवश्यकता के अनुसार छद अपनाए है। 'चिन्ता' सर्ग की रचना वीर और ताटक छन्द मे, 'आशा', 'स्वप्न', और 'निर्वेद', की ताटंक मे हुई है। 'श्रद्धा', और 'ईर्ष्या' मे कवि ने शृगार-राग छन्द का प्रयोग किया है।, 'काम' और 'लज्जा' सर्ग मे मत्तसवैया का अर्द्धसम रूप मिलता है और 'कर्म' सर्ग मे सार छन्द का। 'वासना' सर्ग कवि ने रूपमाला छन्द मे लिखा है और 'सघर्ष' मे रोला छन्द का प्रयोग युग्मको मे किया गया है। 'दर्शन' सर्ग मे चौपाई की नवीन अन्त्यक्रम योजना है तथा 'आनन्द' सर्ग किचित् परिवर्तित लय के मानव छद मे रचित है। 'इडा' सर्ग मे प्रयुक्त मिश्र छन्द प्रगीतात्मक शैली मे नवीन अन्त्यक्रम योजना से प्रयुक्त हुआ है। पहली और नवी पक्ति मे १६ तथा अन्य में ३२ मात्राएँ है। यह योजना कवि की अपनी है।

'कामायनी' का छन्द-विधान सभी सर्गों मे विशेष भावानुकूल है। प्रथम सर्ग मे चिन्ता की उत्तेजना, उद्वेग और क्षण-क्षण परिवर्तित विचार-प्रवाह के अनुकूल कवि ने बडी पक्ति के ताटक और वीर छदो का प्रयोग अर्द्धसम रूप मे किया है,जिससे गति मे विशेष क्षिप्रता आ गई है। काव्यारम्भ मे कथा का यह वेग 'वासना' सर्ग तक पहुचते-पहुँचते मन्थर होने लगता है। 'वासना' सर्ग के वर्णन अपेक्षाकृत स्पष्ट और स्फीत है। भाव के अनुकूल छन्द का आकार भी बडा हो गया है, जिसकी गति सरल-चटुल नही, उसमे मन्थरता है। शैली मे भी साकेतिकता या प्रतीकात्मकता के स्थान पर वर्णन-विशदता आ गई है। अत.—

एक माया! आ रहा था पशु अतिथि के साथ,
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ![1]

आदि पक्तियो मे वर्णनात्मकता के अनुकूल आकार भी बडा है। 'लज्जा' सर्ग मे फिर नायिका श्रद्धा के भाव-परिवर्तन मे गति है। नाना प्रकार के प्रश्नोत्तर उदित और विलीन होते है। ऊहापोह मे जिज्ञासा है, थिरकन है, अत· कवि फिर पुराने १६ मात्रा की पक्ति वाले अर्द्धसम छद पर लौट गया है—

तुम कौन? हृदय की परवशता?
सारी स्वतंत्रता छीन रही,
स्वच्छन्द सुमन जो खिले रहे
जीवन बन से हो बीन रही।[2]

इसी प्रकार 'इडा' सर्ग मे मनु के चिन्तन मे जो अवसाद-जनित शैथिल्य और जड़ता है,

---

१. कामायनी—प्रसाद, पृ० ८३
२. वही, पृ० ९९

उसे कवि ने ३२ मात्राओ की बडी पक्तियों मे बाँधा है। यही नहीं इस प्रकार के अनेक उदाहरण 'कामायनी' से दिए जा सकते है।

'विक्रमादित्य' मे डा० प्रतिपालसिह के अनुसार केवल तीन, किन्तु वास्तव में तीन से अधिक प्रकार के मात्रिक छदो का प्रयोग हुआ है। डा० सिह ने इस काव्य के अधिकाश की रचना वीर छन्द मे और शेष की पद्धरि (१६) और गीत मे मानी है। किन्तु इनके अतिरिक्त कवि ने २८ मात्राओ वाले सार छन्द—

बहकी बाते जाने दो तुम हे योगी आचारी !
बहुत टिप्पणी हो ली मेरी मैं हूँ अति आभारी।

आदि का प्रयोग भी किया है। 'कामायनी' की ही भाँति मात्राओं की सख्या मे अनेक स्थानो पर नियम-उल्लघन भी किया गया है। यति के प्रयोग व अन्त मे लघु-गुरुक्रम के निर्वाह मे सर्वथा स्वेच्छाचार से काम लिया गया है। नियमित मात्रा-सख्या के अतिरिक्त यति-प्रयोग और लघु-गुरुक्रम कवि का अपना है। इस प्रकार परम्परागत छदो की अवहेलना तो नही किन्तु उनमे प्रसग और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन मिलता है।

'मेधावी' और 'तप्तगृह' की रचना मुक्त छन्द मे हुई है, किन्तु जहाँ 'तप्तगृह' के कवि ने केवल यति और विराम के बन्धन से मुक्ति स्वीकार की है वहाँ 'मेधावी' मे पक्तियो के आकार मे भी पारम्परिक अनुपात की दृष्टि से स्वच्छन्दता अपनायी गई है। 'मेधावी' की रचना अतुकान्त मुक्त छन्द मे हुई है। कही-कही कुछ दूर तक पक्तियाँ मात्राओ की दृष्टि से समान है, किन्तु इस प्रकार का कोई नियमित विधान नही। पक्ति का अथ व इति भाव, विचार और प्रसग की आवश्यकता के अनुसार कर दिया गया है। कही छन्द की पक्ति एक ही शब्द और कही १६ मात्राओं मे समाप्त होती है। ११ और १२ सर्ग मे लगभग सम्पूर्ण सर्गों की ही रचना १६ मात्रा के अतुकान्त, व कही-कही तुकान्त छन्द मे हुई है। इस प्रकार कोई निश्चित छन्द-विधान 'मेधावी' मे नही मिलता। काव्य की छन्द-योजना हर दृष्टि से मुक्त है। 'तप्तगृह' की भूमिका मे कवि ने स्वय अपनी छन्दविधान-पद्धति की ओर सकेत किया है—"जहाँ भाव रुकता है वही अपने-आप छन्द भी रुक जाता है।"[1] अत कही-कही सम्पूर्ण पृष्ठ मे उक्त मान्यता के अनुरूप निर्बाध रूप से बिना यति या विराम के एक ही भाव प्रवाहित हुआ है। भाव की अन्विति पृष्ठ की पूर्ति के साथ होती है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा प्रयुक्त मुक्त छन्द मे विविधता नही है। आकार की दृष्टि से पक्तियाँ प्राय: १० से १२ मात्राओ के बीच मे है। इस प्रकार विस्तार की दृष्टि से उनमे विशेष अन्तर या भेद नही, केवल वाक्य या भाव की पूर्ति पक्ति की पूर्ति के साथ नही होती और वह एकाधिक पक्तियो मे प्रवाहित रहता है। यति, विरामादि के बन्धन या लघु-गुरु मात्राओ का नियन्त्रण उन्होने स्वीकार नही किया। 'तप्तगृह' की यह छन्द-योजना विषय के सर्वथा अनुकूल है। 'मेधावी' की छन्द-रचना मे नवीनता व वैविध्य है परन्तु कही-कही ऋजु-सरल प्रवाह नही।

'ऋतवरा' मे छन्द-रूपो का जितना वैविध्य मिलता है, उतना अन्य किसी काव्य मे

---

१. तप्तगृह—प्रभात, निवेदन, पृष्ठ २

नही। कवि की छन्द-योजना मौलिक है। आमुख की रचना मुक्त छन्द में हुई है। दूसरे सर्ग का छन्द तीन पक्तियो का कवि का अपना छन्द है, जिसकी प्रथम दो पक्तिया प्राय १६ मात्रा और तीसरी २४ मात्रा की है। कुछ दूर पर छोटी पक्ति १४ मात्रा की रह गई है। तीसरे सर्ग की रचना १४ मात्रा के मानव छन्द मे की गई है। बीच-बीच मे कवि छन्द बदलता रहा है जिसके रूप मे रचना-सम्बन्धी कोई बन्धन नही है। चौथे और पाँचवे सर्ग के अधिकाश की रचना १६ मात्रा के शृगार छन्द मे हुई है। सातवे तथा नवम सर्ग का आरम्भिक भाग भी इसी छन्द मे रचित है। अन्य प्रयुक्त मात्रिक छन्दो मे २३ मात्रा के अवतार, २८ मात्रा के सार और २२ मात्रा के राधिका छन्द का उल्लेख किया जा सकता है। इन छन्दो के प्रयोग मे अन्त्यानुप्रास के अतिरिक्त यति और मात्रा के बन्धनो की कवि ने अवहेलना ही की है। लय के सगीत पर विशेष बल देने के कारण कही-कही मध्यानुप्रास तथा लय की रक्षा के लिए वर्तनी भी अशुद्ध हो गई है—

तू क्या है, यह मैं बूझ न सका
अपना अस्तित्व समझ न सका![1]

उपर्युक्त परम्परागत छन्दो के अतिरिक्त मिश्र छन्द का प्रयोग कवि ने यथावसर किया है। कही-कही यह मिश्र छन्द प्रसग मे विशेष उपयुक्त बन पडा है—

दिवस-रग निज-नयन-रम लगा उघारने
नद-नदी-नगेश को
कूल को, कछार को
क्षितिज को, दिगत को
व्योम के प्रसार को
वन-विटप समूह को
सघन डाल-डाल को
पुष्प लता व्रज को
भूमि महाजाल को
झूम-झूम कर उषस से लगा पुकारने।[2]

छन्द की प्रथम और अन्तिम पक्ति मे भूमिका और उपसहार की मथरता और विराम है। बीच मे प्रकृति के अलग अलग तत्वो की गणना के साथ पक्ति छोटी होने के कारण थिरकन उत्पन्न हो गई है। प्रत्येक पक्ति के अन्त के साथ क्रम टूटकर नई पक्ति के क्रम भटके के साथ जुड जाता है, और प्रत्येक पदार्थ की पृथक् गणना अलग देकर की गई प्रतीत होती है। ब्रह्मा के चिन्तन, क्षोभ, पराजित भाव और सृजन समाधि के सकल्प का वर्णन कवि ने विशेष उपयुक्त छन्द मे किया है। अनेक प्रश्नोत्तर छोटी-बडी पक्तियो मे सफलतापूर्वक बंधे है। छोटी पक्ति मे मनोगत हलचल त्वरित गति मे प्रश्न करती है और अनुगामिनी बडी पक्ति मे उत्तर का

१. ऋतवरा—प्रभात, पृष्ठ १३
२. वही, पृष्ठ १०५

विराम, आश्वासन, व्यंजित होता है। अन्तिम गुरु लघु पर पंक्ति आकर ठहर जाती है—

हार कर जाऊँ कहाँ मैं ?
पार भी पाऊँ कहाँ मैं ?
छोड़ एकाकी मुझे यह जा रहा उच्छ्वास।[1]

मुक्त छन्द का प्रयोग भी कवि ने समान सफलता से किया है—

ज्योति वह तेरी, वरण कर
पथ विपुल आगे चरण धर
खोल देंगे अन्ध तम का द्वार
तेरे ही प्रखर-शर
गूंजता ज्याघोष नव आलोक-रथ का
है यही आह्वान पथ का
रुक न तू
तेरे लिए ही
प्रलय-तम से निकलकर आया सृजन का भोर।[2]

आरम्भिक छोटी-बड़ी पंक्तियों में व्यक्त नाना-रूपात्मक उद्बोधन अन्तिम पंक्ति में निष्कर्षात्मक सन्देश के आश्वासन में बदल गया और पंक्ति तदनुकूल बड़ी हो गई है। इस प्रकार 'ऋतंवरा' में छन्द-विधान की दृष्टि से प्राचीन और नवीन सरणियों का सुचारु योग हुआ है। कवि ने यह प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन या नवीनता के दुराग्रहवश न करके विषय और प्रसंग की आवश्यकता के अनुकूल किया है।

छन्द-विधान की अन्य दो शास्त्रीय परम्पराओं का भी यथावत् पालन इन कृतियों में नहीं किया गया। 'कामायनी' और 'विक्रमादित्य' में सर्ग-रचना प्रायः एक छन्द में की गई है किन्तु शेष रचनाओं में सर्ग के बीच में स्वेच्छा और आवश्यकता के अनुकूल छन्द बदल दिया गया है, अतः छन्द-परिवर्तन के लिए अन्त तक रुकने का प्रश्न नहीं उठा। 'कामायनी' और 'विक्रमादित्य' के अधिकांश सर्गों की रचना एक ही छन्द में होने पर भी, सर्ग के अन्त में नियमित रूप से तो क्या कहीं भी छन्द-परिवर्तन की रूढ़ि का पालन नहीं किया गया है।

अलंकरण—कला के अन्य प्रसाधनों की भाँति कविता-कामिनी की अलकृति के लिए भी इन कृतिकारों ने नवीन आभरण जुटाए हैं। जिस युग में इन काव्यों की रचना की गई उस समय तक छायावाद अपने चरम उत्कर्ष की प्राप्ति के उपरान्त क्रमशः ह्रासोन्मुख हो रहा था किंतु छायावादी रेशमी कला, अभिव्यंजना की रमणीयता, सामर्थ्य व नवीनता के प्रति कवि-वर्ग का आकर्षण पर्याप्त समय तक बना रहा। इन कवियों ने सूक्ष्म और अमूर्त विषय, लक्षणा और व्यंजना पर आश्रित अभिव्यंजना-पद्धति, तथा नवीन अलंकरण और सज्जा के जो शत-शत मार्ग उन्मुक्त कर दिए थे, उनमें से होकर परवर्ती कवि-समुदाय विचरण करता ही रहा। इन काव्यों

१. ऋतंवरा—प्रभात, पृष्ठ २१
२. वही, पृष्ठ १९०

की अलंकरण-कला बिम्ब-विधान, प्रतीकात्मकता, लक्षणा-वैचित्र्य और व्यजना व चित्रमयता आदि सभी दृष्टियों से नवीन है और इनका यह बाह्याभरण भाव-प्रेरित है, आरोपित नही। इन कवियों ने पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से आने वाले नवीन अलंकारों का तो प्रयोग बहुधा किया ही है साथ ही भारतीय अलंकार-शास्त्र मे निर्दिष्ट अनेकानेक साम्य-वैषम्य व विरोध-मूलक अलकारो का कुशल व सुन्दर प्रयोग किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त परम्परागत अलकारो मे भी इनका बिम्ब-विधान व योजना नवीन या मौलिक है। केवल कौतुक या चमत्कार के लिए अलंकार-योजना इन कृतियों मे शायद ही मिले। अतः शब्द चमत्काराश्रित शब्दालंकारो की अपेक्षा भावसौदर्य-प्रेरित अर्थालंकारों का प्रयोग ही अधिक किया गया है। कुछ प्रवृत्तियाँ सामान्य रूप से इन रचनाओं की अलकरण-कला मे लक्षित की जा सकती है—(क) प्राचीन साम्य व वैषम्यमूलक अलकारो मे मौलिक अप्रस्तुत-विधान से नवीनता की उद्भावना—

१. **उपमा का विपर्यय—**

उसी तपस्वी से लम्बे, थे
देवदारु दो चार खड़े

तथा

दूर दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान।[1]

उक्त पक्तियो मे तपस्वी और हृदय—काव्य के वर्ण्य का उपमान-रूप मे कथन किया गया है।

२. **नवीन उपमानों का प्रयोग—**

कही-कही मूर्त-विधान विशेष मौलिक और भावानुकूल है। अप्रचलित व नवीन उपमानो का चयन नवीन सौन्दर्योन्मेषिनी दृष्टि का बोधक है—

आज अमरता का जीवित हूँ
मै वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का
अधम पात्रमय-सा विष्कम्भ।[2]

विशिष्ट उपमानो का प्रयोग नवीन ही नही साभिप्राय भी है। यह कौशल 'कामायनी' के अतिरिक्त अन्य रचनाओ मे भी सुलभ है। 'मेधावी' मे तारो का वर्णन देखिए—

झिलमिल
झिलमिल
जैसे चखें से तूल खिचे
उठती आती है टीस ध्वनन

---

१. कामायनी—जयशकर प्रसाद, पृ० ३
२. वही, पृ० १८

हम सत्ता नद के फेन सरल–[1]

३ मूर्त के लिए अमूर्त, और अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत-चयन—

अमूर्त विषयो के स्वतन्त्र वर्णन ही नही, सादृश्य-विधान मे मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त का प्रयोग इन कवियो ने खुलकर किया है। गगन-चुम्बिनी शैल-श्रेणियो का वर्णन देखिये—

विश्व, मौन, गौरव, महत्व की
प्रतिनिधियो सी भरी विभा,
इस अनंत प्रांगण में मानो
जोड़ रही हो मौन सभा—[2]

'मेधावी' के कवि ने अरमानो की समता दहते साम्राज्य से की है—

अरे साम्राज्यो मे अरमान
सभी है खंडहर बनकर भग्न।[3]

उपमान मे विशेष व्यजना है। अरमानो मे साम्राज्य का-सा विस्तार, विस्तार की अन्तहीन लालसा, अवशेष और पतन सभी एक शब्द मे आ गया है। कही-कही इस प्रकार के अमूर्त मूर्त-विधान मे व्यजना प्रधानीय सी हो जाती है, कही व्यजना मे विशेष प्रेषणीयता मिल गई है। 'तप्त-गृह' मे वन्दीगृह के एक कारुणिक प्रभग के अवसर पर चाँदनी का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

पलकों की कोर मे
अश्रु का पराग लिए
सांझ आई धीरे से
आती ज्यो मन्द-चरण
सजला-सहानुभूति
मन के करुण-शून्य
शात रगमच पर
और डाल हल्की-सी
चादर तमिस्र की
मूर्च्छिता धरित्री के
धूसरित शरीर पर
लौट गई सपनो की
याद-सी सुहावनी।[4]

---

१ मेधावी—डा० रागेय राघव, पृ० १
२. कामायनी—जयशकर प्रसाद, पृ० ३०
३. मेधावी—डा० रागेय राघव, पृ० १
४ तप्तगृह—प्रभात, पृ० ९३

'ऋतंवरा' के कवि ने ब्रह्मा के अरुण-कज की व्याख्या इन शब्दों में की—

यह किसी मौन का रूपान्तर
अलिखित जिसके अविदित अक्षर
सब ओर तरंगित तरलायित जिसकी सुवास।[1]

४ अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत-विधान—

कहीं अलंकार-योजना में अमूर्त और सूक्ष्म का आग्रह इतना बढ़ गया है कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों ही अमूर्त रूप में प्रस्तुत हुए हैं। 'मेधावी' का ऋतु परिवर्तन का वर्णन करते हुए कहता है—

नाचो नाचो
हे परिवर्तन!
जैसे सुहागिनी की पलकों में
पलता प्रियतम का दुलार
अस्तित्व और कल्पना चित्र
पर ताना बाना खींच खींच
तू थिरक रहा रे बार बार।[2]

५. भावव्यंजक सादृश्य-विधान—

अप्रस्तुत-विधान जहां मूर्त जगत् के उपकरणों से किया गया है वहां भी विशेष सुन्दर और सटीक है। 'ऋतंवरा' में एक स्थल पर नदी का वर्णन करते हुए उसे 'नागिन' कहकर किया है। लुप्तोपमा का यह प्रयोग व्यंजना है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अलंकारों का भी इन कवियों ने प्रचुर और सुन्दर प्रयोग किया है। 'कामायनी' के चित्रण में प्रतीयमान उत्प्रेक्षा का एक प्रयोग इस प्रकार—

और उस मुख पर वह मुस्कान!
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।

उक्त उदाहरण के उपमानों में नवीनता ही नहीं, 'अम्लान' विशेषण और 'अलसाई' क्रिया में एक विशेष भाव-व्यंजना है, जिसका अपना सौन्दर्य है।

६. अप्रस्तुत-चयन में नागर दृष्टि—

मानसरोवर के वर्णन में उपमा और सन्देहालंकार का प्रयोग देखिए—

मरकत की वेदी पर ज्यों
रक्खा होरे का पानी;

---

१. ऋतंवरा—प्रभात, पृ० १६
२. मेधावी—डा० रांगेय राघव, पृ० ५१
३. कामायनी—जयशंकर प्रसाद, पृ० ८७

हम सत्ता नद के फेन सरल–[1]

३ मूर्त के लिए अमूर्त, और अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत-चयन—

अमूर्त विषयो के स्वतन्त्र वर्णन ही नही, सादृश्य-विधान मे मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त का प्रयोग इन कवियो ने खुलकर किया है। गगन-चुम्बिनी शैल-श्रेणियो का वर्णन देखिये--

विश्व, मौन, गौरव, महत्व की
प्रतिनिधियो सी भरी विभा,
इस अनंत प्रांगण में मानो
जोड़ रही हो मौन सभा—[2]

'मेधावी' के कवि ने अरमानो की समता दहते साम्राज्य से की है--

अरे साम्राज्यो से अरमान
सभी है खंडहर बनकर भग्न।[3]

उपमान मे विशेष व्यजना है। अरमानो म साम्राज्य का-सा विस्तार, विस्तार की अन्तहीन लालसा, असन्तोष और पतन सभी एक शब्द म आ गया है। कही-कही इस प्रकार के अमूर्त सादृश्य-विधान की योजना प्रेषणीय भाव की व्यजना म विशेष सहकूल सिद्ध हुई है। 'तप्त-गृह' म बन्दीगृह के एक कारुणिक प्रसग के अवसर पर चाँदनी का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

पलकों की कोर मे
अश्रु का पराग लिए
सांझ आई धीरे से
आती ज्यों मन्द-चरण
सजला-सहानुभूति
मन के करुण-शून्य
शांत रंगमच पर
और डाल हल्की-सी
चादर तमिस्र की
मूर्च्छिता धरित्री के
धूसरित शरीर पर
लौट गई सपनो की
याद-सी सुहावनी।[4]

---

१ मेधावी— डा० रागेय राघव, पृ० १
२. कामायनी-- जयशकर प्रसाद, पृ० ३०
३. मेधावी—डा० रागेय राघव, पृ० १
४. तप्तगृह—प्रभात, पृ० ९३

— 'ऋतवरा' के कवि ने ब्रह्मा के अरुण-कज की व्याख्या इन शब्दो मे की—

यह किसी मौन का रूपान्तर
अलिखित जिसके अविदित अक्षर
सब ओर तरगित तरलायित जिसकी सुवास।[1]

४ अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत-विधान—

कही अलकार-योजना मे अमूर्त और सूक्ष्म का आग्रह इतना बढ गया है कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो ही अशरीरी रूप मे प्रस्तुत हुए है। 'मेधावी' का कवि परिवर्तन का वर्णन करते हुए कहता है—

नाचो नाचो
हे परिवर्तन !
जैसे सुहागिनी की पलको म
पलता प्रियतम का दुलार
अस्तित्व और कल्पना चित्र
पर ताना बाना खींच खींच
तू थिरक रहा रे बार बार।[2]

५. भावव्यंजक सादृश्य विधान—

अप्रस्तुत-विधान जहा मूर्त जगत् के उपकरणो से किया गया है वहा भी विशेष सुन्दर और सटीक है। 'ऋतवरा' मे एक स्थल पर नेत्रो का वर्णन करते हुए 'पूजा की गोला' कहकर किया है। लुप्तोपमा का यह प्रयोग व्यजनापूर्ण है। उपमा ही नही, रूपक, सन्देह आदि अलकारो का भी इन कवियो ने प्रचुर और सुन्दर प्रयोग किया है। 'कामायनी' के रूप-वर्णन मे प्रतीयमान उत्प्रेक्षा का एक प्रयोग इस प्रकार है—

और उस मुख पर वह मुस्कान !
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।[3]

उक्त उदाहरण के उपमानो मे नवीनता ही नही, 'अम्लान' विशेषण और 'अलसाई' क्रिया मे एक विशेष भाव-व्यजना है, जिसका अपना सौन्दर्य है।

६. अप्रस्तुत-चयन में नागर दृष्टि—

मानसरोवर के वर्णन मे उपमा और सन्देहालकार का प्रयोग देखिए—

मरकत की वेदी पर ज्यो
रक्खा होरे का पानी;

---

१. ऋतवरा—प्रभात, पृ० १६
२. मेधावी—डा० रागेय राघव, पृ० ५१
३. कामायनी— जयशकर प्रसाद, पृ० ४७

छोटा-सा मुकुर प्रकृति का
या सोयी राका रानी।[1]

इन पंक्तियों के बिम्ब-विधान में सौन्दर्य ही नहीं एक विशेष नागर भाव और समृद्ध दृष्टि है। इसी प्रकार 'ऋतंवरा' में—

यह महाशून्य का स्फुटित नयन,
अथवा मोहक मांगल्य-अयन,
या वह अंकुर फूटेंगे जिससे नव विचार।[2]

७. वैषम्यमूलक प्रचलित अलंकारों का प्रयोग—

वैषम्यमूलक अलंकारों में विरोधाभास का कहीं-कहीं अत्यन्त सुन्दर उपयोग किया गया है—

जीवन! जीवन की पुकार है
खेल रहा है शीतल दाह—[3]

इसी प्रकार 'मेधावी' में—

रे चिर जीवन
हे अमर मरण
तू तो स्थिति का स्थिति में ही लय—[4]

'तप्तगृह' से इसी प्रकार की अलंकृत पंक्तियाँ हैं—

आंखें थीं सावन के
नीर भरे शून्य-सी
और वह लगता था
तेज-हीन दीपक-सा।[5]

(ख) उपर्युक्त कतिपय प्रचलित अलंकारों के प्रयोगों के साथ इन कवियों ने कहीं-कहीं चमत्कारप्रधान प्राचीन अलंकारों का भी भावप्रेरित वक्रता के साथ प्रयोग किया है। 'कामायनी' में श्लेष का प्रयोग देखिए—

इन्द्रनील मणि महा चषक था
सोम **रहित उलटा लटका;**[6]

पुनरुक्ति के प्रयोग में प्रसाद ने विशेष कौशल का परिचय दिया है। इस अलंकार के प्रयोग में उतना कलाकौशल नहीं किन्तु फिर भी उचित प्रसंग में इसका प्रयोग भाव को विशेष प्रभाव-व्यंजक बना सकता है—यह स्पष्ट है। किसी विशेष अर्थ या भाव पर प्रसाद जब बल

१. कामायनी—प्रसाद, पृ० २८४
२. ऋतंवरा—प्रभात, पृ० १५
३. कामायनी—प्रसाद, पृ० २७
४. मेधावी—डा० रांगेय राघव, पृ० ४१
५. तप्तगृह—प्रभात, पृ० १४५
६. कामायनी, पृ० २४

देना चाहते है, तो पुनरुक्ति का ही प्रयोग करते है, और प्रभाव अभीष्ट होता है—

१ वे सब डूबे, डूबा उनका
विभव, बन गया पारावार
२ सुख, केवल सुख **का वह सग्रह**
३ शक्ति रही हाँ शक्ति—[1]

पहली पक्ति मे पतन का सर्वग्रासी रूप, दूसरे उदाहरण मे सुख का कैवल्य और तीसरे मे शक्ति की निश्चयात्मकता का भाव पुनरुक्ति के सहारे ही उभर कर स्पष्ट हो सका है।

नाम गिनाने के लिए कही केवल चमत्कार के आग्रहवश भी अलकारो के प्रयोग अप्राप्य नही किन्तु 'विक्रमादित्य' के अतिरिक्त ऐसे प्रयोग अन्य रचनाओ मे नही मिलेंगे। यमक का एक उदाहरण देखिए—

उस मन को क्या हो गया आज जो फिसल पड़ा चिकनाई लख,
इन चख की चख चख को देखो प्यासी रहतीं दृग रस चख चख।[2]

उपर्युक्त पक्ति मे 'चख' शब्द को लेकर जो चमत्कार उत्पन्न किया गया है उसमे न भाव-सस्कार है और न नाद-सौन्दर्य। शब्दालकार ही नही अर्थालकारो का प्रयोग भी कही-कही अत्यन्त असमर्थ और अभद्र है। निम्नाकित पक्तियो के रूप-वर्णन मे अप्रस्तुत-विधान इसी प्रकार का है—

आंखें उसकी फांक आम की या कालिन्दी का टुकड़ा,
दांतों में दाड़िम के दाने छाती पर हिमगिर के शृंग।[3]

कही-कही औचित्य का अतिक्रमण है। विषय और प्रसग के अनुकूल अलकार-विधान उचित नही बन पड़ा। अस्तमान सूर्य का वर्णन रूपक के द्वारा कवि ने इस प्रकार किया है—

है जहाँ सांध्य सिंहासन पर दिनकर महीप अभिषेक हुआ।[4]

अस्तमान सूर्य को महीप का अभिषेक कहना कहाँ तक उचित हो सकता है? कही बिम्ब-विधान मे मौलिक उद्भावना का प्रयत्न किया गया है, किन्तु नवीनता होने पर भी सौन्दर्य-चेतना और मार्दव का अभाव खटकता है।

खो स्नेह, प्रेम पाया मैंने, तुमने मेरा दु.ख बाँट लिया,
उस बढ़ते चिन्ता बिरवा को माली ने जड़ से छाँट दिया,
उस भूत भयानक को बढ़ता से वर्तमान ने डाँट दिया,
जीवन पोथी-पन्ना भविष्य-कर ने है उलट विराट किया।[5]

अशत: असमर्थ भाषा और अन्त्यानुप्रास का दुराग्रह भी भाव-सौन्दर्य के लिए उपर्युक्त पक्तियों मे घातक सिद्ध हुआ है।

१. कामायनी, चिन्ता सर्ग, पृ० ८-९
२. विक्रमादित्य—गुरुभक्तसिंह, पृ० ९७
३. वही, पृ० २९
४. वही, पृ० २७
५. वही, पृ० ७०

(ग) पाश्चात्य काव्य से गृहीत नवीन अलकारो का प्रयोग—

अब तक जिन प्रचलित अलकारो के प्रयोग का उल्लेख किया गया है, उनके अतिरिक्त मानवीकरण, ध्वन्यार्थ-व्यजना, विशेषण-विपर्यय आदि पाश्चात्य अलकारो का प्रयोग भी इन कवियो ने खुलकर, विशेष सफलता और अधिकार से किया है।

मानवीकरण

मानवीकरण का प्रयोग दो रूपो मे किया गया है—

(१) सीमित स्तर पर किसी भाव-विशेष या जड पदार्थ पर विशिष्ट मानवीय गुण का आरोप कर, वर्णन मे सजीवता लाने के लिए। चेतना के अशिक आरोप के रूप मे यह क्रम कुछ ही पक्तियो म वर्णन-सौन्दर्य या भावना के आरोप के लिए अपनाया गया है।

(२) मानवीकरण का दूसरा प्रयोग अपेक्षाकृत बडे स्तर पर पात्र-सृष्टि के रूप मे किया गया है। कवि ने जहा अमूर्त को विषय बनाया है, वहा समाख्यान शैली मे अमूर्त भाव या विचार का विश्लेषण न करके इन अशरीरी या जड तत्त्वो का मानवीकरण कर आत्म-विश्लेषण कराया है। इस प्रकार का प्रयोग कवि प्रसाद ने 'कामायनी' मे लज्जा, काम आदि अशरीरी भावनाओ के मूर्तिकरण के रूप मे किया है। जहा उनके पात्रो का व्यक्तित्व साकार है वहा भी उनमे प्राय उन्ही गुणो का समावेश है जो उनकी निरर्थक कथा मे दोहरे (मूर्त और अमूर्त) अर्थ की व्यजना कर सके—मनु, श्रद्धा, इडा आदि ऐसे ही पात्र है। मानवीकरण अलकार का पहले ढग का प्रयोग इन सभी काव्यो मे सहज प्राप्य है। 'कामायनी' के समग्र मे इस प्रकार के उदाहरण बिखरे है। प्रसाद के शब्दो मे रजनी—

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अचल,
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल।[1]

तथा

मृत्यु अरी चिर निद्रे!
तेरा अंक हिमानी सा शीतल।[2]

'मेधावी' का कवि 'गति के लास' का वर्णन इस प्रकार करता है—

वसुंधरा की स्फूर्ति मचलती
आज गर्भ के बाद जननि यह
स्नान किये निर्मल सी बैठी
लाज कर रही कोमल रह रह
नव शृंगार किये कल्याणी।[3]

---

१. कामायनी, पृष्ठ ४०
२. वही, पृष्ठ १८
३. मेधावी—डा० रागेय राघव, पृष्ठ ५८

'विक्रमादित्य' का निम्नांकित प्रकृति-वर्णन भी इसी पद्धति पर है—

सिंदूर लगा संध्या फूली, दिग्वधू बधाई गाती है,
आरती उतारेगी रजनी दीपक ले छिपती आती है,
अगड़ाई लेती कुमुद कली, दृग बंद कर रहे कंज सुमन
लहरों की लोरी सुन-सुनकर झुक-झुक पड़ते हैं मातल वन।[1]

'तप्तगृह' और 'ऋतंवरा' में भी इस अलंकार के अनेक सुन्दर प्रयोग हैं—

सजल करुणा को सभाले,
साधवाली साधना ले,
वन्दना नीरव, खड़ा अवसाद कोई पास ![2]

विशेषण-विपर्यय

मानवीकरण के बाद दूसरा प्रचलित अलंकार विशेषण-विपर्यय है। इस अलंकार के प्रयोग से अभिव्यंजना में लाक्षणिकता और भाव-वक्रता की सृष्टि होती है।

'कामायनी' में—

कायरता के अलस विषाद।

मोहमुग्ध जर्जर अवसाद।[3]

अलस और जर्जर क्रमशः विषाद और अवसाद के विशेषण न होकर देह-जीवन के विशेषण हैं। इसी प्रकार 'तप्तगृह' में—

किन्तु बिबसार शान्त
मानो सहार की
लपटों में बैठा हो
मौन कारुण्य का।

ध्वन्यार्थव्यंजना

ध्वन्यार्थव्यंजना का सम्बन्ध अर्थ-चमत्कार की अपेक्षा शब्द-चमत्कार से अधिक है, और इस प्रकार इस अलंकार के प्रयोग से भाषा में उत्पन्न होने वाला नाद-सौन्दर्य या अनुरणन अनुप्रास आदि अलंकारों का समकक्षी ही है। इस अलंकार के प्रयोग में अनेक स्थलों पर ध्वनि को शब्दबद्ध करने का सफल प्रयत्न इन कवियों ने किया है—

कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे।"[4]

कोमल ही नहीं भयंकर चित्र भी शब्दों में बँधे हैं—

१. विक्रमादित्य —गुरुभक्तसिंह, पृष्ठ २७
२. ऋतंवरा—प्रभात, पृष्ठ २१
३. कामायनी—प्रसाद, पृष्ठ १८
४. वही, पृष्ठ ११

अग्नि की लपटें दीर्घाकार
हरहराती विशून्य मे फैल
लपलपातीं शैलों सी नाच,[1]

प्राकृतिक क्रिया-कलाप का भी ध्वन्यात्मक वर्णन किया गया है—

झूम-झूम झुक-झुक कर कोई
संग समीर के उमड़े
चूम-चूम तरु-लता-अधर
धाराधर कोई घुमड़े।[2]

इन कृतियो मे अनेक प्रसग ऐसे है जहाँ अभिव्यजना अलकारो से बोझिल नही किन्तु किसी जीवनगत सत्य की व्याख्या सीधे-सादे पर प्रभावाभिव्यजक अप्रस्तुत-विधान के सहारे की गयी है। 'ऋतवरा' के कवि की 'स्वर्णाभ आणविक युग' की मोहक कल्पना इस प्रकार है—

जिसमे अविभाजित कुछ न कहीं, है सभी एक
नभ-भूमि-भूव्र-वन-उपवन-नद-निर्झर अनेक
आत्मा के पावन स्नेह-सूत्र में बंधे देश
मानव-परम्परा एक, एक सस्कृति अशेष
सगीतमयी शृंखला एक, योजना एक
अक्षर अनन्त, अनगिनत शब्द, वन्दना एक।[3]

अन्तिम दो पक्तियो के सादृश्य-विधान मे विशेष चमत्कार या वक्रता नही प्रभावित करने की क्षमता है। 'मेधावी' मे इसी प्रकार सामान्य उपमानो के आश्रित तारामडल का रमणीय वर्णन देखिये—

अगन प्रभा से आभासित से
ग्रह उपग्रह नभ में कंपित रे
एक शून्य के महावृक्ष में
चलदल से लहराते तारा
सीमाहीन विराट कवरि में
सुरभित फूलों की जगमग रे।[4]

'विक्रमादित्य' म क्षुब्ध चन्द्रगुप्त का आत्म-विश्लेषण कुछ विशिष्ट और अनुकल उपमानों के सहारे किया गया है—

मै क्या, मै पृथ्वी का भार,
उजड़ा हुआ एक ससार,
भग्न समाधि का स्तूप

---

१. मेधावी—डा० रांगेय राघव, पृष्ठ ६
२. ऋतवरा—प्रभात, पृष्ठ ७२
३. वही, पृष्ठ १८६
४. मेधावी—डा० रांगेय राघव, पृष्ठ १२

.....

वीणा का हूँ उतरा तार
शून्य, लिए तारक-ससार,
असफल जीवन का परिताप,
अंगनाओं का हूँ अभिशाप,[1]

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि इन काव्यो के अलकार ही नवीन नही, अलकरण-कला भी नूतन है। प्राचीन ढग के प्रयोग भी अलभ्य नही किन्तु अधिक मात्रा नवीन अलकारो की ही है तथा प्राचीन अलकारो के प्रयोग मे नवीन दृष्टि है। या तो बिम्ब-विधान मौलिक या नूतन है अथवा परम्परा-प्रसिद्ध उपमानो के सयोजन और प्रयोग मे नवीनता है।

शैली

महाकाव्य की शैली मे गुणो की दृष्टि से गरिमा, उदात्तता, महाप्राणता, प्रवाह एव सक्षमता आदि का होना अभीष्ट है। शैली के प्रकार की दृष्टि से महाकाव्य का परम्परागत रूप समाख्यानात्मक या वर्णनात्मक होता है। क्रमशः नाटकीय तत्त्वो के रूप मे सवादो का प्रयोग तो पर्याप्त समय से प्रबन्ध काव्यो मे किया जाने लगा था, परन्तु आधुनिक युग मे वस्तु के समकक्ष आत्म, बाह्य के साथ अन्तः, और मूर्त के साथ अमूर्त की महत्त्व-स्थापना के परिणामस्वरूप शैली मे प्रगीतात्मक पद्धति का प्रयोग मुक्तक के साथ प्रबन्ध-विधाओ मे भी बढ चला। विषय का विस्तार वस्तु-जगत् के साथ आत्म-जगत् तक हो जाने के कारण वर्णनात्मकता के साथ मनो-विश्लेषणात्मकता का समावेश भी महाकाव्यो की शैली मे हो गया। शैली का प्रकार कुछ भी हो महाकाव्योचित गुणो का अन्तर्भाव महाकाव्य की शैली के लिए आवश्यक है।

इन सभी प्रबन्धो मे वर्णन के साथ प्रगीत या गीत का, तथा नाटकीयता के लिए सवादो का प्रयोग किया गया है। जहाँ एकाधिक पात्रो की वार्ता का प्रसग है वहाँ वर्णन की एकरसता कथोपकथन की नाटकीय योजना से दूर की गई है। प्रसाद ने तो इस योजना के लिए पात्रो के अमूर्त भावो का स्वय विश्लेषण न करके उनका मानवीकरण कर आत्म-विश्लेषण कराया है। 'तप्तगृह' के कवि ने भी इसी प्रकार का उपक्रम किया है। 'कामायनी' मे मनु और काम तथा श्रद्धा और लज्जा के बीच, एव 'तप्तगृह' मे बिम्बसार और प्रवचना के मध्य बन्दीगृह मे होने-वाला सवाद इसी प्रकार का है। इन विशेष तथा इसी प्रकार के अन्य प्रसगो मे नाटकीय और मनोवैज्ञानिक तत्त्वो का मणिकाचन योग हुआ है। 'ऋतवरा' मे भी कथा का विकास अनेक प्रसगो मे सवादो के बीच ही हुआ है, किन्तु अन्य काव्यों की अपेक्षा यह प्रवृत्ति कम है। 'मेधावी' की कथा मे अभिकर्ता मानवीय पात्रो का एकान्त अभाव है और कवि ने अमूर्त भावों या जड़ पदार्थों का मानवीकरण करके पात्र-रूप मे प्रस्तुत नही किया, इसीलिए वर्णन की एकरसता दूर कर नाटकीयता के समावेश के लिए प्राकृतिक तत्त्वों का वर्णन न कर उत्तम-पुरुष मे आत्म-परिचय कराया गया है—

पृथ्वी
रवि प्रियतम बलि जाऊं

---

१. विक्रमादित्य—गुरुभक्तसिंह, पृष्ठ ९१

अहर्निशा तेरे स्पर्शों से
अपना सुख समझाऊँ ?[1]

इन पक्तियो मे नाटच-तत्त्व ही नही अभिव्यक्ति मे प्रगीतात्मकता भी है। पच-तत्त्वो का परिचय कवि ने कही-कही आत्म-विश्लेषणात्मक शैली मे दिया है।

'विक्रमादित्य' मे नाटकीयता का आग्रह, दुराग्रह बन गया है। सारा काव्य सवादो मे लिखा गया है और इस रूप मे ऊपरी दृष्टि मे पद्य-नाटक प्रतीत होता है, किन्तु इन सवादो से काव्य मे नाटकीयता की अभिवृद्धि नही हो सकी। उनमे न चुस्ती है, न सक्षिप्तता। सजीवता भी अप्राप्य है। प्रत्युत्पन्नमति का परिचय भी पात्रो के कथोपकथन मे नही मिलता। ये सवाद लम्बे-लम्बे विस्तृत भाषण से है। अनेक प्रसगो मे कवि ने बडे-बडे स्वगतो का प्रयोग किया है जो कही सस्वर चिंतन और कही स्वाग या नौटकियो की-सी शैली के समान प्रतीत होते है। तीन पृष्ठो के ऐसे ही एक स्वगत का आरम्भ देखिये—

भूधर

है अवसर अनुकूल बड़ा ही, सेना लेकर जाना है,
एक बार अपना कौशल फिर, रण में मुझे दिखाना है,
कूटनीति की विजय हुई तो, फिर मेरी पौबारा है,
बिना रक्त की बूँद गिराये, बनता खेल हमारा है।[2]

एकाकी पात्रो का यह सवाक् चिन्तन अनेक स्थलो पर अत्यन्त अस्वाभाविक हो गया है।

प्रगीत शैली का प्रयोग भी नाटच-शैली की भाति पात्रो की आत्माभिव्यक्ति के प्रसगो मे किया गया है। 'कामायनी' मे प्रगीतात्मकता तो अनेक प्रसगो मे है ही "तुमुल कोलाहल कलह मे मे हृदय की बात रे मन" गीत—गीतिकाव्य की विभूति है। 'विक्रमादित्य' मे अपेक्षाकृत वर्णनात्मकता व विषय-प्रधान दृष्टिकोण की प्रधानता है। 'मेधावी' के कवि ने 'गीत' शीर्षक देकर अनेक लघु-गीतो की रचना कथा के मध्य की है किन्तु विषय और कला दोनो दृष्टियो से ये गीत विशेष बोझिल है। उनमे अतिशय चिन्तन व्यक्त हुआ है। भावप्रवणता, आत्मद्रव, अन्त स्फूर्ति का अभाव है। शैली भी भाषा आदि की दृष्टि से गीत-रचना के अनुपयुक्त है—

अल्प रध्र वह सचल प्राण का
हुआ तरल लहरो पर दोलित
विकल ऊर्म्मियो के घर्षण मे
करता था अपने को पोषित।[3]

'तप्तगृह' मे चिन्तन और मनोविश्लेषण अधिक है, अतः प्रगीतात्मकता उतनी नही। 'ऋतवरा' मे नाटक और गीत के तत्त्वो का प्रयोग नही के बराबर हुआ है किन्तु उसकी शैली

१. मेधावी—डा० रागेय राघव, पृष्ठ १४-१५
२. विक्रमादित्य—गुरुभक्तसिह, पृष्ठ ३७
३. मेधावी—डा० रागेय राघव, पृष्ठ ६८

मे भावप्रवणता है, उच्छ्वास है, अन्त.स्फूर्ति है। कही-कही चिन्तन व अन्यत्र द्रवणशीलता है—अत प्रगीत की आत्मा है। परन्तु शिल्प मे गीत की टेकनीक को कवि ने नही अपनाया है।

नाटक, गीत, प्रगीत के अतिरिक्त 'मेधावी' काव्य मे एक नवीन प्रयोग बीच मे 'कहानी' शीर्षक के अन्तर्गत छोटी-सी कथा लिखकर किया गया है। इस प्रयोग का कारण स्पष्ट है—काव्य का स्वरूप विचारप्रधान है, अत जहाँ आख्यान-सूत्र सबल हो गया है, जहाँ वस्तुरूप घटना-विशेष का समावेश कवि ने किया है, वहाँ उसे सक्षिप्त गल्प का रूप दे दिया है। इस दो पृष्ठ की कहानी का स्वर चिन्तनप्रधान की अपेक्षा आख्यानात्मक है। इस प्रकार इन कवियो ने नाटक, गीत, प्रगीत, आख्यायिका सभी विधाओ मे प्रचलित शैलियो का प्रयोग काव्य मे किया है।

महाकाव्य की शैली मे महाप्राणता और गरिमा, जीवन के विविध तथा परस्पर अनकूल और विरोधी पक्षो के वर्णन की क्षमता, काव्य के प्रेष्य को अपनी समग्रता मे पाठक तक पहुँचा देने की सामर्थ्य, अर्थात् विषय और अभिव्यजना की अनुकूलता और चित्रमयता, या शुक्लजी के शब्दो मे अर्थ ग्रहण की अपेक्षा बिम्ब-ग्रहण कराने की शक्ति का होना अभीष्ट है। इसके साथ ही उसमे सहज प्राणवत्ता का होना भी अनिवार्य ही है। इस दृष्टि से 'कामायनी' के अतिरिक्त महाप्राण और समर्थ शैली इन रचनाओ मे प्राप्त नही होती। 'मेधावी' मे कही-कही समर्थ और जीवन्त वर्णन मिल जाते है, किन्तु काव्य के सम्पूर्ण मे अप्रतिहत वेग व महाप्राणता नही मिलती। इन काव्यो मे शैली-सम्बन्धी प्रसादमयता है। एक प्रकार की सरलता, सफाई या स्फीतता है, किन्तु वह गरिमा, वैभव और समृद्धि नही जो महाकाव्य मे होनी चाहिए। कुछ काव्यो मे जीवन के सभी पक्षो का अन्तर्भाव न होने से विराट् और कोमल, भव्य और मधुर सभी वर्णनो का अवकाश नही मिल सका, किन्तु जहाँ ऐसा नही है वहाँ अवकाश होने पर भी कवि असमर्थ रहा है।

भव्यता, उदात्तता और गरिमा 'कामायनी' की शैली के विशेष गुण है। प्रसग के अनुकूल वर्णन करने की सामर्थ्य ही शैली की सक्षमता का प्रमाण है और इस दृष्टि से प्रसाद की लेखनी अचूक है। एक ओर वे हिमालय के विराट् सौन्दर्य को मूर्तिमान करते है, दूसरी ओर उषा, मध्या रात्रि आदि का रमणीय और कोमल रूप अकित करते है। प्रकृति ने काव्य मे सबसे अधिक स्थान पाया है और वह हर रूप-रग मे उपस्थित हुई है। अभिव्यजना पर प्रसाद का इतना अधिकार है कि प्रसग की आवश्यकता के अनुकूल कही एक ही पृष्ठ और कही एक ही छन्द मे वे जीवन के दो सर्वथा विरोधी रूपो का चित्राकन करने मे सफल हो सके है। देवताओ के चिर-विलासी जीवन का वर्णन करते हुए—

वे अम्लान कुसुम सुरभित,
मणि-रचित मनोहर मालायें,
बनी शृंखला, जकड़ी जिनमें
विलासिनी सुर बालायें।[1]

---

१. कामायनी—प्रसाद, पृ० १३

दो ही छन्दो के उपरान्त कवि प्रसाद प्रलय की भयंकरता व्यक्त करने मे प्रवृत्त होते हैं—

दिग्दाहों से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के।
सघन गगन में भीम प्रकम्पन
झंझा के चलते झटके।[1]

शैली की इसी उदात्तता के कारण वे स्थूल और सूक्ष्म, वस्तु और आत्म, इतिहास और मनोविज्ञान दोनो को परस्पर समन्वित कर सके है। इन समस्त विविधताओ की सिद्धि केवल अभिधा के सहारे सम्भव नही अतः लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, व्यंजना आदि छायावादी शैली की सभी विशेषताओं का प्रयोग प्रसाद ने अपनी शैली मे किया है।

वातावरण के निर्माण की उनमे अद्‌भुत क्षमता है। प्रलय की भयंकरता स्मृति-रूप में वर्णित होने पर भी साकार हो उठी है। इसी प्रकार सघर्ष के प्रसग मे उनकी शैली ओज गुण-प्रधान है। युद्ध की भयकरता सफलतापूर्वक चित्रित है। कहीं-कही कुछ ही शब्दों मे विस्तृत फलक पर विराट् चित्र अकित किये गए है—

बन गया तमस था अलक-जाल
सर्वांग ज्योतिर्मय था विशाल;
अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित,
थी शून्य मेदिनी सत्ता चित;
नटराज स्वयं थे नृत्य-निरत,
था अंतरिक्ष प्रहसित मुखरित;
स्वर लय होकर दे रहे ताल
थे लुप्त हो रहे दिशाकाल।[2]

उपर्युक्त, तथा इसी प्रकार के अन्य चित्रो मे ओज है, भव्यता और गति है। छन्द भी विशेष अनुकूल है। यही कवि जो विराट् और गतिमय वर्णन करने मे समर्थ है, अमूर्त और सूक्ष्म मनोगत भावों, बुद्धिगत विचारो और जीवनगत मूल्यो का अकन करने मे उतना ही सिद्धहस्त है। मनु के हृदय की उत्तेजना और अधीरता का वर्णन देखिए—

छूटतीं चिनगारियां उत्तेजना उद्‌भ्रांत,
धधकती ज्वाला मधुर, था वक्ष विकल अशांत।
वात चक्र समान कुछ था बांधता आवेश,
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।[3]

कोमल मनोभावना का उतने ही कोमल बिम्ब-विधान के सहारे वर्णन देखिए। लज्जा-शील हृदय की व्याख्या कवि ने इन पक्तियो में की है—

---

१. कामायनी, पृष्ठ १३
२. वही, पृष्ठ २५२
३. वही, पृष्ठ ९२

पुलकित कदंब की माला-सी
पहना देती है अंतर में,
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में।[1]

लज्जा-भाव के साकार रूप का आत्म-विश्लेषण भी अत्यन्त सुन्दर, सरल और स्पष्ट शब्दो में इसी प्रकार किया गया है—

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।
मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती।[2]

पुरुष की प्रणय-याचना पर नारी के मन मे समर्पण की विवशता का विश्लेषण कवि ने विशेष स्वाभाविक रूप से किया है—

मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ,
भुज-लता फँसाकर नर-तरु से झूले सी झोंके खाती हूँ।[3]

हृदयगत भावनाएँ ही नहीं बौद्धिक तथ्य भी काव्यात्मक शैली मे प्रेष्य बनाये गए है। कवि ने इन सत्यो की विशेष निर्भ्रान्ति और सटीक व्याख्या की है—

बन जाता सिद्धांत प्रथम फिर पुष्टि हुआ करती है,
बुद्धि उसी ऋण को सबसे ले सदा भरा करती है।
मन जब निश्चित-सा कर लेता कोई मत है अपना,
बुद्धि दैव-बल से प्रमाण का सतत निरखता सपना।[4]

इसी प्रकार सत्य की निम्नलिखित व्याख्या में कवि की क्षमता और अभिव्यक्ति का लाघव, स्पृहणीय है—

और सत्य ! यह एक शब्द तू कितना गहन हुआ है।
मेधा के क्रीड़ा-पंजर का पाला हुआ सुआ है।[5]

जीवन के अनेक मार्मिक सत्यो का आख्यान कवि ने अपने ढग से किया है। मृत्यु और जीवन का सम्बन्ध एव अन्तर प्रसादजी के शब्दों मे कुछ इस प्रकार है—

---

१. कामायनी, पृष्ठ ९८
२. वही, पृष्ठ १०२
३. वही, पृ० १०५
४. वही, पृ० ११०
५. वही, पृ० १११

महा-नृत्य का विषम सम, अरी
अखिल स्पन्दनों की तू माप,
तेरी ही विभूति बनती है
सृष्टि सदा होकर अभिशाप
जीवन तेरा क्षुद्र अश है
व्यक्त नील घन-माला मे
सौदामिनी-सधि-सा सुन्दर
क्षण भर रहा उजाला मे।[1]

चित्रमयता प्रसाद के काव्य का विशेष गण है। प्रकृति के विराट् और कोमल, उग्र और मनोरम रूप से लेकर मानव सौन्दर्य तथा मुद्राओं के अनेक गतिमय और स्थिर चित्र उन्होने अकित किये है। जहाँ अमूर्त या जड तत्वो का मानवीकरण किया गया है वहा भी मानवीय रूप का उन पर आरोप कर चित्रमयता प्रदान की गई है। शैल-श्रेणियो का एक विशाल चित्र देखिये—

संध्या घनमाला की सुन्दर
ओढे रग बिरगी छीट,
गगन चुबिनी शैल-श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट![2]

दूसरी ओर समर्पण के क्षणो मे नारी की सलज्ज मुद्रा का सूक्ष्म अकन कवि ने समान अधिकार से किया है—

गिर रहीं पलकें, झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण कपोल,
खिला पुलक कदब-सा था भरा गदगद बोल।[3]

लाक्षणिकता का जहाँ तक प्रश्न है, पिछले पृष्ठो मे दिये गए अनेक उदाहरणो मे से कदाचित् ही कोई उदाहरण केवल अभिधाश्रित हो। लक्षणा-व्यजना के सभी भेद-प्रभेदो के अनेको सफल उदाहरण सरलता से 'कामायनी' मे मिल जायेंगे। साकेतिकता तथा लाक्षणिकता के आग्रह के कारण ही उन्होने प्रतीको का भी पर्याप्त प्रयोग किया है—
कुछ उदाहरण है—

मधुमय वसन्त जीवन-वन के, बह अन्तरिक्ष की लहरों मे[4]

तथा

कलियाँ जिनको मै समझ रहा वे काँटे बिखरे आसपास।[5]

---

१. कामायनी, पृ० १९
२. वही, पृ० ३०
३. वही, पृ० ९४
४. वही, पृ० ६३
५. वही, पृ० १५८

मधुमय वसन्त, कलियाँ, कांटे का प्रयोग प्रतीक-रूप मे हुआ है। 'कामायनी' की सम्पूर्ण अभिव्यजना लाक्षणिकता, व्यजना और भाव-प्रेरित वक्रता से युक्त हो, ऐसा नहीं। जहाँ प्रसगों में सरलता है वहाँ शैली मे भी प्रसादमयता और स्फीतता आ गई है—

और सोच कर अपने मन मे, जैसे हम हैं बचे हुए;
क्या आश्चर्य और कोई हो जीवन लीला रचे हुए।
अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ कहीं दूर रख आते थे,
होगा इससे तृप्त अपरिचित समझ सहज सुख पाते थे।[1]

कही-कही काव्य का स्तर अत्यन्त साधारण हो गया है। 'कर्म' सर्ग में असुर-पुरोहितों का परस्पर सवाद इसी प्रकार का है—

क्या कोई इसका उपाय ही
नहीं कि इसको खाऊँ ?
बहुत दिनों पर एक बार तो
सुख की बीन बजाऊँ।[2]

किन्तु इस प्रकार के स्थल काव्य मे इने-गिने है। पात्र और प्रसग की दृष्टि से उनकी स्थिति अपरिहार्य है। समृद्ध की दृष्टि से भाषा कवि भी वशवर्त्तिनी ही नही, उसका उचित प्रयोग करना भी वे खूब जानते है। साधारण व्यावहारिक भाषा मे विराम-चिह्नो आदि के कुशल प्रयोग से वे अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने मे किस प्रकार सफल हुए है यह देखने योग्य है—

अरी उपेक्षा भरी अमरते !
री अतृप्ति ! निर्बाध विलास !
. .. .
मौन ! नाश ! विध्वंस ! अंधेरा !
शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते !
तुझे कहाँ वहाँ अब ठाँव।[3]

दूसरी और तीसरी पक्तियो मे मध्य विराम-चिह्न के प्रयोग से पक्ति के बीच मे उन्होने जो प्रवाह-अवरोध उपस्थित किया है, वह बिना कारण नही। ध्वस्त अमरता की सभी विशेषताओं के प्रति वे पाठक को सचेत करते आगे बढते है और प्रलयोपरान्त सृष्टि मे व्याप्त कठोर किन्तु यथार्थ सत्य के सभी ध्वसात्मक रूपों का परिगणन करा साक्षात्कार करा देना चाहते है। अत 'मौन', 'नाश', 'विध्वस' और 'अधेरा' प्रत्येक के साथ ठहर-ठहरकर प्रभाव-ग्रहण कर पाठक जब तीसरी पक्ति तक पहुँचता है, तो 'वही सत्य है' के साथ पहली पक्ति का प्रत्येक शब्द पुनः कौध जाता है और यही कवि का अभीष्ट है। अतः ऊपर से लगभग उपेक्षणीय दिखाई पडने वाले

---

१. कामायनी, पृ० ३२
२. कामायनी, पृ० ११०
३. कामायनी, पृ० १२, १८

इन विराम-चिह्नों के पीछे तर्क-सम्मत कला-कौशल है, कवि की प्रतिभा और निपुणता का संकेत है।

गरिमा, उदात्तता और सजीवता आदि की दृष्टि से नाटकीयता होते हुए भी 'विक्रमादित्य' सर्वथा असफल रचना है। डा० प्रतिपालसिंह ने इस विषय मे अपना मत व्यक्त करते हुए अपने शोध-प्रबन्ध मे कहा था, "इस रचना की भाषा सरल है, उसमे दुरूहता का अभाव है तथा वह भाव-व्यक्त करने मे सशक्त एव मार्मिक है। शैथिल्य का अभाव है, भावानुकूल, काव्यमयी व पाडित्यपूर्ण भी है। लाक्षणिक प्रयोगो से उसमे सजीवता और मूर्तिमत्ता आ गई है। इसके अतिरिक्त परम्परामुक्त अलकारो के प्रयोग एव चित्रमयता से युक्त है।"

उपर्युक्त मान्यता अशत ही स्वीकार की जा सकती है। निश्चय ही 'विक्रमादित्य' की भाषा मे दुरूहता का अभाव है, यद्यपि सर्वत्र सरसता नही। पाडित्य और चमत्कार किसी काव्य की भाषा या शैली को महाकाव्योचित नही बना देते, इस गुण की कमी कवि केशव के काव्य मे भी नही थी। जहाँ उसमे शैथिल्य का अभाव और भावानुकूलता है वहाँ ऐसे अशो की भी कमी नही जो लचर वर्णनात्मक शैली मे रचित है। इसी प्रकार लक्षणा का वैभव, चित्रमयता, मूर्तिमत्ता आदि गुणो से युक्त शैली के प्रयोग समग्र काव्य मे नही, विरल अशो मे मिलते है।

'विक्रमादित्य' की रचना सवाद-शैली मे की गई है, और इस प्रकार कवि का उत्तरदायित्व और भी बढ गया है। महाकाव्य की शैली मे नाटकीय पद्धति के सफल प्रयोग के लिए अधिक कलात्मकता की अपेक्षा है, अन्यथा वह केवल सवाद रह जाता है और 'विक्रमादित्य' के सम्बन्ध मे यही सत्य है। वह 'रामचन्द्रिका' के से ढग का सवादात्मक प्रबन्ध हो गया है। अनेक स्थलो पर सवाद-रूप मे वस्तु-वर्णन अथवा घटनाओ का विवरण विशेष लम्बा और उबा देने वाला है। शैली मे मनोविश्लेषण का लगभग अभाव है, अत इतिवृत्तात्मक और वर्णनात्मक स्थलो की एकरसता से क्षणिक विषयान्तर भी नही होता। कही-कही काव्य का स्तर बहुत गिर गया है। पुराने थियेट्रिकल नाटको के पद्यबद्ध सवादो का-सा ढग अपना लिया गया है—

यदि वह कहीं हाथ आ जाती तो होती पाँचों घी मे,
मै राजा वह रानी होती, मैल न रह जाता जो मे।[1]

इसी प्रकार की अभिव्यजना कही इतनी अभद्र हो गई है कि असमर्थ शैली के कारण भाव की कोमलता भी नष्ट हो गई है।

ध्रुवदेवी—

क्यों मुझसे आँख चुराते हो, हा ! किसने कान दिया है भर,
लड़ गया भाग्य किस रमणी का, लड़ गई आँख किससे मिलकर ?[2]

प्रसग और शैली की परस्पर अनुकूलता अनेक स्थानो पर मिलती है। लाक्षणिक और व्यजनाप्रधान प्रयोग काव्य में बहुत कम हैं, अपेक्षाकृत अभिधा मे इतिवृत्तात्मक वर्णनात्मक

---

१. विक्रमादित्य—गुरुभक्तसिंह, पृष्ठ ६८
२. वही, पृष्ठ ७३

शैली का प्रयोग कहीं अधिक है। कही-कहीं काव्य का स्तर बोलचाल की अत्यन्त व्यावहारिक भाषा तक सीमित हो गया है। ऐसे स्थलो पर लोकोक्ति और मुहावरो का सहारा लेने के कारण अभिव्यजना विशेष स्थूल और अति व्यावहारिक हो गई है—

फंसा पांव कीचड़ मे मेरा, पांव तले धरती सरकी,
कतर गये पर मेरे अब तो, रही उड़ाती बे पर की;

चित्रमयता की दृष्टि से कवि को केवल प्राकृतिक चित्रो के अकन मे ही आशिक सफलता मिली है। ये चित्र विशद है, सुन्दर है, प्राय: स्थिर व कही कही गत्यात्मक भी है। इसके साथ ही कवि ने परम्परागत नामपरिगणन-शैली मे वर्णन भी किये है। मानव-मुद्राओ के चित्र अत्यन्त स्थूल, भद्दे और अति व्यावहारिक भाषा मे है—

माथा ठोक, हाय कर ललना, बैठ गई माथा पकड़े,
घूम गया सर, माथा ठनका, देख चन्द्र को यों अकडे,
सूखी हँसी, टके सा उत्तर, बस रह गई विवश कट कर,
मुंह, धूआं हो गया, तिलमिला उठी, चोट खा गिर, लट कर।[1]

इसी प्रकार भाव-व्यजना के लिए अनुभावो के वर्णन मे बाहरी हाय-हाय व स्थूल शारीरिक क्रिया-कलाप का वर्णन ही अधिक है। सदेशवाहक को प्रिय के लिए सदेश देते समय विरहिणी का वर्णन देखिये—

ठंडी आह निकाल, मुझे लख, चिन्तित हो अनुनय करके,
कुछ कहती, फिर रुक रह जाती, संभल पुन: आँसू भरके,
टूटे फूटे ही शब्दो मे व्याकुलता को घूंघट दे,
कह पाई सन्देश, 'प्राण मेरे दर्शन को है अटके'।[2]

'विक्रमादित्य' मे कलात्मक प्रतिभा का अभाव सर्वत्र दिखाई पडता है। कथानक में प्रवाह और विकास-क्रम तो समुचित रूप से है ही नही, काव्यात्मक सरसता और शैली मे महाकाव्योचित सामर्थ्य, महाप्राणता, गरिमा और उदात्तता आदि भी नही है, अत: इस कृति को महाकाव्य कहना हर दृष्टि से कठिन है।

'मेधावी' मे शुद्ध वर्णनात्मक प्रसग बहुत कम है। विचार का प्राधान्य होने से शैली मे विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है और अमूर्त की प्रधानता के कारण लाक्षणिक और व्यजनाप्रधान प्रयोगो की बहुलता है। चित्रमयता का अवसर प्रत्यक्ष घटनाओ, प्रसगो, स्थान एव व्यक्तियो के वर्णनो के अभाव के कारण विशेष नही मिला। किन्तु प्रकृति के अनेक चित्र कवि ने अकित किये है। 'मेधावी' का सम्पूर्ण काव्य-भवन ही प्रकृति की भित्ति पर खडा है, अत: प्रकृति के आत्मपरिचयात्मक प्रसगो के अतिरिक्त प्राकृतिक व्यापारो के अनेक गतिमय चित्र प्राप्त होते है—

---

१. विक्रमादित्य— गुरुभक्तसिंह, पृष्ठ २०
२. वही, पृष्ठ ३०

अग्निरूप सा सूर्य धधकता
धूम रहा था अंतराल में
एक बटोही तारा चलता
आया पथ के महाजाल में
आकर्षण से रवि के तन से
खिचा लीक सा भूत मचल कर
गति की उलझन में वह टूटा
लगा घूमने भिन्न नाद कर।[1]

कवि ने परम्परागत वर्णनो को भी नवीन पद्धति से अपनाया है। ऋतु-वर्णन कवि ने समाख्यान शैली मे न करके आत्मपरिचयात्मक शैली मे किया है। भाषा मे भी विशेष विषयानुकूलता है। वर्षा ऋतु के वर्णन मे, शब्दो मे लय-सम्बन्धी जो थिरकन है, शरद का वर्णन करते हुए उसमें स्वच्छता, स्फीतता और ऋजु-सरल गति आ गई है—

वर्षा—

पुलक करूँ अभिसार रे
मैं सूर्य किरण पर चल चल कर
सागर से घट भर भर लाई
मेघ गगन में गरजे द्रिम द्रिम
पुलकित धरणी मानव द्रुम द्रुम
बरसे रिम झिम धार रे।

शरद—

मैं ज्योत्स्ना हासिनी
अमल वसन
हूँ महापूर्णिमा का हुलास
रे शुभ्र गगन में दुग्ध श्वास
मधु श्वेत हंस, शतदल सज्जित
हूँ स्वच्छ अंभ मे शांति लास
मैं वीणावादिनी
इंदु वदन[2]

इस प्रकार के वर्णनों के अतिरिक्त विराट् दृश्य-शृखला 'मेधावी' मे अप्राप्य है। वर्णनो में सांगोपांगता, चित्रमयता और रमणीयता का भी अभाव है। बिम्ब-ग्रहण हार्दिक अनुभूति के बिना संभव नही और इस काव्य में कवि सोच-सोचकर बौद्धिक स्तर मे सिद्धान्त-प्रतिपादन करता

१. मेधावी—डा० रांगेय राघव, पृष्ठ ५५
२. वही, पृष्ठ १२५-१२६

रहा है। महाप्राणता, उदात्तता, चित्रमयता तथा वर्णन-क्षमता 'मेधावी' मे नही है, किन्तु कवि की शैली की अपेक्षा विषय का स्वरूप इसके लिए अधिक उत्तरदायी है।

'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' की शैली मे सर्वत्र एक प्रकार की सरलता और प्रसादमयता व्याप्त है। कवि ने लाक्षणिक प्रयोग भी यथावसर किए है किन्तु दुरूहता और बोझिलता कही उत्पन्न नही हुई है—

कातरता पुत्र की
सह न सकी कुशला
अचल के दूध की
सुन पुकार बार-बार।[1]

पात्रो द्वारा स्वगत आत्मविश्लेषण के रूप मे मनाविश्लेषणात्मकता का समावेश भी हुआ है। सवादो का प्रयोग भी यथावसर किया गया है। स्पष्ट और सरल शब्दो मे मार्मिक प्रसंगो और मनोभावनाओ की अत्यन्त प्रभावमय अभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर मिलती है। ऐसे स्थलो पर अलंकरण की बोझिलता नही प्रसग की निरावरण मार्मिकता द्रष्टव्य है—

बैठी है सेवा की
गूंजी पुकार सी
साथ इसी करुणा के
कुशला वंधव्य की
वाणी को रोककर।
शून्य शयन-कक्ष में
बैठी है भाग्य के
चरणो की ठोकर से
ध्वस्त हुई रेखा-सी।[2]

कतिपय प्राकृतिक चित्रो के अतिरिक्त वस्तुगत दृष्टिकोण के अभाव मे प्रसगो और पात्रों के चित्रात्मक वर्णन 'तप्तगृह' मे विशेष नही मिलते। विषय की परिसीमा के कारण शैली मे करुणार्द्र बिछलन, कोमलता, प्रवाह, मार्मिकता तो है, गरिमा, विराटता और सजीवता नही।

'ऋतवरा' मे कवि को यह अवसर प्राप्त था कि वह अपनी शैली की सजीवता और महाप्राणता का परिचय दे सके। प्रलय—सृष्टि की सबसे अधिक भयकर और विराट् घटना है किन्तु काव्यारम्भ मे कवि ने उसके भयकर रूप—पचतत्त्वो के विनाश का वर्णन न करके केवल जलप्रसार के वर्णन तक अपने को सयत रखा है, किन्तु उसमे भी वग और निर्बाध गति नही। प्रलय की भयकरता की व्यजना करने मे वे असमर्थ रहे है। इस प्रसग मे सौन्दर्य है, सप्राणता नही—

मानों स्वप्निल महासृजन का
पहला स्फुरण हुआ साकार

१. तप्तगृह—प्रभात, पृष्ठ १३६
२. वही, पृष्ठ १३८

प्रथम जागरण अँगड़ाई ले
मानों दृग हो रहा उघार।[1]

जीवन के विराट्, भयकर या त्रासद वर्णनो मे प्रभातजी सफल नही हुए। उनकी शैली की सफलता कोमल, मधुर, उल्लासमय और मादक वर्णनो मे है। प्रलय के ढलने के उपरान्त वातावरण के उल्लास की स्फूर्ति देखिए—

ज्वाला से धुल तममयी निशा
बनती नवीन चेतना-विशा
सज्ञा के तट पर उठता कोई महाज्वार
पर्वताकार, वर्तुलाकार
आकाश तैरता, तैर रहे हैं सकल तत्त्व
जैसे फूलो से पूर्ण अनगिनत पात।[2]

इसी प्रकार मनु के आत्मबोध के प्रसग मे शैली में एक प्रकार का उल्लास, स्फूर्ति और दीप्ति है। समस्त काव्य की शैली मे माधुर्य गुण की प्रधानता है। अनेक प्रसगो मे अभिव्यजना मानो मधु-स्नात है। 'मनु' सर्ग के आरम्भ मे प्रकृति के उन्मीलन का वर्णन इसी प्रकार का है—

सरसो के पीले पत्तो से
झाँक झाँक मधुस्नाता
छन्दमयी आनंद लुटाती
मधुमरंद अज्ञाता
मोह-मोह लेती मनसिज को
पाटल बन की लाली
छिप-छिप झिप-झिप मृदु मुसकाती,
रति-सी मुग्ध द्रुमाती।[3]

अनुप्रास के प्रयोग से कही-कही भाषा मे मधुर अनुरणन उत्पन्न हो गया है और वह मधुरिमा की उस सीमा का स्पर्श करने लगी है जहाँ वह रस-बोरी प्रतीत होती है—

कला कामिनी बनकर हँसती।
छबि-वसना रस-बोरी
कण-कण मे तिल-तिल-भर में,
बसती कामना किशोरी।
होता राग, रागिणी होती,
गीतों की छाया भी।

---

१ ऋतवरा—प्रभात, पृष्ठ ८
२. वही, पृष्ठ १००
३. वही, पृष्ठ ७०

मधु होता, मादकता होती,
मोहकता माया भी ॥[1]

कवि की अपनी शैली यही है, इन वर्णनो को पढने के उपरान्त स्पष्ट भासित होता है। मधुरता के अति आग्रह के कारण कुछ प्रसगो मे कवि आवश्यकता की अवहेलना कर गया है। पचम सर्ग मे प्रलय के विध्वस के उपरान्त पृथ्वी पर नारीत्व का आरोप, सौन्दर्य-वर्णन की मादकता और मासलता, इस प्रसग के उपयुक्त प्रतीत नही होती—

कि मानो ऋद्धि-सिद्धि साकार,
सिन्धु से निकली वह सुकुमार।
जगत की जीवन-ज्योति सकाम,
भुवनमोहिनी मनोज्ञ ललाम।
न अब तक जला सकी है दीप,
खड़ा कोई अवसाद समीप।
कि अब तक बिखरा सा शृंगार,
सिन्धु से निकली यह सुकुमार ॥[2]

विशेष चित्रमयता भी इस काव्य मे नही मिलती। गिनाने को स्थिर और गत्यात्मक दोनो प्रकार के चित्र है, किन्तु इन चित्रो मे सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण का अभाव है। रेखाओ मे निश्चितता नही और ये चित्र भी सामान्य के है, विशेष के नही—

देह-लता मृदु-मधु-रस-बोरी,
अपने मे न समाती-सी।
प्रथम रूपसी, पहली नारी,
वय का स्नेह लुटाती-सी।
चरण बढ़ाये धीरे-धीरे,
संभल-सँभल सकुचाती-सी।
अरुण लाज की तरुण रागिणी,
होठो बीच छिपाती-सी ॥[3]

उपर्युक्त पक्तियो मे किसी रमणी-विशेष का नही, किसी भी सुन्दर नारी का सामान्य चित्र सामने आता है। अभिव्यक्ति मे लाघव नही विस्तार है। चित्रमयता का प्रश्न उतना अधिक उठा भी नही, क्योकि व्यक्ति के रूप और क्रिया-व्यापार की अपेक्षा आत्म-चिन्तन ही अधिक व्यक्त हुआ है। सक्षेप मे 'ऋतवरा' की शैली मे मधुरिमा है, आर्द्रता, कोमलता और स्निग्धता है किन्तु सशक्तता और महाप्राणता नही। अवसर मिलने पर भी विराट् के महाप्राण वर्णन कवि नही कर सका।

१. ऋतवरा—प्रभात, पृष्ठ ७८
२. वही, पृष्ठ ५५
३. वही, पृष्ठ ९४-९५

महाकाव्य की शैली मे जो प्राणवत्ता, सामर्थ्य, उदात्तता और गरिमा अपेक्षित है, वह 'कामायनी' को छोडकर किसी रचना मे नही। 'विक्रमादित्य' इस दृष्टि से सर्वथा अशक्त है, अन्य कृतियों मे न्यूनाधिक मात्रा मे उपर्युक्त गुणो की सिद्धि सम्भव हो सकी है, परन्तु उतना महाकाव्य के लिए पर्याप्त नही।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर इन कृतियो के परम्परागत और नवीन तत्त्वो का निर्धारण किया जा सकता है। यद्यपि परम्परागत तत्त्व इन काव्यो मे बहुत कम है, किन्तु कुछ विशेषताओ का पालन इनमे किया ही गया है—

परम्परागत तत्त्व

१. इन रचनाओ के कथानक का आधार इतिहास या पुराण है। 'मधावी' मे निश्चय ही यह आधार उतना स्पष्ट और प्रत्यक्ष नही, किन्तु अन्य कृतियो के कथानक ऐतिहासिक या पौराणिक है।

२. सर्ग-विभाजन इन काव्यो मे सख्या आदि सभी दृष्टियो से प्राचीन परिपाटी पर किया गया है। सर्गान्त मे भावी कथा-सूचना की पद्धति भी नियमत. नही किन्तु अनेक सर्गो मे इन्होने स्वीकार कर ली है।

३. छन्द-विधान की दृष्टि से जहाँ अनेकानेक नवीन छन्द प्रयोग किये गए वहाँ 'कामायनी', 'विक्रमादित्य' आदि काव्यो मे परम्परागत ढांचे भी अपनाये गए।

४. इन कृतियो के नामकरण की पद्धति भी परम्परागत है।

अन्य प्रभाव

१ कथानक का वस्तुरूप आधार ग्रहण करके भी कुछ युग-चेतना और कुछ आग्ल-साहित्य के प्रभाववश इन सभी कृतियो मे स्थूल वस्तुरूप घटनाएं गौण और उनके पीछे कोई भावात्मक या विचारात्मक सत्य, सिद्धान्त या उद्देश्य प्रमुख हो गया है। कथा के इस रूप मे प्रयोग के लिए इस युग की चेतना और अन्तर्द्रष्टा कवि की जिज्ञासु दृष्टि—दोनो उत्तरदायी है। आग्ल साहित्य के सम्पर्क से नवीन प्रयोग के लिए दिशा-निर्देश इन लेखको को मिल गया था। इसके अतिरिक्त चिर प्रगतिशील मनोविश्लेषण-शास्त्र, समाज-शास्त्र, भौतिक विज्ञान, आदि के क्षेत्रो से भी इन्होने सहायता ली। कही-कही दर्शन जैसे प्राचीन विषय की आधुनिक व्याख्या और प्रयोग भी किया गया (कामायनी)। कथा मे द्वि-अर्थक विधान भी इसी प्रकार का नवीन प्रयोग है, जिसे प्रत्यक्ष रूप से आग्ल साहित्य का अनुकरण तो नही कहा जा सकता पर 'एलिगरी' के रूप मे इस प्रकार के प्रयोग अंगरेजी साहित्य मे अधिक मिलते है। हिन्दी साहित्य मे वे अप्राप्य नही तो विरल अवश्य है।

२. कथा सघटन भी इन काव्यो मे सस्कृत नाटक-पद्धति की अपेक्षा पाश्चात्य नाटको मे निर्दिष्ट कार्यावस्थाओ के अधिक निकट है। काव्यो मे पताका, प्रकरी अथवा उपाख्यानो की सश्लिष्ट योजना के स्थान पर इकहरे परन्तु गरिमामय कथानक का निर्वाह भी कुछ आधुनिक पाश्चात्य महाकाव्यो से प्रेरणा प्राप्त कर और कुछ अपनी अभिरुचि के अनुकूल किया गया है

('विक्रमादित्य' इस प्रवृत्ति का एकमात्र अपवाद है)।

३. काव्य के कथानक के अनुरूप इन काव्यों में मूर्त की अपेक्षा अमूर्त घटनाओं की प्रधानता है। बाह्य जगत् की अपेक्षा ये घटनाएँ अन्तर्मन में अधिक संख्या में घटती है, नहीं तो कम से कम बाह्य जगत् में घटित होने वाली घटनाओं के मनोगत कारणों का विश्लेषण अवश्य किया गया है। इस विशेषता के लिए युग-परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं। प्राचीन महाकाव्यकार की दृष्टि जहाँ वस्तुजगत पर टिकी थी वहाँ इन कवियों ने अन्तर्जगत् को महत्ता देकर व्यक्ति के आत्म की प्रतिष्ठा की। परिणामस्वरूप घटनाओं में वर्णन-विस्तार आदि की दृष्टि से भी इन कवियों ने स्वतन्त्र अभिरुचि से काम लिया है।

४. मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश, आशीर्वचन, तथा अन्य वर्णन-रूढ़ियों का इन कवियों ने त्याग कर दिया। इन रूढ़ियों के प्रति उपेक्षा-भाव 'प्रियप्रवास', 'सिद्धार्थ' आदि शास्त्रीय महाकाव्यों से ही आरम्भ हो गया था। इन रचनाओं में यह प्रयत्न पूर्ण हो गया। 'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' में मंगलाचरण की रूढ़ि को अपनाया गया है किन्तु पूर्णत नवीन ढंग से।

५. छन्द-विधान की दृष्टि से भी एक छन्द में सर्ग-रचना या सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन आदि के नियम का परित्याग कर इन कवियों ने अतुकान्त छन्द और मुक्त छन्द के अनेकानेक प्रयोग 'मेधावी', 'तप्तगृह' और 'ऋतवरा' में किये।

६. इन काव्यों की अलंकरण-कला पर पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव है। इन कवियों ने मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, ध्वन्यार्थव्यंजना, आदि पाश्चात्य अलंकारों का प्रयोग तो किया ही है, भाषा के लाक्षणिक, व्यंजनाप्रधान प्रयोग एवं प्रतीकात्मकता आदि भी उसी ढंग की है।

७. महाकाव्यों में प्रगीत और नाटक के तत्त्वों का प्रयोग भी नवीन चेतना की देन है। कथोपकथन का महाकाव्य में प्रयोग प्राचीन पद्धति है। परन्तु संवादों के रूप में सम्पूर्ण महाकाव्य की रचना का उपक्रम नाटकीय ढंग के पाश्चात्य महाकाव्यों का प्रभाव है। 'विक्रमादित्य' में यही पद्धति ग्रहण की गई है, यद्यपि कला की दृष्टि से वह 'रामचन्द्रिका' के अधिक निकट है। प्रगीतात्मक, भावप्रवण शैली और बीच-बीच में पात्रों की आत्माभिव्यक्ति के लिए गीतों का प्रयोग नवीन युग की विषयीप्रधान चेतना की नवीन देन है।

स्वतन्त्र एवं नवीन उद्भावनाएँ

१. कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक होते हुए भी उनका नवीन प्रयोग इन कवियों की मौलिक प्रतिभा का परिचायक है। 'मेधावी' का तो कथानक-ग्रहण भी नवीन ढंग से किया गया है।

२. सर्ग-विभाजन की पद्धति 'विक्रमादित्य' में नवीन है यद्यपि उसमें कोई तर्कसम्मत औचित्य नहीं।

३ मुक्तछन्द के प्रयोग के लिए कवि की मौलिकता अनिवार्य है। इस दिशा में अतुकान्त और मुक्त छन्दों के अनेकानेक विषयानुरूप ढाँचे भी इन कवियों ने प्रस्तुत किये।

४ सर्ग के अन्त व मध्य में छन्द-परिवर्तन के विषय में भी इन कवियों ने स्वतन्त्र

अभिरुचि से काम लिया। इस विषय मे वे पूर्व और पश्चिम दोनो ही के शास्त्रीय बन्धनो से मुक्त रहे हैं।

५ वर्ण्य विषयो की दृष्टि से भी शास्त्र-निर्दिष्ट प्रसगों की इन्होने पूर्ण अवहेलना की। इन कवियो ने विषय और प्रसग की आवश्यकता के अनुकूल वर्णन-विस्तार किया है, नियम-पालन के आग्रहवश नही।

६. 'मेधावी' के कवि ने प्रत्येक सर्ग के आरम्भ मे, गद्य मे कथा का सक्षिप्त उल्लेख कर एक नवीन पद्धति अपनायी है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि इन कवियो की मौलिकता विषय की अपेक्षा शिल्प और शैली के क्षेत्र मे अधिक दृष्टिगत होती है और सम्पूर्ण रचना मे अनुपात की दृष्टि से परम्परागत रूप-विधान-पद्धति हर प्रकार से बहुत कम अपनाई गयी है।

द्वितीय अध्याय

खण्डकाव्य

प्रबन्ध काव्य के दूसरे भेद—खण्डकाव्य के रूप-विधान-सम्बन्धी लक्षण, सस्कृत और हिन्दी काव्य-शास्त्र मे बहुत विरल और अस्पष्ट है। प्राचीन व आधुनिक काल के विद्वानो ने खडकाव्य का कही तो उल्लेख करके ही छोड दिया है, और जहाँ इस रूप की विशेषताओ के सम्बन्ध मे निर्देश भी किया गया है वहा भी इसके शिल्प के विषय मे ये आचार्य मौन है। प्राय खडकाव्य के विषय, स्वरूप, और विस्तार की सीमाए ही इन लक्षणो से स्पष्ट होती है। रूप-विधान की दृष्टि से खण्डकाव्य इन आचार्यों की दृष्टि मे किस प्रकार का काव्य-रूप था, इसका निर्णय उनके द्वारा उदाहरण-स्वरूप कथित काव्यो के रूप-विश्लेषण से ही किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य मे भी खडकाव्य का विस्तारपूर्वक रूप-विवेचन नही किया गया। जिन विद्वानो ने खडकाव्य के विषय मे कुछ कहा है—उसका आधार भी सस्कृत विद्वानो का विवेचन ही है। डा० शकुन्तला दूबे ने अपने शोध-प्रबन्ध मे खडकाव्य का जो विभाजन व विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह भी काव्य के बध और शिल्प की अपेक्षा उसकी विषय-वस्तु और कवि के दृष्टिकोण पर ही अधिक आधारित है। अत: सस्कृत और हिन्दी के विद्वानो के मन्तव्यो के आलोक मे खडकाव्य का रूप स्थिर करने के उपरान्त ही आधुनिक काल में लिखे गए खडकाव्यो का रूप-विश्लेषण सम्भव होगा। हम पहले खडकाव्य के सम्भावित परम्परागत रूप के स्थिरीकरण का प्रयत्न करेगे।

भरत तो काव्य-रूपो के विवेचन के प्रति उदासीन रहे, परन्तु परवर्ती आचार्यों—भामह, दण्डी, और वामन आदि ने महाकाव्य और मुक्तक आदि का अनेक रूपो मे उल्लेख और विवेचन करने पर भी खडकाव्य का उल्लेख नही किया। भामह और दण्डी ने सर्गबन्ध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, तथा वामन ने निबद्ध काव्य मे रूपक का भी समावेश किया, किन्तु प्रबन्ध-रूपों मे खडकाव्य का स्पष्ट उल्लेख इन आचार्यो ने नही किया।

आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्यरूपो का विवेचन करते हुए सर्वप्रथम "खण्डकथा" नामक काव्य-भेद का पृथक् नामोल्लेख किया है। यद्यपि उन्होने स्पष्ट नही कहा कि यह विभाजन गद्य-विधाओ का है अथवा पद्य का, किन्तु प्रकारान्तर से उनके विवेचन से निष्कर्ष ग्रहण किया जा सकता है कि उनका अभिप्राय काव्य से ही था।

खण्डकाव्य के शिल्प के विषय मे उन्होने भी कुछ नही कहा। आचार्य विश्वनाथ ने भी खण्डकाव्य की विषयगत सीमाओ की ओर ही सकेत किया, रूप-विधान-सम्बन्धी विशेषताओ या सम्भावनाओ की ओर नही। खण्डकाव्य की रचनागत अथवा रूप-आकार सम्बन्धी विशेषताओ के विषय मे इस लक्षण से कोई स्पष्ट सकेत उपलब्ध नही होता। काव्य के एक अश का

अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है।[1] यहा काव्य से कदाचित् आचार्य का अभिप्राय महाकाव्य से ही है। महाकाव्य मे व्यक्ति-विशेष या अनेक व्यक्तियो के सम्पूर्ण जीवन अथवा युग-विशेष की समग्रता का चित्रण होता है। अतः अश-विशेष का अनुसरण करने का अभिप्राय है उपर्युक्त दोनो से सम्बद्ध एक खण्ड या घटना-विशेष का अनुसरण। सीमित विषय की अभिव्यक्ति तदनुकूल सीमित कलेवर मे ही उचित होगी। अतएव खण्डकाव्य महाकाव्य की समग्रता और महत्ता की तुलना मे आकार की दृष्टि से उसके एक खण्ड या अश के समान होगा। उसमे वर्णन-विस्तार, सर्गविभाजन सभी विषयानुकूल होगे। आचार्य विश्वनाथ द्वारा उदाहरण-स्वरूप कथित काव्य 'मेघदूत' भी इसी निष्कर्ष का पोषक है।

आधुनिक काल मे हिन्दी साहित्य के जिन विद्वानो ने खण्डकाव्य का उल्लेख व विवेचन किया उनके मत भी रूप-विधान के विषय मे स्पष्ट और विस्तारयुक्त नही है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने संस्कृत के आचार्य विश्वनाथ की तद्विषयक पक्ति का अनुवाद प्रस्तुत कर दिया—

"महाकाव्य के ढग पर जिस काव्य की रचना होती है पर जिसमे पूर्ण जीवन का ग्रहण न करके खड जीवन ही ग्रहण किया जाता है उसे खडकाव्य कहते है।"[2] मिश्रजी ने कथा के लिए स्वतःपूर्णता का गुण अनिवार्य मानते हुए यह भी स्पष्ट किया कि किसी महाकाव्य का एक या एकाधिक सर्ग खडकाव्य नही हो सकते। खडकाव्य का विस्तार भी उनके अनुसार थोडा होता है। उक्त मत मे सस्कृत-आचार्यो की भाँति विषय-सीमा की ही व्याख्या की गई है।

इसी प्रकार बाबू गुलाबराय ने भी उसके प्रबन्धत्व और कथा-विस्तार का ही विवेचन किया है—

"खण्डकाव्य मे प्रबन्ध काव्य का-सा तारतम्य तो रहता है किन्तु महाकाव्य की अपेक्षा उसका क्षेत्र सीमित होता है। उसमे जीवन की वह अनेकरूपता नही रहती जो कि महाकाव्य मे होती है। उसमे कहानी और एकाकी की भाँति घटना के लिए सामग्री जुटाई जाती है।"[3]

डा० शकुन्तला दूबे ने अपने शोध-प्रबन्ध मे खण्डकाव्य के स्वरूप के विषय मे कुछ प्रकाश डाला है। सस्कृत आचार्यों द्वारा दिये गए उदाहरण ग्रन्थ 'मेघदूत' तथा हिन्दी-साहित्य मे समय-समय पर किए जाने वाले प्रयोगो के आधार पर उन्होने कुछ निष्कर्ष उपस्थित किए है, जिनका उल्लेख खण्डकाव्य का स्वरूप-निर्धारण करते हुए यथावसर किया जाएगा।

सस्कृत के काव्य-शास्त्रीय विवेचन एव प्रयोग के आधार पर खण्डकाव्य की रूप-विधा-सम्बन्धी निम्नलिखित विशेषताएं निश्चित की जा सकती है—

कथानक

(क) खण्डकाव्य का कथानक ऐतिहासिक, प्रख्यात, मिश्र अथवा उत्पाद्य हो सकता

१. खण्डकाव्य भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।
यथा—मेघदूतादिः। साहित्यदर्पण—आ० विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद, पृष्ठ ३२५
२. वाङ्मयविमर्श—विश्वनाथप्रसाद मिश्र, तृतीय सस्करण, पृष्ठ ३९
३. काव्य के रूप— गुलाबराय, तृतीय सस्करण, पृष्ठ ११७

है। महाकाव्य के समान खण्डकाव्य के कथानक के लिए ऐतिहासिकता अनिवार्य अनुबन्ध नही—'मेघदूत' इसका उदाहरण है।

(ख) आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार खण्डकाव्य की कथा मे महाकाव्य के एक देश या अश का अनुसरण होता है। परन्तु खण्डकाव्य जीवन के अग विशेष को लेकर चलने पर भी स्वत पूर्ण होता है। किसी महाकाव्य का एक या एकाधिक सर्ग खण्डकाव्य नही हो सकते। महाकाव्य और खण्डकाव्य का पारस्परिक अन्तर नाटक और एकाकी तथा उपन्यास व कहानी की भाँति आकार-मात्र का न होकर प्रकार का भी है। उसमे जीवन का एक ही खण्ड लिया जाता है, किन्तु वह खण्ड अपने-आप मे पूर्ण होता है—

"खण्डकाव्य के 'खण्ड' शब्द का यह अर्थ कदापि नही कि वह बिखरा हुआ अथवा किसी महाकाव्य का एक खण्ड है। प्रत्युत यह 'खण्ड' शब्द उस अनुभूति के स्वरूप की ओर सकेत करता है जिसमे जीवन अपने सम्पूर्ण रूप मे कवि को न प्रभावित कर आशिक या 'खण्ड' रूप मे ही प्रभावित करता है।"[1]

(ग) महाकाव्य की वस्तु-सघटना की भाँति, नाटच-सन्धियो के निर्वाह की अनिवार्यता भी खण्डकाव्य के लिए नही मानी गई। जीवन के सर्वांग का यथासभव समाहार कर, अनेक प्रासगिक कथाओ और उपाख्यानो मे सयुक्त, सश्लिष्ट कथानक लेकर चलने वाले काव्य-रूप के लिए जिस सचेष्ट और सावधान वस्तु-सघटना की आवश्यकता है, उतनी एक ही प्रधान कथा को आद्यन्त लेकर चलने वाले काव्य के लिए नही, किन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि खण्डकाव्य की कथा मे किसी प्रकार के पारस्परिक अनुपात और घटना-क्रम मे औचित्य की अपेक्षा नही। खण्डकाव्य मे प्रमुख घटना एक ही होती है, परन्तु कभी-कभी अन्य घटनाएँ कार्य-कारण या प्रासगिक रूप मे आ जाती है। जैसे 'जयद्रथ-वध' मे प्रमुख घटना के कारण-रूप अभिमन्यु-वध की घटना। अतः खण्डकाव्य के लिए यद्यपि जटिल नही, किन्तु आकार लघु होने के कारण और भी सधे-सधाए वस्तु-विधान की अपेक्षा है। वस्तुत बृहद् प्रबन्धो मे सुचिन्तित घटना-क्रम की अपेक्षा होने पर भी विस्तृत वस्तु-विन्यास के बीच एकाध ऐसे स्थल उपेक्षणीय हो सकते है जो प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से अनावश्यक या शिथिल हो; परन्तु खण्डकाव्य मे आकार की सक्षिप्तता और वर्णन-विस्तार के अभाव के कारण प्रत्येक प्रसग की स्थिति आवश्यकता या सम्भाव्यता के अनुसार होनी चाहिए। अरस्तू ने महाकाव्य के लिए जिस सुनिश्चित आदि, मध्य और अवसान की आवश्यकता का उल्लेख किया था वह खण्डकाव्य के लिए और भी अनिवार्य है। उसका प्रत्येक प्रसग व घटना परस्पर कार्य-कारण-सम्बन्ध मे आबद्ध और कसी हुई होनी चाहिए। कार्य-व्यापार की पाँच अवस्थाओ के अनुसार आरोह-अवरोह की न खण्डकाव्य मे आवश्यकता है न सम्भावना, परन्तु उसका सीमित वस्तु-व्यापार तथा प्रमुख व अन्य घटनाएँ परस्पर सुसम्बद्ध और इस प्रकार नियोजित होनी चाहिए कि उनमे कोई अश अतिरिक्त न जान पडे।

(घ) वर्ण्य-विषयो की जो सूची महाकाव्य के लिए बनायी गई थी—उसके अन्तर्भाव का खण्डकाव्य के सीमित कथा-विस्तार मे प्रश्न ही नही उठा। जीवन के जिस क्षेत्र मे खण्डकाव्य

१. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दूबे, पृष्ठ १४४

की कथावस्तु का चयन किया जायगा, उस पक्ष-विशेष के वर्णन उसमे होगे ही, परन्तु महाकाव्य की भाँति खण्डकाव्य के लिए वर्णन-विस्तार अनिवार्य नही। कवि की दृष्टि वस्तुपरक या बाह्यार्थ-निरूपिणी न होकर भावपरक व आत्माभिव्यक्ति-प्रधान भी हो सकती है। खण्डकाव्य के उदाहरण-स्वरूप बहुधा 'मेघदूत' का उल्लेख इस बात का प्रमाण है। हिन्दी-साहित्य मे—विशेषकर पूर्व-मध्य और मध्य-युग मे, तथा आधुनिक युग के अधिकाश खण्डकाव्यो मे कथा-सूत्र सबल है। आख्यान और घटना के कथन का आग्रह लेखको की दृष्टि मे प्रमुख है, भावाभिव्यजना अपेक्षाकृत गौण। अत व्यवहार मे खण्डकाव्य की रचना वस्तु-प्रधान, इतिवृत्तात्मक दृष्टिकोण से जितनी की गई है, उतनी कुछ प्रयोगो को छोडकर विषयी-प्रधान, आत्मपरक दृष्टि से नही। उसका स्वरूप समाख्यानात्मक शैली मे लिखे गये आख्यान काव्य का ही अधिक रहा है।

शिल्प

(क) सर्ग-विभाजन—विस्तार की दृष्टि से बृहदाकार महाकाव्य के लिए अभीष्ट था, इसीलिए आठ से अधिक सर्गो की सख्या निश्चित कर आचार्य विश्वनाथ ने उसके सकोच की सीमा निर्धारित कर दी। इस प्रकार की कोई सीमा खण्डकाव्य के लिए निश्चित न करने के कारण ही आकार-सम्बन्धी जितना प्रयोग-वैविध्य खण्डकाव्य के नाम पर मिलता है उतना किसी और काव्य-रूप मे नही। एक ओर हमारे कवि-वर्ग ने 'नूरजहाँ' 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' जैसे महाकाव्यात्मक बृहद खण्डकाव्यो की रचना की, जिनका अनेक सर्गो मे विभाजन किया गया, और दूसरी ओर 'रग मे भग', 'पचवटी', और 'तुलसीदास' जैसे सर्गविहीन लघु खण्ड-काव्य लिखे गए। खण्डकाव्य की "कथा सर्गो मे होकर भी गूँथी जा सकती है, और उसके बिना भी उसका प्रणयन हो सकता है। क्योकि जीवन के जिस विच्छिन्न अश को अथवा घटना को लेकर कवि चलता है, उसमे विस्तार का क्षेत्र बहुत छोटा होता है।"[1] इस प्रकार विषय और विस्तार की आवश्यकता के अनुकूल खण्डकाव्य का विभाजन अनेक सर्गो मे भी हो सकता है और वह सर्गविहीन भी हो सकता है, परन्तु विषय-वस्तु की परिसीमा के कारण खण्डकाव्य का विस्तार कुछ दूर तक ही सर्गों मे किया जा सकता है। मनमाने ढग से सीमित घटनावली का वर्णन-विस्तार कर उसका अनेकानेक सर्गो मे विभाजन करने से विषय और अभिव्यंजना मे परस्पर अनुकूलत्व और अनुपात की दृष्टि से जो अव्यवस्था उत्पन्न हो जायगी वह तर्क-सम्मत कैसे हो सकती है? अपने विषय के अनुकूल आकार-विस्तार और सर्ग-बन्धन की स्वतन्त्रता कवि को होगी ही। सर्ग-बद्धता खण्डकाव्य का अनिवार्य लक्षण नही हो सकता।

(ख) छन्द-विधान—की दृष्टि से एक ही छन्द मे सर्ग-रचना, या सर्ग-विभाजन के अभाव में एक ही छन्द मे काव्य-रचना, प्रबन्ध के अविच्छिन्न धारा-प्रवाह के लिए काम्य तो अवश्य है, परन्तु आवश्यक अनुबन्ध नही। महाकाव्य मे ही सिद्धान्त और प्रयोग दोनो दृष्टियो से इस नियम के अपवाद की स्वीकृति हो जाने पर खण्डकाव्य के लिए इस नियम-पालन की अपेक्षा करना व्यर्थ है; यद्यपि महाकाव्य की तुलना मे विस्तार कम होने के कारण खण्डकाव्य मे एक छन्द का निर्वाह व्यावहारिक दृष्टि से अधिक सहज है।

१. काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० श० दूबे, पृ० १४७

(ग) शैली-सम्बन्धी अन्य वर्णन रूढ़ियाँ—मंगलाचरण, वस्तु-निर्देश, सर्गान्त मे भावी कथा-सूचना, सज्जन-प्रशसा व दुर्जन-निन्दा, सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन आदि की अवमानना स्थल व गौण लक्षण मानकर महाकाव्यों मे ही कर दी गई थी, अत इस प्रकार के ऊपरी व अपेक्षाकृत अप्रमुख नियमों के पालन की आवश्यकता खण्डकाव्यकार के लिए स्वीकार करना अन्याय होगा। विस्ताराभाव के कारण इस औपचारिकता के पालन का अवकाश वहाँ और भी अल्प है।

निष्कर्ष रूप मे खण्डकाव्य रूप-विधान की दृष्टि से ऐसा काव्य-रूप है जिसमे जीवन के किसी खण्ड, घटना, या प्रसग-विशेष को विषय बनाया जाता है। सामान्यतः इसका स्वरूप समाख्यानात्मक एव वर्णनात्मक होता है, किन्तु विषय की आवश्यकता के अनुकूल उसमे भावाभिव्यजक, आत्म-सलापात्मक व प्रगीतात्मक शैली का प्रयोग भी हो सकता है। उसकी घटनाओ का ग्रथन वस्तुजगत् भी हो सकता है तथा उसमे पात्रो एव कवि के मनस्थ प्रसगो को स्वीकार कर आन्तरिक भावाभिव्यजना व मनोविश्लेषण की प्रधानता भी हो सकती है। कहना व्यर्थ है कि सुगठित वस्तु-विन्यास महाकाव्य व खण्डकाव्य क्या, किसी भी प्रबन्ध-रूप के लिए अनिवार्य है। शैली की दृष्टि मे प्रत्येक काव्य-रूप के लिए केवल एक नियम अनिवार्य है—और वह है विषय और अभिव्यक्ति का परस्पर अनुकूलत्व। इस नियम के अन्तर्गत रहते हुए कवि को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह अपनी रुचि और अपने विषय को दृष्टि मे रखते हुए काव्य को सर्गो मे बाँधे या सर्गविहीन काव्य लिखे, एक छन्द मे या अनेक छन्दो मे रचना करे। वर्णन को प्रगीत और नाटकीय शैली मे रूपान्तरित करे तथा विषय का विस्तार अथवा सकोच करे। इस विषय मे खण्डकाव्य के शिल्प के सम्बन्ध मे कोई विधि-निषेध नही किया गया जो इस काव्य-रूप के उन्मुक्त विकास और प्रयोग-वैविध्य की दृष्टि से एक ओर शुभ हुआ और दूसरी ओर इस क्षेत्र मे परस्पर इतने भिन्न प्रयोग किये गए कि उन्हे केवल कथा-खण्ड या घटना-विशेष लेकर चलने के कारण एक ही वर्ग मे बाँधना उचित प्रतीत नही होता। कुछ रचनाओ का रूप-विधान विस्तार की दृष्टि से महाकाव्य के बहुत समीप जा पहुँचा। 'नूरजहाँ', 'हल्दीघाटी', 'जौहर', 'कुणाल' आदि रचनाएँ इसी प्रकार की है। दूसरी ओर खण्डकाव्य के नाम पर कुछ ऐसे काव्य लिखे गये जिनमे घटना-विशेष की एकपक्षीय झाँकी-मात्र प्रस्तुत की गई है। पाठक को प्रसग की एक झलक मिलती है और घटना की समग्रता का आभास होते न होते काव्य समाप्त हो जाता है। मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'विकट भट', 'अर्जन और विसर्जन' आदि अनेक लघु पद्य-कथाएँ इसी प्रकार की है। इन दोनो अतिवादो के बीच एक मध्यवर्तिनी धारा उन काव्यो की है जिन्हे शब्द के सही अर्थ मे खण्डकाव्य स्वीकार किया जा सकता है। इन काव्यो मे घटना या कथा का तर्कसम्मत विस्तार और तदनुकूल आकार ग्रहण किया गया है। यद्यपि खण्डकाव्य के विषय और रूप-विस्तार के सम्बन्ध मे आचार्यों द्वारा किन्ही नियमो का निश्चय नही किया गया, किन्तु महाकाव्य से खण्डकाव्य का व्यावर्तन ही इस बात का प्रमाण है कि दोनो के सीमा-विस्तार मे परस्पर अन्तर है और साथ ही केवल एक क्षणिक अनुभूति या प्रसग को लेकर लिखी जाने वाली कोई लम्बी कविता खण्डकाव्य नहीं हो सकती। खण्डकाव्य मे महाकाव्य की सर्वांग-पूर्णता और कविता की एकागिता, दोनो मे भिन्न जीवन के खण्ड-विशेष का अपनी समग्रता मे अकन होना चाहिए।

पाश्चात्य साहित्य मे खण्डकाव्य जैसी किसी काव्य-विधा का पृथक् उल्लेख व विवेचन नही मिलता, इस प्रकार के काव्यों की परिगणना विद्वानों द्वारा 'नैरेटिव-पोएटरी' अर्थात् समाख्यानात्मक काव्य के अन्तर्गत कर ली गई, और इनके लिए रचना-सम्बन्धी निश्चित नियम भी नही बनाये गए, अत खण्डकाव्य के रूप-विधान के विषय मे पाश्चात्य दृष्टिकोण से भी विशेष प्रकाश नही पडता। आधुनिक काल मे लिखे गए खण्डकाव्यो को रूप-विधान की दृष्टि से दो प्रमुख वर्गों मे बाँटा जा सकता है—**१ महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य, २ लघु प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य।**

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती है जिनका रूप-निर्माण महाकाव्य के ढग पर किया गया है। दूसरे शब्दो मे जिनको अन्य विषयादि सम्बन्धी परिसीमाओ के कारण महाकाव्य नही स्वीकार किया जाता, परन्तु केवल रूप-विधा की दृष्टि से जिनका विस्तार महाकाव्यानुरूप है। दूसरे प्रकार के खण्डकाव्य हमने वे माने है जिनका काव्य-रूप महाकाव्य के समान तो नही, परन्तु जो किसी लम्बी प्रबन्धात्मक कविता या काव्य-निबन्ध से भिन्न मध्यम आकार की प्रबन्ध-रचनाएँ है। जिनकी शैली विषय की आवश्यकता के अनुरूप समाख्यानात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक या विश्लेषणात्मक, अथवा भावात्मक है। इनके अतिरिक्त एक तीसरा प्रकार उन रचनाओ का है जिनकी गणना उनकी प्रबन्धात्मकता और कथा-तत्त्व को देखकर खण्डकाव्यो मे की जाती है, परन्तु वस्तुत उनमे एक कथाखण्ड न लेकर प्रसग-मात्र को ग्रहण किया गया है। उनमे खण्डकथा न होकर आख्यान-मात्र है, जिसमे खण्डकाव्य की अपनी सीमा के अन्तर्गत विद्यमान पूर्णता का अभाव है। इस प्रकार की लघु पद्य-कथा अथवा आख्यान काव्यो का विवेचन व उल्लेख हम खण्डकाव्य के उपरान्त करेगे। प्रस्तुत विषयारम्भ हम उन बृहद् खण्डकाव्यो के विवेचन से कर रहे है जिनका रूप-विधान बहुत-कुछ महाकाव्यानुरूप है।

महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली रचनाओ की सख्या बहुत नही है। वस्तुत बहुत-सी ऐसी अन्य कृतियो की गणना महाकाव्य के अन्तर्गत कर ली गई है। कारण—इन रचनाओ मे खण्ड-कथा को लेकर चलने पर भी शैलीगत कुछ अन्य विशेषताओ के कारण वे महाकाव्य के बहुत निकट है, अत उनकी कथा-सम्बन्धी परिसीमाओ की ओर सकेत करते हुए भी उनका अन्तर्भाव महाकाव्यों मे किया गया है—'प्रियप्रवास', 'वैदेही बनवास', 'तपोवन', 'साकेत सन्त' आदि कृतियाँ इसी प्रकार की है। जिन कृतियो का विवेचन हम प्रस्तुत प्रसग मे करेगे उनके काव्य-रूप में बहुत दूर तक महाकाव्य का अनुकरण किया जाने पर भी, तद्विषयक उनकी अनुपयुक्तता इतनी स्पष्ट है कि उन्हे खण्डकाव्य के अतिरिक्त कुछ नही माना जा सकता, यद्यपि कुछ कवियो ने उनके मुखपृष्ठ पर स्वय उनके महाकाव्य होने की विज्ञप्ति की है। इस प्रकार के खण्डकाव्यो मे मुख्य रूप से निम्नलिखित रचनाओ का उल्लेख किया जा सकता है—

गगावतरण—रत्नाकर
नूरजहाँ—गुरुभक्तसिह
कुणाल—सोहनलाल द्विवेदी

हल्दीघाटी
जौहर } —श्यामनारायण पाण्डेय

कथानक

ऊपर जिन कृतियों का उल्लेख किया गया उन सभी के कथानक ऐतिहासिक अथवा प्रख्यात हैं, और सभी में प्रमुख पात्र के जीवन-खण्ड या घटना-विशेष का वर्णन है। 'गंगावतरण' की घटना राजा भगीरथ की तपस्या के परिणामस्वरूप भागीरथी के अवतरण और माहात्म्य की कथा है। 'नूरजहाँ' मे नायिका के जन्म से पुनर्विवाह तक की घटनाएँ है, और 'कुणाल' मे राजपुत्र कुणाल पर विमाता की आसक्ति और कुणाल की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप घटित होने वाले कुचक्र का वर्णन है। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' का सम्बन्ध मध्यकालीन राजपूती इतिहास की दो गौरव-गाथाओ से है। पहले मे राणा प्रताप और मानसिह के बीच होने वाले हल्दीघाटी के युद्ध की घटना, और दूसरे मे अलाउद्दीन की चित्तौड-नरेश की पुत्रवधू पद्मिनी के प्रति मोहासक्ति, आक्रमण और जौहर का वर्णन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी प्रसिद्ध पात्र या पात्री की सम्पूर्ण जीवन-गाथा को इन कृतियों मे विषय नही बनाया गया। 'गगावतरण' और 'कुणाल' के कवियो का इन रचनाओ को महाकाव्य मानने का आग्रह भी नही रहा। 'कुणाल' के भूमिका-लेखक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने तो इस विषय में शका का अवकाश ही नही छोडा। सम्भावित आशका का समाधान उन्होने स्वय ही कर दिया—

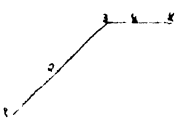
"यो तो साहित्य-शास्त्र की शाब्दिक व्याख्या के अनुसार 'कुणाल' भी महाकाव्य कहा जा सकता है, पर वास्तव मे वह एक खडकाव्य है। उसमे 'कुणाल' के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली एक ही घटना मुख्य रूप से चित्रित है, वह है सौतेली माँ की आसक्ति पर कुणाल की प्रतिक्रिया। इस एक घटना के सूत्र मे सारा काव्य सँजोया हुआ है। देश, काल और चरित्र का इतना विस्तार इसमे नही है कि इसे हम महाकाव्य कह सके। किन्तु खडकाव्य की दृष्टि से यह एक सफल रचना है।"[1]

'गगावतरण' के कवि ने भी इसे काव्य के अतिरिक्त और कुछ नही कहा। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' दोनों ही काव्यो के मुख-पृष्ठ पर काव्य के नाम के उपरान्त महाकाव्य विशेषण का उल्लेख किया गया है, यद्यपि 'हल्दीघाटी' मे प्रताप के अत्यन्त समर्थ और घटनासकुल जीवन में से एक युद्ध, और इसी प्रकार पद्मिनी के जीवन-काल की अन्तिम घटना को 'जौहर' मे काव्य-विषय बनाया गया है। इस प्रकार विषयवस्तु के घटना, देश, काल-सम्बन्धी विस्तार की दृष्टि से ये काव्य खण्डकाव्य ही कहलाएँगे।

वस्तु-विन्यास—इन सभी रचनाओ के कथानक सरल है और उनका विकास सम गति से हुआ है। इनमे एक कथा है, उसका एक चरम या प्रमुख कार्य तथा अन्त या फल है। 'गंगावतरण' के अतिरिक्त अन्य सभी कृतियो का अन्त भौतिक दृष्टि से दु खात्मक है, किन्तु पारलौकिक दृष्टि से उसमे एक उच्चतर फल या उद्देश्य की सिद्धि की व्यजना है। कथानको मे बहुत मोड़-तोड, उत्थान-पतन या बहुमुखी सघर्ष की योजनाएँ नही है। प्रमुख कथा मे, प्रमुख पात्रों के मार्ग

१. कुणाल—सोहनलाल द्विवेदी, भूमिका, पृष्ठ २

में विरोधी पक्ष से दिशा-विशेष में बाधा या संघर्ष का चित्रण कवि ने किया है। आरम्भ प्रायः इस संघर्ष के कारणो को भूमिका-रूप में प्रस्तुत करने से होता है। इन निमित्त कारणों से उद्भूत द्वन्द्व बढते-बढते एक ऐसे चरम पर जा पहुँचता है, जहाँ से सफलता या असफलता, एक ओर वह अग्रसर हो जाता है और क्रमशः अन्त या फल तक पहुँचकर कथा समाप्त हो जाती है। इस कथा में उपाख्यानो की योजना से प्रमुख कार्य मे बाधक व साधक प्रासगिक वृत्तो का विधान नही किया जाता। अतः खण्डकाव्य के लिए उपयुक्त स्पष्ट, सरल और समप्रवाही कथानक की दृष्टि से वस्तु-विन्यास की यह पद्धति विशेष उपयोगी होने पर भी इसमे महाकाव्य के लिए अपेक्षित सश्लिष्ट, जटिल और महाप्राण कथानक का अभाव ही बना रहता है। अभिप्राय यह नही कि इनके कथा-विकास मे नाटकीयता नही। नाटकीयता का गुण इनमे निश्चित रूप से वर्तमान है, परन्तु आधिकारिक और अनेक प्रासगिक वृत्तो की जटिल योजना से कार्य-व्यापार मे जो सप्राण घात-प्रतिघात उत्पन्न हो जाता है, घटनाओ मे झझावात आ जाता है और वस्तु-प्रवाह टकराता, थपेड़े खाता, विषम गति से आगे बढता है, वह सश्लिष्ट वस्तु-सघटना इनमे नही मिलती। इनका कार्य-व्यापार इकहरा विरोध का सामना करता एक चरम की ओर बढता जाता है और इस चरम स्थिति पर निर्णय हो जाने के उपरान्त सम गति से अन्त या फल की ओर अग्रसर हो बह निकलता है। इनमे कार्य-व्यापार की चौथी अवस्था 'कार्य-निगति' का इस प्रकार पर्याप्त सकोच हो गया है। प्रायः चरम घटना के उपरान्त किसी उल्लेखनीय बाधा-शमन के अवसर नही आते। रेखा के द्वारा इनकी वस्तु-सघटना को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—



पहली स्थिति मे आरम्भ, दूसरी मे प्रगति, तीसरी मे चरम घटना, चौथी स्थिति निगति का विस्तार कुछ रचनाओ मे अपेक्षाकृत अधिक तथा अन्य मे कम हो सकता है। 'हल्दीघाटी', 'जौहर' और 'कुणाल' मे चरम घटना और काव्य-फल या अन्त के बीच मे विशेष अन्तराल या कार्य-व्यापार की योजना नही की गई है। 'हल्दीघाटी' मे प्रताप और मानसिह के बीच युद्ध, 'जौहर' में जौहर, और 'कुणाल' मे आँखो का अर्पण करना चरम घटना है। इस चरम घटना के उपरान्त काव्य के अन्त मे बहुत समय नहीं लगता। 'कुणाल' की भूमिका मे इस विषय मे शका भी उठायी गई है—

"कथानक के सम्बन्ध मे जैसे एक·····वैसे ही एक प्रश्न अन्त मे भी उठता है। वह यह कि कुणाल के निर्वासन और उनके पाटलिपुत्र लौटने के बीच का समय जो कवि के सकेत के अनुसार कितने ही वर्षों का था, अत्यन्त शीघ्र समाप्त क्यों कर दिया गया? निर्वासन की अवधि में 'पथगीत' के अतिरिक्त किसी भी घटना की योजना नही की गई। नवम सर्ग मे वे गीत है और दशम में ही पुनर्मिलन। इनके बीच का कथानक इतना सक्षिप्त है कि कुणाल के निर्वासित

जीवन का यथेष्ट विकास नही हो पाया।"[1]

कुछ आगे चलकर इस प्रश्न का समाधान स्वय ही भूमिका-लेखक ने किया है—

"एक बात यहाँ स्मरण रखनी होगी। यदि कवि घटनाचक्र को स्वच्छद रूप से बढने देता तो खंडकाव्य न होकर 'कुणाल' महाकाव्य बन जाता। खडकाव्य मे घटनाओ को इतना विस्तार नही दिया जा सकता था। इसलिए रचना की सीमा का ध्यान रखते हुए कथानक पर की गई आपत्ति बहुत कुछ निर्बल हो जाती है।"[2]

'हल्दीघाटी' और 'जौहर' मे भी मुख्य कार्य के उपरान्त कथा तत्काल अन्त की ओर मुड जाती है। 'नूरजहाँ' और 'गगावतरण' मे चरम-घटना और फल के बीच कार्य-व्यापार का अपेक्षाकृत कुछ दूर तक विस्तार किया गया है। 'नूरजहाँ' मे शेर अफगन का वध काव्य की चरम घटना और नूरजहाँ व सलीम का मिलन फल है। 'गगावतरण' मे गगावतरण प्रमुख घटना और पुत्रो का उद्धार फल है। 'नूरजहां' मे कुछ अस्थायी बाधा नायिका की अपनी मनोवृत्ति से उपस्थित हुई है, जो अत्यन्त महत्त्वहीन है और 'गगावतरण' मे अवतरण की घटना से अन्त तक का अश गगा के माहात्म्य वर्णन से भरा गया है। इस बीच मे कोई घटना नही घटती। यह सपूर्ण अश वर्णनात्मक है, जो कुछ लम्बा तो हो गया है परन्तु इस भाग मे कथा के कार्य-व्यापार मे किसी प्रकार के मोड, विघ्न-बाधाएँ उपस्थित नही होती, अर्थात् मुख्य कार्य के उपरान्त ही कथा फलोन्मुख हो जाती है। इस प्रकार ऊपर से दिखाई पडने वाला यह अन्तराय वास्तव मे अन्तराय नही है, क्योकि इस बीच मे कार्य-व्यापार समप्रवाही गति से एक ही दिशा मे बढता गया है, उसमे विशेष परिवर्तन नही आते। उसके मार्ग या गतिविधि मे भी किसी प्रकार का अन्तर प्रस्तुत नही होता, एक ही दिशा मे घटनाचक्र निर्बाध रूप से बढता जाता है।

अतः इनका वस्तु-विधान नाटकीय परन्तु इकहरा और सरल गति से विकसित होने वाला है।

घटनाओं का स्वरूप—'कुणाल' के कुछ सर्गों को छोड़कर इन सभी काव्यो की घटनाएँ भौतिक है, जिनका धरातल नाना रूपात्मक वस्तुजगत् है। घटनाओ का क्षेत्र बाह्य जगत् और उनका रूप सक्रिय है। कार्य-व्यापार कही भी तलस्थ या मनोमय नही होता। नूरजहाँ, पद्मिनी, प्रताप सभी पात्रो के मन मे होने वाले अन्तर्द्वन्द्व की व्यजना की अपेक्षा, कवियो ने बाह्य क्रिया-कलाप तथा आन्तरिक मनोवृत्ति के सवाक् या सचेष्ट शारीरिक रूप को ही ग्रहण किया है। कही भी इन पात्रो के मन मे होने वाली भीषण क्रिया-प्रतिक्रिया को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न नही किया गया। जौहर से पहले पद्मिनी के, आत्म-समर्पण से पहले नूरजहाँ के, और पराजित प्रताप के अन्त. का निरूपण किसी भी भौतिक या स्थूल घटना से कम सक्रिय या निष्प्राण नही होता; परन्तु अमूर्त घटनाओं की मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के आधार पर अभिव्यक्ति का प्रयत्न ही इन कवियो ने नही किया है। 'जौहर' और 'हल्दीघाटी' का प्रमुख विषय युद्ध या तत्सम्बन्धी घटनाएं है। इस विषय के वर्णन मे प्रत्यक्षता, ओज और उत्साह का भाव है। युद्ध

---

१. कुणाल—सोहनलाल द्विवेदी, भूमिका, पृ० ४

२. वही, पृष्ठ, ४-५

जैसी स्थूल, ओजमय प्रत्यक्ष घटना को लेकर, अप्रत्यक्ष, अशरीरी, या सूक्ष्म वर्णन सम्भव भी नहीं थे। इसका एक कारण और है—इस प्रकार की घटनाओ में अंकित संघर्ष आन्तरिक, व्यक्ति की अपनी चेतना या मनोवृत्तियों पर विजय के रूप में नही हैं, विरोध दूसरे पक्ष से राजनीतिक रंगमंच पर प्रस्तुत हुआ है। 'गगावतरण' की घटनाएँ तो और भी स्थूल, भौतिक धरातल पर व्यक्त हैं। कवि का दृष्टिकोण ही भिन्न है, जिस कथा का वर्णन वह कर रहा है, उसके अधिकांश पात्र अलौकिक हैं, और उनके प्रति एक निश्चित श्रद्धा-भाव कवि के मन मे वर्त्तमान है। इन पात्रों का चरित्र-निरूपण करना, या प्रबन्ध-विन्यास मे किसी विशेष चमत्कृति का सायास प्रयत्न करना, अथवा व्यक्ति-वैचित्र्य की चरित्र-चित्रण पद्धति पर उनके अन्तर्द्वन्द्व की व्यजना करना कवि का लक्ष्य नही। वह इन अलौकिक पात्रो और घटनाओ का माहात्म्य-वर्णन करके अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करना चाहता है। इस लक्ष्य के पीछे भी व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा लोक-मंगल और धर्मसिद्धि की कामना अधिक है, यह धर्म व्यक्ति-धर्म नही समाज-धर्म है। अत वही प्रसंग आये है जिनका सम्बन्ध प्राणी-मात्र से है। व्यक्ति के धरातल पर उन्होने अन्तर्वृत्ति-निरूपण का प्रयत्न नही किया। कही-कही गगा को धारण करने के अवसर पर शिव और गगा की भाववृत्ति कुछ भाव-चित्रो से अकित की गई है—

कम्पित गात लखाति प्रेम-पुलकावलि विकसति ।
उमगि कंठ लौ आइ बात हिचकी ह्वै निकसति ।।[1]

परन्तु इस प्रकार के प्रसग काव्य मे गिनाने मात्र के लिए है, वह कवि की शैली नही। 'कुणाल' मे अवश्य कवि ने अवकाश निकालकर पात्रो की आन्तरिक भावनाओ को शब्दो मे बाँधा है। "पाँचवे सर्ग मे प्रेम-प्रस्ताव अस्वीकार होने पर तिष्यरक्षिता का अनुताप और छठे मे उसका प्रतिशोध दिखाया गया है। ये दोनो सर्ग मनोवैज्ञानिक है, इनमे कार्य-व्यापार सतह पर न रहकर तलस्थ और मनोमय हो जाता है।"[2] तिष्यरक्षिता की आत्मपीडा व मनोमन्थन का कवि ने अत्यन्त सुन्दर और स्वाभाविक विश्लेषण किया है—

मूढ़ मैं क्यों बन गई, एकान्त ही चुपचाप,
व्यक्त करने चली अपना स्नेह अपने आप,
. . ..

दोष किसका, नयन का, मन का, कि दैव-विधान ?
किया क्यों यों पास इतने रूप का निर्माण ?
प्रश्न थी मैं ही स्वय, उत्तर स्वयं अनजान,
हो गई तन्मय न दुविधा का रहा कुछ ध्यान ।
... .

हा ! विधाता आज भी यदि यह व्यथा हो शांत,
हो बड़ा उपकार मेरा, बढ़े अघ न नितान्त ।

१. गगावतरण —रत्नाकर—द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ५६
२. कुणाल—सोहनलाल द्विवेदी, भूमिका, पृ० ३

अन्यथा, इस पाप के ही आवरण के हेतु,
कौन जाने बाँधने कितने पड़े छल-सेतु ?[1]

इस सम्पूर्ण सर्ग मे तिरस्कृत नारी के मन की पीडा, शका, क्षोभ, प्रतिशोध—एक शब्द मे भावनाओ के विमन्थन का कवि ने विश्लेषण किया है। इन सर्गो मे घटित घटनाओ का स्वरूप अमूर्त व मनोमय, तथा सगमच अन्तर्मन है। 'कुणाल' के कवि ने भौतिक घटनाओ का वस्तुपरक वर्णन करने के साथ मानसिक घटनाओ का मनोवैज्ञानिक ढग से विश्लेषण भी किया है। इस प्रकार 'कुणाल' की विषय-परिधि मे मूर्त वस्तुरूप और अमूर्त आत्मरूप, दोनो प्रकार की घटनाओ का अन्तर्भाव है।

वर्णनात्मकता—इन खण्डकाव्यो का आकार-विस्तार वस्तुत वर्णनात्मक प्रसगो के द्वारा ही किया गया है। जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है, इनका कथानक एकदेशीय व एक-पक्षीय है। व्यक्ति या सामाजिक जीवन के सर्वाग का उसमे समाहार नही, अत वर्णन भी उन्ही प्रसगो के किये गए है जिनका कथा से प्रत्यक्ष रूप से कोई सम्बन्ध है। महाकाव्य के समान, वर्णनो मे समग्रता तो नही, परन्तु क्षेत्र-विशेष मे वर्णन-विस्तार की प्रवृत्ति इनमे पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। 'जौहर', 'हल्दीघाटी' और 'कुणाल' का सम्बन्ध राजनीतिक पक्ष से है। पहली दो रचनाओ मे राजनीति की सबसे सक्रिय घटना युद्ध, विषय बनायी गई है, अत: तत्सम्बन्धी सभी प्रसग—मत्रणा, सेना, प्रयाण, युद्ध, युद्धस्थल आदि का वर्णन काव्य मे मिलता है। जहाँ-तहाँ अवसर निकाल कर प्रकृति, नगर, दुर्ग तथा पारिवारिक प्रसगो का समावेश कर लिया गया है। इन वर्णनो मे नामपरिगणन-शैली की सीमा का स्पर्श करने वाली वर्णनात्मकता तो नही, परन्तु वर्णनो मे इतिवृत्तात्मक, वस्तुपरक दृष्टिकोण निश्चित रूप मे मिलता है। 'हल्दीघाटी' के प्राकृतिक वर्णन कही-कही विशेष सुन्दर व रमणीय बन पडे है। इन प्राकृतिक वर्णनो मे छायावादी विशेषताएं—मानवीकरण, चेतना का आरोप, सश्लिष्ट वर्णन-पद्धति का प्रयोग तो कवि ने नही किया परन्तु कतिपय अत्यन्त सुन्दर चित्र अकित है। युद्ध-वर्णनो मे एकाध स्थल पर कवि ने दुराग्रहवश अत्यन्त वीभत्स वर्णन किए है। सम्पूर्ण चौदहवाँ सर्ग इसी प्रकार का है। 'जौहर' मे भी कवि ने युद्ध, राजमहल, सम्पूर्ण जौहर के प्रसग आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक अनेक सर्गो मे किया है।

'गगावतरण' मे इस प्रवृत्ति की अतिशयता हो गई है। घटनाओ की अपेक्षा गगा और तटवर्ती स्थानो के माहात्म्य का वर्णन कवि की दृष्टि मे अधिक प्रमुख है, अत. एक बार शिवजी की जटाओ से प्रवाहित होने के उपरान्त सगर-सन्तति के उद्धार की अन्तिम घटना तक किसी सक्रिय घटना का अभाव है। उत्तरार्द्ध के अनेक सर्ग—गगा, निकटवर्ती नगर, ग्रामो, अन्य प्राकृतिक स्थलो, नगर और ग्रामवासियो—जिनमे वासिनियो का वर्णन अधिक है—के सचित्र विस्तृत वर्णनो से युक्त हैं। स्थान, प्रकृति, नगर आदि स्थूल जड उपकरणो से लेकर नारियो के रूप-सौन्दर्य, क्रीडा-कौतुक तक सभी विषय इनमे आ गए है। इनमे चित्रात्मकता भी है, गति और प्रवाह भी, और कही-कही परिगणन का स्पर्श भी; परन्तु कवि की दृष्टि सर्वत्र वस्तुनिष्ठ है,

१. कुणाल—सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ५०-५१

अन्तर्वृत्ति निरूपिणी नही।

'कुणाल' मे राजनीति का वह रूप अधिक लिया गया है जो सघर्ष और सक्रिय घटनाओ के मूल मे, सूत्र-रूप से बाह्य घटनाओ का नियमन करता है। सक्षेप मे यदि कहे तो कहना होगा कि 'कुणाल' की कथावस्तु का सम्बन्ध कूटनीति से अधिक है। कूटनीति की सूत्रधारिणी मानव-बुद्धि, और सक्रिय परिणामो का क्षेत्र वस्तुजगत् होता है, अत अन्तर्वृत्ति और वस्तुस्थिति, दोनो ही इस प्रकार के काव्य-विषय मे आ जाते है, इसलिए अन्तर्मुख वर्णन का अवकाश तो 'कुणाल' मे रहा ही है, परन्तु काव्य के आरम्भिक सर्गो मे कवि ने भूमिका के रूप मे पाटलिपुत्र नगर का वर्णन, कुणाल के बाल्य और तरुण जीवन की झाँकी, और सम्राट् अशोक का वर्णन किया है। खण्डकाव्य की दृष्टि से तीन सर्गो तक कार्य-व्यापार के लिए केवल भूमिका तत्पर करना कुछ अतिरिक्त प्रतीत होता है, परन्तु जिस रूप मे इन खण्डकाव्यो का, इस प्रकार के वर्णनो से प्रबन्ध-विस्तार किया गया है, उस दृष्टि से यह बहुत अनुचित नही है। ऐसे वर्णनो मे कवि का अपना एक उद्देश्य है—बड़े प्रबन्ध या महाकाव्य के लिए अपेक्षित वर्णनात्मक प्रसगो का समावेश। ऐसे अनेक वर्णनो में विस्तार करके इन कवियो ने महाकाव्य की शैली तथा शिल्प का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है।

गति-प्रवाह—किसी विशेष अश या प्रसग मे इन प्रबन्धो का धारा-प्रवाह विकास बाधित हो, ऐसा तो प्रतीत नही होता, परन्तु अनेक प्रसगो का विस्तार आवश्यकता से कुछ अधिक हो गया है। ऐसे स्थलो पर कार्य-व्यापार या घटनाचक्र मे अस्थायी विराम आ जाता है। यद्यपि वर्णनो की रमणीयता तथा शैली की सामर्थ्य के कारण पाठक प्राय ऊबता नही, फिर भी इन स्थलो पर उसका मन रमण करना है, प्रबन्ध और विशेषकर कथा-काव्य के लिए अपेक्षित जिज्ञासा और उत्सुकता उद्बुद्ध नहीं होती। महाकाव्य मे घटनाओ की अनेकता, विविधता और सश्लिष्ट कार्य-व्यापार के कारण तीव्र गति की आवश्यकता होती है और विविध प्रसगो के वर्णन मे उचित अनुपात और वितरण अपेक्षित होता है। खण्डकाव्य मे उतनी सचेष्ट वस्तु-योजना और वर्णनों मे क्षिप्रता की आवश्यकता, इकहरे कथानक, अल्प घटनाओ, और सम विकास के कारण नही होती। परन्तु इसके साथ ही जब अल्पसख्यक घटनाओं का विस्तार महाकाव्यानुरूप किया जाता है तो कृतिकार का उत्तरदायित्व और भी बढ जाता है। उसे इस विषय मे विशेष सतर्क रहना पडता है कि उसकी असावधानी से यदि विभिन्न प्रसगो मे वर्णन की दृष्टि से उचित अनुपात नही रहा, तो अनेक स्थलो पर अत्यधिक वर्णन-विस्तार के कारण एकरसता या कार्य-व्यापार मे गत्यवरोध उत्पन्न हो जायगा। इन कृतियो मे वर्णन के सहारे प्रसग-विस्तार अनेक प्रसंगो मे किया गया है। 'गगावतरण' मे पिछले अनेक सर्गो मे गगा, नगर, प्रकृति, नगरवासियो आदि के वर्णन से काव्य का कलेवर बढ़ाया गया है। 'कुणाल' के आरम्भिक सर्ग इसी प्रकार के है। 'नूरजहाँ' मे भी मुख्य कथा मे असम्बद्ध एकाध प्रसगो की योजना की गई है। अनारकली का सम्पूर्ण प्रसग इसी प्रकार का है। नायक के चरित्र पर प्रकाश पडने के अतिरिक्त प्रबन्ध की दृष्टि से काव्य मे इस अश की कोई उपादेयता नही। इसी प्रकार आरम्भ मे काफिले का वर्णन करते हुए, तथा छठे सर्ग मे प्रकृति-वर्णन करते हुए लेखक ने कई पृष्ठ रगे है। 'जौहर' की घटना भी आरम्भ से अन्त तक अनेक सर्गों मे वर्णित है। अकेले पद्मिनी की शिव-पूजा के वर्णन में कवि

ने एक पूरा सर्ग लिख डाला है। एक-एक प्रसग को लेकर इस प्रकार वर्णन-विस्तार करने पर भी इन रचनाओ मे कही नीरसता या एकरसता उत्पन्न नही हुई है। 'गगावतरण' मे अवश्य ही एक बार प्रमुख कार्य के उपरान्त पाठक की जिज्ञासा सर्वथा शान्त हो जाती है। कथा के नाम पर ही बहुत कम रह जाता है, अत· घटनाओ के अदम्य प्रवाह का प्रश्न नही उठता। गगावतरण के उपरान्त घटना-शृखला टूटकर अन्तिम अश मे फिर जुडती है। बीच का भाग गगा-स्तवन के रूप में किसी स्वतन्त्र रचना के उपयुक्त सिद्ध हो सकता है। इस प्रसग मे घटना-प्रवाह बिल्कुल है ही नही। 'नूरजहाँ' के कुछ प्रसगो मे इस दृष्टि से विषयान्तर-सा प्रतीत होने लगता है कि कुछ अश मुख्य कथा से विशेष सम्बद्ध नही जान पडते। ऐसे स्थलो को पाठक छोड़कर आगे बढ जाना चाहता है। इस प्रकार प्रबन्ध का प्रवाह बाधित तो है परन्तु अवरुद्ध नही। 'जौहर' और 'हल्दीघाटी' मे ऐसा नही हुआ। कारण, काव्य-विषय उत्साहमूलक है, अत ओजमय वर्णनो के कारण पाठक की रुचि बनी रहती है। इसके अतिरिक्त वर्णन-शैली मे कवि ने एक विशेष कौशल से काव्य को एकरस होने से बचा लिया है। जब वह एक ही विषय का वर्णन करने लगते है तो एक ही स्थल और स्थिति पर जमे रहने के स्थान पर वह प्रसग और स्थल प्राय· बदल देते है। उदाहरण के लिए जौहर के वर्णन मे कवि ने अनेक सर्ग खपाए है, परन्तु वह क्रमश· सखियो और पद्मिनी की सज्जा, सौन्दर्य, शृगार, रत्नसिह से मिलन, रनिवास के पशु-पक्षियो की व्यथा, शिवपूजा और अन्तत· जौहर की घटना का वर्णन करता है। इस प्रकार एक विषय के अनेक पहलू बदल जाने के कारण विविधतावश रुचि बनी रहती है। यह तर्क 'गगावतरण' के विषय मे भी दिया जा सकता है, परन्तु 'गगावतरण' के जिस प्रसग की चर्चा हमने पहले की, उसमे और 'जौहर' की इस घटना मे अन्तर है। 'गगावतरण' मे पाठक को अवतरण की घटना के बाद कुछ जानने के लिए शेष नही रहता, उसकी उत्सुकता सर्वथा शान्त हो जाती है। इसके विपरीत 'जौहर' मे इस सम्पूर्ण वर्णन के बाद काव्य की सबसे महत्त्वपूर्ण और कारुणिक घटना शेष रहती है। पाठक उसी तक पहुँचना चाहता है, और इस बीच मे यह अश उसकी पृष्ठभूमि तत्पर करता है। जब तक यह मध्यवर्ती प्रसग नीरस या निष्प्राण न हो, काव्य की गति मे कोई बाधा, या प्रमाता की जिज्ञासा-वृत्ति पर किसी प्रकार का भार नही पडता। वह इन प्रसगो की विविधता, सजीवता, और करुणा के रस मे भीगकर अपने लक्ष्य तक पहुंच जाता है। इस प्रकार इन कृतियो मे उचित कथा-प्रवाह विद्यमान है। इनकी गति मे अदम्य वेग व अबाध गति तो नही, परन्तु प्राय· इनकी कथा ऋजु-सरल एव सम गति से आद्योपान्त प्रवाहित हुई है।

शिल्प

महाकाव्य के अनुकरण की प्रवृत्ति का सबसे अधिक शिकार इनकी शैली ही रही है। शैली-सम्बन्धी बाह्य विशेषताओ की जितनी स्वीकृति इन रचनाओ मे हुई उतनी किसी अन्य विशेषता की नही। इन सभी काव्यो का सर्ग-विभाजन महाकाव्यानुरूप आठ से अधिक सर्गो मे हुआ है। ये सर्ग प्राय मध्यम आकार के, अर्थात् न बहुत बडे और न बहुत छोटे है। परन्तु कही-कही स्वतन्त्र सर्ग-योजना के लिए काव्य-विषय पर्याप्त नही है। कदाचित् सर्ग-सख्या और काव्याकार बढ़ाने के लिए अत्यन्त छोटे-छोटे प्रसंगो को लेकर स्वतन्त्र सर्ग-रचना की गई है।

'हल्दीघाटी' के चौदहवें सर्ग मे केवल युद्धभूमि का युद्धोपरान्त अत्यन्त बीभत्स और घृणास्पद वर्णन है। यह स्वतन्त्र सर्ग केवल चार पृष्ठो मे समाप्त हो गया है। इसी प्रकार, आरम्भ मे कुछ पात्रो के आत्मपरिचय पूरे-पूरे सर्गो मे दिये गए है। 'जौहर' मे भी एक ही प्रसग कई सर्गो तक चलता रहता है। 'नूरजहाँ' मे व्यर्थ के प्रसगो से सर्गो की संख्या बढाई गई है। 'कुणाल' मे भी एक-एक पात्र का परिचय देने के लिए स्वतन्त्र सर्गो की रचना हुई है। इसी प्रकार निर्वासन-अवधि मे राही कुणाल और काचना के पथ-गीतो पर एक स्वतत्र सर्ग का विधान किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है, कि सर्ग-सख्या बढाने के आग्रहवश अपर्याप्त विषयो को लेकर स्वतन्त्र सर्ग-विधान इन रचनाओ मे किया गया है। ये घटनाहीन अनेक सर्ग न खण्डकाव्य की कथा के लिए उचित हो सकते है, न महाकाव्य के लिए।

'जौहर' का विभाजन २१ चिगारियो, और शेष का सर्गो मे हुआ है। 'हल्दीघाटी' मे १७ सर्ग, 'नूरजहाँ' मे १८, 'कुणाल' मे १६, और 'गगावतरण' मे १३ है। सर्गो का पृथक् नामकरण 'कुणाल' के अतिरिक्त किसी ने नही किया। 'कुणाल' मे सर्गो का नामकरण वर्ण्य-विषय (पात्र अथवा घटना) के आधार पर किया गया है। सम्पूर्ण काव्य का नामकरण, प्रमुख पात्र यथा कुणाल और नूरजहाँ, प्रमुख घटना यथा गगावतरण और जौहर, तथा घटनास्थल यथा हल्दीघाटी के आधार पर किया गया है।

मगलाचरण की परिपाटी का पालन 'हल्दीघाटी' और 'गगावतरण' मे प्रत्यक्ष और परम्परागत रूप मे हुआ है। 'जौहर' के कवि ने मगलाचरण शीर्षक देकर नही, परन्तु नयी पद्धति पर परम सत्ता का स्मरण और स्तवन किया है। मंगलाचरण की यह विधि वन्दनात्मक की अपेक्षा परिचयात्मक अधिक है। अनेक छन्दो मे कवि ने सर्वव्यापी निराकार ब्रह्म का परिचय देकर व्याख्या की है और अन्त मे अवतार-रूप राम का इस सत्ता से अभेद स्थापित किया है। शेष दोनो रचनाओ—'कुणाल' और 'नूरजहाँ' म सीधे क्रमश नगर और प्रकृति-वर्णन से काव्यारम्भ हो गया है।

वर्णन-शैली—प्रबन्ध के लिए पूर्व-प्रचलित समाख्यान शैली का प्रयोग 'कुणाल' के अतिरिक्त प्राय सभी रचनाओ मे किया गया है। 'नूरजहाँ' के कुछ प्रसग अपवाद के रूप मे गिनाए जा सकते है जहाँ कथा का विकास वर्णन के द्वारा न होकर सवादो के बीच हुआ है, परन्तु यह सवाद प्रायः निर्जीव और असफल है। कही-कही शैली मे नाटकीयता है परन्तु ऊँचे स्तर के कलात्मक साहित्य की नही, कुछ-कुछ नौटकी के ढग पर यह सवाद-योजना की गई है। एक प्रसग मे अत्याचारी शेर-अफगन और विरोधिनी मेहरुन्निसा के बीच जिस सवाद की योजना की गई है, वह इस कथन की पुष्टि मे उद्धृत किया जा सकता है—

ऐसी कठोरता लखकर यों बोली आंखे भर कर॥
अपने को मिला दिया है जिसने उसकी हस्ती मे।
अपने को मिटा दिया है जिसने उसकी मस्ती में॥
है मस्त हुआ मौला मे मत उस गरीब को मारो।
....

तब कहा शेर अफगन ने, 'बस थाह अक्ल की पाई।
सच है औरत के हिस्से में नहीं बुद्धि है आई॥
....
है क्षमा, दया, कमजोरी, दिखलाते उसे जनाने।
तुम आई हो क्या मुझको यह उलटा पाठ पढ़ाने॥
मैं हूँ इक मर्द सिपाही मैं खेल मौत से करता।
होवे खिलाफ दुनिया भी मैं नही ज़रा भी डरता॥'[1]

इस सवाद मे दो पात्रो के बीच मे कथोपकथन के रूप मे नियोजित होने के अतिरिक्त नाटकीयता के नाम पर एक भी विशेषता नही मिलेगी। 'नूरजहाँ' के अधिकाश सवाद इसी प्रकार विस्तृत वर्णन-शैली मे लिखे गए है, सक्षिप्त प्रभावात्मक शैली मे नही। संवाद की सफलता उसकी सक्षिप्तता, चुस्ती, प्रत्युत्पन्नमति और सजीवता मे होती है, केवल दो पात्रो के बीच कहे-सुने जाने के कारण नही। 'नूरजहाँ' के सवादो मे यह गुण कही नही है। सवाद है परन्तु समाख्यान शैली मे, अन्तर केवल इतना ही है कि कवि अपनी ओर से वर्णन न कर बीच मे पात्र लाकर खडे कर देता है। एक पात्र बहुत दूर तक अपनी बात कहता रहता है और फिर दूसरा पात्र उतनी ही दूर तक उसका उत्तर देता जाता है। इसी क्रम से कथोपकथन मात्र को नाटकीय शैली का प्रयोग नही कहा जा सकता। यह विशेषता कोमल-सरस प्रसगो मे विनियोजित सवादो मे भी है। 'जौहर', 'हल्दीघाटी' और 'गगावतरण' मे नाटच शैली का प्रयोग कही नही किया गया। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' के कवि ने अनेक उपयुक्त अवसर प्राप्त होने पर भी इस प्रकार का कोई प्रयत्न नही किया। इसी प्रकार गीति शैली के तत्त्वो का प्रयोग इन समाख्यानात्मक शैली मे लिखे गए काव्यो मे नही मिलता। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' दोनो मे अनेक कारुणिक प्रसग होने पर भी, प्रगीत-रचना जो पात्रो की भावाविष्ट अभिव्यजना का सबसे उपयुक्त वाहन है—इन कृतियो मे नही मिलती। दोनो काव्य परोक्ष समाख्यान शैली मे लिखे गये है, न उनमे प्रत्यक्ष नाटकीय शैली का प्रयोग है, न आत्माभिव्यजक प्रगीत-शैली का। पाठक और पात्र के बीच कवि की स्थिति सर्वत्र बनी रही है। प्रगीतो का प्रयोग 'नूरजहाँ' मे भी नही किया गया।

'कुणाल' इस वर्ग की वह एकमात्र कृति है जिसमे पथ-गीतो के रूप मे कुछ सुन्दर कला-गीत ग्यारहवे सर्ग मे कवि ने लिखे है। इन गीतो मे लोक-गीतो की कला का सस्पर्श है। इनकी आत्मा और कला दोनो गीत-रचना के विशेष अनुकूल है। कवि ने भाव के आन्तरिक सगीत के साथ स्वर-लय आदि के बाह्य सगीत की योजना भी की है। पक्तियो का अन्त्यानुप्रास-क्रम व टेक आदि का विधान स्वर-साधना के सर्वथा उपयुक्त है। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं—

तुम्हें हो मंगलमय अनुकूल!
न जाना हमें कभी भी भूल!

१. नूरजहा—गुरुभक्तसिह, द्वादश आवृत्ति, पृ० ९५-९६

जो भी शूल मार्ग मे हों।
प्रभु कर दे उनको फूल![1]

आगामी सर्ग मे कुछ ऐसे पथ-गीतो की रचना कवि ने की है जिनमे लोकगीतों की कला का संस्पर्श है। ये गीत राही को सम्बोधित करके लिखे गए है, परन्तु इनकी कला अभिजात्य कला है—

आया सुभग सबेरा,
राही!
अग जग की निद्रा है टूटी
अरुण किरण अंबर में छूटी
किया मलय ने फेरा
राही!
आया सुभग सबेरा!
डाल डाल मे फूटी कोपल
स्वर्णिम, ताम्र नील औ उज्ज्वल
किसने रंग बिखेरा?
राही!
आया सुभग सबेरा![2]

'कुणाल' मे सवाद भी है, परन्तु इन संवादो मे सर्वत्र भावप्रवणता है। इनकी आत्मा प्रगीतात्मक है। कुणाल और तिष्यरक्षिता, कुणाल और काचना तथा अशोक और कुणाल के बीच होने वाले कथोपकथन मे भी भावुकता और मृदुता है, जिसका एक कारण प्रसगो की कारुणिकता भी है। तिष्यरक्षिता के प्रणय-निवेदन मे, तिष्यरक्षिता की ओर से रति भाव की अभिव्यक्ति आत्म-निवेदन के रूप मे हुई है, और कुणाल माँ के प्रति वाचाल नही, अत इस प्रसग मे भी विशेष सजीवता नही है। वस्तुत इन सवादो मे नाटकीयता की अपेक्षा प्रगीतात्मकता, दूसरे शब्दो मे नाटच-गीतात्मकता अधिक है।

काव्य के ऐसे अनेक प्रसग आत्माभिव्यंजक भावसकुल शैली मे रचित है। वस्तु-वर्णन की अपेक्षा आत्मनिरूपण इन प्रसगो मे प्रधान है, परन्तु विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग मनोगत कार्य-व्यापार का वर्णन करते हुए भी नही किया गया है। आत्माभिव्यजन और आत्मविश्लेषण मे दृष्टिकोण और शैली का भेद होता है। पहले मे अनुभूति की प्रगाढता, भावमयता और अन्तःस्फूर्त अभिव्यक्ति की अपेक्षा है और दूसरे के लिए अन्तःसाक्षात्कार, अन्तर्वृत्तियो का अभिज्ञान और विश्लेषण आवश्यक है। पहली प्रक्रिया अधिक भावमय है दूसरी बौद्धिक भी। 'कुणाल' की शैली पहले ढग की, अर्थात् प्रगीतात्मक शैली है। अमूर्त की अभिव्यजना है, वर्णन है, मनोविश्लेषण नही।

---

१. कुणाल—सोहनलाल द्विवेदी, पृष्ठ ८९-९०
२. वही, पृष्ठ ९१

अलंकरण—रूप-विधान सम्बन्धी अन्य विशेषताओ के सदृश ही 'कुणाल' के अतिरिक्त अन्य काव्यो की अलकरण-कला मे भी कोई उल्लेखनीय नवीनता नही है। रूप, प्रकृति, तथा अन्य विषयो के वर्णन मे अधिकतर परम्पराभुक्त अप्रस्तुत-योजना मिलती है। इन कवियो के अलकार भी अति प्रचलित साम्य और वैषम्यमूलक अलकार ही है। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' मे कही-कही कवियो ने भूले-भटके कुछ नवीन उपमानो का चयन किया है, परन्तु उनका बिम्ब-विधान विशेष तर्कसम्मत और उचित नही है। चमत्कारमूलक या चित्रात्मक नवीन अलकारो का प्रयोग इन्होने किया ही नही हो, ऐसा निश्चित रूप से तो नही कहा जा सकता, परन्तु यह इनकी शैली नही है। ऐसे स्थल इनकी सामान्यत. अभिधा-प्रधान, इतिवृत्तात्मक अभिव्यजना मे अपवाद के समान है। विशेष लाक्षणिक प्रयोग प्रतीकात्मकता अथवा व्यजना का चमत्कार इनकी काव्य-रचना मे नही मिलता। साधारणत इनकी शैली स्पष्ट, प्रसादमय, अभिधात्मक और वर्णन-प्रधान है, जिसमे चित्रमयता सर्वत्र नही, परन्तु कही-कही वर्णन-सामर्थ्य के कारण मिल जाती है।

'कुणाल' के कवि ने अपनी अप्रस्तुत-योजना मे अवश्य नवीन अलंकरण-पद्धति का परिचय दिया है। मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत-विधान, गुण-साम्य के आधार पर प्राय: किया गया है, जिससे अलकरण मे नवीनता ही नही शैली मे लाक्षणिक वैचित्र्य भी उत्पन्न हो गया है—प्रभावात्मकता की दृष्टि से जिसकी अपनी विशेषता है। कुछ उदाहरण है—

थी प्राचीर धैर्य-सी निर्मित

तथा

तर्क-सी **अलकें लहराती,**
दीप्त उन्नत भाल।[1]

इसी प्रकार अमूर्त के लिए मूर्त उपमानो का प्रयोग देखिए—

दूर्वा के नव-नव अकुर-सी
जगती नव-नव अभिलाषा।[2]

कही-कही मूर्त के लिए अमूर्त बिम्ब-विधान का आग्रह इतना बढ गया है कि वर्णन से पाठक किसी प्रकार का बिम्ब-ग्रहण नही कर पाता। मूर्त विषय अमूर्त उपमानो के आवर्त्त मे अपना रूप-आकार खो बैठा है। ऐसे स्थलो पर, विशेषकर रूप-वर्णन मे अभिव्यजना का प्राण-तत्त्व—(बिम्ब-ग्रहण कराने की सामर्थ्य) नष्ट हो गया है। किसी विषय का उपमानो के माध्यम से वर्णन करने का उद्देश्य केवल रमणीयता की सृष्टि करना नही, बल्कि विषय-सम्बन्धी अपने मन पर पडे प्रभाव को यथासम्भव समग्रता मे काव्य द्वारा प्रत्यकित कर पाठक तक पहुंचाना होता है। इस उद्देश्य के लिए वह जितनी तर्क-सम्मत अप्रस्तुत-योजना कर पाता है उतनी ही काव्य की प्रेषणीयता मे वृद्धि होती है। मूर्त के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग उसकी रूपाकार-सम्बन्धी विशेषता स्पष्ट करने के लिए ही नही, क्रिया, गुण व प्रभाव की समानता के आधार पर किया

१. कुणाल, पृष्ठ १९
२. वही, पृष्ठ ३९

जाता है। कही-कही इस प्रयत्न की अति के कारण चित्रमयता को विशेष आघात पहुँचा है। कवि के शब्दों मे नायिका का वर्णन देखिए—

सुन्दरता की नव उपमा-सी,
नायिका नवीन निरुपमा-सी।
लावण्यमयी खिलने वाली,
यौवन की मादक सुषमा-सी।
मानस की मधुमय आशा-सी,
उर की मादक अभिलाषा-सी।
नयनों की नीरव भाषा-सी,
लज्जा की नव परिभाषा-सी ॥[1]

विशेषण-विपर्यय आदि नवीन चमत्कारमूलक अलकारो का प्रयोग भी कवि ने किया है—

कैसी नीरव पीडा पाली ?
क्यो क्रूर बनी भोली भाली।[2]

इसके साथ ही कवि ने यमक आदि शब्द-चमत्कारमूलक अलकारों के प्रयोग भी किये हैं—

वह अशोक बन गई स्वयं ही,
पाकर पृथ्वीपाल अशोक।[3]

वर्णनो मे चित्रात्मकता—अलकारो की नवीनता या प्राचीनता की अपेक्षा कवि की अपनी अनुभूति की स्पष्टता और अभिव्यजना मे वर्णन-सामर्थ्य पर निर्भर है। 'गगावतरण' की अप्रस्तुत-योजना प्राय परम्परासिद्ध होने पर भी चित्रमयता वर्णनो मे सर्वाधिक प्राप्य है। वर्णन-क्षमता रत्नाकर की शैली मे किसी भी नवीन खेवे के कवि से कम नही है। उन्होने प्राय स्थिर और कही-कही सुन्दर गत्यात्मक चित्र अकित किये है। आधार कही रूप और रेखा, तथा कही वर्ण है। शिव का रूप-चित्रण निम्नाकित पक्तियो मे देखिये—

बाघंबर कौ कलित कच्छ कटि-तट सौं नाध्यौ।
सेसनाग कौ नागबंध तापर कसि बाँध्यौ॥
ब्याल-माल सौं भाल बाल-चन्दहिं दृढ़ कीन्यौ।
जटा-जाल कौ झाल-ब्यूह गह्वर करि लीन्यौ।[4]

उक्त चित्राकन का आधार स्थूल उपकरण—रूप और क्रिया है। निम्नलिखित पक्तियो के गंगा-वर्णन में कवि ने गति को शब्दों में बाँधकर उनमें रग भरने का प्रयास किया है—

१. कुणाल, पृष्ठ ४०
२. कुणाल, पृष्ठ ५७
३. कुणाल, पृष्ठ २
४. गगावतरण—रत्नाकर, पृष्ठ ६०

सहस-धार सुरधार मिली तिहिं अति आदर सौं,
बिज्जु-छटा मनु छहरि लहरि बिहरी बादर सौं।
किधौं नील-सत-सिखर परी ढरि बिखटि जुन्हाई।
कै मरकत कै छत्र सेत चामर-छबि छाई ॥[1]

प्राचीन अलंकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि, अत्यन्त सटीक व सुन्दर अप्रस्तुत-योजना के कारण कही-कही विशेष सुन्दर बन पडे है। अलकार प्राचीन, परन्तु बिम्ब-विधान नवीन है। उपमा के लिए अप्रस्तुत-चयन देखिये—

हलरति लहर दुरंग सग मिलि-जुलि मनभाई।
तरु-तर ज्यों चल-पत्र-बीच ह्वै परति जुन्हाई ॥[2]

'जौहर' और 'हल्दीघाटी' मे इस प्रकार की अभिव्यजना का अभाव नही, परन्तु यह उनकी सहज शैली नही है।

छन्द-योजना—छन्द-परिवर्तन की दृष्टि से इन कवियो ने दोनो पद्धतियाँ अपनायी है। सम्पूर्ण 'गगावतरण' एक ही छन्द—रोला मे लिखा गया है, और 'हल्दीघाटी', 'जौहर', 'नूरजहाँ' और 'कुणाल' मे सर्ग-परिवर्तन के साथ प्राय छन्द बदल गया है। कही-कही एक ही छन्द मे एकाधिक सर्गो की रचना भी इन कवियो ने की है। सर्ग के अन्त मे महाकाव्य-रचना के लिए निर्दिष्ट छन्द-परिवर्तन की रूढि का नियमित रूप से पालन उन कवियो ने भी नही किया, जिन्होने एक ही छन्द मे सर्ग-रचना नही की है। 'नूरजहाँ' मे सर्ग के मध्य मे भी जहाँ-तहाँ कवि ने स्वेच्छापूर्वक छन्द-परिवर्तन किया है। 'कुणाल' मे एक ही छन्द मे सर्ग-रचना करते हुए बीच मे गीतो का प्रयोग पात्रो की आत्माभिव्यजना के प्रसग मे कवि ने किया है। दो स्थलो पर 'नूरजहाँ' मे भी कवि ने गीत-रचना की है, परन्तु वह विशेष सफल नही हुआ।

छन्दो के प्रकार की दृष्टि मे इन कवियो का क्षेत्र सीमित है। आधुनिक काल की अधिकाश काव्य-रचनाओ की भाँति उन्होने भी प्राय. सम, व उल्लेख मात्र के लिए विषम मात्रिक छन्दो को आधार बनाया है। 'गगावतरण'की रचना आद्यन्त रोला छन्द मे हुई है। 'नूरजहाँ' मे छन्द अनेक, परन्तु एक-दो प्रसगो के अतिरिक्त सभी २८ मात्रा से अधिक मात्राओ के बडे छन्द है। इनमे सार, ताटक, वीर आदि पूर्वप्रचलित छन्दो, और मणिबन्धक, मत्तसवैया, तथा मानवीय आदि आधुनिक काव्य के लोकप्रिय और नवीन छन्दो का प्रयोग हुआ है। जिन छन्दो के लिए हमने नवीन विशेषण का प्रयोग किया है, उनमे नवीनता इतनी ही है कि उनकी मात्राएँ दडक वृत्तो के समान होने पर भी उनकी गति और लय आदि का नियमन भिन्न पद्धति पर हुआ है। एक चरण मे यति के बहुधा प्रयोग से प्रवाह-अवरोध के स्थान पर पादाकुलक या मानव जैसे किसी छोटे छन्द की एक चरण में दो आवृत्तियाँ की गई है। अर्थात् इन छोटे छन्दो के दो चरण मिलकर या एक चरण की दो बार आवृत्ति से इन नवीन छन्दो के एक चरण का निर्माण होता है। मात्राओ का मूल आधार इस प्रकार प्राचीन है। किन्तु नियमो के अपवाद 'नूरजहाँ' मे हर रूप

---

१. गगावतरण—रत्नाकर, पृष्ठ १०३
२. वही, पृष्ठ ९३

में मिलेगे। न्यूनमात्रा, मात्राधिक्य, अन्त्यक्रम में नियत वर्णों के स्वच्छन्द प्रयोग, तथा यति का निश्चित मात्राओ के स्थान पर आवश्यकतानुसार मनमाना उपयोग आदि छन्द-विषयक स्वेच्छाचरण एक स्वतन्त्र और विस्तृत निबन्ध का विषय हो सकता है। उक्त मत की पुष्टि के लिए उदाहरण बिना आयास के सहज ही इस रचना मे प्राप्त किए जा सकते है। एक बात और, कवि ने सम्पूर्ण काव्य मे चार चरण के छन्दों के स्थान पर युग्मकों का प्रयोग ही अधिक किया है। ऐसा कदाचित् प्रायः बड़ी पक्ति के छन्द मे रचना करने के कारण हुआ है। छोटे छन्दो मे शृगार और प्लवगम को अपनाया गया है। प्लवगम मे रचना अतुकान्त रूप मे भी हुई है और कवि ने अन्त्यक्रम में एक प्रसग में नव विकर्षाधार अपनाया है। पक्तियाँ सम है परन्तु अन्त्यानुप्रास का क्रमायोजन क ख ग के रूप मे हुआ है।

'जौहर' और 'हल्दीघाटी' में भी इसी प्रकार ताटक छन्द का प्रयोग बहुलता से किया है। उसके साथ वीर, सार, चौपाई, पीयूषवर्ष, हाकली आदि प्राचीन छदो, और माधव मालती, मणिबधक, मानवीय, समानिका, मत्तसवैया आदि अपेक्षाकृत नवीन छदो मे भी विविध सर्गो की रचना की है।

'कुणाल' के कवि का आग्रह अधिक मात्रा वाले छन्दो को विशेष रूप से अपनाने का नही रहा। बडे छन्दो मे वीर और मत्तसवैया, तथा लघु छन्दों मे पद्धरि और रूपमाला, और उसमे भी रूपमाला का प्रयोग कवि ने अधिक किया है। 'कुणाल' मे भी सातवे व अन्तिम सर्गों मे कवि ने रूपमाला छन्द मे युग्मको की रचना की है। चौथे और पाँचवे सर्ग मे अन्त्यक्रम क्रमश क, ख, ग, ख तथा क, क, ख, ख रहा है। जहाँ उन्होने गीतो की रचना की है, वहाँ छन्द-रचना का आधार विषम मात्रिक छन्द तथा मिश्र छन्द है। मिश्र छन्द से हमारा अभिप्राय परपरागत मिश्र छन्दो से नही। कवि ने अपनी रुचि के अनुसार एकाधिक छन्दों की पंक्तियो के विषम विकर्षाधार द्वारा पक्तियो की क्रमयोजना कर नवीन छन्दनिर्माण किया है।

निष्कर्ष रूप मे इन कवियों ने छन्द के क्षेत्र मे 'निराला' तथा परवर्ती प्रयोगवादी कवियो के समान आमूल परिवर्तन व क्रान्तिकारी नवनिर्माण तो नही किया, परन्तु साथ ही छन्दप्रयोग-सम्बन्धी जो नयी जागृति काव्य-जगत् मे उत्पन्न हो रही थी उसके प्रति भी यह कवि-वर्ग उदासीन नही रहा। नये छन्दो का इन्होंने उदारता से स्वागत और स्वतन्त्रता से प्रयोग किया है। पुराने छन्दों मे भी मात्रा, यति, अन्त्यक्रम आदि के प्रयोग-सम्बन्धी जो स्वच्छन्दता इनकी छन्द-रचना मे मिलती है वह इनके रूढिमुक्त दृष्टिकोण की परिचायक है।

सक्षेप मे, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन कतिपय खण्डकाव्यों मे महाकाव्य की वे स्थूल व बाह्य रूप-सम्बन्धी सभी विशेषताएँ प्राप्त होती है जिनका सम्बन्ध शरीर से है। परन्तु बाह्य रूप-विधान में भी दो प्रकार की विशेषताएँ सम्भव है। एक आरोपित विशेषताएँ जिनकी स्थिति काव्य-शरीर मे आभूषणो के समान है। इनमे छन्द, सर्गबद्धता, नामकरण, वर्णन-रूढियों की गणना की जा सकती है। दूसरी विशेषताएँ बाह्य होते हुए भी अन्तरग से अविभाज्य और अभिन्न है। उनकी स्थिति अग-सस्थान और रूप-आकृति के सदृश काव्य-शरीर मे अपरिहार्य है। कथावस्तु,प्रबन्ध-सगठना, और वस्तुविन्यास ऐसी ही विशेषताएँ है। इन काव्यों मे महाकाव्य के लिए अपेक्षित महत् आत्मा का ही नही, इस उचित वास्तुकला का भी अभाव

है, अतः आत्मगत और शरीरगत दोनो ही परिसीमाओ को दृष्टि मे रखते हुए इन्हे अधिक से अधिक बृहद प्रबन्ध के स्थान पर बृहद खण्डकाव्य या महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य कहा जा सकता है।

लघु प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य

दूसरे अर्थात् अपेक्षाकृत सीमित आकार वाले खण्डकाव्यो मे भी बन्ध की दृष्टि से दो प्रकार की रचनाएँ हुई (क) सर्गबद्ध और (ख) सर्गविहीन। इन रचनाओं मे परस्पर इतना ही अन्तर है कि सर्गबद्ध कृतियो मे विषय की आवश्यकता के अनुरूप काव्य का विभाजन एकाधिक सर्गो मे कर दिया गया है, तथा सर्गविहीन रचनाओ मे कथा को सर्गों मे विभाजित न करके उसका धाराप्रवाह-रूप मे वर्णन किया गया है। इस प्रकार दोनो प्रकार की कृतियो मे प्रभाव-सम्बन्धी एक अन्तर आ गया है। सर्गविहीन रचनाओ मे अखण्ड प्रभावान्विति और वस्तु-विन्यास मे घनत्व है। सर्गबद्ध कृतियो मे प्रबन्ध-शृखला रक्षित तो है किन्तु सारभूत प्रभाव मे घनत्व की अपेक्षा विस्तार और विविधता अधिक है। पारिभाषिक शब्दावली का यदि प्रयोग करे तो कहना होगा कि सकलनत्रय के गुणो की रक्षा सर्गविहीन काव्यो मे सर्गबद्ध काव्यो की अपेक्षा अधिक सहज सम्भव हो सकी है। इस प्रकार की कोई स्थापना निश्चित रूप मे नही की जा सकती, उक्त मान्यता दोनो प्रकार के काव्यो के विषय मे तुलनात्मक दृष्टि से व्यक्त की गई है, अन्यथा अपवाद दोनो ही प्रकार की रचनाओ मे प्राप्त होते है। 'मौर्य-विजय' मे सर्गबद्धता होते हुए भी स्थान, काल और घटना-ऐक्य की रक्षा की गई है। दूसरी ओर 'तुलसीदास' मे घटना-ऐक्य का निर्वाह तो हुआ है, देश और काल-ऐक्य का उतनी ही निश्चितता से पालन नही हुआ है, फिर भी काव्य के सारभूत प्रभाव मे विशृखलता या अन्विति-दोष कही नही है। एक प्रकार की गरिमा और घनत्व समग्र काव्य मे प्राप्य है, यद्यपि घटनाएँ भी सर्वत्र अमूर्त है।

आकार-भेद से सर्गो मे विभाजित अनेक खण्डकाव्यो की रचना इस काल के कवियो ने की जिनमे परस्पर भी पर्याप्त अन्तर है। यह अन्तर जिसकी ओर आगामी पृष्ठो मे सकेत किया जायगा विषय, शैली, वस्तु-विन्यास सभी दृष्टियो से है। इस काल के प्रमुख सर्गबद्ध खण्डकाव्यो मे रामनरेश त्रिपाठी के 'स्वप्न', 'मिलन' और 'पथिक', राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ-वध', 'शकुन्तला', 'सिद्धराज', 'किसान', 'नहुष', 'अजित', और उनके अनुज सियारामशरण गुप्त की 'मौर्य-विजय', 'आत्मोत्सर्ग' और 'अनाथ' आदि कृतियो का उल्लेख किया जा सकता है।

ऊपर जिन काव्यो का परिगणन किया गया उनमे स्पष्ट रूप से दो वर्ग है—(१) वे खण्डकाव्य जिनमे प्रख्यात कथानक का ग्रहण किया गया है, तथा जिनमे कार्यव्यापार का घटनात्मक वस्तुरूप प्रधान है, (२) वे खण्डकाव्य जिनकी रचना किसी सामयिक समस्या, अथवा अन्य उद्देश्य को लेकर की गयी है तथा काल्पनिक कथा को अपनाकर कवि ने उसके माध्यम से अपना उद्देश्य व्यक्त किया है। पहले प्रकार के खण्डकाव्यो मे 'जयद्रथ-वध', 'शकुन्तला', 'सिद्धराज', 'नहुष' 'मौर्य-विजय', 'आत्मोत्सर्ग', और दूसरे मे 'किसान', 'अजित', 'स्वप्न', 'मिलन', 'पथिक' और 'अनाथ' की गणना की जा सकती है। विषय-ग्रहण के इस पारस्परिक अन्तर के परिणामस्वरूप इन काव्यों मे शिल्प और शैली-सम्बन्धी जो अन्तर उपस्थित हुआ है उसका

आधार यही विषय-सम्बन्धी अन्तर है।

वस्तुविन्यास—प्रथम वर्ग के खण्डकाव्यों मे लगभग सभी का वस्तु-विन्यास सुचिन्तित है। 'जयद्रथवध', 'नहुष', 'मौर्य-विजय' और 'आत्मोत्सर्ग' की प्रबन्ध-योजना अपेक्षाकृत अधिक सुगठित है, और 'शकुन्तला' और 'सिद्धराज' का प्रबन्ध-विधान भिन्न शैली पर किया गया है। पहले प्रकार के काव्यो मे एक प्रमुख घटना है उसी का आदि, मध्य और अवसान तीनो सुनिश्चित क्रम से कार्य कारण शृखला मे आबद्ध है। 'शकुन्तला' मे कार्य-कारण सम्बन्ध तो विच्छिन्न नही हुआ परन्तु कवि ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का सक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर-सा प्रस्तुत करने के प्रयत्न मे बहुत कुछ पाठक की कल्पना पर छोड दिया है। काव्य को पढने के उपरान्त ऐसा आभास होता है कि कवि ने यह मानकर इस काव्य की रचना की है कि उसका पाठक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की कथा से अवगत है, अतः बहुत कुछ सूच्य और कल्पनापेक्षी है। 'सिद्धराज' के वस्तु-विन्यास मे नाटक के तत्त्वो की अपेक्षा उपन्यास के तत्त्वो का उपयोग ही कवि ने अधिक किया है। इस काव्य के पाँच भागो मे पाटन-नरेश सिद्धराज के जीवन के पाँच भिन्न प्रसग है। नायक के राजत्वकाल मे घटित होने वाली, परस्पर पूर्वापर-सम्बन्ध मे आबद्ध घटनाओ का सग्रथन नही किया गया बल्कि नायक के उत्तरोत्तर चरित्र-विकास को व्यजित करने के उद्देश्य से घटनाओ का सकलन और शोध किया गया है। इन पाँच प्रसगो की सम्बन्ध-भावना को पाठक की कल्पना पर छोड़ दिया गया है। वे परस्पर कार्य-कारण सम्बन्ध से नही, प्रधान पात्र के चारित्रिक विकास द्वारा अन्विति-सूत्र मे आबद्ध हुई है। ये पाँचो घटनाएँ स्वतन्त्र खण्डकाव्य का विषय बनने के लिए पर्याप्त है। इस काव्य के प्रबन्ध-शिल्प मे नाटकीयता के अनुकूल सम्भाव्यता तथा आवश्यकता के नियमानुसार घटनाओ को बाँधने के स्थान पर, औपन्यासिकता के अनुरूप चारित्रिक विकास व कल्पना के सहारे छोड दिया गया है। काव्य के वस्तुविन्यास मे निश्चय ही यह शिल्प नवीन है। 'आत्मोत्सर्ग' मे कवि ने घटनाओ की सुनिश्चित योजना तो की ही है, घटनाओ के मध्य तत्कालीन सामाजिक व साम्प्रदायिक विद्वेष की वस्तु-स्थिति का भी स्पष्टीकरण बहुत अशों मे किया है। 'स्वप्न', 'मिलन', 'पथिक', 'किसान', 'अजित' और 'अनाथ' आदि काव्यो मे समसामयिक राजनैतिक अथवा सामाजिक जीवन से सम्बद्ध समस्याओ को काव्य-विषय बनाया गया है। कवियों ने ये प्रयत्न दो रूपों में किए—सामाजिक व राजनैतिक दुरवस्था का प्रत्यक्ष चित्रण करके काल्पनिक कथा व पात्रो के माध्यम से जनता को जागृत करने का उपक्रम किया, अथवा जीवन के विभिन्न वर्गों और पहलुओ मे वर्तमान दुष्कृतियो से पाठक का परिचय कराके विरोध की कामना की व्यजना मात्र कर दी। रामनरेश त्रिपाठी का प्रयत्न पहले ढग का और गुप्त बन्धुओं का दूसरे प्रकार का है। विषय और दृष्टिकोण के अनुसार ही इन काव्यो का वस्तु-विन्यास नियोजित है। त्रिपाठीजी के काव्यों के कथानक मे यद्यपि प्रेम और राष्ट्रीय-भावना का विचित्र सम्मिश्रण कही-कही परी देश की कहानी का-सा आभास देने लगता है, किन्तु कथा का आदि, मध्य, अवसान तीनो स्पष्ट और उचित रूप से परस्पर सम्बद्ध है, क्योकि कवि ने काल्पनिक पात्रों के माध्यम से भले ही हो, परन्तु अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है। इसके विपरीत 'किसान', 'अजित', और 'अनाथ' मे कथा के विभिन्न प्रसंग, बरबस पात्रों की सृष्टि करके जोड दिये गए हैं। कवि एक या अनेक समस्याएँ उभार कर सामने लाना चाहता है। इन

समस्याओं से सम्बन्धित जो प्रसंग काव्य में ग्रहण किये गए है उनमे प्रबन्धत्व की दृष्टि से परस्पर प्रत्यक्ष सम्बन्ध या तारतम्य नही है। वे एक कथा के विभिन्न अग नही, एक समाज की विविध समस्याएँ हैं। कथा कहना कवि का लक्ष्य भी नही, पर वह अपनी बात कहना चाहता है, और विस्तार से, इसलिए वह पात्रों की काल्पनिक सृष्टि करके उनके जीवन मे कुछ सैद्धान्तिक मान्यताओ व समस्याओं को व्यावहारिक रूप दे देता है। अलग-अलग प्रसग इन सामान्य पात्रो के माध्यम से जुड जाते हैं, और बिखरा-सा कथानक व उसे जोडने वाले पात्र, समाज के वर्ग-विशेष के प्रतीक बन जाते हैं। इस प्रकार पात्र और कथा दोनो ही 'टाइप'-रूप मे समक्ष आते है, व्यक्ति-रूप में नही।

'किसान' और 'अनाथ' में भारतीय कृषक के जीवन की दरिद्रता व दयनीय स्थिति का वर्णन कवि ने किया है। 'अनाथ' की कथा का प्रधान पात्र किसान है और उसके जीवन मे घटित होने वाली घटनाएँ बहुमुखी है —दरिद्रता,जमीदार के द्वारा अत्याचार, पठान का ऋण, पुलिस और साहूकार के द्वारा बेगार तथा करुणाजनक अन्त आदि अनेक प्रकार की समस्याओ को एक ही व्यक्ति के जीवन मे इस छोटे से काव्य मे बेतरतीबी से बाँध दिया गया है। इसी प्रकार 'किसान' मे, किसान, कुली और सैनिक तीन प्रकार की परिणतिया एक ही पात्र के जीवन मे अकित की गई है। ये तीनों प्रकार की समस्याएँ एक ही व्यक्ति कृषक के जीवन मे घटित होती है, यही इनमें अन्विति है। कथा के विभिन्न भागो मे भद्दे जोड ज्ञात न हो इसलिए कवि ने आत्म-कथात्मक शैली का प्रयोग किया है। 'अजित' की रचना भी इसी प्रकार जीवनी काव्य के ढग पर की गई है। पात्र-विशेष की जीवनगत घटनाओ के रूप मे कवि ने गाधीवादी जीवनादर्श की उपयुक्तता, व आतकवादियो के सिद्धान्तों व कार्यों के प्रति अनास्था व्यक्त की है। इसी सिद्धान्त-निरूपण के लिए घटनाओ का उपयोग कर मानवतावादी जीवन-दर्शन का प्रतिफलन काव्य मे हुआ है। स्थल निकालकर, सामाजिक विकृतियों का निरूपण भी कवि ने किया है। प्रबन्ध-गुण इस कृति मे अन्य काव्यो की अपेक्षा अधिक है क्योकि घटनाओ का रगस्थल व पक्ष नही बदला है। सभी का सम्बन्ध तत्कालीन राजनैतिक अस्तव्यस्तता से है। कवि ने गांधीवाद और मार्क्सवाद की केवल सैद्धान्तिक व्याख्या न कर व्यावहारिकता की कसौटी पर उनकी सफलता-विफलता सिद्ध की है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विषय-भेद से इन घटनाप्रधान और समस्याप्रधान काव्यो का वस्तु-विन्यास भी भिन्न हो गया है, परन्तु एक तथ्य इन सभी काव्यो के विषय मे समान रूप से देखा जा सकता है। इनकी वस्तु-संघटना अनेकांकी नाटक के ढग पर न होकर एकाधिक दृश्यों में लिखे गए एकांकी नाटक या लघु-उपन्यास के ढग पर है। इनमे एक कथा प्रधान या आधिकारिक कथा है (एकाध अपवाद को छोडकर), उसमे अनेक उपाख्यान या प्रासगिक वृत्तों का योग नहीं होता। इसी आधिकारिक कथा का आरम्भ, मध्य और अवसान तीनो अकित है; किंतु आरम्भ और मध्य, तथा मध्य और अन्त के बीच मे प्रासगिक वृत्तो के द्वारा उत्पन्न लम्बा अन्तराल या दूर तक उतार-चढाव नही होता। आरम्भ और यत्न तथा नियताप्ति और प्राप्त्याशा लगभग एकाकार हो गए है। इन काव्यों में फल-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी महाकाव्यों की भाँति निश्चित रूप से फल-प्राप्ति का न होकर पाश्चात्य दृष्टिकोण के समान सघर्ष और कहीं-कही

असफलता-प्राप्ति का भी है। 'पथिक', 'किसान', 'अनाथ' आदि सभी काव्यों में असफलता मे ही काव्य का अन्त होता है। इन काव्यों का कथानक फलागम की ओर प्रगति न करके अन्तिम परिणाम या कार्य[1] की ओर ही बढा है। जिन काव्यों मे प्रबन्ध-योजना अपेक्षाकृत तर्कसम्मत है उनमें आदि, मध्य और अन्त क्रमश कारण, कार्य और परिणाम-सम्बन्ध से परस्पर जुडे है, अन्यत्र यह सम्बन्ध उतना स्पष्ट और अनिवार्य नही है—'जयद्रथवध', 'नहुष', 'मौर्य-विजय', 'पथिक' आदि का प्रबन्ध-विधान पहले प्रकार का, और 'सिद्धराज', 'किसान', 'अनाथ' आदि का दूसरे प्रकार का है।

घटनाओं का स्वरूप—जिन काव्यो मे प्रख्यात या ऐतिहासिक व पौराणिक कथानक को काव्य-विषय बनाया है, उनमें तो घटनाओं का वस्तुनिष्ठ आधार स्पष्ट ही है, परन्तु जिन कृतियो मे सामयिक समस्याओं का अकन किया गया है, उनमे भी उनका वाह्य, मूर्त, वस्तुरूप ही ग्रहण किया गया है, आन्तरिक, अमूर्त, भावात्मक या विचारात्मक आत्मरूप नही। अर्थात् इन समस्याओ के द्वारा बाह्य जीवन मे उत्पन्न होने वाली विकृतियो का ही चित्रण किया गया है, व्यक्ति के अन्तर्मन में होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया का नही। इन सभी काव्यो में कथा के वस्तुपरक आधार की स्पष्ट व अत्यन्त आग्रहपूर्ण स्वीकृति हुई है; किन्तु इन कवियों ने आन्तरिक, अमूर्त, भाव या विचार-सत्यो की अवहेलना की हो, या यथाप्रसग व्यक्ति के अन्तर्मन का अकन न किया हो, ऐसा नही कहा जा सकता। इन सभी काव्यो मे आन्तरिक अभिव्यजना को प्रसग और पात्र की आवश्यकता के अनुकूल सर्वत्र स्थान मिला है, परन्तु अपेक्षाकृत प्रमुखता मूर्त की ही है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन कृतियों में उसी प्रकार लक्ष्य नहीं, जिस प्रकार 'तुलसीदास' काव्य के कवि 'निराला' का। इन कवियों ने मूर्त घटनाओ के घात-प्रतिघात मे पडे पात्रों की मनोदशा का अकन तो रम कर किया ही है, कही-कही वस्तु-वर्णन की अपेक्षा इनकी वृत्ति भावव्यजना मे अधिक रमी है। किन्तु घटनाओ का ग्रहण उनके मूर्त रूप मे ही किया गया है, उनको अमूर्त, आत्मपरक रूप मे चित्रित करने का प्रयत्न इनका नही रहा। उदाहरण से बात स्पष्ट हो सकेगी—तुलसीदास के जीवन में घटित होने वाली उन घटनाओं के दो स्वरूप सभव थे, जिनको 'निराला' ने काव्य-विषय बनाया। एक उनका वह सक्रिय रूप जो कवि के बाह्य जीवन मे घटित हुआ, अर्थात्—कवि के हृदय मे जनजागरण की लालसा, पत्नी मे अति अनुरक्ति, उसके पीछे ससुराल तक दौडे जाना, पत्नी की फटकार और तद्जनित प्रतिक्रिया—अर्थात् अति निवृत्ति और गृह-त्याग। इन घटनाओ को कवि ने इस रूप मे ग्रहण न कर, इनका अमूर्त आत्मपरक रूप ग्रहण किया है। नायक के हृदयगत विप्लव का विश्लेषण कर उसी के द्वारा मूर्त घटनाओं की व्यजना की गई है। बाह्य घटनाओ का अकन न कर उनके आत्मगत कारणो और परिणामों—मन मे घटित होने वाली क्रिया और प्रतिक्रिया का ही वर्णन किया गया है। नायक के ऊर्ध्व-संचारी मन के मार्ग के अवरोध, उनके शमन और सफलता-प्राप्ति के वर्णन से मूर्त घटनाएँ व्यजित होती है। इससे भिन्न 'नहुष' तथा 'मिलन', 'पथिक' आदि काव्यो मे किये गए प्रयत्न है। 'मिलन' और 'पथिक' मे वस्तु-चित्रण की अपेक्षा भावव्यजना अधिक है। कथा-तत्त्व दोनों ही

1. Catastrophe

कृतियों में क्षीण है। विस्तृत वस्तु-वर्णनात्मक शैली के स्थान पर कवि ने सक्षिप्त प्रभावात्मक शैली में पात्रो के मानसिक घात-प्रतिघात व राष्ट्रीय भावनाओ की मिली-जुली व्यंजना की है। प्रकृति-वर्णन के अवसर जहाँ भी कवि को मिले है, अनेक पृष्ठों मे वह उसके स्फुट और सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता चला है, परन्तु कथा-सूत्र क्षीण होने पर भी लुप्त नही होता। घटनाएँ पर्याप्त है परन्तु प्रायः उनके इतिवृत्तात्मक वर्णन से अधिक हृदयगत भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्व, व्यक्ति के विचार, चिन्तन आदि के वर्णन मे कवि की मनोवृत्ति रमी है। सामाजिक विकृतियों का वर्णन भी सतही और अन्तरग दोनो रूपो मे किया गया है, पर घटनाएँ व कथा गौण या व्यजित नही होती। ये स्थल, कथा के प्रसगो के रूप मे चित्रित है। इसी प्रकार 'नहुष' के प्रख्यात आख्यान मे भी वस्तु-वर्णन के साथ मनोविकारो के विश्लेषण-व्यंजना को पर्याप्त स्थान मिला है। काव्य का अधिकाश आत्मस्थ है। शची की मन स्थिति की मनोयोगपूर्वक व्यजना की गई है। वस्तुत: काव्य मे नहुष की अधिकार-लालसा और काम-लिप्सा का उसकी पौरुषमयी चेतना के साथ सघर्ष व्यक्त है, जिसका सम्बन्ध अन्तर्मन से ही है। 'जयद्रथवध' का बाह्य स्वरूप आख्यानात्मक होते हुए भी, यह प्रसग कारुणिक है, अतः उसमे यथावसर आन्तरिक भाव-व्यजना को भी स्थान मिला है। इसी प्रकार 'किसान' मे भी कवि की करुणा का अप्रतिहत तथा मर्मस्पर्शी प्रवाह विद्यमान है। परन्तु फिर भी इन सभी कृतियों मे कथा या मूर्त घटना-सूत्र गौण नही है। इस प्रकार के सभी भाव या विचार-व्यजक व आत्मकेन्द्रित प्रसग कथा मे प्रासगिक रूप मे प्रयुक्त है, प्रधान या आधिकारिक रूप मे नही। यह वस्तुगत आधार 'सिद्धराज', 'शकुन्तला', 'आत्मोत्सर्ग', 'अनाथ', 'मौर्य-विजय' और 'अजित' आदि काव्यो मे और भी स्पष्ट है। 'मौर्य-विजय', 'सिद्धराज', 'शकुन्तला' आदि की चेतना स्पष्टत वस्तुगत है। ऐतिहासिक घटनाओं के अनुरूप बाह्य पृष्ठभूमि का निर्माण कवियो ने किया है। 'अजित', 'किसान', 'आत्मोत्सर्ग' आदि काव्यो मे समस्याएँ सामयिक होने पर भी कथा का घटनात्मक रूप ही ग्रहण किया गया है, आन्तरिक व मनोवैज्ञानिक सूत्रो के उद्‌घाटन का प्रयत्न कही नही किया गया। सामयिक समस्याएँ अपने वस्तुनिष्ठ रूप मे प्रस्तुत है। जीवन के अन्तरंग की अपेक्षा बहिरग ने इन कृतियो मे अधिक स्थान पाया है।

वर्णनात्मकता—महाकाव्यों या बृहदाकार प्रबन्ध काव्यों की-सी वस्तु-वर्णनात्मकता का समावेश इन काव्यो मे न सम्भव था, और न हुआ है। यह इनके विषय और विस्तार की परिसीमा है, जो सर्वथा उचित है। फिर भी विषय की परिधि मे रहते हुए प्रकृति, समाज, मानव-रूप-सौन्दर्य, सेना, युद्ध, मत्रणा आदि राजनीतिक प्रसग, तथा समस्यात्मक काव्यो मे तत्कालीन सामाजिक स्थिति इत्यादि विविध वर्णनीय प्रसगों के आवश्यकता के अनुकूल कुछ दूर तक सुन्दर वर्णन इन रचनाओं में प्राप्य है। जैसा घटनाओ के प्रसंग मे पहले भी कहा जा चुका है, आन्तरिक भाव-व्यंजना व मनोविश्लेषण भी इन कृतियो मे पर्याप्त है। रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी रचनाओ मे प्राकृतिक प्रसगो का विशेष भावमय वणन किया है। यथावसर अनेक पृष्ठ प्राकृतिक रमणीयता व सुषमा से रजित है। 'सिद्धराज', 'आत्मोत्सर्ग', 'अनाथ', 'अजित' आदि काव्यों मे राजनैतिक और सामाजिक वर्णन पर्याप्त है। मानव-जीवन के अतरग और बहिरग दोनों ही पक्ष इन वर्ण्य-विषयों में अन्तर्भूत हैं। प्रधानता बाह्य अर्थात् मूर्त की ही है।

शिल्प

सर्ग-विभाजन—इन काव्यो का विभाजन हुआ है, परन्तु सर्वत्र सर्गों में नही। कही यह विभाजन परिच्छेदों मे हुआ है और कहीं प्रसग के आधार पर शीर्षकों मे। 'जयद्रथवध', 'सिद्धराज', 'मौर्य-विजय', 'नहुष' तथा 'पथिक' का विभाजन सर्गों मे हुआ है। 'मिलन' और 'अजित' परिच्छेदों मे विभाजित हैं। सियारामशरण गुप्त ने कोई नाम न देकर 'आत्मोत्सर्ग' व 'अनाथ' का विभाजन क्रमशः तीन और चार भागो मे किया है, तथा 'शकुन्तला' और 'किसान' वर्ण्य-विषय के आधार पर शीर्षको मे बद्ध है। कही-कही एक ही पृष्ठ के उपरान्त शीर्षक बदल गया है।

सर्ग-सख्या के विषय मे इन कवियो ने कोई निश्चित सख्या या क्रम-बन्ध स्वीकार नही किया। तीन से लेकर सत्रह तक इनकी सर्ग-सख्या का सकोच और विस्तार हुआ है। सर्गो का पृथक् नामकरण अधिकांश कृतियो मे नही किया गया। केवल 'नहुष' के कवि ने सर्गों मे विभाजन करके उनका नामकरण पात्रो या घटना के आधार पर किया है, अन्यथा प्रसंग के आधार पर शीर्षकों में 'शकुन्तला' और 'किसान' के कवियो ने ही कथानक को बाँधा है। जो रचनाएँ सर्गों या परिच्छेदो मे विभाजित है उनमे सर्गों का पृथक् नामकरण नही किया गया।

नामकरण—काव्य के नामकरण के लिए सामान्यतः प्रचलित परिपाटी को ही अपना लिया गया है और प्रधान पात्र या प्रमुख घटना के आधार पर नामकरण किया गया है। अन्य वर्णन-रूढ़ियाँ जिनका निर्देश महाकाव्यो के लिए किया गया था पूर्ण रूप से इन काव्यों मे परिपालित नही है, और ऐसा आवश्यक भी नही था। इन रूढियो की अवहेलना तो इस युग के महाकाव्यकारो ने भी कर दी थी। कुछ कृतियों मे सस्कारवश कवियों ने फिर भी मगलाचरण का विधान किया है।

वर्णन-शैली—शैली की दृष्टि से इन कवियो ने प्रधान रूप से दो प्रकार की रचनाएँ की है। उत्तम पुरुष मे प्रमुख पात्र-द्वारा प्रत्यक्ष आत्मकथात्मक समाख्यान-शैली मे, तथा अन्य पुरुष मे कवि द्वारा परोक्ष वर्णन-शैली मे। समाख्यान (narration) की प्रवृत्ति दोनो शैलियो में समान रूप से विद्यमान है। 'किसान' और 'अजित' पहली, और शेष कृतियाँ दूसरे प्रकार की शैली मे लिखी गई। कवि ने जीवनी के ढंग पर आत्मपरिचयात्मक शैली का प्रयोग सम्भवतः काव्य मे अन्यथा परस्पर असम्बद्ध घटनाओं को प्रबन्ध-सूत्र मे बाँधने के लिए ही किया है। जीवन के विविध पक्षो मे घटित होने वाली ये घटनाएँ एक ही कल्पित पात्र के जीवन के प्रसंग होने के कारण परस्पर सम्बद्ध ज्ञात हो, इसीलिए वे एक ही जीवनी के विविध प्रसगों के रूप में प्रस्तुत की गई है।

सामान्यतः समाख्यानात्मक शैली के बीच मे विशेषतः संवादों के रूप मे नाट्य-शैली का प्रयोग अनेक प्रसंगों में इन कवियों ने कौशल से किया है। सभी कृतियों में यदा-कदा दो पात्रो के बीच वार्ता का विवरण प्रस्तुत न कर कथोपकथन की योजना की गई है, परन्तु 'नहुष' और 'सिद्धराज' काव्यों मे इस शैली का बहुलता से सुरुचिपूर्ण प्रयोग है। पात्रो का मनोविश्लेषण, आत्माभिव्यजन तथा कथावस्तु का विकास भी 'नहुष' मे सवादों के द्वारा हुआ है। कहीं-कही सुन्दर नाटकीय व्यंग्य की योजना की गई है। संवादों का प्रमुख गुण सजीवता सर्वत्र विद्यमान

है। 'सिद्धराज' मे भी वर्णनात्मक स्थलों और कतिपय सूच्य कथांशो के अतिरिक्त कथा प्रायः सवादों के द्वारा ही विकसित हुई है। वर्णनात्मकता भी इस काव्य मे कम नही, अनेक लम्बे वर्णनात्मक स्थलों के लिए कवि ने अवकाश निकाल लिया है, परन्तु नाट्य गुण इस कृति मे प्रचुर है।

आधुनिक काल की विशेष लोकप्रिय गीति-शैली का प्रयोग इन काव्यो मे कही नही हुआ। 'पथिक', 'मिलन' आदि मे कुछ विशेष पात्रों की भावाभिव्यंजना के प्रसग में अन्तर्मुखी दृष्टिकोण, भावद्रवणता, अन्त.स्फूर्त भावोच्छ्वास आदि प्रगीत के तत्त्व तो प्राप्त हो जाते है, परन्तु शिल्प की दृष्टि से गीत के टेकनीक का प्रयोग इन कवियो ने कही नही किया। विचित्र बात है, 'साकेत', 'यशोधरा' आदि बृहद् प्रबन्ध रचनाओ मे अनेक सुन्दर गीतो की रचना करने वाले राष्ट्रकवि गुप्तजी ने भी अपनी इन रचनाओ मे, इस ओर से उदासीनता का ही परिचय दिया है। पात्रो की आत्माभिव्यक्ति के अनेक स्थलों मे, बाह्यार्थनिरूपण के स्थान पर इन कवियो की दृष्टि आत्मपरक और अन्तर्वृत्ति-निरूपिणी तो हो गई है, परन्तु स्वर के बाह्य सगीत की साधना इन्होने नही की।

ये सभी कृतियाँ सीधी-सादी प्रसादगुणमय इतिवृत्तात्मक शैली मे लिखी गई हैं। प्रसग के अनुकूल करुणा, प्रेम आदि का माधुर्य, और वीरता का उत्साह व ओज भी इनमे समाविष्ट है, परन्तु एक विशेष प्रकार की स्पष्टता, स्फीतता और वस्तुनिष्ठ वर्णन की प्रवृत्ति सर्वत्र इनकी शैली मे है। लक्षणा-व्यजना के अतिशय प्रयोग, वर्णन की वक्रता, अनेक भगिमाओ से युक्त कथन की शैली के अभाव से, एक ओर जहाँ कल्पना-विलास, अलकरण-कला के वैभव और श्री से ये कृतियाँ वंचित रह गई है, वहाँ इस प्रसादमयता से एक प्रकार की स्पष्टता, सहज बोधगम्यता, निर्बाधगति और प्रभावोत्पादकता इनमें उत्पन्न हो गई है, जिसका अपना आकर्षण है। हम इनकी कला पर मुग्ध होने की अपेक्षा उससे प्रभावित अधिक होते है। इनकी शैली में हृदय को रमाने की अपेक्षा स्पर्श करने का गुण अधिक है।

अलंकृति—उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह कदापि नही कि इनकी कला सर्वथा अनावृत या अनलकृत कला है। इस कला का सौन्दर्य वन्य या ग्राम्य सौन्दर्य का समकक्षी भी नही, उसमे नागर भाव है परन्तु अतिशय अलकृति नही। अधिकांश स्थलो पर अलकारों का प्रयोग परम्परानुमोदित है। शब्दालंकारो की चमत्कारप्रधान परम्परा तो नही, किन्तु अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, अपह्नुति आदि प्रचलित अलकारो का ही प्रयोग अधिक मिलता है। अपेक्षाकृत नवीन अलकारो—मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय आदि का मोह इन कवियों ने नही दिखाया। मूर्त-विधान मे भी किसी प्रकार की उल्लेखनीय नवीनता उपलब्ध नही होती। चित्रमयता का गुण भी सर्वत्र तो नहीं परन्तु यत्र-तत्र वर्णनों मे मिल जाता है। 'नहुष' मे यह गुण विशेष रूप से विद्यमान है। कहीं-कहीं कवि ने अलंकृत शब्द-चित्र अकित किये हैं। प्रकृति, मानव-सौन्दर्य, स्थान, वातावरण सभी के चित्र यथाप्रसग अकित है। इस कला का अवकाश उन रचनाओ में अधिक रहा है जिनमे कथा का वस्तुगत आधार स्पष्ट है। जहाँ समस्या काव्य-विषय है, वहाँ इस प्रकार का प्रयत्न कम हुआ है।

छन्द-विधान—इस सम्बन्ध मे दो विशेषताएँ विवेच्य है : (१) छन्द-परिवर्तन की पद्धति (२) रचना के लिए गृहीत छन्दों के आकार। छन्द-परिवर्तन का जहाँ तक प्रश्न है, इन

कवियो ने, आद्योपान्त एक छन्द मे काव्य-रचना, और पृथक् छन्दो मे सर्ग-रचना—दोनों ही प्रणालियाँ अपनायी है। 'जयद्रथवध' की रचना आद्यन्त हरिगीतिका छन्द मे, 'अजित' की रोला छन्द मे, 'मिलन' और 'पथिक' की क्रमश सरसी और सार छन्द मे, तथा 'नहुष' और 'सिद्धराज' की क्रमश तुकान्त और अतुकान्त अमित्राक्षर या हिन्दी छन्द-शास्त्र की शब्दावली मे घनाक्षरी के उत्तरचरणार्द्ध मे हुई है। 'किसान', 'शकुन्तला' और 'अनाथ' में प्रत्येक प्रसंग या सर्ग के उपरान्त छन्द-परिवर्तन हो गया है, परन्तु सर्ग के बीच मे छन्द नही बदला है। प्रकार की दृष्टि से 'नहुष' और 'सिद्धराज' के अतिरिक्त इन सभी काव्यो मे हिन्दी के प्रचलित मात्रिक छन्द अपनाए गए है, जिनमे प्रयोग-सम्बन्धी भी कोई विशेष नवीनता नही। कही-कहीं पक्ति के अन्त मे निर्दिष्ट गुरु-लघु के क्रम का व्यतिक्रम हो गया है और कही यति का प्रयोग गति और विषय की आवश्यकता के अनुकूल स्वच्छदतापूर्वक किया गया है, अन्यथा मात्राओं का निर्वाह प्राय· नियमानुकूल ही हुआ है। गुप्तजी ने 'मेघनादवध' का अनुवाद करते हुए बंगला के पयार छन्द के वजन पर जिस १५ वर्ण के अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग किया था 'नहुष' मे उसी का तुकान्त और 'सिद्धराज' मे अतुकान्त रूप प्रयुक्त है। सौभाग्य से हिन्दी के घनाक्षरी छन्द की गति इस छन्द के समान ही है। इसलिए इस छन्द को घनाक्षरी का उत्तरचरणार्द्ध भी कहा जा सकता है। छन्द की आकार की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में यह छन्द निश्चय ही नवीन प्रयोगों में से है। अविद्यमान की सृष्टि की दृष्टि से नही, तो विद्यमान मे परिवर्तन की दृष्टि से यह प्रयोग इसी युग की देन है।

सर्गविहीन खण्डकाव्य—सर्गबद्ध खण्डकाव्यो के समानान्तर अनेक सर्गविहीन खण्ड-काव्यों की भी रचना आधुनिक काल मे हुई। जैसा सर्गबद्ध काव्यो के प्रसग मे पहले भी सकेत किया जा चुका है, इन दोनो प्रकार के खण्डकाव्यो में पारस्परिक अन्तर केवल सर्ग में बाँधने या न बाँधने का ही नही है, यह अन्तर स्वय कारण न होकर परिणाम है—वस्तु-विन्यास सम्बन्धी उस विशेषता का, जिसके फलस्वरूप कुछ दूर तक अखण्ड धाराप्रवाह-रूप मे काव्य-रचना करने की आवश्यकता इन कवियो को प्रतीत हुई। यहाँ वस्तुविन्यास-सम्बन्धी विशेषता से हमारा तात्पर्य काव्य के लिए गृहीत घटना के स्वरूप, उसके विस्तार, प्रबन्ध-संगठन और काव्य के वस्तुशिल्प-सम्बन्धी सारभूत प्रभाव से है।

सर्गविहीन खण्डकाव्य-रचना की शैली सर्गबद्ध खण्डकाव्यो की अपेक्षा, कवियो मे अधिक लोकप्रिय रही। सक्षिप्त कथानक मे प्रभाव की एकाग्रता, घनत्व और प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से कदाचित् इन कवियो को यही पद्धति अधिक रुचिकर प्रतीत हुई। इसीलिए इस युग के अधि-काश खण्डकाव्य इसी सर्गविहीन प्रणाली पर लिखे गए। इस प्रकार के खण्डकाव्यों की सख्या प्रचुर है। मैथिलीशरण गुप्त की 'रग में भंग', 'वक-सहार', 'वन-वैभव', 'पंचवटी', 'सैरन्ध्री', 'हिडिम्बा', 'युद्ध', 'कर्बला', 'प्रदक्षिणा', कवि प्रसाद की 'प्रेम-पथिक' और 'महाराणा का महत्त्व' रत्नाकर का 'उद्धव-शतक', कवि पन्त की 'ग्रन्थि', 'निराला' की 'तुलसीदास', बच्चन की 'बंगाल का काल' तथा अश्क की 'बरगद की बेटी' व 'चाँदनी रात और अजगर' आदि रचनाएँ इसी प्रकार के सर्गविहीन खण्डकाव्य है।

ऊपर जिन काव्यों का उल्लेख किया गया है उनमे से गुप्तजी की सभी रचनाएँ तथा

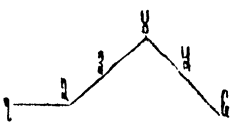
कुछ अतिरिक्त विशेषताओ के साथ कवि प्रसाद के 'प्रेम-पथिक' और 'महाराणा का महत्त्व' तथा अश्क का 'बरगद की बेटी' कथात्मक या घटनाप्रधान खण्डकाव्य कहे जा सकते है। शेष रचनाओ मे एक बात समान है—घटनाओ के वस्तुरूप अकन का या तो एकमात्र अभाव है, अथवा मूर्त की अपेक्षा अमूर्त की प्रधानता है यथा 'ग्रन्थि' और 'तुलसीदास' मे। मूर्त घटनाएँ निमित्त मात्र है, कथा कहना या वस्तुस्थिति को स्पष्ट करना कवि का लक्ष्य नही, इतिवृत्त के माध्यम से वह किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन या किसी भाव की व्यजना करना चाहता है—ऐसा 'उद्धव-शतक', 'बगाल का काल', और 'चाँदनी रात और अजगर' मे हुआ है। ये कृतियाँ केवल इसी विशेषता मे समान है कि सभी मे अमूर्त घटनाओं, विचार या भाव की प्रधानता है। इनकी घटनाओ का रगस्थल बहिर्जगत न होकर पात्रो का अन्तर्मन है या कवि के विचार अथवा किसी पात्र की अनुभूति, काव्य का प्रेष्य है। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध-विषय, उसके नियोजन और निर्वाह की विधा परस्पर भिन्न है। इस वैषम्य और साम्य का विश्लेषण यथाप्रसग आगामी पृष्ठो मे किया जायगा। पहले हम घटनाप्रधान खण्डकाव्यों से आरम्भ करेंगे।

घटनाप्रधान खण्डकाव्य—कवि प्रसाद के 'प्रेम-पथिक' और अश्क के 'बरगद की बेटी' को छोडकर शेष सभी का कथा-आधार इतिहास अथवा पुराणसम्मत, या प्रख्यात है। इनके कथा-स्रोत—महाभारत के विविध आख्यान, रामायण, मध्यकालीन इतिहास है, तथा कर्बला की कथा का आधार इस्लाम धर्म का इतिहास है। 'प्रेम-पथिक' एक कल्पित प्रेम-कहानी है। कथा के साथ कवि का एक अन्य लक्ष्य भी रहा है। लौकिक धरातल पर व्यक्ति के प्रेम से आरम्भ कर काव्य के उत्तराश मे इस प्रेम का उदात्तीकरण और उन्नयन किया गया है। व्यक्ति के प्रेम की परिणति विश्व-प्रेम मे करने का प्रयास है। इसी आत्मविस्तार से चिरस्थायी आत्मतोष की उपलब्धि सम्भव है, यही इस काव्य की प्रबन्ध-ध्वनि है। परन्तु यह सदेश निहित होने पर भी आख्यान-तत्त्व गौण नही हुआ। सम्पूर्ण काव्य मे भावप्रवण अभिव्यक्ति के मध्य भी कथा का वस्तुरूप आधार सुस्पष्ट है। 'बरगद की बेटी' का आधार भी कोई कल्पनारजित लोक-कथा है। शोषित वर्ग (चरवाहो) की कन्या लहरों का अपनेपन की रक्षा करते हुए प्रेम के लिए आत्म-बलिदान कर देना, इतनी ही इस काव्य की कथा है, जिसकी घटनाएँ मूर्त रूप मे वर्णित है। कवि की सहानुभूति शोषित वर्ग के साथ है, और कथा की लपेट में जमीदार और किसान के सघर्ष की समस्या भी अंकित है।

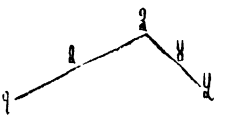
वस्तु-विन्यास—इन रचनाओ की प्रबन्ध-योजना मे कहानी के टेकनीक का प्रयोग किया गया है। 'प्रदक्षिणा' इस प्रवृत्ति का एकमात्र अपवाद है—शेष सभी कृतियो के वस्तु-विन्यास में कहानी वाली पद्धति प्रयोग में लाई गई है। कहानी के कार्य-व्यापार में महाकाव्य की-सी आधिकारिक और प्रासगिक कथा-सूत्रो की जटिल प्रबन्ध-योजना, और नानारूप संघर्ष से युक्त उतार-चढ़ाव तो होता ही नही, एकार्थ कथा के निरूपक लघु उपन्यास या प्रबन्ध काव्य का-सा वस्तु-विन्यास भी इसमे नही होता। कहानी मे चरम-घटना और अन्त प्राय. एक ही साथ घटित होते हैं। जीवन का एक खण्ड नही, उसका एक प्रसग, एक अश, या एक चित्र कहानी का विषय होता है। आरम्भ इसी विषय की भूमिका से होता है, यह भूमिका व्याख्या मे या बीज बिन्दु में परिणत हो जाता है। इस स्थिति के उपरान्त पताका, प्रकरी या अन्य किसी प्रकार के उल्लेखनीय प्रासं-

गिक वृत्त का योग नही होता। चरम घटना घटित होती है और उसी के साथ पटाक्षेप हो जाता है। कहानी का अन्त फल-प्राप्ति मे न होकर दु.खद परिणाम मे भी हो सकता है। वस्तु-विधान में इस प्रकार फल और चरम घटना (climax & catastrophe) एक ही साथ घटित होते है। रेखाओं के द्वारा महाकाव्य, बृहद् प्रबन्ध काव्य और लघु खण्डकाव्य के वस्तुविन्यास का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

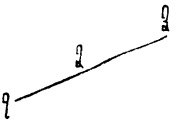
महाकाव्य



बृहद् प्रबन्ध काव्य
या महाकाव्यात्मक खण्डकाव्य



लघु खण्डकाव्य



जिन घटनात्मक खण्डकाव्यो का हमने उल्लेख किया, उनका वस्तुविन्यास उक्त कहानी वाली पद्धति पर ही हुआ है। कुछ उदाहरणों से हम व्यक्त धारणा को स्पष्ट एव पुष्ट करेंगे। गुप्तजी की 'पंचवटी', 'वन-वैभव', 'वक-सहार', 'सैरन्ध्री' आदि कृतियो मे नायक के जीवन-खड से एक विशेष प्रसंग या एक घटना को कवि ने काव्य-विषय बनाया है। 'पचवटी' मे लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के विकलाग किये जाने का प्रसग, 'सैरन्ध्री' मे कीचक-वध की घटना, 'वक-सहार' में भीम-द्वारा पाडवो के अज्ञातवास मे बकासुर-वध, 'वन-वैभव' मे गन्धर्वों से कौरव-कुल-रक्षा आदि का वर्णन है। ये घटनाएं राम और पाडवो के वनवासी जीवन का, जो उनके समग्र जीवन का एक खण्ड है, एक अंश या प्रसग मात्र है। 'पंचवटी' की चरम घटना शूर्पणखा के विकलांग किये जाने की घटना है। 'सैरन्ध्री' की चरम घटना कीचक-वध है एवं 'वन-वैभव' की यक्षों से कौरवों की रक्षा। 'बक-सहार' मे बकासुर-वध, 'कर्बला' मे इमाम हुसेन का सघर्ष, 'प्रेम-पथिक' मे चिरवियुक्त प्रेमियो का मिलन आदि चरम घटनाएँ है। यदि ध्यान से देखे तो ज्ञात होगा कि यह चरम घटना काव्य के फल से अभिन्न है। 'बक-सहार' मे तो यह घटना घटती भी नही, अन्त में केवल उसकी कार्यान्विति की ध्वनिमात्र है। इन काव्यों मे जो रचना का चरम है वही उसका फल भी है।

कुछ अन्य कृतियो मे चरम घटना और फल की पारस्परिक अभिन्नता उतनी अतर्क्य नही। इनमे चरम घटना और काव्य-फल मे कुछ अवकाश आ गया है। चरम घटना के पीछे-पीछे काव्य-फल लगा रहा है परन्तु वह उसका तत्काल अनुवर्ती है उससे अभिन्न नही। 'हिडिम्बा' की चरम घटना भीम और हिडिम्ब का परस्पर युद्ध, और फल हिडिम्बा-प्राप्ति है, 'महाराणा का महत्त्व' में खानखाना की पत्नी का महाराणा के साथियो द्वारा बन्दी किया जाना उसकी चरम घटना है और अकबर एव महाराणा के बीच सन्धि, उसका फल। इस प्रकार इनके वस्तु-विन्यास में चरम-घटना और फल अभिन्न नही परन्तु फल चरम घटना का तत्काल अनुवर्ती है। दोनो मे विशेष अन्तर या कार्य-व्यापार में क्रमिक निगति नही हुई है। दोनों अभिन्न नही परन्तु पूर्वापर-क्रम से जुड़े हुए हैं। 'बरगद की बेटी' मे चरम और फल के बीच का यह अन्तराय कुछ और अधिक बढ गया है। लहरां के प्रेमी अनवर का उसके नौकर सादिक-द्वारा बध और लहरां को घायल करना,

इस काव्य की चरम घटना है, और जमीदार के वध के उपरान्त लहरों की आत्महत्या काव्य की अन्तिम घटना है, परन्तु यह न चरम से अभिन्न है और न उसकी तत्काल अनुवर्तिनी। चरम घटना के उपरान्त कथावस्तु मे क्रमशः परिणाम की ओर निगति है। इसके बीच जमीदार के कोपभाजन—चरवाहो पर अत्याचार, लहरों का जमींदार के घर लाया जाना, उसके प्रति जमीदार का प्रेम-प्रदर्शन और परिणामतः लहरों द्वारा उसका वध आदि घटनाएँ घटती हैं। इनमे क्रमिक विन्यास और विकास है, सहसा पटाक्षेप नही।

'रग मे भग' और 'प्रदक्षिणा' का वस्तु-विन्यास कुछ भिन्न ढग का है। 'रग मे भंग' की कथा मे प्रबन्ध-योजना खण्डित है। घटनाओं का क्रमिक विकास अनवरुद्ध सहज गति से नही होता। कथा मे स्पष्ट रूप से दो घटनाएँ हैं—चित्तौड़ के महाराणा का विवाहोपरान्त अपने श्वशुर से विग्रह, और चित्तौड के नकली किले की रक्षा करते हुए हाडा-कुम्भ की मृत्यु। कथानक का अनुबन्ध सर्वथा शिथिल है। दोनो घटनाएँ परस्पर अविभाज्य वस्तु-सम्बन्ध मे नही बाँधी गई। यदि कहे कि दोनो के बीच भद्दा जोड है तो ऐसा कहना भी अनुचित होगा, वस्तुतः दोनो मे जोड़ है ही नही। पहली कारण है दूसरी परिणाम, परन्तु दोनो दो खण्डो मे विभक्त है और पहली से दूसरी की ओर बढते हुए तारतम्य झटके से टूट गया है।

'प्रदक्षिणा' को शब्द के सही अर्थो में खण्डकाव्य कहा ही नही जा सकता। डा० कमलाकान्त पाठक ने अपने शोधप्रबन्ध मे इस काव्य को एक स्थल पर 'रामायणीय आख्यान-संकलन' और दूसरे स्थल पर 'प्रबन्ध-सकलन' नाम दिया है परन्तु काव्य की प्रबन्ध-योजना की दृष्टि से यह नाम सर्वथा अनुचित है। सकलन केवल इसी अर्थ मे कहा जा सकता है कि इसमें 'साकेत' के एकादश सर्ग के चौहत्तर छन्द, अष्टम का एक, और पचवटी के तीन छन्द उद्धृत है। इनके अतिरिक्त ४८ नए छन्द रचकर कवि ने सम्पूर्ण कथा पूरी की है, परन्तु इस काव्य मे राम के जन्म से राज्याभिषेक (वनवासोपरान्त) तक की सभी घटनाएँ सक्षिप्त वर्णन-शैली मे अकित की गई है। इन सब घटनाओ मे उचित पूर्वापर-सम्बन्ध है। आवश्यकता और सम्भाव्यता के अनुसार घटनाओ मे कार्य-कारण सम्बन्ध का निर्वाह करते हुए वस्तु-विन्यास किया गया है। कोई प्रसग अतिरिक्त और प्रबन्धात्मकता की दृष्टि मे अनावश्यक प्रतीत नही होता, किन्तु इस काव्य मे राम के जीवन के खण्ड-विशेष का वर्णन नही, सम्पूर्ण राम-कथा का सार है। राम-कथा के विभिन्न आख्यान केवल सकलित नही है—उनमें परस्पर सुनिश्चित प्रबन्ध-योजना मिलती है। इसलिए इस काव्य को आख्यान-सकलन तो कहा ही नही जा सकता। किसी कथा में आए आख्यानों का सकलन-मात्र करने, तथा उस कथा की प्रबन्ध-रूप मे रचना करने में परस्पर बहुत अन्तर है। एक में तारतम्य होना अनिवार्य है, दूसरे मे नही।

कुछ आगे चलकर डा० पाठक ने इसी काव्य को 'आख्यानक-पद्य-निबन्ध' नाम दिया है। उन्ही के शब्दो में—"सक्षेप में 'प्रदक्षिणा' 'आख्यानक-पद्य-निबन्ध' है जिसमें राम-कथा का सक्षिप्त सरस और प्रवाहपूर्ण वर्णन हुआ है।"[1] उपर्युक्त प्रसग में यदि विद्वान लेखक ने निबन्ध शब्द का प्रयोग विशेष व्यापक अर्थ मे नहीं किया है, तो निश्चय ही उनके मत में विरोध है,

१. मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य, डा० कमलाकान्त पाठक, पृष्ठ २१९

और यदि निबन्ध का अर्थ साहित्य की वह रचना-विशेष नहीं है जिसके रूपविधान-सम्बन्धी मान्यताएँ निश्चित है, तो इस शब्द का प्रयोग विशेष स्वेच्छाचार से किया गया मानना होगा।

हमारे मत मे एक ही काव्य-रूप को निबन्ध और सकलन दोनों सज्ञाएँ नही दी जा सकती। निबन्ध की एकसूत्रता और सकलन की विविधता परस्पर सर्वथा भिन्न और विरोधी विशेषताएँ है। इसके अतिरिक्त 'जयभारत' को भी विद्वान् लेखक ने आख्यान-सकलन माना है। जैसा हम महाकाव्य के विवेचन मे पहले स्पष्ट कर चुके है 'जयभारत' मे प्रबन्ध-गुण का सर्वथा अभाव है, और 'प्रदक्षिणा' मे उसी प्रकार राम के जीवन के विविध आख्यानो का सकलन-मात्र नही किया गया। राम-कथा के सभी महत्त्वपूर्ण प्रसगो का चलता हुआ वर्णन करने पर भी 'प्रदक्षिणा' की प्रबन्ध-योजना सुचिन्तित और वस्तु-विन्यास गठा हुआ है। इसके विपरीत 'जयभारत' मे कौरव-कुल की अनेक ऐसी घटनाओ व प्रसगो का आकलन कर दिया गया है जो प्रबन्धत्व की दृष्टि से सर्वथा अनुपादेय है। दोनो की वास्तुकला मे बहुत अन्तर है। एक आख्यान-सकलन है जिसमे प्रबन्धत्व की उपेक्षा करते हुए, कथा मे आने वाले सभी प्रसगो को सकलित कर दिया गया है और दूसरा ऐसा कथा-काव्य जिसमे खण्डकाव्य की खण्डता न होकर कथा की पूर्णता परन्तु महा-काव्य की महत् कथा का अभाव है।

निबन्ध के सभी प्रमुख प्रकारो मे आख्यान की स्वीकृति नही है। निबन्ध और कहानी मे अन्तर केवल बाह्याकार का ही नही, मूल दृष्टिकोण का है। निबन्ध के लिए विषयीप्रधान और कहानी के लिए सामान्यतः वस्तुप्रधान दृष्टि अपेक्षित है। आत्मीयता और व्यक्तित्व की छाप निबन्ध-रचना का प्रमुख अनुबन्ध है। विवरणात्मक और वर्णनात्मक ढग के निबन्धों मे जो वस्तु-आधार ग्रहण किया जाता है वह भी लेखक की तद्विषयक निजी प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्ति के लिए। इन दोनो रूपों की सीमा-रेखाएँ परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श कर सकती है। कहानी के आख्यान-तत्त्व का निबन्ध मे, और निबन्ध के व्यक्तिगत भाव और विचार-तत्त्व का कहानी मे विशेष रूप से प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु मूलत. दोनो विधाएँ पृथक् है। और इस विषय में मतभेद नही हो सकता कि 'प्रदक्षिणा' काव्य-निबन्ध नही पद्य-कथा है।

भाव या विचारप्रधान खण्डकाव्यों मे विवेच्य कृतियाँ है—रत्नाकर का 'उद्धवशतक', पन्त की 'ग्रन्थि', 'निराला' का 'तुलसीदास', बच्चन का 'बगाल का काल' और अज्ञेय का 'चाँदनी रात और अजगर'। इन रचनाओ मे से सशक्त घटनाएँ 'तुलसीदास' मे ही घटित होती है, यद्यपि इनका क्षेत्र बाह्य-जगत् न होकर नायक का अन्तर्मन है। 'बगाल का काल' विचार-प्रधान रचना है। 'ग्रन्थि' मे कवि ने विशेष भावमयता का परिचय दिया है। घटनाएँ कम, भावुक मन का भावोच्छ्वास अधिक व्यक्त हुआ है। 'उद्धवशतक' मे दार्शनिक सिद्धान्त या दूसरे शब्दों में विचार को अनुभूति का विषय बनाकर प्रस्तुत किया गया है। 'उद्धवशतक' और 'ग्रन्थि' में घटनाएँ है पर उनका बाह्य स्वरूप महत्त्वहीन है। 'ग्रन्थि' मे एक प्रेम-वचित भावुक हृदय की मर्म-व्यथा अकित है, और 'उद्धव-शतक' मे भक्ति की ज्ञान पर विजय-प्रतिष्ठा। 'चाँदनी रात और अजगर' का वस्तु-विन्यास कुछ भिन्न ढग का है। शारदीय पूनो की रजत-ज्योत्स्ना मे कवि अपने घर में वातायन के पास बैठा, पास पड़ी दिनभर के काम से श्रम-श्लथ जीवन-सगिनी को देखकर चिन्तालीन हो जाता है। उसके मानस पर आपबीते अन्तहीन जीवन-

सघर्ष के करुण चित्र उभर आते है। अवकाश-भोगियो और श्रमकरो के परस्पर विरोधी रूप कवि के मन मे अनेक नैतिक प्रश्न उठाते है, और फिर मुक्त जीवन और सुख-समृद्धि की आकाक्षाओं मे वह वस्तुनिष्ठ स्वप्नदृष्टा की तरह सपनो मे रम जाता है। उसे प्रतीत होता है मानो शेषनाग सा मानव-श्रम का अजगर अब अपने सिर पर समस्त पृथ्वी का भार उठाये, क्षीरसागर मे लक्ष्मीपति की सेज न बना रहेगा, बल्कि कुडली खोलकर अपने क्रुद्ध श्वास से शोषण और शासन की पूंजीवादी सत्ता को मिटा देगा। उस मुक्त वातावरण मे समस्त मानव-समाज एक साथ उन्नति-पथ पर अग्रसर होगा। इस प्रकार अन्तः और बाह्य इस काव्य मे घुले-मिले से व्यक्त हुए है। मनोनिष्ठ होने पर भी जो प्राणवान घटना और नाटकीय वस्तु-विन्यास 'तुलसीदास' मे प्राप्त होता है, वह अन्य कृतियो मे नही।

'तुलसीदास' की वस्तु-कला मे नाटकीयता किसी भी महाकाव्य या बड़े प्रबन्ध के समकक्ष ही है। अन्य खण्डकाव्यो की भाँति, इस काव्य का वस्तु-विन्यास कहानी के समान छोटे और सीमित पैमाने पर न कर, पाँचो कार्यावस्थाओ से युक्त किसी भी सफल नाट्य-कृति के समान किया गया है। 'तुलसीदास' मे कहानी की एक सक्षिप्त रूपरेखा वर्तमान है जो स्पष्ट भी है किन्तु कवि का उद्देश्य कथा व घटनाओ का वर्णन करना नही है अतः काव्य प्रकथनात्मक नही है। कवि 'निराला' ने उनके बाह्य जीवन को ग्रहण न कर आन्तरिक रूप को काव्य का आलम्बन बनाया। उनके आध्यात्मिक जीवन मे घटित होने वाली सब से महान् घटना—राजनैतिक व आर्थिक विषमताओ से पीड़ित भारतीय जन-जीवन का उद्बोधन इस काव्य का विषय है। इस प्रसग से सम्बद्ध उनके भौतिक जीवन की घटनाएँ उद्दीपन या प्रतीक है—उस मानसिक विप्लव का, जो उनकी अन्तश्चेतना मे घटित हो रहा था। इस प्रकार बाह्य दृष्टि से 'तुलसीदास' की कथावस्तु अत्यन्त सक्षिप्त व आकर्षण-शून्य है, परन्तु उसका अन्तर्विकास अपने आप मे महत्त्वपूर्ण है। इस आध्यात्मिक घटना का अभिज्ञान व इस काव्य-सत्य को हृदयगम करना 'निराला' की प्रतिभा द्वारा ही सम्भव था। कथा की सफलता घटनाओ के उचित सयोजन व विकास पर निर्भर है, और इस दृष्टि से 'तुलसीदास' अत्यन्त सफल कृति है। कथा सर्वथा अमूर्त होते हुए भी मनस्थितियाँ इतने सघन रूप मे प्रस्तुत हे कि उनका विकास मानसिक घात-प्रतिघात के तीव्र और समर्थ चित्रण के बीच हुआ है। मूर्त घटनाओ की अपेक्षा अमूर्त घटनाओं, मनस्थितियो के वर्णन मे बहक जाने या भाव-तरग मे बह जाने का अवकाश अधिक होता है, अत यह भी नही कहा जा सकता कि घटनाओ की सख्या कम होने से बिखरने का अवकाश नही रहा। घटनाएँ जितनी अमूर्त और सूक्ष्म होती है उसी अनुपात मे उनके वस्तु-सगठन में कवि-कौशल की अपेक्षा होती है और इस दृष्टि मे 'निराला' अत्यन्त कुशल शिल्पी है। 'तुलसीदास' की घटनाओ का गुम्फन और सयोजना इतनी सतर्कता से की गई है कि एक भी घटना, एक भी प्रसग बिखरना तो दूर, शिथिल भी प्रतीत नही होता। केवल घटनाओ का सन्निवेश ही कौशलपूर्ण नही है उनका विकास सर्वथा सगत एव नाटकीय है। पौरस्त्य नाट्य-कला का आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम आदि कार्यावस्थाएँ तथा पाश्चात्य नाटकों की आरम्भ, विकास, चरम-स्थिति, निगति और अन्त आदि पचावस्थाएँ इस अन्तर्मन में होने वाले सघर्ष मे भी सहज प्राप्य है। काव्य का आरम्भ भारत की राजनैतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर, अध्ययन के प्रभाववश तुलसी के सस्कार-

वर्णन से होता है। कार्य-विकास—प्रकृति-दर्शन और सास्कृतिक चेतना की उद्‌बुद्धि मे अकित है, तथा माया के रूप मे रत्नावली के आविर्भाव और तुलसी के मोहान्धकार के स्थल पर संघर्ष चरम सीमा को प्राप्त होता है। भाई के आगमन और रत्नावली के साथ प्रत्यागमन मे कार्य-निगति और रत्नावली द्वारा उनके उद्‌बोधन के स्थल पर अन्त। काव्य का अन्त विशेष भव्य, नाटकीय तथा गरिमावान है, नाट्य तत्त्व का चरम परिपाक इसी स्थल पर हुआ है।

भारतीय दृष्टिकोण से भी आरम्भ का स्थल तुलसीदास के परिचय तक, यत्न का आरम्भ प्रकृति-दर्शन और सास्कृतिक चेतना की उद्‌बुद्धि से और व्याप्ति रत्नावली के नैहर गमन तक, (इसी बीच फल-प्राप्ति मे सबसे बडी बाधा उपस्थित हो जाती है)। रत्नावली के भाई के साथ जाने से तुलसीदास के ससुराल पहुँचने तक प्राप्त्याशा, रत्नावली द्वारा उनका उद्‌बोधन नियताप्ति, और तुलसी के अन्तःसाक्षात्कार व भविष्य के लिए संकल्प को फल अथवा फल की व्यजना माना जा सकता है। इस प्रकार सुनिश्चित प्रबन्ध-योजना, घटनाओ के तीव्र घात-प्रतिघात और नाट्य-तत्त्व से यह कृति पूर्णत. युक्त है।

आधिकारिक कथा के साथ प्रासगिक वृत्तो की योजना कवि ने नही की, इसके दो कारण सम्भव है। कथा का सीमित क्षेत्र और घटनाओ का अमूर्त रूप। यदि कवि ऐसा करता तो कदाचित् काव्य के वर्तमान रूप मे प्रभाव-सम्बन्धी जो घनत्व और एकाग्रता, पर साथ मे स्पष्टता रक्षित है, उसके स्थान पर वह कथा-सूत्रो को उलझाकर, गुत्थियाँ पैदा कर देता। विषय के मनोवैज्ञानिक होने के कारण इस बात की आशका और भी थी।

'उद्धव-शतक' और 'ग्रन्थि' मे घटनाएँ भी है, कथा भी ढूंढी जा सकती है और प्रबन्ध-गुण भी, परन्तु जो घटनाएँ भौतिक रूप मे ग्रहण की गई है, उनका प्रयोग न प्रतीक-रूप मे किया गया है, न अमूर्त घटनाओं के उद्दीपन के रूप में। वे अत्यन्त विरल हैं और बडे सीधे-सादे ढग से प्रस्तुत कर दी गई है। उनको अपनाने का उद्देश्य इतना ही है कि कवि उनके अभिकर्ता पात्रो की भावनाओ, या उन पात्रो के माध्यम से अपने विचार या मान्यताओ को व्यक्त करना चाहता है। इस प्रकार घटनाओ का उपयोग केवल पृष्ठभूमि तत्पर करने के लिए किया गया है। भौतिक रूप में इस प्रकार कोई विशेष सघर्ष, घात-प्रतिघात घटित नही होता। मन मे भी विशेष अन्तर्द्वन्द्व या भाव की क्रिया-प्रतिक्रिया का वर्णन नही किया गया है। कवि, पात्र की मनोग्रन्थियो व मनःस्थिति का विश्लेषण करने की अपेक्षा, पात्र की मनोगत बातो का वर्णन ही अधिक करता है। 'चाँदनी रात और अजगर' के कवि ने विचार-सूत्रो को एक सक्षिप्त भाव-कथा मे कलात्मक रूप से जोड़ देने का प्रयास किया है। "इस कविता की कहानी का आन्तरिक तारतम्य घटनाओ की क्रम-सूचना के कारण नही, बल्कि भाव-प्रतिक्रियाओं के सहज-सम्बन्धो के कारण है। इसमे इतिवृत्त नही, लेखक के भावो, प्रतिक्रियाओं और विचारों के मनके पिरोये हुए हैं, जो उसके गत और वर्तमान जीवन के यथार्थ-अनुभवो और भविष्य की आकाक्षाओ के प्रतिबिम्ब है।[1]" इस प्रकार इस कृति मे भी विचारो का क्रम-विन्यास ही प्रधान है। भौतिक घटनाएँ मानसिक प्रतिक्रिया की प्रेरक-मात्र है। आद्यन्त भौतिक घटनाओ की कड़ियाँ मिलाकर उनके आधार पर सुविन्यस्त

---

१. चाँदनी रात और अजगर— उपेन्द्रनाथ अश्क (अश्क की कविता—शिवदानसिंह चौहान), पृ० ११

वस्तु-योजना इस काव्य में नहीं की गई। घटनाएँ विचारों की प्रेरक, पोषक, अथवा स्मृत रूप में अंकित हैं, आख्यान का विधान इस काव्य में कवि ने नही किया। विचारो के उपस्थापन में भी कोई सुनिश्चित क्रम अथवा विधान नही। अन्तिम अंश के अतिरिक्त, जहाँ आख्यान-तत्त्व अपेक्षाकृत स्पष्ट और प्रबल हो गया है शेष काव्य मे उखड़ी और बेतरतीब-सी विचार-शृंखला प्राप्त है।

यो तो नाट्य तत्त्व का सर्वथा अभाव इन रचनाओ में नही कहा जा सकता। आरम्भ विकास, चरमस्थिति, निगति और फल सभी कुछ इनकी भौतिक कथा मे इंगित किया जा सकता है, किन्तु यह कथा प्रमुख नही, अत: संघर्ष मे तीव्र घात-प्रतिघात, घनत्व (tensity) अप्रतिहत गति (tempo) और नाटकीय स्थितियाँ (dramatic-situations) विशेष नही आती। इसका कारण है भौतिक घटनाओ का कवि की दृष्टि मे महत्त्वहीन होना, और उन घटनाओ के अभिकर्त्ता पात्रो के भाव और विचारो की अभिव्यक्ति को महत्त्व देना। ऐसी स्थिति मे अन्तर्मन मे द्वन्द्व की योजना की जा सकती थी, परन्तु 'उद्धव-शतक' मे तो इस प्रकार का विधान सम्भव ही नहीं था; क्योकि भ्रमरगीत-प्रसग में एक सिद्धान्त का दूसरे सिद्धान्त से, एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से विरोध है, अपने मन मे दो विरोधी प्रवृत्तियो का नही। इस विरोध का रूप विचारात्मक तथा सैद्धान्तिक होने के नाते इसका सक्रिय या घटनात्मक चित्रण तो सम्भव था ही नही। इसका अकन केवल उसी मुखर रूप मे सम्भव था जिसमे उसे प्रस्तुत किया गया है। एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के विचारों पर विजय, उसके लिए प्रस्तुत किए गये तर्क-वितर्क तथा वाचिक सघर्ष, जितने सस्वर रूप मे उपस्थित किया गया है, उससे अधिक यदि सघर्ष मे घनत्व लाने के लिए किया जाता तो नाटकीयता की अपेक्षा अस्वाभाविक वाचालता या उपदेशात्मकता निस्सन्देह उत्पन्न हो जाती। इस काव्य मे इस प्रकार भौतिक या मानसिक घटनाओ की सक्रियता की अपेक्षा विचारो की वाचिक सक्रियता मिलती है।

'ग्रन्थि' मे भी अधिक भौतिक घटनाओ का अभाव है। सयोगवश नौका डूबने पर किसी रमणी से भेट, उसी प्रकार उससे सहसा प्रथम दृष्टि में प्रेम, बिना किसी तर्कसम्मत कारण के—कदाचित् सयोगवश, उसका किसी अन्य व्यक्ति से विवाह, और परिणामस्वरूप प्रेम-वंचित नायक की अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति—यही इस काव्य का विषय है। निश्चय ही खण्डकाव्य है, क्योकि नायक के जीवन का खण्ड-विशेष वर्णित है, परन्तु घटनाओ मे परस्पर तर्कसम्मत कार्य-कारण सम्बन्ध नही है। प्रत्येक घटना अपने से पूर्व होने वाली घटना की सम्भाव्यता या आवश्यकता के नियमानुसार अनुवर्तिनी नही। काव्य की चरम घटना, प्रेयसी के विवाह का कोई तर्कसम्मत कारण नही। नायक की ओर से प्रेम-प्राप्ति का जो भावुक प्रयत्न है, उससे शतांश भी नायिका-प्राप्ति की दिशा मे नही दिखाई पडता। इस दिशा मे नायक की ओर से कोई उपक्रम नहीं, अत: फल-प्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है सघर्ष नही होता। इस विषय को लेकर नायक के मन में भी वेदना बहुत अधिक होती है, द्वन्द्व उसकी अपेक्षा बहुत कम। संघर्ष-योजना के लिए 'तुलसीदास' का कवि जिस प्रकार गहरे से गहरे उतरता जाता है, उतनी आन्तरिक सघर्ष की योजना 'ग्रन्थि' के कवि ने नहीं की। प्रेम-प्राप्ति के लिए हृदय की विह्वलता, सफलता के उपरान्त भावोच्छ्वास, और वियुक्त होने पर मर्मव्यथा का चित्रण इस काव्य मे जितना हुआ है,

उतना मानसिक विप्लव या अन्तर्द्वन्द्व का नहीं। इस प्रकार की निष्क्रिय वेदना का कारण है—नायक के द्वारा बाधाओं की विवश स्वीकृति; इस दिशा में विरोध का उसकी ओर से प्रयत्न ही नही हुआ। अत. नाटकीयता, कार्य-व्यापार मे घात-प्रतिघात, घटनाओं का परस्पर तर्कसम्मत गुम्फन, और सुसगठित प्रबन्ध-योजना इस काव्य मे नही मिलती। कुछ दूर तक मिलन-गीत के रूप मे चलने के उपरान्त इसकी अन्त मे परिणति विरह-गीत मे हो गई है।

'बगाल का काल' वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इस वर्ग की विशिष्ट रचना है। समय की प्रगति के साथ मानव अधिकाधिक बुद्धिजीवी होता जा रहा है। अधिकाश भौतिक घटनाओ के मूल मे भाव या विचार-सत्यो की वह खोज करता है, अथवा उनके कारण और परिणामो का बौद्धिक विश्लेषण। अत: कविता और गद्य के धर्म भी बहुत कुछ मिल-जुल गए है। गद्य के माध्यम से गद्य-गीत, और पद्य मे काव्य-निबन्धों की रचना करना आज के कलाकार की उपर्युक्त प्रवृत्ति का ही परिणाम है।

जैसा नाम से ही स्पष्ट है इस कृति का विषय है एक ऐसी सामयिक घटना जिसका सम्बन्ध परोक्षत· राजनैतिक और प्रत्यक्ष रूप से समाज के इतिहास से है। बगप्रदेश मे पडने वाले भयकर दुर्भिक्ष को काव्य-विषय बनाया गया है। इस प्रकार व्यक्ति के नही समाज के जीवन का खण्ड-विशेष काव्य-विषय है। परन्तु घटना को तथ्य रूप मे स्वीकार न कर कवि ने उसे प्रेरक और उद्दीपक बनाकर विचारोत्तेजना के लिए सामग्री प्रस्तुत की है। यदि कहे कि कवि ने उस प्रकार घटनाओ के अमूर्त रूप को विषय बनाया है जिस प्रकार कवि 'निराला' ने 'तुलसीदास' मे, तो अनुचित होगा। 'तुलसीदास' मे अकित घटनाओ का रगस्थल अन्तर्मन है, भौतिक घटनाएं प्रतीक या उद्दीपन मात्र है, परन्तु आन्तरिक रगमच पर अभिनीत होने वाली अमूर्त घटनाएँ ही कवि का प्रेष्य है। 'बगाल का काल' मे कवि का दृष्टिकोण ही भिन्न है। घटनाएँ यहाँ निमित्त है, उनके कारणो का विश्लेषण, और आततायी शासक के प्रति विद्रोहात्मक क्रान्ति के लिए उत्तेजित करना कवि का लक्ष्य है। इस प्रकार कवि का प्रेष्य घटना न होकर विचार है। अपने विचार की गवाही में कवि ने भिन्न देश-काल से उदाहरण प्रस्तुत किये है, और भारतवासियो की कायर, शान्त, सर्वंसहा नीति को ललकारा है। काव्य मे घटना-ऐक्य या विचार-ऐक्य का निर्वाह तो हुआ है देश और काल-ऐक्य का नही। कवि के विचार ने दूर-दूर तक दिग्भ्रमण कर सामग्री एकत्रित की है। घटना गौण और विचार प्रमुख होने के कारण इस दिशा मे कोई बाधा कवि के सामने नही रही है। रचना बहुत कुछ निबन्धात्मक है। आख्यान-तत्त्व गौण और विचार-सूत्र प्रमुख है। परन्तु इसे काव्य-निबन्ध की अपेक्षा निबन्धात्मक खण्डकाव्य इसलिए कहा जा सकता है कि आख्यान-तत्त्व क्षीण भले ही हो वर्तमान अवश्य है और वह भी सस्मरणात्मक, वर्णनात्मक या विवरणात्मक निबन्ध की भाँति नही कथाश्रित काव्य के ढग पर। इसके अतिरिक्त आकार भी निबन्ध के लिए विशेष बड़ा है। निबन्ध के अन्य तत्त्व—आत्मीयता, एकसूत्रता, तर्क और विचार, जो वास्तव मे गद्य के गुण है, सभी वर्तमान है। परन्तु जीवन के पक्ष-विशेष—दुर्भिक्ष-समस्या और तत्सम्बन्धी विचारो का अकन होने के कारण यह काव्य खण्डकाव्य ही माना जायगा, परन्तु इसे विचार-प्रधान खण्डकाव्य या निबन्धात्मक खण्डकाव्य ही कहा जा सकता है।

घटनाओ का स्वरूप—सर्गविहीन खण्डकाव्यों में भी कुछ काव्य तो इतिवृत्तात्मक शैली

में घटनाओं के वस्तुरूप को अपनाकर लिखे गए। गुप्तजी के 'रंग में भग', 'बक-संहार', 'वन-वैभव', 'सैरन्ध्री', 'युद्ध', 'कर्बला' और 'प्रदक्षिणा', प्रसाद का 'महाराणा का महत्त्व' तथा अश्क का 'बरगद की बेटी' इसी प्रकार कथा के आग्रह की रक्षा कर लिखे गए है। 'पंचवटी', 'हिडिम्बा' और 'प्रेम-पथिक' मे आख्यान-तत्त्व विद्यमान है, मूर्त घटनाओ का आधार स्पष्ट है, परन्तु कथा का विकास इतिवृत्तवर्णन-शैली में न होकर अनेक नाटकीय प्रसगो और चरित्र-चित्रण की विशेषताओ द्वारा होता है। 'हिडिम्बा' की घटनाओ में भी चारित्रिक विशेषताओ का विकास और मानवीय गुणो का आरोप किया गया है। वस्तुवर्णन की प्रकथन-शैली के साथ सवादों की अभिनयात्मक पद्धति में कवि ने पात्रों के शील-निरूपण और भावाभिव्यजना की योजना की है।

'प्रेम-पथिक' मे कवि ने सर्वत्र विशेष रोमानी और भावमय अभिव्यक्ति की है। कही-कही प्रेम-सम्बन्धी कतिपय भावात्मक सत्यो की व्याख्या की है तथा कुछ प्रसगो मे उनका उपदेशक-रूप प्रबुद्ध है। एक स्थल पर खल व सज्जन-हृदयो की तुलना और व्याख्या इसी ढग पर की गई है। 'बरगद की बेटी' के सभी प्रसग साकार है। समस्त घटनाएँ वस्तुरूप है। यह एक प्रेम-कहानी है जिसमें लोककथा की मर्मस्पर्शिता और जीवन्तता दोनों ही गुण है, परन्तु इस कहानी को कवि ने व्यक्तिगत रूप न देकर इसमे सामाजिक समस्या का रग भरा है, अत प्रेम की उभयनिष्ठ योजना न कर वर्ग-वैषम्य के कारण—उच्च वर्ग की छलना और निम्न वर्ग के शोषण की समस्या के रूप मे एकपक्षीय प्रेम का अकन है। नायिका के पक्ष मे भी प्रेम का जो स्वरूप खडा किया गया है, उसमे हार्दिकता की अपेक्षा शारीरिकता और लोलुपता की गध अधिक आती है, फलत: मन मे गहरे उतरने का प्रश्न ही नही उठा।

अन्य काव्यों मे अमूर्त भावाभिव्यक्ति को यथाप्रसग स्थान मिला है, पर इनकी घटनाएँ अशरीरी व सूक्ष्म नही। कार्यव्यापार से सम्बद्ध सभी प्रसग बाह्य दृश्यरूप जगत् मे घटित होते है। प्रबन्ध-शृखला की सभी कडियाँ साकार है, स्थूल है। जो भी विरोध, सघर्ष या क्रियाव्यापार चित्रित है वे आन्तरिक नहीं। घटनाएँ आभ्यन्तरिक नही है, उनका रगस्थल भौतिक जगत् है। केवल इन घटनाओ के अभिकर्ता व भोक्ता पात्रो की मन स्थिति कही-कहीं व्यक्त की गई है।

इन कृतियो से भिन्न 'ग्रन्थि' मे घटनाएँ बहुत कम घटती है, और जो घटती है उनका भौतिक रूप, दूसरे शब्दो मे काव्य का अत्यन्त सरल और महत्त्वहीन कथानक, गीतिपूर्ण हृदयोद्रेको मे खो सा जाता है। विशेषकर काव्य के उत्तरार्द्ध मे निराश प्रेमी के हृदय की टीस और उफान में—प्रेम, मानव-हृदय, सौन्दर्य, भाग्य, सभी को धिक्कारा गया है। इस प्रकार आभ्यन्तरिकता का प्रवेश प्रबन्ध की वस्तुनिष्ठता मे हो गया है। 'उद्धवशतक' की भौतिक घटनाएँ अस्पष्ट और धुंधली तो नही, परन्तु महत्त्वहीन हैं। उद्धव के सन्देश लेकर आने, गोपियो से मिलकर तर्क-वितर्क करने, और अन्त मे पराजय स्वीकार कर इस पराजय में भी प्रसन्न मन से लौटने में जो एक भव्यतर आन्तरिक उद्देश्य है वह उद्धव के आने-जाने और गोपियों से मिलने की घटना से बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह उद्देश्य है—उनके ज्ञानी मन पर भक्ति की विजय, और काव्य की यह चरम घटना बाह्य जगत् में नही अन्तर्मन मे ही घटित होती है। इसके पूर्व भी दो सैद्धांतिक मान्यताओं का पारस्परिक सघर्ष दो विरोधी चिन्ताधाराओ का सघर्ष है, और विचार या मान्यता

का आवास अन्तर्मन में होता है बहिर्जगत् में नहीं।

'बंगाल का काल' में स्पष्ट रूप से विचार-ही-विचार है। खण्डकाव्य भी उसे इसलिए स्वीकार किया गया है कि एक क्षीण-सा कथा-सूत्र उस काव्य में वर्तमान है। भौतिक जीवन मे जिस भयकर घटना का साक्षात्कार कवि-हृदय करता है, उसी की उसके मस्तिष्क पर होने वाली प्रतिक्रिया इस काव्य मे नितान्त आत्मीय दृष्टि से वर्णित है, जो कुछ भौतिक घटनाएँ इस काव्य मे प्रस्तुत की गई हैं, केवल उद्दीपन-रूप मे।

'तुलसीदास' इस वर्ग की वह एकमात्र रचना है जिसकी घटनाओं का धरातल पूर्ण रूप से व्यक्ति का अन्तर्मन है। इस काव्य मे इतिवृत्त शैली मे लिखे जाने वाले कथात्मक खण्डकाव्यों की चिरप्रचलित परम्परा से सर्वथा भिन्न, मनोविज्ञान के स्तर पर मानव-मन की कुछ अस्पष्ट, कुछ खुली मुंदी, धुंधली, क्रिया-प्रतिक्रिया के उन्मीलन का प्रयत्न है। जिन भौतिक घटनाओं को यत्र-तत्र अपनाया गया है उनमें से कुछ तो प्रबन्धत्व की रक्षा के लिए प्रयुक्त हुई है—जैसे रत्नावली के भाई-सहित नैहर जाने का प्रसग, कुछ भौतिक घटनाओ का महत्त्व उनके प्रतीकार्थ मे ही है—जैसे तुलसीदास के चित्रकूट-भ्रमण के प्रसग मे प्रकृति का निम्नलिखित वर्णन —

हनती आँखों की ज्वाला चल,
पाषाण खड रहता जल-जल,
ऋतु सभी प्रबलतर बदल-बदल कर आते,
वर्षा में पंक-प्रवाहित सरि,
है शीर्ण-काय-कारण हिम अरि,
केवल दु.ख देकर उदरंभरि जन जाते।[1]

इन पक्तियो का शाब्दिक अर्थ प्रकृति का दयनीय वर्णन, परन्तु वास्तविक उद्देश्य भारत की दीन दशा की व्यंजना करना है। कुछ सामाजिक विषमताओ का वर्णन कवि की भावनाओ को उद्दीप्त करने के लिए प्रेरक-रूप मे भी किया गया है। जाति और वर्ण-भेद से उत्पन्न विषमताओं का वर्णन इसी कोटि के अन्तर्गत आएगा। भारतीय समाज की दयनीय दशा का अभिज्ञान ही तुलसीदास की चेतना और उद्बोधन के सकल्प का प्रेरक-हेतु सिद्ध हुआ। परन्तु 'निराला' की समर्थ कला और उद्दाम प्रतिभा का वास्तविक परिचय उन स्थलो पर ही मिलता है, जहाँ उन्होंने तुलसीदास के अन्तर्मन का विश्लेषण, उसमे होने वाली भीषण क्रिया-प्रतिक्रिया और संघर्ष को शब्दबद्ध किया है। वे मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म, तीव्र से तीव्र और क्षिप्र से क्षिप्र गति-विधि को अचूक रूप से पकड़ लेते है, और इन अस्पष्ट मन.स्थितियों को उनकी समग्रता में अपनी समृद्ध कला का परिधान पहना, शब्दो मे बाँधकर उपस्थित कर देते है। कोमल और विराट्, मृदुल व सशक्त, सभी का वर्णन करने मे उनकी कला समर्थ है, परन्तु उनके ऊर्जस्वित व्यक्तित्व के अनुकूल अधिक सफलता उन्हे विराट्, भव्य, पौरुषवान और ओजमय वर्णन मे ही मिली है। तुलसीदास के ऊर्ध्वसंचारी मन का एक चित्र देखिये :

---

१. तुलसीदास—निराला, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ २०

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्ध-द्वार का छाया-तम तरने को—
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार—
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार,
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को।[1]

केवल जीवन्त और भव्य स्थलों पर ही नही, कोमल, मृदुल भावनाओ का अकन करने मे भी कवि ने भावानुकूल अभिव्यजना-सामर्थ्य का परिचय दिया है। भारत के उद्धार और उद्‌बोधन के लिए कटिबद्ध कवि का ऊर्जस्वित मन सहसा ही प्रिया के सौन्दर्य पर मुग्ध हो मोहांधकार मे अक्षम होकर रह जाता है। इस भावात्मक तथ्य की निम्नांकित मूर्त-विधान मे कितनी सफल व्यजना है—

उस ऊँचे नभ का, गुजन पर,
मंजुल जीवन का मन-मधुकर,
खुलती उस दृग-छवि में बँधकर, सौरभ को
बैठा ही था सुख से क्षण-भर,
मुंद गए पलों के दल मृदुतर,
रह गया उसी उर के भीतर, अक्षम हो।[2]

ऊपर दिये गए उदाहरणो में घटित होने वाली घटनाएँ काव्य के मनस्थ कथानक की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ है। किसी भी कथात्मक प्रबन्ध मे होने वाली युद्ध या क्रान्ति की घटना से, किसी सम्पूर्ण देश के सास्कृतिक उत्थान के लिए मन मे किया गया सकल्प किसी प्रकार भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। इस सकल्प के मार्ग मे उपस्थित होने वाली बाधाओ और तद्‌जन्य सघर्ष का महत्त्व किसी भौतिक बाधा-बन्धन से कम नही, परन्तु इन अमूर्त घटनाओ की अभिव्यक्ति बहुत कठिन है, और 'निराला' ने इस उत्तरदायित्व का सफल निर्वाह करके प्रबन्ध-रचना के क्षेत्र मे एक नवीन, अभूतपूर्व, रचना-पद्धति का शिलान्यास किया है। इस नीव के पत्थर पर यदि वर्तमान या आगामी पीढी के कलाकार भवन-निर्माण कर सके तो निश्चय ही हिन्दी-साहित्य के लिए बहुत शुभ होगा। 'चाँदनी रात और अजगर' का वस्तुविन्यास जिस नए ढग पर किया गया है उसके लिए काव्य-विषय उत्तरदायी है। जैसा पहले भी सकेत किया जा चुका है इस काव्य में घटनाएँ नही घटतीं, विचार-सूत्रों को भावकथा का रूप प्रदान किया गया है। घटनाओ का स्वरूप इस कृति मे आभ्यन्तरिक नही, वस्तुतः घटनाएँ इसमें घटती ही नही—न भीतर न बाहर। कवि वर्तमान की समस्याओ, विगत-अनुभवो, और भविष्य की स्वप्निल आकांक्षाओं और आदर्श के निर्माण मे विचारलीन है। काव्य के उत्तरार्द्ध मे केवल कवि की आपबीती के रूप में—पिता की मृत्यु और उत्तरदायी कारणों का वर्णन है, इसके अतिरिक्त किसी उल्लेख-

---

१. तुलसीदास—निराला, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ २९
२. वही पृष्ठ ३०

नीय मूर्त घटना का समावेश इस काव्य में नही हुआ। कवि के अन्तर्मन या विचारों मे भी संघर्ष घटित नहीं होता, केवल एक के उपरान्त दूसरे विचार का क्रम या तारतम्य बना रहा है। अतः इसमें अमूर्त के नाम पर भी घटनाएँ नही विचार हैं। रागतत्त्व की अपेक्षा बुद्धितत्त्व अधिक प्रबुद्ध है।

वर्णनात्मकता

जैसा सर्गबद्ध काव्यो का विवेचन करते हुए पहले भी कहा जा चुका है इन काव्यों मे महाकाव्यात्मक खण्डकाव्यों तथा महाकाव्यों आदि की भाँति लम्बे-लम्बे वर्णन नही किये गए। अत· उन्ही सब बातो की पुनरावृत्ति इस प्रसग मे व्यर्थ होगी। अपने-अपने विषय के अनुकूल प्रत्येक घटनाप्रधान खण्डकाव्य मे प्रकृति व अन्य प्रसगो के यथावसर कुछ दूर·तक वर्णन मिलते है। केवल आभ्यन्तरिक पद्धति को अपनाकर चलने वाले काव्यो की वर्णन-प्रणाली कुछ भिन्न प्रकार की है। जिन रचनाओ मे भौतिक घटनाओ की प्रधानता है, उनमे कवि की दृष्टि वस्तु-केन्द्रित होती है, और जिस काव्य का विषय अन्तर्मन होता है, उसमे कवि की दृष्टि आत्म-केन्द्रित। अत· बाह्य जगत् के तत्त्वो का वर्णन करने मे जिस इतिवृत्त कथन की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं, वह प्रवृत्ति आत्मपरक वर्णनो मे कुछ बदल जाया करती है। पहली का कवि पहले बाहर देखता है और उस निरीक्षण का उसके मन पर जो प्रभाव पडता है उसे अकित करता है। अन्तर्वृत्ति-निरूपण जिस दृष्टि मे प्रधान होता है वह बाहर देखती अवश्य है, परन्तु यह दृष्टि मन के रग में कुछ इस प्रकार रगी होती है कि दूरबीन के माध्यम से देखने वाले की भाँति उसे हर वस्तु अपनी मनोभावनाओ मे रगी दिखाई पडती है, और इसी कारण वह कभी-कभी, पारिभाषिक शब्दावली मे कहे तो अपनी भावनाओ का आरोप दृश्यमान जगत् पर कर देता है और फिर उसी रूप मे उसका वर्णन करता है। यही भेद घटनाप्रधान खण्डकाव्यो में, और भाव तथा विचारप्रधान अथवा भावात्मक तथा बौद्धिक खण्डकाव्यो की वर्णन-पद्धति मे है। प्रकृति-वर्णन के दो तुलनात्मक उद्धरण हमारे इस कथन को और स्पष्ट करने में सहायक होगे। 'पंचवटी' का यह सबसे पहला प्राकृतिक चित्र देखिये—

चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बर तल मे।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से,
मानों झीम रहे हैं तरु भी
मन्द पवन के झोकों से॥[1]

उक्त पंक्तियों मे कवि की भूमिका केवल एक तटस्थ निरीक्षक की सी है, किसी पात्र के

१. पंचवटी—मैथिलीशरण गुप्त, तेतीसवा सस्करण, पृष्ठ ५

माध्यम से भी मानवीय भावनाओ और प्राकृतिक तत्त्वो के बीच कोई हार्दिक सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया। इसकी तुलना मे 'ग्रन्थि' मे कवि पन्त का यह करुणार्द्र प्रकृति-वर्णन देखिए—

गर्व सा गिरि उच्च निर्झर स्रोत से
स्वप्न सुख मेरा शिलामय हृदय मे
घोष भीषण कर रहा है वज्र सा
वात सा, भूकम्प सा, उत्पात सा
तारकों के अचल पलकों से विपुल
मौन विस्मय छीन कर मेरा पतन
निर्निमेष विलोकता है विश्व की
भीरुता को चन्द्रमा की ज्योति में।[1]

'पचवटी' और 'ग्रन्थि' के पूर्वोक्त दोनो प्रसगो के दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है। एक मे बाह्यार्थनिरूपिणी दृष्टि से स्फुट वर्णन और दूसरे मे आत्मनिष्ठ दृष्टि से सश्लिष्ट वर्णन किया गया है। वर्णनात्मकता दोनो मे है परन्तु भिन्न प्रकार की। यही भिन्नता इन काव्यो में प्रकृति के अतिरिक्त अन्य वर्णनो मे भी प्राप्त होती है। 'बगाल का काल' मे तो दुर्भिक्ष का वर्णन केवल विचारोत्तेजना के निमित्त, कारण के रूप मे किया गया है। कवि उस मर्मस्पर्शी प्रसग का वर्णन इसलिए नही करता कि वह स्थिति का शब्दो द्वारा साक्षात्कार करा हमारी करुणा को द्रवित करना या वस्तुस्थिति का परिचय कराना चाहता हो। वह हमारे सामने वह चित्र इसलिए उपस्थित करता है कि हम उसके कारणो को समझकर दूर करने का प्रयास करे। इसी प्रकार 'तुलसीदास', और 'चाँदनी रात और अजगर' मे कतिपय प्राकृतिक और सामाजिक प्रसगो का वर्णन विचारोत्तेजना के हेतु किया गया है। उन प्रसगो मे स्वतन्त्र रूप से कवि की मनोवृत्ति रमी नही, अतः इनका वर्णन-विस्तार करने की आवश्यकता भी उसे प्रतीत नही हुई।

गति-प्रवाह

कथा और घटना-सम्बन्धी विशेषताओं के विवेचन के उपरान्त इस प्रसग में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि मनोवैज्ञानिक कथा, अमूर्त घटनाओं के महत्त्व, वर्णनों मे विश्लेषणात्मक पद्धति, तथा सामान्यतः समाख्यानात्मक वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के स्थान पर आभ्यन्तरिक या आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण से इन कृतियो की प्रबन्ध-योजना मे गति और प्रवाह की दिशा मे कोई बाधा उपस्थित नही हुई है। प्रबन्ध की सफलता, जितनी उसकी कथा, चरित्र-चित्रण, अभिव्यंजना, वर्णन-भगिमा आदि पर निर्भर है, उतनी ही काव्य की गति और समुचित काव्य-रूप पर। इस दृष्टि से कथा-प्रधान खण्डकाव्यों मे तो विशेष कठिनाई उत्पन्न ही नही हुई है। छोटे से आकार में स्वतः पूर्ण कथा कहने से रुकने के अवसर बहुत कम आए है। इसके अतिरिक्त कवि का ध्यान घटनाओ पर इतना केन्द्रित है कि वह एक प्रसग से दूसरे प्रसग पर पाठक की जिज्ञासा को साथ लिये चलता जाता है। सीमित आकार के कारण कही विलम कर व्यर्थ वर्णन-विस्तार

१. ग्रन्थि—सुमित्रानन्दन पन्त, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ४८

से कथा को रोक रखने के स्थल भी नही आए है। अधिकाश काव्यो में उनके विस्तार के अनुकूल घटनाए भी पर्याप्त है—अतः घटना-विरलता के कारण जो गति-अवरोध उपस्थित हो सकता था वह भी नही है, बल्कि कही-कही घटनाए व प्रसग अनेक होने के कारण काव्य मे विशेष गति है। 'कर्बला', 'प्रदक्षिणा' आदि काव्यों मे घटना-बहुलता के कारण शैली विवरणात्मक होने पर भी कथा-प्रवाह मे क्षिप्रता है व अन्य शैलीगत गुणों के अतिरिक्त धारावाहिक वर्णनों के द्वारा प्रभविष्णुता की रक्षा की गई है। आख्यान-वर्णन का प्रमुख आकर्षण उसकी गत्वरता है जिसमे बहकर इतिवृत्त की रुक्षता भी सरसता मे प्रवाहित हो गई है। 'वन-वैभव', 'बक-सहार', 'सैरन्ध्री', 'हिडिम्बा', 'पचवटी' आदि रचनाओ मे कथानक इकहरा और घटनाओ की भीड-भाड न होने पर भी कथा-प्रवाह मे कहीं स्थिरता या मथरता नही आती। 'पचवटी' और 'हिडिम्बा' जैसी रचनाओ मे, एक ही घटनास्थल पर दो पात्रो मे बहुत समय तक सवाद या स्वगत-भाषण होता रहता है परन्तु सवादो की सजीवता तथा प्रसंगो की विविधता से कथानक-वैचित्र्य बराबर बना रहता है और पाठक का मन एक क्षण को भी नही ऊबता।

मूर्त घटनाओ मे वस्तुरूप सक्रियता के कारण काव्य मे प्रवाह और गति प्रायः बनी रही है, विशेषकर ऐसे काव्यो मे जहाँ घटनाएँ पर्याप्त और विस्तार सीमित हो, बीच मे विराम या स्थिरता बहुत कम आ पाती है और पाठक एक घटना से दूसरी की ओर निरन्तर बढता रहता है। जहाँ काव्य-विषय अमूर्त होता है वहाँ मूर्त आधार के अभाव मे हृदय को रमाने की सामग्री कम होती है। जो अमूर्त है, सूक्ष्म है, वह बुद्धिगम्य हो सकता है अनुभूतिगम्य नही। इसीलिए अमूर्त विषय को लेकर, या मनोवैज्ञानिक धरातल पर काव्य-रचना करने वाले कवियो को इस विषय मे बहुत सावधानी बरतनी पडती है। यदि चिन्तन या भावव्यजना बहुत दूर तक एक ही विषय को लेकर की जाती है तो काव्य की गति मे उबा देने वाले स्थलो की सृष्टि, तथा गति-अवरोध की आशका बराबर बनी रहती है। इसीलिए विचाराभिव्यक्ति को इन काव्यो मे अनेक रूपो मे मूर्त आधार, प्रबन्धात्मकता की रक्षा के लिए प्रदान किया जाता है। कही प्रबन्धात्मकता के निर्वाह के लिए क्षीण-सा कथा-सूत्र अपना लिया जाता है तथा बीच-बीच मे भी प्रसगवश कुछ स्थूल वर्णन किये जाते है किन्तु कथा का यह प्रयोग गौण होता है। ऐसा रत्नाकर ने अपने 'उद्धवशतक' मे किया है। कही अमूर्त विषय का नियोजन ही कथा-रूप मे किया जाता है। इस कार्य मे कही-कही भौतिक प्रसगो की सहायता से अमूर्त प्रसग परस्पर बाँध दिये जाते है, और कहीं कवि सूक्ष्म की अभिव्यक्ति के लिए स्थूल मूर्त-विधान का आश्रय लेता है, जिससे वर्णनो मे केवल चित्रात्मकता ही नही आती, बल्कि शैली मे दोहरे चित्रो और व्यजना से श्री और सौदर्य की वृद्धि होती है। 'तुलसीदास' की पद्धति इसी प्रकार की है। 'तुलसीदास' के अन्तर्मन की घटनाओ को कहानी का रूप दे दिया गया है। जहाँ इन प्रसगो मे भौतिक घटनाओं के जोड आवश्यक हैं वहाँ वे भी लगाये गए है। अनेक स्थलो पर आन्तरिक व्यजना के लिए वस्तुरूप बिम्बविधान से ओज, अबाध गति और प्रवाह उत्पन्न हो गया है, उदाहरण के लिए ससुराल मे तुलसीदास की रत्नावली द्वारा भर्त्सना से पूर्व दोनो की मन.स्थिति निम्नाकित पक्तियो में किस सफलता से व्यजित की गई है। मूर्त उपादानो के सहारे अकित इस चित्र मे अपूर्व गत्यात्मकता है—

अस्तु रे विवश मारुत प्रेरित,
पर्वत समीप आकर ज्यो स्थित
घन नीलालका दामिनी जित ललना वह,
उन्मुक्त गुच्छ चक्रांक-पुच्छ,
लख, नर्तित कवि-शिखि-मन समुच्च
वह जीवन की समझा न तुच्छ छलना वह।[1]

प्रसग और भाव के अनुकूल, समग्र काव्य मे कही अदम्य प्रवाह, और कही मन्थर लास्य की सी थिरकन है। तुलसीदास के अन्तर्द्वन्द्व, भारतीय जीवन की सास्कृतिक स्थिति, शासक वर्ग के अत्याचार आदि का वर्णन अत्यन्त स्फूर्त और निर्बाध गति से किया गया है। पारिवारिक प्रसगो मे यही अद्‌भुत प्रवाह सरल चटुल गति मे परिवर्तित हो गया है।

'बगाल का काल' मे कथा का कोई सुनिश्चित बन्ध नही। विचारो को भी कथात्मक रूप मे प्रस्तुत नही किया गया, परन्तु कवि ने एक समस्या पर अनेक पहलुओ से विचार किया है। वह उसके कारणो का विश्लेषण करता है, समस्या की स्थिति से व्यथित होता है, और निदान प्रस्तुत करता है। इस निदान की गवाही मे वह विश्व के अन्य देशो मे क्रान्ति की समानान्तर घटनाओं का वर्णन भी करता है। इस प्रकार विचार की दिशा बहुमुखी होने के कारण एकपक्षीय विचार का अवकाश बहुत देर तक नही रहता। स्थूल भौतिक घटनाओ को प्रस्तुत करते हुए देश और काल सम्बन्धी जो परिसीमा कवि के सामने रहती है, वह भी विचार-प्रधान काव्य मे नही होती। बुद्धि की गति इन सब बन्धनो से परे असीम देश-काल तक हो सकती है। कवि को अनन्त सीमा तक दिग्भ्रमण की स्वतन्त्रता होती है। ऐसा ही कुछ 'बगाल के काल' मे हुआ है। समस्या एक, परन्तु पहलू और विचार अनेक होने के कारण शीघ्र ही एक प्रसग से दूसरे पर स्थानान्तरण हो जाता है और प्रवाह अबाधित रहता है।

प्रबन्ध के सहज प्रवाह की दृष्टि से 'ग्रन्थि' के कवि को विशेष सफलता नही मिली। कथा-सूत्र तो बहुत क्षीण है ही, जो कुछ भौतिक घटनाएँ घटित भी होती है उन्हे भी भावाभिव्यक्ति के सहारे व्यजित किया गया है, अथवा अत्यन्त साधारण रूप मे चलता कर दिया है। नाव-दुर्घटना की आकस्मिकता एक क्षण के लिए भी न जिज्ञासा उत्पन्न करती है और न चौंका पाती है। शेष घटनाएँ नायक के भावोन्माद मे ही खो गई है। इस विषय मे भाव-वैविध्य भी नही है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है सारा काव्य एक लम्बा प्रगीत-सा है, जिसके पूर्वार्द्ध मे मिलन का उल्लास और उत्तरार्द्ध मे विरह का उच्छ्वास व्याप्त है। घटनाओ मे नाटकीय आकस्मिकता तो है ही नही, सक्रियता भी नही है, अत कथा मे निर्बाध गति और समुचित धारा-प्रवाह विकास नही मिलता। कथा हर स्थल पर रुकी सी और भाव थके-से जान पडते है। विविधता और भाव-स्फूर्ति के अभाव मे कथा में प्रवाह नही है और प्रबन्ध के लिए इससे बडी कमी दूसरी नही हो सकती। 'चाँदनी रात और अजगर' मे—अमूर्त और मूर्त के ताने-बाने से निर्मित कथानक, नवीन पद्धति से विहित वस्तु-विन्यास—जिसमे कुछ दूर तक कवि का विचार-क्रम और फिर स्मृति-

१. तुलसीदास—निराला, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ ५२

रूप में विगत कारुणिक घटना का वर्णन है, अत. पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में सुनिश्चित क्रम-बन्धन नहीं, परन्तु काव्य में प्रवहमानता और गति है। कवि विचार में आगे ही आगे बढता जाता है, न कहीं रुककर सोचता है और न पीछे मुडकर देखता है। विचारों में ओज अतः प्राणवत्ता और वैविध्य है, इसलिए गत्यवरोध का अवकाश ही नहीं आया।

शिल्प

शैली-सम्बन्धी बाह्य विशेषताओं में से सर्ग-विभाजन तो इन काव्यों में हुआ ही नहीं है। कुछ विद्वानों ने 'ग्रन्थि' का विभाजन चार अध्यायों में माना है। कवि ने चार भिन्न स्थलों पर चार शीर्षक दिये अवश्य हैं परन्तु उनके आधार पर उन्हें अध्याय नहीं कहा जा सकता। पहले दो शीर्षकों—'एक बार' और 'एक प्रातः' में क्रमशः दोनों प्रेमियों के परस्पर आकस्मिक मिलन और नायिका के हृदय में प्रेम के अकुरित होने का वर्णन है। शेष दो शीर्षकों—'अब इधर' और 'प्रेमवचित' में नायक के प्रेम-विभोर हृदय, प्रेमिका से वियुक्ति और प्रेम-वचित हृदय का वर्णन है। वास्तव में विरह-वर्णन पहले ही शीर्षक के अन्तर्गत आरम्भ हो गया है और दूसरे में उसी का क्रमिक निर्वाह है, न घटनास्थल बदला है और न प्रसग, अतः इन दोनों को पृथक् अध्याय मानना उचित प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार दूसरे शीर्षक में जिस प्रसंग का वर्णन है उसका आरम्भ पहले में ही कर दिया गया है। एक प्रसग से दूसरे को पृथक् करने में उन्हें अध्यायों या सर्गों में बाँटने का उद्देश्य कवि का प्रतीत नहीं होता। गुप्तजी ने 'वन-वैभव' का विभाजन पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में किया है, वस्तुत. इस प्रकार के विभाजन की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि कथा में अविच्छिन्न धारा-प्रवाह विकास है।

रचना का नामकरण इन रचनाओं में प्राय तीन प्रचलित आधारों पर ही किया गया है—प्रमुख पात्र, घटनास्थल, व प्रमुख घटना। पहले में 'सैरन्ध्री', 'हिडिम्बा', 'उद्धव-शतक', 'प्रेम-पथिक', 'तुलसीदास', 'बरगद की बेटी' दूसरे में, 'पचवटी', 'कर्बला' और तीसरे में, 'बक-सहार', 'रग में भग', 'महाराणा का महत्त्व', 'वन-वैभव' व 'बगाल का काल' आते हैं। 'प्रदक्षिणा' के कवि ने जैसा काव्य के आरम्भ में स्पष्ट किया है, नामकरण कथा की सक्षिप्तता के कारण अपने दृष्टिकोण के अनुकूल किया है। 'प्रदक्षिणा' में वे राम-कथा की फेरी-सी लगा जाते हैं, यही इस नामकरण के पीछे तर्क है। 'ग्रन्थि' का नामकरण यदि ध्यान से देखें तो प्रमुख घटना के आधार पर ही है। काव्य का प्रतिपाद्य प्रेम-वचित नायक के मन की वेदना अर्थात् विरहजन्य मनोग्रन्थि का वर्णन है। इसी आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिक पद्धति पर इस काव्य का नामकरण हुआ है। 'चाँदनी रात और अजगर' काव्य का नाम सकेतात्मक है, वह कवि के उद्देश्य का व्यजक है। परन्तु इस नाम से एक बार ही काव्य-विषय या काव्योद्देश्य का आभास नहीं होता। नामकरण की यह विधि सर्वथा नवीन ही कही जायगी।

मगलाचरण का प्रयोग गुप्तजी ने अपनी कुछ कृतियों में किया है, पिछली रचनाओं में उनका यह आग्रह कम हो गया है। 'पचवटी' में उन्होंने भी मंगलाचरण का विधान नहीं किया। 'बक-सहार', 'वन-वैभव', 'रंग में भग' आदि में मगलाचरण की योजना है। प्रसाद, पत, बच्चन और अज्ञेय ने इस रूढि के प्रति नितान्त उपेक्षाभाव दिखाया है।

वर्णन-शैली—महाकाव्य की ही भाँति खण्डकाव्य का परम्परागत रूप कथात्मक, और

रचना-शैली समाख्यानात्मक या वर्णनात्मक होती थी। अधिकांश कथाश्रित काव्य इसी परोक्ष समाख्यान शैली मे आधुनिक काल से पूर्व लिखे गये; परन्तु आधुनिक काल मे शैली की दृष्टि से निर्बन्ध काव्य की भाँति प्रबन्ध मे भी अनेक नवीन दिशाओ मे विकास और प्रगति हुई। यह परिवर्तन दो रूपों मे स्पष्ट देखा जा सकता है—(१) परोक्ष समाख्यान शैली के साथ प्रत्यक्ष नाटकीय शैली का सवादों के रूप मे प्रयोग, और वस्तुप्रधान कथानकों मे पात्रों की भावप्रवण आत्माभिव्यक्ति के स्थलो पर गीति-शैली का प्रयोग इस सिद्धि की एक दिशा थी (२) दूसरी ओर विचार के लिए वर्णन के स्थान पर कवियो ने विश्लेषण का आश्रय लिया। इस प्रकार बौद्धिक या विचारप्रधान काव्यो की शैली वर्णनात्मक, अभिनयात्मक या प्रगीतात्मक होने के स्थान पर मनोविश्लेषणात्मक अधिक होने लगी। इसी शैली मे 'निराला' के 'तुलसीदास' और 'बच्चन' के 'बगाल का काल' के अधिकाश की रचना हुई। 'उद्धवशतक' मे भी कहीं-कहीं तर्क-पद्धति का सहारा लिया गया है। 'निराला' ने नायक का मनोविश्लेषण और 'बच्चन' ने आत्मविश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'चादनी रात और अजगर' मे भी कवि का अपना विचार-क्रम बहुत दूर तक इसी शैली मे व्यक्त हुआ है। प्रगीतात्मक और विश्लेषणात्मक शैलियो मे परस्पर अन्तर शिल्प का नही मूल दृष्टिकोण का अधिक है। एक की सृजन-प्रक्रिया अधिक अनुभूतिपरक अत: भावमय और दूसरी की बुद्धिपरक अत. विचारमय है। विषय दोनो का ही अमूर्त और सूक्ष्म होता है, केवल प्रगीत की अभिव्यजना मे भावनाओ के सहज उच्छलन की, और बौद्धिक काव्य मे विश्लेषणात्मक विचार की प्रधानता होती है।

कुछ इनी-गिनी रचनाओ को छोडकर, शेष सभी कृतियो मे नाटकीय शैली का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। प्रगीत-शैली के प्रयोग के अधिक अवसर इन काव्यो मे इनके सीमित आकार के कारण नहीं प्राप्त हो सके। एक पात्र की कुछ दूर तक भावमय आत्माभिव्यक्ति का अवकाश आकार की परिसीमाओ के कारण नही मिला। अभिप्राय यह नही कि अन्तर्वृत्ति-निरूपण इनमे हुआ ही नही। कही अन्य पात्र के द्वारा, कही आत्मसलाप, और कही स्वगत-भाषण का प्रयोग कर, पात्रो की आन्तरिक विशेषताओ का निरूपण कवि ने किया तो है, पर स्वतन्त्र प्रगीतो मे नही। परन्तु जितनी प्रचुरता से वर्णनात्मक शैली की नीरसता, अभिनयात्मक शैली की सजीवता मे रूपान्तरित की गई है, उतनी प्रगीत की द्रवणशीलता एव सरसता मे नही।

कुछ कृतियाँ निपट समाख्यान शैली मे भी लिखी गई। उनमे खण्डकाव्य की परम्पराभुक्त इतिवृत्त वर्णन-पद्धति रक्षित है। गुप्तजी की 'सैरन्ध्री', 'वन-वैभव', 'युद्ध' आदि रचनाएँ इसी ढग की है। कुछ अन्य कृतियो मे प्रगीत के तत्त्व तो नही मिलते परन्तु नाट्यशैली के प्रयोग से वर्णन की एकरसता दूर होकर सजीवता और नाटकीय कुतूहल उत्पन्न हो गया है। 'पचवटी' और 'महाराणा का महत्त्व' आदि रचनाओ में इस काव्य-शैली का इतना प्रकर्ष हुआ है कि काव्य का विकास नाटकीय दृश्य-शृखला मे होता प्रतीत होता है। 'पचवटी' मे इस नाट्य गुण का चरम उत्कर्ष हुआ है। अन्यथा भी सवादो का प्रयोग गुप्तजी की प्रबन्ध-शैली की सहज विशेषता है। 'हिडिम्बा', 'कर्बला', 'बक-सहार' मे स्थान-स्थान पर सवादो का प्रयोग किया गया है। 'प्रदक्षिणा' जैसे छोटे-से काव्य मे घटनाएँ अनेक और सीमित आकार के कारण सक्षिप्त वर्णन-शैली का अनुवर्त्तन स्वाभाविक था, पर वहाँ भी गुप्तजी ने अनेक प्रसंग कथोपकथनों के द्वारा

आकर्षक बनाए है। कवि प्रसाद ने 'प्रेम-पथिक' की सम्पूर्ण कथा का विकास सवादो मे किया है। परन्तु इस शैली का जितना सौष्ठव 'महाराणा का महत्त्व' और उससे भी अधिक वैभव 'पचवटी' मे उपलब्ध होता है उतना अन्य रचनाओ मे नही। 'पचवटी' मे अनेक दृश्य परस्पर प्रबन्ध-रूप मे बाँध दिये गए है। कवि जहाँ अपनी ओर से भी वर्णन करता है वहाँ भी नाटकीय आकस्मिकता और दृश्यात्मकता बनी रहती है। विचारमग्न लक्ष्मण के सामने अपूर्व सुन्दरी के रूप मे शूर्पणखा का आगमन इसी प्रकार सहसा होता है। लक्ष्मण और निशा-सुन्दरी शूर्पणखा के लम्बे सम्वाद के बीच मे ही सीता रगमच पर आ जाती हैं। सीता के इस प्रवेश मे अपूर्व सौन्दर्य तथा नाटकीयता है। प्रसग अपने-आप मे नाटकीय दृश्य जान पड़ता है—

उसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृति नटी का रंग,
किरण-कंटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अग।
कुछ-कुछ अरुण सुनहली कुछ-कुछ प्राची की अब भूषा थी,
पचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं क्या ऊषा थी?
अहा! अम्बरस्था ऊषा भी इतनी शुचि सस्फूर्ति न थी,
अवनी की ऊषा सजीव थी अम्बर की सी मूर्ति न थी।[1]

कथानक का विकास इसी प्रकार के दृश्यो और नाटकीय प्रसगो मे होता है, और वह पाठको को प्राकृतिक रगमच पर अभिनीत नाटक सा जान पडता है। इस प्रकार के दृश्यो के अतिरिक्त चरित्र-चित्रण भी स्वगत-भाषण या कथोपकथन के द्वारा किया गया है कवि के शब्दो मे नही। इसी प्रकार 'महाराणा का महत्त्व' का आरम्भ ही अत्यन्त नाटकीय शैली मे सवाद से हुआ है। केवल सवादो के रूप मे ही नही, गुप्तजी की शैली मे यह नाटकीयता विद्यमान है। एकाकी लक्ष्मण का आत्मचिन्तन भी वे प्रश्नोत्तर के रूप मे प्रस्तुत करते है। वातावरण का निर्माण करके अपने पात्रो का प्रवेश और परिचय भी वे नाटकीय ढग से देते है। कवि एक प्रश्न करके पाठक के मन मे भी कौन? और क्या? सम्बन्धी जिज्ञासा उद्बुद्ध कर देता है, और फिर उत्तर के रूप मे इस जिज्ञासा की परितृप्ति होती है। 'पचवटी' के आरम्भ मे प्राकृतिक पृष्ठभूमि तत्पर करने के उपरान्त लक्ष्मण, और उसके बाद राम-सीता के परिचय की शैली देखिये—

जाग रहा यह कौन धनुर्धर
जब कि भुवन भर सोता है
भोगी कुसुमायुध योगी सा
बना दृष्टिगत होता है?[2]

और इस प्रश्न के उत्तर मे हम प्रहरी लक्ष्मण का परिचय पाते है। इसी प्रकार सीता और राम से परिचित कराने से पूर्व एक प्रश्न उपस्थित है

बना हुआ है प्रहरी जिसका

---

१. पचवटी—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ३७
२. ,, ,, पृष्ठ ६

उस कुटीर में क्या धन है ?[1]

जहाँ पात्र सजीव-साकार है, सामने प्रस्तुत होकर सवाद् तर्क-वितर्क, वार्तालाप और परस्पर विचार-विनिमय करते है, वहाँ तो सवादो के रूप मे नाटकीयता का समावेश करने के अवसर सहज प्राप्य होते है, परन्तु जहाँ घटनाएँ मूर्त नही, जहाँ सजीव प्राणियो मे नही अशरीरी सूक्ष्म भावनाओ मे सघर्ष, द्वन्द्व या ऊहापोह चित्रित है, वे काव्य भी इस नाटकीय गुण से शून्य नही है। 'तुलसीदास' मे इसी प्रकार का एक प्रसग लीजिये—

बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति ?
गति-हीन जीव को कहाँ सुरति ?
रति-रहित कहाँ सुख ? केवल क्षति—केवल क्षति,
यह क्रम-विनाश, इससे चल कर
आता सत्वर मन निम्न उतर,
छूटता अन्त में चेतन स्तर, जाती मति।[2]

रत्नावली के प्रेम मे तुलसीदास का मोहान्ध मन अपने लिए अनेक प्रश्नो की उद्भावना कर अनुकूल उत्तर की कल्पना कर लेता है। इस प्रकार की अनिश्चित मन स्थिति की व्यजना उपर्युक्त प्रश्नोत्तर शैली से अधिक सजीव और नाटकीय हो गई है। 'उद्धवशतक' की रचना तो आद्यन्त ही सवाद-शैली मे हुई है। इन सवादो मे तर्क की चोट, उपालम्भ की कसक, बुद्धि की सजीवता और भावजन्य मृदुलता सभी कुछ विद्यमान है। 'ग्रन्थि', 'बगाल का काल', और 'चादनी रात और अजगर' की शैली मे नाटकीयता नही मिलती। 'ग्रन्थि मे कुछ अत्यन्त निर्जीव और असफल सवादो की योजना कवि पन्त ने की है—आरम्भ मे प्रेमी-प्रेमिका के प्रथम मिलन के अवसर पर, तथा दूसरे प्रसग मे सखियो की वार्ता के प्रसग मे। पहले मे ये सवाद अत्यन्त निर्जीव आत्मसलाप से जान पडते है। सजीवता और प्रत्युत्पन्नमति का गुण रच-मात्र भी नही। इसी प्रकार जहाँ अनेक सखिया एकत्र होकर आत्मानुभव सुनाती है वहाँ भी सवाद की अपेक्षा वार्ता-क्रम सा अधिक बन गया है। एक पात्र कुछ दूर तक आत्मसलाप करने के उपरान्त मौन हो जाता है, और दूसरा अपनी वार्ता आरम्भ कर देता है, और फिर तीसरा, इसी प्रकार यह क्रम बंध जाता है। एक ही पात्र दो बार बहुत कम बोलता है, अत इस शैली को सवाद केवल इसीलिए भले ही कह दिया जाए कि वक्ता पात्र है, और एक से अधिक, इसके अतिरिक्त नाटकीयता इस काव्य मे बिल्कुल नही।

'बगाल का काल' मे अन्तर्द्वन्द्व, तर्क-वितर्क उतना नही है जितना मान्यता का प्रतिपादन। कवि के मन मे अपनी विचारधारा के विषय मे किसी प्रकार की शका नही। वह स्पष्ट सीधे ढग से अपनी बात कहता चलता है, विचार व्यक्त करना जाता है। उसमे उत्तेजना है, ललकार और सजीवता है, परन्तु अन्तर्द्वन्द्व के अभाव मे सवाद-योजना के अवसर उसे प्राप्त नही होते। 'चाँदनी रात और अजगर' मे भी विचारो की ऊहापोह है, सघर्ष नही।

१. पचवटी—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ६
२. तुलसीदास—निराला, पृष्ठ ३७

प्रगीत-शैली का प्रयोग सच्चे अर्थो मे इस सम्पूर्ण काव्य-वर्ग में केवल 'ग्रन्थि' मे हुआ है। अन्तर्वृत्ति-निरूपण, विचार-विश्लेषण तो अन्य काव्यो मे भी हुआ है, परन्तु पात्र की भाव-प्रवण आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रगीत का माध्यम कवियो ने नही अपनाया। 'प्रेम-पथिक' मे भी कथा के बीच मे अनेक स्थलो पर विशेष भावुक और रोमानी अभिव्यक्ति है, परन्तु भौतिक घटनाओ का वस्तुगत आधार सर्वत्र वर्तमान होने के कारण यह अभिव्यक्ति नितान्त आत्मनिष्ठ नही हो सकी है, और प्रगीत के लिए सर्वथा विषयीप्रधान दृष्टिकोण अनिवार्य है। 'ग्रन्थि' मे इस शैली का परिपाक हुआ है, परन्तु जिस आशका से अन्य कवि कदाचित् सीमित आकार के कारण इस शैली को बचा गए थे, वही दोष इस काव्य मे उत्पन्न हो गया है। प्रबन्ध के स्थान पर यह रचना लम्बा प्रगीत-सा हो गई है, जिसमे एकरसता और कही-कही नीरसता है। भाषा और शैली की अभिव्यजना-शक्ति का यद्यपि इस काव्य मे विकसित और अत्यन्त निखरा रूप मिलता है, परन्तु सफल प्रबन्ध कृति के रूप मे यह प्रगीत तत्त्व इसके लिए बाधक सिद्ध हुआ है। उक्त समस्त विशेषताओ से युक्त एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमे कवि ने प्रेम-वचित हृदय की व्याख्या की है—

ओस जल-से सजल मेरे अश्रु है
पलक दल में डूब के बिखरे पडे।
पवन पीले पात मे मेरा विरह
है खिलाता दलित मुरझे फूल सा।
सुमन दल मे फूट, पागल सी, अखिल
प्रणय की स्मृति हंस रही है, मुकुल में
वास है अज्ञात भावी कर रही
आज मेरी द्रौपदी सी परवशा।[1]

शैली की उक्त विशेषताओ के अतिरिक्त चित्रमयता, लाक्षणिकता एव व्यजनात्मकता, नवीन अलकरण, पाश्चात्य अलकारो का प्रयोग आदि विशेषताएँ गुप्तजी की आरम्भिक रचनाओ की अपेक्षा पिछली कृतियो मे, और उनकी अपेक्षा भी छायावादी काव्य-शैली के उन्नायक कवि पन्त और प्रसाद के काव्य मे अधिक मिलती है। गुप्तजी के 'रग मे भग', 'वक-संहार', 'वन-वैभव', 'सैरन्ध्री', 'युद्ध' आदि काव्यो मे अभिधा-प्रधान, प्रसादमय, समाख्यान शैली का प्रयोग किया गया है। 'कर्बला' और 'प्रदक्षिणा' भी इसी शैली मे लिखे गए। इन काव्यो की अभिव्यजना स्पष्ट, स्फीत, प्रसादगुण-युक्त तो है, परन्तु विशेष श्री, सज्जा से युक्त चमत्कारपूर्ण व अलकृत नही। इसकी शैली को अनावृत भी नही कहा जा सकता। अलकारो का प्रयोग भी किया गया है परन्तु उनमे विशेष नवीनता या कल्पना-विलास नही।

नाटच-शैली का प्रयोग किसी भी प्रबन्ध-रचना मे दो रूपो मे हो सकता है—वर्णन के स्थान पर सजीव और चुस्त सवाद-योजना से, तथा वर्णनो की चित्रात्मकता से, अर्थात् वर्णन इस रूप में किये जायें कि उनमे रेखाओ या वर्णो, अथवा दोनो की इतनी निश्चितता (exactness) तथा

१. ग्रन्थि—सुभित्रानन्दन पन्त, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ ४७

समग्रता हो कि वे वर्ण्य-विषय को चारो ओर से घेरकर इस प्रकार अकित कर दे कि सम्पूर्ण वर्णन एक शब्दमय चित्र-सा प्रतीत हो और शुक्लजी के शब्दो मे प्रमाता केवल अर्थ-ग्रहण न कर, बिम्ब-ग्रहण मे समर्थ हो सके। ये चित्र प्रकृति, राजनीति और समाज, किसी भी क्षेत्र के किसी विशद प्रसग से सम्बद्ध विराट् और भव्य चित्र भी हो सकते है, तथा मानव-रूप, सौन्दर्य, मुद्रा या क्रिया के लघु, कोमल, सीमित फलक पर अकित चित्र भी हो सकते है। सीमा-विस्तार के अतिरिक्त एक भेद इन चित्रो मे गति और स्थिरता का भी होता है। विषय के अनुकूल कुछ चित्र स्थिर (static) तथा अन्य गत्यात्मक (dynamic) हो सकते है। वर्णनो मे यह चित्र-मयता गुप्तजी की सभी कृतियो मे तो नही, 'हिडिम्बा' के कुछ प्रसगो मे, और 'पचवटी' मे प्रभूत मात्रा मे मिलती है। 'पचवटी' मे भव्य और विराट् चित्र तो नही परन्तु प्राकृतिक, पारिवारिक और सबसे अधिक मानवीय रूप के चित्र अकित किये गए है। 'पचवटी' के अधिकाश चित्र स्थिर चित्र है। मायाविनी शूर्पणखा का रूप-वर्णन नेत्रो के समक्ष एक चित्र-सा अकित कर देता है—

कटि के नीचे चिकुर जाल मे, उलझ रहा था बायाँ हाथ,
खेल रहा हो ज्यो लहरो मे लोल कमल भौरों के साथ।
दायाँ हाथ लिए था सुरभित चित्र विचित्र सुमन माला,
टाँगा धनुष कि कल्पलता पर मनसिज ने झूला डाला।[1]

इसी प्रकार रूप-परिवर्तन की भीषणता भी चित्रात्मक है। प्रसाद ने 'प्रेम-पथिक' और 'महाराणा का महत्त्व' मे भी इसी चित्रात्मक शैली का अवलम्बन अनेक प्रसगो मे लिया है। 'बरगद की बेटी' मे प्रत्यक्ष चित्र तो कवि ने अकित नही किए, किन्तु कही-कही सुन्दर चित्र-व्यजना है—

तरुणाई उसके अंगों की
सावन की सरि तूफानी।[2]

दूसरी पक्ति मे दी गई उपमा से नायिका के यौवन की मासलता साकार हो उठी है।

वस्तुतः चित्रात्मकता कवि की सवेदनशीलता और कल्पना की उर्वरता पर सर्वाधिक निर्भर है। वह जिस विषय का वर्णन करता है, वह अनुभूत हो या कल्पित, दोनो के लिए उर्वरा कल्पना की अपेक्षा है। इसी समृद्ध कल्पना के सहारे पूर्वानुभव की स्थिति मे वह इस अनुभव को पुनः सद्य बनाता है, और कल्पित विषय का अन्त साक्षात्कार कर अपने मन पर उसके छाया-चित्र अकित कर लेता है, यही छायाचित्र पुनः मूर्तिविधायिनी कल्पना के सहारे शब्दो मे बंधी रेखाओ और रगो के सवाक्, स्वर्ण चित्र बन जाते है। यह समस्त प्रक्रिया बहुत कुछ फोटोग्राफी की—मूल विषय (object) के छाया-रूप (negative) और उसके स्पष्ट (positive) चित्र बनाने के समान है। परन्तु उसके समान यान्त्रिक और स्थूल नही, भावमय और सूक्ष्म है। इसी कारण 'निराला' ने काव्य-विषय अमूर्त होने पर भी, उद्दाम प्रतिभा और नवोन्मेषिनी कल्पना के सहारे सम्पूर्ण काव्य मे चित्रो का क्रम बाँध दिया है। कथा, चित्रो के द्वारा ही आगे

---

१. पचवटी—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ २१
२. बरगद की बेटी—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृष्ठ ५३

बढती है। अधिकाश छन्द अपने आप मे एक छोटा-सा चित्र है। अन्तर्मन की भावनाओं का विकास चित्रों के सहारे अकित किया है। ऐसा करने के लिए कही कवि ने सागरूपक और मानवीकरण, तथा अन्यत्र सूक्ष्म के लिए स्थूल मूर्तविधान का प्रयोग किया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो रूप-रग के अन्तरपट खुलते जा रहे हो। सारा उपक्रम पत्थर मे मूर्ति अथवा चित्र उत्कीर्ण करने की कला के समान है जिसकी वाहक भाषा भी महाप्राण पत्थर की भाषा के समान समर्थ है। श्वसुर गृह मे तुलसीदास के अनाहूत पहुँचने पर रत्नावली के इस रूप-चित्र मे (तुलसीदास के मिलन के प्रसग मे) मन स्थिति की भी व्यजना है—

बिखरी छूटीं शफरी अलकें,
निष्पात नयन नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता,
निःसबल केवल ध्यान-मग्न,
जागी योगिनी अरूप लग्न,
वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न निरुपमिता।[1]

कही-कही उनकी इस कला का चरम उत्कर्ष, चित्रो के अकन के स्थान पर चित्रव्यजना के रूप मे हुआ है। उपर्युक्त प्रसग से कुछ ही छन्द पहले भाभी के व्यग्य से मर्माहत रत्नावली की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने सम्पूर्ण चीर-हरण के दृश्य की रूपक के माध्यम से व्यजना की है—

बोली मन में होकर अक्षम
रक्खो, मर्यादा पुरुषोत्तम!
लाज का आज भूषण, अबलम, नारी का,
खींचता छोर, यह कौन और
पैठा उनमें जो अधम चोर?
खुलता अब अचल, नाथ, पौर साड़ी का।[2]

ऐसे अनेक उदाहरण 'तुलसीदास' मे आद्यन्त मिल जायँगे। चित्रो का यह वैभव सामान्यत: अन्य काव्यो मे, और विशेषकर अमूर्त विषय को लेकर लिखे जाने वाले काव्यो में अत्यन्त दुर्लभ है। 'तुलसीदास' के अधिकाश चित्र 'पचवटी' के समान स्थिर नही, गत्यात्मक चित्र है। 'ग्रन्थि' मे सर्वत्र नही, परन्तु रूप और मुद्राओ के कुछ विरल चित्र मिल जाते है। निम्नाकित प्रसग की आरम्भिक पक्तियो मे मुद्रा और फिर रूप का चित्र आकने का प्रयत्न है—

एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानों प्रणय संबध था।

१. तुलसीदास—निराला, चतुर्थ सस्करण, पृष्ठ ५३
२. तुलसीदास, पृ० ५०

लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले गढ़ो से ·· सीप से।[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे कवि ने चित्र की रेखाकृति ही अकित नही की उसमे वर्ण भी भरे है। 'उद्धवशतक' मे भी कुछ इने-गिने प्रसग इस प्रकार के मिल जाते है परन्तु 'बगाल का काल' और 'चाँदनी रात और अजगर' मे इस विशेषता का अभाव है।

चित्रात्मकता के अतिरिक्त लक्षणा-व्यजनाजन्य वक्रता का प्रयोग भी 'प्रेम-पथिक' और उससे भी अधिक 'तुलसीदास' मे मिलता है। छायावादी काव्य की अन्य विशेषताएँ—प्रतीकात्मकता, अमूर्त व्यजना आदि भी इन्ही कृतियो और 'ग्रन्थि' मे प्राप्त होती है। गुप्तजी का अधिकाश काव्य अभिधाश्रित है, दूसरी ओर 'निराला' ने लक्षणा और व्यजना का प्रयोग अत्यधिक किया है। 'निराला' की भाषा की अतिशय सांकेतिकता का कारण—विचार और भाव की सूक्ष्मता नष्ट न करने का लोभ ही है। इस आग्रहवश कवि को प्राय व्यजना के साथ बलात्कार करना पडा है।

अन्य कवियों ने लक्षणा पर आश्रित चित्र-भाषा का ही प्रयोग किया है। 'ग्रन्थि' मे साध्यवसना गौणी लक्षणा का एक उदाहरण है—

हाय ! मेरे सामने ही प्रणय का ग्रन्थि बन्धन हो गया, वह नव कमल,
मधुप सा मेरा हृदय लेकर, किसी अन्य मानस का विभूषण हो गया।[2]

परन्तु 'निराला' ने व्यजना का प्रयोग अधिक किया है। व्यजना, लक्षणा पर आश्रित रहती है। अनुभूति जगाने के लिए प्रत्यक्षता अनिवार्य नही तो सहायक अवश्य है। 'निराला' ने प्राय. लक्षणा को छोडकर सीधे व्यजना का प्रयोग किया है—इसी कारण उनकी अभिव्यजना मे प्रत्यक्षता कम है। कही-कही नाद गुण पर अत्यधिक ध्यान देने के कारण भी इनके प्रयोग प्रचलित प्रयोगो से दूर पड जाते है। कही लक्षणा पर लक्षणा का आरोप कर दिया गया है और कही व्यजना बहुत गूढ हो गई है। उनकी इस प्रवृत्ति का तत्काल प्रभाव उनकी भाषा पर पडा है, जिसकी विशेषताओ का अध्ययन अपने-आप मे एक स्वतन्त्र विषय हो सकता है। प्रस्तुत प्रसग मे हमारा अभिप्राय इतना ही है कि शब्द की इन शक्तियो के प्रयोग से जो वक्रता, चमत्कार या सौन्दर्य तथा कही-कही अर्थ-दुरूहता काव्य मे उत्पन्न हो सकती है, वह सब 'तुलसीदास' मे वर्तमान है।

'अश्क' की दोनो कृतियो मे विशेष चित्रमयता तथा लक्षणा-व्यजना का चमत्कार नही मिलता, परन्तु उनकी शैली मे उर्दू-कविता की-सी सफाई और परिमार्जन वर्तमान है। 'अश्क' की कविता, कथा की ही भाँति पद-रचना की दृष्टि से भी गढी हुई नही, स्वाभाविक और सरल है। 'चाँदनी रात और अजगर' का विषय अपेक्षाकृत गम्भीर और वस्तु-विन्यास विषम है, परन्तु

---

१. ग्रन्थि—सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० १०
२. ग्रन्थि—सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ ३४

शैली वहाँ भी दुर्बोध नही है। कहीं-कही प्रतीकात्मक शब्दावली मे भावाभिव्यंजना का प्रयत्न कवि ने अवश्य किया है। 'बरगद की बेटी' मे धनिक वर्ग के प्रतिनिधि युवक अनवर के प्रेमपाश मे भोली ग्राम्या लहरा के फँस जाने का प्रसंग देखिये—

फड़ फड़ सा करता आया, खग,
भोला उलझ गया तत्क्षण।
दुख का था आरम्भ जिसे वह,
समझा सुखमय नव जीवन।[1]

'चाँदनी रात और अजगर' मे इसी प्रकार निम्न वर्ग की सन्तति की प्रतिभा को अननुकूल वातावरण मे कवि इस प्रकार देखता है—

नया रक्त पा लाल बने, जो
फूल हुए जाते थे पीले।
तज कर सब संकोच खिले है,
गुल सिमटे, सिकुड़े, शर्मीले।[2]

अलंकृति—परम्परागत साम्य और वैषम्यमूलक अलकारो के साथ नवीन चमत्कार-मूलक अलकारो—मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, ध्वन्यार्थव्यजना आदि का भी प्रयोग प्रसाद, पन्त, निराला और कही-कही अश्क ने अपनी काव्य-रचनाओ मे किया है। मूर्त के लिए अमूर्त, और अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत-विधान की पद्धति का अनुसरण भी इन कवियो ने किया है। 'ग्रन्थि' मे इस प्रकार की कुछ पक्तियाँ देखिये—

अरुण आभा में रंगा था वह पतन
रज कणों सी वासनाओं से विपुल।
अचिरता से सहज आभूषित हुई
कीर्ति कितनी है नही छिपती त्वरित,
सांध्य महिमा सी, प्रभा अवसान से।[3]

इसी प्रसग की अनुवर्ती पक्तियो मे यमक का चमत्कारप्रधान प्रयोग देखिये—

तरणि के ही सग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में,[4]

'तुलसीदास' मे विशेषण-विपर्यय का प्रयोग कवि ने इस प्रकार किया है—

कलमषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियो के प्राण प्रथम।[5]

---

१. बरगद की बेटी—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृष्ठ ९२
२. चाँदनी रात और अजगर—उपेन्द्रनाथ अश्क, पृष्ठ ५४
३. ग्रन्थि—पन्त, पृ० ७
४. वही, पृ० ७
५. तुलसीदास, पृ० २९

उपर्युक्त पक्तियो मे चेतना उर्मियो का नही व्यक्ति के प्राणो का विशेषण है। उर्मियाँ चेतन कैसे हो सकती है? विरोधाभास का विरोधजन्य चमत्कार तो अनेक पक्तियो मे विद्यमान है। कुछ अंश देखिये—

रग-रग से रंग रहे जाग स्वप्नोत्पल।[1]

मैं बँधा एक शुचि आलिंगन,
आकृति में निराकार चुम्बन;
युक्त भी मुक्त ज्यों आजीवन लघिमा में।[2]

इनके साथ-साथ रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अनेक चिरपरिचित अलकारो का प्रयोग मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पन्त, 'अश्क' आदि सभी कवियो ने किया है। अलकरण-पद्धति की प्राचीन और नवीन दोनो सारणियो का समागम इन काव्य-रचनाओं मे इस प्रकार हुआ है।

छन्द-योजना—सर्ग-विहीन होने के कारण इन रचनाओ मे छन्द-परिवर्तन का उपक्रम कवियो ने नही किया, अत. विवेच्य विषय इनमे प्रयुक्त छन्दो के प्रकार है, और इस दृष्टि से इन कृतियो मे प्राचीन प्रयोगो के साथ नवीनतम छन्द-निर्माण और छन्द-प्रयोग के उदाहरण विद्यमान है। इन कवियों ने परम्परासिद्ध छन्दाकार प्रयुक्त किये, अन्य भाषा के साहित्य से छन्द ग्रहण किये, एकाधिक प्रचलित छन्दो के योग से नवीन छन्द-निर्माण किया, और प्राचीन छन्दो का नए ढग से प्रयोग किया। परम्परागत छन्दो मे इन्होने मात्रिक छन्दो का ही प्रयोग किया है जिसमे कोई विशेष नवीनता नही। 'रग मे भग' की रचना गीतिका छन्द मे, 'वन-वैभव' की चौपई छन्द मे, और 'सैरन्ध्री' की छप्पय छन्द मे हुई है। 'प्रदक्षिणा' तथा 'पचवटी' मे वीर तथा ताटक छन्द का, तथा 'बरगद की बेटी' मे केवल ताटक का प्रयोग हुआ है। 'कर्बला' की रचना रोला छन्द मे हुई है। रत्नाकर कवि ने 'उद्धव-शतक' की रचना कवित्त छन्द मे की।

नवीन छन्दो मे दो प्रकार के प्रयोग इन कवियो ने स्पष्ट रूप से किये—(१) शास्त्र-विहित छन्दों का उनके यथावत् निर्दिष्ट रूप मे प्रयोग न करके, उनमे यति, अन्त्यानुप्रास, पक्तियो के क्रमादि मे विषय की आवश्यकता के अनुकूल परिवर्तन किये, तथा साहित्य मे उद्-भूत नवीन चेतना की स्वीकृति कर प्रचलित छन्दो का अतुकान्त रूप मे, तथा मुक्त छन्द का उपयोग भी इन कवियो ने अपनी रचनाओ मे किया। यह नवीनता की एक दिशा थी जिसमे विद्यमान को परिवर्तित रूप मे, तथा अविद्यमान को अन्य स्रोतो से ग्रहण किया गया। (२) दूसरी दिशा मे इन कवियों ने दो प्रचलित छन्दो के सुरुचिपूर्ण मिश्रण मे अपने विषयानुकूल छन्द का निर्माण किया। कही-कही अपनी नवोन्मेषिणी प्रतिभा से इन्होने मौलिक छन्द-रचना भी की है। ऐसे छन्दों का आधार मात्रिक गणना की अपेक्षा गति और लय अधिक है। भाव की गति-विधि के अनुकूल छन्द मे भी गुरु-लघु मात्राओ के क्रम-विन्यास से उतार-चढाव उत्पन्न किया गया है। छन्द के यति सम्बन्धी नियमो का पालन करते हुए पक्ति मे गति व विराम की योजना

---

१. तुलसीदास—निराला, पृ० ५१
२. वही, पृ० ३८

न करके, भाव की आवश्यकता के अनुकूल यति और विराम के प्रयोग किये गए। ऐसी स्थिति में प्राय. इन कवियों ने एकाधिक पंक्तियो मे प्रवाहित होने वाले अन्त: प्रवेशी वाक्यो का प्रयोग किया है। कदाचित् इनकी धारणा उचित ही थी कि पक्ति की समाप्ति के साथ अनिवार्य नही कि भाव-धारा समाप्त हो जाय, अथवा उसमे अस्थायी या क्षणिक विराम हो, अत: एक अभिप्राय या भाव-खण्ड के व्यजक वाक्य की इति भी पक्ति के साथ आवश्यक नही।

'बगाल का काल' मे सर्वत्र, और 'चादनी रात और अजगर' मे अशत, अत्यानुप्रास-हीन मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है। इन रचनाओ के अतिरिक्त अन्य कृतियो मे प्रयुक्त नवीन अथवा निर्मित मिश्र छन्दो का आधार हिन्दी के प्रचलित मात्रिक छन्द ही है। केवल अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुकूल उनमे थोडा-सा परिवर्तन कर उन्हे भिन्न ढाँचे मे ढाल लिया गया है अन्यथा उनके मूलभूत नियम तथा पद्धति मात्रिक छन्दो की ही है।

प्रचलित छन्दो का नव्य प्रयोग सबसे अधिक भिन्न तुकान्त रूप मे किया गया। पन्त ने 'ग्रन्थि' मे विप्रलम्भ के लिए विशेष अनुकूल छन्द पीयूषवर्ष का प्रवहमान भिन्न तुकान्त प्रयोग किया। इस छन्द के विषय मे उनकी अपनी मान्यता थी—"पीयूषवर्षण की ध्वनि मे कैसी उदासीनता टपकती है ? मरुभूमि मे बहने वाली निर्जन तटिनी की तरह, जिसके किनारे पत्र-पुष्पो के शृगार से विहीन, जिसकी धारा लहरो के चचल कलरव तथा हास-परिहास से वचित रहती, यह छन्द भी वैधव्यवेश मे, अकेलेपन मे सिसकता, श्रान्त गति से, अपने ही अश्रुजल से धीरे-धीरे बहता है।"[1] अत उक्त धारणा के अनुकूल विरह-विधुर प्रेमी के हृदय की व्यथा कवि ने इसी छन्द मे बाँधी है।

प्रसादजी ने इसी प्रकार प्लवगम छन्द के अतुकान्त रूप मे 'महाराणा का महत्त्व' की रचना की। इस विषय मे उक्त रचना की भूमिका से एक भ्रान्ति का प्रचार हो गया। वहाँ इस काव्य मे प्रयुक्त छन्द को अरिल्ल कहा गया है। वस्तुत अरिल्ल छन्द मे सोलह और प्लवगम मे इक्कीस मात्राएँ होती है और कवि ने सर्वत्र इक्कीस मात्राओ के छन्द का प्रयोग किया है। प्राचीन नियम के अनुसार इस छन्द मे ग्यारह मात्रा पर यति होती है किन्तु प्रसादजी ने यति का प्रयोग प्राय. आठ मात्राओ पर कर इसका अन्त्यमुक्त प्रयोग किया है। इस भूल की ओर अपने शोधप्रबन्ध मे सकेत करते हुए डा० पुत्तूलाल शुक्ल ने कहा—

"सन् १९१४ मे प्रसादजी ने 'भरत' नाम की पहली कविता प्लवगम छन्द मे अतुकान्त रूप से लिखी। जिसे भूल से प्रकाशक ने अरिल्ल छन्द कहा है, जो सोलह मात्राओं का होता है, इक्कीस मात्राओ का नही।"[2]

डा० शुक्ल ने अपने मत के समर्थन मे काव्य से कुछ उदाहरण भी दिये है, जो उनकी इस स्थापना को पुष्ट करते है। एक उदाहरण देना अप्रासगिक न होगा—

घोर अंधेरे में उठती जब लहर हो
तुमुल घात-प्रतिघात-पवन का हो रहा

---

१. पल्लव —पन्त, प्रवेश, पृ० ३६

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० ४००

भीमकाय जल राशि क्षुब्ध हो सामने
कर्णधार-रक्षित दृढ़ हृदय सुनाव को
छोड़, कूदना तिनके का अवलम्ब ले
घोर सिन्धु में, क्या बुधजन का काम है ?[1]

इसी काव्य मे कही-कही कवि ने तिलोकी छन्द का प्रयोग भी किया है, परन्तु अतुकान्त रूप मे ही। प्रसादजी ने अपनी दूसरी रचना 'प्रेम-पथिक' मे ३० मात्रा के अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया है। अन्त मे प्राय. गुरु अक्षर का प्रयोग है परन्तु नियमित रूप से नही, यह छन्द बहुत कुछ ताटक के वजन पर ही बनाया गया है।

एक विशेषता इन सभी रचनाओ की छन्द-रचना मे द्रष्टव्य है। प्रचलित मात्रिक छन्दों के मात्रा-क्रम, या समानान्तर पक्तियों का प्रयोग करने पर भी प्रायः भाव की अन्विति एक या दो पक्तियो मे होने के स्थान पर अनेक पक्तियो मे होती है। इन पक्तियो को यदि यथावत् गद्य में रूपान्तरित किया जाय तो एक वाक्य या आशय की पूर्ति अनेक पक्तियो मे होगी। दूसरे शब्दो मे इनके छन्द, छन्दो की अपेक्षा पद्यबद्ध अनुच्छेद अधिक प्रतीत होते हैं। पीछे दिये गए उदाहरण (महाराणा का महत्त्व से) मे यह प्रवृत्ति सर्वथा स्पष्ट है।

मिश्र छन्द का प्रयोग दो रचनाओं मे किया गया। गुप्तजी के 'बक-सहार' में और कवि 'निराला' के 'तुलसीदास' मे। 'बक-सहार' के छन्द की पहली, दूसरी, चौथी तथा पांचवीं पक्ति हाकलि छन्द की, और दूसरी तथा छठी पक्ति चन्द्रायण छन्द की है। इस प्रकार यह छन्द छः पक्तियों का है। छन्द के प्रयोग मे कोई विशेष चमत्कार अथवा असाधारण कौशल नही। 'तुलसीदास' का छन्द-विधान इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। कवि ने 'बक-संहार' की ही भाति प्रथम दो और चौथी व पांचवी पक्ति एक छन्द की, तथा तीसरी व छठी दूसरे छन्द की मिलाकर इस नवीन छन्द का निर्माण किया है।

डा० पुत्तूलाल शुक्ल ने इस छन्द के निर्माण मे सहायक छन्दो का विवेचन करते हुए कहा—"तीसरे और छठे चरण की २२ मात्राएँ चौपाई मे समप्रवाही षष्ठक जोड़ने से बनी हैं। चौपाई के दो चरण और २२ मात्राओ के चरण के योग से छन्द का आधा भाग बनता है। इस प्रकार के दो खडों से छन्द का निर्माण हुआ है। साथ ही २२ मात्राओं के चरणों का अन्त्यानुप्रास और १६ मात्राओ के बाद पूर्व चरण से अन्तरन्त्यानुप्रास मिलता है। विकर्षाधार का मात्राक्रम १६, १६, २२ (१६ + ६) १६, १६, २२ (१६ + ६) और अन्त्यक्रम क, क, ख (क, ख) ग ग ख (ग, ख)।"[2]

विद्वान लेखक ने जिस मात्राक्रम एव अन्त्यक्रम का निर्देश प्रस्तुत प्रसंग में किया है वह सर्वथा तर्कसम्मत है, किन्तु छन्द के प्रकार के विषय मे उनसे हमारा मतभेद है। चौपाई का लक्षण उनके अपने शब्दों मे इस प्रकार है :—"इसे समप्रवाही मात्रिक छंदों का मेरुदण्ड कह सकते हैं। इसके अत मे ऽ।, जगण और सगण के अश वर्जित है। अंत में दो गुरु श्रुति-मधुर

---

१. 'महाराणा का महत्त्व—जयशकर प्रसाद, पृष्ठ ११

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ ३६०-३६१

होते हैं, परन्तु भगण (ऽ।।) और सगण (।।ऽ) एवं अपवादतः रगण (ऽ।ऽ) भी आ सकते है। इसका प्रवाह समतामूलक चलता है। इसमे सम मात्रिक शब्द के बाद सम मात्रिक शब्द ही आता है। जब चरण में विषम मात्रिक शब्द का प्रयोग होता है, तब तुरन्त ही उसके आगे विषम मात्राओं के शब्द के द्वारा समतामूलक मैत्री स्थापित की जाती है।"[1]

यद्यपि कुछ आगे चलकर लेखक ने यह भी कह दिया है कि "चौपाई के अन्त मे ।।।, ।।ऽ, ऽ।।, ऽ।।ऽ आदि लय-निपातों का भी प्रयोग होता है।"[2] परन्तु यदि 'तुलसीदास' के छन्द का निर्माण चौपाई के आधार पर स्वीकार कर लिया जाय तो लगभग सभी छद अपवादो के अतर्गत आ जायगे। 'तुलसीदास' के अधिकाश छदों मे छोटी पक्ति का अन्त वर्जित लय-निपात से हुआ है। छोटी पक्ति के अन्त मे प्रायः कवि ने लघु अक्षर या अक्षरो का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण देखिये—

बँध भिन्न-भिन्न भावों के बल
क्षुद्र से क्षुद्रतर, हुए विकल,
पूजा में भी प्रतिरोध अनल है जलता

तथा

प्रिय करालम्ब को सत्य यष्टि;
प्रतिमा मे श्रद्धा की समष्टि;
मायायन में प्रिय शयन व्यष्टि भर सोई;[4]

इस प्रकार के उदाहरण काव्य मे अनेक है। इसके अतिरिक्त जो समतामूलक प्रवाह चौपाई के लिए अपेक्षित है, वह भी 'तुलसीदास' की छन्द-रचना मे इने-गिने छदो मे मिलेगा। सम के साथ सम और विषम के साथ तत्काल विषम मात्राओ की शब्द-योजना से समतामूलक मैत्री स्थापित करने का कोई प्रयत्न नहीं। बल्कि भाव के अनुकूल ह्रस्व और दीर्घ स्वर-मैत्री एव व्यजन-मैत्री से नाद-गुण की सृष्टि कर कवि ने छद की गति का नियमन स्वेच्छापूर्वक किया है। पंक्तियों का यह भावानुरूप उत्थान-पतन गति और लय की दृष्टि से पज्झटिका छद के अधिक निकट है। यद्यपि नियमो की कसौटी पर वह विशुद्ध पज्झटिका भी नही ठहरेगा परन्तु उसकी गति चौपाई की सम गति की अपेक्षा पज्झटिका की विषम गति के अधिक अनुकूल है। अतः इस छन्द का निर्माण पज्झटिका के आधार पर ही मानना चाहिये। यह तो हुई इस छन्द की आकार-सम्बन्धी स्थूल विशेषता। इस आकार मे भी गति और यति के स्वेच्छापूर्वक प्रयोग से उन्होंने प्रचलित छन्दो की लय मे भावानुकूल परिवर्तन किया। यति का प्रयोग इस प्रकार किया गया है कि एक पंक्ति से दूसरी पक्ति तक गति प्रवाहित होती है। पक्ति के अन्त मे निश्चित् रूप से विराम उन्होंने नहीं रक्खा। उनके विचार मे यह आवश्यक नही कि भाव या विचार

---

१. आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ २६२-६३
२. वही, पृष्ठ २६५
३. तुलसीदास—निराला, पृष्ठ २३
४. तुलसीदास—निराला, पृष्ठ ४०

पक्ति के साथ टूटे, अतः इस विधान को उन्होंने कृत्रिम माना। एकाधिक पंक्तियो मे प्रवेश करने वाली वाक्य-रचना का प्रयोग हिन्दी मे 'निराला' ने ही छायावाद मे सर्वाधिक किया। इस प्रकार मुक्त विचार-प्रवाह और मुक्त भाव-धारा के अनुकूल इन्होने परम्परागत छन्दों का विकास किया। निम्नाकित पक्तियो मे विशेषण और कर्म दूसरी, तथा कर्त्ता व क्रिया तीसरी पक्ति मे आए है—

अब धौत धरा, खिल गया गगन,
उर उर को मधुर ताप प्रशमन
बहती समीर, चिर आलिंगन ज्यों उन्मन।[1]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप मे छन्द-विधान के क्षेत्र मे, 'निराला' का योगदान छन्द की बन्धन-मुक्ति की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी के छन्द-विधान को परम्परामुक्त किया, परम्परा-विमुख नही। उनकी नवीन छन्द योजना का आधार प्रायः मात्रिक छन्द ही रहे है जिनमे मात्रा, लय, गति, वर्ण-योजना आदि मे मनोनुकूल परिवर्तन या दो छन्दो के मिश्रण अथवा एक छन्द के विकास से उन्होने अनेक अलकृत एव समर्थ छन्दों का निर्माण किया।

खण्डकाव्य (नवीन प्रयोग)

पिछले पृष्ठो मे जिन खण्डकाव्यों का रूप-विवेचन किया गया, उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे काव्य भी इस युग मे लिखे गए जिन्हे काव्य-विषय की दृष्टि से तो खण्डकाव्य ही स्वीकार किया जा सकता था, किन्तु उनका काव्य-रूप अन्य खण्डकाव्यों से, और परस्पर एक-दूसरे से भिन्न है, अतः काव्य-शिल्प की नवीनता के कारण इनका पृथक विवेचन अनिवार्य है। नवीन प्रयोगों में तीन रचनाओं के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते है। मैथिलीशरण गुप्तजी की 'यशोधरा' और 'विष्णुप्रिया' तथा कवि दिनकर का 'कुरुक्षेत्र'। 'यशोधरा' और 'विष्णुप्रिया' मे नवीनता शैलीगत अधिक है और 'कुरुक्षेत्र' का काव्य-विषय तथा प्रबन्ध-योजना नवीन पद्धति पर है। उसके रूप-विधान और शैली मे अपेक्षाकृत उतनी उल्लेखनीय नवीनता नही। एक विशेषता तीनो रचनाओ के विषय मे समान रूप से कही जा सकती है। ये तीनो कृतियां मूलत· खण्डकाव्य है। केवल कवियो ने दृष्टिकोण की नवीनता से प्रेरित होकर जो शैलीगत नवीनता अपना ली है, उसी से इनका काव्य-रूप अन्य खण्डकाव्यो से कुछ भिन्न हो गया है। एक बात और जो इन रचनाओं की शैली-सम्बन्धी नवीनता के लिए उत्तरदायी है—इनका विशेष प्रकार का दृष्टिकोण है जिसमे एक समानता है। इन काव्यो के आदर्श बाह्य न होकर आन्तरिक हैं, जिसमें एकान्त बहिर्मुखी चेतना के स्थान पर अन्तर्मुखी वृत्ति को प्रमुखता दी गई है। व्यक्तित्व के बहिरंग विस्तार की अपेक्षा उसे समेट-सिकोड़ कर मन में केन्द्रित किया गया है। पात्रों को माध्यम बनाकर, और समाज की समस्या को अपनाकर भी कवि सामाजिक व्यवस्था की स्वीकृति या नियोजना नही करता, वह व्यक्ति के मर्म को, मन की तड़प को और सामाजिक समस्या के परिणामस्वरूप व्यक्ति की बौद्धिक क्रिया-प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है। कथानक का आश्रय लेकर भी इन कवियों

---

१. तुलसीदास—निराला, पृष्ठ १

का व्यक्तित्व आत्मकेन्द्रित है, उसमें नैतिक मूल्यो का नही आत्मा के अनुरोधों का आदर है। यह अन्तर्मुखी वृत्ति दो प्रकार की है—'कुरुक्षेत्र' का कवि समाज की विषमताओं, समस्याओ से चोट खाकर चिन्तनशील हो गया है। वह बुद्धि के स्तर पर उन समस्याओ का विश्लेषण और समाधान करता है और अपने मन की क्रिया-प्रतिक्रिया को बौद्धिक स्तर पर पात्रो के माध्यम से व्यक्त करता है। शेष दोनों रचनाओं की प्रक्रिया अपेक्षाकृत भावमय है। जीवन की बाह्य व्यवस्था और घटनाओं से उत्पन्न पात्रो की सुख-दु खमय अनुभूतियो को कवि व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्त करता है। वहाँ न समस्या है, न विश्लेषण, और न समाधान है। कुछ घटनाओ के परिणामस्वरूप व्यक्ति के मन पर पड़े प्रभाव, राग-विराग, हर्ष-शोकमय अनुभूतियाँ है, जो हृदय का बाँध तोड़कर बह जाना चाहती है और कवि ने उन्हे बहने दिया है। एक शब्द मे यदि कहना हो तो कहा जा सकता है कि इन कृतियो की चेतना बाह्यार्थनिरूपिणी न होकर आत्मनिरूपिणी है। इस प्रसग मे एक बात स्पष्ट कर देनी और युक्तिसगत होगी। इन सभी रचनाओ मे विशुद्ध आत्माभिव्यजन नही है। साधारण प्रश्न हो सकता है कि पौराणिक या विख्यात कथा का आश्रय लेकर आत्माभिव्यजन कैसे सम्भव हो सकता है? परन्तु कथा के आवरण मे प्रत्यक्ष आत्माभिव्यक्ति के उदाहरण 'सूरसागर', 'गीतावली' आदि के रूप मे प्रस्तुत है। वहाँ घटना वर्ण्य-विषय नही उद्दीपन है। कवि का उद्देश्य उस घटना से प्रबुद्ध अपने मन की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। आलम्बन की लीलाओ के प्रति अपने रागात्मक सम्बन्ध की अभिव्यक्ति होने के कारण ये पद प्रगीत मुक्तक मे बाह्यसापेक्ष रागात्मक वर्णन के उदाहरण है। 'कुरुक्षेत्र' की चेतना बौद्धिक है, उसमे तो प्रगीत का प्रश्न ही नही उठता। शेष दो कृतियाँ भी शुद्ध स्वानुभूतिपरक प्रगीत के अन्तर्गत नही आती। इन कृतियो की मूल-प्रेरणा भिन्न है, अतः इनके काव्यरूप भी परस्पर भिन्न है। 'यशोधरा' और 'विष्णुप्रिया' के मूलवर्ती उद्देश्य और दृष्टिकोण मे विशेष अन्तर न होने पर भी दोनो की रूप-विधा मे भेद है।

काव्य की मूल प्रेरणा मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है—आत्माभिव्यजन तथा मानव-जगत् का चित्रण। आत्माभिव्यजन मे व्यक्ति तत्त्व का प्राधान्य और रागात्मक तत्त्व का प्राचुर्य होने के कारण प्रगीत मुक्तक इसका माध्यम होता है। मानव-जगत् का चित्रण करने मे वस्तु-तत्त्व की प्रमुखता होती है। कवि की दृष्टि बहिर्मुखी, और कार्य-व्यापार का बाहुल्य होने के कारण प्राय. प्रबन्ध इसका माध्यम होता है। प्रबन्ध मे कवि आत्म के अतिरिक्त अनात्म, अह के अतिरिक्त इदम् की व्याख्या करना चाहता है। इन दोनो प्रमुख भेदो मे भी कवि के दृष्टिकोण और शैली के अनुरूप अनेक उपभेदो की सृष्टि सम्भव है। प्रबन्ध के अनेक रूपों मे से कवि के उद्देश्य की दृष्टि से दो प्रधान है—१ प्रत्यक्ष या प्रस्तुत अकन—नाटक, अथवा प्राचीन शास्त्रीय शब्दावली में दृश्य काव्य के माध्यम से सम्पन्न होता है तथा २. परोक्ष-वर्णन या समाख्यान, प्रबन्ध काव्यों या शास्त्रीय शब्दावली मे श्रव्य काव्य के माध्यम से किया जाता है। इसी प्रकार प्रगीत मुक्तक के भी दो रूप सम्भव है। स्वानुभूतियो का एकान्त चित्रण शुद्ध प्रगीत के अन्तर्गत और वस्तुसापेक्ष रागात्मक वर्णन—मुक्तक के अन्तर्गत आता है। सस्कृत मे मुक्तक के इसी रूप की स्वीकृति है। शुद्ध स्वानुभूतिपरक प्रगीतो की विधा अपेक्षाकृत आधुनिक है। हिन्दी के भक्ति-साहित्य में इष्ट के प्रति साधक का आत्मनिवेदन कही प्रत्यक्ष (मीरा, कबीर आदि के

काव्य मे) और कही आलम्बन के प्रति आत्मा का यह उन्मुखी भाव पात्रों के माध्यम से व्यक्त हुआ है (सूरदास, तुलसीदास आदि कवियो के काव्य मे)। इस काव्य मे आलम्बन की लीलाओ को अपनी भावनाओ के उद्दीपन के रूप मे ग्रहण किया गया है। अतः किसी भी काव्य की विधा का निर्णय उसकी मूल प्रेरणा और कवि के अन्तर्वर्ती दृष्टिकोण को प्रमाण मानकर किया जा सकता है। इसी आधार पर हम इन रचनाओ की काव्य-विधा को समझने और विवेचन करने का प्रयास करेंगे।

यशोधरा

इस काव्य की प्रेरणा की ओर कवि ने 'शुल्क' मे स्वय ही इगित कर दिया है, अतः इस दृष्टि से किसी प्रकार की शका का अवकाश नही—"भगवान् बुद्ध और उनके अमृत तत्त्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल-जननी के दो-चार आँसू ही तुम्हे मिल जायँ तो बहुत समझना। और उनका श्रेय भी 'साकेत' की ऊर्मिला देवी को ही है, जिन्होने कृपापूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर मुझे सकेत किया है।" कुछ आगे चलकर उन्होने एक उद्देश्य की व्यजना और की है—

"अथवा तुम्हारे शब्दो मे मेरी वैष्णव-भावना ने तुलसीदल देकर यह नैवेद्य बुद्धदेव के सम्मुख रखा है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर इस काव्य की मूल प्रेरणा—अमिताभ की आभा में चौधियाए उनके भक्तो द्वारा राहुल-जननी की उपेक्षा की त्रुटि का परिमार्जन करना है। भक्तों के अतिरिक्त कवियो ने भी अमिताभ की आभा से अभिभूत होकर यशोधरा की चरित्र-गरिमा का उद्घाटन करने का प्रयास नही किया। इसी सम्भ्रान्त, गरिमामय महत् चरित्र का पुनस्सृजन कवि का लक्ष्य है। इसी प्रमुख लक्ष्य के साथ एक अन्य गौण लक्ष्य कवि के सामने है, यह गौण उद्देश्य बौद्ध-सिद्धान्तो का खण्डन है। "तथागत के अनुभवों एव मान्यताओं को लेखक ने पुस्तक के आरम्भ मे ही 'सिद्धार्थ और महाभिनिष्क्रमण' शीर्षक उपखण्डो मे रख दिया है। यशोधरा के शेष भाग मे उन्ही की समीक्षा-परीक्षा हुई है। 'यशोधरा' शीर्षक उपखण्ड की अवतारणा तो स्पष्टतः 'महाभिनिष्क्रमण' मे प्रतिपादित विचारो के खण्डन के लिए ही हुई है"।[2]

स्पष्ट है आत्माभिव्यजन कवि का उद्देश्य नही है। यदि कवि के इष्ट बुद्ध होते और वह घटना का ग्रहण अपनी भावनाओं के उद्दीपन-रूप मे करता, तो सूर आदि भक्त कवियों की भाँति आत्माभिव्यंजन सम्भव था, परन्तु ऐसा न होने के कारण यह काव्य प्रगीत-सग्रह की कोटि मे नही आएगा। आत्म से इतर मानव-जगत् का चित्रण अभीष्ट होने के कारण, तथा कथासूत्र की स्थिति के कारण यह रचना प्रबन्ध के अन्तर्गत आएगी। काव्य की मूल प्रेरणा आत्म से भिन्न ऐतिहासिक पात्र की मर्मव्यथा और चरित्र-गरिमा का अकन है, अत यह काव्य प्रबन्ध काव्य है। प्रबन्ध के दो प्रमुख भेदों—महाकाव्य और खण्डकाव्य मे से शैली-भेद से भी इसके महाकाव्य होने का प्रश्न ही नही उठता। महाकाव्य के लिए अपेक्षित महत् आकार, समर्थ और समग्र जीवनव्यापी कथानक आदि सभी प्रमुख विशेषताओ का इसमे अभाव है। प्रमुख

---

१. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, 'शुल्क', पृष्ठ ५

२. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता—डा० उमाकान्त गोयल, पृष्ठ ३७

पात्री यशोधरा के जीवन के केवल विरह-पक्ष का एकागी वर्णन इस रचना में हुआ है। जाति व देशव्यापी होने के स्थान पर यह काव्य व्यक्ति और पक्ष विशिष्ट है। नायिका के जीवन का पक्ष-विशेष काव्य-विषय होने के कारण यह रचना खण्डकाव्य की ही समकक्षी है, परन्तु खण्डकाव्य के परम्परागत अर्थ मे नही। उस दृष्टि से इस रचना मे न इतिवृत्त-वर्णन है न समाख्यान। अन्य पुरुष में कथा-वर्णन की प्राचीन शैली से भी यह काव्य भिन्न है। प्रबन्ध-वर्णन की दो विधाएँ सम्भव है—१ प्रस्तुत को यथावत् प्रस्तुत किया जाय। २ कवि अपनी ओर से घटनाओ का वर्णन करे। नाटच कृतियों मे प्रथम और महाकाव्य तथा खण्डकाव्य आदि समाख्यानात्मक काव्य-रूपों में दूसरी का प्रयोग किया जाता है। परन्तु आधुनिक युग मे नाटच तत्त्व का प्रवेश सामान्यतः सभी काव्य-रूपो मे हो गया है और समाख्यान काव्य इस प्रवृत्ति का अपवाद नही। यह कदापि अनिवार्य नही कि प्रबन्ध मे समाख्यान व परोक्ष वर्णन-शैली का ही प्रयोग हो। स्वगत-भाषण, कथोपकथन आदि का ग्रहण किसी प्रकार प्रबन्ध-विरोधी नही है। प्रबन्ध काव्य मे अग-रूप मे और गीति नाटच आदि विधाओ मे भी प्रथम पुरुष मे कथा-वर्णन और कथोपकथन के रूप में इस शैली का प्रवेश हो गया है। 'यशोधरा' की रचना भी अनेक काव्य-शैलियो के मिश्रण से की गई है। 'शुल्क' मे कवि ने स्वय कहा है—"लो कविता, लो गीत, लो नाटक, तुकान्त, अतुकान्त सभी कुछ···"[1] कवि के शब्दो मे इस 'सभी कुछ' को हमे निश्चित सज्ञा प्रदान करनी है।

जैसा हम पहले कह चुके है, कथा की अन्तर्धारा वर्तमान होने के कारण 'यशोधरा' प्रबध, और जीवन के खण्ड-विशेष का वर्णन होने के कारण खण्डकाव्य है। काव्य की शैली खण्डकाव्य की परम्परागत समाख्यान-शैली से भिन्न है परन्तु 'यशोधरा' का वस्तु-विन्यास स्थूल विवरणात्मक शैली मे नही किया गया। उसमे वस्तु-व्यजना गौण है, एव सूक्ष्म मनोगतियो का आकलन भाव-कथा के रूप में किया गया है। घटनाओ का वर्णन 'यशोधरा' मे कवि की ओर से नही हुआ, कारण—वे केवल सूच्य है। शील-निरूपण और भाव-व्यजना काव्य का उद्देश्य है। 'यशोधरा' इस प्रकार वर्णनात्मक खण्डकाव्य नही, उसमे घटनाओ की नही, चरित्रों की प्रधानता है। अतः समाख्यानात्मक वृत्त-वर्णन के अभाव मे कवि प्रायः प्रबन्ध के दूसरे प्रकार—नाट्य-रूप का अवलम्बन लेता है। 'यशोधरा' का घटना-सूत्र अत्यन्त क्षीण, तथा चरित्रोद्घाटन लक्ष्य होने के कारण ही वृत्त-वर्णन के स्थान पर कवि ने नाट्य-रूप का आश्रय लिया है।

नाट्य-रूप में भी 'यशोधरा' विशिष्ट है। नाटक मे जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापारो का व्याख्यान होता है, परन्तु यशोधरा मे कार्य-व्यापार का प्रयोग नही हुआ। काव्योद्देश्य की दृष्टि से जीवन-घटनाओ मे कवि की अनुरक्ति भी नही, और यशोधरा के जीवन मे वस्तुगत सक्रिय घटनाएँ विशेष उपलब्ध भी नही। अतः कवि ने कथा-विकास, कार्य-व्यापार की प्रस्तुति के द्वारा न कर, कथोपकथन और स्वगतोक्तियो के द्वारा किया है। नाटकीयता काव्य मे यही है कि पात्र स्वय एक के बाद एक उपस्थित होकर, आत्म-सलापो व कथोपकथन के माध्यम से चरित्र-उद्घाटन करते हैं। कथा के सूत्र इन्ही अंशों मे सूच्य और सम्बद्ध है। घटनाएँ कवि ने प्रस्तुत नही की।

१. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, 'शुल्क', पृष्ठ ४

'यशोधरा' की प्रमुख पात्री है विरहिणी यशोधरा और उसके वत्सल एव विरह-भाव को वाणी देना कवि का उद्देश्य, अत· स्वगत मे गीत को अपनाना आवश्यक हो गया है। विरहिणी नायिका के आत्मनिवेदन के लिए स्वगत प्रगीत से अधिक उपयुक्त माध्यम और नही हो सकता था। घटनाओ के अभाव मे कार्य-व्यापार को ग्रहण न करके कवि ने गीतिमय कथोपकथन और स्वगत-भाषण को अपना लिया है। यशोधरा के अन्तर्द्वन्द्व के प्रसगों में भी कवि कथोपकथनमय स्वगत का ही आश्रय लेता है—

मैं अबला ! पर वे तो विश्रुत वीर-बली थे मेरे,
मैं इन्द्रियासक्ति ! पर वे कब थे विषयों के चेरे ?
अयि मेरे अर्द्धांगि-भाव, क्या विषय मात्र थे तेरे ?
हा ! अपने अंचल मे किसने ये अंगार बिखेरे ?
है नारीत्व मुक्ति मे भी तो अहो विरक्ति-विहारी।
आर्यपुत्र वे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी।'

इस प्रकार यशोधरा के मन मे उत्तर-प्रत्युत्तर का क्रम अनेक प्रसगों मे बाँधा गया है। मन मे तीव्र घात-प्रतिघात, अन्तर्द्वन्द्व मे झझावात एव हलचल की अपेक्षा आत्मद्रव, विप्रलम्भ की करुण धारा, अन्त सलिला की भाँति प्रवाहित है, अत: प्रबन्ध का नाट्य रूप होते हुए भी गीति तत्त्व की प्रमुखता है। काव्य के मध्य भाग मे कवि ने यद्यपि कुछ अश स्पष्ट रूप से गद्य-नाटक के रूप मे लिखा है, पद्य मे भी आदि और अन्तिम अश मे सवाद-योजना है, परन्तु यशोधरा की मर्म-व्यथा अधिकाधिक गीतो के माध्यम से ही व्यक्त हुई है। प्रगीतात्मकता समस्त काव्य मे व्याप्त है। इस प्रकार 'यशोधरा' की प्रमुख विधा—प्रबन्ध, प्रबन्ध का खण्ड-रूप, विधि नाटकीय और कार्यव्यापार के अभाव मे शैली प्रगीतात्मक है। एक शब्द में 'यशोधरा' प्रगीतात्मक-नाट्य शैला मे रचित खण्डकाव्य है। इस प्रकार के किसी निश्चित काव्य-रूप का विधान प्राच्य या पाश्चात्य साहित्य मे नही किया गया। इस दृष्टि से यह प्रयोग सर्वथा नवीन, परन्तु प्राचीन शास्त्रीय विधाओ के आधार पर निर्मित होने के कारण शास्त्रसम्मत है।

इस प्रसग मे विभिन्न विद्वानो के द्वारा 'यशोधरा' के काव्य-रूप के लिए प्रयुक्त सज्ञाओ पर एक दृष्टि डाल लेनी कदाचित् अप्रासगिक न होगी। सस्कृत काव्य-शास्त्र मे गद्य-पद्य मिश्र शैली मे रचित काव्य को 'चम्पू' कहा गया है।[२] चम्पू शब्द मे केवल दोनो शैलियो की स्थिति-मात्र का भाव है, किन्तु काव्य-विधा का सकेत इस शब्द से नही मिलता। गद्य-पद्यमयी शैली मे प्रगीत, समाख्यान, नाटक सभी काव्य-पद्धतियो मे रचना हो सकती है, अत इस शब्द से किसी भी कृति की रचना-पद्धति की विशेषताएँ स्पष्ट नही होती। इसके अतिरिक्त यद्यपि सस्कृत मे चम्पू काव्य के रूप-विधान के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का विधि-निषेध नही किया गया, परन्तु उदाहरण-रूप मे जिन काव्यो का उल्लेख किया गया है, उनके आधार पर डा० शकुन्तला दुबे ने

---

१. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ३८

२. गद्य-पद्यमयं काव्य चम्पूरित्यभिधीयते।
साहित्यदर्पण—विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३३६

चम्पू काव्य की रूपगत विशेषताओं की दृष्टि से भी 'यशोधरा' को चम्पू स्वीकार नहीं किया—

"इस मिश्र काव्य रूप की गद्य-पद्यमय शैली इसे संस्कृत के 'चम्पू' काव्य के समकक्ष रखती हो ऐसी बात नहीं। संस्कृत का 'चम्पू' काव्य उसी प्रकार सर्गबद्ध होता है जैसे महाकाव्य। यद्यपि इसमें सर्ग-संख्या चाहे दो-तीन हो अथवा छः-सात इसका कोई प्रतिबन्ध नहीं। 'चम्पू' में प्रबन्ध काव्य की ही भाँति कोई कथा प्रवाहपूर्ण होती है। कवि प्रथम तो मंगलाचरण से काव्यारम्भ करता है और गद्य में कथा का सूत्रपात करता हुआ बीच-बीच में दृष्टान्त रूप से श्लोकों की योजना करता है। स्तुति के रूप में भी ये श्लोक नियोजित होते हैं। त्रिविक्रम भट्ट का नल-चम्पू सात उच्छ्वासों में दमयन्ती की कथा को लेकर रचा गया है। इसी प्रकार सोमदेव सूरि का 'यशस्तिलकम्' तीन आश्वासों में विरचित है। किन्तु स्वानुभूतिपरक अतिगीतात्मक मिश्रकाव्य 'यशोधरा' काव्य-रूप की दृष्टि से बिल्कुल ही नवीनता को लिए हुए है जो गीत के निकट अधिक है और प्रबन्ध से दूर होकर भी कथात्मकता के आग्रह को अपने निकट लिए हुए है। अपने ढंग का यह एक ही काव्य-रूप है।"[1]

उक्त मतानुसार चम्पू काव्य और विवेच्य कृति में वस्तुतः मूलभूत दृष्टिकोण का ही अन्तर है। संस्कृत में समाख्यानात्मक शैली में विरचित प्रबन्ध-रचना को केवल गद्य-पद्य माध्यम के मिश्रित रूप के कारण चम्पू कहा गया परन्तु 'यशोधरा' की रचना प्रगीतात्मक नाट्य शैली में हुई है। चम्पू काव्य में इस प्रकार वस्तुगत (Objective) दृष्टि की अपेक्षा है और 'यशोधरा' का दृष्टिकोण भावगत (Subjective) है। चम्पू काव्य निश्चित रूप से समाख्यान शैली में लिखा गया प्रबन्ध ही हो सकता है, इस मत का यद्यपि कोई शास्त्रीय आधार नहीं, परन्तु लक्षणों का निर्देश प्रायः उपलब्ध लक्ष्य ग्रन्थों के आधार पर ही किया जाता है, और यदि संस्कृत के आचार्यों ने इस काव्य-रूप पर विस्तार और गंभीरता से विचार किया होता, तो उनके निष्कर्षों का आधार भी उपलब्ध चम्पू काव्य होते, अतः सम्भावना यही है कि उनके निर्णय भी उपर्युक्त मत से बहुत भिन्न न होते।

डा० कमलाकान्त पाठक ने इस विषय के समर्थक अन्य विद्वानों से अपना मतैक्य व्यक्त किया है—

"काव्य-शैली की दृष्टि से यह रचना निश्चय ही चम्पू अथवा मिश्र काव्य है। पर इस 'अबला जीवन की कहानी' का अनुबन्ध खण्ड-काव्यात्मक है।...इसका रचना-तंत्र खण्ड-काव्यात्मक है और विधान चम्पूवत। अतएव 'यशोधरा' रचना-शैली की दृष्टि से मिश्रकाव्य है और वर्णन-पद्धति की दृष्टि से खण्डकाव्य। अवश्य ही इसमें संवाद भी है और प्रगीत भी। खण्डकाव्य में जीवनांश-विशेष का अनुसरण किया जाता है,' । मैं समझता हूँ कि इस रचना का काव्य-रूप खण्डकाव्य का है और विधान चम्पू का। यह नव्य काव्य प्रयोग भी है।"[2]

हम इस मत के केवल इसी अंश से सहमत हैं कि इसका अनुबंध खण्डकाव्यात्मक है। यदि इसी बात को इस प्रकार कहा जाय कि इस काव्य में खण्डकाव्य के समान एकदेशीय कथा

---

१. काव्य-रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दुबे, पृष्ठ ५६६-५६७

२. मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य—डा० कमलाकान्त पाठक, पृष्ठ २०८

का आकलन किया गया है तो अधिक उचित होगा। रचना-शैली की दृष्टि से इसे मिश्र-काव्य कहना तात्त्विक दृष्टि से अनुचित नही, परन्तु 'मिश्र' शब्द अपने आप मे सर्वथा अस्पष्ट है। इसके अतिरिक्त खण्डकाव्य का रचना-तत्र भी इस काव्य मे नही। प्रबन्ध के इन समाख्यानात्मक रूपो मे जिस सगुफित और सुविन्यस्त वस्तु-विधान की योजना की जाती है वह 'यशोधरा' मे नही मिलता। घटनाओ की सक्रियता (वस्तुगत अपना भावगत) का इसमे एकदम अभाव है। घटनाएँ बाह्य जगत् मे ही नही, मन के रगमच पर भी घटित नही होती। 'यशोधरा' मे कार्य-व्यापार है ही नही। उसके कथानक का स्वरूप बहुत कुछ भावात्मक है। अन्तर्द्वन्द्व कही-कही है, परन्तु उसमे भी जीवन्तता की अपेक्षा करुणा, अन्तर्द्वन्द्व की अपेक्षा अन्तर्वेदना या आत्मपीडा अधिक है। इसी कारण 'यशोधरा' का अधिकाश प्रगीतो के माध्यम से व्यक्त हुआ है। प्रबन्धत्व उसमे इतना ही है कि ये सभी प्रगीत एक क्षीण कथा-सूत्र से पूर्वापर-क्रम मे बंधे हुए है, वे स्फुट व निरपेक्ष नही। इसी प्रबन्धात्मकता के साथ नाट्य तत्त्व इस कारण आ गया है कि कवि ने समाख्यान न करके स्वगतो के द्वारा पात्रो को रगमच पर उपस्थित कर दिया है। मध्याश मे एक छोटा-सा गद्य-नाटक भी है। प्रश्न हो सकता है कि गीति और नाटक के सम्मिलित तत्त्वो के सद्भाव मे यशोधरा को गीति-नाट्य क्यो नही मान लिया जाय? कार्य-व्यापार का क्षेत्र गीति-नाट्य मे प्राय: व्यक्ति का अन्तमन होता है। 'यशोधरा' के प्रसग मे जैसा हमने पहले भी कहा है—नाट्य-तत्त्व की स्थिति की स्वीकृति-मात्र की जा सकती है, अधिक नही। गीति-नाट्य मे कार्य-व्यापार का एकान्त अभाव और स्वगत-भाषणो का इतना प्राचुर्य नही होता। 'यशोधरा' के अन्तिम दृश्य मे (मान के प्रसग मे) निश्चित् रूप से नाटकीयता है, सघर्ष भी है परन्तु उसके अतिरिक्त नाटकीय दृश्यात्मकता या कार्य-व्यापार कही नही है। स्वगतो के इतने अधिक प्रयोग, और कथोपकथन के अत्यल्प प्रयोग के कारण भी इसे गीति-नाट्य नही माना जा सकता।

जैसा पहले भी कहा जा चुका है यह कृति प्रगीत मुक्तक-सग्रह भी नही, न उसमे घट-नाओ की पुनरावृत्ति है और न उद्दीपन-रूप मे प्रयोग। उसके समस्त गीत, स्वगत-भाषण और कथोपकथन एक कथा-सूत्र मे निबद्ध है, अत प्रबध का सस्पर्श उसमे स्पष्ट है।

महाकाव्य पद के लिए इस कृति की अपात्रता इतनी सुस्पष्ट है कि विस्तृत विवेचन की अपेक्षा नही। अत. 'यशोधरा' परम्परागत समाख्यान शैली से भिन्न प्रगीतात्मक नाट्य शैली मे लिखा गया खण्डकाव्य ही है। इसमे प्रयुक्त स्वगतोक्तियो, कथोपकथन, गीतो का खण्डकाव्य की विषय-परिधि से कोई विरोध नही। आचार्य शुक्ल के मत में, गुप्तजी की रचनाओं मे जो गीति-पद्धति का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है, वह छायावाद की गीतात्मक प्रवृत्ति का प्रभाव है। यह काव्य छायावाद की विशेषताओ से युक्त है। "साकेत और यशोधरा इनके दो बडे प्रबन्ध है। दोनो मे उनके काव्यत्व का तो पूरा विकास दिखाई पडता है, पर प्रबधत्व की कमी है। बात यह है कि इनकी रचना उस समय हुई जब गुप्तजी की प्रवृत्ति गीतकाव्य या नए ढग के प्रगीत मुक्तको (lyrics) की ओर हो चुकी थी।"[1]

डा० कमलाकान्त पाठक ने भी शब्द-भेद से यशोधरा के काव्य-रूप के सम्बन्ध मे उक्त

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ७४१

मान्यता की स्वीकृति कर ली है। उन्होने उसे चम्पू कहकर भी कुछ पृष्ठ उपरान्त उसकी विधा के सम्बन्ध में कहा—"कला-कृति के रूप में यह खण्ड-प्रबध है, जिसका रचना-विधान काव्य के अनेक रूपों और प्रकारो से सयुक्त है। तत्त्वत: यह कथा-काव्य है, जिसमे यशोधरा की चरित्र-सृष्टि ही अपूर्व है। उसके करुण-विप्रलम्भ की नाना अतर्वृत्तिमयी कथावस्तु को कवि ने साकेत के नवम सर्ग की भाँति नानावृत्तमयी ही नही बनाया, उसे अनेक रूपात्मकता भी प्रदान की। इन्हे खण्डकाव्य के अर्थात् यशोधरा-आख्यान के अग ही समझना चाहिए। कवि ने खण्डकाव्य के स्वरूप-विधान का यह अभिनव प्रयोग किया है, जिसके द्वारा कथा-वस्तु को भावमय, चरित्रनिष्ठ और वस्तु-व्यंजक बनाया गया है। कवि ने घटना-प्रसगों को वर्ण्य-वस्तु न बनाकर उन्हे केवल मानसिक अधिकरण मे रख दिया है।"[1]

डा० शकुन्तला दुबे ने 'यशोधरा' को काव्य-रूप की दृष्टि से 'बन्धाबन्ध' काव्य-वर्ग मे अतिगीतात्मक काव्य के नाम से अभिहित किया। उन्होने 'यशोधरा' को प्रबन्ध और मुक्तक दोनों के बीच की रचना माना है। उनका मत इस रचना को प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक मानने के ही पक्ष में अधिक है—

"स्वानुभूतिप्रधान काव्य रूप मे कभी-कभी अतिगीतात्मकता की नियोजना द्वारा प्रबन्ध का सूत्र पकड़ने का प्रयास कवि करता है। प्रसग की मार्मिकता मे गीत मानो उबले पडते है। संगीत का तत्त्व उनमें भरपूर होता है। ऐसा ही काव्य रूप 'यशोधरा' है···। प्रबन्धात्मकता और गीतात्मकता का ही इसमें मिश्रण नही, छन्दों की बहुलता ही नही, अपितु पद्य के साथ गद्य का मिश्रण भी है। बीच मे छोटा-सा नाटक भी है।···

किन्तु ऐसे काव्यरूप में यह परमावश्यक नहीं कि उसमे कवि गद्य, नाटक आदि का मिश्रण भी करे।···

आत्म निवेदनात्मक मिश्रकाव्य-रूप की तुलना मे यहाँ कथा का सूत्र कुछ अधिक बड़ा होता है। किन्तु प्रबन्ध-काव्य जैसा प्रवाह एव क्रम आद्यन्त नही मिलता। वस्तुत. यह काव्य-रूप कभी-कभी स्फुट गीतो का ऐसा सग्रह लगता है जो प्रबन्धात्मकता की ओर झुकता-सा प्रतीत होता है।"[2]

'अतिगीतात्मकता की नियोजना द्वारा प्रबन्ध का सूत्र पकडने का प्रयास' से लेखिका का क्या अभिप्राय है, स्पष्ट नही होता। प्रबन्ध और मुक्तक मे मूल विधा का अन्तर है। यह भेद पूर्वापरक्रम-सापेक्षता और निरपेक्षता का है। अत: कोई भी रचना या प्रबन्ध हो सकती है या मुक्तक। कहीं-कहीं मुक्तक कथाश्रित होते है यथा सूरदास आदि भक्त कवियो के पद, परन्तु किसी काव्य के काव्य-रूप का निर्णय उसमे अपेक्षाकृत अधिक विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है। विशेषताओं में मात्रा-भेद से हम उसकी गणना उसी वर्ग में कर सकते हैं, जिसके वह अधिक निकट हो। 'यशोधरा' मे प्रबन्धात्मकता और गीतात्मकता का मनमाना मिश्रण नही। वह प्रगीतात्मक शैली मे लिखा गया प्रबन्ध है। प्रबन्ध उसका काव्य-रूप है और प्रगीत एवं नाट्य

---

१. मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य—डा० कमलाकान्त पाठक, पृष्ठ ३१४

२. काव्य-रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दुबे, पृ० ५६५-५६६

उसकी शैलीगत विधि। डा० दुबे ने 'यशोधरा' के प्रबन्धत्व के विरोध मे एक तर्क और उपस्थित किया है—"अस्तु, काव्य का रूप स्वतन्त्र पद्यो का सग्रह-सा प्रतीत होने लगता है जिसमे से यदि कुछ प्रसग निकाल भी दिये जायँ तो प्रवाह मे कोई अन्तर आने की सम्भावना नहीं। किसी भी प्रबन्ध काव्य मे प्रथम तो किसी पूर्ण कथा का होना आवश्यक है फिर उस कथा का धारावाहिक प्रवाह भी परमावश्यक है। कही से कोई अश निकला नहीं कि उसके प्रवाह मे कमी आ गई। यह बात यशोधरा के लिए लागू नही होती। यदि उसमे कथा एव प्रवाह का अभाव देखकर यह कहा जाय कि सपूर्ण काव्य स्फुट पद्यो का सग्रह मात्र है तो भी युक्तिसगत नही। कारण यह कि काव्य पढने के उपरान्त जो अन्तिम सकलित प्रभाव पडता है उससे यशोधरा की करुण कथा की एक मोटी रूपरेखा आँखो के समक्ष अवश्य आ जाती है।"[1]

इस प्रकार लेखिका ने 'यशोधरा' मे "सुन्दर गीतो मे कथात्मकता का हल्का-सा पुट" स्वीकार किया है। बात ऐसी नही, 'यशोधरा' के सभी गीत पूर्वापर प्रसग-सापेक्ष है, उन्हे प्रसग से निकालकर कथा-ज्ञान के अभाव मे नही समझा जा सकता। वे प्रबन्ध की गीतिमय कड़ियाँ है जिनकी सत्ता निरपेक्ष नही है। जहाँ तक कथा के धारावाहिक प्रवाह का प्रश्न है यह वस्तु-विन्यास का दोष है, और इस त्रुटि से 'यशोधरा' तो क्या अनेक ऐसे महाकाव्य नामधारी प्रबन्ध ग्रस्त है, जिनमे से कुछ एक पद्य नही यदि सर्ग के सर्ग निकाल लिये जायँ तो भी कथा के धाराप्रवाह विकास मे कोई अन्तर नही पड़ेगा। अत. प्रबन्ध की कथा-सघटना मे शैथिल्य एक बात है, और स्फुट गीति-संकलन दूसरी बात। 'यशोधरा' मे कथानक का स्वरूप भावगत होने के कारण अनुबन्ध मे धाराप्रवाह विकास व प्रसग-तारतम्य की दृष्टि से शिथिलता आ गई है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि वह स्फुट काव्य के निकट है। उसमे घटना-क्रम नही भावधारा है और लेखिका के शब्दो मे ही काव्य का अन्तिम सकलित प्रभाव इस बात का प्रमाण है। हम लेखिका के इस मत से भी सहमत नही कि "यशोधरा मे इस प्रकार कथा का हल्का-सा सूत्र है, पर एकसूत्रता नही।"[2] 'यशोधरा' मे एकसूत्रता आद्यन्त है, केवल यह एकसूत्रता घटनात्मक न होकर भावात्मक है। 'यशोधरा' के सभी प्रसग यशोधरा की करुण कथा से सम्बद्ध है। इन प्रसगो व घटनाओ के पूर्वापर-क्रम मे भी किसी प्रकार का व्यतिक्रम या उलट-फेर नही है। कवि ने वियोग-पूर्व की घटनाओ का स्मृति-रूप मे वर्णन करके कथा मे स्थान-ऐक्य और प्रबन्धत्व की रक्षा की है।

यह निश्चित हो जाने पर कि 'यशोधरा' विधा की दृष्टि से खण्डकाव्य के क्षेत्र मे नूतन प्रयोग है, उसके शिल्प और कला का परीक्षण और मूल्याकन उचित ही होगा।

'यशोधरा' की कथा का पूर्वार्द्ध प्रख्यात और इतिहासप्रसिद्ध है। यशोधरा के पारिवारिक जीवन के कुछ स्मृति-रूप मे वर्णित प्रसग एव काव्य का उत्तरार्द्ध कवि की उर्वर कल्पना की सृष्टि है। उसमे कथा है, और कथा में तारतम्य है, परन्तु उद्देश्य भिन्न होने के कारण, जैसा हम पहले निवेदन कर चुके हैं, कथा का स्वरूप घटनात्मक नहीं। जिन घटनाओं का वर्णन या उल्लेख

---

१. काव्य-रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दबे, पृ० ५६७-६८

२. वही, पृ० ५६६

मिलता है उनमे भी प्रत्यक्षता नही है, अधिकांश स्मृति, या सूच्य रूप में आई है। केवल दो घटनाएँ प्रत्यक्ष अकित है—बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण, तथा कपिलवस्तु प्रत्यागमन एव यशोधरा से मिलन। कथा मे इसलिए प्रबन्ध-गुण का समुचित निर्वाह नही हो सका। काव्य मे विकास कार्य-व्यापार या घटनाओ का नही भावधारा का है। सयोग के सुख मे विप्रलम्भजन्य विरहानुभूति, और फिर क्रमशः मिलन, किन्तु मिलन मे त्यागजन्य विरह का विरोधाभास—यही यशोधरा की भाव-कथा है। कथा की रेखाएँ सरल और स्पष्ट है। उनमे गहराई तो है, जटिलता नही। कथा का विकास वस्तुजगत् मे समतल बाहर ही बाहर न होकर भावजगत् मे गहरे और अन्तरग होता है, परन्तु भावनाओ मे विविधता नही। घटनाप्रधान कार्य-व्यापार मे अनेक प्रासगिक वृत्तो के योग से प्रधान कथावस्तु मे जिस प्रकार जटिलता और विविधता उत्पन्न की जाती है, 'यशोधरा' मे भावना के क्षेत्र मे वैसा कोई विशेष उपक्रम नही है। वर्ण्य-विषय की विशेषता के कारण अन्तर्द्वन्द्व या किसी प्रकार के भाव-सघर्ष की योजना भी कवि नही करता। 'यशोधरा' के अधिकांश मे अन्तर्द्वन्द्व नही आत्मपीडन है, सघर्ष नही बेबसी है, भावनाओ का झझावात नही करुणार्द्र समीर है। 'यशोधरा' के मध्याश मे विरह-व्यजना है। अनेक अनुभाव, संचारी, और उद्दीपन-भेद से एक ही स्थायी भाव रति का विरहजन्य रूप अकित है। एक विषय अनेक शीर्षको मे प्रसंग-भेद से आबद्ध है। यदि कुछ प्रसग निकाल लिए जायँ तो भी कथा-प्रवाह मे कोई बाधा नही आती। प्रबन्ध-निर्वाह मे यदि इसे शिथिलता कहा जाय तो भी इसकी उत्तरदायी कवि की कला नही, काव्य-विषय है। कवि ने अपनी ओर से एकसूत्रता की रक्षा के लिए, और स्थान, घटना और काल-ऐक्य के निर्वाह के लिए पूर्ववर्ती घटनाओ का वर्णन स्मृति-रूप मे किया है। कही-कही कवि ने स्वप्न का प्रयोग भी किया है। इसका एक कारण और है—काव्य की प्रमुख पात्री है 'यशोधरा' जो कुछ वर्ण्य है वह उसी की विरह-भावना से सम्बद्ध है, अतः कार्य-व्यापार का अवकाश ही कहाँ ? बुद्ध के जीवन मे भी भौतिक घटनाओ का घटाटोप नही। यदि कही कुछ है, तो भी अभिकर्त्ता पात्र गौतम की अनुपस्थिति मे कवि उसे सूच्य बनाने पर बाध्य हो गया है। नाटकीय कार्यावस्थाओ की खोज यशोधरा मे व्यर्थ है, नाटकीय सस्पर्श व दृश्यात्मकता निश्चय ही उसमें वर्तमान है। अतिम दृश्य और मान के प्रसग मे विशेष नाटकीय भव्यता और गरिमा है।

शिल्प

'यशोधरा' का शिल्प भी परपरागत प्रबन्ध-रचना के अनुरूप नही। यदि कहे उसका विभाजन सर्गो मे हुआ है तो ठीक नही होगा। सम्पूर्ण काव्य उन्नीस शीर्षको मे बाँधा गया है जिनमें से आरम्भिक शीर्षको मे कार्य-व्यापार या कथासूत्र बढता गया है और उनका विषय भी बदल गया है। इन शीर्षको मे आरम्भ के—सिद्धार्थ, महाभिनिष्क्रमण, नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोदन, पुरजन, छन्दक, मध्य के—सन्धान, और अन्त के—बुद्धदेव, शीर्षको को छोड़कर शेष सभी शीर्षक यशोधरा अथवा राहुल-जननी के नाम से है। इन सभी का विषय एक है—यशोधरा की विरह-व्यथा की व्यजना। इनका विस्तार भी कही एक पद्य, कही एक गीत और कहीं दो-चार पद्यो मे हुआ है। एक ही विषय पर लिखे गए ये गीत या पद्य, सर्ग नही माने जा सकते। कवि ने बीच मे जिस गद्य-नाटक का विधान किया है, वह भी यशोधरा की हार्दिक

भावनाओं को स्वगत की एकरसता से हटाकर कथोपकथन द्वारा मुखरित करने का प्रयास है। कवि का उद्देश्य इस कथोपकथन की योजना के द्वारा यशोधरा का अन्तर्द्वन्द्व व्यक्त करना, या स्वगत की एकरसता को दूर करना हो, अथवा वह वर्णन मे इतिवृत्तात्मकता लाने का आकांक्षी हो, पर कला की दृष्टि से यह योजना विशेष हितकारी नही हुई है। गद्य-शैली मे ये सवाद किसी प्रकार का कलात्मक उत्कर्ष न करके प्रगीत की मृदुल-मसृण कला में पैबद के सदृश प्रतीत होते है। सम्पूर्ण कृति आभ्यन्तरिक भाव-व्यजना मे गीति-कला के जिस ललित मार्दव से आप्लावित है उसमे यह गद्याश भद्दे जोड के अतिरिक्त कुछ नही।

अपने अधिकाश प्रबन्ध काव्यो की भाँति कवि ने आरम्भ मे मगलाचरण का विधान किया है। वर्णनात्मकता का प्रश्न इस काव्य मे उठता ही नही। केवल कुछ विशिष्ट पारिवारिक प्रसग बुद्ध और यशोधरा, तथा यशोधरा और राहुल के बीच अकित किये गए है। प्रकृति अवश्य अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ इस काव्य मे आद्यन्त उपस्थित है। अलकार, उद्दीपन, आलम्बन, समभोक्ता आदि, सभी सम्भव रूपो मे प्रकृति का वर्णन कवि ने किया है। प्रकृति-वर्णन की छायावादी शैली का गुप्तजी की कला पर विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रकृति पर मानव भावनाओ का आरोप, तथा प्रकृति का मानव के दु ख-सुख की समभागिनी-रूप मे परिज्ञान इस काव्य मे छायावादी ढग का ही है।

छायावादी काव्य की अन्य सभी विशेषताएँ भी 'यशोधरा' मे सहज उपलब्ध है। प्रगीत और गीत के माध्यम से भाव एव स्वर दोनो का सगीत, अन्त.स्फूर्त अभिव्यजना, आत्मद्रव, व्यक्तिगत आत्मनिवेदन (कवि का नही पात्र का), और कला की दृष्टि से भी—प्रतीक-योजना, लाक्षणिकता, व्यजना का वैचित्र्य, अप्रस्तुत-चयन मे मूर्त के लिए अमूर्त, और अमूर्त के लिए मूर्त बिम्ब-विधान और मानवीकरण से 'यशोधरा' का कलेवर निर्मित है। उसके अनेक गीत भाव के ही नही, स्वर के बाह्य संगीत से आपूर्ण है। इन गीतो की स्वर-साधना सहज सम्भव है। भाषा भी इन गीतो की विशेष प्रौढ, कान्तिमय, गीति काव्योपयुक्त मधुर-मसृण है। कही-कही अवश्य उनकी कला मे अनगढता एव स्थूल इतिवृत्तात्मकता आ गई है, परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम है। कुछ गीत हिन्दी के गीतिकाव्य की अन्यतम विभूति है।

छन्द-योजना—'यशोधरा' का छन्द-विधान एक स्वतन्त्र निबन्ध का विषय बनने के लिए पर्याप्त है। जिस प्रकार, गीत, प्रगीत, मुक्तक, प्रबन्ध आदि शैलियो, और पद्य एव गद्य-माध्यम का मिश्रण गुप्तजी ने इस काव्य मे किया है, उसी प्रकार छन्दो के विविध प्रयोगो से यह कृति सज्जित है। सम और विषम मात्रिक शन्दो के अनेक चिरप्रचलित रूपो और मिश्र छन्द-निर्माण की विभिन्न नवीन सरणियो का आश्रय गुप्तजी ने लिया है। मुक्त छन्द का प्रयोग उन्होने यद्यपि नही किया, परन्तु परम्परागत मात्रिक छन्दो के योग से केवल अनेक सम और विषम छन्दो का रूप-निर्माण ही नही किया वरन अन्त्यानुप्रास मे अनेक नवीन क्रम—पद व गीत—रचना मे प्रस्तुत किये। अपभ्रशोत्तर हिन्दी-साहित्य मे छन्द-रचना की दृष्टि से अन्त्यानुप्रास का आधुनिक युग से पूर्व निरपवाद रूप से निर्वाह हुआ, अत. यद्यपि तुकान्त छन्द-रचना का कोई निश्चित विधान या नियम पिंगल-शास्त्र मे नही मिलता, परन्तु छन्द की पक्ति के अन्त्यनिपात में किसी तर्कातीत पद्धति से अन्त्यानुप्रास का निर्वाह कुछ ऐसा अनिवार्य-सा हो

गया था कि द्विवेदीयुग के उपरान्त जब नवीन पीढी के कवियो ने अन्त्यानुप्रास को छन्द का बाह्यावरण मात्र घोषित कर इस बन्धन से कविता को मुक्त किया तो परम्परावादी साहित्यिक इस नवीनता का सहसा ही अभिनन्दन न कर सके। मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' मे भिन्न तुकान्त छन्द का प्रयोग तो नही किया परन्तु छन्द के चारो चरणो मे समान अन्त्यक्रम का निर्वाह भी नही किया। कही एक ही लय वाले और कही भिन्न लय वाले छन्दों की पक्तियाँ मिला-जुलाकर उन्होंने अनेक सम और विषम विकर्षाधार उपस्थित किये और मिश्र छन्दों का निर्माण किया। अत्यन्त संक्षेप मे हम उनकी छन्द-योजना का सिंहावलोकन करने का प्रयास करेंगे।

'यशोधरा' के छन्द स्पष्ट रूप से दो प्रकार के है—परम्परानुमोदित छन्द और नवीन प्रयोग। परम्परानुमोदित छन्दों मे उन्होने सम मात्रिक, अर्द्धसम मात्रिक, मिश्र मात्रिक और नाम गिनाने के लिए एकाध वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया है। सम मात्रिक छन्दों मे प्रायः गीतिका, हरिगीतिका, रोला, वीर, आर्या, तोटक, कुण्डल आदि मे कवि ने रचना की है। प्रचलित अर्द्धसम मात्रिक छन्दो मे दोहा, आर्यागीति, मिश्र छन्दो मे कुण्डलिया, छप्पय आदि, और वर्णिक छन्दो मे कवि ने कवित्त एव सवैया का प्रयोग किया है। अक्षर-गणना पर आश्रित घनाक्षरी उत्तरचरणार्द्ध के आधार पर जिस अमित्राक्षर छन्द का कवि ने प्रयोग किया वह कवि का पुराना, पर आधुनिक युग का नया छन्द है। इन परम्परागत छन्दो मे भी अन्तर्यतियो का प्रयोग आधुनिक युग के अधिकाश कवियो ने किया है। 'यशोधरा' इस प्रवृत्ति का अपवाद नही। 'यशोधरा' मे पाठ के ढंग से नवीन अन्तर्यतियाँ अनेक स्थलो पर आ जाती है।

नवीन छन्दों में भी कवि ने परम्परागत छन्दों की भाँति विविधतापूर्ण नव-निर्माण किया। सम, अर्द्धसम, मिश्र, त्रिसम, विकर्ष के विविध प्रयोग, सभी उनकी नव्य छन्द-रचना मे सहज प्राप्य है। सम छन्दो मे उत्कठा[1] आदि तथा अर्द्धसम मात्रिक छन्दों मे कुछ अत्यन्त नूतन आकार के छन्दो का उन्होने निर्माण किया—

दरक कर दिखा गया, निज सार जो, —१८ मात्राएँ
हँस, वाड़िम, तू खिल खेल, —१३ मात्राएँ
प्रकट कर सका न अपना प्यार जो, —१८ मात्राएँ
रो कठिन हृदय सब झेल।[2] —१३ मात्राएँ

"यह छन्द घत्तानन्द के समान है। इसका पहला चरण ११ और ७ मात्राओ के विराम से बनता है और दूसरा चरण दोहे के सम चरण के पहले दो मात्राएँ जोडकर।"[3]

उपर्युक्त छन्द की कुछ पक्तियों के उपरान्त कवि ने एक और नवीन छन्द का विधान किया—

फलों के गीत फलो मे फिर आए, —१६ मात्राएँ

---

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना—पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० ३०३-३०४
२. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ४५
३. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना—पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० ३१२

मेरे दिन फिरे न हाय ! —१३ मात्राएँ
गए घन कै कै बार न घिर आए ? —१९ मात्राएँ
वे निर्झर न झिरे हाय ।[1] —१३ मात्राएँ

इस छन्द का शास्त्रीय नामकरण अनुपलब्ध है। डा० शुक्ल ने सुझाव दिया है कि घत्तानन्द छन्द के आदि में एक मात्रा के योग से इस छन्द का निर्माण हुआ है अतः इसे 'गुरुघत्तानन्द' कहना चाहिए।[2]

मिश्र छन्दों मे भी कुछ नवीन मिश्र योजनाएँ गुप्तजी ने प्रस्तुत की—

उन्हें समर्पित कर दिये, यदि मैंने सब काम, १३, ११।
तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम। १३, ११।
यहीं, इसी आँगन में, १२।*
सखि, प्रियतम हैं वन मे ?[3] १२।

उपर्युक्त छन्द मे प्रथम दो चरण दोहे के तथा तीसरा व चौथा चरण सारक छन्द का है। इस प्रकार के अनेक नवीन विधान, गीतों मे गुप्तजी ने किये। डा० शुक्ल ने नवीन अन्त्यानुप्रास-क्रम के आधार पर छन्दो का एक वर्ग त्रिसम वर्ग के नाम से माना है। जैसा नाम से स्पष्ट है, इस वर्ग के छन्दो मे अन्त्यानुप्रास छन्द के तीन चरणो मे समान और चौथे में भिन्न होता है। गीतो मे अन्त्यक्रम प्रायः क, क, क, और ख होता है। चौथा चरण छन्दक (टेक) होता है। किन्तु अन्त्यानुप्रास का क्रम क, क, ख और क भी हो सकता है। यशोधरा के गीतो मे पहले क्रम का निर्वाह प्रायः हुआ है—

इस निधि के योग्य पात्र —१२ मात्राएँ
यदि था यह तुच्छ गात्र, ,,
तो यही प्रतीति मात्र, ,,
दैव, दया तेरी। —१० ,,
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी एरी।[4] १२,१० ,,

इसी प्रकार—

पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर मे,
गुंजन सोया अभी भ्रमर में,
सो मेरे गृह गुंजन सो।[5]

त्रिसम वर्ग के छन्दो मे नवीनता अन्त्यक्रम सम्बन्धी ही है अन्यथा आकार व लय-निपात

---

१. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ४५
२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना—पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० ३१३
३. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ३९
४. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ४८
५. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६१

की दृष्टि से ये छन्द मिश्र-छन्दो के अन्तर्गत ही आ जायँगे।

विकर्ष (पक्तियो का विशेष प्रकार क्रमायोजन या रिजोल्यूशन) के आधार पर आधुनिक साहित्य मे पुरानी लयो को अपनाकर जो शत-शत नवीन छन्द-योजनाएँ प्रस्तुत हुई उनका भी 'यशोधरा' मे अभाव नही। नव विकर्ष से अभिप्राय पुरानी लयो मे भी पक्तियो के अन्त्यक्रम, परिसंख्यान और मात्राक्रम की नवीनता से है। जहाँ विकर्ष की नवीनता सम छन्दो मे होती है वहाँ तो यह नवीनता केवल अन्त्यक्रमायोजन मे ही होती है, परन्तु विषम विकर्षाधार के छन्दो मे विभिन्न मात्रा-सख्या के चरणो का सयोग कर कवि एक विकर्षाधार निश्चित कर लेता है और क्रमशः उसी की आवृत्ति होती है। मिश्र छन्दो की भाँति इनमे केवल दो निश्चित छन्दो का योग न होकर विभिन्न लयो के विविध परिसख्यानो का योग किया जाता है। 'यशोधरा' मे सम और विषम दोनों प्रकार के नव विकर्षाधार छन्द प्रयुक्त हुए है। हाकलि छन्द का विकृष्ट रूप क, क, क, ख, ख क्रम मे देखिये—

आगे आगे अम्ब जहाँ,
मैं पीछे चुपचाप वहाँ।
खोज फिरी तू कहाँ कहाँ,
फिर कर क्यों न निहार गई।
हार गई माँ हार गई।[1]

इसी प्रकार राधिका, सार आदि छन्दों का आधुनीकरण कवि ने विभिन्न अन्त्यक्रम-योजनाओ द्वारा किया है। विषम विकर्षाधार की अनेकानेक योजनाएँ भी कवि की नवोन्मेषिणी प्रतिभा ने की हैं—

अब भी समय नहीं आया ?	—१४ मात्राएं
कब तक करे प्रतीक्षा काया, जिये कहाँ तक काया ?	१६, १२ ,,
होती है मुझको यह शका, क्षमा करो हे नाथ,	१६, ११ ,,
समय तुम्हारे साथ नहीं क्या, तुम्हीं समय के साथ ?	१६, ११ ,,
कहाँ योग मन-भाया ?	१२ ,,
अब भी समय नहीं आया ?[2]	१४ ,,

विषम विकर्षाधार छन्दों के अनेकानेक सुन्दर व भावानुकूल आकार गुप्तजी के निम्नाकित गीतो व पदो मे द्रष्टव्य है—

मरण सुन्दर बन आया री।[3]
मिला न हा ! इतना भी योग।[4]

---

१. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ५३
२. वही, पृ० १३१
३. वही, पृ० ४०
४. वही, पृ० ३५

फिर भी नाथ न आए।[1]
सखि वे मुझसे कहकर जाते।[2]
दूँ किस मुँह से आज उलहना।[3]
मानिनी मान तजो लो, रही तुम्हारी बान।[4]

इनके अतिरिक्त भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण 'यशोधरा' से दिए जा सकते हैं जिनका विधान बिल्कुल नवीन है। जैसा हमने पहले निवेदन किया है, 'यशोधरा' की छन्द-रचना अपने-आप में एक स्वतन्त्र परिच्छेद का विषय बनने के लिए पर्याप्त है। ऊपर जिन गीतो या पदों का उल्लेख किया गया, उनका लयाधार क्या है तथा उनका रूप-निर्माण किन छन्दों की मात्रा-संख्या को आधार बनाकर किया क्या है, इसका विवेचन हम विस्तार-भय से नही कर रहे, वह कदाचित् विशेष प्रासंगिक भी नही होगा। पिछले पृष्ठो में किये गए विवेचन में लक्ष्य यही था कि हम इस तथ्य की ओर सकेत कर सके कि गुप्तजी ने इस काव्य-रूप मे माध्यम और शैलियों मे जिस मिश्रण-प्रवृत्ति का परिचय दिया, उससे कम नवीनता छन्द-रूपो के ग्रहण मे नही दिखाई। केवल एक बात उनके काव्य-रूप और छन्द-विधान दोनो के विषय मे सामान्य रूप से कही जा सकती है। जिस प्रकार उन्होने बडे पैमाने पर 'यशोधरा' मे अपनी रुचि के अनुकूल अनेक वर्णन-शैलियों का मिश्रण किया, परन्तु इस अभिव्यजना-कौशल के पीछे भी शास्त्रीय आधार सर्वत्र सुरक्षित रहा, उसी प्रकार उनकी छन्द-रचना की बाह्य विविधता और अनेक-रूपता के मूल मे तर्क-सम्मत शास्त्रीय आधार है। उनके छन्दो के लयाधार शास्त्र-विहित छन्द अथवा उनके ही कुछ घटा-बढाकर बनाये गए नव्य छन्द है। ये प्रयोग काव्य-रूप की ही भाँति कहीं भी अनर्गल या परम्परा-विरोधी नही है। गुप्तजी की अभिव्यजना मे सामान्यत· रूढि से मुक्ति का प्रयत्न परिलक्षित होता है, विरोध का नही।

विष्णुप्रिया

'विष्णुप्रिया' की प्रेरणा कवि तक बहुत कुछ उसी मार्ग से आयी है जिससे 'साकेत' और 'यशोधरा' की। उपेक्षिता परन्तु गरिमामयी नारी के चरित्राकन के हेतु उनकी रचना-त्रयी —'साकेत', 'यशोधरा' और 'विष्णुप्रिया' का यह अन्तिम पुष्प है। 'साकेत' और 'यशोधरा' की ही भाँति कवि का लक्ष्य यहाँ भी स्वात्माभिव्यक्ति न होकर पात्रात्माभिव्यक्ति है। अत आत्म से भिन्न इदम् की कथा कहने के कारण कवि ने प्रबन्ध-रूप को अपनाया है।

'साकेत' और 'यशोधरा' से 'विष्णुप्रिया' का काव्य-रूप फिर भी भिन्न है। इसका कारण—प्रेरणा, पात्र और उपलब्ध कथा-सूत्रो के स्वरूप मे अन्तर है। कवि रामभक्त है और राम-कथा से सहज परिचित, अत: उपेक्षिता उर्मिला की विरहाभिव्यजना के साथ राम के जीवन में घटित होने वाले सभी प्रसगों को किसी न किसी रूप मे समाविष्ट कर लिया गया है, इसके

---

१. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १३०
२. वही, पृ० २४
३. वही, पृ० ३६
४. वही, पृ० १४३

अतिरिक्त कथा-नायक लक्ष्मण का भी इन सभी घटनाओं से अभिन्न सम्बन्ध है, अतः 'साकेत' में घटनाओं का, या घटनाओं के वर्णन का अभाव नहीं। महत् कथा, महत् चरित्र और तदनुकूल शैली के कारण वह महाकाव्य बन गया और उर्मिला की अधिकांश वेदना-व्यथा नवम सर्ग के गीतो और प्रगीतों में सिमटकर रह गई।'यशोधरा'के नायक गौतम के बाह्य जीवन में उतनी महत् घटनाएँ नहीं घटी जितनी मर्यादा पुरुषोत्तम के जीवन मे। उनका व्यक्तित्व कर्मठ तेजस्वी वीर पुरुष का न होकर धीर, गंभीर, शान्त और विरागी का ही है। परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी अंतश्चेतना मे घटित होने वाली अनेकानेक घटनाओ के प्रति कवि का सहज आस्था-भाव नही रहा। निवृत्तिमूलक बौद्ध-दर्शन के प्रति उसका विश्वास नही, और बौद्ध न होने के कारण बुद्ध के जीवन की घटनाओं के प्रति उसका आग्रह भी नही था। अतः समस्त काव्य उन्ही प्रसंगो से व्याप्त है, जिन्होंने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से यशोधरा की चरित्र-गरिमा के उद्घाटन मे योग दिया। यशोधरा की मूल वृत्ति विरह और तद्पोषक वृत्ति वत्सल भाव है। उसकी बाल रति का आलम्बन राहुल उसके सदा समीप है। अत· विरहाभिव्यक्ति गीतो-प्रगीतो मे, और वत्सल-भाव सवादो मे व्यक्त हुआ है। उसने पति का सयोग पाया, उसका सम्बन्ध राजवश से था, अत· विरह मे उद्दाम भावावेश, पीडा और मिलन की कामना है। रति-भाव का उत्सर्ग भी कुछ बेवसी की स्थिति में हुआ है। वह अपनी पीडा के प्रति सजग है—

"मेरे दु ख में भरा विश्व सुख,
क्यो न भरूँ फिर मैं हामी।"[1]

विरह में आक्रोश, विवशता, खीझ, पश्चाताप, उपालम्भ सभी कुछ है। उर्मिला के विरह से अन्तर यही है कि लक्ष्मण त्यागी होने के साथ रागी भी है, अत उसका वियोग निश्चित अवधि तक है और बुद्ध के त्यागी होने के कारण यशोधरा का विरह निरवधि, परन्तु उसके पास सम्बल है राहुल। विष्णुप्रिया की स्थिति इन दोनो से कुछ भिन्न है—उसका वियोग न उर्मिला की भाँति आशा समन्वित व सावधि है, और न यशोधरा की भाँति वात्सल्य-पोषित। उसका वियोग निरवधि भी है और निरालम्ब भी। चैतन्य का व्यक्तित्व भी लक्ष्मण और बुद्ध से विशिष्ट है। लक्ष्मण की कर्मठता और गौतम के अतिवैराग्य—दोनो का ही उनके व्यक्तित्व मे अभाव है। प्रबन्धोचित घटनाएँ उनके जीवन मे भी गौतम की ही भाँति नही है। गौतम के राजवशीय होने के कारण जो औपचारिकता उनकी जीवन-घटनाओ मे आ गई है, और जो व्यापक प्रभाव उनके गृहत्याग आदि घटनाओ का पडा उतना चैतन्य का नही। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी गौतम की सिद्धि चैतन्य की अपेक्षा कही अधिक महत्त्वपूर्ण और उनका प्रभाव विश्वव्यापी है। चैतन्य, बुद्ध की भाँति किसी मौलिक जीवन-दर्शन के आख्याता और प्रतिष्ठाता नही थे। अधिक से अधिक उन्हे सूर, तुलसी आदि भक्तो का समकक्षी ठहराया जा सकता है। भाव-विह्वल भक्ति की तन्मयता के अतिरिक्त साहित्य और धर्म की दृष्टि से भी उनका योगदान और आदर्श विशेष महत्त्वपूर्ण नही है। कवि, नायक के भौतिक वस्तुनिष्ठ जीवन मे तथ्य के साथ कल्पना का प्रयोग कर सकता है, परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र मे निराधार

---

१. यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १४७

कल्पना का भी विशेष अवकाश नही। उपर्युक्त सभी कारणो से 'विष्णुप्रिया' के वस्तु-विधान पर दोहरा प्रभाव पडा—एक ओर उसमे वस्तुरूप कार्य-व्यापार तथा प्रबन्ध-योजना के लिए अपेक्षित शृंखलाबद्ध घटनाओं का अभाव हो गया, दूसरी ओर विशेष परिस्थितियों की पृष्ठ-भूमि में परित्यक्ता, परन्तु परिवार के उत्तरदायित्व से दबी निस्सबल परन्तु त्यागमयी विष्णु-प्रिया का व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार अंकित किया गया है कि उसकी वेदना मुखर बहुत कम होती है। वह सारी पीडा बिना कुछ कहे अन्तर मे समा लेना चाहती है, उसकी सवाक् अभिव्यक्ति की आकाक्षी नही। विरह-भावना का आत्मसकोच नही, आत्मविस्तार के रूप मे उन्नयन हुआ है। वह व्यक्तिगत संसर्ग की अपेक्षा विश्व-हित और प्रिय के हित के लिए लालायित है—

"मेरे भगवान सबके हो, मैं उन्हीं की हूँ,
मेरे भाग्य मुझमें मुँदे तो खुले सब में।"[1]

इसी दृष्टिकोण के कारण काव्य का समग्र प्रगीतात्मक नही है। कवि ने विरह-भावना की अपेक्षा पति-प्रेम की आत्माभिव्यक्तिया चालीस से अधिक प्रगीतो के रूप मे प्रस्तुत की है। प्रेम की अन्तर्दशा और वियोग की अनुभूतियाँ इन छोटे-बडे प्रगीतो मे व्यक्त हुई है। इनमें कुछ गेय है, कुछ लम्बे और कुछ का विधान मुक्तकवत् किया गया है, यद्यपि उनकी आत्मा प्रगीतात्मक ही है। इन प्रगीतो की स्थिति उसी ढग की है जैसी 'साकेत' और यशोधरा के 'प्रगीतो' की। अन्तर इतना ही है कि 'यशोधरा' का अधिकाश प्रगीतात्मक है। घटनाएँ भी प्रगीतो के बीच सूच्य या स्मृति रूप मे उद्दीपन होकर आई है। 'साकेत' का अधिकांश वर्णनात्मक है। नवम सर्ग मे विरह की अनेक अन्तर्दशाएँ, भाव-भगिमाएँ, प्रगीतो मे है और वह सम्पूर्ण सर्ग उर्मिला-केन्द्रित है। 'विष्णुप्रिया' मे स्थिति कुछ भिन्न है। घटनाएँ बहुत कम है, जो है उनमे विशेष जीवन्त, या प्रभावात्मक प्रसंग नही। कार्य-व्यापार मे विशेष गति, उद्वेलन, सघर्ष इत्यादि नहीं। अत्यन्त ऋजु-सरल गति से महाप्रभु के जीवन के कुछ प्रसग और उनकी पत्नी पर पडने वाले प्रभाव व उसकी मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त है, परन्तु विष्णुप्रिया, उर्मिला और यशोधरा दोनो की अपेक्षा अधिक सहिष्णु, धीर, कर्त्तव्यनिष्ठ और त्यागमयी है। चैतन्य न केवल उसे स्थायी रूप से त्याग देते है, बल्कि यशोधरा के समान अवलम्ब छोडने के स्थान पर माँ और जीविका-वहन का उत्तरदायित्व भी छोड जाते है। अत उसके जीवन मे आन्तरिक ही नही बाह्य सकटो का विधान भी हो गया है, और इन कण्ट-कण्टको मे उसका जीवन-सुमन निरन्तर खिलता रहा है। उसने इस पीडा को प्राप्य समझकर आत्मसात् कर लिया और वह भी उत्तरदायित्व को कर्त्तव्य मानकर, अत उसकी पीडा मे आवेश, ज्वलन और उद्वेग नही है। ऐसी स्थिति मे उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए घटनाओं का अकन अनिवार्य था। इन समस्त प्रसगो की पृष्ठभूमि मे विष्णुप्रिया का चरित्र-विकास हुआ है, परन्तु स्वगतोक्तियों, संवादो और प्रगीतात्मक आत्माभिव्यक्ति के रूप मे नही। बल्कि जैसा हमने पहले कहा—प्रगीतो के माध्यम से हृदयोद्गारो के करुणार्द्र उत्स तो फूट निकले है, परन्तु सर्वत्र सवादो और स्वगतो के माध्यम से मुखरता नही आई है। विशिष्ट परिस्थिति मे पडी नायिका की मन-स्थिति

---

१. विष्णुप्रिया—मैथिलीशरण गुप्त, आवरण पृष्ठ

के अंकन से पाठक की करुणा व सहानुभूति उसके प्रति तीव्र से तीव्रतर और अन्ततः तीव्रतम होती गई है। घटनाओं व प्रसगों का वर्णन परोक्ष समाख्यान-शैली में हुआ है, जिसमें कहीं-कही अंग-रूप में कथोपकथन का प्रयोग हुआ, और प्रचुर रूप में प्रगीतों का, परन्तु काव्य की प्रधान शैली वर्णनात्मक है। 'यशोधरा' के समान निपट प्रगीतात्मक नही और 'साकेत' के समान वर्णन-बहुल नहीं (नवम सर्ग को छोड़कर)। उसमे प्रगीतों का प्रयोग 'साकेत' की अपेक्षा अधिक और 'यशोधरा' की अपेक्षा कम हुआ है। अतः 'विष्णुप्रिया' को प्रगीतात्मक खण्डकाव्य कह सकते हैं। यह खण्डकाव्य की नितान्त परम्परागत शैली की रचना नही। अस्तु हम सक्षेप मे इस कृति की वस्तु-कला के विभिन्न तत्त्वों का विवेचन करेगे—

कथा-स्वरूप एवं प्रबन्ध-विधान—कवि ने अपने मूल उद्देश्य—पति द्वारा परित्यक्त मध्य-युग की निरावलम्ब, स्वजनों की सेवा में रत, आजीविका-अर्जन के उत्तरदायित्व-वहन करने में समर्थ नारी के गौरव-गान के अनुकूल प्रबन्ध-योजना की है। विषय-सम्बन्धी परिसीमाओ की स्वीकृति कवि ने स्वयं की है—"प्राप्त सामग्री तो आज भी मैं बहुत नही पढ़ पाया हूँ, परन्तु कथा मैंने संक्षेप में जान ली। वास्तव मे मुझे महाप्रभु के विषय मे कोई खोज नही करनी थी, इतना ही जानना था। विष्णुप्रिया का व्यक्तित्व तो मानो स्वय उन्ही ने मेरे अन्तस् मे आकर स्पष्ट कर दिया था।"[1]

स्पष्ट है कवि ने उतना ही जानने का प्रयास किया जितना नायिका के व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यक था। अत. कथा मे वही प्रसग आए है जो विष्णुप्रिया के प्रेम और वियोग, तप व त्याग, सेवा और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि गुणो के प्रकाशन के लिए अपेक्षित है। नायक का शील-निरूपण कवि का लक्ष्य नही, अत· भक्ति के क्षेत्र मे साम्प्रदायिक व सैद्धान्तिक भूमि पर महाप्रभु का अवतरण न करके, परमार्थ-साधन के लिए प्रयत्नलीन मानवीय शील का अकन ही कवि ने किया, वह भी उतना भर जितना नायिका के चरित्र-विकास के लिए अनिवार्य था। परिणामस्वरूप जो प्रसग व घटनाएँ अकित है वे प्रबन्ध-गुण, सुसगठित कथानक, सुनिश्चित वस्तु-विन्यास, कथा-चारुत्व की दृष्टि से न होकर, चरित्र-गरिमा के उद्घाटन की दृष्टि से है। आजीविका का दायित्व-वहन करने के कारण निश्चय ही नायिका के चरित्राकन मे सामाजिक जीवन की चेतना, और सामान्य परिवार की कुलवधू होने के कारण साधारण जीवन की समस्याओं का सस्पर्श भी उर्मिला और यशोधरा की अपेक्षा अधिक हो सका है। परन्तु पर-म्परागत खण्डकाव्यो से कवि का दृष्टिकोण भिन्न है। कवि की दृष्टि मे वस्तु विन्यास (plot-construction) प्रधान न होकर चरित्रनिर्माण (characterisation) अधिक महत्त्वपूर्ण है। परिणामतः ऐसी स्थिति मे प्रबन्धत्व की दृष्टि से सभी सम्भव गुण-दोषों का अन्तर्भाव हो गया है। सुसम्बद्ध और गठे हुए कथानक के लिए अरस्तू ने इसीलिए आवश्यकता और सम्भाव्यता के नियमानुसार घटनाओ का समावेश और सुनिश्चित आदि, मध्य और अवसान का नियम अनिवार्य माना था। परन्तु ऐसा, कथानक को त्रासदी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानकर कहा गया था। कालान्तर मे जैसे-जैसे कथा-वर्णन स्वय साध्य न होकर अन्य उद्देश्यो का साधक

---

१. विष्णुप्रिया—मैथिलीशरण गुप्त, निवेदन, पृष्ठ ५

साधन-मात्र बनता गया वस्तु-विन्यास के लिए निर्दिष्ट नियमों के अनुबन्ध शिथिल पड़ते गये।

एक ओर 'विष्णुप्रिया' मे कुछ ऐसे प्रसग है जिनका सम्बन्ध कथा-विकास से नहीं चरित्र-विकास से है। जिनको यदि निकाल लिया जाय तो तारतम्य या कथा-विकास मे कोई बाधा उपस्थित न होगी। दूसरी ओर "कवि ने चैतन्य देव के जीवनचरित की उन घटनाओं का भी विवरण प्रस्तुत किया है, जिनका विष्णुप्रिया के चरित्र से कोई सम्बन्ध नही है। उनकी काव्य-स्थिति का औचित्य इसमें है कि वे कथा-वस्तु को वर्णनात्मक बनाते हैं और विष्णुप्रिया के चरित्र को वैषम्य पद्धति से उभारते है।"[1] उदाहरण के लिए गौर की भक्ति-भावना का विकास, उनकी मडली में बडे-बड़े विद्वानों का सम्मिलन, उनकी भक्तिचर्या, कीर्त्तन, उपासना, अनेक प्रकार के विस्मयकारी कार्यों का सम्पन्न करना आदि-आदि प्रसगों का प्रत्यक्ष रूप से विष्णुप्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु इनका वर्णन इसीलिए हुआ है कि कवि विष्णुप्रिया के—निस्वार्थ भाव से उनकी रक्षा-कामना में सलग्न रहकर कर्त्तव्य-पालन के गुण को उभारकर लाना चाहता है। उनके अनुयायी उन्हें सँभालते और विष्णुप्रिया उनके कीर्त्तन मे मग्न होकर नाचते-नाचते प्रायः अचेत होकर गिर पडने के समय चोट सहती। इस प्रकार कवि ने विष्णुप्रिया के सयोग में वियोग की प्रतिष्ठा की है। वह समीप होकर भी पति से वियुक्त है। उसका शृंगार, क्रमशः अशरीरी होता गया है। काव्यारम्भ की कुछ घटनाएँ—माता-पिता को गौरहरि की पुत्र-रूप में प्राप्ति, उनके अग्रज विश्वरूप का बाल्यावस्था मे सन्यासी हो जाना, अपने सहपाठी रघुनाथ की महत्त्वाकाक्षा को देखकर गौर का न्याय-ग्रथ को गगा मे बहा देना आदि, विष्णुप्रिया की कथा से, प्रबधत्व की दृष्टि से अनिवार्यत. सम्बद्ध नही, परन्तु यह अश कथा के पूर्वाभास के लिए कवि ने सक्षेप में चलता कर दिया है। गौर के गृहत्याग से आरम्भ होकर शेष सभी घटनाएँ विष्णु-प्रिया के उच्चाशयी चरित्र-विकास के लिए ही आयी है।

गौर का गृहत्याग का निश्चय, चुपचाप प्रस्थान, बिदा न लेने के कारण विष्णुप्रिया का दुखित होना, कर्त्तव्य-भाव से प्रेरित होकर सास को सँभालना आदि घटनाएँ उसके चरित्र की भावी गरिमा और करुणा की भूमिका तत्पर करती हैं। सास को सँभालकर भी विष्णुप्रिया के मन मे गोद खाली रहने का संताप बना रहा और यहीं से उसकी वियोग-कथा का वास्तविक आरम्भ हुआ। यद्यपि उसकी उत्कट निराशा 'प्रस्तुत हूँ, मैं तज दूँ देह' कह कर व्यक्त हुई। उसे पति-वचना से शोक हुआ, उनके सन्यासी होने का समाचार सुनकर उसका नारीत्व भी आहत हुआ—

अबला के भय से भाग गये वे उससे भी निर्बल निकले।
नारी निकले तो अ-सती है, नर यती कहा कर चल निकले॥[2]

परन्तु पति को उपालम्भ उसने बहुत कम दिया। उसके अनन्य प्रेम ने समाज के इस आरोप का—कि यह नारी पर नर का अत्याचार है, यह कहकर विरोध और समाधान किया कि वे स्वय इसके लिए उत्तरदायी नहीं, यह उनकी प्रभु-प्रीति का दोष है, वे तो 'सुध भूले, भटके

---

१. मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य—कमलाकान्त पाठक, पृष्ठ २३८
२. विष्णुप्रिया—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ५७

नही।' उसकी विरह-भावना वत्सल-भाव से नही कर्त्तव्य-भार से पुष्ट हुई। गौर के नाते उसने प्रेम का फल सन्तान नही, उनका उत्तरदायित्व सेवा-भार वहन किया। वह स्वावलम्बी जीवन अगीकार करती है। इसी प्रसग मे कवि ने उसकी चारित्रिक महिमा के लिए सामाजिक स्थिति का आख्यान किया। उसकी दिनचर्या का वर्णन उसकी कर्मण्यता के परिचय के लिए किया गया। कर्त्तव्य के इस भार ने उसके प्रेम की पीडा को सतुलन प्रदान किया, मर्यादा तोडकर आवेग का बाँध टूटने से बचाया। इस विषम परिस्थिति मे भी विष्णुप्रिया की सामाजिक चेतना प्रबुद्ध है। वह 'रोक निज दु ख हम माने सुख सबका' को जीवन मे स्वीकार कर सामाजिक पर्वोत्सवो के प्रति उदार भावना व्यक्त करती है। इस प्रकार व्यक्तिगत दु ख व सताप का समष्टिगत हित और सुख मे उन्नयन व समाजीकरण कर दिया गया है।

इसके बाद की अनेक घटनाएं प्रत्यक्ष रूप से गौर के जीवन मे घटित होती है परन्तु वे उनके जीवन मे भी विष्णुप्रिया के ही चारित्रिक उत्कर्ष और महत्त्व की व्यजना करती है। उनके जीवन मे घटित होने वाली घटनाओ का चरम—नित्यानन्द को गृहस्थ बन जाने का आदेश देने मे हुआ, और इस घटना की, विष्णुप्रिया के मन में होने वाली प्रतिक्रिया का विश्लेषण सास के मुख से कवि ने कराया है—

"जीत हुई तेरी बहू, हारा वह अंत में।"
धीरे से बहू ने कहा ठडी आह भरके—
"अम्ब, देना-लेना अब क्या है हार-जीत से ?"[1]

वर्षों की वियोग-वेदना के उपरान्त मिलन के अवसर पर उसके मन मे उर्मिला की भाति पश्चाताप-मिश्रित करुण-आह्लाद नही, यशोधरा की भाँति उत्सर्ग करने को थाती भी नही। वह उपालम्भ भी नही देना चाहती और "मरने से कठिन हुआ जीना" की अनुभूति उसकी स्थिति को विषम बनाए रखती है, अत वह पति के आदेशानुसार आचरण कर उनके मार्ग को अधिकाधिक सरल, निष्कटक, और प्रशान्त बनाने मे जीवन की सार्थकता खोज लेती है। पति के हेतु यह 'स्व' का उत्सर्ग ही उसकी विजय है। उसकी भावना मे न मिलन-गीत की प्रसन्नता है, न उपालम्भ की वक्रता। एक विचित्र अवसाद और त्यागमय गम्भीर तल्लीनता का भाव है—

"अचल उस प्रभु में तुम्हारी रति वही,
और तुममे अटल मेरी मति वही।
मिले तुम्हें प्रभु, मिलो मुझे तुम, नहीं और कुछ कहना।"[2]

वह अपनी असमर्थता का निवेदन करती है कि वह भगवान का ध्यान इसलिए नही कर पाती, क्योकि बीच-बीच मे प्राणप्रिय आ जाते है अत. उसे जीवन-यापन के लिए विधि-आदेश अपेक्षित है। उत्तर मे परकीया भाव के अनन्य उपासक स्वकीया भाव की इस पराकाष्ठा के सम्मुख निरुत्तर होकर सम्मान मे खडाऊ छोड़कर खड़े हो गये। इस प्रसग मे नाटकीय आकस्मिकता व वैषम्य तो नही परन्तु भव्यता व गरिमा है, और यही काव्य का चरम है; परन्तु

---

१. विष्णुप्रिया—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १०६
२. वही, पृ० ११४

विष्णुप्रिया की करुण कथा का अन्त यहाँ भी नही होता। सास के न रहने पर वह कर्त्तव्य-बधनों से मुक्त होकर "मरने का अवकाश" अपना प्राप्य मानती है। परन्तु स्वय प्रभु-मूर्ति में विलीन होकर भी पति उसके लिए "आयु शेष रहते मरण आत्मघात है" का आदेश स्वप्न में छोड़ गए। वह दानशीला तपस्विनी, नियम-सयम और पति की प्रतिमा का अवलब लेकर "पल-पल से है मुझे जूझना लेकर ये कर रीते" सकल्प मे ही अपनी शेष करुण जीवन-कथा का उपसहार करने के लिए तत्पर हो जाती है।

कथा के उपर्युक्त सारांश को उपस्थित करने मे हमारा अभिप्राय यही था कि हम अपनी पूर्वकथित मान्यता को एक बार फिर दोहरा सके कि 'विष्णुप्रिया' काव्य नायिका-प्रधान होते हुए भी, उसकी व्यक्तिगत चेतना के साथ उसमे सामाजिक और कौटुम्बिक दोनो पक्षो का समागम हुआ है। व्यक्ति के साथ समाज, वस्तु के साथ आत्म, बाह्य के साथ अतरग और मूर्त के साथ अमूर्त को समान महत्ता देने के कारण उसमे वस्तुप्रधान व घटनात्मक प्रबन्धो की-सी सक्रिय व प्रखर गत्वरता तो नही मिलती परन्तु अनेक अशो मे इतिवृत्त-वर्णन निश्चित् रूप से आ गया है। दूसरी ओर आन्तरिक भाव-व्यंजना का वर्णन करते हुए कवि नितान्त व्यक्तिनिष्ठ, अमूर्त-व्यजक व आत्मकेन्द्रित तो नही हुआ परन्तु प्रगीतात्मकता विषय और अभिव्यजना दोनो मे है। नाटकीय वैषम्य, आकस्मिकता, दृश्य-चित्रण आदि का भी प्रयोग गुप्तजी ने नही किया, कारण—कथा में चारुत्व व रोचकता की सृष्टि कवि का लक्ष्य नही। घटनाओ मे क्रमिक विकास व अन्विति प्रबन्ध का अनिवार्य गुण है। 'विष्णुप्रिया' की समस्त घटनाओं मे सहज अन्विति तो है ही क्रमिक विकास की दृष्टि से सभी घटनाओ मे कार्य-कारण सम्बन्ध नही पूर्वापर सम्बन्ध है। कुछ घटनाओ के विषय मे पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि उनकी स्थिति अनिवार्य नही, परन्तु उनकी प्रयोजनीयता के समाधान मे तर्क उपस्थित किया जा सकता है। काव्य का वस्तु-विन्यास अत्यन्त स्पष्ट, साफ-सुथरा और उज्ज्वल है।

वर्णनात्मकता—इस काव्य मे विशेष नही। अनेक अशो मे इतिवृत्त का सहारा कवि लेता है, उसकी दृष्टि वस्तुगत कार्यकलापों पर टिकती है और वह कथा-तारतम्य के लिए वर्णन भी करता है, पर चलते हुए। कवि ने स्थिर चित्र बहुत कम अकित किये है। देश, काल, वातावरण का भी जमकर वर्णन उन्होने नही किया, क्योकि वर्णन कवि ने उतने ही किये है जितने कथा-तारतम्य बनाए रखने के लिए अनिवार्य थे और कथा भी उतनी ही कही है जितनी विष्णुप्रिया के महिमा-मंडित व्यक्तित्व के स्पष्टीकरण के लिए अपेक्षित थी। अतः वर्णनो का स्वतन्त्र महत्त्व बहुत कम है। प्राकृतिक वर्णनों का भी विशेष अवकाश कवि को नही मिला, क्योकि विष्णुप्रिया के प्रेम में व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक तीनो पक्षो को कवि ने समन्वित किया है। व्यक्तिगत प्रेमाभिव्यक्ति मे पात्र प्रकृति का आश्रय प्रायः तभी लेता है जब उसे सामाजिक धरातल पर सहानुभूति करने वाला या समभागी रक्त-मास का प्राणी प्राप्त नही होता अथवा वह किसी कारणवश उसके प्रति विरह-निवेदन नही करना चाहता। 'विष्णुप्रिया' मे ऐसे अवसर नही आए हैं। उसका सामाजिक पक्ष अत्यन्त समर्थ है। अत. परिवार और समाज के ही कुछ अत्यन्त इतिवृत्तात्मक वर्णन कवि ने किये है—

लौट देव-पूजन-प्रबन्ध कर सास का

चूल्हा सुलगाती, इसी बीच भृत्य गाय का
दूध दुह रखता, तपाती उसे छान के।
करती थी बाल-भोग प्रस्तुत मुकुन्द का।
थोड़े दाल-चावल निकाल उन्हें बीनती,
एक शाक लेकर सँवारती सुयत्न से।
साधारण भोजन, तथापि सास कहती—
"भाग्य में नहीं था हाय ! ऐसा स्वाद उसके !"
'स्वाद' बहू कहती—"है प्रभु के प्रसाद" में।
शाक और चावल थे विदुर-सुदामा के,
अर्पण में माँ, तुम्हारी श्रद्धा है उन्हीं की-सी।
भोजन के पीछे, लीप-पोत चौक चूल्हे को,
पात्र वह माँजती चमकते थे वे सदा।[1]

उपर्युक्त प्रसंग मे कवि की दृष्टि सर्वथा बाह्यनिरूपिणी है, परन्तु इन्ही पक्तियों के समान एक विशेषता इस प्रकार के सब वर्णनो मे है। दिनचर्या का वर्णन करते हुए भी कवि तुरन्त अवकाश निकालकर जहाँ बन पड़ता है, अन्तर्वृत्ति-निरूपण करने लगता है। सास-बहू का उपर्युक्त सवाद दोनों की मनःस्थिति का द्योतक है। अत ये वर्णन भी आन्तरिक व्यजना के साधक है। प्रकथन-पद्धति मे स्वय कथावस्तु का निरूपण करता हुआ कवि किस प्रकार अनुभावों द्वारा पात्र की मानसिक प्रतिक्रिया व्यंजित करता है निम्नलिखित पक्तियों में और भी स्पष्ट है—

विष्णुप्रिया स्तब्ध हुई सुनकर पहले।
भ्रांत-सी उन्हीं की ओर कुछ क्षण देखा की
काँपी फिर और गिरी पैरों पर उनके,
निगड़ लता-सी गति-रोधकर लिपटी।
रोई वह किन्तु बोल पाई नहीं कुछ भी,
आँसू बह निकले, वचन नहीं निकले।[2]

कवि ने प्रकथन के अतर्गत वर्णन और चित्रण दोनों शैलियों का प्रयोग किया है। परन्तु चित्रण में भी रूपात्मक चित्रण के साथ भावात्मक चित्रण स्वत' आ गया है—

घर में प्रवेश करती थी वधू, सहसा
ठोकर खा रक्त बहा उसके अंगूठे से।
मानों उस देहली को देके बलि पहली,
घूंघट में ओंठ चांपे, आह न की उसने।
वर ने अंगूठे से अंगूठे को दबा दिया।

---

१. विष्णुप्रिया—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ७०
२. वही, पृ० ४०

रक्त रुका, किन्तु बढ़ी वूनी अनुरक्तता।[1]

वर्णन-शैली में प्रसादमयता, स्पष्टता और सफाई सर्वत्र है। अलकरण मे विशेष नवीनता, लाक्षणिक वैचित्र्य, व्यजनागत चमत्कार अधिकतर नही मिलता। समाख्यान और प्रगीत-रचना दोनों ही सीधी, स्वच्छ और प्रसादमय शैली मे हुई है। कही-कही बिम्ब-विधान और अप्रस्तुत-चयन मे नवीन अलंकरण-विधि का प्रयोग कवि ने किया है, परन्तु ऐसे स्थलों पर शैली मे चमत्कार और नवीनता की अपेक्षा कवि का उद्देश्य प्रभविष्णुता की वृद्धि और स्पष्ट बिम्ब-ग्रहण कराना है। अमूर्त के लिए मूर्त बिम्ब-ग्रहण निम्नाकित पक्तियों मे देखिये—

करुणा हुई थी अब अन्तर्मुखी दोनों की
सोख यथा वृष्टि धारा भूमि भर लेती है।[2]

उपर्युक्त पक्तियो मे कवि का लक्ष्य केवल दोनों की मनःस्थिति को अधिकाधिक स्पष्ट करना ही नहीं, वृष्टि-धारा को सोख कर भूमि जिस प्रकार सर्वहिताय पुष्पित-पल्लवित होती है, उसी प्रकार दोनो की अन्तर्मुखी करुणा का प्रतिफलन कालान्तर मे किस प्रकार परहित के लिए आत्मविस्तार के रूप मे हुआ, इस भावसत्य की व्यजना भी कवि ने इस साभिप्राय बिम्ब-विधान से की है। 'विष्णुप्रिया' की वर्णन-शैली सामान्यतः प्रकथनात्मक है, जिसमे कवि ने विशेष रूप से सवादो की योजना कर नाटकीयता का विधान किया है। सवाद विशेष सजीव, सक्षिप्त और प्रभावव्यजक है। बीच-बीच में प्रगीतों की रचना भी की गई है, परन्तु विष्णुप्रिया के गीत एकांतिक विरह-व्यथा को मुखरित नही करते, उनमें सामाजिक चेतना भी व्यक्त हुई है। "गुप्तजी ने विष्णुप्रिया की आत्माभिव्यंजना को विस्तृत भाव-भूमि प्रदान की है। वह कर्त्तव्य-निष्ठ सक्रिय चरित्र है। उसने अपने उत्कट प्रेम की, विरह-पीडा की, प्रिय के दोष-प्रक्षालन की, असिद्ध मातृत्व और असफल गृहस्थाश्रम की, सास की सेवा और स्वावलबन की, समाज से दया-दान न ग्रहण करने के आत्म-दर्प की, प्रिय के गुण-श्रवण की, लोक-मर्यादा के बधन की, मरण-कामना की, स्वामिमरण और भक्ति-भाव की तथा षट्-ऋतुओं मे अपने जीवन के एकरसत्व की मार्मिक व्यजना की है। वह सप्राण और भावाविष्ट चरित्र है। उसकी वियोगानुभूति मे अनेकतलस्पर्शिता व्यजित हुई है।"[3]

दूसरे शब्दो मे इन प्रगीतो को केवल विरहिणी की आत्मानुभूति तक सीमित न रखकर उसकी एकनिष्ठ अतर्वृत्ति को विभिन्न परिस्थितियो के मध्य विविध अर्थ-भूमियो की व्यापकता प्रदान की गई है। उनकी ये प्रगीतियाँ एकान्त आत्मनिष्ठ नहीं, उनमे वस्तुनिष्ठता विद्यमान है।

शिल्प

आरम्भ में मंगलाचरण के अतिरिक्त कवि ने खण्डकाव्य के किसी परम्परागत अनुबन्ध

---

१. विष्णुप्रिया—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १६
२. वही, पृ० १०७
३. मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य—डा० कमलाकान्त पाठक, पृ० ५६१

का पालन नही किया। कथा-विस्तार पर्याप्त होने पर भी कथा न सर्गों में विभाजित है और न प्रसगो व शीर्षको मे बाँधी गई है। कवि ने सम्पूर्ण कथा का अखण्ड धारा-प्रवाह वर्णन किया है। बीच मे क्षणिक विराम प्रगीतो की रचना द्वारा उपस्थित किये गए है, परन्तु ये प्रगीत भी अधिकतर कथाश्रित है। सर्गों के अभाव मे भी कथा मे किसी प्रकार की उलझन, अस्पष्टता या देश, काल, घटना मे किसी प्रकार का विरोध या वैषम्य उत्पन्न नही होता। घटनास्थल बदलने पर अन्य स्थल की घटनाओ की सूचना या विवरण दे दिया गया है।

छन्द-विधान—'विष्णुप्रिया' की रचना गुप्तजी ने अपने १५ वर्ण वाले प्रिय छन्द घनाक्षरी-उत्तर-चरणार्द्ध मे की है। बीच-बीच मे प्रगीत-रचना मे छन्द बदल गया है। प्रगीतो की रचना 'यशोधरा' की भाँति अनेक मात्रिक छन्दो मे की गई है। छन्द विविध है परन्तु पद्धति वही है। उसी प्रकार कवि ने सम, विषम, अर्द्धसम, त्रिसम, मिश्र, और गीतो के लिए नव विकर्षाधार के सम व विषम छन्दो की योजनाएँ व प्रयोग किये है। 'यशोधरा' की ही भाँति कही कवि ने मुक्तक-पद्धति पर स्वत पूर्ण छन्द-रचना की है—

गौरी हो काली हो गिरजे, तू ही भाग्यवती,
तेरे वश में हैं तेरे पति, हों योगीन्द्र, यती।
हम कुल ललनाओ की लज्जा तू आदर्श सती
मैं अबला हूँ तो क्या, मेरी तू सब शक्तिमती।[1]

और कही कवि सम या विषम परम्परागत छन्दाकार अपनाकर, व अन्यत्र छन्दो के मिश्रण से विषम विकर्षाधार इकाई बनाकर क्रमशः एक छन्द या इकाई की आवृति करता है—ऐसा गीत-रचना मे हुआ हे। निम्नाकित गीत मे छन्द-रचना मिश्र, आधार मात्रिक छन्द, योजना विषम व विकर्ष नवीन है—

मानों अब निज से भी न्यारे,	**१६ मात्राएँ**
खोये से रहते हैं प्यारे।	**१६ ,,**
सखि, मैं लाजों मर गई सुन उनकी यह बात,	**२४ ,,**
रास रचो राधे, चलो आज दुपहली रात।	**२४ ,,**

क्यों तुम यों अपना मन मारे?
खोये से रहते हैं प्यारे।
झर-झर आँसू बह उठे भर-भर लाये मेह,
हर-हर मैं कहने लगी थर-थर कांपी देह।
वे यों सारी सुध-बुध हारे।
खोये से रहते हैं प्यारे।[2]

इस गीत मे आवृत इकाई प्रथम दो पक्तियाँ चौपाई की, और उसके उपरान्त दोहे के चरणों को मिलाकर बनायी गई है। सम्पूर्ण गीत मे इसी इकाई की आवृति है। मात्रा सख्या-क्रम

---

१. विष्णुप्रिया—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ७९
२. वही, पृ० ३५

१६, १६, २४ (१३, ११) २४ (१३, ११) और अन्त्यक्रम क, क, ख, ख, क, क, ग, ग, है। दूसरी पक्ति छन्दक (टेक) की पक्ति है।

इस प्रकार 'विष्णुप्रिया' के प्रगीत—मुक्तक, पद, और गीत सभी रचना-पद्धतियो मे लिखे गए है। छन्द-योजना की विधि जैसा पहले कहा जा चुका है वही है जो 'यशोधरा' की प्रगीत-रचना मे कवि ने अपनायी है। विस्तार-भय से सभी छन्दो का विश्लेषण हम यहाँ नही करेंगे—वह हमारा विषय भी नही। हमारा अभिप्राय केवल विधि की ओर निर्देश करना है और इस काव्य के छन्द-विधान मे वे सभी नवीनताएँ और परम्पराएँ है जो 'यशोधरा' की प्रगीत रचना मे, अर्थात् छन्दों के आधार शास्त्रीय और नियोजन-विधि कवि की नितान्त मौलिक है।

कुरुक्षेत्र

कालक्रमानुसार 'कुरुक्षेत्र' की रचना 'विष्णुप्रिया' से पूर्व हुई, परन्तु हम उसका विवेचन बाद मे केवल इसलिए कर रहे है कि रचना-पद्धति और काव्य-रूप की दृष्टि से 'विष्णुप्रिया' और 'यशोधरा' में कुछ अशो तक समानता है, परन्तु 'कुरुक्षेत्र' का काव्य-रूप इन दोनो से भिन्न है।

'कुरुक्षेत्र' के काव्य-रूप के विषय मे विद्वानो मे 'यशोधरा' से कम मतभेद नही रहा। कारण—इस रचना मे विस्तार है, सर्गबद्धता है, तारतम्य है, प्रबन्धत्व है, ऐतिहासिक पात्र है, परन्तु कथा नही समस्या है, समाख्यान नही विश्लेषण है, वर्णन नही चिन्तन है। प्रबन्ध के परम्परागत रूप मे देश, काल और पात्रो से विशिष्ट कथा और घटनाएँ, 'कुरुक्षेत्र' मे नही, परन्तु जो कुछ उसमे कहा गया है उसका सम्बन्ध भी जीवन के एक विशेष पक्ष, एक विशिष्ट समस्या से है, और इस प्रकार समस्त काव्य मे विषय-सम्बन्धी प्रबन्धत्व या विचारो का तारतम्य विद्यमान है। काव्य का कोई अश दूसरे से असम्पृक्त व निरपेक्ष नही। परम्परागत प्रबन्ध काव्य से 'कुरुक्षेत्र' मे अन्तर यही है कि कवि यदि प्रबन्ध में उद्देश्य-रूप से किसी समस्या पर विचार भी करना चाहता है तो वह कथा के माध्यम से ध्वनित होता हे, अथवा 'उन्मुक्त' के कवि की भाँति प्रतीकात्मक कथा का प्रयोग कर रूपक के विधान से कुछ परिणामो की व्यजना करता है। 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने न कथा का सहारा लिया है न देश-काल और वातावरण का। उसने समष्टि के धरातल पर देश-काल के बन्धनो से मुक्त एक अत्यन्त व्यापक समस्या उठा ली है। इस समस्या का सम्बन्ध व्यष्टि से नहीं समाज से है और इसका स्वरूप सर्वदेशीय व सार्वकालिक है। इसीलिए कवि ने 'इतिहास के अध्याय' पर इसी समस्या से दु.खित पात्र खोज कर उनके माध्यम से इस समस्या को वाणी दी है।

हम इस काव्य को प्रबन्ध इसलिए मानते है कि इसके सभी वर्ण्य प्रसगो में परस्पर सम्बन्ध है, और सभी का सम्बन्ध एक समस्या से है—युद्ध की समस्या। उसमे एक कथा की विविध घटनाएँ, कार्य-व्यापार नही, परन्तु एक समस्या के विभिन्न कोण हैं। समस्त विचार-धारा उसी एक विषय से सम्बद्ध है। युद्ध का उत्तरदायी, युद्ध के कारण, परिणाम, नीति, युद्ध का प्रतिकार, तथा उससे सम्बन्धित अन्यान्य समस्याएँ, और कवि के अपने समाधान—यही इस

काव्य का विषय है। काव्य में विचार का आरम्भ, विकास और उपसंहार सभी कुछ है। प्रबन्ध के विभिन्न भागों में इस प्रकार संगुफन नहीं कि एक भी अंश इधर-उधर करने से समस्त प्रबन्ध-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाय या लड़खड़ाने लगे। एक सम्पूर्ण सर्ग (छठा) क्षेपक के समान यदि उड़ा लिया जाए तो भी काव्य के विचार-विन्यास में तारतम्य की दृष्टि से विशेष बाधा नहीं आएगी, परन्तु ऐसा तो कभी-कभी घटनाप्रधान प्रबन्धों में, और भावप्रवण रचनाओं में भी सम्भव होता है। प्रबन्ध-गुण की शिथिलता से भी ऐसा हो जाता है। 'कुरुक्षेत्र' में छठे सर्ग को छोड़कर सभी भागों की अपनी उपादेयता है, और वह निर्विवाद है। कथाश्रित मुक्तकों की भाँति विचार का (घटनाएँ इस काव्य में नहीं हैं) पुनराख्यान या आवृति भी कवि ने प्रायः नहीं की है। कहीं-कहीं 'कुरुक्षेत्र' की तर्क-पद्धति में अवश्य पुनरुक्ति है। कवि अंगी रूप में एक, और अंग रूप में अनेक समस्याओं को उठाकर उनका आरम्भ, मध्य, अवसान, अंकित करता है। इस प्रकार एक आधिकारिक कथा के साथ अनेक प्रासंगिक प्रसंग भी प्रबन्ध-योजना में आत्मसात् हैं। काव्य में घटना-ऐक्य नहीं परन्तु विचार-ऐक्य अवश्य है। अन्त के विषय में पाठक विशेष आश्वस्त नहीं हो पाता, परन्तु इसका कारण समस्या का स्वरूप है जिसका कोई स्थायी समाधान सम्भव नहीं।

प्रबन्ध-विधान—उल्लेख करने के लिए एक अत्यन्त क्षीण-सी कथा भी 'कुरुक्षेत्र' में प्रबन्धत्व को प्रमाणित करने के लिए ढूँढ़ी जा सकती है, परन्तु 'कुरुक्षेत्र' स्पष्ट रूप से समस्या-मूलक काव्य है। इसीलिए कवि ने जहाँ कहीं पात्रों के जीवन से असम्बद्ध विचारों का सन्निवेश किया है (छठे सर्ग में) वहाँ वह प्रबन्ध की दृष्टि से खटकता ही नहीं, कथा की वास्तविकता के भ्रम को भंग करने का कारण बन जाता है। 'कुरुक्षेत्र' में वस्तु-गौरव का अभाव है, कथानक में व्यापकता तो है ही नहीं, कहीं-कहीं उससे व्यक्त विचार भी तत्कालीन पृष्ठभूमि से अलग हो जाते हैं।

कवि ने काव्य का आरम्भ 'कुरुक्षेत्र' की युद्धभूमि मे क्लान्तमना, विजय पर खिन्न युधिष्ठिर की मनःस्थिति के विश्लेषण से किया। कवि ने यह व्यंजना की, कि विजित और अन्यायी के पराभव से सदैव विजयी भी सुखी व आश्वस्त नहीं होता, और फिर क्रमशः तर्क व कथोपकथन-पद्धति के सहारे वह आगे बढ़ गया। युद्ध के कारण, विशेष परिस्थितियों में उसकी अनिवार्यता, युद्ध का उत्तरदायी, प्रतिकार, हमारी सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था, उसमें परिवर्तनों की अनिवार्यता, आदर्श व्यवस्था का कवि का अपना स्वप्न, और उसमें व्यंजित होने वाला इस शाश्वत समस्या का सम्भावित समाधान—यही 'कुरुक्षेत्र' काव्य की चिन्ताधारा का क्रम है। जैसा पहले भी निवेदन किया जा चुका है छठे सर्ग को छोड़कर शेष सभी प्रसंग मुख्य विचारणीय समस्या से सम्बद्ध हैं, अतः विचार सम्बन्धी प्रबन्धत्व इस काव्य में निश्चय ही वर्तमान है। कथा-निर्वाह के प्रति भी कवि उदासीन नहीं है, यह चतुर्थ सर्ग में भीष्म द्वारा आत्म-चरित की पर्यालोचना से स्पष्ट है। (हम उनके दृष्टिकोण से कहाँ तक सहमत हैं? यह एक भिन्न प्रश्न है) चरित्र-चित्रण के प्रति कवि का यह राग इस बात का प्रमाण है कि वह कथात्मक काव्य की विशेषताओं की पूर्णतः उपेक्षा नहीं करना चाहता।

'कुरुक्षेत्र' को हम खण्डकाव्य इसलिए मानते हैं क्योंकि यह काव्य जीवन की अनेक और

विविध समस्याओं का चित्रण और समाधान प्रस्तुत नहीं करता। जिस प्रश्न को 'कुरुक्षेत्र' मे उठाया गया है, वह व्यापकता की दृष्टि से सीमित है। उसका सम्बन्ध जीवन की एक एकांगी, एकपक्षीय समस्या से है, जीवन की समग्रता और व्यापकता का उसमे अन्तर्भाव नहीं। उसकी समस्या मानव-इतिहास की दृष्टि से चिरन्तन है, परन्तु उसका स्वरूप सामयिक है। हमारा विनम्र मत उन विद्वानों के पक्ष में नही है जिन्होंने 'कुरुक्षेत्र' को महाकाव्य माना है।[1] महाकाव्य की बाह्य एव अनिवार्य विशेषताओं की कसौटी पर भी 'कुरुक्षेत्र' किसी भी दृष्टि से सफल नही माना जा सकता। उसमे महाकाव्य की कुछ गौण विशेषताएँ निश्चय ही प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए प्रख्यात कथानक, (कुरुक्षेत्र मे ऐतिहासिक आधार भर है इतिहास की रेखाओं को कवि ने कल्पना के रगों से ही अधिक भरा है) छन्द-वैविध्य, युद्धादि के वर्णन, उद्देश्य की महत्ता आदि, परन्तु रूढिवादिता को परे हटाकर भी 'कुरुक्षेत्र' को महाकाव्य नही स्वीकार किया जा सकता। उसकी खण्डित वास्तुकला, व्यापक जीवनगत मूल्यों का अभाव, पात्रो की न्यूनता, वर्णनो की एकागिता, नायक का धीर परन्तु क्लान्त रूप, सर्ग-संख्या की अल्पता, रस-व्यजना की सीमाएँ आदि परिसीमाएँ महाकाव्य के शाश्वत एवं अनिवार्य लक्षणो से सम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त गौण एव बाह्य रूढियों का पालन भी 'कुरुक्षेत्र' में नही हुआ। महाकाव्य के व्यापक अथवा लक्षणबद्ध किसी भी रूप मे 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य नही है।

'कुरुक्षेत्र' को महाकाव्य सिद्ध करने के दुराग्रह की अपेक्षा भी नही। स्वय कवि ने उसे महाकाव्य बनाने का दावा नही किया। निवेदन मे दिनकरजी ने 'कुरुक्षेत्र' की प्रेरणा और विधि को दृष्टि मे रखते हुए जो कुछ कहा है वह उसके काव्य-रूप पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है। हमारी समझ मे उससे कम या अधिक 'कुरुक्षेत्र' और कुछ नही। कवि की अपनी दृष्टि मे—

"मुझे जो कुछ कहना था वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाये बिना भी कहा जा सकता था, किन्तु, तब यह रचना, शायद, प्रबन्ध के रूप मे नही उतरकर मुक्तक बनकर रह गई होती। तो भी यह सच है कि इसे प्रबन्ध के रूप मे लाने की मेरी कोई निश्चित योजना नही थी ·।"

और अन्त मे कवि ने फिर निवेदन किया है—

"कुरुक्षेत्र मे प्रबन्ध की एकता उसमे वर्णित विचारो को लेकर है। दरअसल इस पुस्तक मे मैं प्रायः सोचता ही रहा हूं। भीष्म के सामने पहुँचकर कविता जैसे भूल-सी गई हो। फिर भी, कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अन्ततः एक साधारण मनुष्य का शकाकुल हृदय ही है जो मस्तिष्क के स्तर पर चढकर बोल रहा है।"[2]

---

१. हमारे जीवन की भांति हमारे महाकाव्य भी प्राचीनता और नवीनता के बीच में है किन्तु हमारी विचारधारा की भांति उनमें भी कुछ नवीन विचार आ रहे है। दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' इसका प्रमाण है।

हिन्दी-साहित्य—डा० भोलानाथ, पृ० ४३८

लक्ष्मीनारायण सुधाशु का मत भी ऐसा ही है।

२. कुरुक्षेत्र—दिनकर, निवेदन, पृ० १-२

उपर्युक्त उद्धरण से कुरुक्षेत्र के काव्य-रूप के सम्बन्ध मे कुछ निष्कर्ष ग्रहण किये जा सकते हैं :—

(१) 'कुरुक्षेत्र' एक प्रबन्ध काव्य है।

(२) ऐतिहासिक पात्रों का प्रयोग काव्य मे वर्णित विचारो के प्रबन्ध-रूप मे सग्रथन के उद्देश्य से किया गया है।

(३) कवि ने इसका प्रबन्ध-विधान किसी निश्चित पूर्व योजना के अनुसार नही किया, अर्थात् उसकी इच्छा केवल विचारो को प्रबन्ध-रूप मे प्रस्तुत करने की थी, प्रबन्ध मे वस्तु-कौशल के प्रति वह विशेष सतर्क व आस्थावान नही रहा।

(४) 'कुरुक्षेत्र' मे प्रबन्धात्मकता घटनाओं या कार्य-व्यापार की नही, विचारो की है। उसकी प्रेरक, कवि की हृदयगत अनुभूति भी, काव्य-रचना के क्षणो मे मस्तिष्क के स्तर पर चढ-कर चिन्तनप्रधान व विचारात्मक वाणी मे बोलती रही है। एक शब्द मे 'कुरुक्षेत्र' विचारात्मक प्रबन्ध है।

जैसा हम पहले स्पष्ट कर आए हैं उसकी समस्या एकपक्षीय है। जीवन के एकाग मे सम्बद्ध प्रश्न कवि ने उठाया, अतः खण्ड-विशेष का अकन होने के कारण हम उसे 'विचारात्मक खण्डकाव्य' कहेगे।

'कुरुक्षेत्र' के विचार-विन्यास की प्रबन्धात्मकता के विषय मे आक्षेप करना बेकार है। आक्षेप का अवसर दिये बिना ही कवि ने उसका दायित्व अपने ऊपर ले लिया है।

"जहाँ कोई ऐसी उडान आई है, जिसका सम्बन्ध ऊपर से नही बैठता, उसका सारा दायित्व मैंने अपने ऊपर ले लिया है। ऐसे प्रसग, अपनी प्रक्षिप्तता के कारण, पाठको की पहचान मे आप ही आ जायेगे। पूरा-का-पूरा छठा सर्ग ऐसा ही क्षेपक है जो इस काव्य मे टूटकर अलग भी जी सकता है।"[१]

इस स्वीकारोक्ति के उपरान्त कुछ कहने के लिए नही रह जाता।

डा० नगेन्द्र ने 'कुरुक्षेत्र' के लिए एक नयी सज्ञा का प्रयोग किया है। वे 'कुरुक्षेत्र' को प्रबन्ध काव्य मानने के पक्ष मे नही। उनका मत है—

"पारिभाषिक रूप मे तो इसे सप्त-सर्ग-बद्ध पौराणिक प्रबन्धकाव्य कहा जा सकता है, परन्तु वस्तुत न तो यह पौराणिक ही है और न प्रबन्ध काव्य ही। यह तो अभी समाप्त होने वाले यूरोप के द्वितीय महासमर से प्रेरित एक लम्बी चिन्ताप्रधान कविता है। इसमे न तो कुरु-क्षेत्र का घटना-चक्र है और न उसका क्रमिक निबन्धन, इसमे तो स्वय कवि के शब्दो मे उसका शंकाकुल हृदय ही मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोल रहा है। वास्तव मे चिन्ता-प्रधान कविता की यही परिभाषा है—जब हृदय अपने उद्‌गार सहज और प्रत्यक्ष रूप मे व्यक्त करता है तब गीति-कविता का जन्म होता है और जब वह मस्तिष्क के स्तर पर चढकर बोलता है तो चिन्ता-प्रधान कविता का उद्‌भव होता है।"

उन्होने दिनकर के विरोध मे कहा—

---

१. कुरुक्षेत्र—दिनकर, निवेदन, पृ० २

"दिनकर ने स्वयं 'कुरुक्षेत्र' के प्रबन्ध-तत्त्व की सफाई में कहा है कि इसके प्रबन्ध की एकता वर्णित विचारों को लेकर है, परन्तु उनकी यह धारणा भ्रान्त है। इसमें एकता विचार की बिल्कुल नही है—वरन् युद्ध के औचित्य और अनौचित्य को लेकर उठने वाली उस शका की है जिसने उनके मन को अस्थिर कर दिया था। इस काव्य मे कुरुक्षेत्र युद्ध का प्रतीक है, युधिष्ठिर और भीम कवि के तर्क और वितर्क अर्थात् विचार के दोनो पक्षो के प्रतीक हैं, जिन पर आरूढ होकर उनके मन की द्विविधा समाधान की ओर दौडती है।"[1]

डा० नगेन्द्र के इस मत से 'कुरुक्षेत्र' के सम्बन्ध में उनकी निम्नलिखित धारणाएँ स्पष्ट है :

१ पारिभाषिक रूप से इसे सप्त-सर्ग-बद्ध पौराणिक प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है।

२. वस्तुत· यह न पौराणिक है न प्रबन्ध, एक लम्बी चिन्ता-प्रधान कविता है।

३ इसमे न कुरुक्षेत्र का घटना-चक्र है न उसका क्रमिक निबन्ध।

४. कुरुक्षेत्र मे एकता विचार की बिल्कुल नही है—वरन् युद्ध के औचित्य और अनौचित्य को लेकर उठने वाली उस शंका की है जिसने उनके मन को अस्थिर कर दिया था।

इस मत के उत्तर मे हम एक बार पुन. अपनी बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेगे। इस विषय में कि सच्चे अर्थ मे 'कुरुक्षेत्र' को पौराणिक नही माना जा सकता तथा 'कुरुक्षेत्र' प्रतीक मात्र है—युद्ध का, और वास्तविक 'कुरुक्षेत्र' युद्ध की घटनाओ व उनके क्रमिक निबन्धन का इस काव्य मे अभाव है, वैमत्य सम्भव नही है। इससे आगे 'कुरुक्षेत्र' को केवल चिन्ता-प्रधान कविता मानकर प्रबन्ध नही मानना शका उत्पन्न करता है। डा० नगेन्द्र ने 'कुरुक्षेत्र' की रचना-पद्धति व प्रेरणा-स्रोत की दृष्टि से कवि के शब्दो को ही आधार मानकर इसे चिन्ता-प्रधान कविता कहा है। उनके अनुसार हृदय जब मस्तिष्क के स्तर पर चढकर बोलता है, या यो कहे कि कवि जब अपनी अनुभूति का बौद्धिक विश्लेपण करता है, बुद्धि द्वारा उसे समझने-समझाने का प्रयास करता है तभी चिन्ता-प्रधान कविता लिखी जाती है। इसके उपरान्त श्रद्धेय डा० साहब ने यह स्पष्ट नही किया कि चिन्ता-प्रधान प्रबन्ध-काव्य से चिन्ता-प्रधान कविता का व्यावर्त्तन किन आधारो पर किया जायगा। यदि हम उन्ही की परिभाषा को थोडा और आगे बढाकर कहें कि हृदय जब मस्तिष्क के स्तर पर चढकर बोलता है और वह कुछ दूर तक बोलता जाता है और जो कुछ वह बोलता है उसमे तारतम्य, क्रमबद्धता, निबन्धन, और एकसूत्रता होती है तो चिन्ता-प्रधान प्रबन्ध-काव्य का जन्म होता है, तो 'कुरुक्षेत्र' की विधा की कुछ-कुछ व्याख्या हो जाती है।

उन्होने एक बात और कही कि 'कुरुक्षेत्र' मे एकता विचार की बिल्कुल नही है—वरन् युद्ध के औचित्य और अनौचित्य को लेकर उठने वाली उस शंका की है जिसने उनके मन को अस्थिर कर दिया था। यदि हम उनके और कवि के आशय को गलत नही समझ रहे है तो हमे दोनो मे मतान्तर की अपेक्षा शब्दान्तर अधिक प्रतीत होता है। विचार हमारे मन मे किसी मूर्त व अमूर्त विषय का आधार लेकर उठते है, विचार कभी निरावलम्ब नही होता, स्वय अमूर्त

---

१. विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, पृ० १२८

अवश्य होता है । अतः विचारों में एकता के दो रूप सम्भव हो सकते हैं—विचार में विषय-सम्बन्धी एकता तथा विचारों में चिन्तन-पद्धति सम्बन्धी एकता। और स्पष्ट शब्दों में हम एक विषय के सम्बन्ध में अनुकूल प्रतिकूल तर्क-वितर्क करते रहे तो यह एक प्रकार की एकता होगी, और हम एक विषय या अनेक विषयों के सम्बन्ध में एक ही विधि से एक ही विशेषता के विषय मे सोचते है तो यह दूसरे ढंग की एकता होगी। उदाहरण लीजिये—अमुक व्यक्ति का रूप हमारे विचार का विषय है। वह ऐसा है बहुत अच्छा है, वह ऐसा नहीं है इसलिए उसकी सुन्दरता में कुछ न्यूनता आ गई है, यदि ऐसा नही वैसा होता तो बहुत अच्छा रहता। उत्तरदायित्व वेशभूषा पर है फिर भी सब मिलाकर ठीक-ठाक है—यह सोचने की एक पद्धति है। दूसरी पद्धति में हम सोचेंगे, वह अच्छा है, उसमे यह विशेषताएँ है, उसमें ही नही अ, ब, में भी यही विशेषताएँ हैं; उसका अमुक अग ऐसा है, वर्ण गौर है, आदि-आदि। एक सूक्ष्म उदाहरण लीजिये किसी दर्शन-विशेष मे चरम सत्य का स्वरूप, उसकी साधक पद्धति, गुण-दोष, अनुकूल-प्रतिकूल तर्क, सुधार के उपाय आदि विषयक चिन्ता, चिन्तन का एक ढग और एक या एकाधिक दर्शनों में केवल चरम सत्य का स्वरूप ज्ञान-चिन्तन की दूसरी पद्धति है। 'कुरुक्षेत्र' मे पहली विधि है, दूसरे ढग का विचार-ऐक्य नही। वास्तव में विचार की विषय-सम्बन्धी एकता बहुत दूर तक विचार-ऐक्य के लिए उत्तरदायी होती है। यदि हम ध्यान से देखें तो डा० नगेन्द्र ने जिसे शका-सम्बन्धी एकता कहा है वह विचार-एकता से बहुत भिन्न नही। कवि के मन मे जो शका है उसका विषय है युद्ध, और जो विचार व्यक्त किये गए है उनमे से अधिकाश का सम्बंध युद्ध से ही है। विचार मे अनेकता इसी दृष्टि से कही जा सकती है कि इस समस्या पर विचार कवि ने अनेक दृष्टिकोणो से, विभिन्न पहलुओ से किया है—एक ही पक्ष या एक ही कोण से नही। वह अनेकता की मूलवर्ती एकता की रक्षा करते हुए भी क्रमशः एकता से अनेकता की ओर अग्रसर हुआ है। घटनाप्रधान काव्य मे भी घटना-ऐक्य इसी रूप मे होता है कि काव्य के आधिकारिक वृत्त से समस्त घटना-चक्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे सम्बद्ध होता है। कुछ घटनाएँ या प्रासगिक वृत्त कार्य-विकास के साधक व अन्य बाधक होते है। कुछ फलप्राप्ति की ओर अग्रसर करने मे सहायक व अन्य अवरोधक होते हैं, परन्तु किसी न किसी रूप मे सब की स्थिति प्रयोजनीय होती है। समस्त कार्य-व्यापार एक ही दिशा मे अग्रसर नही होता। 'कुरुक्षेत्र' मे भी समस्या एक है युद्ध, और वही उसकी प्रमुख समस्या है। युद्ध के निमित्त कारणो और सम्भाव्य समाधानो पर विचार मानों इस समस्या के हेतु और निवारक तत्त्व या समस्या-निवारण रूपी फल या उद्देश्य के साधक व बाधक तत्त्व है। कुछ समस्याएँ और है जिनका प्रयोग प्रासगिक विचारो के रूप मे समझा जा सकता है। जहा उसकी वास्तुकला खण्डित है, अथवा कुछ स्थल मुख्य विषय से असम्बद्ध है उसका उत्तरदायित्व प्रबन्ध-कौशल पर है, प्रबन्धत्व के अभाव पर नहीं।

वर्ण्य-विषय—दोहराने की आवश्यकता नही कि 'कुरुक्षेत्र' का वर्ण्य विषय अमूर्त है, हृदय की शका से प्रेरित विचार है। कवि ने पात्रों का प्रयोग व समस्या से सम्बन्धित विचारधारा के दो पक्षो को समाख्यान शैली मे प्रस्तुत न कर नाटकीयता का समावेश व अभिवृद्धि की है। समस्त तर्क एक मुख मे और वितर्क दूसरे मुख में रख दिया है। इस पक्ष-विपक्ष के प्रस्तुतकर्ता पात्र

ऐतिहासिक व्यक्ति है, यही इसमें वस्तु तत्त्व है। इसके अतिरिक्त घटना, पात्र, देश, काल, वातावरण के नाम पर विषयप्रधान दृष्टि कहीं नहीं दिखाई पड़ती। कुरुक्षेत्र—जिसके नाम पर काव्य का नामकरण हुआ है, अपने समस्त प्रपंच सहित इस काव्य के रंगमंच से लुप्त है। कवि ने युद्ध-पूर्व कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है (वर्णन नही) परन्तु या तो विचारोद्दीपन के लिए, अथवा विचार-समर्थन के लिए, या युद्ध के कारण या परिणामों के विश्लेषण के लिए, परन्तु इन घटनाओ का कवि प्रासगिक रूप मे उल्लेख भर करके रह गया है—द्रौपदी के केश-कर्षण और पाण्डवो द्वारा अश्वमेध यज्ञ के विधान की घटनाओं का उल्लेख ऐसा ही है।

कवि की विचारधारा में भी दो पक्ष है। युधिष्ठिर के माध्यम से कवि ने व्यक्तिवादी पक्ष—जिसमें पाप-पुण्य, नीति-अनीति, धर्म-अधर्म आदि के निर्णय की जिज्ञासा प्रस्तुत की है। यह दृष्टि आत्म-केन्द्रित और अन्तर्मुखी है। इसका समाधान भीष्म के पक्ष से हुआ है। उनकी प्रवृत्ति बहिर्मुख और लोकवादी है। युधिष्ठिर ने साधुमत के पक्षपात द्वारा त्याग, तपस्या, करुणा आदि को व्यक्ति-धर्म मान लिया, और भीष्म ने लोकमत और लोककल्याण की दृष्टि से युद्ध को व्यक्तिगत स्वार्थ न मानकर अनीति-विरोधी पक्ष का समर्थन किया है। परन्तु यह सब बुद्धि के अदृश्य रंगमंच पर घटित होता हुआ वाणी से प्रसारित होता है। कवि ने इन विचारधाराओ का सैद्धान्तिक स्वरूप प्रस्तुत किया है व्यावहारिक नही। वह भौतिक जीवन के धरातल पर समस्याओ के व्यावहारिक चित्रण और समाधान नही करता। इस प्रकार 'कुरुक्षेत्र' समस्या-प्रधान काव्य है, परन्तु ये समस्याएँ प्रेमचन्द द्वारा गृहीत समस्याओं के समान वस्तुनिष्ठ भौतिक समस्याएँ नही, इनका अंकित स्वरूप आत्मनिष्ठ और बौद्धिक है। समस्या का व्यावहारिक रूप नहीं, उसके प्रति व्यक्ति के मन की क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त है।

विषय अमूर्त होने पर भी कतिपय अशों के अतिरिक्त काव्य मे प्रखर गत्वरता है। एकाध स्थल पर तर्क-पद्धति मे पुनरुक्ति या एक ही विषय पर कुछ दूर तक चिन्तन करने के कारण एकरसता आ गई है, परन्तु अन्यत्र सर्वत्र ही उनकी विचारधारा मे दुर्दम प्रवाह और अनवरुद्ध गति है, जो तदनुकूल ओजोद्दीप्त वाणी के माध्यम से व्यक्त हुई है। कवि ने पाठक की बुद्धि को विराम का अवकाश नही दिया, कही-कही असहमति के कारण ठिठकना अवश्य पडता है, परन्तु पैर जमने नहीं पाते, और पाठक शंका को अन्त के लिए स्थगित कर अनवरत गति के साथ फिर आगे बढ जाता है।

शैली व शिल्प

दिनकरजी ने घटनाओं के अभाव के कारण कथा-समाख्यान तो किया ही नही परन्तु अमूर्त विषय की अभिव्यक्ति भावप्रवण गीतियों के माध्यम से भी नहीं हुई है। गीतिकाव्य तीव्र किन्तु सरल प्रतीतियों एवं उच्छ्वासों के लिए उपयुक्त माध्यम हो सकता है, समस्यामूलक विमर्श या चिंतन के लिए नहीं, अत. 'कुरुक्षेत्र' मे भावुकता व आत्मद्रव के स्थान पर बौद्धिकता और आत्म-चिंतन है जो विश्लेषणात्मक शैली में व्यक्त हुआ है। कहीं-कही वर्णनात्मकता विचार-समर्थन या उद्दीपन के लिए वर्णित घटनाओं के प्रसंग में आ गई है, परन्तु वह 'कुरुक्षेत्र'-की प्रधान शैली नही है। समस्त विचार-विमर्श दो पात्रों के बीच संवाद के रूप में प्रस्तुत करके, कवि ने नाट्य तत्त्व

की भी रक्षा की है, परन्तु इसे नाट्य तत्त्व के स्पर्श-मात्र से अधिक कुछ स्वीकार नही किया जा सकता। सफल नाटकीय सवादो मे इतनी लम्बी वक्तृताओं का अवकाश नही होता। अनेक स्थलों पर इनका स्वर मंचीय भाषण का सा हो गया है।

'कुरुक्षेत्र' की शैली मे यद्यपि चित्रो की भरमार नहीं, उसका विषय अमूर्त है परन्तु जहाँ अवसर मिला है वहाँ कवि ने अत्यन्त समर्थ भाषा मे विराट और कोमल चित्र उपस्थित किये है। ऐसे स्थलों पर मूर्त के लिए मूर्त, परन्तु अत्यन्त अनुकूल काव्य-सामग्री के चयन से अभीष्ट प्रभाव-व्यजना उत्पन्न हो गई है। इन प्रसगो मे विराट और कोमल दोनो का समानाधिकार से कवि ने वर्णन किया है। भीष्म के आजीवन दीप्त पौरुष का अन्तिम समय वर्णन करने के लिए अप्रस्तुत-चयन देखिये—

शरों की नोंक पर लेटे हुए गजराज-जैसे,
थके, टूटे गरुड़ से, स्रस्त पन्नगराज-जैसे,
मरण पर वीर-जीवन का अगम बल-भार डाले,
दबाये काल को, सायास संज्ञा को सँभाले; [1]

वर्णन व चित्रांकन के लिए ही नही विचार समर्थन के लिए भी अपनी बात को कवि इतने ही समर्थ दृष्टान्त देकर पुष्ट करता है। प्रतिशोध की भावना के औचित्य की पुष्टि इन पक्तियो मे द्रष्टव्य है—

सटता कहीं भी एक तृण जो शरीर से तो,
उठता कराल हो फणीश फुफकार है,
सुनता गजेन्द्र की चिंघार जो वनों में कहीं,
भरता गुहा मे ही मृगेन्द्र हुंकार है,
शूल चुभते हैं, छूते आग है जलाती, भू को—
लीलने को देखो गर्जमान पारावार है;
जग में प्रदीप्त है इसी का तेज, प्रतिशोध—
जड़-चेतनों का जन्मसिद्ध अधिकार है।[2]

कतिपय कोमल भावनाओं के, मानवीकरण के आधार पर बद्ध चित्र देखिये—

आनन सरल, वचन मधुमय है,
तन पर शुभ्र वसन है,
बचो युधिष्ठिर ! इस नागिन का
विष से भरा दशन है।[3]

अन्यायपूर्ण शान्ति को कवि ने चित्रांकित किया है। इसी प्रकार विजयश्री का मति-विधान देखिये—

---

१. कुरुक्षेत्र—दिनकर, पृ० ३८
२. वही, पृ० ३१
३. वही, पृ० ३६

अयि विजय ! रुधिर से विलिप्त वसन है तेरा,
यम-ध्रष्टा से क्या भिन्न वसन है तेरा ?
लपटों की झालर झलक रही अंचल में,
है धुआँ ध्वंस का भरा कृष्ण कुन्तल में।[1]

उपर्युक्त उद्धरणों में केवल अद्‌भुत वक्रता, चित्रमयता ही नही अर्थ-गौरव व समास गुण भी है। प्रत्येक पक्ति की विस्तृत व्याख्याएँ प्रस्तुत की जा सकती है। इस प्रकार का अर्थ-गर्भत्व 'कुरुक्षेत्र' की अभिव्यजना में प्राय· मिलेगा, परन्तु उनकी इस प्रौढ कला की एक विशेषता अद्‌भुत है, जिसकी संगति कला की इस स्तुत्य प्रौढता के साथ विचित्र है। उनका कलाकार अभिव्यजना के प्रति सचेष्ट नही। डा० नगेन्द्र के शब्दों में उनकी कला मे "सुख-सरल गति है—'कुरुक्षेत्र' की काव्य-सामग्री के नियोजन में, शब्द-विन्यास मे, छन्द और लय की योजना में, सर्वत्र यही सुख-सरल गति मिलती है। उसमे कही भी काट-छाट, जडाव या बनाव-सिंगार का प्रयत्न नही और इसका कारण भी उनकी सबल अनुभूति ही है जो अनायास ही वाग्धारा में फूट उठती है।"[2]

यो तो सर्वत्र ही यह अनायास प्रभावित करने और बहा ले जाने वाली अभिव्यजना मिलती है, फिर भी एक उदाहरण इस बात का प्रमाण देने के लिए अप्रासगिक न होगा कि भाषा व शैली पर कवि का पूर्ण अधिकार है। वह अनलकृत शैली मे भी अपने मनोनुकूल भाव व्यक्त करने में समर्थ है—

चाहिए उनको न केवल ज्ञान,
देवता हैं मांगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान,
मोम-सी कोई मुलायम चीज
ताप पाकर जो उठे मन मे पसीज-पसीज,
प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार,
ज्ञान के मरु मे सुकोमल भावना की धार;
चांदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुसकान,
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान;[3]

उनके काव्य मे इस प्रकार प्रसादमय, पौरुष-दीप्त और कही स्निग्ध वाग्धारा मे युद्ध के विराट और करुण दोनों पक्षो के चित्रण के अनेक उदाहरण मिल जायगे। कहीं-कही उनकी अभिव्यंजना में गर्जन-तर्जन भी आ गया है। वास्तव में उनकी शैली में स्निग्धता और तारल्य की अपेक्षा प्रखरता और वेग है, मसृणता, लालित्य और मृदुता की अपेक्षा चमक, कान्ति और दीप्ति ही अधिक है।

सर्ग-विभाजन—'कुरुक्षेत्र' का विभाजन सात सर्गों में किया गया है। कवि ने मंगलाचरण आदि का विधान न करके, किसी प्रकार की वर्णन सम्बन्धी अन्य औपचारिकताओं का भी साग्रह

---

१. कुरुक्षेत्र, पृ० ७१
२. विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, पृ० १३४
३. कुरुक्षेत्र, पृ० ८९

समावेश नहीं किया।

छन्द-विधान—छन्द-वैविध्य 'कुरुक्षेत्र' में पर्याप्त है। छन्द-परिवर्तन सर्ग के उपरान्त, मध्य, आरम्भ सभी स्थलों पर कवि ने स्वेच्छया अपनी आवश्यकता के अनुकूल कर लिया है। छन्दाकार की दृष्टि से कवि ने मात्रिक छन्द ही अधिक अपनाए हैं, परन्तु उनमें परम्परागत सम, मात्रिक व वर्णिक छन्दों के साथ कवि ने कुछ नवीन, मिश्र व विषम योजनाएँ भी प्रस्तुत की हैं।

सम मात्रिक छंदों में दिनकरजी ने पीयूषवर्ष, गीतिका, वीर, दिगम्बरी, सार, राधिका, सरसी और रूपमाला में रचना की है। इन छदो में भी प्रयोग-सम्बन्धी नवीनता है। पीयूषवर्ष और गीतिका का प्रयोग अन्त्यमुक्त रूप मे कवि ने पहले और दूसरे सर्गों मे किया है। अन्य छदो में भी कवि ने अनिवार्यतः चारो चरण मे रचना न करके कुछ विशेष छदो के युग्मको (दो चरण) मे काव्य-रचना की है। पचम सर्ग मे सरसी छद के चरण युग्मको के रूप मे प्रयुक्त हुए है। सप्तम सर्ग में सार छंद यति स्थान से विभाजित होकर चार चरणों मे मुद्रित किया गया है, परन्तु वस्तुतः छन्द की दो पंक्तिया सार छद की एक पक्ति के बराबर हैं। जहाँ छद के दो चरणो में कवि रचना करता है वहाँ तो उसने युग्मक अन्त्यानुप्रास मे रचना की ही है—कही-कही चार चरणों में भी युग्मक अन्त्यानुप्रास का प्रयोग किया गया है। रूपमाला छन्द का इस रूप मे प्रयोग देखिये—

किन्तु है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश,
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।[1]

वर्णिक छन्दों में दिनकरजी ने कवित्त और सवैया ही अपनाए है। 'कुरुक्षेत्र' मे दो छन्दो के योग से जो कुछ नवीन छदाकार बनाये गए है उन्हे विषम तो इसलिए नही कहा जा सकता कि उनके चारो चरण असमान नही है, कही दो व कही तीन चरण एक ही छद के है। उन्हे शब्द के परम्परागत अर्थ में मिश्र छन्द भी नही माना जा सकता, क्योकि कवि ने किन्ही दो छन्दों के चारों चरणो का क्रम-विधान निश्चित योजनानुसार नही किया। दो या अधिक छन्दो के कुछ चरणो की मिली-जुली एक इकाई बनाकर कवि उस निश्चित इकाई की आवृति भी नही करता। इस प्रकार का कोई क्रमिक निबन्धन उनके इन छंदों में नही है। छन्दो के लयाधार परम्परागत मात्रिक छन्द ही है, परन्तु उनके चरण मनमाने क्रम से एक दूसरे के साथ गूँथ दिये गए है। काव्यारम्भ इसी प्रकार के छन्द से हुआ है—

वह कौन रोता है वहाँ—	**१४ मात्राएं**
इतिहास के अध्याय पर—	**१४ ,,**
जिसमें लिखा है नौजवानों के लहू का मोल है—	**२८ ,,**
प्रत्यय किसी बूढ़े कुटिल नीतिज्ञ के व्याहार का,	**२८ ,,**

१. कुरुक्षेत्र—दिनकर, पृ० ८९

जिसका हृदय उतना मलिन जितना की शीर्ष वलक्ष है;	२८ मात्राएँ
जो आप तो लड़ता नहीं—	१४ ,,
कटवा किशोरों को मगर—	१४ ,,
आश्वस्त होकर, सोचता—	१४ ,,
शोणित बहा, लेकिन, गई बच लाज सारे देश की[1]	२८ ,,

उपर्युक्त छद का पहला, दूसरा, छठा, सातवा और आठवा चरण मधुमालती का और तीसरा, चौथा, पाँचवाँ व नवाँ चरण हरिगीतिका छन्द का अश है। इन छदो के क्रम-निर्वाह मे कोई नियमित पद्धति नही परन्तु कवि ने समान लयाधार वाले दो छदो का योग किया है। दोनो छदों की लय सप्तक की आवृति के आधार पर चलती है। इसी प्रकार गीतिका और पायूषवर्ष छदो के अश मिलाकर कवि ने अनेक रूपो मे उनका प्रयोग किया है (प्रथम सर्ग)।

कवि ने दूसरे छंद मे रूपमाला के साथ १७ मात्राओ के चरण का प्रयोग कर नवीन छन्द बनाया है। एक स्थल पर कवि ने इस छद मे गीतिका के चरण भी मिला दिए है। इस प्रकार तीन छदो के योग से यह छद बना है—

भीष्म ने देखा गगन की ओर—	१७ मात्राएँ
मापते, मानो युधिष्ठिर के हृदय का छोर—	२४ ,,
और बोले—हाय नर के भाग। क्या कभी तू भी तिमिर के पार।	१७ ,,
उस महत् आदर्श के जग मे सकेगा जाग—	२४ ,,
एक नर के प्राण में जो हो उठा साकार है,? आज दुख से, खेद से, निर्वेद के आघात से	२६ ,,

इस छद का दूसरा और पाँचवाँ चरण रूपमाला का और छठा व सातवाँ चरण गीतिका का है। पहला, तीसरा, और चौथा चरण कवि का अपना है। उसकी लय कुछ उर्मिला छद के ढग पर है, परन्तु इस छन्द का शास्त्रीय लक्षण इस पर पूर्णत घटित नही होता।[2] इसी प्रकार के कुछ छद कवि ने छठे सर्ग मे बनाये है। किसी-किसी छद मे १७ से भी कम मात्राओं की पक्तियों का प्रयोग दिनकरजी ने किया है, परन्तु पक्तियो के क्रमादि के विषय मे किसी निश्चित नियम या योजना का पालन उन्होने नही किया, परन्तु जैसा पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है, छन्द के विभिन्न चरणो का चयन किसी न किसी शास्त्रसम्मत छन्द के चरणाधार पर ही किया गया है। निश्चित क्रम न होने पर भी ये छन्द मुक्त छन्द नही कहे जा सकते।

---

१. कुरुक्षेत्र—दिनकर, पृ० १

२. दे० आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना—पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २६८

तृतीय अध्याय

लघु प्रबन्ध-काव्य

प्राचीन आचार्यों ने बन्ध की दृष्टि से जब काव्य के दो मुख्य भेद—प्रबन्ध और मुक्तक किये, तो उनकी दृष्टि मे छन्दो की परस्पर निरपेक्ष अथवा सापेक्ष स्थिति ही आधार-रूप मे विद्यमान रही। काव्य के इन प्रमुख भेदों मे से विस्तार-भेद के आधार पर महाकाव्य और खण्ड-काव्य, तथा निबद्ध व अनिबद्ध मुक्तक, आदि उपभेदों मे विभाजन तो कर दिया गया, परन्तु कुछ ऐसी विधाएँ जो इन दोनो काव्य-रूपो के सीमान्तों पर स्थित है, प्रयोग मे विरल होने के कारण सिद्धान्त-निरूपण मे भी उपेक्षित ही रही। इनमें से कुछ का उल्लेख संस्कृत के काव्य-शास्त्रज्ञ आचार्यों ने किया, परन्तु अन्य विधाओ की तुलना मे उनका प्रयोग अल्प होने के कारण उनका लक्षण-विस्तार नही हुआ। हिन्दी के आरम्भिक काव्य मे विशेष रूप से काव्य-रचना प्रचलित काव्य-रूपो तक ही सीमित रही, तथा उपलब्ध काव्य के परीक्षण और रूप-निर्णय का प्रयत्न भी विद्वानो ने नही किया, अत. प्रचलित काव्य-भेदो के अतिरिक्त, नवीन प्रयोगो के लिए किसी विस्मृत शब्द के अनुसन्धान, अथवा नवीन शब्द-निर्माण का प्रयास नही किया गया। अतएव कुछ ऐसे प्रयोग जो उपर्युक्त भेदो मे सही रूप मे नही आते या तो बरबस खीचतान करके किसी न किसी वर्ग मे समाविष्ट कर लिये गए, अथवा उपेक्षित रहे।

आधुनिक काव्य मे एक ओर प्रबन्ध और मुक्तक के क्षेत्रो मे वैविध्य की दृष्टि से अतरंग विस्तार हुआ, और दूसरी ओर कुछ ऐसी रूप-विधाओं का प्रचलन हुआ जिन्हे इन काव्य-रूपों के परम्परागत भेदो मे नही रखा जा सकता। परन्तु बन्ध के आधार पर काव्य के दो ही प्रमुख रूप सम्भव है —प्रबन्ध और मुक्तक। किसी भी रचना मे विरचित छन्दों की स्थिति या सापेक्ष होगी अथवा निरपेक्ष। यदि किसी रचना मे मुक्तक के गुणो के साथ तारतम्य भी पाया जाता है, अर्थात् किसी भी कारण उस कृति के छन्दों मे पारस्परिक सम्बन्ध या क्रमबद्धता विद्यमान रहती है, तब भी उस रचना को प्रबन्धात्मक मुक्तक ही कहेगे, क्योकि उसके छन्दों की स्थिति सावलम्ब नही होती, और प्रबन्ध और मुक्तक की व्यावर्तक विशेषता ही रचित छन्दों की सापेक्ष अथवा निरपेक्ष स्थिति है। इस स्पष्टीकरण के उपरान्त एक बात निश्चित हो जाती है—जिन काव्य-रूपों का प्रश्न उठाया जा रहा है वे मुक्तक नही प्रबन्ध है। क्योकि उनकी रचना एकाधिक छन्दो मे कुछ दूर तक इस प्रकार की गई है कि इनमें परस्पर कथात्मक प्रसंग, वस्तुवर्णन, अथवा विचार-प्रतिपादन को लेकर एकसूत्रता और सापेक्ष स्थिति उत्पन्न हो गई है। अतः इन्हें मुक्तक नहीं माना जा सकता।

दूसरा प्रश्न उठता है कि इन रचनाओं को निबद्ध या सयुक्त-मुक्तक क्यों नही माना जाय ? यदि शास्त्रीय, परन्तु स्थूल उत्तर देना हो तो विवाद बडी सरलता से यह कह कर मिटाया जा सकता है कि काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानो ने छन्द-सख्या के आधार पर मुक्तक के जो विविध रूप निश्चित किये है, उनमे से किसी मे भी छन्द-रचना-सख्या पन्द्रह से ऊपर नही जाती, परन्तु ये सभी रचनाएँ पन्द्रह से अधिक छन्दो मे विरचित है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि निबद्ध मुक्तक यदि सोलह छन्दो मे लिखा गया हो तो वह प्रबन्ध की कोटि मे आ जायगा, तथा यदि पद्यात्मक निबन्ध अथवा आख्यानक गीति चौदह छन्दो मे विरचित हो तो उसे निबद्ध मुक्तक स्वीकार कर लिया जायगा। निबद्ध-मुक्तक और इन लघु प्रबन्धो का भेद केवल उनके बाह्य आकार तथा छन्द-रचना की सख्या पर निर्भर नही है, वह स्वय इस अन्तर का कारण न होकर कार्य अथवा परिणाम है, उस कारण का जो इन विविध विधाओ की प्रेष्य अनुभूति के स्वरूप मे निहित रहता है। निबद्ध-मुक्तक की प्रेरक अनुभूति और विचार क्षणिक और अस्थायी होता है, उसमे कवि की विचारधारा या भावधारा सुविन्यस्त अथवा सुचिन्तित रूप मे व्यक्त नही होती। मुक्तक की रचना किसी आवेगमयी भावस्थिति के परिणामस्वरूप होती है। कही यह क्षण इतना अस्थिर होता है कि उसकी इति एक ही छन्द मे मुक्तक-रचना कर समाप्त हो जाती है, और कही यह भावधारा या विचारप्रवाह एकाधिक छन्दो मे कुछ दूर तक प्रवाहित होता है। परन्तु इस प्रकार की रचना प्रायः कवि की एक बैठक में, बिना सुचिन्तित वस्तु या विचार-विन्यास के सम्पन्न की जाती है। बृहद प्रबन्ध-रचना इससे सर्वथा भिन्न, कवि की रागात्मक अनुभूति के साथ सुचिन्तित योजना, विन्यास-व्यवस्था, और दीर्घ चिन्तन-मनन के परिणामस्वरूप रूपनिर्माण-योजना के अनुसार होती है। वह किसी क्षणिक भावावेश या अनुभूति का परिणाम नहीं होता। अनेक भाव, विचार, और अनुभव-खण्डो के आकलन, उनमें व्यवस्था-निरूपण, विवेक के आलोक में ग्रहण-त्याग, नियमन, और रूप-विधान की निश्चित योजना के उपरान्त प्रबन्धकार रचना मे प्रवृत्त होता है। इन लघु प्रबन्धों की स्थिति इन दोनों की मध्य-वर्त्तिनी है। इनमे प्रबन्ध-काव्य के रचना-क्रम की दीर्घ व्यवस्थित कडियाँ, और मुक्तक की आवेगमय रचना दोनो का अभाव होता है। इन प्रबन्धो मे किसी घटना, विचार या वस्तु से प्रेरित कवि की वह अनुभूति व्यक्त होती है, जिसे भाव-खण्ड या विचार-खण्ड का नाम दिया जा सकता है। इनमे किसी समस्या, वस्तु या घटना को लेकर उसका सर्वांग-विवेचन, वर्णन या आख्यान तो नही किया जाता, किन्तु उसका उल्लेख-मात्र करके या सूत्र-रूप मे कथन करके भी नही छोड़ दिया जाता। घटना की एक झलक, वस्तु का एकपक्षीय वर्णन, तथा समस्या के एक पक्ष पर विचार प्रायः इन प्रबन्धों मे किया जाता है।

एक विशेषता जो मुक्तकों से इनमें अन्तर स्थापित करती है—इनके वर्ण्य का सुचिन्तित विन्यास है। अर्थात्, इनमें रचित छन्दों मे परस्पर सुनिश्चित पूर्वापर-क्रम होता है और वे इस रूप मे सम्बद्ध व ग्रथित होते है कि उनमे क्रम-परिवर्तन या तारतम्य-विच्छेद सम्भव नही होता। उदाहरण देकर स्पष्ट करे—आधुनिक गीति-काव्य के विभिन्न अनुच्छेदों मे प्रायः पृथक्-पृथक् चित्र, अथवा भाव-खण्ड अंकित होते है। इनमे से एक अवतरण का पृथक् महत्त्व नही, क्योकि वह शेष कविता में अर्थान्विति की दृष्टि से निबद्ध है और स्वतन्त्र रूप मे अर्थ करने से यह

अन्विति खडित हो जायगी। वस्तुतः इस अंश-विशेष की सापेक्ष स्थिति के कारण, अर्थ की पूर्णता विच्छिन्न होकर सिद्ध भी नही हो सकती। परन्तु अनेक निबद्ध कविताओ मे, यदि इन छन्दों में परस्पर स्थान परिवर्तन कर दिया जाय तो सम्पूर्ण कविता की प्रबन्धात्मकता बाधित न होगी। कारण स्पष्ट है—कविता का विषय सुविन्यस्त रूप मे सम्पूर्ण कविता में इस प्रकार अनुस्यूत नही कि उसमे शृखलाबद्ध कडियों की स्थिति निश्चित और अपरिहार्य हो। प्राय· बीच में से एक कडी निकाल लेने पर भी शृखला की शेष कडियाँ जोडकर तारतम्य बनाये रखा जा सकता है। केवल आकार इस परिवर्तन से प्रभावित होगा। उदाहरण के लिए पन्त की 'मौन निमन्त्रण' और निराला की 'तुम और मै' का उल्लेख किया जा सकता है। बीच मे किसी अनुच्छेद-विशेष को निकाल लेने से, सम्पूर्ण कविता के अर्थान्वय मे कोई बाधा न प्रस्तुत होगी। इस प्रकार एक विशेष अंश, शेष कविता पर निर्भर रहता है समग्र कविता उस अश पर नही। इससे भिन्न लघु प्रबन्धो मे अगागी सम्बन्ध अन्योन्याश्रित होता है। उसमे वर्ण्य-विषय प्रबन्ध के विभिन्न छन्दो मे इस प्रकार अनुस्यूत रहता है कि प्रसग मे से निकाल कर किसी अश-विशेष की स्थिति निरपेक्ष और स्वतन्त्र रूप मे सम्भव नही हो सकती, और साथ ही प्रबन्ध का तारतम्य, अश के अभाव मे या स्थान-परिवर्तन से खडित अथवा बाधित हो जाता है। अत. इन लघु-प्रबन्धो के अन्तर्गत वे समस्त कृतिया आती है जिनमें प्रबन्ध का तारतम्य वर्तमान होता है, परन्तु जो आकार मे अति-विस्तृत नही होती, जिनका अनेक सर्गों अथवा खण्डो मे विभाजन नही होता, तथा जिनके विषय का व्यापक धरातल ग्रहण कर, सर्वांग या समग्र विवेचन नही किया जाता। केवल विषय का एक पक्ष, पहलू, या एकाग-चित्रण होता है। आख्यानक प्रबन्धों मे घटना की केवल एक झलक अकित होती है।

इस प्रकार के लघु प्रबन्धो की परम्परा पूर्णरूपेण नवीन नही कही जा सकती। ऐसी कतिपय रचनाओ का उल्लेख और नामकरण प्राचीन साहित्य और काव्य-शास्त्र मे किया जा चुका है, परन्तु आधुनिक काव्य मे उपलब्ध सभी लघु प्रबन्धो का सम्बन्ध इन परम्परागत काव्य-रूपों से नही स्थापित किया जा सकता। रूप-भेद से इस प्रकार के उपलब्ध काव्य को मुख्य रूप से तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

(१) पद्य-कथाए तथा आख्यानक गीतिया।
(२) पर्यायबन्ध।
(३) काव्य-निबन्ध।

१. पद्य-कथाएं

इन कथाओ का स्वरूप बहुत कुछ प्राचीन बृहद् ग्रन्थो मे वर्णित विविध आख्यानो का सा होता है जिनमे किसी प्रकार की अपूर्णता भी नही होती, परन्तु साथ ही उनमें वर्णित प्रसंगों का उचित आदि, मध्य, अवसान, अर्थात् कार्य-व्यापार का सुचिन्तित विकास भी अकित नही किया जाता। इनमें कथा, प्रायः जिज्ञासा-वृत्ति के परितोष के लिए तथा रोचक शैली मे रस-सृष्टि के लिए नही कही जाती, किसी अन्य सत्य या उद्देश्य को व्यंजित करने या प्रमाणित करने के लिए दृष्टान्त-रूप में कही जाती है। सर्वत्र यद्यपि ऐसा नहीं होता, इस

प्रवृत्ति के अपवाद-स्वरूप इस युग मे कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण पद्य-कथाओ की रचना की गई जिनके सीमित कलेवर मे महाकाव्य के प्राणो का स्पन्दन मिलता है, परन्तु ऐसा कभी-कभी छोटी कविताओ मे भी हो जाया करता है, और यह केवल समर्थ कवियो की विरल कृतियो के विषय मे सत्य है। परन्तु जिस विशेषता का इनकी कथा के विषय मे उल्लेख किया गया, वह इस युग की अधिकांश पद्य-कथाओ मे प्राप्त होती है। कम से कम इस काव्य-रूप का आरम्भ इसी रूप मे हुआ।

दूसरे प्रकार की पद्य-कथाएँ द्विवेदी-युग मे उसी रूप मे लिखी गई जिस प्रकार इस युग के कथात्मक निबद्ध-मुक्तको का आरम्भ हुआ था। समय-समय पर 'सरस्वती' मे प्रकाशित होने वाले घटनाओ के व्यजक चित्रो को लक्ष्य करके कवि उनकी पृष्ठभूमि मे या आधार-रूप मे स्थित, प्रख्यात या ऐतिहासिक घटना का वर्णन करता था। जहाँ केवल मूल प्रसग का उल्लेख मात्र करके शेष को पाठक की कल्पना और ज्ञान पर छोड़ दिया जाता था, वहाँ निबद्ध-मुक्तको की रचना होती थी, और जहाँ ये कवि सम्पूर्ण आख्यान का व्यवस्थित वर्णन करते थे, वहाँ वह एक सक्षिप्त पद्यबद्ध कथा का रूप धारण कर लेता। इन सभी रचनाओ मे एक विशेषता सामान्य रूप से व्याप्त रहती थी—इनके सीमित विषय और आकार के कारण, कथानक प्राय. इकहरा और सरल गति से आरम्भ व समाप्त हो जाता है, प्रासगिक या अवान्तर प्रसगो की सयोजना से उत्पन्न जटिलता का प्रश्न ही इनमे नही उठता।

कुछ पद्य-कथाएँ रस-सृष्टि के लिए इतिहास और पुराणो के कुछ मार्मिक और कोमल प्रसगो को अकित कर मर्मस्पर्शी प्रभाव डालने, और नवीन शैलीगत प्रयोग की लालसा से लिखी गयी। इनमे अद्‌भुत नाटकीय कौशल और अलकृत भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है। काव्य-रूपो की दृष्टि से ये प्रयोग इस युग की नूतन सृष्टि और सिद्धि है। कलात्मक प्रभाव और उत्कर्ष भी इनमे पर्याप्त बन पड़ा है। लघु आकार मे महाकाव्य तथा नाटक जैसी विशद विधाओ का समीकरण और सफल प्रयोग इनकी रचना-सामर्थ्य का प्रमाण है।

इन नए ढग की पद्य-कथाओ के अतिरिक्त एक धारा इस युग के काव्य मे आख्यानक-गीतियो की मिलती है। इस प्रकार की गीतिया इस युग की सर्वथा मौलिक या नूतन सिद्धि तो नही कही जा सकतीं, परन्तु इस काव्य-रूप की सुनिश्चित और व्यवस्थित परम्परा भी हिन्दी-काव्य मे नही मिलती। यो मूल रूप से इस काव्य-रूप का सम्बन्ध वीर-गीतियो (Ballads) से जोडा जा सकता है, जो रूप-भेद से विश्व की सभी भाषाओ के साहित्य के आरम्भ मे प्राप्त होती है। इन आख्यानक गीतियो का स्वर यद्यपि वीर-गीतो से इस रूप मे भिन्न होता है कि सर्वत्र इनमें युद्धादि, किसी साहसिक विषय से सम्बद्ध घटना का आख्यान न हो, परन्तु इनकी रचना की दो मूल विशेषताओ का सम्बन्ध 'बैलेड' परम्परा से जोड़ा जा सकता है और वे विशेषताएँ है—इनमे आख्यान-तत्त्व की प्रधानता, अर्थात् इनका घटनात्मक स्वरूप, तथा वस्तुप्रधान समाख्यान शैली के स्थान पर आत्माभिषिक्त शैली मे आत्मपरक दृष्टिकोण से वर्णन। अर्थात् किसी सार्वजनिक घटना के प्रति किसी सार्वजनिक अनुभूति की इस रूप मे व्यक्ति-संवेद्य अभिव्यक्ति, कि वह समष्टि के भाव का प्रतिनिधित्व करे, रचयिता का व्यक्तित्व उसमें तटस्थ व असम्पृक्त प्रतीत न हो, तथा आत्मोल्लास और व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से उसमें अंकन किया

जाय। आख्यानक गीति का प्राचीनतम और बृहत्तर प्रयोग जगनिक के आल्हा-खण्ड के रूप में उपलब्ध है, परन्तु लघुतर प्रबन्धों के रूप मे इस परम्परा का पुनरुज्जीवन इस युग की ही विशेषता है।

प्रथम प्रकार की पद्य-कथाओ का आरम्भ भी अन्य काव्य-रूपों की भाँति द्विवेदी-युग की काव्य-रचनाओ मे ही हो जाता है। यदि कहा जाय उससे भी पूर्व, तो मिथ्या न होगा। इन कथाओं मे वर्णित घटनाओं की पृष्ठभूमि मे किसी उद्देश्य का प्रतिपादन, अर्थात् किसी आदर्श की व्यजना, वस्तु-ध्वनि के रूप में निहित रहती है। इनमें यद्यपि घटनाएँ गौण नही होती फिर भी केवल कथा कहना कवि का प्रमुख उद्देश्य नही रहता। वह किसी आदर्श-व्यंजना के लिए दृष्टान्त-रूप मे कथा कहता है। इसीलिए इन कथाओ मे वस्तु-विन्यास सम्बन्धी विशेष चमत्कारिक योजनाएँ एव सश्लिष्ट कथा-सूत्र नही होते। इनमे एक ही घटना व प्रसग अंकित रहता है और वह भी अत्यन्त सीधे और सरल रूप मे। अधिकाश आरम्भिक पद्य-कथाएँ ऐतिहासिक, पौराणिक या किसी ऐसे प्रख्यात प्रसग को लेकर लिखी गयी, जो आदर्श एवं शिक्षाप्रद थे। अतः इनका उद्देश्य अत्यन्त स्थूल, नैतिक आचार-सम्बन्धी शिक्षा देना रहा। इस प्रकार की रचनाएं द्विवेदीजी के प्रभाव से पूर्व ही आरम्भ हो गई थी। सन् १६०० की 'सरस्वती' के जुलाई अक मे किशोरीलाल गोस्वामी की 'सावित्री प्रबोधन' नामक पद्य-कथा प्रकाशित हुई, जिसमे भारतीय नारी के आदर्श धर्म की व्यजना के लिए कवि ने सावित्री-सत्यवान के प्रसिद्ध आख्यान से सत्यवान की मृत्यु की घटना का वर्णन किया है। नाथूराम शर्मा 'शकर' ने 'पवित्र रामचरित्र' मे राम के आदर्श चरित्र का सक्षेप मे वर्णन किया है। इसी प्रकार की कुछ कथाएँ लोचनप्रसाद पाडेय की रचना 'मेवाड़-गाथा' मे सकलित है। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'मृगी-दु.ख मोचन' नामक एक मार्मिक पद्य-कथा की रचना भी की, मेवाड़-गाथा मे सकलित कथाओ की भाँति जिसका उद्देश्य न आदर्श-प्रतिष्ठा है न किसी का गौरव-गान, केवल एक कारुणिक प्रसग का हृदयग्राही चित्रण ही कवि का लक्ष्य है।

इसी प्रकार की अनेक छोटी-छोटी पद्य-कथाएँ ला० भगवानदीन ने 'वीर बालक' और 'वीर क्षत्राणी' मे लिखी है। जैसा नाम से स्पष्ट है पहली मे अनेक ऐतिहासिक-पौराणिक एव आदर्श वीर बालकों के आख्यान सकलित है और दूसरी मे वीर क्षत्राणियो के आदर्श चरित्रो का वर्णन किया गया है।

इन कथाओ में नायक व नायिका के जीवन की किसी एक महत्त्वपूर्ण घटना का वर्णन किया गया है। जितने प्रसग अथवा वर्णन आए है वे सभी इस प्रधान घटना से सम्बद्ध है। कथा का आदि, मध्य व अवसान क्रमश. इसी घटना के कारण, घटना और परिणाम का व्यजक है, तथा प्रधान पात्र के आदर्श व्यवहार या आचरण से आदर्श की व्यजना इनकी वस्तु-ध्वनि। घटना का विन्यास अत्यन्त सरल, स्पष्ट और सुलझे ढंग से होता है।

शैली और अभिव्यंजना में भी एक प्रकार की प्रसादमयता, स्पष्टता और सफाई इन सभी कृतियों में प्राप्त होती है। ला० भगवानदीन की रचनाओं में तो अनेक स्थलों पर बोल-चाल की उर्दू भाषा का प्रयोग व प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। कथा में विशेष उतार-चढ़ाव तथा मोड़ व खण्ड-विभाजन न होने के कारण सभी ने सम्पूर्ण कथा की रचना आद्यन्त एक ही

छन्द में की है। ऐसा सम्भवत कथा के ऋजु-सरल प्रवाह की रक्षा के लिए किया गया है।

इन कथाओं में अकित प्रसगों का रगस्थल बाह्य जगत् है और स्वरूप स्थूल और घटनात्मक। अन्तर्मन मे घटित होने वाले सूक्ष्म, अमूर्त और उलझे प्रसगो को इनमे स्थान नही मिलता। लघु-आकार के कारण विशेष वर्णनात्मक प्रसग भी इनमे नही आते। अत: घटना की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए जितना भर आवश्यक है उतना ही इन कथाओ के वर्णन-वृत्त मे आता है, उससे अधिक नही। इनकी रचना कुछ-कुछ उस रूप मे हुई है जिस प्रकार धर्म-ग्रथो में शिक्षा देने के लिए दृष्टान्त-रूप मे, अथवा माहात्म्य-वर्णन के लिए आख्यानो का समाख्यान किया जाता है।

विशेष कलात्मक उत्कर्ष, अलंकरण, अभिव्यजना मे चमत्कार, अथवा महाप्राण शैली इनमे उपलब्ध नही होती। छन्द की दृष्टि से इनमे मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने अधिकाश कथाएँ गीतिका और हरिगीतिका छन्द मे लिखी है। 'स्वामिभक्त मन्त्री' की रचना स्रग्धरा वृत्त मे की गई, और 'आत्म-त्याग' मे रोला का प्रयोग करते हुए, छन्द के अन्त मे नन्ददास के भ्रमरगीत के ढग पर एक दस मात्रा की पक्ति टेक के समान जोडी गई है। ला० भगवानदीन ने 'वीर क्षत्राणी' मे तो मात्रिक छन्दो का प्रयोग किया, परन्तु 'वीर बालक' की रचना उर्दू की बहर की लय पर षट्पदियो मे की है। उर्दू की बहर मे लघु-गुरु-क्रम और मात्राओ का नियमन उसी प्रकार दृढतापूर्वक नही किया जाता जिस प्रकार हिन्दी-छन्द-रचना मे। ये छन्द लयाश्रित होते है जिसकी रक्षा के लिए विविध पक्तियो मे मात्राओं का न्यूनाधिक प्रयोग इनमें सम्भव हो सकता है।

उपदेश के लिए दूसरे प्रकार की पद्य-कथाएँ पचतन्त्र और जातको मे वर्णित पशु-पक्षियो की शिक्षाप्रद कहानियो के ढग पर लिखी गई। इस प्रकार की कथाएँ सख्या मे बहुत कम है। नाथूराम शर्मा 'शकर' की 'वायसविजय', आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'जम्बूकी-न्याय' तथा रूपनारायण पाण्डेय की 'वन-विहगम' इसी प्रकार की रचनाएँ है। शैली की दृष्टि से इन कथाओ की रचना भी उसी प्रकार की गई है जिस प्रकार पूर्वोक्त ऐतिहासिक आख्यानो की। उसी प्रकार का वस्तु-विन्यास, भाषा, शैली और अभिव्यजना इनमे भी उपलब्ध है, परिवर्तन केवल विषय-वस्तु मे दृष्टिगत होता है। इन कथाओ की परम्परा द्विवेदी-युग से आगे नही बढी।

'प्रसाद' के 'चित्राधार' मे कुछ ऐसी लघु-कथाएँ सकलित है, जिनकी रचना किसी उपदेश या आदर्श की व्यजना के लिए नही हुई, केवल कथा कहने-भर के लिए ये प्रसग पद्य-रचना का विषय बनाये गए है। इनमे—'अयोध्या का उद्धार', 'वन-मिलन', 'प्रेम-राज्य' आदि प्रसग-कथाएँ प्रमुख है। 'वन-मिलन' मे तो आख्यान-तत्त्व भी अपेक्षाकृत क्षीण है। दीर्घ वियोगोपरान्त दुष्यन्त और शकुन्तला के मिलन का वर्णन कवि ने किया है। रूढ परम्पराभुक्त शैली और ब्रजभाषा मे प्रकृति-वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। शेष दो रचनाओ में भी कथा-वर्णन, छन्द-विधान, वस्तु-विन्यास, अभिव्यजना आदि किसी भी दृष्टि से कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं मिलती। विषय और अभिव्यजना दोनो ही दृष्टियों से ये रचनाएँ अत्यन्त सामान्य कही जायँगी। प्रसाद की कला का अत्यन्त साधारण, अविकसित रूप ही इनमे मिलता है। कथा मे गति और रोचकता की दृष्टि से भी विकास अत्यन्त सहज रूप मे समाख्यान शैली में हुआ है।

इसी ढग पर राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'वामनावतार' और 'शकुन्तला-जन्म' के प्रसगों को सक्षेप मे काव्य-रूप दिया है। इन रचनाओ का तो आकार भी इतना सीमित है, और कवि चलते ढंग से अत्यन्त सक्षेप में इस प्रकार कथा कह गया है कि पाठक की कल्पना के लिए भी बहुत कुछ स्थान रिक्त रह जाता है। कथा का समग्र विधान इन रचनाओं मे नही मिलता। अतः इनकी स्थिति आख्यानात्मक निबद्ध कविताओ और पद्य-कथाओ की मध्यवर्तिनी हो जाती है। इन्हे इस दृष्टि से यदि प्रसग-कथाएँ कह दिया जाय तो बहुत अनुचित न होगा। इस प्रकार के एक प्रसंग 'एक पुण्य चरित' की रचना वियोगी हरि ने भी की है।

पद्य-कथा-रचना की उपर्युक्त विधा का कुछ अशो मे विकास कवि मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओ मे मिलता है। उन्होने इस प्रकार के अनेक लघु आख्यान काव्य लिखे। इनमें से जो अपेक्षाकृत बड़े और खण्डकाव्य के अनुकूल थे, उनका उल्लेख उस प्रसग में किया जा चुका है, परन्तु कुछ रचनाएँ प्रबन्ध होते हुए भी खण्डकाव्य की सम्पूर्ण विशेषताओ से युक्त नही थी, ऐसे आख्यान-काव्यो मे—'विकट भट', 'शक्ति', 'अर्जन और विसर्जन' तथा 'काबा और कर्बला' मे से 'कर्बला' का उल्लेख किया जा सकता है। कला की दृष्टि से इन रचनाओ का कवि इस प्रकार की पूर्ववर्ती रचनाओ से आगे विकास की एक सीढी चढा है, इसमे सन्देह नही। एक विशेषता और है, ये सभी आख्यान मूलतः एक ही विधा मे रचित होने पर भी परस्पर भिन्न है।

'विकट भट' मे कवि का लक्ष्य क्षात्र-तेज और वीरत्व की भावना को छोटी-सी कथा के माध्यम से व्यक्त करना रहा है। एक वश की तीन पीढ़ियो का आख्यान इसी केन्द्रवर्ती भावना के चारों ओर लिपटा है। परन्तु घटनाओ के अनेक पहलू अकित न होने के कारण अन्विति और प्रसग-विन्यास कही खण्डित नही होता। इस कथा की सराहनीय विशेषता इसमे नाटकीयता का अद्भुत समावेश है। कथा का आरम्भ, विकास और उपसहार सभी सवादों के बीच अपूर्व नाटकीय कौशल से होता है। दृश्यो के वर्णन मे चित्रात्मकता और सजीवता से इस विशेषता मे वृद्धि हुई है। कवि ने समाख्यान चित्रात्मक शैली मे किया है, अत प्रत्यक्ष रोचकता उसमे सर्वत्र वर्तमान रही है। कथा का आरम्भ अत्यन्त सजीव सवाद और नाटकीय दृश्य-योजना से इस प्रकार होता है—

ओठों से हटाके रिक्त स्वर्ण-सुरा-पात्र को,
सहसा विजयसिंह राजा जोधपुर के,
पोकरण वाले सरदार देवीसिंह से।
बोले दरबार खास में कि—"देवीसिंहजी,
कोई यदि रूठ जाय मुझसे तो क्या करे ?"[1]

कथा के अन्त मे वीर क्षत्री बालक सवाईसिंह के सभा मे प्रवेश का वर्णन भी कवि ने अत्यन्त सजीव ओजस्वी शैली मे किया है—

निर्भय मृगेन्द्र नया करता प्रवेश है—
वन में ज्यों, डाले बिना दृष्टि किसी ओर त्यों,

---

१. विकट भट—मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ३

भोर के भभूके सा प्रविष्ट हुआ साहसी,
बालवीर, मन्द मन्द धीर गति से धरा।
मानों धंसी जा रही थी, वदन गम्भीर था,
उठता शरीर मानों अंग में न आता था।"[1]

'शक्ति' की रचना कुछ भिन्न दृष्टिकोण को लेकर की गई है। इसमे कवि ने दुर्गावतार और राक्षस-सहार के आख्यान का वर्णन किया है। कथा कहने की अपेक्षा शक्ति-स्तवन या दुर्गा-माहात्म्य का वर्णन अधिक प्रधान रहा है। कथा या प्रबन्ध की अपेक्षा यही गुणनिरूपिणी दृष्टि इस कथा मे प्रमुख है, अत. प्रबन्ध-सगठन के गुणों का सुचारु विन्यास इस रचना मे उपलब्ध नही। दुर्गा-सप्तशती के आख्यान का सक्षिप्त विवरण होने के कारण इस कथा को कथा ही स्वीकार किया जायगा। 'शक्ति' में यद्यपि 'विकट भट' के समान कवि को अधिक अवकाश नही मिला, परन्तु यत्र-तत्र सवादो की योजना तथा नाटकीय परिस्थितियो का विधान कर वस्तु-विधान मे चमत्कारिकता उत्पन्न की गई है।

'अर्जन और विसर्जन' की रचना करते समय तक कवि के दृष्टिकोण मे और परिवर्तन आ गया है। इन दोनो ऐतिहासिक आख्यानों मे एक-एक घटना का वर्णन किया गया है, परन्तु इनकी वस्तु-ध्वनि विचारात्मक है। पहले आख्यान मे कवि त्याग का महत्त्व और अर्जन का विद्रूप अकित करता रहा है और दूसरे मे स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए बडे से बडे विसर्जन या त्याग के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। इन काव्यो का प्रेष्य इस प्रकार विचार है, माध्यम घटनाएँ है और शैली भाव-व्यजक है। आख्यान-तत्त्व इनमें उपेक्षित रह गया है। 'विसर्जन' मे प्रत्यक्ष घटना की अपेक्षा उसकी प्रतिक्रिया का वर्णन अधिक है। लघु आख्यान की सीमा में पात्र-विशेष की एक लम्बी वक्तृता, विचार-प्रतिपादन और चारित्रिक महत्त्व की व्यंजना में तो साधक होती है, परन्तु लघु आख्यान की सीमा मे अकाव्योचित। इन आख्यानो का स्वरूप घटना-प्रधान कथाओ का नही, चरित्र-प्रधान विचारात्मक आख्यानो का है। कही इनमें विचारात्मक निबन्ध का सा सिद्धान्त-प्रतिपादन है और कहीं चरित्र-व्यजना की प्रधानता, आख्यान-तत्त्व का सम्यक् निर्वाह इनमे नही हो पाया।

जिस प्रकार गद्य मे कहानी क्रमशः अपने घटना-प्रधान रूप से चरित्र-प्रधान और विचार-प्रधान रूप की ओर विकास करती गई, तथा शैली मे समाख्यान के स्थान पर संवाद के रूप मे नाट्य तत्त्व, और विश्लेषण के रूप मे निबन्ध के तत्त्वो का समावेश होता गया, उसी प्रकार पद्य मे इन कथाओ मे घटनाओ की प्रधानता इनकी आरम्भिक स्थिति की द्योतक है, क्रमशः इनमे भी सभी दृष्टियो से जो विकास हुआ उसका आभास ही नही प्रत्यक्ष प्रतिफलन गुप्तजी की उपर्युक्त रचनाओं में मिलने लगा था।

इसी शैली मे लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'कर्ण का अर्घ्य दान' नामक सुन्दर पद्य-कथा की रचना की। कथा मे घटना का विन्यास है, परन्तु चारित्र्य का विकास अत्यन्त समर्थ नाटकीय शैली में हुआ है। इस कथा मे आकर्षित करने वाली विशेषता इसकी घटना की रोचकता तथा

---

१. विकट भट, पृ० १४

सुन्दर विन्यास नही, पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व तथा भाव-सघर्ष की तीव्रता है, जिसको कवि ने अत्यत सक्षम संवाद-शैली में नियोजित किया है। संपूर्ण कथा अपने आप में एक प्रभावशाली दृश्यात्मक चित्र के समान है। यह प्रसंग अपने प्रख्यात रूप मे यूँ भी मर्मस्पर्शी और करुण है, अतः इसकी मूलवर्ती कारुणिकता और शैलीगत नाटकीयता एव चरित्रगत वैशिष्ट्य, हृदय को प्रभावित करती है।

घटना-प्रधान पद्य-कथाओ का एक अन्य परन्तु अपेक्षाकृत कम कलात्मक रूप, उन अनेक रचनाओ मे मिलता है जो द्विवेदी-युग मे चित्रकला का आधार लेकर लिखी गईं। इस प्रकार की अधिकांश रचनाएँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'कविता-कलाप' मे सकलित है। इन कविताओ की प्रमुख विशेषता यही थी कि इनकी रचना न कहानी कहने के लिए होती थी और न समस्या-वर्णन अथवा चारित्र्य-व्यजना के उद्देश्य से। कवि इनका आरम्भ चित्र-विशेष में अंकित प्रसग-विशेष के वर्णन से करता था। जहाँ चित्र मे केवल व्यक्ति का अकन किया जाता था वहाँ तो कवि भी रूप-वर्णन या कभी-कभी महत्त्व-वर्णन करके संतुष्ट हो जाता था, परन्तु जब चित्र का विषय कोई घटना या प्रसग होता, तब चित्र की दृश्यमान विशेषताओं के वर्णन से आरम्भ किया जाता था, और चित्राकित प्रसग का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए चित्र का बाह्य वर्णन करते हुए क्रमश. कवि उसकी पृष्ठभूमि के रूप मे घटनाओ की सूचना दे दिया करता था। ऐसी स्थिति मे घटना या कथा-वर्णन तो कवि का लक्ष्य रहता ही नही था अतः घटनाओं के सागोपाग वर्णन, अन्विति और तारतम्य के प्रति वह सचेष्ट नही रह पाता। वह केवल उतनी ही घटनात्मक पृष्ठभूमि का स्पर्श करता जितनी वर्णन के सबध-सूत्र मिलाने, अथवा चित्र की व्याख्या करने के लिए अनिवार्य होती थी। इससे अधिक विस्तार और सुनिश्चित विन्यास के फेर मे वह पड़ने का प्रयत्न नही करता। इनमे से अधिकांश चित्र प्रख्यात प्रसगो से सम्बद्ध है, अतः ऐसी स्थिति मे कवि का कर्त्तव्य-भार और भी सरल हो गया है। वर्णन प्रायः यह मानकर किया जाता है कि उसका पाठक प्रख्यात कथानक से अभिज्ञ है अतः अत्यन्त परिसीमित और नियत फलक पर कुछ शृखलाहीन घटनात्मक उल्लेख रहते है, जिनकी कड़ियाँ या सम्बन्ध सूत्र बहुश्रुत पाठक को अर्जित ज्ञान से मिलाने पड़ते है। इन कथाओ का आधार-फलक इतना सीमित और विन्यास इतना अनिश्चित है कि इन्हे 'कथा' कहने मे भी संकोच होता है। किसी भी कहानी का स्वत.पूर्ण होना अनिवार्य है और इन कथाओ मे बिना पूर्वज्ञान के इनका आदि व अन्त नहीं मिलाया जा सकता। चित्र मे अकित प्रसंग के कारण और परिणाम-रूप मे घटित होने वाली घटनाओ का पूर्ण परिचय न देकर ये क व केवल घटना के यथाप्रसग चित्रांकित रूप का वर्णन करने लगते हैं। अतः इन्हें प्रसग-कथाएँ कहा जा सकता है।

इनका स्वरूप घटनात्मक तो है ही, इसलिए और भी कि इनका आधार स्थूल और वस्तुरूप होता है, और उस आधार में भी यथासंभव बाह्य और मूर्त विशेषताओं का वर्णन कवि का लक्ष्य होता है। अवकाश होने पर भी चित्र से सकेत-ग्रहण कर चारित्रिक विशेषताओं और अन्तःसघर्ष के उद्घाटन, अतः भाव-वर्णन में वे प्रवृत्त नही होते। इस प्रकार अमूर्त भाव और विचार-तत्त्व का इन रचनाओं मे महत्त्व नही है।

इन कथाओं की अंगी शैली समाख्यान या वर्णनात्मक शैली है जिसमें अंग-रूप में संवाद

शैली या नाट्य-तत्त्व का प्रयोग कवि यदा-कदा करता है। यह प्रयोग बहुत कुछ चित्र मे अकित प्रसग और पात्रो की विशेषता पर निर्भर रहता है तथा किसी भी स्थिति मे बहुत दूर तक नहीं जाता। आरम्भ इन सभी रचनाओं का चित्र की बाह्य विशेषता के इतिवृत्त-वर्णन से हुआ है।

कथा-वर्णन की यह विधा विशेष लोकप्रिय नहीं हुई। इसके आरम्भ और अन्त का इतिहास द्विवेदी-युग तक ही सीमित है। यद्यपि उस समय स्वय द्विवेदीजी के सहित तत्कालीन सभी प्रसिद्ध कवियो ने इस शैली मे रचनाएँ की। परन्तु इनकी परपरा उस युग और कुछ विशेष कवियों की काव्य-रचना से आगे न बढ सकी।

मैथिलीशरण गुप्त ने ये रचनाएँ सख्या की दृष्टि से सर्वाधिक की। 'रत्नावली', 'उत्तरा से अभिमन्यु की विदा', 'द्रौपदी-दुकूल', 'केशों की कथा', 'अर्जुन और उर्वशी', 'भीष्म-प्रतिज्ञा', 'रामचन्द्र जी का गगावतरण', 'द्रौपदी-हरण', 'दमयन्ती और हस', 'कीचक की नीचता' आदि इस शैली की प्रमुख रचनाएँ है। रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'वामन', 'शकुन्तला-जन्म', 'रम्भा-शुक-सवाद' आदि का वर्णन किया। गुप्तजी की रचनाओं की अपेक्षा इन कथाओं मे आख्यान-तत्त्व और भी क्षीण, तथा वर्णन की प्रधानता है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'गौरी', 'गगा-भीष्म', 'महाश्वेता' आदि कविताओं में भी वर्णन अधिक और आख्यान का सस्पर्श मात्र है। 'ऊषा-स्वप्न' मे घटना अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। कही-कही चित्र-वर्णन या चित्रित पात्र-विशेष की भावना का वर्णन करने मे घटनाएँ सूच्य या महत्त्वहीन हो गई है। महावीरप्रसाद द्विवेदी की रचना 'गौरी' मे काम-दहन के प्रसग का उल्लेख देखिये—

हर को इसने वरना चाहा,
मोहित उनको करना चाहा।
बहुविध हाव भाव कर हारी,
विफल हुई पर इच्छा सारी॥
शिव ने काम भस्म कर डाला,
बहुत निराश हुई तब बाला।
कठिन तपस्या तब विस्तारी;
गौरी गौरी-शिखर सिधारी॥[1]

इस प्रकार अनेक प्रसग-कथाओ मे हुआ है। घटनाएँ इनका विषय नही, अत: अधिकाश कथाओं मे उनका सुविन्यस्त सागोपांग वर्णन नही मिलता। चित्र की प्रत्यक्ष विशेषता से आरभ करके कवि उसकी पृष्ठभूमि में घटित होने वाले प्रख्यात प्रसंगो की सूचना भर दे देता है। वह मानकर चलता है कि उसका पाठक इन प्रख्यात प्रसंगों से अभिज्ञ है, इसलिए वह चित्र के आगे-पीछे के घटनात्मक सूत्र जोड़कर एक ओर हो जाता है।

पद्य-कथाओ का तीसरा रूप कवि सियारामशरण की 'आर्द्रा' मे उपलब्ध होता है। ये कथाएँ न घटनात्मक है न वर्णनात्मक, और न व्यक्ति-प्रधान। इनमे प्राय: किसी समसामयिक

---

१. कविता कलाप—सं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६१

सामाजिक समस्या को कथा-रूप देकर उसके प्रति पाठक की करुणा जागृत करने का प्रयत्न किया गया है, अथवा कवि के तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण और विचारों की व्यंजना है। इस प्रकार कुछ कविताओं में संदेश प्रधान है व अन्य में समस्या। अनेक मार्मिक व समस्याप्रधान करुण आख्यान 'आर्द्रा' में संकलित कथाओं में पद्यबद्ध हैं। कहीं-कहीं किसी पात्र-विशेष के जीवन में घटित होने वाली किसी हृदयस्पर्शी घटना का वर्णन है। जब हम किसी समस्या का वर्णन करके उसके निवारण का उपदेश देते है, तो श्रोता पर उतना प्रभाव नहीं होता, पर जब इसी समस्या को हम किसी पात्र के जीवन में प्रत्यक्ष घटित होते देखते हैं, तो मानव-सुलभ सहानुभूति के कारण उसके प्रति हमारी सवेदना जाग्रत होती है। इस प्रकार अकित समस्याओं का प्रभाव हृदय पर अधिक स्थायी और मार्मिक होता है। इन कथाओं में कवि एक घटना का वर्णन करता है और उससे समस्या वस्तु-ध्वनि के रूप में व्यंजित होती है। इस समस्या के निवारण की आवश्यकता का संदेश भी इन कविताओ मे व्यंग्य रहता है।

इन कथाओ में वर्णित समस्याओ का सम्बन्ध समाज के निम्न, शोषित वर्ग के आर्थिक और सामाजिक जीवन से है। 'एक फूल की चाह'—मे कवि ने छुआछूत की समस्या को उठाया है। 'डाक्टर' मे कवि ने इस वर्ग के व्यक्तियों को उनके सामाजिक उत्तरदायित्व और कर्तव्य के प्रति सचेत किया है। लोभ और अवज्ञावश दरिद्र व्यक्तियो के प्रति उपेक्षा या कठोरता का कवि ने विरोध किया है। 'अब न करूँगी ऐसा' मे धनिक वर्ग द्वारा अपने कुत्ते-बिल्लियों के लिए निर्धन वर्ग के अन्यथा भी दीन संतप्त बालकों पर अत्याचार का एक अत्यन्त करुण चित्र खींचा गया है। 'अग्नि-परीक्षा' मे कवि ने हिन्दू जाति की रूढिवादिता और सकीर्ण धार्मिक मनोवृत्ति पर कुठाराघात किया है। इस कहानी की मूलवर्ती समस्या व्यापक है। साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण अपहृत हिन्दू नारियो को अपनाने मे आपत्ति के दुष्परिणाम इस कथा मे अकित है। इस प्रकार प्रत्येक आख्यान के मूल मे कोई-न-कोई समस्या है।

इन कथाओ मे घटना का विन्यास स्पष्ट और सरल है। उसमे किसी प्रकार का उतार-चढ़ाव, जटिलता, नाटकीय परिस्थितियाँ तथा चमत्कारिक अंश या मोड़-तोड़ नही मिलते। इसका कारण इन कथाओं का सीमित कलेवर, वस्तुगत धरातल, स्थूल व एकपक्षीय समस्याएँ, एवं उनका समसामयिक महत्त्व है। इन कहानियो मे किन्ही शाश्वत प्रश्नो अथवा मानव के अन्तरंग से सम्बन्धित गहन-गम्भीर समस्याओं को नहीं उठाया गया। बाह्य जीवन से भी सम्बद्ध विराट या सप्राण प्रसंग इनके विषय नहीं है। कवि ने अत्यन्त सीमित धरातल पर विशेष समय और समाज से सम्बद्ध कुछ विशिष्ट और एकपक्षीय समस्याएँ उठाई हैं। इनका कवि कम्युनिस्ट नहीं, गांधीवाद का आस्थावान कवि है। अतः वह पाठक के हृदय मे क्रान्ति की चिंगारियाँ प्रज्वलित नही करना चाहता, उसकी सहानुभूति व करुणा जाग्रत करने का आकांक्षी है, फलतः वह समस्या के किसी मर्मस्पर्शी पहलू का स्पर्श करता है, उसके सम्भावित दुष्परिणामों का वर्णन करता है। अतः करुणा का एक मन्द स्रोत इन सभी आख्यानों में अन्तर्धारा के रूप में प्रवाहित है।

गुप्तजी शैली की दृष्टि से लक्षणा-व्यंजना के नहीं अभिधा के कवि है। उनकी कविता में सौन्दर्य की अपेक्षा सार अधिक होता है। हाँ, एक प्रकार की सफाई, सुलझन और स्फीतता

उनकी शैली में सर्वत्र व्याप्त रहती है और 'आर्द्रा' की ये कथाएँ इसका अपवाद नहीं। उनकी कला मनोमुग्धकारी नहीं मर्मस्पर्शी होती है। अतः इन कथाओं मे कलागत सौन्दर्य व चमत्कार की अपेक्षा संदेश अधिक है। इन कथाओं की शैली वृत्त-वर्णन की शैली है जिसमे अन्तर्द्वन्द्व, गहराई और तीव्रता तथा अप्रतिहत धारा-प्रवाह नही, सरल मन्द गति से सहज विकास मिलता है।

छन्द की दृष्टि से सभी कथाओ में पद्धति एक ही अपनाई गई है तथा छन्दाकार विविध। इन सभी कथाओ की रचना आद्यन्त एक ही छन्द मे हुई है। प्रकार की दृष्टि से—मात्रिक, वर्णिक और मुक्त तीनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग इनमे किया गया है। वर्णिक छन्दों का प्रयोग केवल चित्र-सम्बन्धी कथाओ मे हुआ है। कुछ कथाएँ मात्रिक छन्दो मे भी लिखी गई। मैथिली-शरण गुप्त ने अपनी अन्य रचनाओ मे वीर और पयार तथा घनाक्षरी के उत्तर-चरणार्द्ध का प्रयोग किया है तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी इसी छन्द का अन्त्यमुक्त प्रयोग किया है। सियाराम-शरण गुप्त ने अधिकाश कथाएँ मुक्त छन्द मे लिखी और ला० भगवानदीन ने अपनी कथाओ मे उर्दू के बहर की लय का प्रयोग किया। परन्तु छन्द-परिवर्तन इनमे कही नही किया गया।

अब तक जिन कृतियो का उल्लेख किया गया वे कला की दृष्टि से साधारण स्तर की रचनाएँ कही जायँगी। इस विधा का उत्कर्ष सोहनलाल द्विवेदी की 'वासवदत्ता' और चरम विकास 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' नामक रचना मे मिलता है। ये दोनो रचनाएँ इस प्रकार की पूर्ववर्ती रचनाओ से, तथा परस्पर एक-दूसरे से इतनी भिन्न है कि इनका परिगणन न तो पूर्वोक्त किसी प्रकार के अन्तर्गत किया जा सकता है और न ही इनका एक पृथक् समवेत् वर्ग बनाया जा सकता है। अतः इनका परिचय पृथक् रूप से देना उचित होगा।

वासवदत्ता

इसमे सोहनलाल द्विवेदी ने अनेक लघु-आख्यानो की रचना की है, जिनमे से अधिकाश का सम्बन्ध कवि के शब्दो मे किसी न किसी सांस्कृतिक पहलू से है। अपवाद रूप मे एक अन्योक्ति 'एक बूंद' भी इन सास्कृतिक प्रसगो के साथ वर्तमान है। कुछ आख्यानो का चयन इतिहास से किया गया है, अन्य का प्राचीन साहित्य से, तथा अन्योक्ति की घटना काल्पनिक है। पहले प्रकार का प्रसग 'सरदार चूडावत' मे, दूसरे प्रकार के प्रसग 'एक बूंद' के अतिरिक्त शेष सभी कथाओ मे लिये गए है, और 'एक बूंद' मे अन्योक्ति के रूप मे काल्पनिक घटना-योजना की गई है।

इन कथाओ मे सन्देश निहित है और इनका आधार घटनात्मक है। "इनमे से अधिकाश मे प्रवृत्ति और आदर्श का सघर्ष, और अन्त मे आदर्श की विजय की आनन्दपूर्ण स्वीकृति है। इनमे प्राय. सभी मे वैभव-विलास की पृष्ठभूमि पर नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा है।"[1] सकलन की अधिकाश कथाओ मे मोह और कर्त्तव्य के बीच सघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व का आधार ग्रहण कर अन्त मे आदर्श का जयघोष किया गया है। सांस्कृतिक विषय, घटनात्मक स्वरूप, और आदर्श के

---

१. विचार और विश्लेषण —डा० नगेन्द्र, पृ० १४०

धरातल पर नैतिक महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति—यही इन कथाओं की रूपरेखा है।

शैली का जहाँ तक प्रश्न है, मूलतः सोहनलाल द्विवेदी का दृष्टिकोण बहिर्मुखी है और इन कथाओं का सम्बन्ध है अन्त.संघर्ष से। इनके कवि के पास वह सूक्ष्म अन्तर्निवेषी दृष्टि नही जो अपनी चेतन, अचेतन तथा विरोधी प्रवृत्तियो में संघर्ष को झाँककर, उसका अभिज्ञान कर सके। उनकी सत्ता की कल्पना कर, पात्रो से तादात्म्य कर, अनुभूति के आधार पर उन्हें पहचानकर, शब्द-रूप दे सके। वह पात्रों की स्थिति से तादात्म्य कर अपने अन्तर्मन में प्रवृत्तियों के इस तीव्र विरोध, घात-प्रतिघात की सृष्टि नही कर पाता। जब कवि स्वय इस अन्तर्द्वन्द्व मे होकर गुजरता है, और अन्त मे विजयी प्रवृत्ति के आनन्द की अनुभूति करता है तब उसके अंकन मे गहराई और तीव्रता मिलती है, परन्तु जब वह केवल इस अन्तर्द्वन्द्व को पहचानता भर है तथा निश्चित् दृष्टिकोण और मान्यताओ के आधार पर एक पक्ष के पराभव और दूसरे की प्रतिष्ठा मे आनन्द की स्वीकृति करता है तब उसके अकन मे केवल स्फूर्ति और ओज ही आ पाएगा। वासवदत्ता का कवि "इन कथाओ मे विद्यमान सूक्ष्म सत्ता के मन्थनकारी अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव नही कर पाया, केवल सानन्द स्वीकृति कर पाया है—उर्वशी, कुन्ती और कर्ण, कुणाल, महाभिनिष्क्रमण सभी मे।"[1]

ऐसी स्थिति मे इन घटनाओं का रगस्थल अन्तर्मन नही हो सकता था। न इनमें भावनाओं के तीव्र घात-प्रतिघात को स्थान मिल सकता था, और न ही मानव-मन की सूक्ष्म विवृत्तियाँ इन कथाओं में उपलब्ध हो सकती थी। अतः इन घटनाओ का स्वरूप अमूर्त व सूक्ष्म नहीं, बाह्य घटनाएँ इनमें साधक या प्रासगिक नहीं, साध्य है, जिनमे आदर्श की विजय वस्तु-ध्वनि के रूप में व्यग्य है।

ऐसी स्थिति मे कवि के सामने एक मार्ग और था—इतिवृत्तात्मक सरल वृत्त-वर्णन शैली मे नैतिक आदर्शों का उपदेश और प्रतिपादन, परन्तु निश्चय ही 'वासवदत्ता' के कवि की कलात्मक सिद्धि इससे कही अधिक है। उनके "वर्णन मे स्फूर्ति, ओज और वाग्मिता असदिग्ध है जिसकी प्रेरणा अनुभूति के नही वरन् स्वीकृति के आनन्द मे है।" इसका एक कारण है कि इन आख्यानो के प्रति कवि ने तटस्थ द्रष्टा और निरपेक्ष कथा-वाचक का दृष्टिकोण नही रखा। वह जिन आदर्शों को इनके द्वारा प्रतिफलित देखना चाहता है, उनके प्रति उसे आस्था है, अतः जब वह इस उद्देश्य-पूर्ति के लिए ऐसे सास्कृतिक प्रसगों का चयन करता है जिनमे अभीष्ट संघर्ष-चित्रण की सम्भावनाएँ निहित है, तो भले ही वह अन्तर्मुखी दृष्टि से सूक्ष्म भाव व विचार-प्रसंगों का स्वानुभूत उद्घाटन न कर सके, परन्तु उसे इन अनुभूतियो की, इनके संघर्ष की, पहचान अवश्य है और इसीलिए इनके वर्णन के मूल मे अपने विशिष्ट दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की कामना, उसके निर्वाह का उत्साह, इन कथानको की शैली में अप्रतिहत धारा-प्रवाह का साधक हुआ है। भारतीय सास्कृतिक मूल्यों मे कवि के विश्वास और आचार-निष्ठा ने इन कथानकों को गति प्रदान की है।

'वासवदत्ता' की शैली "व्यग्य-सकेतमयी न होकर मुखर है।" निश्चय ही संकेत और

---

१. विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, पृ० १४१

व्यंजना के द्वारा नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करना 'वासवदत्ता' के कवि के वश की बात नहीं। अनेक कथाओ के अन्त मे कवि अपेक्षा से कुछ अधिक विस्तृत वर्णन व व्याख्या करके अन्तिम नाटकीय प्रभाव को नष्ट कर देता है। 'वासवदत्ता' मे गौतम की अन्तिम परिचर्या, 'उर्वशी' मे अर्जुन-उर्वशी का सवाद, 'चूड़ावत' के अन्त मे कवि का उपसहारात्मक वक्तव्य, 'कर्ण और कुन्ती' मे कर्ण का रणक्षेत्र की ओर प्रस्थान आदि इसके साक्षी है। इन प्रसंगों के पूर्व कवि ने यदि समाप्त कर, शेष को पाठक की कल्पना के लिए व्यग्य रूप में छोड दिया होता तो कथानकों मे अन्तिम प्रभाव-सम्बन्धी गरिमा आ जाती।

इन कथाओं की शैली भी वक्ता-श्रोता के बीच कथा कहने-सुनने की परम्परागत पद्धति है। भारतीय और पाश्चात्य दोनो परम्पराओ मे—'एक बार की बात है—(once upon a time...)' से कथारम्भ की विधि अत्यन्त प्राचीन है। आधुनिक युग मे कथा-वर्णन की अनेक नवीन और नाटकीय पद्धतियो के आविष्कार के उपरान्त भी कवि कथा मे अनेक स्थलों पर इसी शैली का उपयोग करता है—

(क) **एक बार—**
ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा देश मे,
सभी बड़े क्लेश में,—[1]

(ख) **एक बार—**
इसी सुरलोक में
सुरपति के ओक में
ऊर्ध्वगामी पुण्य सम, सौख्य सम
आये पाण्डु-पुत्र पार्थ
जैसे हो पुरुषार्थ।[2]

विशेष नाटकीय परिस्थितियो, आकस्मिकताओं की योजना भी कवि ने नही की। कथा मे अप्रतिहत धारा-प्रवाह है परन्तु उसकी गति सरल है, मोड़-तोड़मय, ऊँची-नीची नहीं, समतल निचाट भूमि पर ये कथाएँ बढती जाती है। संवादो मे भी विशेष सजीवता, संक्षेपण व चुस्ती नही, विस्तृत मन्थर वक्तृता की विशेषता है। व्याख्या और मुखरता से बोधव्य को तिलमिला देने वाले व्यंग और मूक व्यजनाओ का भी शैली मे अभाव हो गया है। उर्वशी और अर्जुन, तथा कुन्ती और कर्ण के सवाद इस कथन की पुष्टि मे उद्धृत किये जा सकते है। वर्णनो मे दृश्यात्मकता के रूप मे नाट्य-तत्त्व अवश्य इन कथाओ मे मिलता है। कवि अपने पात्रो के रूप, क्रिया, गति, मुद्राओ आदि को शब्द-चित्रों मे बाँधने का प्रयत्न निरन्तर करता रहा है। यद्यपि ये चित्र विशेष के नही सामान्य के प्रतीत होते हैं। इनकी रेखाएँ सूक्ष्म और नियत नहीं, स्थूल और विस्तृत हैं परन्तु दृश्यात्मकता इनमे है, निश्चय ही। नवपरिणीता पत्नी से वियुक्त होते हुए सरदार चूड़ावत का निम्नाकित वर्णन उदाहरण रूप मे प्रस्तुत है—

जाते सरदार, हेरते मुड़-मुड़ अधीर,

---

१. वासवदत्ता—सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ४१

२. वही, पृ० १

उठती थी उर में रह-रह न जाने कौन पीर !
रास शिथिल चाल शिथिल, ढाल शिथिल,
शर औ' करवाल शिथिल,
बढ़ता था, अश्व भी न,
स्वामी का मुख देख, रुख देख ।[1]

इन कथाओं मे विराट् और समर्थ प्रसगो का अभाव है । सघर्ष के स्थल मे किंचित् ओज और आवेश उत्पन्न होता है, परन्तु उसके अवसान मे प्रायः करुण प्रभाव व्यजित रहता है । विजित के प्रति पाठक की सहानुभूति जागृत होती है, उल्लास नही । जीवन के कोमल और करुण प्रसगों का अतर्भाव ही इनमे हुआ है । इनका माध्यम भी कोमल, मधुर आभरणो से युक्त तत्सम-प्रधान भाषा-शैली है, जिसमे दीप्ति और चमक कुछ दूर तक सघर्षमय स्थलो मे ही उत्पन्न होती है, शेष अश मे लालित्य ही अधिक रहता है ।

इनकी एक विशेषता—छन्द-विधान है । घनाक्षरी के आधार पर मुक्त-छन्द का विन्यास और विकास कर उसमे कवि ने इन प्रसगो की रचना की है । इस छन्द का एक मात्र आधार भाव-लय है । उसके अतिरिक्त मात्रा, वर्ण, यति, विराम, चरण-सख्या आदि विषयक प्रतिबन्ध लेखक ने स्वीकार नही किये । वह भाव की गति, विराम, उत्थान-पतन के अनुसार छन्दों में वर्णों, यति, विराम, छोटी-बडी पक्तियो का प्रयोग करता है । कही-कही घनाक्षरी का लयाधार स्पष्ट है, अन्यत्र नही—

तीक्ष्ण खड्ग धार पर,
विक्रम अपार पर,
निज भुज-दंड पर,
पौरुष प्रचंड पर,[2]

उक्त पंक्तियों मे कवित्त घनाक्षरी के अष्टक का आधार स्पष्ट है । कही-कही कवि ने उक्त लयाधार न लेकर स्वतन्त्र रूप से भाव के आरोह-अवरोह के आधार पर वर्ण-सख्या, यति, विराम, अन्तर्यति, चरण-विस्तार आदि का नियमन किया है । छन्द का इतना सफल प्रयोग सिद्धहस्त कलाकार की लेखनी से ही सम्भव है—

सुन्दरी ज्यों विभावरी
सजकर नव हीरहार
पुष्पहार
अंग-अंग अंगराग,
केसर, मृगमद-पराग,
मस्तक कुकुम सुहाग,
अरुण-चरण,

---

१. वासवदत्ता—मोहनलाल द्विवेदी, पृ० २९
२. वही, पृ० २३

नूपुर-ध्वनि,
बजती शत किंकिणी
बजती सी आगमनी,
मृदु-मृदु मधु झंकार
झंकृत-सी करती चर-अचर निखिल तार,[1]

नायिका के प्रत्येक पदक्षेप के साथ उसके शृगार के प्रसाधनो पर भ्रमणशील कवि की दृष्टि के प्रत्येक परिवर्तन को छन्द की परिवर्तनमय गतिशील लय ने मानो बांध लिया है।

राम की शक्ति पूजा

इसकी रचना हिन्दी-साहित्य की एक ऐतिहासिक घटना है। यदि महाकाव्य रचना की विशिष्ट रूढियाँ और आकारगत विशेषताएँ इस दिशा मे बाधक न हो, तो इस आख्यान को निस्सकोच रूप से महाकाव्य स्वीकार किया जा सकता है। महाकाव्य मे कथा-सम्बन्धी एक निश्चित विस्तार और व्यापकता, अतः आकार मे भी बृहदता अपेक्षित है, जो इस लघु आख्यान मे लभ्य नही। परन्तु इसके सीमित कलेवर मे महाकाव्य की महाप्राणता का स्पन्दन स्पष्ट सुनाई पडता है। कथा का स्वरूप अशतः प्रख्यात और अशत. कल्पना का सुपरिणाम है। राम-रावण युद्ध जैसी भयकर और समर्थ घटना की पृष्ठभूमि मे बारम्बार असफल राम की अन्तर्वेदना, सिद्धि के लिए शक्ति की आराधना और शक्ति द्वारा परीक्षित होने पर सफलता का निश्चय—यही इस कथा की सक्षिप्त रूपरेखा है।

इस कथा के पौराणिक सूत्र देवी-भागवत और शिव महिम्न स्तोत्र मे रक्षित है। देवी-भागवत मे—नारद के आदेश पर रामचन्द्र के नवरात्रि-व्रत के उपरान्त अन्तिम दिन के युद्ध से एक दिन पूर्व देवी-पूजा का उल्लेख मिलता है। शिव महिम्न स्तोत्र के एक श्लोक मे विष्णु की शिव-भक्ति और पूजा के लिए एक सहस्र कमल चढाने का उल्लेख है। इसी प्रसग मे एक कमल की कमी पडने पर पुण्डरीकाक्ष होने के नाते विष्णु के नयन-अर्पण का उद्यम और शिव की प्रसन्नता का वर्णन है। रावण को युद्ध मे शक्ति-वरदान का प्रसंग भी प्रख्यात है। इन्ही प्रमुख पौराणिक सूत्रो के आधार पर इस प्रबन्ध की कथा का निर्माण हुआ है। घटनाओ मे कवि ने संगठना और प्रभाव की दृष्टि से कुछ क्रम-परिवर्तन और रूप-परिवर्तन किया है।

इस कथा की विलक्षण विशेषता सीमित आकार मे अनेक समर्थ और महाप्राण प्रसगो से युक्त विस्तृत कथा का विन्यास है। घटनाओ का फलक अत्यन्त व्यापक और विराट है तथा उसमे बाह्य और अन्त, जीवन के दोनों क्षेत्र अन्तर्भूत है। सक्षिप्त आकार मे भी, इस कथा मे अनुस्यूत सभी प्रसगो का नाटकीय विन्यास प्रत्यक्ष है। यद्यपि 'राम की शक्ति पूजा' मे, जैसा नाम से स्पष्ट है राम के जीवन का एक खण्ड नही केवल एक प्रसंग, एक प्रकरण वर्णित है, परन्तु इस एक घटना का विन्यास महाकाव्य की महाप्राणता और औदात्य के साथ हुआ है, तथा कवि ने इस प्रमुख घटना को उचित पृष्ठभूमि, परिणाम और वातावरण के साथ प्रस्तुत किया है।

---

१. वासवदत्ता, पृ० १२

इस प्रसंग का मूलवर्ती रस वीर होने के कारण समग्र कथा मे दुर्दम ओज और उत्साह का सचार है। परन्तु कथा के विस्तार की सीमा के कारण इस कृति को न महाकाव्य कहा जा सकता है और न खण्डकाव्य। यदि केवल आत्मा और शैली ही के आधार पर निर्णय सम्भव हो, तो निश्चय ही यह रचना अपने सीमित कलेवर मे भी किसी भी महाकाव्य की समकक्षी कही जा सकती है। किन्तु बाह्य रूप-विधान की अवहेलना इतनी सहज सम्भव नही। अत. इस रचना को लघु पद्य-कथा से अधिक नही माना जा सकता।

प्रसंग का आरम्भ कवि ने युद्ध से लौटती निराश बानर सेना के वर्णन से किया है। शिविर में पहुँचकर मंत्रणा का प्रसग अकित है, और तदुपरान्त लंका का रात्रि वर्णन। इस प्रसग मे कवि ने सकलनत्रय के सिद्धान्त की रक्षा करते हुए कौशलपूर्वक राम के जीवन की विगत घटनाओ—पुष्पवाटिका-प्रसग, धनुर्भंग, विश्व-विजय की आकाक्षा, विविध राक्षसो के वध को स्मृति के सूत्र से जोडा है। यह स्मृति-योजना मनोवैज्ञानिक है और सम्पूर्ण प्रसग को कोमल मधुर स्पर्श प्रदान करती है। इसी अन्त साक्षात्कार के प्रसंग मे राम के हृदय की आशका से उनकी चेतना अभिभूत हो जाती है और वे रावण के विजयघोष की व्याप्ति का अनुभव करते है। इस प्रसंग के साथ कवि ने एक छोटी-सी अन्तर्कथा, उपाख्यान, या उपप्रसग की योजना की है। इस प्रासगिक कथा की, मूल प्रसग के विकास और गति मे कोई सार्थकता या साधक स्थिति नहीं। इसके पीछे केवल एक प्रेरणा व सम्भावना प्रतीत होती है—हनुमान के पौरुषदीप्त विराट व्यक्तित्व के अंकन के माध्यम से कवि की विराट चेतना अभिव्यक्ति का साधन पाती है, अन्यथा मूल प्रसग से इस प्रसग का कोई अन्तरग व अनिवार्य सम्बन्ध नही है। इसके उपरान्त विभीषण के उत्साह-वर्द्धन, और जाम्बवान के द्वारा शक्ति-पूजन के परामर्श से कथा चरम घटना की ओर बढ़ती है। अन्त मे कथा की चरम घटना—शक्ति-पूजा, हनुमान के लाए एक सौ आठ इन्दीवरो मे से एक की कमी, और राम-द्वारा नेत्र की बलि देने के उद्यम पर शक्ति वरदान—सम्पन्न होती है। इसी के साथ पटाक्षेप हो जाता है।

कथा का विन्यास घटना के अनेक पूर्व और समानान्तर घटित होने वाले अनेक प्रसगो की सश्लिष्ट योजना से हुआ है। कार्य-व्यापार का विकास किसी भी बृहद् प्रबन्ध की भाँति नाटकीय विधि से होता है। वर्णनो में भी विविधता है। यदि प्रयत्न किया जाय तो सुनिश्चित आदि, मध्य, अवसान के अतिरिक्त कार्यव्यापार की शास्त्र-निर्दिष्ट पाँच अवस्थाओ का भी कुछ दूर तक शोध किया जा सकता है। बाधा है केवल एक—हनुमान की प्रासगिक कथा की। इस प्रसग की योजना का मूल प्रसंग के विकास पर कोई तर्कसम्मत प्रभाव नही। आख्यान काव्यो मे मूल प्रसग के साथ अवान्तर प्रसगों की योजना साधक या बाधक रूप मे होनी चाहिए। अर्थात्, मूल प्रसग के साथ इन उप-प्रसगो की स्थिति और उपयोगिता प्रश्नातीत होनी चाहिए, तभी कथा का विन्यास सुगठित और नाटकीय स्वीकार किया जा सकता है, और इस दृष्टि से इस प्रसग की मूल आख्यान के विकास मे कोई प्रत्यक्ष अनिवार्यता प्रतीत नही होती। मूल कार्य इससे अग्रसर नही होता। इसका आरम्भ और समाप्ति, कथा के बीच, बिना किसी कार्य-कारण सम्बन्ध के मूलकार्य-विकास में योगदान दिये बिना ही हो जाती है, अतः प्रबन्ध के बीच मे यह कथा आरोपित प्रतीत होती है। यदि कहा जाय कि हनमान के ओजस्वी विराट् रूप का परिचय देने के लिए, तथा घटनाओ

मे प्राणवत्ता के सचार के लिए इस प्रसग की योजना की गई है, तो भी इसकी उपयोगिता असिद्ध ही रहती है। हनुमान की इस दुर्दम शक्ति, विराट स्वरूप, और अदम्य उत्साह से कथा के किसी आगामी कार्य का सम्पादन भी नही होता, अत. यह प्रसग वस्तु-विन्यास मे किसी भी रूप मे उपकारी नही माना जा सकता। मूल कार्य का आरम्भ तो इसी घटना के तुरन्त बाद होता है, जब जाम्बवान के द्वारा शक्ति-पूजा का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है। इस कार्य का आभास पहले ही राम की नैराश्यपूर्ण मनस्थिति और रावण को शक्ति-वरदान के उल्लेख के द्वारा हो जाता है, परन्तु क्रियात्मक रूप जाम्बवान के प्रस्ताव से ही आरम्भ होता है। उससे पूर्व का अंश इस प्रधान कार्य की भूमिका तत्पर करता है। आक्षेप किया जा सकता है कि इस लघु कथा की दृष्टि से इतनी देर मे मूल कार्यारम्भ प्रबन्ध-दोष है, उत्तर देना असम्भव नही। शक्ति-पूजा अपने आप मे स्वतन्त्र उद्यम नही, वह उस महत्तर प्रयत्न का एक अशमात्र है जिसका समारम्भ राम-रावण-युद्ध मे बहुत पूर्व हो चुका है। कवि ने यहाँ उस सम्पूर्ण खण्ड को नही उसके एक अश, एक प्रकरण को पद्यबद्ध किया है। इस अपने आप मे अपूर्ण प्रसग को उचित सदर्भ मे, कार्य-कारण सम्बन्ध-सहित प्रस्तुत करना आवश्यक था। मूलकार्य से पूर्व वर्णित पूर्वपीठिका का महत्त्व स्वत सिद्ध है। उसके अभाव मे शक्ति-पूजा की आवश्यकता की व्याख्या नही होती। इस कथा मे प्रबन्ध-काव्यो की सी पचावस्थाएँ, या वस्तु-विन्यास साग्रह ढूढना व्यर्थ होगा। इसकी नाटकीयता इसके सघर्ष की तीव्रता, और सारभूत प्रभाव मे रक्षित है, कार्यावस्थाओ के शास्त्रीय निर्वाह मे नही।

'राम की शक्ति पूजा' मे घटनाओ का अन्तरग और बहिरग—द्विविध प्रसार अकित है। कवि ने जितना बाह्य घटनाओं का सशक्त और विराट् रूप अकित किया है, उतना ही राम के मन मे होने वाले भयकर अन्तर्द्वन्द्व और अन्य मानसिक व्यापारो का। सभी बहिरग घटनाओ के अन्तरंग सूत्र इस प्रकार स्पष्ट किये गए है। राम के अंतर्मन के प्रसगो का यह वर्णन एक ओर मनोवैज्ञानिक चित्रण की कोटि मे आएगा, दूसरी ओर कवि ने शक्ति-साधना के प्रसग में—योग मार्ग के अनुरूप राम की आत्मस्थित शक्ति-साधना की व्यजना की है। अधिक समय 'निराला' ने राघव के विविध अत चित्रों के वर्णन मे लगाया है। कवि होने के नाते यही उचित भी था। अन्त और बाह्य दोनो क्षेत्रों से 'निराला' ने समान रूप से कोमल और विराट्, मधुर और ओजस्वी दोनो पक्षो का चयन किया है। इनमे प्रसग की आवश्यकता के अनुकूल विराट् पक्ष की महाप्राणता, कोमल-मधुर पक्ष के लालित्य की अपेक्षा अधिक चित्रित हुई है। बाह्य-वर्णनो मे कवि ने विराट् दृश्य-शृखला अकित की है। अन्तर्पक्ष का सम्बन्ध—मधुर करुण-स्मृतियो से और नैराश्य से है, अतः अतर्द्वद्व मे नैराश्यजन्य करुणा अधिक है।

शैली—इस कृति की शैली कवि की सबसे समर्थ सिद्धि है। 'निराला' की शैली में महाकाव्योपेक्षित औदात्य का पूर्ण परिचय इसी रचना मे प्राप्त होता है। कवि ने समान अधिकार से विराट् और कोमल पक्षों को सफलतापूर्वक अकित किया है। महाकाव्य के लिए जिस विराट् दृश्य-शृखला की अपेक्षा होती है वह इस सक्षिप्त कलेवर मे समाहित है। कवि ने आरम्भ युद्ध-स्थल के भयकर वातावरण के वर्णन से किया है। युद्ध का चित्र तत्सम-प्रधान समस्त शैली मे अंकित है। कवि ने सयुक्त वर्ण-प्रयोग और उपयुक्त शब्दावली से केवल युद्ध की भयकरता ही

नही, गतिविधि को भी बाँध लिया है। युद्ध की हलचल उनकी शब्दावली से व्यजित होती चलती है—

विच्छुरितवह्नि-राजीव-नयन-हत लक्ष्य बाण,
लोहितलोचन-रावण-मदमोचन-महीयान,
राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर,
उद्धत-लकापति-मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर, [1]

उपर्युक्त पक्तियो मे कवि का शब्द-लाघव और प्रभाव-व्यजना प्रशसनीय है। इसके उपरान्त कवि ने विराट् चित्रो का क्रम बाँध दिया है। लौटती हुई निराश सेना के बीच राम के रूप का वर्णन भी विराट् उपमानो के सहारे किया है। कवि की मूर्तिविधायिनी कल्पना इस प्रसग मे द्रष्टव्य है—

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओ पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यो दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हो कही पार। [2]

इन पक्तियो मे कवि की कल्पना विराट् ही नही अर्थगर्भित और साभिप्राय है। राम के अदम्य पौरुषदीप्त व्यक्तित्व का उचित उपमान दुर्गम पर्वत है और उस पर उतरने वाला नैशान्धकार उनके नैराश्य-आवृत्त क्लान्त हृदय की व्यजना करता है। इस प्रसग के उपरान्त कवि ने मध्य मे हनुमान के आकाशगमन का वर्णन और अन्त मे शक्ति के विराट् स्वरूप का चित्रण भी ओजस्वी महाप्राण शैली और विराट् चित्र-कल्पना के आधार पर किया है। इन वर्णनों मे विराट्-चित्रों और भावो को अल्प शब्दो मे बाँध देने की कला महाकाव्यानुरूप है। प्रलय के विक्षुब्ध वातावरण मे व्यक्त आतक, युद्ध के वर्णन मे भयकरता और गति, अमानिशा मे दिग्व्यापी अधकारपूर्ण वातावरण का वर्णन, सृष्टि-व्यापी उपमानो के सहारे राम का रूप-वर्णन और शक्ति की मौलिक विराट् कल्पना—महाकाव्योचित मूर्तिविधायिनी कला, गरिमामय प्रतीक-योजना व महाप्राण शैली के उपयुक्त है। इन प्रसगो मे परुष भावनाओ और वीरत्व की वह्नि-वर्षक शब्दावली कोमल मधुर प्रसगो मे मधुस्नात हो जाती है। जो कवि उनचास पवनो की गति को बाँध लेता है—"तोडता बन्ध, प्रतिरुन्ध धरा, हो स्फीत वक्ष" में पृथ्वी टलमलाती है "जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़", मे समुद्र का आन्दोलन शब्दबद्ध हो जाता है, वही कवि नयनो के गुप्त सम्भाषण, उन्मद पलको के गिरने, अधरो के कम्पन, और आशा-विहगों के मधुर कलरव के स्मृति-चित्र अकित करते हुए तरगो के अप्रतिहत वेग को ऊर्मियो की उन्मद सरल-चटुल गति मे परिणत कर देता है। प्रसग के अनुकूल प्रतीक कोमल, और शैली लालित्यमय व गति मे थिरकन उत्पन्न हो जाती है। इस प्रभाव-व्यजना के हेतु कवि शब्दध्वनियो का उचित प्रयोग जानता है—

१. अनामिका—निराला, पृष्ठ १४८
२. वही, पृष्ठ १४९

देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का,—प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का—नयनों से गोपन—प्रिय सम्भाषण,—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,
कांपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदय—
गाते खग नव-जीवन-परिचय-तरु मलय-वलय,—[1]

कोमल-मधुर भावो की व्यजना के लिए ह्रस्व स्वरो और अल्पप्राण व्यजन ध्वनियों का प्रयोग किया गया है। जीवन के विरोधी पक्षो का इस प्रकार एक ही प्रसग मे समानाधिकार से चित्रण, भाषा के असाधारण उत्कर्ष और गाम्भीर्य का द्योतक है।

इस प्रकार इस कविता मे, जहाँ एक ओर सारभूत नाटकीय प्रभाव, महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करता है, वहाँ विराट् चित्राकन और भाषा का औदात्य व समर्थ प्रयोग भी इस दिशा मे साधक होते है। परन्तु इस रचना को महाकाव्य नही कहा जा सकता। इसमे जीवन की व्यापक समग्रता नही। एक विशेष घटना—महाकाव्योचित गरिमा, प्राणवत्ता से युक्त उदात्त शैली मे अकित है। अत यह सीमित क्षेत्र मे महाकाव्य की कला-साधना है। परन्तु विस्तार के अभाव मे इसे लघु पद्य-कथा ही कहा जा सकता है।

छन्द-विधान—इस कविता का छन्द-विधान भी विशिष्ट और मौलिक है। कवि ने चौबीस मात्राओ का नवीन छन्द बनाया है, जिसमे गति और लय का नियमन, भावानुकूल स्वच्छन्दता से किया गया है। इन मात्राओ मे भी प्रसगानुसार कवि परिवर्तन कर देता है। यति, विराम आदि का प्रयोग भी निश्चित नियमो मे न बंधकर भाव के उत्थान-पतन के अनुसार स्वेच्छया किया गया है। छन्द की लय का नियमन कवि पदावली की विशेषता से भी करता है। भावना के विस्तार के साथ लय मे स्फीतता लाने के लिए वह 'आ' की सन्धि पर आश्रित समासो का प्रयोग करता है—

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार[2]

भावो मे ऊर्ध्व उच्छ्वास के लिए, छन्द की गति मे भी ओज और तीव्रता उत्पन्न करने के हेतु कवि उ, ए, ओ, आदि स्वरो की सन्धि पर आश्रित समास योजना—

बिंध महोल्लास से [3]

और कोमल मधुर भावों के लिए ह्रस्व स्वरो और सरल शब्दावली का प्रयोग करता है।

तुक का प्रयोग कवि ने मध्य और अन्त दोनो मे ही किया है। ऐसा प्राय. प्रवाह बढाने के उद्देश्य से किया गया है—

तोड़ता बंध-प्रतिसंध [4]

---

१. अनामिका—निराला, पृष्ठ १५१
२. वही, पृष्ठ १४९
३. वही, पृष्ठ १४९
४. वही, पृष्ठ १५३

विराम का प्रयोग भी भावनाओ के उत्थान-पतन, प्रवाह की गति आदि को दृष्टि मे रखते हुए कवि करता है। इसीलिए सदैव विराम पक्ति के अन्त मे प्रयुक्त नही होता। कवि ने अधिकतर दूरान्तरप्रवाही पक्तियों मे रचना करके विराम का यथावश्यकता अन्त व मध्य म प्रयोग किया है। वह भावो के उद्दाम प्रवाह मे विराम न देकर उसके प्रबल प्रवाह को तरगाघात के समान बढा देता है। यह योजना कवि की नितान्त मौलिक सिद्धि है, इसीलिए डा० पुत्तूलाल शुक्ल ने किसी परम्परागत नाम के अभाव मे इस छन्द को 'शक्ति पूजा' छन्द कहा है।[1]

आख्यानक-गीतियां

आख्यानक गीतिया इस युग की पद्यबद्ध कहानी का दूसरा रूप है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है—आख्यानक गीतियो को प्राय: बैलेड (Ballad) से तदाकृत कर दिया जाता है।[2] इनका मूल रूप भले ही वीर गीतात्मक रहा हो, परन्तु आधुनिक युग मे विरचित गीतियो मे केवल वीरतापूर्ण कृत्यो का आख्यान ही नही किया गया। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के आख्यान भी इन गीतियों का विषय बने। वास्तव मे आख्यानक गीति के वर्तमान रूप को दृष्टि मे रखते हुए उसमे दो ही विशेषताओ की अनिवार्य स्थिति स्वीकार की जा सकती है। आख्यान तत्त्व और आत्मपरक गीति-शैली में उसका वर्णन। इस समाख्यान का वक्ता कवि स्वय भी हो सकता है, और पात्र को प्रस्तुत करके उसकी आपबीती के रूप मे भी आख्यान-वर्णन करा सकता है। इन्ही दोनो विशेषताओं से एक तीसरी शैलीगत विशेषता का उद्भव होता है, और वह है अन्त.स्फूर्त तथा सरल स्पष्ट शैली मे वर्णन। यदि यह वर्णन आत्मपरक दृष्टि से नही किया गया हो, तो आख्यानक-गीति पद्यबद्ध कहानी रह जाती है। परन्तु आधुनिक आख्यानक-गीतियों मे शैलीगत सरलता और स्पष्टता भी अनिवार्य नही रही। विज्ञान और भौतिक सभ्यता के इस बौद्धिक युग मे भावो का प्रकृत उच्छ्वास और निष्कपट अभिव्यक्ति सरलता से सभव भी नही, अत: अन्य काव्य-रूपो की भाँति इन आख्यानक-गीतियो की शैली मे साहित्यिकता, नाटकीयता, अलकरण और परिष्कार के समावेश का सायास प्रयत्न किया जाता है।

सर्वत्र ये गीतिया—वीरता, युद्ध और पराक्रम के कृत्यो को ही विषय बनाकर लिखी भी नही गई। परन्तु जहाँ इन काव्यो में वृत्त-वर्णन की प्रधानता है, और कवि उसका आख्याता मात्र है, उसका वर्णन वह अपनी तद्विषयक-सवेदना अथवा किसी सहज उच्छ्वसित भाव को अभिव्यक्त करने के लिए नही करता, उन्हे हम आख्यानक-गीतियां मानने के पक्ष मे नही है। अत: डा० श्रीकृष्ण लाल के मतानुसार मैथिलीशरण गुप्त के उन अनेक खंडकाव्यों को तथा लघु पद्य-कथाओ को हम आख्यानक-गीतियां नही मानते जिन्हे उन्होने इस वर्ग में रखकर विवेचन किया है। 'रग मे भग', 'शक्ति', 'विकट-भट', 'वीर पचरत्न' आदि रचनाओ

---

१. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल, पृष्ठ २६०

२. "प्रसिद्ध अगरेजी समालोचक हडसन के मतानुसार आख्यानक गीति एक पद्यबद्ध कहानी है। इसमें युद्ध, वीरता और पराक्रम के कृत्यों का प्राधान्य रहता है और प्रेम, घृणा, करुणा इत्यादि जीवन के सरलतम अभिन्न भाव इसे प्रेरणा-शक्ति प्रदान करते है। इसकी शैली बहुत ही सरल और स्पष्ट होती है।"
आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डा० श्रीकृष्ण लाल, पृ० ६८

मे निश्चित रूप से आख्यान प्रधान है। उनमे सुनिश्चित वस्तु-विन्यास और उसके पीछे नियत उद्देश्य है, कवि के मन में उठी किसी भाव-तरग का प्रकाशन नही। खडकाव्य, पद्य-कथा तथा आख्यानक गीति मे यही भेद होता है। आख्यानक गीति मे भावना प्रधान होती है तथा घटना और पात्र उसके माध्यम। इससे भिन्न खडकाव्यों और आख्यान-काव्यों मे वृत्त-वर्णन प्रधान होता है। एक का दृष्टिकोण आत्मपरक होता है और दूसरे का वस्तुनिष्ठ।

आधुनिक युग की आख्यानक गीतियों मे भावना का उतना प्रकृत, निश्छल, सहज सवेद्य, सरल और स्पष्ट रूप तो नही मिलता, क्योकि इस युग मे मानव इतना आत्मकेन्द्रित और व्यक्ति-निष्ठ हो गया है कि इस प्रकार के सर्वविद् आख्यान उस पर व्यक्ति-रूप मे इतना मर्मस्पर्शी प्रभाव नही डालते, अत: वह जो कुछ कहता है वह वर्ग की भावना के प्रतिनिधि के रूप मे। अथवा, वह कलाकार की भाँति आख्यान से सम्बद्ध पात्रों की अनुभूति का पर्यवेक्षण करने लगता है। फिर भी, कुछ सुन्दर आख्यानक-गीतियाँ इस युग मे निश्चित रूप से लिखी गई। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' का उल्लेख उत्कृष्ट आख्यानक-गीति के रूप मे सर्वाधिक किया जाता है। इसका एक कारण इस रचना की सरल, निसर्ग-सुन्दर स्फूर्तिमय भावाभिव्यक्ति और अतिप्रकाशित गीतिमयता है। यह गीति, आख्यानक-गीतियो की सहज कला के अत्यन्त निकट है। इसका एक कारण है—इस कविता का प्रचलित लोक-गीत की लय के आधार पर रचित होना। लोक-गीत का भाव और लयाधार लेने के कारण इस गीति मे भाव और अभिव्यक्ति के नैसर्गिक सौन्दर्य की रक्षा हो सकी है। सरलता, स्पष्टता और स्फूर्ति इसमे सर्वत्र व्याप्त है। इन आख्यानक-गीतियो मे से जिनका सम्बन्ध किसी वीरतापूर्ण कृत्य से होता है, रचयिता के हृदय मे आख्यान और पात्रो के प्रति प्रशसा, गौरव और अभिमान का भाव वर्तमान रहने के कारण—ओज, अबाध गति और उत्साह की स्फूर्ति वर्तमान रहती है। यही 'झाँसी की रानी' की विशेषता है।

लोक-गीत की शैली का आभास उसमे आद्यन्त मिलता है, क्योकि कवयित्री बुन्देलो हरबोलो के बीच परम्परा से चली आती कथा को अपने श्रोता को सुनाने बैठती है। कथा कहने की यह पद्धति अलाव के चारो ओर बैठे ग्रामीण समाज के आल्हा गाने की प्रथा से बहुत भिन्न नही है। वक्ता-श्रोता के बीच यही प्रत्यक्ष, अनौपचारिक सम्बन्ध इस शैली की विशेषता है। इन गीतियो मे आख्यान तत्त्व के कारण, कभी-कभी जिस स्थल से सम्बद्ध घटना का गान किया जाता है, उसका कुछ दूर तक वर्णन भी किया जाता है। प्रवाहपूर्ण सरल शैली मे आख्यान का ओजमय वर्णन इस काव्य-रूप की प्रमुख विशेषता है।

'झाँसी की रानी' की रचना के उपरान्त इन गीतियो की रचना का मार्ग ही बन्द हो गया। छायावाद के विकास के साथ शैली मे बढने वाले शृंगार-प्रसाधन इस विधा के अनुरूप नही थे। उपयुक्त विषयो की भी इस युग मे कमी रही, फिर भी इन कवियों ने इस प्रकार के एकाध प्रयत्न किए। लहर मे सकलित कवि प्रसाद की रचना 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' साहित्यिक आख्यानक-गीति का सुन्दर उदाहरण है, यद्यपि इसका स्वरूप लोक-साहित्य के ढग पर रचित आख्यानक-गीतियो से सर्वथा भिन्न है। सबसे पहला अन्तर इस कविता मे शैली-सम्बन्धी है। कवि और पाठक के बीच सम्बन्ध वक्ता और श्रोता का नहीं है। कवि स्वय समग्र आख्यान का

भावोद्दीप्त सरल शैली मे वर्णन न करके नाटकीय ढग पर पात्र के मुख से उसकी आपबीती, आत्मग्लानि का कथन कराता है। यह शैली—अपने आप को विशेष पात्र व परिस्थिति में स्थित करके भावनाओ की अभिव्यक्ति की शैली है। दूसरा अन्तर—इस कविता की अलकृत शैली और प्रयुक्त मुक्त छन्द है। अत यदि आख्यानक-गीति को वीर-गीतो (Ballads) का पर्याय मान लिया जाए तो निश्चय ही यह रचना उस अर्थ मे आख्यानक-गीति नही है, क्योकि इसकी मूल भावना ही प्रेम और उत्साह नही, आत्म-ग्लानि और नैराश्य-जनित करुणा की भावना है। परन्तु आख्यानक-गीति के लिए—आख्यानात्मक कविता की गीति शैली मे रचना आवश्यक है, और कुछ नही। प्रसाद की उक्त गीति मे घटना की पृष्ठभूमि मे पात्र की अन्तर्वेदना का अकन किया गया है, केवल उसकी शैली विशिष्ट है, परन्तु यह इस कविता का गुण माना जायगा। गेयता भी इस आख्यानक-गीति मे नही है। शैली भी सहज ओजमयी नहीं, सायास अलकृत और साहित्यिक है।

डा० श्रीकृष्ण लाल ने मैथिलीशरण गुप्त के कुछ खडकाव्यो और आख्यान-काव्यो को इसी विधा की रचनाएँ माना है।[1] ला० भगवान दीन की 'वीर पचरत्न' को भी वे आख्यानक गीति-सग्रह मानते है। हम उनके इस मत से सहमत नही। इन कविताओ मे वृत्त-वर्णन इतना स्पष्ट है और घटना-विन्यास समाख्यानात्मक प्रबन्ध शैली में इतने प्रत्यक्ष रूप से हुआ है कि गीति के तत्त्व उनमे उल्लेख के लिए भी नहीं मिलते। इन प्रबन्धों मे कही-कही वर्णन व प्रसग-योजना नाटकीय शैली मे अवश्य की गई है, परन्तु न इनमे आख्यान के प्रति इनके रचयिता की भावनाओ का उद्रेक मिलता है, न ही किसी पात्र की अन्तर्दशा या मनोवृत्तियो का उच्छ्वासपूर्ण प्रवाह है। इनमे केवल समाख्यान शैली मे सरल विवेकपूर्ण वर्णन है। यदि इन प्रबन्धो को आख्यानक गीतियाँ स्वीकार कर लिया जाएगा तो समाख्यानात्मक प्रबन्धो से व खंडकाव्यो से इनके व्यावर्त्तन का आधार क्या होगा? केवल मैथिलीशरण गुप्त के 'गुरुकुल' को कुछ दूर तक आख्यानक गीति-संकलन माना जा सकता है। इसमे सिक्खो के गुरु-वश से सम्बन्धित अनेक गीतियाँ सकलित है। स्वभावत इनमे कवि की भावनाओ का उद्रेक तो नही है, परन्तु इन गुरुओ के प्रति आस्था और प्रशस्ति-भाव इनके जीवन की कुछ गौरवमय घटनाओ के वर्णन के द्वारा व्यक्त किया गया है। इनमे आख्यान का संस्पर्श है, सुनिश्चित विन्यास नही। केवल वृत्त-वर्णन नही कवि की भावना का सस्पर्श निश्चय ही है, अत. इनकी विधा आख्यानक-गीति के अधिक समीप है, यद्यपि विशुद्ध नही।

आख्यानक-गीतियों की परम्परा इस काल मे बहुत आगे न बढ़ सकी। इसके लिए अलकृत छायावादी शैली का विकास, मुक्त छन्द का विकास और चिर परिवर्तनशील सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियां उत्तरदायी थां, जो इस विधा के अनुकूल सिद्ध न हो सकीं। यूं नाम गिनाने के लिए सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी' मे सकलित गीति 'प्रताप' का उल्लेख इस दिशा में किया जा सकता है।

---

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास—(१९००-१९२५)—डा० श्रीकृष्ण लाल, पृ० ९८-१००

पर्यायबन्ध

कथात्मक लघु प्रबन्धो के अतिरिक्त एक वर्ग उन प्रबन्धो का है, जिनमे किसी विषय-विशेष का कुछ दूर तक वर्णन किया गया है। इन प्रबन्धो की परम्परा बहुत पुरानी है। इतनी पुरानी कि संस्कृत के प्राचीन काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों मे भी इनका उल्लेख मिलता है, यद्यपि विस्तृत विवेचन व लक्षण-निरूपण नही। आचार्य आनन्दवर्द्धन ने ध्वन्यालोक मे अन्य काव्य-रूपो के साथ एक काव्य-विधा का उल्लेख किया, जिसका नाम था 'पर्यायबन्ध'।[1] ध्वनिकार ने काव्य-रूपों मे विस्तारपूर्वक लक्षण-निरूपण किसी भी विधा का नही किया, परन्तु काव्य-शास्त्र मे उपलब्ध अन्य आचार्यों के विवेचन से, इस सम्बन्ध मे व्याख्याता आचार्यों द्वारा निष्कर्ष निकाल लिये गए। आचार्य विश्वेश्वर के अनुसार पर्यायबन्ध से आनन्दवर्द्धन का तात्पर्य एक ऐसे काव्य-रूप से है जो वसन्तादि एक ही विषय के वर्णन के उद्देश्य से लिखा गया हो। व्याख्याता आचार्य ने इस बात को स्पष्ट भी किया है—

वसन्तवर्णनादिरेकवर्णनीयोद्देशेन प्रवृत्त पर्यायबन्ध ।[2]

वसन्तादि किसी एक ही विषय के वर्णन के उद्देश्य से प्रवृत्त काव्य-विशेष को पर्यायबन्ध कहते है। काव्य का यह भेद काव्य-रूप अथवा रचना के आधार पर न किया जाकर काव्य-विषय के आधार पर किया गया है। साथ ही यह प्रबन्ध-काव्य का उपभेद मात्र मान लिया जाय ऐसा भी सम्भव प्रतीत नही होता—क्योंकि अपने विभाजन मे और आगे बढकर आचार्य ने प्रबन्ध के खण्डकाव्य और महाकाव्य, दोनों भेदों का पृथक् उल्लेख किया है। स्पष्ट ही वह पर्यायबन्ध को मुक्तक और प्रबन्ध दोनो से ही पृथक्, विषय की दृष्टि से एक स्वतन्त्र काव्य विधा मानते है। कारण सहज प्रकट है—पर्यायबन्ध मे मुक्तक की सक्षिप्तता और प्रबन्ध के विस्तार, दोनों का ही अभाव है। एक प्रसग का वर्णन निश्चय ही एक स्वतःपूर्ण मुक्तक छन्द मे सम्भव नही, साथ ही एक विषय अथवा प्रसग-विशेष के वर्णन में प्रबन्ध-काव्य के लिए अभीप्सित विस्तार की भी सम्भावना नही हो सकती। अब सहज प्रश्न है कि इस प्रकार के काव्य-रूप आकार-मात्र की दृष्टि से किस काव्य-भेद के अन्तर्गत आएँगे? अथवा उनके लिए रूप-विधा की दृष्टि से किसी स्वतन्त्र संज्ञा की उद्भावना वाछित है?

पहले भी जैसा अनेक प्रसंगो मे कहा जा चुका है किसी भी काव्य का विषय और अभिव्यक्ति, भाव और कला एक अविभाज्य एकाई है—दोनों के बीच एक सहज अनुकूलता और पूर्ण सामंजस्य नितान्त अनिवार्य है—परन्तु काव्य के बाह्य तत्त्व का नियमन निश्चय ही उसके अन्तर्तत्त्व के द्वारा होता है। भाव अथवा विषय के अनुकूल ही उसकी अभिव्यक्ति, उसका कलात्मक अंश तथा बाह्य कलेवर होगा। अपवाद के स्थलों मे इन दोनों तत्त्वो की पारस्परिक असंगति, काव्य के समवेत् प्रभाव मे बाधक होगी। अत: 'पर्यायबन्ध' जैसी काव्य-विधा के लिए विषय की सीमा और विस्तार, आकार मे भी सीमा और विस्तार की नियामक होगी। निष्कर्ष रूप मे विषय के अनुकूल 'पर्यायबन्ध' का आकार न मुक्तक की भाँति सक्षिप्त और न ही प्रबन्ध की

---

१. ध्वन्यालोक—सम्पादक डा० नगेन्द्र, (सन् १९५२), पृष्ठ २४८

२. वही, पृष्ठ २५०

भाँति विस्तृत हो सकता है। उसकी स्थिति कही इन दोनो के बीच निर्धारित करनी होगी।

एक प्रसगमात्र का क्रमबद्ध वर्णन जहाँ एक ओर पर्याप्त विस्तृत नहीं होगा, वहाँ वह मुक्तक की भाँति एक छन्द मे स्वत:पूर्ण भी नही हो सकता। एक विषय अथवा प्रसंग-विशेष का वर्णन करने के लिए एक से अधिक परस्पर सम्बद्ध छन्दों की योजना नितान्त अनिवार्य होगी। इस काव्य-विधा को रूप-आकार की दृष्टि से किसी स्वतन्त्र सज्ञा से विभूषित न कर, यदि विस्तार और सक्षेप के आधार पर, अधिक विस्तृत प्रसगो को वस्तु-वर्णनात्मक प्रबन्धो के अन्तर्गत, और अपेक्षाकृत सीमित कलेवर-युक्त प्रसगो को संयुक्त मुक्तको मे समाविष्ट कर लिया जाय तो अनुचित न होगा।

आधुनिक युग तक आते-आते जैसा कि आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में विवेचन किया है—

"विषयो की अनेकरूपता के साथ-साथ उनके विधान का ढग भी बदल चला। प्राचीन धारा मे 'मुक्तक' और 'प्रबन्ध' की जो प्रणाली चली आती थी उससे कुछ भिन्न प्रणाली का भी अनुसरण करना पड़ा। पुरानी कविता मे 'प्रबन्ध' का रूप कथात्मक और वस्तुवर्णनात्मक ही चला आता था। या तो पौराणिक कथाओ, ऐतिहासिक वृत्तों को लेकर छोटे-बडे आख्यान काव्य रचे जाते थे—जैसे पदमावत, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, छत्रप्रकाश, सुदामा-चरित्र, दान-लीला, चीरहरन-लीला इत्यादि अथवा विवाह, मृगया, झूला, हिडोला, ऋतुविहार आदि को लेकर वस्तुवर्णनात्मक प्रबन्ध। अनेक प्रकार के सामान्य विषयो पर—जैसे बुढ़ापा, विधि-विडंबना, जगत-सचाई सार, गोरक्षा, माता का स्नेह, सपूत, कपूत—कुछ दूर तक चलती हुई विचारों और भावो की मिश्रित धारा के रूप में छोटे-छोटे प्रबन्धों या निबन्धों की चाल न थी। इस प्रकार के विषय कुछ उक्ति-वैचित्र्य के साथ एक ही पद्य में कहे जाते थे अर्थात् वे मुक्तक की सूक्तियो के रूप मे ही होते थे। पर नवीन धारा के आरभ मे छोटे-छोटे पद्यात्मक निबधो की परम्परा भी चली जो प्रथम उत्थानकाल के भीतर तो बहुत कुछ भावप्रधान रही पर आगे चलकर शुष्क और इतिवृत्तात्मक (Matter of fact) होने लगी।"[1]

शुक्लजी के उपर्युक्त विवेचन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि आचार्य आनन्दवर्द्धन ने जिसे पर्यायबन्ध सज्ञा से अभिहित किया है—उस विधा को शुक्लजी वस्तुवर्णनात्मक प्रबन्ध मानते हैं।

अत: उपर्युक्त मतो पर विचार करने के उपरान्त यह निष्कर्ष ग्रहण किया जा सकता है कि जिस काव्य-विधा का आचार्य आनन्दवर्द्धन ने पर्यायबन्ध के रूप मे विषयवस्तु को आधार बनाकर उल्लेख किया है, उसी विधा का रूप, आकार की दृष्टि से लघुप्रबन्धात्मक हो जायगा।

यदि किसी काव्य मे प्रसंग-विशेष का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया हो, तो जैसा आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास मे लिखा है ऐसे काव्य, प्रबन्ध के कथात्मक रूप के अन्तर्गत न आकर, वस्तुवर्णनात्मक रूप के अन्तर्गत आएँगे। उनकी शैली वर्णनात्मक होने पर भी जीवन

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—१९९७ में प्रकाशित संस्करण, पृ० ७१०

की समग्रता और अनेकरूपता के अभाव में, सीमित कलेवर के अन्तर्गत प्रसग-विशेष का वर्णन होने के कारण ऐसा काव्य महाकाव्य न होकर प्रबन्ध-मात्र ही होगा। घटना के अभाव में प्रसंग-विशेष का वर्णन-मात्र खण्डकाव्य भी नही हो सकता। उसमें एक प्रसग-विशेष का ही वर्णन किया जायगा जो विषय-वस्तु और शैली की दृष्टि से आख्यान-काव्य तथा कथा-काव्य न होकर वस्तु-वर्णनात्मक होगा। अतः इस प्रकार के काव्यों को वस्तुवर्णनात्मक लघु-प्रबन्ध या पर्यायबन्ध कहा जा सकता है। द्विवेदी-युग में इस प्रकार की कुछ वस्तुवर्णनात्मक प्रबन्ध रचनाएँ निश्चित रूप से की गई जिन्हे पर्यायबन्ध कहा जा सकता है, परन्तु शैली और कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से इन कविताओं का विशेष महत्त्व नही स्वीकार किया जा सकता। मध्ययुगीन कवियो की भाँति लीला के रसमय प्रसगो का वर्णन तो इन कवियों ने किया ही नही, प्रकृति-वर्णन की परम्परा भी इस युग मे क्षीण हो गई थी। काव्य-रचना के प्रति कवियो का दृष्टिकोण बदल चुका था। कविता के विषय नीति और समाज से सम्बद्ध हो गए थे, अत उनकी प्रवृत्ति स्वतन्त्र प्रबन्धों मे प्रकृति-वर्णन करने मे नही रमी। द्विवेदी-युग के उपरान्त इन वर्णनो का माध्यम प्रगीत व छोटी कविताएँ हो गईं, अतः सम्पूर्ण आधुनिक काव्य मे इस प्रकार के वस्तुवर्णनात्मक प्रबन्धों की सख्या बहुत कम है, और प्रायः वे सभी द्विवेदी-युग में ही लिखे गए।

इन प्रबन्धो के विषय विविध है। कुछ प्रबन्ध प्रकृति को आलम्बन बनाकर वस्तुवर्णन-शैली में लिखे गए। कवि 'शकर' ने पावस और ग्रीष्म ऋतु का वर्णन क्रमशः 'पावस' और 'निदाघ दर्शन' नामक प्रबन्धों में किया। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने दो खण्डो मे 'वसत वियोग' की रचना की। ला० भगवानदीन ने भी 'वसत-वर्णन' की रचना अनेक छन्दो मे की। इस विधा मे कुछ रचनाएं यदा-कदा 'सरस्वती' के अंकों में भी प्रकाशित होती रहीं। परन्तु इन सभी की शैली वस्तुपरक वर्णनात्मक शैली है, जिनमे प्रायः वर्ण्य के विविध अंगों का एक के उपरान्त एक इतिवृत्त वर्णन रहता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छद लीजिये—

दाड़िम ने दीप माणिक के किस लिए हैं बाले।
कुछ पूज्य पाहुने क्या हैं इसके आने वाले॥
चित्रक ने फूल कर क्यों निज तन धवल किया है?
यह स्वेत छत्र किसके हित हाथ में लिया है॥[1]

इन सभी प्रबन्धो की शैली इसी प्रकार की है। तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ और इस विधा का स्वरूप दोनो ही इस शैली को अपनाने के निमित्त कारण है। श्रीधर पाठक ने दो पर्यायबन्ध 'काश्मीर-सुषमा' और 'देहरादून' अपेक्षाकृत सुन्दर शैली मे लिखे है। इन दोनो कृतियो में भी प्रकृति-वर्णन की प्रवृत्ति का प्राधान्य है, परन्तु 'काश्मीर-सुषमा' की अपेक्षा 'देह-रादून' की शैली अधिक आकर्षक है। इसके पीछे परिस्थिति का अनुरोध है। रुग्णावस्था में जलवायु-परिवर्तन के लिए कवि को इस स्थान पर जाना पडा। परन्तु इस स्थल की प्राकृतिक सुषमा ने शारीरिक उपचार ही नही किया, कवि के मन को भी मोह लिया। व्यक्तिगत आकर्षण और प्रेम के कारण इस कृति मे कवि की आत्मानुभूति व्यक्त हुई है, अतः व्यक्तित्व की छाप इस

१. नवीन बीन—ला० भगवानदीन, 'वसंत वर्णन', पृ० १३

प्रबन्ध मे सर्वत्र है। समस्त कृति में अद्‌भुत गति है, कवि ने रचना में वर्णन यात्रा के आरम्भ से किया है, परन्तु वह केवल विवरण ही नहीं देता रुककर प्रकृति के चित्र अंकित करता है। इन चित्रो मे प्रकृति के रूप-रग और गति को बाँधने का प्रयत्न है—

पल पल चमकि बिजुरिया छुपि छुपि जात
मनु कोउ सुरग मेहरिया उभकि लुकात
कहुँ सुठि सोन लतरिया सम लहरात
मनु सुचि सची चुनरिया-कोर लखात
पुनि पुनि लेत लहरिया सिमिटत गात
दउरत देव-दगरिया द्रुत दुति जात।[1]

कुछ पर्यायबन्ध प्रकृति के अतिरिक्त अन्य विषयो पर भी लिखे गए। मैथिलीशरण गुप्त ने 'राधा-कृष्ण की आंख-मिचौनी' मे दोनो के सौन्दर्य और लीला का वर्णन किया। कवि पूर्ण' ने एक नए ढंग के विषय के लिए इस विधा को ग्रहण किया। उन्होने 'दिल्ली-दरबार' शीर्षक मे तीन भागो मे दरबार के अवसर पर लम्बी वर्णनात्मक कविता लिखी। इसमे न प्रकृति का वर्णन है न मानव-सौन्दर्य का और न दरबार का। इस कविता मे दरबार के उपलक्ष्य मे पाठशाला के बालको के मन मे होने वाले आनन्द और दरिद्र भोजन आदि का वर्णन कवि ने किया है। परन्तु इनमे न आख्यान है न विचार-प्रतिपादन और न भाव-व्यजना। अत वर्णन-प्रधान होने के कारण इसे पर्यायबन्ध ही कहा जायगा।

छन्द की दृष्टि से उन्होने एक छन्द मे ही सम्पूर्ण कविता की रचना की है, और मध्य मे भी छन्द-परिवर्तन कर लिया है। ला० भगवानदीन का 'वसन्त वर्णन' मुक्तामणि और हरि-गीतिका छन्दों में विरचित है और कवि 'पूर्ण' का 'वसन्त वियोग' मिश्र, तोमर और राधिका छन्दों में। शेष रचनाएं आद्यन्त एक ही छन्द मे लिखी गई। प्रयुक्त छन्द है—कवित्त, पादा-कुलक, रोला, बरवै और शृंगार-राग आदि।

पद्यात्मक-निबन्ध

संक्षिप्त प्रबन्ध-रचनाओं का अन्तिम प्रकार वे छोटी प्रबन्ध-कृतियाँ है, जिनमे पद्य के माध्यम से कवि वही लक्ष्य सिद्ध करता है जो गद्यकार निबन्ध-रचना के द्वारा। पर्यायबन्ध के प्रसंग मे पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि इन रचनाओ को आचार्य शुक्ल ने पद्यात्मक-निबन्ध कहा है, और यह भी स्पष्ट किया है कि इस विधा का प्रचलन आधुनिक काल से पूर्व नही मिलता। छोटे-छोटे प्रबन्धो मे वस्तुवर्णन की परिपाटी तो पूर्ववर्ती कविता मे भी प्रचलित रही, परन्तु अनेक प्रकार के सामान्य विषयो पर कुछ दूर तक चलती हुई विचारो और भावो की मिश्रित धारा के रूप मे छोटे-छोटे प्रबन्धो या निबन्धो की चाल न थी।

इस सम्बन्ध मे एक बात स्पष्ट है—इन निबन्धो मे न घटना की प्रधानता होती है और न वस्तुवर्णन की। इनसे भिन्न किसी विषय को लेकर उससे सम्बद्ध अपने भावो और विचारो

---

१. देहरादून—श्रीधर पाठक, पृ० २५

की अभिव्यक्ति कुछ दूर तक कवि करता जाता है, अतः इन विचारों या भावों में विषय-सम्बन्धी एकसूत्रता निश्चय ही वर्तमान होनी चाहिए। वस्तु और घटना से भिन्न भाव या विचार की प्रधानता, इस विधा में दृष्टिकोण-सम्बन्धी एक अन्य विशेषता का निर्धारण करती है, वह है उनका आत्मीय दृष्टिकोण। भाव या विचार का सम्बन्ध व्यक्ति के आत्म से होता है, अतः साहित्य मे जब इनकी प्रधानता होती है तो विषयीप्रधान साहित्य लिखा जाता है, और विषयी-प्रधान विधाओ मे व्यक्तित्व की छाप अनिवार्य रूप से वर्तमान रहती है। विषय और दृष्टिकोण के भेद से इन निबन्धो के रूप भिन्न हो जाते हैं। जहाँ भाव की प्रधानता होगी वहाँ निबन्ध का स्वरूप भावात्मक कहा जायगा और जहाँ विचार की प्रधानता होगी वहाँ विचारात्मक। भावो की अभिव्यजना प्रायः सहज उद्रेक के रूप मे होती है और विचारो की प्रधानता की स्थिति मे उपदेश या प्रतिपादन का स्वर प्रमुख हो जाया करता है।

पर्यायबन्ध और पद्यात्मक निबन्ध मे अन्तर यही है कि एक में विषय-विशेष का वर्णन अतः वस्तु-तत्त्व प्रधान होता है और दूसरे में भाव या विचारों की निबद्ध अभिव्यक्ति अतः आत्म-तत्त्व की प्रधानता होती है। बाह्याकार की दृष्टि से दोनो ही संक्षिप्त प्रबन्ध रचनाएँ होती है। पर्यायबन्ध मे एकसूत्रता वर्ण्य विषय को लेकर होती है, और निबन्ध मे विचार या भाव की दृढान्विति प्रधान होती है।

इन निबन्धो की रचना का आरम्भ भारतेन्दु-युग से ही हो जाता है। जैसा आचार्य शुक्ल ने उल्लेख किया है, पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि ने अनेक छोटे-छोटे विषयों पर इस युग में निबन्ध-रचना की। निबन्धों की यही परम्परा आगामी कविता में भी परिपालित हुई, परन्तु विशेष लोकप्रिय न हो सकी। परन्तु एक अन्तर जो भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के गद्य-निबन्धो मे मिलता है, वही इन पद्य-निबन्धो में भी स्पष्ट है। भारतेन्दुयुगीन पद्य-निबन्धों मे जो जिन्दादिली, शैली में आत्मीयता और भावनाओ का सहज प्रवाह उपलब्ध है, वह इस युग की निबन्ध रचनाओं में नहीं है। साहित्य की अन्य सभी विधाओ के समान, इस युग के पद्य-निबन्धो मे भी उद्देश्य प्रधान हो गया है। पहले का कवि इस प्रकार की रचनाओं मे हृदय की बात करता था और द्विवेदी युग का कवि विवेक और उपदेश की। जहाँ कुछ दूर तक भाव-प्रधान शैली मे रचना की भी गई है, वहाँ भी अशतः उपदेश का मिश्रण हो गया है।

पद्य मे निबन्ध-रचना स्वय द्विवेदीजी ने भी की। उनके निबन्धों में भाव और विचारों का मिश्रण रहा करता था। वे प्रायः विचार की व्यंजना भावात्मक शैली में किया करते थे—ठीक उसी प्रकार जैसे गद्य में। 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' लिखकर वे इस विषय के प्रति अपने भावोद्‌गारो की अभिव्यक्ति करते हुए कवियो के लिए इस विषय मे कर्तव्य-व्यजना कर देते है। यही विशेषता उनके पद्य-निबन्धो मे वर्तमान है। 'विधि-विडम्बना', 'हे कविते' आदि निबन्धो की रचना उन्होने इसी शैली मे की है। विधाता के सृष्टि-कार्यों मे दोषा-न्वेषण करता हुआ कवि कहता है—

विश्व बनाने वाला तुझको सब कोई बतलाते हैं,
विहग बनाने में भी तेरी भूल किन्तु हम पाते हैं।

यदि तेरे कर में कुछ होता कला कुशलता लेश,
काक और पिक एक रंग के क्यों होते लोकेश ?[1]

'हे कविते' निबन्ध में उनकी अभिव्यक्ति और भी भावोच्छवासपूर्ण हो गई है। कवि इन सार्वजनिक विषयो के सम्बन्ध मे व्यक्तिगत अनुभूति के रूप मे अपनी भावनाओ की अभिव्यंजना करता है—

सुरम्यरूपे ! रसराशिरंजिते !
विचित्रवर्णाभरणे कहाँ गई ?
अलौकिकानन्दविधायिनी महा-
कवीन्द्र-कान्ते ! कविते ! अहो कहाँ ?[2]

द्विवेदीजी के सभी निबन्ध इसी शैली मे नही लिखे गए। कही-कही उनका स्वर गम्भीर और विचारात्मक हो गया है। 'सन्देश' नामक निबन्ध मे जैसा नाम से स्पष्ट है कवि ने भाषा के प्रश्न पर विचार किया है, और उसके उद्धार की लालसा प्रकट की है।

कुछ निबन्ध कवि 'शंकर' ने भी लिखे, परन्तु उनका स्वरूप द्विवेदीजी के निबन्धों से बहुत भिन्न है। 'अविद्यानन्द का व्याख्यान' मे कवि ने आधुनिक अधःपतन को लक्ष्य करके समसामयिक अवस्था पर उपदेशात्मक व्यंग्य के रूप मे निबन्ध-रचना की। 'परोपकारी' पत्रिका का गुणानुवाद करने के लिए भी उन्होने एक निबन्ध की रचना की, परन्तु इसका स्वरूप न विचारात्मक है न भावात्मक, इसकी रचना परिचयात्मक शैली मे हुई है।

शैली की दृष्टि से इन रचनाओ का योगदान काव्य के क्षेत्र मे विशेष महत्त्वपूर्ण नही। मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य-रचना के आरम्भ-काल में अनेक छोटे-छोटे पद्य-निबन्धो की रचना की। बाद मे ये निबन्ध 'पद्य-प्रबन्ध', 'मगल-घट' और 'स्वदेशी-संगीत' मे सकलित किये गए। ये निबन्ध भी स्वतन्त्र साहित्यिक रचनाओ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नही, कवि के काव्य-पथ के आरम्भिक चरण होने के कारण केवल ऐतिहासिक दृष्टि से इनका महत्त्व है।

इन निबन्धो के विषय सामाजिक भी हैं, सांस्कृतिक भी, और देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर भी इनकी रचना की गयी है। सामाजिक निबन्धो मे उन्होने समाज-सुधार की भावना से प्रेरित होकर प्राचीन सामाजिक और सास्कृतिक उन्नति की पृष्ठभूमि पर सामयिक अधोगति के चित्र खीचे है। कुछ निबन्धो मे कवि ने सामाजिक पर्व और धार्मिक त्योहारो के सांस्कृतिक पक्ष के उद्घाटन का प्रयास किया है। इस प्रकार के कतिपय निबन्ध 'पद्य-प्रबन्ध' में संकलित है। इन निबन्धो मे कवि का सामाजिक रीति-नीति की रक्षा और सुधार के प्रति विशेष आग्रह व्यक्त हुआ है। कुछ निबन्ध कवि ने देश-भक्ति की भावना से प्रेरित होकर भी लिखे है, जिनमे अतीतकालीन भारत को श्रद्धा-भक्ति का आलम्बन बनाया गया है। 'मगलघट' मे सगृहीत निबन्ध, 'दो दृश्य' शैली की दृष्टि से विशिष्ट और प्रभावोत्पादक है। कवि ने अतीत और वर्तमान का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। कुछ निबन्ध भाषा और साहित्य से सम्बद्ध विषयो पर भी गुप्तजी ने लिखे। इनमे कवि का हिन्दी-प्रेम और साहित्य से सम्बन्धित

---

१. द्विवेदी काव्यमाला—स० देवीदत्त शुक्ल, पृ० २९०
२. वही, पृ० २९१

धारणाएँ व्यक्त हुई हैं। ये निबन्ध उपदेशात्मक स्वरों में लिखे गए हैं और भाषा एवं साहित्य की आवश्यकताओं व कवि की तत्सम्बन्धी चेतना को प्रतिबिम्बित करते हैं। इन रचनाओं मे विचारों का क्रमिक निबन्धन है। कवि वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन करता है आवश्यकताओं की ओर सकेत करता है, और सुधारो की अपील करता है। परन्तु स्वभावतः, कुछ आरम्भिक काल की रचनाएँ होने के कारण और कुछ उद्देश्य की स्थूलता के कारण, इनमे काव्यत्व अपेक्षाकृत कम है।

ये छोटे-छोटे निबन्ध कवि के आरम्भिक प्रयास है। इनमें कवि की उपदेश-वृत्ति, नैतिक भावना, युग-चेतना और काव्यकला का अत्यन्त सामान्य स्तर मिलता है। इनमें विषय-प्रतिपादन और नीति-कथन की प्रधानता है, अतः काव्य-कला का उत्कर्ष इनमें प्राप्त नहीं होता। कही-कही रुक्षता भी आ गई है। परवर्ती कृतियो मे गुप्तजी ने इस शैली का परित्याग कर दिया।

बाद मे गुप्तजी ने कुछ बृहद् निबन्ध-काव्य लिखे। 'भारत भारती', 'हिन्दू' और 'राजा-प्रजा' उनकी काव्य-रचना के तीन युगों की तीन कृतियाँ है। 'भारत भारती' उनकी वह पहली कृति है जिसने कवि की ओर हिन्दी-संसार का ध्यान आकर्षित किया। इस रचना मे कवि की पुनरुत्थानवादी भाव-धारा व अविकसित राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। 'हिन्दू' मे दृष्टिकोण अपेक्षाकृत सकुचित है। उसमें जातीय-जीवन की भावना है, जिसमे सामाजिक शान्ति-व्यवस्था के लिए कवि ने नैतिक उपदेश दिए हैं। तीसरी कृति में कवि की दृष्टि और भी व्यापक हो गई है। लोकतन्त्र मे उसकी निष्ठा, सर्वोदय और अन्तर्राष्ट्रीय सह-अस्तित्व की भावना प्रकट हुई है। कवि ने 'राजा और प्रजा' में दोनों की वक्तृताएँ लिखी है जिनमे दोनो का विवाद और सघर्ष नही, सीमा और शक्तियो का परिचय दिया गया है। एक शक्ति का विलीनीकरण और दूसरी की प्रगति की व्यंजना है। इनके माध्यम से गुप्तजी ने राष्ट्रीय लोकतन्त्र की मानवतावादी नीति को प्रकट किया है। 'भारत भारती' में उद्बोधनात्मक चेतना है और 'हिन्दू' मे उपदेश की प्रधानता है, 'राजा-प्रजा' मे उद्देश्य विनम्र आदेश के रूप में व्यग्र है।

उपर्युक्त तीनो निबन्धों में रचना-काल की परिस्थितियो और युग-चेतना के अन्तर से अन्तर आ गया है। 'भारत भारती' मे दासता के बन्धनों मे पडी जाति के उद्बोधन का प्रयास होने के कारण उत्तेजना व्याप्त है। भारत भारती पर 'मुसद्दसे हाला' का प्रभाव पडा। उसी प्रकार उन्होने नव-जागरण की भाव-भूमि का उद्घाटन करने का प्रयत्न किया है। ये उद्बोध-निबन्ध-काव्य उसी ढंग पर जातीय और राष्ट्रीय नवोत्थान का प्रयत्न है। इस कृति मे उन्होने अतीत के गौरव और वर्तमान अवनति एव सांस्कृतिक ह्रास का चित्रण किया है। कवि अतीत का स्मरण दिलाता है, निरुद्यमता के कारण उत्पन्न वर्तमान परिस्थिति का पर्यालोचन करता है, और भविष्य के लिए उपाय का निर्देश करता है। इस ज्वलत राष्ट्रीय समस्या का भावनामय चित्रण इस निबन्धात्मक रचना मे किया गया है। अतीत का आदर्श, वर्तमान की समस्या और भविष्य का समाधान इसका विषय है। कवि सक्षेप मे अतीत की प्रदक्षिणा कर गया है और ऐसे स्थलों पर वर्णनात्मकता आ गई है। इस प्रकार इस कृति मे सामयिक समस्या को स्थान मिलने के कारण शाश्वत मूल्यों का विन्यास न हो सका। कवि ने जातीय उद्बोधन, सांस्कृतिक पुनः-जागरण और राष्ट्रीय अभ्युत्थान का प्रयत्न किया है, अतः समस्त रचना में उत्साह, हृदय का

आवेग और गम्भीर उद्देश्य व्याप्त है, परन्तु साथ ही वर्तमान के प्रति दैन्य, ग्लानि, क्षोभ और अतीत के प्रति गौरवानुभूति और प्रशस्ति के भाव मिले-जुले हैं।

काव्यत्व की दृष्टि से इस रचना का विशेष महत्त्व नहीं। इस कृति का निबन्धन, रचना-शिल्प भी नए ढंग का है। कवि ने इसे तीन खण्डों में बाटा है, और ७०० पद्यो में इसकी रचना कुछ इस रूप मे की है कि इसका यथेष्ट पाठ सम्भव हो सके, परन्तु इसे मुक्तक नही कहा जा सकता, क्योकि इसके विभिन्न छन्दों मे वैचारिक सम्बन्ध वर्तमान है। इस रचना का विचार-क्रम भी निबन्धात्मक है, परन्तु निश्चय ही निवन्ध की दृष्टि से इसका कलेवर विशेष विस्तृत है। अत: निबन्ध के व्यापक अर्थ में इस कविता को उद्बोध निबन्ध या प्रबन्ध कह दिया जा सकता है।

'हिन्दू' 'भारत भारती' के उपरान्त की रचना है, परन्तु सकीर्ण जातीय चेतना के कारण इस रचना को विशेष ख्याति न मिल सकी। जिस समय इस कृति की रचना हुई वह समय राष्ट्रीय उत्थान का था, जातीय जागरण का नही, अत: धार्मिक एकता और सांस्कृतिक समन्वय के प्रयत्नों के बीच साम्प्रदायिक विद्वेष से सतप्त कवि की, समय से पूर्व की पिछडी मनोवृत्ति का प्रतीक स्वागत न पा सका। कवि यहाँ भी 'भारत भारती' की भाँति जातीय जीवन की वर्तमान अवनति और हीन दशा से क्षुब्ध है, अत: उसको उन्नति का सन्देश सुनाता है, नीति-कथन करता है और उपदेश देता है। प्राचीन भारतीय-आदर्शों में उसकी अगाध निष्ठा और आत्म-गौरव की भावना व्यक्त हुई है। वह अनेक वर्तमान समस्याओं व प्रश्नों को सुधारवादी दृष्टि से देखता है और जातीय रक्षा, संगठन, एकता और अभ्युन्नति की कामना करता है।

शिल्प की दृष्टि से इसमे 'भारत-भारती' से अन्तर है। आकार इसका भी बृहद् है और कवि ने अनेक उपशीर्षकों में इसका विभाजन किया है। परन्तु यह एक ही विषय पर अनेक रचनाओ का संग्रह नही है, निबद्ध रचना है। सभी उपशीर्षकों मे मूलवर्ती मन:स्थिति एक ही है। उपदेशों की अत्यधिक नियोजना से काव्यत्व को क्षति पहुँची है। इतिवृत्तात्मक विषय-निरूपण के कारण इसमे रुक्षता आ गई है। वस्तुत: यह रचना कलात्मक काव्य-निबन्ध नहीं सोद्देश्य काव्य-निबन्ध है।

'राजा-प्रजा' कवि के प्रौढि काल की कृति है, स्वाभाविक था—उसकी विचारधारा और शैली दोनो मे ही पूर्ववर्ती निबन्ध-काव्यो की अपेक्षा निखार है। ये दो शीर्षको मे सवाद-शैली में लिखे दो व्याख्यान है। इनमें परस्पर विवाद, खंडन-मंडन या संघर्ष नहीं, केवल लोक-तन्त्र की स्थापना के प्रति सामत-वर्ग और जन-साधारण के दृष्टिकोण का प्रत्यक्षीकरण है। राष्ट्रीयता का आदर्श इस निबन्ध मे विश्व-मैत्री की भावना तक व्यापक हो गया है, और मान-वतावादी जीवन-दर्शन व सर्वोदय के सिद्धान्तो को मान्यता दी गई है। इस कृति मे अधिक गम्भीर विचारात्मकता प्राप्त होती है, जिसमे राष्ट्रीय समस्याओ का विश्लेषण तथा उनके समाधान का विवरण दिया गया है। सामयिक आदर्शों को ही इस कृति मे भी स्थान मिला है, दृष्टिकोण मे परिवर्तन कवि की कालानुसरण क्षमता का परिचायक है। पूर्ववर्ती निबन्ध-रचनाओं की अपेक्षा कला की दृष्टि से इसमें विकास दृष्टिगत होता है। उपदेश और आदर्श इस कृति मे वाच्य नही, कवि ने अपने विचारो के लिए राजा और प्रजा प्रतीक-माध्यम चुन लिये

है, परिणामत. कवि का उपदेशक प्रच्छन्न रहकर भी इनके माध्यम से अपने मन्तव्य की अभिव्यक्ति कर देता है। 'भारत भारती' और 'हिन्दू' से भिन्न इस निबन्ध की शैली नाटकीय शिल्प की शैली है, वर्णनात्मक नही। इस प्रकार की विधा मे यह प्रयोग प्रभावात्मक और नवीन है। प्रवाह की रक्षा के लिए तीनो निबन्धो मे गुप्तजी ने एक छन्द मे रचना की पद्धति को अपनाया है।

इस विधा का प्रचार गीति शैली के प्रचार और प्रसार के उपरान्त बहुत नही हुआ। भाव और विचार दोनो के लिए कवि लघु गीतियो व कविताओ का अवलम्बन लेते रहे। इस प्रकार बृहद् विचारात्मक पद्य-निबन्ध विशेष नही लिखे गए।

चतुर्थ अध्याय

काव्य-रूपक

प्राचीन तथा शास्त्र-विहित काव्य-विधाओ के अतिरिक्त आधुनिक काल मे कतिपय ऐसी विधाओ का प्रयोग भी हुआ, जिनका इतिहास इस युग से पीछे नही जाता। इनमे से कुछ सर्वथा नवीन है तथा अन्य का निर्माण पूर्व-प्रचलित एकाधिक विधाओ के सयोग से किया गया है। काव्य-रूपक इसी प्रकार की मिश्र विधा है। इन रचनाओ के लिए व्यवहार मे गीति-नाट्य शब्द का पर्याप्त प्रचलन हो चुका है, परन्तु इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली सभी रचनाओ मे—जिनका माध्यम पद्य और विधि नाटकीय है, गीति और नाट्य तत्त्व समान रूप से नही मिलता। जैसा आगामी विवेचन मे स्पष्ट किया जायगा, उपर्युक्त तत्त्वो मे से कही एक तथा कही दोनो की परिक्षीणता लभ्य है। इसके अतिरिक्त इन रचनाओ की शैली मे परस्पर इतना भेद है, कि सब को गीति-नाट्य शब्द का अत्यधिक अर्थ-विस्तार किये बिना एक ही वर्ग मे नही बाँधा जा सकता। इसलिए अर्थ-व्यापकता की दृष्टि से हम इन रचनाओं के लिए काव्य-रूपक शब्द का प्रयोग कर रहे है (कुछ कवियो ने स्वय भी ऐसा ही किया है)। काव्य शब्द यहाँ पद्य माध्यम का वाचक है, और रूपक शब्द नाट्य तत्त्व का। इस प्रकार पद्य माध्यम और नाट्य शैली इन कृतियों की सामान्य रचनागत विशेषता है। इसके अतिरिक्त इन तत्त्वों के प्रयोग मे अनुपात-भेद व परस्पर साम्य व वैषम्य के आधार पर इनका पुन उपभेदो मे विभाजन कर विवेचन किया गया है।

इस प्रकार के मिश्र काव्य-रूपो मे सर्वाधिक महत्त्व (परिमाण और प्रवृत्ति दोनो दृष्टियो से) गीति नाट्यो का है। गीति नाट्य के अतिरिक्त नाटक के तत्त्वो की स्वीकृति जिन काव्य-रूपो मे हुई उनमे दो प्रकार की रचनाएँ और उपलब्ध है। एक वर्ग गीति नाट्यो से भिन्न उन पद्यबद्ध नाटको का है जिनका माध्यम पद्य और विधि नाटकीय है, अर्थात् जिनमे कवि का दृष्टि-कोण लगभग उसी प्रकार का है जैसा दृश्य-काव्य के लिए अपेक्षित है। इनकी प्रवन्धान्विति, कार्य-व्यापार, घटनाओ का स्वरूप सभी कुछ गद्य नाटको का समकक्षी है। इनमे जो कुछ अन्तर और भिन्नता है वह माध्यम के कारण है। इन काव्य-रूपको मे भी दो प्रकार की कृतियाँ है—

(१) वे रूपक जिनकी रचना रगमच या पढने की दृष्टि से की गई।

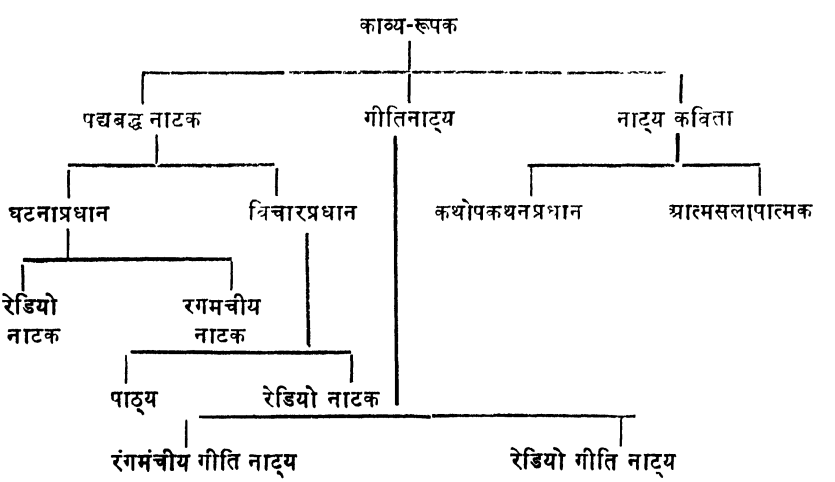
(२) वे कृतियाँ जिनको रेडियो के प्रसारित करने के उद्देश्य से लिखा गया।

उपर्युक्त दृष्टि-भेद से इनकी विधा या टेकनीक मे जो अन्तर आ गया है उसका विवेचन यथाप्रसंग किया जायगा।

पद्यबद्ध नाटको मे एक अन्य वर्ग उन रचनाओ का है जिनमे न घटना प्रधान है, न भाव।

इन रचनाओ मे किसी समस्या या विचार को विषय बनाया गया है, अत इनमे गीति नाट्य की भावात्मकता और घटनात्मक काव्य-रूपको की वस्तुरूप सक्रियता से भिन्न, अमूर्त विचार की बोझिल विश्लेषणात्मकता मिलती है। इन काव्यो का प्रेष्य न घटनाएँ होती है न भावानुभूति, प्रायः काल्पनिक या प्रतीकात्मक पात्रो के माध्यम से कवि का विचार या समस्या, और उसका विश्लेषण तथा चिन्तन-मनन नाट्य शैली मे व्यक्त होता है। स्वभावत. अमूर्त विषय और बौद्धिकता के कारण इन काव्यो मे अभिनेयता गीति नाट्य व घटनाप्रधान नाटको की भाँति नही होती। इस प्रकार के काव्य भी दो रूपो मे लिखे गए—(१) रेडियो नाटक (२) पाठ्य नाटक। इन बौद्धिक नाटको मे घटनाप्रधान नाटको से अन्तर यही है कि इनका कथानक अमूर्त व चिन्तन-प्रधान होने के कारण इनमे घटनाप्रधान पद्य-नाटको की भाँति अभिनेयता नही होती। कम से कम तुलनात्मक दृष्टि से यह गुण इनमे बहुत कम होता है। इनका आस्वादन पाठ्य रूप मे ही होता है।

उपर्युक्त नाटको के साथ एक वर्ग आधुनिक साहित्य मे उन लम्बी कविताओ का है जो नाट्य शैली मे लिखी गई। इन कविताओ मे नाट्य तत्त्व अर्थात् प्रदर्शनीयता होती तो है परन्तु गौण रूप मे। ये कविताएँ इस प्रकार पाठ्य ही है, अभिनेय नही। गीति नाट्य तथा पद्यबद्ध नाटक से नाट्य कविता मे अन्तर यही है कि उनमे नाट्य तत्त्व मुख्य होता है और नाट्य कविता मे गौण। ये कविताएं शैली-भेद से दो रूपो मे मिलती है। दो या अधिक पात्रो मे कुछ दूर तक होने वाले सवाद के रूप मे, अथवा एक पात्र के आत्मसलाप के रूप मे। यह सलाप प्राय· उत्तम पुरुष मे आत्मपरिचयात्मक शैली मे होता है। विषय की भिन्नता के अनुसार घटना, भाव या विचार की प्रधानता की स्थिति मे क्रमश. यह पात्र आपबीती सुनाता है, आत्माभिव्यक्ति या आत्मविश्लेषण करता है। नाट्य तत्त्व इन कविताओ मे यही है कि कवि इनमे समाख्यान नही करता, वरन् इनकी रचना सवादो या लम्बे आत्मसलापो के रूप मे की जाती है। इस प्रकार काव्य-रूप की दृष्टि से काव्य-रूपको के निम्नलिखित प्रकार उपलब्ध है—



आंग्ल साहित्य में काव्य-रूपक

अँगरेजी साहित्य मे उपलब्ध काव्य-रूपको का इतिहास भी बहुत प्राचीन नहीं। महाकाव्य, प्रगीत आदि की भाँति काव्य-रूपकों की गणना प्राचीन काव्य-विधाओ मे नहीं की जाती। हिन्दी साहित्य की ही भांति अँगरेजी के गीति नाट्यों के उद्भव और विकास की गाथा आधुनिक काव्य तक ही सीमित है। दो प्रचलित काव्य-रूपों या शैलियो के मेल से निर्मित नवीन मिश्र काव्य-रूपो का इतिहास पाश्चात्य साहित्य में बहुत प्राचीन नही, ऐसा मत अनेक विद्वानो ने इन विधाओ के विषय मे व्यक्त किया है।[1] सस्कृत तथा प्राचीन एव मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य की ही भाति प्राचीन ग्रीक व अँगरेजी नाटको की रचना मे पद्य का प्रचुर प्रयोग किया जाता था; परन्तु १९वी शताब्दी के उपरान्त जिन नाट्य कविताओं, गीति नाट्यों तथा पद्यबद्ध नाटको की रचना अँगरेजी साहित्य मे हुई उनमे काव्य-तत्त्व नाट्य-तत्त्व की अपेक्षा अधिक या समान मात्रा मे विद्यमान है। पद्य-शैली इन कविताओ का केवल माध्यम नही, उनका प्राण है। कहीं-कहीं काव्य-गुण नाट्य-गुण की अपेक्षा इनमे इतना अधिक हो गया है कि कार्य-व्यापार की सघनता, कुतूहल, एव दृश्यात्मकता का उसी अनुपात मे ह्रास हुआ है। आधुनिक युग के कवियो की कविता मे नाट्य-गुण के इस अभाव की ओर विद्वानो ने बारम्बार सकेत किया है।[2] नाट्य कविता मे रगमच पर अभिनेयता का गुण होना चाहिए और ऐसा तभी सम्भव है जब इस काव्य मे वक्तृता का गुण विद्यमान हो। टेनीसन, ब्राउनिग, आर्नल्ड, स्वीनबर्न आदि सभी कवियो ने इस ओर ध्यान नही दिया, ऐसा उनके काव्य से स्पष्ट है। अँगरेजी साहित्य के आलोचक विद्वानो ने इस काव्य-विधा के स्थायित्व और सफलता का कारण भी प्रगीत तत्त्व का प्राचुर्य और नाट्य तत्त्व की न्यूनता को स्वीकार किया है। ब्रैडले के अनुसार आधुनिक युग के गीति नाट्य साहित्य के महत्त्व और स्थायित्व का कारण उनकी प्रगीतात्मकता ही है नाट्य गुण नही।[3]

---

1. It might even be said that modern literature takes a pleasure in mixing the kinds. We have 'dramatic lyrics' like Brownings' and 'lyrical-dramas' like the 'Promethus Unbound' of Shelley.
   The Classical back ground of English-literature—J A. K. Thomson, Page 33
2. For dramatic poetry is meant to be spoken, and unless it has the qualities of spoken poetry it will not make itself felt on the stage Neither Tennyson nor Browning, neither Arnold or Swinburne seems to have appreciated this. At least their dramatic verse does not get across the foot-lights. Ibid, Page 241.
3. Byron's regular dramas, for instance, if they ever lived, are almost forgotten; but 'Heaven and Earth' which is still alive, is largely composed of lyrics, and the first two acts of 'Manfred' are full of them, 'Promethus Unbound' is called a 'lyrical drama.' Though it has some very fine and some very beautiful blank-verse passages (usually-undramatic) its lyrics are its glory...It would be untrue to say that the comparative failure of most of the dramas of the time is principally due to the lyrical

इस प्रकार यद्यपि काव्य-रूपको तथा गीति-नाट्यो मे कवि-वर्ग काव्य-तत्त्व को प्रामुख्य देता रहा, परन्तु आलोचक विद्वान बारम्बार कविता और नाटक के सतुलित प्रयोग पर बल देते रहे। उनके मतानुसार इस विधा मे पद्य माध्यम का प्रयोग इस प्रकार होना चाहिए कि वह नाट्य का अनिवार्य अग प्रतीत हो, अतिरिक्त अथवा स्वतन्त्र तत्त्व नही। यदि काव्य-रूपक मे कविता और रूपक पृथक् और स्वतन्त्र रूप मे प्रमाता का आस्वाद्य बन गए तो यह इस विधा की असफलता होगी। टी० एस० इलियट के मतानुसार यदि कविता नाटक की अलकृति व शोभा-विधायिनी है, यदि वह सहृदय पाठक को केवल नाटक के प्रेक्षण के साथ काव्य-श्रवण के आनन्द की अनुभूति कराती है तो उसकी स्थिति व्यर्थ है। उसका प्रयोग नाटकोचित रूप मे होना चाहिए, केवल नाट्य रूप मे ढली ललित कविता के रूप मे नही। अत: इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी ऐसे नाटक की रचना पद्य मे नही होनी चाहिए जिसके लिए गद्य, नाट्योचित और पर्याप्त माध्यम हो सकता हो। पुन: हम यह निष्कर्ष ग्रहण करते है कि नाटक के कार्यव्यापार मे बँधी प्रमाता की मनोवृत्ति, विभिन्न पात्रो के बीच उद्भूत स्थितियो से उद्वेलित उसकी भावनाएँ, नाटक मे कुछ इस प्रकार एकाग्र व लीन रहनी चाहिएँ कि वह उसके माध्यम से अभिज्ञ व उसके प्रति सचेत भी न रह सके।[1]

इस प्रकार पद्य मे रचित रूपको मे प्रमाता को अभिभूत करने के लिए नाट्य गुण का प्राधान्य होना चाहिए। इलियट ने तो सच्चे अर्थों मे कविता का प्रयोग केवल ऐसी सघन नाटकीय स्थिति में अनिवार्य माना है, जहाँ कविता मे भाव-प्रकाशन सहज और स्वाभाविक हो, क्योकि उनके मतानुसार ऐसी स्थिति मे कविता ही भावनाओ की अभिव्यजक एकमात्र भाषा होती है।[2] इस प्रकार काव्य-रूपक मे कविता का महत्त्व भी उन्होने स्वीकार किया है। उन्होने

---

spirit, but many of them show it.

Oxford Lectures on poetry—Bradley, Edition 1955 Page 183

1 For I start with the assumption that if poetry is merely a decoration, an added embellishment, if it merely gives people of literary tastes the pleasure of listening to poetry at the same time that they are witnessing a play then it is superfluous. It must justify itself dramatically and not merely be fine poetry shaped into a dramatic form. From this it follows that no play should be written in verse for which prose is dramatically adequate. And from this it follows again that the audience, its attention held by the dramatic action, its emotion held by the situation between the characters should be too intent upon the play to be wholly conscious of the medium.

Poetry & Drama—T. S. Eliot, Page 12

2. It will only be 'poetry' when the dramatic situation has reached such a point of intensity that poetry becomes the natural utterance, because then it is the only language in which the emotions can be expressed at all.

Ibid—Page 15.

पद्य की उपादेयता नाटकीय प्रभाव को तीव्रतर बनाने के कारण मानी है। पद्य का महत्त्व अन-जाने ही हमे प्रभावित करने मे है। इस प्रकार उसका प्रभाव केवल काव्येच्छुक प्रमाता-वर्ग ही नही, वे प्रेक्षक भी ग्रहण करते है जो केवल नाटक-प्रेक्षण के लिए आते है।[1] पद्य-माध्यम अतः इन रूपकों का केवल शोभा-विधायक आलकारिक तत्त्व नही, सहज और अनिवार्य अग होता है।

उपर्युक्त मान्यता के कारण इलियट ने सिद्धान्त-रूप मे ऐसी कविता का प्रयोग बचाया जो नाटकीय उपयोगिता की कसौटी पर पूरी न उतरती हो। वे नाटको मे ऐसे कार्यव्यापार को महत्त्व देते रहे जिसमे प्रेक्षक की जिज्ञासा-वृत्ति को निरन्तर उद्‌बुद्ध रखने की सामर्थ्य हो। इस प्रकार नाट्य विधाओ मे सामान्यतः अकित घटनात्मक सक्रियता की रक्षा पर उन्होने विशेष बल दिया और काव्य-माध्यम का प्रयोग साधक रूप मे ही स्वीकार किया।[2] इस विषय मे उनके मन मे शका वर्तमान थी कि इस प्रकार के प्रयोग मे सफल होने पर इन नाट्यो मे काव्य-गुण की स्थिति ही शकास्पद हो सकती है, परन्तु फिर भी नाट्य-तत्त्व की प्रमुखता का वे पुन.-पुन· समर्थन करते रहे।

अतएव पाश्चात्य विद्वानो ने इस काव्य-विधा मे नाट्य रूप को साध्य और पद्य-माध्यम को साधन माना है, हिन्दी के गीति नाट्यो पर 'लिरिकल ड्रामा' का प्रभाव अन्य नाट्य रूपो की अपेक्षा अधिक रहा।

काव्य-नाटक या पद्यबद्ध-नाटक

(क) घटनाप्रधान नाटक

जैसा पद्य नाट्य शब्द से स्पष्ट है, वे सभी नाटक जिनका माध्यम गद्य न होकर पद्य हो

1. But I think that the examination of this is enough to show us that verse is not merely a formalization, or an added decoration, but that it intensifies the drama. It should indicate also the importance of the effect of verse upon us. And lastly, I do not think that this effect is felt only by those members of an audience who 'like poetry' but also by those who go for play alone.

Ibid, Page 19.

2 In the second place, I laid down for myself the ascetic rule to avoid poetry which could not stand the test of strict dramatic utility, with such success, indeed, that it is perhaps an open question whether there is poetry in the play at all. I tried to keep in mind that in a play, from time to time, something should happen; that the audience should be kept in constant expectation that something is going to happen, and that, when it does happen, it should be different, but not too different, from what the audience had been led to expect.

Ibid, Page 32.

इस विधा के अन्तर्गत आएँगे। सामान्यत. हर प्रकार के पद्यबद्ध नाटक के लिए गीति नाट्य शब्द का प्रयोग समीक्षा-साहित्य मे प्रचलित है। परन्तु पद्यबद्ध नाटक का व्यावर्तन हमने गीति नाट्य से इसलिए किया है कि इन दोनो विधाओ मे दृष्टिकोण का अन्तर होता है। पद्यबद्ध नाटक के लिए भावमयता अनिवार्य नही और गीति नाट्य मे गीति-तत्त्व की स्वीकृति भाव की प्रमुखता के कारण ही की जाती है। इस प्रकार एक के लिए कार्य का महत्त्व अधिक है व दूसरे के लिए भाव का। पद्यबद्ध नाटक मे बाह्य सघर्ष की योजना की जाती है और गीति-नाट्य मे आन्तरिक सघर्ष की। घटनाप्रधान नाटको मे प्रस्तुत सघर्ष का रूप वस्तुगत और घटनाक्षेत्र भौतिक जगत् होता है, तथा गीति व विचारप्रधान नाटको मे सघर्ष आत्मगत व घटनाक्षेत्र व्यक्ति का अन्तर्मन होता है। इन नाटको के सवादो मे भी कार्य की प्रधानता के कारण सजीवता एव चुस्ती होती है। अमूर्त भाव या विचार की व्याख्या की इनमे अपेक्षा नही होती, अत: इनके सवाद गीति नाट्य की भाँति लम्बे नही होते। घटनाप्रधान नाटक मे सघर्ष का विधान बाह्य जगत् मे होता है, अत. विरोध दूसरे व्यक्ति या पक्ष की ओर से प्रस्तुत होने के कारण सघर्ष-योजना के लिए दो या अधिक पात्रो के बीच सवाद के द्वारा कार्य-व्यापार का विकास होता है। स्वगत का प्रयोग कवि कुछ विशिष्ट स्थलो पर पात्र-विशेष के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने के लिए करता है। ऐसे स्थल विस्तार और सख्या दोनो दृष्टियो से बहुत नही होते। गीति-नाट्य या विचारप्रधान नाटको मे सघर्ष जहाँ विरोधी मनोवृत्तियो के प्रतीक पात्र खडे कर अकित किया जाता है, या भिन्न-भिन्न पात्र अलग-अलग भाव या विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते है वहाँ तो कवि सवाद-योजना करता है, परन्तु एक ही पात्र के अन्तर्द्वन्द्व का प्रदर्शन करने की स्थिति मे प्राय. कुछ दूर तक स्वगत का प्रयोग ही किया जाता है। स्वगतोक्तियो द्वारा कथाविकास, घटनाप्रधान नाटको की अपेक्षा अन्य नाट्य रूपो मे अधिक होता है। गीत-रचना इन काव्यो मे कही-कही गद्य-नाटको की ही भाँति की जाती है परन्तु गीति शैली इन नाटको की प्रमुख शैली नही। इन नाटको मे नाटक के तत्त्व—घटनाओ मे अन्विति, परिस्थितियो मे सघनता, प्रसगो का नाटकीय विधान, रोचकता आदि का उपयोग तो किया जाता है परन्तु गीति-तत्त्व का उपयोग नही होता। आकार की दृष्टि से इस वर्ग के अन्तर्गत एकाकी और अनेकाकी दोनो ढग के नाटको की रचना हुई है। हमारा अभिप्राय केवल कथा-विस्तार से है, अन्यथा इन नाटको को अको मे इनके रचयिताओ ने नही बाँटा। कुछ कृतियो मे दृश्य-परिवर्तन है तथा ये शीर्षक घटनास्थल या प्रमुख पात्र के आधार पर दिये गए है। घटना-ऐक्य तो इन सभी रचनाओं में मिलता है, कुछ मे स्थान और काल के ऐक्य की भी रक्षा की गई है, अन्य मे नही। इनमे कुछ कृतियाँ पाठ्य या अभिनेय है, व अन्य की रचना रेडियो-नाटको के रूप मे हुई है। रेडियो-नाटको की कला और शिल्प पर इस उद्देश्य का प्रभाव पड़ा है। इन नाटको की रचना समय की परिधि को दृष्टि मे रखते हुए की गई है—इसके अतिरिक्त रगमच सम्बन्धी प्रदर्शन की व्यावहारिक कठिनाइयों के अभाव मे, कवि ने देश और काल दोनो दृष्टियो से प्रसग-परिवर्तन मे स्वच्छन्दता से काम लिया है। रेडियो-नाटक—यदि ध्यान से देखा जाय तो नाट्य शैली मे प्रस्तुत श्रव्य-काव्य का कार ही हो जाता है। रगमच पर अभिनेयता की दृष्टि से नाटककार को जिन व्यावहारिक कठिनाइयो के प्रति सावधान रहना पड़ता है, रेडियो-नाटक

के लेखक को नही। इसके अतिरिक्त पात्रो के अभिनय के विविध प्रकारो मे से भी केवल वाचिक अभिनय का उपयोग ही इस कला मे सभव है। पद्यबद्ध नाटको की विशेषताएँ सक्षेप मे इस प्रकार है।

१. कथानक

(क) इन नाटको का कथानक ऐतिहासिक, प्रख्यात अथवा काल्पनिक होता है।

(ख) कथानक मे प्रस्तुत घटनाओ का वस्तुरूप ही प्रधान होता है।

२ शैली व शिल्प

(क) नाटक के तत्त्व—अन्विति, रोचकता, नाट्य सगठन, परिस्थितियो की सघनता, आदि का समावेश इनके कथानक मे होता है।

(ख) कथा-विकास इन नाटको मे कार्य-व्यापार और सवादो के द्वारा होता है, स्वगत का प्रयोग इनमे अपेक्षाकृत बहुत कम किया जाता है।

(ग) इनके सवाद सजीव, चुस्त, प्राय सक्षिप्त और रोचक होते है।

(घ) गीत का प्रयोग कही-कही प्रसगानुकूल कर लिया जाता है, परन्तु इनकी शैली गीतिमय नही होती।

(ङ) आकार की दृष्टि से इनमे प्राय. सक्षिप्त रचनाएं व एकाध बड़े नाटक मिलते है। एकाकी की भाँति छोटे नाटको का विभाजन दृश्यो मे होता है, और बड़े नाटकों को अनेक शीर्षको मे विभाजित किया गया है। रेडियो-नाटको के विस्तार मे समय के प्रतिबन्ध की रक्षा की गई है।

(च) सकलनत्रय की दृष्टि से घटना-ऐक्य की रक्षा तो सभी कवियो ने की है। शेष दो—स्थान व समय के ऐक्य का निर्वाह इन कवियो ने नही किया। विशेषकर रेडियो-नाटको मे रगमंच-सम्बन्धी व्यावहारिक कठिनाई के अभाव मे कवियो ने इस दिशा मे सावधानी नही दिखाई।

(छ) रेडियो-नाटको मे ध्वनि-सकेत व कुछ अन्य नाटको मे रग-सकेत भी मिलते है, परन्तु सब में नही।

समग्र रूप मे—पद्यबद्ध नाटक रूपक का ही एक प्रकार है, जिसमे नाटकीयता व अन्य विशेषताएँ गद्य-नाटको के समान होती है व जिसका माध्यम पद्य होता है। इस प्रकार के घटना-प्रधान पद्य-नाट्यो में प्रमुख कृतियाँ है—कवि प्रसाद का 'करुणालय', मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ' व 'दिवोदास', हरिकृष्ण प्रेमी का 'स्वर्ण-विहान', तथा रेडियो-नाटकों में भगवतीचरण वर्मा के 'कर्ण' व 'द्रौपदी'।

कथानक

उपर्युक्त कृतियो मे—उत्पाद्य व प्रख्यात दोनों प्रकार के कथानकों को विषय बनाया गया है। 'अनघ' और 'स्वर्णविहान' के कथानक कल्पित है। 'करुणालय' में वैदिक युग की कथा है तथा 'कर्ण' व 'द्रौपदी' मे महाभारत की कथा के दो प्रमुख चरित्रों को कवि ने उभारा है। 'करुणालय' वैदिक युग की कर्म-भावना पर व्यंग है। 'अनघ' और 'स्वर्णविहीन' मे कल्पित

कथानकों के द्वारा गांधी-नीति का पोषण किया गया है। 'अनघ' में युगधर्म के प्रतीक की सर्जना की गई है, और 'स्वर्णविहान' में कवि अहिंसा के द्वारा हिंसा को जीतने की बात करता है। वर्माजी ने अपने ध्वनि-रूपकों में प्राचीन चरित्रों का मनोविज्ञान के प्रकाश मे आख्यान किया है। 'द्रौपदी' मे उन्होने द्रौपदी के अन्तर्दाह का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है और 'कर्ण' मे नायक की उस अहम्मन्यता का अकन जिस पर कवि स्वय मुग्ध है। हमने इन नाटको को घटनाप्रधान पद्य-नाट्यो मे इसलिए स्थान दिया कि इनमें पात्रो का चरित्र-निरूपण भौतिक घटनाओं के पृष्ठाधार पर ही हुआ है। ये घटनाएँ गौण नही होती, इनका प्रतीकात्मक, अथवा भाव या विचारो के उद्दीपक रूप मे भी उपयोग नही किया जाता। इन घटनाओ के बीच प्रधान भूमिका के निर्वाहक पात्रों का मनोविश्लेषण, मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया का अकन व परिस्थितियों की पृष्ठभूमि मे चारित्रिक-विकास का प्रयत्न ही कवि करता है। परन्तु इस मनोविश्लेषण का स्वरूप न गीति नाट्यों की भाँति उद्गीतिमय है और न एकान्त बौद्धिक। इनमे केवल वस्तुरूप घटनाओ के मन.सूत्र तथा उनसे मन पर पडने वाले वे प्रभाव अकित है, जिनसे विशेष पात्रो की चारित्रिक विशेषताएँ व्यंजित होती है। इनके चरित्र-विकास मे भौतिक कार्यव्यापार या घटनाओ का महत्त्व अक्षुण्ण है। ये पात्र जितना सोचते है उतना ही कार्य-व्यापार का सचालन भी करते है—कम से कम कार्य-व्यापार इन कृतियो मे गौण नही होता।

नाटकीय सघनता, कार्यान्विति, प्रभावात्मकता आदि गुणों की दृष्टि से 'करुणालय', 'अनघ' और 'स्वर्णविहान' तीनों कृतियों मे नाट्य तत्त्व अत्यन्त क्षीण है। ये तीनो कृतियाँ कवियों की आरम्भकालीन रचनाएँ है, अतः इनकी कला मे प्रौढता का अभाव है।

'करुणालय' के कथानक मे कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए कुछ विचित्र ढग से सघर्ष-योजना की है। सघर्ष के तर्कसम्मत विधान मे उसकी कला असमर्थ है—इसका आभास अनेक स्थलों पर मिलता है। प्रसग-परिवर्तन के लिए वह दैविक व संयोगजन्य घटनाओ का आश्रय लेता है। आरम्भ से अन्त तक कुछ बेतुके ढंग से घटनाएँ घटती है। सहचरो के साथ राजा हरिश्चन्द्र के नौकाविहार-प्रसग से कथा का आरम्भ होता है। सहसा नौका स्तब्ध हो जाती है, और नेपथ्य गर्जन के साथ राजा को पुत्रबलि के पूर्वकृत वचन का स्मरण कराया जाता है। राजा कर्त्तव्य-पालन का निश्चय करता है—रोहित मृत्यु के लिए तैयार नही होता—उसे अपने अस्तित्व पर ममत्व है—वह देश विदेश पर्यटन का सकल्प करता है। कवि फिर नेपथ्य से किसी शक्ति द्वारा उसका उत्साह बढाता है। तीसरे दृश्य में क्षुधा-पीडित अजीर्गत और तारिणी से रोहित की भेट होती है और अजीर्गत रोहित के प्रस्ताव पर अपने मध्यम पुत्र शुन शेफ का विक्रय सौ गायों के बदले कर देता है। यहाँ तक कथा बिना किसी चमत्कार के बढ़ती है। रोहित शुन शेफ के साथ दरबार में पहुँचता है और राजा के धिक्कारने पर बड़े असमर्थ तर्क से अपने व्यवहार का औचित्य-निरूपण करता है। पुत्र के न रहने पर पिता का 'पिण्ड तिलोदक' देने वाला अलभ्य हो जाता—यह तर्क अशक्त ही नहीं, पुत्र के मुख से अभद्र भी प्रतीत होता है। वशिष्ठ के आ जाने से पिता-पुत्र मे बिना किसी उल्लेखनीय सघर्ष के यज्ञ का कार्यक्रम निश्चित हो जाता है। वशिष्ठ के पुत्र शक्ति के विफल होने पर अजीर्गत स्वयं ही सौ गायों के बदले पुत्र-वध करने के लिए प्रस्तुत होता है। यह घटना नाट्य की चरम, भयंकर व सशक्त घटना है।

यहाँ कार्य-व्यापार में सघनता और गति में तीव्रता आ जाती है, परन्तु यह स्थिति शीघ्र ही विश्वामित्र के आगमन से बदल जाती है। सुव्रता के द्वारा इस रहस्य के उद्घाटन से, कि शुनः-शेफ उसका और विश्वामित्र का पुत्र है अजीर्गत का नहीं, अजीर्गत के पक्ष से प्रस्तुत संघर्ष-बल नष्ट हो जाता है। रोहित के द्वारा पिता के प्रति कर्त्तव्य-भावना और जीवनेच्छा के बीच संघर्ष बहुत कुछ शुन-शेफ के क्रय की घटना से पहले ही क्षीण हो गया है। और कहीं कवि ने विशेष अंतरंग अथवा बाह्य संघर्ष का विधान ही नहीं किया था। नाटक का अन्त और भी निर्जीव है। शास्त्रीय दृष्टि से कार्यान्विति व प्रभाव-ऐक्य कार्य-व्यापार में ढूँढा जा सकता है परन्तु परिस्थितियों की सघनता, उत्थान-पतन, नाटकीय परिणति आदि से यह कृति सर्वथा शून्य है।

स्पष्ट है कवि प्रसाद को बाह्य सघर्ष के विधान मे विशेष सफलता नही मिली और आन्तरिक संघर्ष का विधान उन्होने किया नहीं। हरिश्चन्द्र के मन मे कर्त्तव्य और पुत्र-प्रेम के बीच तीव्र संघर्ष की योजना सम्भव थी, परन्तु अवसर मिलने पर भी ऐसा नही किया गया। वस्तुतः 'करुणालय' में घटनाओं का धरातल वस्तुगत ही है, केवल आरम्भिक प्रकृति-वर्णन में किंचित् भावुकता आ गई है। जो सघर्ष इस पद्य नाट्य मे अंकित है उसका सम्बन्ध भी धार्मिक कुप्रथा के विरोध से है और यह धर्म व्यक्ति-धर्म नही समाज-धर्म है। आंशिक रूप से राजकीय व्यवस्था का भी अंकन हुआ है। इस प्रकार इस नाट्य के मूल्य वस्तुगत है।

कथोपकथन मे विशेष सजीवता या चमत्कार सर्वत्र नहीं है। कहीं कथोपकथन लम्बे और निर्जीव हो गए है, और कही मार्मिक एवं सजीव है। आरम्भ के दृश्य में पहले प्रकार के संवाद है। इस प्रसंग में प्रकृति-सौन्दर्य की कोमल अभिव्यंजना और कवित्व तो है, संवादों मे नाट्य गुण, सजीवता और चुस्ती नही। क्षुधा-पीडित अजीर्गत की उक्तियाँ मार्मिक है। तृतीय दृश्य सवाद-योजना की दृष्टि से विशेष सफल है। स्वगत के प्रयोग द्वारा कवि ने रोहित का आत्म-चिन्तन द्वितीय दृश्य में व्यक्त किया है। यह प्रसंग लम्बा है परन्तु विद्रोह की शक्ति और कर्त्तव्य-पालन की कोमल भावनाओं के बीच द्वन्द्व अंकित होने के कारण निर्जीव नही। स्वगत का प्रयोग अन्तर्द्वन्द्व के बहुत स्थल नहीं होने के कारण कवि ने अधिक नही किया। नाट्य के बाह्य सघर्ष का उचित माध्यम सवाद ही है।

रंगसकेत प्रसादजी ने नहीं दिए, परन्तु इस नाट्य के रंगमचीय अभिनय मे व्यावहारिक दृष्टि से कोई कठिनाई नही। घटनास्थल, दृश्य-परिवर्तन, दृश्य-योजना, पात्र-सख्या—सभी दृष्टियों से यह नाट्य अभिनेय है, परन्तु घटनाओं में अभीष्ट नाट्य गुण के अभाव मे यह कृति दृश्य रूप मे प्रभावात्मकता की दृष्टि से सफल नही हो सकती।

कवि की अपनी योजना इस काव्य को दृश्य रूप मे गीति नाट्य के ढग पर लिखने की थी। नाटक से पूर्व दी गई सूचना से यह स्पष्ट है—

"यह दृश्यकाव्य गीति नाट्य के ढंग पर लिखा गया है।"[१]

'करुणालय' की शैली में गीति तत्त्व और अनेक स्थलों पर नाट्य तत्व का अभाव है, परन्तु कवित्व का अभाव नही। भाषा सर्वत्र शुद्ध और सुथरी है। आरम्भ के प्रकृति-वर्णन

---

१. करुणालय —जयशंकरप्रसाद, सूचना

अत्यन्त भावमय और सुन्दर हैं। परन्तु 'करुणालय' की शैली में गीति का लालित्य और नाटकीय संघर्ष को व्यक्त करने वाली सप्राणता नहीं है। उसमें स्पष्टता, सफाई और कवित्व है। 'करुणालय' का छन्द भी प्रयोग की दृष्टि से नवीन है, परन्तु उसकी गति में सर्वत्र मन्थरता है। इस छन्द की नवीनता की ओर कवि ने स्वय 'सूचना' मे सकेत किया है—

"तुकान्त विहीन मात्रिक छन्द मे वाक्यानुसार विराम-चिह्न दिया गया है। यद्यपि हिन्दी में इस ढग की कविता का प्रचार नही है, तथापि अन्य भाषाओ मे (जैसे सस्कृत मे कुलक, अँगरेजी में ब्लैक वर्स, बँगला मे अमित्राक्षर छन्द) इसका उपयुक्त प्रचार है।[1]

इस प्रकार इस छन्द के स्वरूप की नवीनता और अन्य साहित्य से गृहीत प्रेरणा पर प्रकाश पडता है। निश्चय ही 'करुणालय' के रचना-काल की दृष्टि से यह प्रयोग नवीन है, पर बहुत उपयुक्त नही।

अनघ की गणना विद्वानो ने गीति तत्त्व और भावमयता के अभाव की ओर सकेत करते हुए भी गीति-नाट्यो में की है, परन्तु गीति तत्त्व के अभाव में इस रचना को अधिक से अधिक पद्य नाट्य ही माना जा सकता है। इस नाटक मे एक लम्बी कल्पित कहानी है। बुद्ध के साधनावतार के रूप मे एक आदर्श नायक की कल्पना करके कवि ने उसके व्यक्तित्व मे युग धर्म के प्रतीक का सृजन किया है। मघ का चरित्र गाधी-नीति के व्यावहारिक पक्ष का मूर्तिमन्त रूप है। मघ उस नीति का प्रतीक है जो निःस्वार्थ भाव से परोपकार का उपदेश देती है। विरोधी पक्ष के पात्र है गाँव के मुखिया आदि। अनेक षड्यन्त्रों के द्वारा नायक को बन्दी बनाने के उपरान्त, अन्तिम स्थलो मे रानी के गुप्तचरो द्वारा रहस्योद्घाटन और नायक की मुक्ति मे काव्य का अन्त होता है। कुछ गीतो की रचना के अतिरिक्त काव्य की सभी घटनाएँ और सघर्ष बाह्य व मूर्त है। सुरभि, मघ की माँ, मगध-महिषी आदि स्त्री-पात्रो की अवतारणा से एक अत्यन्त क्षीण-सा गीति स्वर कही-कही सुनाई पडता है, परन्तु सूक्ष्म मधुर आन्तरिक व्यंजना व रसमयता कार्य-व्यापार में कही नही है। कथानक मे प्रधानता मघ के कर्मठ चरित्र और क्रियाशीलता की ही है।

नाटक के कथानक मे सुख-सरल प्रवाह न होकर उसकी गति वक्रतापूर्ण होनी चाहिए। इस दृष्टि से 'अनघ' की वस्तु-सघटना में कोई चमत्कार नही। कार्यव्यापार अत्यन्त सरल व स्थूल है। उसमे प्रभावित करने वाली कोई विशेष आन्तरिक व बाह्य उथल-पुथल नहीं है, किसी प्रकार का वैचित्र्य, वक्रता या सघर्ष मे घनत्व नही। नाटक की सभी घटनाएँ यन्त्र-चालित सी अन्त मे मुख्य कार्य मे पर्यवसित हो जाती है, अन्तिम दृश्य मे अवश्य कुछ घनत्व और सबलता आ गई है, परन्तु वहाँ भी पर्यवसान के लिए कवि ने जिस कौशल का प्रयोग किया है उसमे किसी प्रकार का चातुर्य नही। डॉ० नगेन्द्र के शब्दो मे यह कौशल बडा 'घटिया' है।[2] विरोधी पक्ष के विश्वासपात्र व्यक्ति न्याय के समय पढा पाठ भूलकर मघ के पक्ष मे साक्षी दे देते है। संघर्ष को मोड़कर मुख्य कार्य तक पहुँचाने के लिए यह कौशल वास्तव में अभिनन्दनीय नही। वस्तु-

---

१. करुणालय, सूचना

२. आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ९२

विन्यास में जटिलता तो है ही नहीं। कथा-क्रम सीधा-सादा है। कथा-क्रम में अशक्ति का एक कारण प्रतिपक्ष की शक्ति को उभार कर उसका विवरण नही देना भी है।

'अनघ' में वस्तु की एकता मिल जायगी। सभी घटनाओ व प्रसगों का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप मे मुख्य कथा से है, परन्तु इन घटनाओ के क्रम-बन्धन व विन्यास मे विशेष कौशल नहीं है। इसके अतिरिक्त 'अनघ' का आकार एकाकी के समान नही, अत: इस प्रकार के नाटक मे वस्तु को वांछित विस्तार और वैविध्य प्रदान करने के लिए प्रासगिक वृत्तो की न्यूनता खटकती है। प्रासगिक के नाम पर कुछ स्थल गिनाये जा सकते है, पर वे पर्याप्त नही है। इस प्रकार कथावस्तु-सम्बन्धी जटिलताओ के अभाव मे एक ओर उसके विन्यास मे कौशल व्यक्त नही हुआ—दूसरी ओर वह एकदम सपाट हो गई है।

कथोपकथन का सामान्य गुण है स्वाभाविकता, और नाटक मे उसका विशेष गुण है सजीवता और परिस्थिति के अनुकूल प्रेक्षक को प्रभावित करने की क्षमता। किन्तु 'अनघ' के अधिकाश कथोपकथन निर्जीव है। उनके कथोपकथन मे न कार्यव्यापार का व्यजक चांचल्य व शक्ति है, और न गीति-नाट्यो की सी कान्ति एव धार। कही-कही ये कथोपकथन पद्य के प्रयोग से अव्यावहारिक और बोझिल हो गए है, और कही उनमे अन्त्यानुप्रास के प्रयोग से विचित्र छन्दोबद्ध लय उत्पन्न हो गई है जो नाटक के संवाद मे उचित नही जान पडती। पहले दृश्य में चोरों के वार्तालाप से एक उदाहरण लीजिए—

तीसरा—(पहले से)
अरि जा रहा है, मार,
चौथा—कर झपट पीछे वार।
पहला—पर मै गया हूँ हार,
दूसरा—यह चिह्न है उपहार।
पहला—तो अब किया क्या जाय ?
दूसरा—सोचें चलो सदुपाय।[1]

छोटे और तुकान्त छन्द मे रचना के कारण लय मे जो गीतात्मकता (Sing-song-tone) उत्पन्न हो गई है वह प्रसगानुकूल नहीं। कही-कहीं सवादों में सजीवता और चमत्कार है, पर ऐसे स्थल बहुत कम है।

स्वगत का प्रयोग इस नाट्य में 'करुणालय' की ही भाँति बहुत नहीं हुआ, एकाध प्रसंग मे ही ऐसा हुआ है—कारण, पात्र मनन और आत्मचिन्तन कम करते हैं, कार्य अधिक। वैसे गुप्तजी के सवादो और स्वगतों मे सरलता और स्पष्टता है, उनमे विस्तार कही नही मिलता—हाँ, चमत्कार और वाग्वैदग्ध्य की उनमे कमी है।

जैसा कथानक के प्रसंग में स्पष्ट किया जा चुका है इस नाट्य के कार्य-व्यापार का स्थल भौतिक जगत् है अत: घटनाओं का स्वरूप मूर्त है। गीति-नाट्य वा बौद्धिक रूपकों की भाँति इसकी घटनाएँ अन्तर्मन मे घटित नही होती। निश्चय ही यह नाट्य सिद्धान्त-निरूपक है, परन्तु

---

१. अनघ—मैथिलीशरण गप्त, षष्ठावृत्ति, पृष्ठ १६

कवि ने गांधीवादी सिद्धान्तों का सैद्धान्तिक व अमूर्त रूप अंकित न कर उन्हें व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित करते हुए प्रस्तुत किया है। कवि का प्रेष्य विचार और सिद्धान्त हैं, परन्तु उनका माध्यम है वस्तुरूप घटनाएँ, जिनसे ये विचार या सिद्धान्त व्यजित होते है। इस प्रकार अमूर्त इस काव्य में व्यग्य है वाच्य नही।

'अनघ' की रचना, ऐसा प्रतीत होता है गुप्तजी ने पाठ्य रूप मे की है। यद्यपि दृश्यो मे कोई ऐसी अद्‌भुत व अनभिनेय बात नही, फिर भी उनमे पाठक को रमाने की सामर्थ्य भी नही है। इसके अतिरिक्त कवि ने सम्पूर्ण कथानक का विभाजन इतने अधिक दृश्यो मे कर दिया, और ये दृश्य इतनी जल्दी-जल्दी बदलते है कि इनको प्रस्तुत करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। अभिनय की दृष्टि से कुछ अत्यन्त अनावश्यक प्रसगो का समावेश, पात्रो की इतनी अधिक भीड-भाड, और दृश्यो मे अपेक्षित नवीनता का अभाव, इस बात का प्रमाण है कि गुप्तजी इस विषय मे सचेत नही रहे। इसके अतिरिक्त सवादो की निर्जीव एकरसता भी अपने प्रेक्षक को उबा देने के लिए पर्याप्त है। रंग-सज्जा, पात्रो की वेश-भूषा, अथवा रग-व्यवस्था से सम्बद्ध किसी भी अन्य विषय मे रंग-सकेत गुप्तजी ने नही दिए। 'अनघ' की अभिनेयता के विषय मे यही कहा जा सकता है कि इस रचना का अभिनय असम्भव नही, परन्तु इस दृष्टि से यह कृति सफल भी नही।

'अनघ' की शैली मे सर्वत्र गीति शैली का मधुर मसृण लालित्य तो नही परन्तु कवि ने कुछ गीतों की रचना की है। सुरभि और मालिन की विनोद वार्ता मे उल्लास तथा सुरभि के प्रतीक्षाकुल हृदय की व्यजना में विशेष द्रवणशीलता आ गई है, परन्तु ऐसे प्रसग इने-गिने है। सामान्यत: 'अनघ' की शैली मे वही विशेषताएँ है जो उसके सवादो मे। कही-कही भाषा के अशुद्ध प्रयोग, व तुक के आग्रह से अग्राह्य प्रयोग भी मिल जाते है। गीतो मे अवश्य काव्योत्कर्ष है।

इस नाटक का विभाजन सत्रह दृश्यों मे हुआ है और लगभग सभी का नामकरण घटना-स्थल के नाम पर किया गया है, परन्तु इतने अधिक दृश्यो में विभाजन और परिवर्तन मे शीघ्रता रग-व्यवस्था की दृष्टि से बहुत शुभ नही हुई। कवि ने दृश्य-परिवर्तन कुछ नियत दृश्यो मे भी नही किया। अधिकाश दृश्यो मे घटनास्थल नवीन है। कवि ने प्रत्येक दृश्य मे स्थल-परिवर्तन के साथ छन्द-परिवर्तन भी कर दिया है। इस प्रकार 'अनघ' मे सत्रह से अधिक मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। छन्दो का यह वैविध्य गुप्तजी के विपुल छन्दाधिकार का परिचायक है, परन्तु उन्होने प्राय: छोटे छन्दों का प्रयोग किया है जिनमे स्पष्टता तो है परन्तु वाछित सजीवता नही।

नाट्य-रूपो और समाख्यानात्मक विधाओ मे व्यावर्तन इसी आधार पर किया जाता है कि नाट्य मे घटनाएँ अभिघटित होती है और समाख्यानात्मक काव्य मे उनका वर्णन किया जाता है। 'अनघ' से इस दृष्टि से निराशा ही होती है। यह पद्य नाट्य, नाट्य-गुण, कवित्व, शैली, छन्द-विधान किसी भी दृष्टि से विशेष सफल नहीं स्वीकार किया जा सकता। वास्तव मे नाटक-रचना गुप्तजी का अपना क्षेत्र नही, वे जितने समर्थ कवि है उतने कुशल नाटककार नही और 'अनघ' तो उनकी कला के प्रौढि-काल की कृति भी नही है।

स्वर्णविहान—स्वर्णविहान का कथानक बहुत कुछ 'अनघ' का समकक्षी है। एक कल्पित

कथा के द्वारा पिछले युग की जाग्रत भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति है। देश की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी अत्याचारी शासन को अहिंसात्मक साधनों से जीतने की बात कवि ने की है। अनेक पात्रों के द्वारा कवि ने सामाजिक धरातल पर देश की दुर्दशा का अंकन किया है, विद्रोह का स्वरूप खड़ा किया है, और अहिसक क्रान्ति के सामने अत्याचारी को घुटने टेकने पर बाध्य कर दिया है। इस प्रकार गांधीवादी दर्शन के आधार पर प्रेम, शान्ति और असहयोग का सन्देश कवि ने दिया है। नाट्य-तत्त्व इस नाटक में भी अत्यन्त क्षीण है, और इसका कारण है परिस्थितियो मे सघनता का अभाव। अत्याचारी शासन ने किस प्रकार देश की दुर्दशा कर दी इसका करुण चित्र कवि अकित करता है। किसान, रुग्णा और बाला के द्वारा यह दयनीय दशा प्रस्तुत की गई है। नायक मोहन और विजय, अधम नृपति को मार डालने का विचार करते है पर तभी सन्यासी प्रेम और असहयोग की बांसुरी बजाता है और उसके प्रेम के सन्देश का प्रभाव बिना उल्लेखनीय संघर्ष के हो जाता है। मोहन विचार बदलकर असहयोग मे प्रवृत्त होता है और किसानो को यही संदेश देता है। तभी उसके अन्तर्मन में भावनाओं का असहयोग भी आरम्भ होता है। वह अनुभव करता है कि प्राणों की भूख आदर्श, देश-सेवा, कर्मठता से नही मिट सकती, उसे कुछ और भी चाहिए। और जब उसे लालसा मिलती है तो कुछ देर के लिए उसके मन का संयम वह जाता है, परन्तु लालसा भी उसे प्रेमपूर्ण क्रान्ति का सदेश देती है। इस स्थल पर नायक का अंत.संघर्ष अत्यन्त सघन रूप में प्रस्तुत हो सकता था, उसके अन्तर्द्वन्द्व का सशक्त चित्रण किया जा सकता था, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। मन की उथल-पुथल की इतनी मुखर अभिव्यक्ति कवि ने कर दी है कि भावो के उद्घाटन मे गंभीरता नष्ट होकर सस्ती अस्वाभाविकता आ गई है। इसके उपरान्त इस प्रेम का विस्तार हुआ है। यह प्रेम व्यक्तिगत कामना की परिधि मे सकुचित न रहकर उत्कट देशभक्ति के साथ तदाकार हो गया है। वस्तु और प्रभाव-सम्बन्धी ऐक्य इस नाटक मे वर्तमान है। सभी घटनाएं एक अन्तिम कार्य मे पर्यवसित हो जाती है। आरम्भ से अन्त तक घटनाओं में गति है परन्तु वक्र नहीं, सरल। कार्य-व्यापार मे धाराप्रवाह विकास है परन्तु जटिलता का अभाव है। प्रासंगिक वृत्तो की योजना इस नाटक में भी नही। 'अनघ' मे चरित्र-गौरव तो है, इस नाटक के चरित्र भी विशेष शक्तिमान नही।

'स्वर्णविहान' की घटनाएँ भौतिक घटनाएँ है, और उनका क्षेत्र समाज के एक वर्ग-विशेष का जीवन है। जिन समस्याओ का चित्रण इस नाट्य मे हुआ है उनका सम्बन्ध समाज के बाह्य, भौतिक जीवन से है, अन्तरग आध्यात्मिक जीवन से नही। 'अनघ' की ही भाँति जिन गाधीवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन कवि ने किया है, उनका भी व्यावहारिक रूप ही अंकित है अत: अशरीरी व सूक्ष्म को इस कृति मे भी स्थान नही मिला। कही-कही नाट्य का स्वर सैद्धान्तिक हो गया है। ऐसे स्थलो पर वाणी उपदेशात्मक है, और इन उपदेशो मे विचार का प्रतिपादन है, परन्तु वह क्षणिक और जीवनगत समस्याओ के समाधान-रूप मे है। विचार, इस नाट्य की नाट्य ध्वनि है, प्रत्यक्ष विषय नही। कही-कहीं प्रासगिक रूप मे सिद्धान्त-प्रतिपादन अवश्य हुआ है। अत्याचार के विरोध मे प्रतिक्रियाशील दृप्त यौवन को गांधी की अमृत वाणी का अहिंसावादी संदेश देखिये—

नहीं नहीं ऐ पगले यौवन,

जीत प्रेम से पापाचार ।
अरे पाप से पाप मिटाना
महा भूल है, व्यर्थ विचार ।
० ० ०
कहीं आग से आग बुझाना
है सम्भव, ऐ युवक विचार ।
धर्म सत्य जिस ओर रहेंगे
उसी ओर होंगे करतार ।

इस प्रकार के स्थल काव्य मे बहुत नहीं है । काव्य की घटनाएँ भौतिक है, और उनके द्वारा निकले परिणामों से व्यंजित होने वाले सिद्धान्त अमूर्त ।

दिवोदास 'पृथ्वीपुत्र' का प्रथम नाट्य है । स्वय कवि ने भूमिका मे तीनो संकलित प्रसगों को सवाद कहा है । 'जयिनी' और 'पृथ्वीपुत्र' के विषय मे उनका कथन मान्य है, परन्तु 'दिवोदास' सवाद से कुछ अधिक है, इसीलिए उसकी गणना हमने पद्य-नाट्यो मे की है । शेष दोनों कविताओ से भिन्न उसे इसलिए माना है कि 'जयिनी' और 'पृथ्वीपुत्र' मे एक ही घटना या व्यापार को केन्द्र बनाया गया, परन्तु 'दिवोदास' मे सक्षिप्त कथानक का विन्यास हुआ है । इसके अतिरिक्त इस छोटे से एकांकी पद्य नाट्य मे गुप्तजी को नाट्य-गुण की दृष्टि से आशातीत सफलता मिली है, अत: हम इसे न केवल सवाद कहने के पक्ष मे हैं न नाट्य-कविता । कवित्व का उसमें निश्चय ही उत्कर्ष है परन्तु नाट्य गुण भी न्यून नही ।

'दिवोदास' के कथानक की घटनाए काशी-तीर पर राजर्षि रिपुजय के छोटे से आश्रम मे घटती है । रिपुजय तपस्वी है पर वैरागी नही, मानव के पुरुषार्थ का प्रबल समर्थक, और देवाश्रय लेकर विपन्न और विवश बनी मानव-जाति के, पुरुषार्थ-बल से उद्धार के लिए कृत-सकल्प । ब्रह्मा ने उसे गृहस्थ बनने के लिए सन्नद्ध किया, अकाल-पीड़ित काशी का राज-पद प्रदान किया, और बदले मे रिपुजय ने वर-याचना के रूप मे माँगा—अपने राज्य से देवताओ का निष्कासन । वह मानव के पौरुष, कर्म, सत्ता, सब पर विशेष आस्थावान है । वर दान के उपरान्त ब्रह्मा के अन्तर्धान होने के साथ कथानक मे एक छोटा सा मोड आता है । नागकन्या अनगमोहिनी का मत्रीपुत्री रगिणी के साथ आश्रम मे प्रवेश होता है । क्षणिक अन्तर्द्वन्द्व के उपरान्त वह रिपु-जय का वरण करती है और उसके नव्य जीवनादर्श की आशासा । इसके उपरान्त कथानक अपने मुख्य कार्य की ओर उन्मुख होता है । अकाल-पीड़ित प्रजाजन और मत्री आदि को रिपुजय कर्म का सदेश देकर उद्योगशील बनाता है । जीवन के अभिशापो को वह पापो का परिणाम व देवगण की कुदृष्टि नहीं, मानव की निरुद्यमशीलता का फल स्वीकार करता है । कथानक का उपसंहार मानव के पुरुषार्थमय उत्कर्ष के जयगान से होता है ।

गुप्तजी को अपने इस छोटे-से पद्य-नाट्य मे नाटकीयता की दृष्टि से अद्भुत सफलता मिली है । घटनाएँ कम है परन्तु सुविन्यस्त । सक्षिप्त से कार्य-व्यापार मे भी कवि ने वस्तु-विन्यास के लिए जिस नाटकीय कौशल का प्रयोग किया है वह श्लाघ्य है । आद्यत विषय के अनुकूल कथा-विकास मे सुदृढ घटनान्विति ही नही, प्रभाव मे गरिमा और प्राणरस का संचार

है। ब्रह्मा से वर-याचना के प्रसंग में विशेष नाटकीय चमत्कार है। वर-याचना से पूर्व ब्रह्मा और रिपुंजय के मध्य गृहस्थ के पक्ष-विपक्ष में तर्क-वितर्क का प्रसंग है, उसी के बीच जब वह सहसा पृथ्वी से देव-निष्कासन की बात कर बैठता है तो एक क्षण के लिए वरदाता के साथ पाठक भी अवाक् हो जाता है—

ब्रह्मा—

.....

कहाँ रहेगी वह मनुष्यता, जिसका तुमको गर्व ?
काम्य काम भी सृष्टि-धर्म है, करो उसे मत खर्व।

दिवोदास— **इसका क्या निश्चय, जैसे का हो वैसा ही जन्य ?**

ब्रह्मा— **यह विधि है विपरीत दशा में कारण होंगे अन्य।**
तुम्हें द्विधा क्या है ?

दिवोदास— **प्रस्तुत मैं, किन्तु नियम है एक—**
माने इसे भले ही कोई मेरा अति अविवेक।
चला जाय मेरी धरती से सारा सुर-समुदाय।

ब्रह्मा— **वत्स, वत्स, विस्मित मैं सुनकर, क्या कहते हो हाय ?**[1]

इसी प्रकार अनंगमोहिनी के आगमन के प्रसग मे कवि ने सम्भाव्य की असम्भावित उपस्थिति नाटकीय आकस्मिकता के साथ की है—

दिवोदास— **अनुगृहीत मैं, एकाकी भी रक्खूंगा निज रंग।**

ब्रह्मा— **तुम एकाकी क्यों, वह देखो नित्य नया चिर संग।**[2]

(अन्तर्धान)

और अनंगमोहिनी का तत्काल प्रवेश इस वाक्य का अनुवर्ती है। घटनाओ के क्रम-बन्धन मे इस प्रकार की सचेष्ट नाटकीयता 'दिवोदास' में सर्वत्र व्याप्त है। एकाकी की भाँति कवि ने संकलनत्रय के गुणो की भी सावधानी से रक्षा की है। कार्य-व्यापार मे वस्तु, देश, काल, तीनो से सम्बन्धित ऐक्य और तद्जन्य प्रभाव-ऐक्य मिलता है।

'दिवोदास' के सवाद भी विशेष प्राणवान है। उनमे सर्वत्र पौरुष की दीप्ति, प्रत्युत्पन्न-मति की धार, और सजीवता विद्यमान है। इन सवादो मे न कही भाषणो की सी व्याख्यात्मकता या एकरसता है, और न विचारात्मकता का धुंधला कुहासा, भावनाओ का गीतिमय तारल्य भी इनमे कहीं नही, अपितु सर्वत्र दुर्दम प्राण-रस के सचार से सजीवता रक्षित है। रिपुजय जैसे समर्थ व्यक्ति के चरित्र मे पुरुषार्थ पर आस्था के कारण विश्वासजन्य कान्ति और तर्कपुष्ट प्रखरता संवादों में सर्वत्र आ गई है। वर-याचना के प्रसग में ब्रह्मा और रिपुजय के बीच देव-निष्कासन-विषयक कथोपकथन से एक उदाहरण लीजिये—

ब्रह्मा—**पर देवों पर हुई तुम्हें क्यों ऐसी विषम विरक्ति ?**

---

१. पृथ्वीपुत्र—मैथिलीशरण गुप्त, दिवोदास, पृष्ठ ११
२. वही, पृष्ठ १५

दिवोदास— **नहीं, नहीं, उन पर है मेरी समुचित श्रद्धा-भक्ति।**
पर सबकी अपनी सीमा है—
ब्रह्मा— **सुर तो सुकृति-सहाय!**
दिवोदास— **सिद्ध इसी से तो मनुष्य है अकृति, अगति अनुपाय!**
नहीं मानता इसे किसी विध मेरा नर-पुरुषार्थ,
सब मेरे ही अर्थ अन्त में जितने प्राप्य पदार्थ।[1]

स्वगत-सलाप की नियोजना अत्यन्त सक्षेप मे एक-दो स्थलो पर अनगमोहिनी के अन्तर्द्वन्द्व का सकेत देने और मनोभावों को व्यक्त करने के लिए की गई है। परन्तु अन्तर्द्वन्द्व की क्षणिकता के समानान्तर स्वगत भी बहुत दूर तक नहीं टिक पाता।

'दिवोदास' मे मानवतावादी जीवन-दर्शन का प्रतिपादन कवि ने किया है, परन्तु अन्य पद्य नाटचो की भाँति कार्यव्यापार के बीच यह विचार-तत्त्व व्यग्य है। सम्पूर्ण नाटच मे बहिर्द्वन्द्व ही है अन्तर्द्वन्द्व कही नही। नायिका के मन मे आत्मसमर्पण से पूर्व क्षणिक अन्तर्द्वन्द्व होता है परन्तु उसकी स्थिति भी सकेतवत् है। नायक अपने विश्वास और मान्यताओ के प्रति शकाकुल नही होता अत द्वन्द्व का प्रश्न उठा नही। अपने सिद्धान्तो को वह वास्तविक जीवन मे प्रतिफलित होते देखना चाहता है, और इसके लिए कर्मक्षेत्र मे प्रवृत्त होता है, उसका साधना-क्षेत्र बहिर्जगत् है, अत नाटच की घटनाएं भौतिक है।

रग-संकेत जैसा कोई विधान इस नाट्य मे नही मिलता। कवि ने पात्रो की वेश-भूषा, आगिक अभिनय या रग-विधान-सम्बन्धी किसी प्रकार का नियत निर्देश इस कृति मे नही किया परन्तु अन्यथा व्यावहारिकता और प्रभावात्मकता दोनो ही दृष्टियो से 'दिवोदास' की सफलता प्रश्नातीत है। एकाकी के ढग की रचना होने तथा अपने लघु आकार के कारण यह कृति अभिनय की दृष्टि से विशेष उपयुक्त है।

'दिवोदास' की शैली मे भी प्रौढ़ कला का परिचय मिलता है। अत्यन्त स्पष्ट, स्फीत और प्रसाद गुणयुक्त अभिव्यजना नाटक मे सर्वत्र है। गीत-काव्य के गुण, मधुरता, मसृणता, चित्रात्मकता व लालित्य और सगीत तो इस काव्य मे नही, सजीवता और स्पष्टता है। छन्द-निर्वाह मे गुप्तजी अत्यन्त कुशल है। उन्होने 'दिवोदास' की रचना के लिए जो छन्द चुना है, वह बहुत छोटा नही, २७ मात्रा का सरसी छन्द है। कवि ने आवश्यकतानुसार उसे छोटा-बड़ा किया है। अर्थात् जहाँ विचार या प्रसग मे मन्थर गति, विस्तार या व्याख्या की अपेक्षा है वहाँ उन्होने पूरे चरण का प्रयोग किया है, अन्यथा छन्द का एक चरण मध्य मे से विभाजित होकर कही दो व अन्यथा तीन पक्तियो मे बँट गया, परन्तु मात्रा-प्रयोग व अन्त्यानुप्रास के निर्वाह मे त्रुटि नही आने पाई है। एक उदाहरण देखिये—

(दिवोदास से) **क्षमा कीजिए, सुकृति हमारी राज—**
दिवोदास— **सकी क्या सोच**
स्वयं सिद्ध ये राजकुमारी, तो क्या भय संकोच?[2]

---

१. पृथ्वीपुत्र, पृष्ठ १३
२. वही, पृ० १८

निष्कर्ष रूप में गुप्तजी का यह पद्य-नाट्य इस वर्ग की श्रेष्ठतम कृतियो मे से है। अपने पूर्ववर्ती अन्य पद्य-नाट्यो की तुलना मे ही नही कवि की अपनी पूर्ववर्ती नाट्य-कृतियो मे भी इस कृति का स्थान श्रेष्ठतम है। इस लघु नाट्य के प्रणयन मे यह कौशल इस बात का व्यजक है कि नाटक-रचना मे प्रवृत्ति न होने पर भी इस रचना मे आशातीत सफलता पाने का कारण इस काव्य का सीमित आकार ही है—और फिर यह रचना कवि की प्रौढि-प्राप्त कला का परिणाम है। केवल इसकी भाषा और अभिव्यजना ही नही, नाट्य कला भी प्रभावक्षम है।

कर्ण, द्रौपदी—जैसा हम पहले कह आए है—इन दोनो नाट्यो की रचना ध्वनि-रूपको की दृष्टि से, रेडियो से प्रसारण के निमित्त हुई है। रेडियो-नाटको मे एक ओर रगमच की प्रत्यक्षता और आकर्षण नही होता, परन्तु दूसरी ओर नाटककार को असम्भाव्य और व्यावहारिक दृष्टि से अनभिनेय प्रसगो की योजना का अवकाश और स्वतन्त्रता रहती है। नाट्य तत्त्व की अवस्थिति रेडियो-नाटको मे उसी प्रकार अनिवार्य है जैसी रग-नाटको मे, क्योकि उसका स्वरूप बहुत कुछ नाट्य-गुणयुक्त श्रव्य काव्य का सा होता है। रगमच पर जिन दृश्यो और कार्य-व्यापार का प्रत्यक्ष दर्शन सम्भव है वे सब रेडियो नाटको मे पाठक की कल्पना के लिए छोड दिये जाते है। नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने का गुण रेडियो-नाटक मे भी उतना ही अनिवार्य है जितना रगमचीय नाटक मे।

इन नाटक द्वै की कथा का स्रोत महाभारत का बृहद् आख्यान है। कवि ने अपने समय की भौतिक कुठाओ से प्रेरित विद्रोह को प्राचीनकाल के पात्रो के साथ तदाकार कर दिया है। उसने इन पात्रों के जीवन में घटित होने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाओ को ग्रहण किया है परन्तु आस्तिकता और प्रश्नातीत विश्वास के साथ नही। वह इन घटनाओ के मानसिक कारणो का मनोविज्ञान के प्रकाश में अभिज्ञान करता है और प्रत्येक घटना के पीछे कार्यकारण-शृखला को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है। 'कर्ण' का आरम्भ—युद्ध मे प्रवृत्त कर्ण और शल्य के बीच सवाद से होता है। कर्ण के विगत जीवन के तीन महत्त्वपूर्ण प्रसग—द्रौपदी-स्वयवर की घटना, उसके जन्म का रहस्य और इन्द्र को कवच-कुण्डल का दान, युद्धभूमि मे स्मृति-रूप मे वर्णित है। इन तीनों घटनाओं से उसके मन पर होने वाली प्रतिक्रिया, व्यक्तित्व-निर्माण मे इनका प्रभाव, और उसके दृप्त पौरुष मे पलने वाला विद्रोह, उसके अन्तर की आग, अहम्मन्यता, दर्प आदि सभी चारित्रिक गुण घटनाओ के साथ कार्यकारण-रूप मे बँधे है। कुछ घटनाओ के परिणाम-स्वरूप उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। परिस्थितियो से पराभूत उसका जीवन्त अहकार द्विविध अभिव्यक्त होता है—एक ओर वह अधिकाधिक विद्रोह और शौर्य-प्रदर्शन मे प्रवृत्त होता है दूसरी ओर वह दान के द्वारा इस पराभव के उन्नयन का प्रयत्न करता है। सामाजिक तिरस्कार से पराभूत यह उसके अहकार की अभिव्यक्ति का प्रयत्न है। इस प्रकार कुछ घटनाएँ इस अहकार के पोषण का कारण व कुछ परिणाम है।

द्रौपदी के चरित्र का भी मनोविज्ञान के प्रकाश मे आख्यान, महाभारत मे घटित होने वाली घटनाओं के पृष्ठाधार पर किया गया है। कवि उसके व्यक्तित्व में पलने वाली सर्वभक्षी प्रतिहिंसा को क्षत्राणी का दर्प समझकर अतर्क्य रूप से आस्तिक विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता। वह नारी के इस विकृत रूप के पीछे प्रत्येक मानसिक और भौतिक घटना का कारण खोज

निकालता है। पितृगृह से पतिगृह तक उसके जीवन की समस्त घटनाएँ मानो अत्याचार की गाथा थी। कवि द्रौपदी के स्वयवर की घटना को उसके अधिकार पर कुठाराघात मानता है। द्रुपद के अपमान का प्रतिशोध करने मे समर्थ कोई भी शूर उसके जामाता पद का अधिकारी था। ऐसी स्थिति मे द्रौपदी की स्थिति जड पुरस्कार से अधिक क्या हो सकती थी? इसके बाद कुन्ती का आशीर्वाद जिसके फलस्वरूप उसे पाँच पतियो की भार्या बनना पडा, उसके जीवन का दूसरा भयकर व्यग्य था। विवाह के उपरान्त तो उसका जीवन यातनाओ और अपमानो का वह भीषण अट्टहास बन गया जिसमे उसका आहत नारीत्व अवचेतन मे उस प्रतिहिसा और सर्वग्रासी घृणा का सचय करता रहा जिसका परिणाम हुआ—महाभारत।

कथानकों की उपर्युक्त रूप-रेखाओ से स्पष्ट है कि चारित्र्य-व्यजना इन कथानकों मे अधिक महत्त्वपूर्ण है, परन्तु कवि ने चरित्रों को भौतिक घटनाओं की पृष्ठभूमि मे समझा और उनका विश्लेषण किया है। कवि के विचार की प्रेरक उसकी अनुभूति है, अत. दैहिक प्रवृत्तियो की उपेक्षा उसने कभी नही की। उन्होने जीवन की अन्तर्मुखी साधना और सूक्ष्मतर अधिमानसिक मूल्यो की स्वीकृति कर रक्त-मास से निर्मित देह—उसकी आवश्यकताओ और प्रवृत्तियो को झुठलाने का प्रयत्न नही किया, अत भौतिक पक्ष उनकी नाट्य-कृतियो मे गौण नही हुआ।

"भगवती बाबू की कविता का प्राण-तत्त्व अहकार है। किन्तु इसमे आत्मा की अद्वैत स्थिति अथवा सोऽहं की अनुभूति नही है वरन् भौतिक कुण्ठाओ से पीड़ित मन और देह के असफल विद्रोह की हुकार है।"[1] मन और देह की इस पीड़ा और विद्रोह को व्यक्त करने के लिए कुण्ठाओ के भौतिक कारण कवि ने सर्वत्र स्पष्ट किए है और इन्ही भौतिक घटनाओ के आधार फलक पर चरित्र-निर्माण किया है। भौतिक घटनाओ के प्रति होने वाली अनुभूतियो और प्रतिक्रियाओ को कवि ने उनके पृष्ठाधार सहित व्यक्त किया है, उन्हे अशरीरी या सूक्ष्म रूप देकर, बौद्धिक उन्नयन करके या चितन-दर्शन आदि का बौद्धिक कवच पहनाकर नही। इन नाट्यो मे विचार है, परन्तु वह अनुभूति से प्रेरित है, और वस्तुरूप घटनाएँ इन अनुभूतियो का कारण है। "इस कवि ने कही भी शास्त्र से विचार उधार लेकर अपनी अनुभूति की स्वच्छन्द गति को बाँधने का प्रयत्न नही किया, कही भी इसने सस्कृतिवादियों की तरह दार्शनिक सत्यो के साथ अथवा प्रगति प्रयोगवादियो की तरह अर्थशास्त्र या मनोविज्ञान के तथ्यो के साथ प्रयत्नपूर्वक रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा नही की।"[2] अत इन नाटकों मे सूक्ष्म, अशरीरी, प्रतीकात्मक घटनाओ के माध्यम से विचार-प्रेषण की आवश्यकता नही पड़ी। भौतिक घटनाएँ पूरी सजीवता, मांसलता और जीवन्त स्पर्शों के सहित इन नाट्यों मे विद्यमान है।

वस्तु-सघटना इन नाट्य-कृतियों मे उस प्रकार की नही जैसी वस्तुप्रधान कृतियो मे होती है। जिस नाटक मे घटनाओ की प्रमुखता होती है उसमे समस्त प्रमुख व प्रासगिक घट-

---

१. विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, पृ० १६८

२. वही, पृ० १६८-६९

नाओ का सम्बन्ध नाटक के प्रमुख कार्य से होता है, परन्तु इन रचनाओ मे प्रमुखता चारित्र्य की है। चरित्र की वृत्ति अहकार का व्यक्तीकरण कवि का लक्ष्य है। उसने इन पात्रो के अहकार के साथ व्यक्तिगत और युग की समष्टिगत चेतना का तादात्म्य स्थापित किया है। अत घटनाओ का पर्यवसान किसी चरम या अन्तिम घटना मे न होकर इस अहम्मन्यता के पोषण मे होता है, और समस्त कार्य-व्यापार की इति इस चरित्र-वृत्ति के चरमोत्कर्ष की स्थिति में होती है। अतः कवि ने देश-काल से निरपेक्ष रहकर वे प्रसग जुटाये है जिनका सम्बन्ध इस वृत्ति के स्पष्टीकरण या पोषण से है—यही इनमे एकसूत्रता है और इसी सूत्र से विभिन्न प्रसगो का—जिनमे देश और काल की दृष्टि से पर्याप्त अन्तराल है, परस्पर क्रम-बन्धन किया गया है। वैसे कवि ने स्थान-ऐक्य की रक्षा के लिए कर्ण के विगत जीवन की घटनाओ का वर्णन स्मृतिरूप मे किया है। 'द्रौपदी' में कवि पीछे नही लौटा है, अत. ऐसे कौशल की अपेक्षा नही रही। इन नाटकों की घटनाओं का पारस्परिक सबध पूर्वापर-क्रम या कार्य-कारण का नही है, अलग-अलग घटनाएँ चारित्र्य-व्यजना की दृष्टि से विन्यस्त है, यही इनकी वस्तु-सघटना के विषय मे सत्य है। परन्तु कही किसी प्रसग की स्थिति व्यर्थ या अवाछित नही प्रतीत होती। नाटकीय स्थितियो की उद्भावना और चारित्रिक द्वद्व की व्यजना करने मे भी वर्माजी कुशल है। 'कर्ण' मे पहला और 'द्रौपदी' मे दूसरा कौशल अधिक मिलता है। कर्ण कुन्ती सवाद मे नाटकीयता और 'द्रौपदी' के अन्तिम दृश्य मे उसके अन्तर्द्वन्द्व की सफल व्यजना हुई है।

इन नाटको के सवादो मे सजीवता और स्पष्टता है और प्रवाह भी, परन्तु इनमे विशेष वैदग्ध्य, अलकरण और लालित्य नही है। सवाद, दृश्य नाटको की अपेक्षा लम्बे है। स्वाभाविक है, जिन कार्यों का अभिघटन आगिक व आहार्य अभिनय, व रग-विधान द्वारा सम्भव है, रेडियो-नाटको मे उन्हे वाचिक अभिनय और ध्वनि-प्रभावो तक ही सीमित कर देना पडता है। अतः अनिवार्य मुद्राओ, वेशभूषा या चेष्टाओ का इन नाटको मे प्रदर्शन नही, उनकी व्याख्या की जाती है। इसी प्रकार मूक अभिनय से जिन मनोगत भावो की अभिव्यक्ति सम्भव है, श्रव्य नाटको मे उनकी वाचिक अभिव्यक्ति करनी पड़ती है। इन नाटकों मे सवाद इस प्रकार कुछ लम्बे होते है। पात्रो की आत्माभिव्यक्ति के लिए स्वगतों का प्रयोग भी इनमे अधिक किया गया है। ये स्वगत भी कुछ लम्बे हैं, क्योंकि रगमच पर एक पात्र के बहुत देर तक आत्मभाषण करने से जो अस्वाभाविकता उत्पन्न हो सकती है, उसकी भी आशंका नही। विभिन्न प्रसगो को परस्पर जोड़ने और दृश्यो के शब्दो द्वारा काल्पनिक चित्र खड़े करने के लिए कवि ने एक 'वाचक' कठ का विधान भी किया है। इस प्रकार के अंशो में स्वभावतः विवरणात्मकता आ गई है। युद्ध का वर्णन 'वाचक' के शब्दों मे देखिये—

वाचक— **है तेज कर्ण मे, अर्जुन में है लाघव**
धीरता शल्य मे, और कृष्ण में कौशल!
सुर असुर देखने को यह रण घिर आए
मच गई सकल इस कुरुक्षेत्र में हलचल[1]

१. त्रिपथगा—भगवतीचरण वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ३२

'कर्ण' के सवाद अनेक स्थलो पर इस प्रकार के वर्णनात्मक स्थलो से जोडे गए है। सवादों मे सामान्यत स्पष्टता, सफाई और जिदादिली है, वाग्वैदग्ध्य, वक्रता और चमत्कृति नही।

इन नाटको की रचना ध्वनि-रूपको के रूप मे ही हुई है, अत कवि ने रंग-सकेत नही, ध्वनि-सकेत ही दिए है। दृश्य-परिवर्तन तथा असम्भव या अलौकिक घटनाओ के प्रदर्शन मे जो कठिनाई रगमच पर हो सकती है, उसका प्रश्न रेडियो-नाटको मे नही उठता। वहाँ ध्वनि-घोषो से श्रोता पर अभीष्ट प्रभाव की सिद्धि कर ली जाती है। अत किसी प्रकार की नाट्य-वर्जनाओ या स्थान व काल-ऐक्य के विषय मे कवि ने प्रतिबन्ध स्वीकार नही किये। युद्ध आदि के विराट् प्रसग तथा स्वयम्वर आदि सामूहिक घटनाओ से लेकर दो पात्रो के बीच साधारण सवादो तक इन नाट्यों की घटनाओ का अभिनिवेश है। इसी प्रकार दृश्य-परिवर्तन मे कोई कठिनाई कवि के सामने नही रही। 'कर्ण' मे कवि तीन बार युद्धभूमि से तीन भिन्न विगत प्रसगो पर लौट गया है, परन्तु इसे इन नाटको मे टेकनीक की त्रुटि नही माना जायगा। रेडियो-नाटको मे इस प्रकार के प्रतिबन्धो का प्रश्न नही उठता। विस्तार की दृष्टि से इन नाटको की रचना समय के बन्धन को स्वीकार कर की गई है, अत: इनमे न अवाछित विस्तार हुआ है, न निरर्थक प्रसगो की भीडभाड। 'द्रौपदी' का विभाजन दस दृश्यो मे हुआ है और 'कर्ण' मे भी दृश्य-परिवर्तन अनेक स्थलो पर है। 'कर्ण' मे घटनाएँ स्मृति-रूप मे वर्णित है, परन्तु 'द्रौपदी' मे नवीन दृश्य के साथ घटनास्थल और काल दोनो बदल गए है। उसका विभाजन यदि मच की दृष्टि से किया जाता तो अको मे हो सकता था।

विषय के अनुकूल इनकी शैली अहम्मन्यता की व्यजक होने के नाते सजीव एव नाट्य-प्रभावक्षम है। उसमें कल्पना का वैभव, सूक्ष्म अवयवो से ललित क्रीडा, आलकारिक प्रसाधन, शब्दो का सगीत नही है, परन्तु प्राण-रस है। उनकी कला मे नक्काशी और जडाव की अपेक्षा निर्माण और गढन अधिक है। इन नाटको मे कई पृष्ठो तक अलकार नही मिलेगे पर अभिव्यक्ति मे मार्मिकता, सजीवता और नाटकीयता सर्वत्र है। इनकी कला मे कल्पना का ललित विलास नही अहम्मन्यता की कान्ति और धार है।

कुल मिलाकर भगवतीचरणजी के ये दोनो नाटक शिल्प के श्री-विलास की दृष्टि से नही, नाट्य-गुण, अहवाद की ऊर्जस्वित अभिव्यक्ति, वक्र व्यजना और नाटकीय परिस्थितियो की समर्थ अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावक्षम और सप्राण रचनाएँ है।

विचारप्रधान काव्य-रूपक

काव्य की अन्य विधाओ की भाँति आधुनिक युग के बुद्धिवादी कवि ने विचारों के प्रतिपादन का माध्यम पद्य-नाट्य को भी बनाया। नाट्य का सम्बन्ध दृश्यात्मकता से है और विचार का चिन्तन से। नाट्य-विधाओं के लिए गृहीत काव्य-वस्तु मे जितनी प्रत्यक्षता व दृश्यात्मकता होगी उतनी ही प्रेक्षक की चित्तवृत्ति को रमाने की सामर्थ्य। इसीलिए नाटक के लिए जब अमूर्त विषय अपनाया जाता है तो कवि उसे यथाशक्ति प्रतीको की उद्भावना या मानवीकरण आदि के द्वारा मूर्त रूप प्रदान करता है तथा उसमें नाट्य के तत्त्व, वस्तु-संगठना, सजीव संवाद-योजना आदि का विधान करता है। गीति-नाट्य का विषय भी अमूर्त भाव होते हैं, वस्तुत: भाव

या अनुभूति का सम्बन्ध राग-तत्त्व से है, अतः भावों का जब प्रदर्शन किया जाता है तब उनमें प्रेक्षक के हृदय को रमाने, रागात्मक अनुभूति उत्पन्न करने की सामर्थ्य होती है। विचार का सम्बन्ध बुद्धि से है, और विचार अनुभूति का विषय तभी हो सकता है जब घटनाओ के माध्यम से व्यजित हो। जब उसका प्रत्यक्ष कथन या विश्लेषण किया जाता है तब हम बुद्धि से उसे समझते और ग्रहण करते है, उसमे हृदय को रमाने की शक्ति नही होती। यदि विचारो का उचित रूप में दृश्यात्मक विधान कर दिया जाय एव उनका क्रम-विन्यास सगठित और स्पष्ट हो तब तो नाटक उनका उचित माध्यम हो सकता है। परन्तु जब विचार को उसके अमूर्त, बौद्धिक रूप में, बिना नाटकीय विधान के प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है तब नाटक, और विशेष रूप से पद्य-नाट्य उसका उचित वाहन नही हो पाता।

इस युग का कवि, प्रौढि के साथ-साथ बौद्धिकता की ओर अग्रसर होता जाता है। वह प्रौढि काल मे भावाभिव्यक्ति की अपेक्षा विचार की बात अधिक करता है। यह प्रवृत्ति सामान्यत सभी अग्रिम कवियो मे परिलक्षित होती है। परन्तु उसके अन्तः का सजग कलाकार यह भी जानता है कि कविता के माध्यम से विचारो की प्रेषणा या तो उन्हे अनुभूति का विषय बनाकर हो सकती है या घटनाओं के माध्यम से उनकी व्यजना की जा सकती है अथवा मूर्त प्रतीको के माध्यम से अभिव्यक्ति। विचार को अधिकाधिक ग्राह्य और सरस बनाने के लिए वह अनेक रूप-विधाओ का आश्रय लेता है। नाटक मे रोचकता, प्रत्यक्षता, अतः प्रमाता को आकर्षित करने का गुण अन्य काव्य-रूपो की अपेक्षा अधिक होता है—कदाचित् इसीलिए इस युग के कवियो ने विचार-प्रतिपादन के लिए इस काव्य-रूप को भी ग्रहण किया है। जहाँ कवि विचार को जितना अधिक मूर्त रूप प्रदान कर सका है, उसे व्यवस्थित और विन्यस्त रूप मे सयोजित कर सका और जितने तीव्र सघर्ष का विधान कर सका है, उतनी ही उस कृति की नाटकीयता मे वृद्धि हुई है। इन नाटको की विशेषताएँ इस प्रकार है—

(क) इन सभी नाटकों के कथानक काल्पनिक है। कवि ने या कल्पित प्रतीक-रूपको का आश्रय लिया है, अमूर्त विचारो का मानवीकरण किया है, या कल्पित पात्रो द्वारा सिद्धान्त-प्रतिपादन कराया है। घटनाओ का स्वरूप या तो सर्वथा अमूर्त है, अथवा मूर्त घटनाएँ अपने मूर्त रूप मे महत्त्वहीन है, प्रधानता अमूर्त व विचार की है।

(ख) वस्तु-सगठन की दृष्टि से इस वर्ग के नाटचो मे सफलता बहुत कम प्राप्त हुई है। कथा-सूत्र प्राय. उलझे-से और अस्पष्ट है। कवियो ने कही-कही मनोविश्लेषण-शास्त्र की पद्धति मे अवचेतन और अर्ध-जाग्रत मन के सूक्ष्म विचार-खण्डों को अवतरित करने का प्रयत्न किया है। ऐसे स्थलों पर विचार की बोझिलता बढ गई है और नाटच का प्राण रस सूख गया है।

(ग) उचित सघर्ष-विधान के अभाव में नाटच तत्त्व की क्षीणता इन अधिकाश कृतियो मे दिखाई देती है। कवि का अपना मत एक विशेष चिन्ताधारा के पक्ष में है। उसका प्रतिपादन करने से पूर्व वह विरोधी पक्ष से समर्थ विरोध का स्वरूप बहुत कम खडा कर पाया है, अतः प्रमाता की जिज्ञासा-वृत्ति का उन्मेष और परितोष नही होता। परन्तु इस प्रवृत्ति के अपवाद भी इनमें अलभ्य नही।

(घ) जिन कृतियों में संघर्ष का उचित विधान नहीं है उनके संवादों में सजीवता का

भी अभाव है। शैली मे मचीय भाषण का स्वर प्रायः मिलता है। दो पात्र परस्पर समर्थ कथोपकथन मे बहुत कम प्रवृत्त होते है। प्राय. एक पात्र विचार-सूत्र दूसरे को पकडाकर कथा-विकास की एकरसता को दूर करता है। स्वगत का प्रयोग भी इन्होने किया ही है।

(ङ) गीतो का प्रयोग कवियो ने बीच-बीच मे किया है। ये गीत भी कही-कही भाव-प्रेरित न होकर विचार से बोझिल है। इनकी शैली मे न गीति-शैली का माधुर्य है, और न सवाद की चमत्कृति व सजीवता। इसमे विश्लेषण है विचार का, जिसके अतिशय से कही-कही गद्यमयी निविडता आ गई है। गति और प्रखरता का प्राय. इनमे अभाव है, ये रचनाएं विचारोत्तेजना की सामग्री भी प्रस्तुत नही करती।

(च) जिन नाटकों की रचना रेडियो के लिए हुई है उनमे ध्वनि-सकेत, कुछ मे ध्वनि और रग-सकेत दोनों, व अन्य मे केवल रगमच की दृष्टि से सकेत दिए गए है। परन्तु ये नाटक रगमंच पर अभिनय की दृष्टि से विशेष सफल नही हो सकते। इन के लिए विशेष स्तर के प्रेक्षक-वर्ग की अपेक्षा है, जो इनसे आनन्द-लाभ कर सके। यदि वे भी यह गरिष्ठ बौद्धिक आहार पचा ले तो भी इनकी नीरसता और एकरसता से कहाँ तक भागेगे। इसके अतिरिक्त इनके स्वप्न-चित्रो, अमूर्त-वर्णनो, और कही-कही लौकिक व विराट् प्रसगो के अभिनय मे व्यावहारिक कठिनाई हो सकती है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि इस प्रकार के काव्य-विषय के लिए यह माध्यम बहुत अधिक उपयुक्त नही जान पडता। हर काव्य-रूप को अपनाने के पीछे तर्क का औचित्य और सार्थकता होनी चाहिए। नाट्य-विधि मे रचित कृतियो मे जो गुण वांछित है, एकाध को छोडकर इन अधिकाश कृतियो मे उनका अभाव है। इस वर्ग की रचनाएँ है—सियारामशरण गुप्त का 'उन्मुक्त', कवि प्रभात का 'सवर्त्त', सुमित्रानन्दन पन्त के 'शिल्पी', 'सौवर्ण' और 'रजत-शिखर' मे सकलित काव्य-रूपक एव भगवतीचरण वर्मा का 'महाकाल'। इनमे से अन्तिम तीन की रचना रेडियो से प्रसारण के उद्देश्य से की गई है। 'उन्मुक्त' बडे स्तर पर लिखा गया बृहद् नाट्य है, अन्य रचनाएँ मध्यम आकार की है। हम इन कृतियो में से पृथक् विवेचन 'उन्मुक्त' का ही करेगे, शेष मे उपलब्ध विशेषताएँ लगभग समान है, अत उनकी सामान्य विशेषताओं का पृथक् उल्लेख किया जायगा।

उन्मुक्त मे कथा का विधान है। रुग्ण कवि की अन्तरात्मा बाह्य-जगत् मे भी विप्लव देखकर विक्षुब्ध हो उठी है। हृदय के इसी विक्षोभ ने उसे उस समय की ज्वलन्त समस्या—युद्ध का निदान ढूंढने पर बाध्य किया। हृदय की इस दुःखद अनुभूति के निवारण के लिए उसने बुद्धि को टटोला और परिणाम हुआ 'उन्मुक्त'। इस प्रकार समस्या का चित्रण कवि की अनुभूति से प्रेरित—अतः आत्म-रस से भीगकर हुआ है और सम्भावित समाधान उसके चिन्तन-मनन का परिणाम है। इस प्रकार इस नाट्य में अनुभूति और विचार मे प्रेरक-प्रेरित का सम्बन्ध है। गुप्तजी ने एक कथानक की कल्पना करके उसका विधान रूपकवत् किया है, अर्थात् दृश्यरूप उपस्थित घटनाओ के मूल मे हिंसावादी युद्ध-नीति और अहिसावादी गांधी-नीति का सघर्ष व्यक्त है। उसके कर्त्ता और भोक्ता पात्र भी इन दोनों पक्षों का सचालन करने वाली मानव-मन की प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। इन दोनो कथाओं में एक का सम्बन्ध इस प्रकार युद्ध की समस्या के

व्यावहारिक वस्तुरूप से है, और दूसरी का इसके मानसिक व सैद्धान्तिक रूप से। नाट्य का आरम्भ कुसुमद्वीप मे होता है। कुसुमद्वीप की अधिष्ठात्री कुसुमावती को, सेनापति जयकेतु से लौहद्वीप के सेनानी द्वारा क्रमशः अनेक द्वीपो को ध्वस्त करने के उपरान्त, कुसुमद्वीप की ओर बढ़ने का समाचार मिलता है। इसके उपरान्त कवि समस्या के चित्रण और निदान के शोध मे प्रवृत्त हो जाता है। कवि ने तीन पात्रो की कल्पना की है—पुष्पदत, गुणधर और मृदुला। तीनो मे कवि ने तीन प्रकार के सम्भावित निदानों की प्रतिष्ठा की है। आरम्भ मे तीनो प्रत्यारोध के निमित्त युद्ध मे प्रवृत्त होते है, परन्तु युद्ध की एक घटना—जिसमे गुणधर स्वय आहत हो जाता है, उसकी विचारधारा मे आमूल परिवर्तन कर उसे अहिसा का पोषक बना देती है। पुष्पदत हिसा का उत्तर हिसा से देने के पक्ष मे है और मृदुला जो सामान्यतः अहिसा की पोषक है, विवशता की स्थिति मे हिसा का अवलम्ब ग्रहण करती है, परन्तु सयोगवश शत्रु के लिए निर्मित ध्वसक विमान, उसी के हाथ पडकर निर्माता-पक्ष के विनाश का निमित्त हो जाता है, अत. हिसा का अवलम्ब लेने पर भी निराशा और असफलता हाथ आती है—और तब पुष्पदत अपनी भूल समझकर आध्यात्मिक बल पर आश्रित शान्ति-नीति का आश्रय लेता है। इस बाह्य सघर्ष को चित्रित करने वाली घटनाए प्रतीकात्मक है, और दो विरोधी नीतियो का प्रतिनिधित्व करती है। कवि ने पात्रो और द्वीपो का नामकरण जिन सज्ञाओ के आधार पर किया है वे भी साभिप्राय और मन के तमस्, रजस् और सत्व की प्रतीक है।

'उन्मुक्त' मे अंकित घटनाओ का बाह्य स्वरूप कवि की दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण नही, यह उनकी वर्णन-पद्धति से स्पष्ट है। अधिकाश भौतिक घटनाओ को कवि ने सूच्य बनाकर विचारोद्दीपक-रूप मे उनका प्रयोग किया है। युद्ध के सभी समाचार, गुणधर के आहत होने की घटना, ध्वसक विमान का निर्माण, उसका शत्रु के हाथ मे पड जाना आदि, नाटक के सभी समर्थ प्रसग कही सवादो के, और कही पात्रो के आत्मचिन्तन के बीच मे सूच्य है। वस्तु-वर्णन के लिए कवि केवल एक प्रसग पर रुका है—वह है शत्रु के आक्रमण के परिणामस्वरूप ध्वस्त द्वीप का, और विशेषकर मृदुला के पुत्र ज्ञानधर के मृत शरीर की खोज का वर्णन। इसका भी एक कारण है—इस हृदयद्रावक प्रसग के करुणार्द्र वर्णन से वह पाठक के मर्म का स्पर्श कर हमारी करुणा का विश्वव्यापी प्रसार करना चाहता है तथा युद्ध के दुष्परिणामो के प्रति हमे सजग और सचेत करना चाहता है। इस प्रकार इन घटनाओ का महत्त्व भी सापेक्ष है, स्वतन्त्र नही। कवि की दृष्टि भौतिक घटनाओं से चोट खाकर अन्तर्मुखी हो गई है और इस नाटक मे वह बहिर्जगत की समस्याओं का समाधान अन्तर्मन मे ढूँढ़ता रहा है। कही-कही मार्मिक प्रसगो की उद्भावना और मृदुला जैसे पात्र की अवतारणा से प्रगीतात्मकता का समावेश भी इस काव्य मे हो गया है, परन्तु उसमे व्यक्त सघर्ष भावनाओ का नही सिद्धान्तो और विचारो का—नीतियों का सघर्ष है। अत इसका प्रतिपाद्य अमूर्त विचार ह, जिनका प्रतिपादन कवि ने व्यावहारिक धरातल पर उपयुक्तता सिद्ध करके किया है।

नाट्य-तत्त्व इस कृति मे बाह्य सघर्ष या कार्य-व्यापार के चित्रण के रूप मे नही मिलता। व्यक्ति के मन का अन्तर्द्वन्द्व भी इसमें अधिक नहीं है। दो विरोधी चिन्ताधाराओं के प्रतीक दो पक्षों या व्यक्तियों के विचारों का संघर्ष है। क्षणिक अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि मृदुला और गुणधर के

मन मे की गई है। जहाँ बाह्य सघर्ष-विधान है वहाँ वह विचारों के प्रेरक, उद्दीपक या मान्यताओं के सघर्ष के परिणाम-रूप मे अकित है। इसी कारण कथा मे विशेष सुगठित प्रबन्ध-योजना नही मिलती। कही वह प्रत्यक्ष हो जाती है और कही पृष्ठभूमि मे चली जाती है। प्रासगिक वृत्त व अवान्तर प्रसंग-योजना मे कथानक कही जटिल भी नही होता। घटनाओ को मोड़ देने के लिए कवि ने जिस कौशल का सहारा लिया है, उसमें देवबल का अवलम्ब अधिक लिया गया है, नाटकीय चमत्कार व वक्रता उससे कम है। शत्रुओ के हाथ मे विमान के पडने की घटना इसी प्रकार की है। गुणधर के विचार-परिवर्तन का प्रसग अवश्य समर्थ और नाटकीय है, उसमे आकस्मिकता भी है। इस नाटक के प्रबन्ध-निर्वाह मे वेग नही सहज क्रम है। फिर भी कथा मे किसी प्रकार का सगठन-सम्बन्धी दोष नही। कथा का विकास सहज क्रम से होता है, उसकी गति मे अनुकूल प्रवाह भी है और वृत्त-वर्णन मे कवि ने रोचकता लाने का प्रयास भी किया है। युद्ध की विभीषिकाओ का वर्णन पढ़-सुनकर जो भावनाएँ कवि के मन मे उठी है, उन्हे उसने अपूर्व कौशल से अन्वित कर कहानी का रूप दिया है।

कथोपकथन मे कवि की वर्णन-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इन कथोपकथनो मे व्याख्या और विस्तार, विचार-प्रतिपादन के कारण है। चाचल्य, प्रत्युत्पन्नमति, और सक्षेपण के अभाव मे उनमें वर्णनात्मक शक्ति और विचार-प्रतिपादन की क्षमता ही अधिक मिलती है। यह सिद्धि शैली की सामर्थ्य के कारण है, नाट्य गुण के उत्कर्ष के कारण नही। वैसे सम्पूर्ण कथा का विकास कथोपकथन या स्वगत के द्वारा ही हुआ है। स्वगतो मे भी कही-कही बड़ी दूर तक पात्रों के माध्यम से कवि का चिन्तन व्यक्त हुआ है। कही कवि ने अमूर्त भावो का मानवीकरण कर स्वगत की एकरसता दूर करके नाट्य गुण का समावेश किया है—मृदुला से जागरिकता का अवचेतनात्मक वार्तालाप इसी प्रकार का है।

'उन्मुक्त' की शैली मे—जैसा पहले कहा जा चुका है, वर्णन-सामर्थ्य है, परन्तु नाट्य शैली की विदग्धता, वक्र-व्यजना आदि नही। कवि ने यथाशक्ति समस्या को अतरग बनाकर और आत्म-रस मे डुबोकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, परन्तु आत्म-रस मे भीगी होने पर भी चिन्तन-प्रधान होने के कारण काव्यगुण को क्षति पहुँची है। कवि दिनकर के शब्दो मे—

"सियारामशरणजी मे कला की आराधना कम, विचारो का सेवन अधिक है। उनका उद्देश्य सौन्दर्य-सृष्टि नही, प्रत्युत् कविता के माध्यम से सत्य का प्रतिपादन है। प्रसन्नता उन्हे इसलिए नही होती कि वह सुन्दर सुरो मे गाते है, प्रत्युत् इसलिए कि उनका गान सार-सयुत है।...उनकी कविताओ मे से रगीनियो की एक पूरी दुनिया ही गायब है।"

गुप्तजी की कविता मे इस प्रकार आत्म से उद्देश्य की अभिव्यक्ति अधिक प्रमुख हो जाती है फिर भी यत्र-तत्र कोमल और कठोर पक्षो के सुन्दर वर्णन मिल जाते हैं। ऐसे वर्णनो मे कवि की वर्णन-सामर्थ्य और काव्य-गुण स्पष्ट है, परन्तु साथ ही इस प्रकार के विवरणात्मक प्रसग सवाद के अश-रूप मे विशेष नाटकीय नही हो सकते। कही-कही ऐसे स्थल भी है जहाँ काव्य का स्तर अत्यन्त साधारण हो गया है।

वैसे कल्पित रूपक-विधान द्वारा इस समस्या को काव्य-रूप देना कवि की सुन्दर कल्पना का प्रमाण है। द्वीपों की कल्पना विशेष सुन्दर बन पडी है। पुत्र-वचिता मृदुला के हार्दिक उद्-

गारों की भी अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति कवि ने की है।

इस नाट्य की रचना अभिनय की दृष्टि से नही की गई, अतः रंगसंकेत, दृश्यात्मकता और संवादों मे नाटकीय गुण की रक्षा का सायास प्रयत्न कवि ने नही किया। रंग-सकेतों का एकान्त अभाव भी इस कृति में नही है। कही-कही स्पष्ट रूप से कवि ने रग-सकेत दिए हैं, परन्तु सर्वत्र नही। 'उन्मुक्त' की रचना पाट्य रूप मे हुई है। यू कुछ विद्वानो ने इसे गीति-नाट्य कहा और दिनकर व डा० नगेन्द्र ने काव्य-रूपक। गीति तत्त्व जैसा हम पहले कह आए है, इस कृति मे इतना नहीं मिलता कि इसे गीति-नाट्य मान लिया जाय। नाट्य तत्त्व की भी इस रचना मे परिक्षीणता है। यह तो नाट्य शैली मे लिखा विचारात्मक काव्य है, और इस रूप में नवीन ही नही महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। तत्कालीन सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या को रूपक के माध्यम से आत्मरस-सिक्त करके काव्यात्मक शैली मे इस प्रकार प्रस्तुत करना, कि उसमे विचार की शुष्कता न रहकर काव्य-रस बना रहे, गुप्तजी की समर्थ लेखनी द्वारा ही सम्भव था।

संवर्त्त, महाकाल—सवर्त्त और महाकाल की मूल भावना एक-दूसरे से बहुत भिन्न नही है। दोनों मे मानव-अहकार के पराजय की स्वीकृति है, परन्तु दोनो के विधान और माध्यम मे अन्तर है। एक बात मे दोनो समान है। अमूर्त तत्त्वो, मनोवृत्तियो का इनके कवियो ने मानवीकरण करके इन्हे नाटक के पात्रो के रूप मे प्रस्तुत किया है। ये दोनो कृतियाँ प्रतीक-रूपक है।

'महाकाल' के कथा-निर्माण मे कवि ने विज्ञान और दर्शन दोनो का आश्रय लिया है। विज्ञान इस ब्रह्माण्ड को सकुचन और विस्तारण की क्रिया से निरन्तर गतिशील शक्ति का पुज मानता है। कवि ने आस्तिक दर्शन के आधार पर इसमें चेतना की अवतारणा कर ली है। वह संकुचन और विस्तारण को चेतना की सुषुप्ति और जागृति का क्रम मानता है। इस प्रकार महाकाल चेतना-विशिष्ट शक्ति-पुज का प्रतीक है, और चेतन तत्त्व की जागृति ही सृजन है। महाकाल के गर्भ से चेतना-जागरण और क्रमश सृष्टि का उदय होता है, और प्राणियों मे श्रेष्ठ मानव अपने साथ निर्माण और विनाश की प्रवृत्तियाँ लेकर उत्तरोत्तर विकास करता है। निर्माण और विनाश का यह क्रम प्रकृति के तत्त्वों और मानव की अन्तरात्मा, दोनों मे समान रूप से व्याप्त है। मानव अपनी प्रत्येक विजय के साथ अधिकाधिक अहवादी होता हुआ अन्त मे इसी अहंता मे नष्ट हो जाता है। सब कुछ फिर महाकाल मे विलीन हो जाता है। चेतना भी थकी और पराजित-सी महाकाल मे लय हो जाती है और एक बार विस्तृत शक्ति-पुज निष्क्रिय-सा रह जाता है, जहाँ चेतना सोई है।

'सवर्त्त' के कवि ने धर्म और विज्ञान या हृदय और बुद्धि का संघर्ष दिखाया है। आधुनिक युग के अहंवाद में धर्म और ईश्वर मे आस्था नही। परन्तु इस अहकार का अन्त ज्ञान के द्वारा हो जाता है और मानव का कल्याण अहकार, क्रोध, तृष्णा, हिंसा आदि वृत्तियो से विहीन आध्यात्मिक भावना में निहित रहता है। इसी विचार को प्रतीक-रूपक के माध्यम से कवि ने प्रस्तुत किया है।

वस्तु-सगठन इन दोनो कृतियो मे पूर्णतः मिलता है। समय की परिसीमा के कारण 'महाकाल' की रचना सीमित स्तर पर तीन दृश्यो मे की गई है। एक प्रसंग से दूसरे पर द्रुत गति से कवि बढ़ता गया है—इसके अतिरिक्त इस काव्य की ऊर्जस्वित कल्पना अहवाद से प्रेरित

है अतः सम्पूर्ण कृति में प्राण-शक्ति का संचार है। 'संवर्त्त' की वस्तु-संगठना तो निर्दोष है, परन्तु उसकी रचना अपेक्षाकृत विस्तृत रूप में हुई है। उसमे तीन खण्ड और प्रत्येक में दृश्य है। घटनाओ के इस विस्तारण से प्रभाव में वह घनत्व और सगठन नही जो 'महाकाल' मे है। घटनाओ में उतना दुर्दम वेग भी नही है। नाटक का आरम्भ अहकार के जिस गर्जन-तर्जन से होता है, तथा क्रोध, हिसा आदि पाशविक वृत्तियो के आत्मकथन और आतक-वर्णन मे जो हुंकार और ओज है, वह दूसरे खण्ड मे पृथ्वी और प्रार्थना के कथोपकथन, और तीसरे खण्ड मे धर्म के चिन्तित रूप के वर्णन मे शान्त हो गया है। परन्तु यही अहकार द्वारा धर्म के नाश मे एक बार कथा मे उद्वेलन उत्पन्न होता है, जो अन्त मे ज्ञान द्वारा अहकार नाश के प्रसग तक बना रहता है। स्पष्ट है 'सवर्त्त' का वस्तु-विधान शिथिल या विशृखल तो नही, परन्तु 'महाकाल' के समस्त वस्तु-विन्यास की तुलना मे व्यस्त प्रतीत होता है।

घटनाओ का उनके यथावत् रूप मे इन प्रतीक-रूपको मे कोई महत्त्व ही नही। इन नाट्यो मे महत्त्व है उस अमूर्त प्रतिकार्थ का, जिसकी व्यजना इन घटनाओ द्वारा की गई है।

सवादों मे विषयानुकूल महाप्राणता और कही-कही गर्जन-तर्जन विद्यमान है। 'महाकाल' मे विराट् तत्त्व की प्रधानता है ही, 'सवर्त्त' के प्रथम और अन्तिम खण्ड मे तामसिक वृत्तियो के परिणामस्वरूप होने वाले ध्वस और इन वृत्तियो का आत्मपरिचय है, अत इनके सम्वादो मे प्राण-शक्ति की धारा विद्यमान है। व्यजना और वक्रता, कोमलता और सारल्य इनमे कही नहीं। ध्वन्यात्मक भाषा से निनादित चोट है—प्रत्यक्ष और तीखी।

अभिनेयता की दृष्टि से 'महाकाल' का रेडियो-नाटक के रूप मे श्रोता के मन पर निश्चय ही प्रबल प्रभाव पडेगा। कवि प्रत्येक प्रसग मे ध्वनि प्रभाव-सम्बन्धी सकेत सतर्कता से देता रहा है। "कवि ने अपने विराट अवाक् कल्पना-चित्रो को नाद-गाभीर्य मे मूर्त करने का अत्यन्त सफल प्रयत्न किया है।"[1] 'सवर्त्त' रेडियो-प्रसारण के लिए कुछ लम्बा है। इस प्रकार के विचारात्मक नाट्यो का रगमच पर अभिनय विशेष सफल नही हो सकता। कारण—विचार-प्रधान रूपको मे मानवीय रागात्मकता का तो अभाव होता ही है, अत रागात्मक तादात्म्य के अभाव मे इतनी देर तक विचारो के प्रतीक पात्रो की रगमच पर उछल-कूद से प्रेक्षक अपने धैर्य की परीक्षा देने मे भी धैर्य खो बैठेगा। ऐसे विचारप्रधान पद्य-नाट्यो का पठन, या अधिक से अधिक रेडियो के माध्यम से श्रवण ही सम्भव है, प्रेक्षण नही।

विषय के अनुकूल इन रचनाओ की शैली अत्यन्त समर्थ और महाप्राण शैली है। 'महाकाल' मे तो कवि ने सर्वत्र विराट् चित्र अंकित किये ही है, जहाँ अन्त मे नैराश्य है, वहाँ चेतना की व्यक्त निराशा महाकाल के एकोऽहम् के समर्थ विश्वास मे खो जाती है। विराट् चित्रो की शृखला पचतत्त्वो के सृजन-प्रसंग मे कवि ने आँकी है।

सवर्त्त' मे निर्माण नही, सघर्ष और व्यापार अधिक है। चित्रात्मकता और सप्राणता इतनी नही, फिर भी शैली सजीव है। महाप्राण और सयुक्त वर्णों के प्रयोग से शैली मे झकृति व ध्वनि का निनाद उत्पन्न हो गया है।

---

१. विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १७०

गीति नाट्य और घटनाप्रधान नाटकों की अपेक्षा विचारप्रधान या मनोवैज्ञानिक नाटकों मे जो कथा-सम्बन्धी उलझन, विचारों की बोझिलता और शैली मे कभी-कभी दुरूहता उत्पन्न हो जाया करती है, उससे पाठक का मन प्रभावित होने की अपेक्षा बौद्धिकता से आक्रान्त अधिक होता है। इस प्रकार की उलझन, हम आगामी पृष्ठो मे जिन विचारप्रधान नाट्यो का विवेचन करेगे उनमे मिलती है। 'महाकाल' और 'सक्रान्त'—कथानक की स्पष्टता, सफल वस्तु-विन्यास, समर्थ और प्रभावक्षम शैली की दृष्टि से उन सभी गुणों से युक्त है जो विचारप्रधान नाट्यो मे विरल होते है।

'रजतशिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण'—इन तीनों कृतियो मे कविवर पन्त के ऐसे पद्य-नाट्य सकलित है जिनका स्वर एकान्त बौद्धिक है। 'शिल्पी' और 'रजतशिखर' के नाटक अशतः और सौवर्ण' के पूर्ण रूप मे रेडियो से प्रसारित हो चुके है, उनकी रचना कदाचित् इसी उद्देश्य से की गई थी। कालक्रमानुसार 'रजतशिखर' और 'शिल्पी' पहले की रचनाएँ है, और 'सौवर्ण' बाद की। उत्तरोत्तर इन नाटको की कला मे एक विशेषता के दर्शन किये जा सकते है। प्रौढि-प्राप्त कवि का भावुक मन यद्यपि 'शिल्पी' मे ही बौद्धिक हो गया है, परन्तु 'शिल्पी' से 'सौवर्ण' तक क्रमश. उनका चिन्तनशील कलाकार अधिकाधिक उनकी भावना पर हावी होता गया है और उत्तरकालीन रचनाओ तक पहुँचते-पहुँचते इन नाट्यो मे हृदय-रस बिल्कुल सूख गया है।

इन सभी नाट्यो के कथानक काल्पनिक है, और किसी-न-किसी विचार का प्रतिपादन इनका लक्ष्य। कवि ने 'शिल्पी' के 'विज्ञापन' मे स्वय स्वीकार किया है—"इन रूपको मे वर्तमान विश्व संघर्ष को वाणी देने के साथ ही नवीन जीवन निर्माण की दिशा की ओर इगित करने का प्रयत्न किया गया है।"[1]

'रजतशिखर' मे किसी प्रकार की विज्ञप्ति तो नही है, परन्तु प्रत्येक रूपक के आरम्भ मे कवि ने रूपक का उद्देश्य व्यक्त किया है। पहले तीन रूपक उसी ढग के है जैसे 'शिल्पी' मे। उत्तरार्द्ध के दो रूपको मे विचार-तत्त्व की अपेक्षा भाव की प्रधानता है। इनमें से 'शुभ्र पुरुष' "जागरण मन अधिनायक गाधीजी के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति युग की विनम्र श्रद्धाजलि है।"[2] जिसकी रचना उनकी जन्म-तिथि के अवसर पर की गई थी, और 'शरद-चेतना' प्रकृति-सौन्दर्य का कल्पना-प्रधान रूपक है। 'शुभ्र पुरुष' मे युग की श्रद्धाजलि के रूप मे कवि ने इस महान आत्मा के प्रति अपनी भावनाओ को युग-भावना के रूप मे प्रस्तुत किया है। 'शरद-चेतना' मे वर्णनात्मकता है। विचार-प्रतिपादन, सिद्धान्त-निरूपण का दोनो मे अभाव है। शेष चारो रूपक सैद्धान्तिक है, जिनमे कवि ने किसी-न-किसी रूप मे सदेश देने का प्रयत्न किया है।

इस सकलन के प्रथम रूपक 'रजतशिखर' मे "जीवन के ऊर्ध्व तथा समतल सचरणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। मानव-मन के विकास की वर्तमान स्थिति में ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर दोनो मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया

१. शिल्पी—सुमित्रानन्दन पन्त, विज्ञापन, पृष्ठ ३
२. रजतशिखर—सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ १०५

है।"[1] रजतशिखर इस रूपक में मनुष्य की अंतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है। दूसरे रूपक में कवि ने वस्तुवाद और अध्यात्मवाद के सघर्ष का समाधान करने का प्रयत्न किया है। कवि के शब्दो मे, "फूलो का देश सांस्कृतिक चेतना का धरातल है। प्रस्तुत काव्य-रूपक मे इस युग के अध्यात्म-वाद, भौतिकवाद तथा आदर्शवाद वस्तुवाद-सम्बन्धी संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर उनमें व्यापक समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है एव विश्व-जीवन में बहिरंतर सन्तुलन तथा परि-पूर्णता लाने के लिए दोनो की ही उपयोगिता दिखाई गई है।"[2] तीसरे रूपक 'उत्तर-शती' मे पन्तजी ने समस्या-निदर्शन के साथ आदर्श-कल्पना भी की है। इस रूपक मे उनका उद्देश्य सिद्धान्त-प्रतिपादन नही, भविष्य के विषय मे आदर्श-कल्पना का अकन है। सिद्धान्त इस रूपक मे इस प्रकार व्यग्य है। भविष्य का काल्पनिक और स्वर्णिम चित्र अकित करने का अभिप्राय यही है कि वे ससार में अपने आदर्श को यथार्थ बनते देखने के आकाक्षी है। कवि के अपने शब्दो मे—"विश शती का विश्व सभ्यता के इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा। प्रस्तुत रूपक मे उसके पूर्वार्ध के सघर्ष सग्राम का सक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्ध के आशा कल्याण-प्रद क्रम-विकास की ओर सकेत किया गया है। उत्तरशती मानव-जगत् मे नवीन स्वर्णयुग का समारम्भ कर सकेगी, इसमे सन्देह नही।"[3] 'रजतशिखर' मे अन्तिम विचारात्मक रूपक है 'विद्युत वसना'। यह "स्वाधीनता की चेतना का रूपक है, जो स्वाधीनता दिवस के अवसर पर लिखा गया था। स्वाधीनता ध्येय नही, साधनमात्र है। ध्येय है अन्तरनिर्भरता तथा एकता। इस युग मे जन-स्वतन्त्रता की उपयोगिता लोक-एकता तथा विश्व-मानवता के निर्माण ही मे चरितार्थ हो सकती है; यही इस रूपक का सन्देश है।"[4]

इन सभी रूपकों में कथानक का विन्यास कवि ने नही किया। केवल कुछ काल्पनिक पात्रो का विधान करके बिना किसी पारस्परिक सम्बन्ध के उन्हे सवाद में प्रवृत्त किया गया है। ये पात्र भी विशेष व्यक्ति नही टाइप हैं। वे या तो किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है अथवा किसी विचारधारा के प्रतीक है। एक क्षीण-सा कथासूत्र प्रथम रूपक 'रजतशिखर' मे अवश्य मिलता है।

'शिल्पी' के पहले रूपक 'शिल्पी' में कलाकार के अन्त संघर्ष का अकन करने का प्रयत्न कवि ने किया है। आरम्भ 'शिल्पी' के अर्न्तद्वन्द्व के वर्णन से होता है—वह ऐसा सत्य अकित करने का आकाक्षी है जिसमे निखिल चेतन युग-वैभव, जन-आकाक्षाओ को प्रतिबिम्बित करने का गुण वर्तमान हो। इसी समय दर्शको का आगमन होता है, और होता है विभिन्न मूर्तियो का वर्णन और कला का साधुवाद। इसी बीच एक श्रेष्ठिपुत्र को मुरलीधर की मूर्ति का विक्रय किया जाता है। दूसरे दृश्य मे मुरलीधर की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा के अवसर पर उपस्थित दर्शको के बीच मूर्तिपूजा के प्रश्न को लेकर विवाद उठ खडा होता है। 'शिल्पी' इस अवसर पर कला के आदर्श का प्रश्न उठाकर, जीवन के विगत मूल्यो मे परिवर्तन की आकाक्षा करता हुआ उन दोनों

१. रजतशिखर, पृष्ठ ३
२. वही, पृष्ठ ४७
३. वही, पृष्ठ ७७
४. वही, पृष्ठ १२१

पक्षो का समाधान कलावादी तर्कों से कर देता है। तीसरे दृश्य मे नवीन जनवादी आदर्शों की प्रतीक कल्पना को प्रस्तर पर अकित करने के प्रयास में बारम्बार असफल, अपनी असमर्थता और उद्‌भ्रान्ति पर स्वयं खिन्न कलाकार, अन्त में सफल हो जाता है। इसी समय दर्शको के बीच श्रमिक और कृषक वर्ग के जननायक का जनसमूह सहित आगमन होता है। यह जनसमूह कला के रूढ मूल्यो—अतिशय कल्पनाविलास, और अतृप्त वासना की अभिव्यक्ति का सस्वर विरोध करता हुआ, कलाकार की नूतन सृष्टि पर मुग्ध हो जाता है। उस कृति के जनवादी आदर्शो की व कला के प्रयोजन की व्याख्या कलाकार के द्वारा कराकर नाटक का अन्त होता है।

इस कृति के दूसरे नाट्य 'ध्वस-शेष' का स्वर कुछ और बौद्धिक हो गया है। इस नाट्य का लक्ष्य है—जीवन के भौतिक मूल्यो पर आध्यात्मिक मूल्यो की स्थापना। पहले दो दृश्यो मे आणविक आविष्कारो द्वारा भीषण ध्वस, और इसी बीच सघर्ष-रत कुछ श्रमिक व सैनिक-वर्ग के मनुष्यो द्वारा नव-निर्माण का सकल्प वर्णित है। तीसरे दृश्य मे दस वर्ष बाद कुछ लोग नव-निर्माण के लिए खोदते हुए विभिन्नाकृतियो की प्रतिमाओ को पाकर उन्हें विगत मूल्यो और आदर्शों का प्रतीक मानकर फिर दबा देते है। इस दृश्य की सभी घटनाओं का महत्त्व उनके प्रतीकार्थ मे है। इन मूर्तियो मे कवि ने उन आदर्शों की प्रतिष्ठा की है जिन्हे वह ध्वस्त होते देखना चाहता है। पूजीवाद, वर्ग-वैषम्य की अनुकृति नारी, भौतिक विज्ञान, जीर्ण धार्मिक अधविश्वासी रूढि-रीतियाँ, युग को खण्ड-खण्ड मे विभाजित करने वाली राजनीति और अर्थनीति। इनमे से विज्ञान के ध्वसक रूप का वह विरोध करता है और उसे निर्मायक रूप मे देखने की कामना। तभी तिमिर-क्षय और नवल चेतना के उदय मे, किरणो से दीप्त आशाओ के बीच, अन्तर के प्रकाश से चिर प्रकाशित संस्कृति की आभादेही प्रतिभा का अवतरण होता है। चौथे दृश्य मे एक कल्पित पात्र-'द्रष्टा' द्वारा आश्रम मे नवयुग का वर्णन और आवाहन और तभी लोक-सत्ता के प्रतिनिधि, सद्‌भावो से प्रेरित सैनिको का आगमन होता है। द्रष्टा और इन सैनिको के प्रतिनिधि के बीच वार्ता मे लोकतात्रिक मूल्यो की प्रतिष्ठा, नव-जीवन के आदर्शों की व्याख्या, विगत राजनीतिक और आर्थिक तत्रो पर मानव-तत्र की प्राण-प्रतिष्ठा पर सब आश्वस्त और आह्लादित होते है।

'शिल्पी' का तीसरा और अन्तिम नाटक कवि के शब्दो मे 'सौन्दर्य चेतना का रूपक' है। प्रथम दृश्य मे एक कलाकार किसी अप्सरा के सम्मोहन मे अपने आपको बँधा पाता है। इस सम्मोहन के प्रति स्वय अवाक्, वह यह भी निर्णय नही कर पाता कि इसमे सत्य और भ्रम का अंश कितना-कितना है। मन मे इस नये सौन्दर्य-ज्वार के उठने से ज्ञान के दीप इस चचलता मे बुझते प्रतीत होते है। सुनहले आदर्श, निष्प्रभ फीके पडते जान पडते है। अप्सरा के स्वरूप के विषय मे उससे सवाद और फलस्वरूप मानसिक सघर्ष के उदय से इस दृश्य का अन्त होता है। द्वितीय दृश्य मे कलाकार का मानसिक सघर्ष व्यक्त है। ऐसा प्रतीत होता है मानो बाह्य और भीतर के जग मे घोर असगति उत्पन्न हो गई है—सशय-तम मे कोई पुकारता प्रतीत होता है। कुछ परुष और कोमल ध्वनियो मे युग-चेतना की पुकार सुनाई पडती है। युग की वर्तमान व्यवस्था की आलोचना और, कलाकार-द्वारा नवीन चेतना के विधान की प्रतिष्ठा के सकल्प से दृश्य का अत होता है।

तृतीय दृश्य अप्सरा के द्वारा निज की शिव-सुन्दर रूप मे घोषणा से आरम्भ होता है। कलाकार द्वारा नए चैतन्य और नए अध्यात्म की सूचना, सीता-स्वयवर के रूपक से जीर्ण मान्यताओं के जर्जर चाप को खडित कर स्वयंवरा धरती के नव जीवन की श्री शोभा वरने को आकुल मन का वर्णन, और जगत्, जीव, सत्य आदि दर्शन के विषयों की अतिबौद्धिक व्याख्या की जाती है। चतुर्थ दृश्य मे नवीन सौन्दर्य-चेतना के स्वरूप का वर्णन, जन-मंगल की कामना, कलाकार का वर्तमान स्थिति पर आक्रोश और अनास्था व्यक्त है। ऐसा आभास होता है मानो प्राण-चेतना अधोमुखी हो अवचेतन के तम मे लिपटी रेग रही है तथा जीवन को शोभा-मडित करने की वाछा है। अन्त मे प्राण-चेतना के गीत मे जीवन मे मगल-उत्सव, सुख-सुषमा, नव-विकास और प्रगति के आवाहन से नाट्य का उपसहार होता है।

'रजतशिखर' और 'शिल्पी' का कवि 'सौवर्ण' मे समस्याओ और उनके समाधानों तथा आदर्श की कल्पनाओ से और भी त्रस्त है। 'रजतशिखर' और 'शिल्पी' के नाटचो मे उसने अपना क्षेत्र सीमित रखकर, किसी पक्ष-विशेष की समस्या का समाधान प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। 'सौवर्ण' के पहले रूपक 'सौवर्ण' मे ही उसकी कल्पना और बुद्धि उन्मुक्त विहार कर जीवन के अनेक क्षेत्रो मे सचरण करने लगी है। अत वे देश, काल, क्षेत्र किसी भी दृष्टि से कोई प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं करते। क्षेत्र का यह विस्तारण चिन्ताधारा की दृष्टि से विकास का द्योतक है, परन्तु नाटच-कला की दृष्टि से विशेष शुभ नही हुआ। 'सौवर्ण' मे कवि ने वर्तमान जीवन की विडम्बना, विगत युगो की रूढिवादी सभ्यता, उसके दोष, उनका नाश, पश्चिमी और पूर्वी सभ्यताओ का पारस्परिक वैषम्य अकित करके आदर्श स्वप्निल युग की स्थापना की है। नाटच का समापन इसी आदर्श के मानवीकरण से हुआ है।

'सौवर्ण' का दूसरा नाटक 'स्वप्न और सत्य' आदर्श और वास्तविकता के बीच युग-संघर्ष का द्योतक काव्य-रूपक है। एक कलाकार के प्राकृतिक सुषमा का चित्राकन करते समय दो आगत मित्रो के बीच कला के उद्देश्य को लेकर विवाद से सघर्ष का सूत्रपात होता है। मित्रो के जाने पर उनके तर्कों को शब्दाडम्बर, नीरस और बोझिल मानकर कलाकार विश्राम करने के लिए सो जाता है, और तब कलाकार का भावाक्रान्त मन स्वप्नावस्था मे अन्तर्जगत् के सूक्ष्म प्रसारों मे विचरण करता है। अर्धजाग्रतावस्था में अनेक प्राचीन महाकवियों और महापुरुषों से मनसा-साक्षात्कार, स्वर्गलोको के अनेक सूक्ष्म स्तरो का आभास और तदुपरान्त दु स्वप्न-छायाधकार-पूर्ण लोको मे जीवन की समस्त कुत्सा, विडम्बना, घृणत्व, अमानुषता और दूषित वातावरण का साक्षात्कार, जिससे कला पहले अपरिचित थी—अकित है। तदुपरान्त स्वप्न-चित्र-परिवर्तन के साथ लोक-जागरण का उत्सव-गीत और कलाकार के द्वारा आदर्श जन-समाज की सुखद कल्पना—इसी बीच रण का कोलाहल—इस शोषण, मानव-उत्पीडन के प्रति कलाकार क्षुब्ध—मन मे सघर्ष के भाव और अन्धकार का उदय—क्रमशः आशा और उल्लास में पर्यवसान। इस नाटच मे सघर्ष अधिक है, समाधान और आदर्श कम।

इन सभी नाटचों को वस्तु-सगठन की दृष्टि से बहुत सफल नही माना जा सकता। शिल्पी' मे अन्य रचनाओ की अपेक्षा वस्तु-विन्यास स्पष्ट और सगठित है। अन्य कृतियों मे विभिन्न घटनाएँ और प्रसग परस्पर उचित कार्य-कारण-सम्बन्ध मे आबद्ध नही। वस्तु-विन्यास

में सहज क्रम का सर्वथा अभाव है। इसका एक कारण है—कवि यदि विचारों को प्रतीकों के माध्यम से अथवा रूपक-विधान या मानवीकरण के द्वारा प्रस्तुत करता, तथा उसमें विभिन्न प्रसंगों को सुविन्यस्त रूप देता तो इन कृतियों के वस्तु-विधान में जटिलता उत्पन्न नहीं होती। कवि ने कुछ विचारों की अभिव्यक्ति के लिए शरीरधारी पात्रों की कल्पना की है। कतिपय कल्पित पात्रों का रूप अलौकिक व निराकार है, व कहीं विचारों का मानवीकरण किया गया है। कलाकार, शिल्पी, जनसमूह, जननायक आदि पहले प्रकार के, तथा अप्सराएँ, देवता, स्वर्दूत, स्वर्दूती आदि दूसरे प्रकार के अन्तर्गत आते है। मनश्चेतना, प्राणचेतना, युगचेतना आदि अमूर्त तत्त्व है जिनका मानवीकरण हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ घटनाएँ स्वप्न, अवचेतन मे मानसिक साक्षात्कार आदि के रूप मे जोड दी गई है। सब कृतियो मे सघर्ष भी बहुत स्पष्ट नही है। कवि प्राय. एक पक्ष का दोष-निरूपण करता हुआ क्रमश' आदर्श की स्वप्निल कल्पना मे प्रवृत्त हो जाता है। दो विरोधी पक्षो मे उचित सघर्ष-व्यवस्था के उपरान्त एक पक्ष की तर्क-सम्मत कारणो से विजय और दूसरे की पराजय का चित्रण वह नही करता। 'रजतशिखर' मे कुछ दूर तक विचारों के सघर्ष को अकित करने का प्रयास किया गया है, परन्तु इस सघर्ष मे भी विशेष सजीवता नही है। पर्याप्त तनाव उत्पन्न होने से पहले ही सघर्ष का उपशमन हो जाता है। एक प्रसग से दूसरे प्रसग पर कथा के विकास मे सहज क्रम व स्वाभाविकता की रक्षा नही हो पाती। विचारों की अभिव्यजक कही आन्तरिक और कही बाह्य घटनाओ का घटाटोप इन नाटचो मे उलझे रूप मे वर्तमान है। घटनाओ की दृष्टि से 'रजतशिखर' मे स्पष्टता है। उसमे संकलित नाटको मे प्रसगों का घटाटोप, उलझन या अस्पष्टता नही, परन्तु प्रसगो मे कार्य-कारण सम्बन्ध तथा उचित विन्यास कही नही मिलता। काल्पनिक पात्रों व प्रसगो की उदभावना विचारों के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से कर ली गई है। उत्तरकालीन रचनाओ मे विशेषकर 'सौवर्ण' में, इतने विविध क्षेत्रो से समस्याएं उठायी गई है कि कथानक अतिशय बौद्धिक होकर उलझ गया है। स्वप्न और अवचेतन मे घटना-चित्रण की शैली भी नाटकीयता की दृष्टि से बहुत शुभ नही हुई। कारण—इस प्रकार की घटनाओ मे स्पष्टता और स्थिरता नही है। ऐसे विषय और इस रूप मे उनकी प्रस्तुति नाटक और विशेषकर पद्य-नाटच मे उचित प्रतीत नही होती। वस्तु-संगठन की दृष्टि से 'शिल्पी' सबसे अधिक सफल है।

घटनाओ का स्वरूप इन काव्यो मे कही मूर्त है—जहाँ वे विचार के उद्दीपन, और प्रेरणा के रूप मे आई है, परन्तु अधिकाश प्रसगो का स्वरूप अमूर्त और बौद्धिक है। कही-कही बौद्धिकता इतनी बढ गई है कि इन नाट्यो मे पद्य के माध्यम से दर्शन और मनोविज्ञान की व्याख्या की गई प्रतीत होती है। 'अप्सरा' मे कलाकार के मुख से सत्य, जीव, और ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या किसी दार्शनिक प्रसग से कम नही—

कलाकार— **ईशावास्यमिद सर्व कहते द्रष्टा ऋषि**
उपनिषदों के, जगती में जो कुछ अक्षय है
वह भगवत् सत्ता है! जग की निखिल वस्तुएँ
ईश्वरमय है, वही सत्य है सार रूप में!
पर विकास प्रिय भू जीवन के द्वन्द्व क्षेत्र म

ईश्वर के सांप्रत स्वरूप से उसके भावी
महत् रूप ही का आकांक्षी है मानव मन।
जगत् भागवत् जीवन भिन्न पदार्थ नहीं है,
ईश्वर का ही अंश जगत, आरोहण पथ पर,
जिसका पूर्ण प्रकारांतर होना निश्चित है।[1]

इसी प्रकार सक्रिय अवचेतन, अर्धचेतन और स्वप्नावस्था के चित्र और विचार-शृंखला अंकित करने में कवि ने मनोविज्ञान का आश्रय लिया है। ऐसे बौद्धिक विषय नाट्य विधाओं के लिए बहुत उपयुक्त नहीं होते। उनके ग्रहण और आस्वादन में जिस बौद्धिक व्यायाम की अपेक्षा तथा रागात्मक सम्बन्ध का अभाव होता है, वह हमें बौद्धिक परितोष प्रदान कर सकता है, अनुभूतिजन्य हार्दिक आनन्द नहीं। 'रजतशिखर' की घटनाएँ कहीं-कहीं वस्तुगत हैं। ऐसे प्रसंगों में शैली भी वर्णनात्मक है और अनुभूति की प्रगाढता भी है। अमूर्त-चिन्तन का कैवल्य 'रजत-शिखर' में संगृहीत नाटकों में नहीं। कुछ प्रसंगों में पात्र ठोस यथार्थ अनुभव के धरातल पर पाँव जमाए खड़े प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण देखिये—

युवक— **कितनी बार शरद के रेखा शशि की मैंने**
एक और मुख की रेखाओं से तुलना कर
उसे सदोष बताया है, तुमको कूई के
अपलक नयनों का विस्मय अर्पित कर सादर ।
और तुम्हारी वेणी के चिर कोमल तम में
गूंथ कभी जब मधु के मुकुलों की सद्य. स्मिति
मैं मन ही मन तुम्हें हृदय स्वप्नों के मुकुलित
प्रीति पाश में भर लेता था, तब प्रसन्न मन,
तुम अनिमेष दृगों से मेरी ओर देख कर
मन्द हास्य से निज गोपन स्वीकृति देती थीं।[2]

विषय के स्वरूप के कारण इनमें से अधिकांश नाट्य-कृतियों के संवादों में नाटकोचित चाचल्य और संक्षेपण का अभाव है। 'शिल्पी' के अतिरिक्त अन्य कृतियों के अधिकांश संवाद बड़े-बड़े आत्मसंलाप से हैं। उनमें कहीं-कहीं सजीवता है, परन्तु उनके स्वर में अधिकांश स्थलों पर व्याख्या-विश्लेषण है। इसके अतिरिक्त इन संवादों की व्यावहारिकता व स्वाभाविकता एक विशेष वर्ग के पाठक तक ही सीमित हो सकती है, वह पाठक मात्र के प्रेक्षण या श्रवण का विषय नहीं हो सकते। इन संवादों का स्वरूप बहुत कुछ भाषणात्मक है। पात्रों के बीच में सर्वत्र संवाद का क्रम उत्तर-प्रत्युत्तर का भी नहीं है। एक विचार-क्रम को अनेक स्थलों पर एक पात्र से लेकर दूसरा पात्र आगे बढाने लगता है। इन संवादों को संवाद इसीलिए कह सकते हैं कि इनमें एक से अधिक पात्र बोलते हैं, अन्यथा इनका स्वर कहीं उपदेशात्मक, कहीं व्याख्यात्मक और कहीं मनो-

---

१. शिल्पी—सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ १०५
२. रजतशिखर—सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ १५

विश्लेषणात्मक हो गया है। अधिकाश स्थलो पर नाटकीयता की दृष्टि से ये सवाद बहुत लम्बे है। 'शिल्पी' और 'रजतशिखर' के नाट्यो मे अवश्य कुछ छोटे, सजीव और चुस्त सवादो की योजना मिलती है। जहाँ-जहाँ कार्य-व्यापार मनस्थ या प्रज्ञास्थित है और व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व तक सीमित है, वहाँ कवि ने आत्मविश्लेषणात्मक स्वगत-कथन का प्रयोग किया है। इस स्वगत का रूप उद्‌गीतिमय या आत्माभिव्यजक नही विश्लेषणात्मक और आत्मचिन्तन-प्रधान है।

शैली की सामर्थ्य का जहाँ तक प्रश्न है यदि नाट्य गुण से निरपेक्ष रहकर इन कृतियो की शैली का विवेचन किया जाय, तो चिन्तन-प्रधान काव्य की शैली मे जो गुण वर्तमान होने चाहिएँ वे अपने चरम उत्कृष्ट रूप मे इन कृतियों में उपलब्ध है। मनोवैज्ञानिक और अमूर्त विषय को शब्दो मे इतने समर्थ रूप मे बाँधना बहुत दुष्कर कार्य है। कवि ने अनेक भाव और विचार-सत्यो को अधिकारपूर्वक अकित किया है। सभी कृतियो की शैली मे बौद्धिक काव्य के अनुरूप समास गुण का परिचय मिलता है। कवि ने अनेक विचारो और कल्पनाओ का समाख्यान इसी शैली मे किया है।

कवि की कला समय की प्रगति से प्रभावित हुई है। उसकी विचारधारा का अन्तर-सौन्दर्य और भावुकता की बौद्धिकता मे परिणति—अप्रस्तुत-विधान मे स्पष्ट है। भारतीय ग्राम का, एक समय "मरकत डिब्बे-सा" कहकर चित्राकन करने वाले कवि के आदर्श अब बदल गये है—

धीरे सोये ग्राम जग रहे जीवन चेतन,
नव शोभा से लिपे-पुते जन संस्थानों-से
सौम्य शील संस्कारों के उर्वर निकुज ये
लोक चेतना स्पर्शों, यत्नों से अनुप्राणित।[1]

पन्तजी की शैली जीवन के सुन्दर-कुरूप, कोमल-विराट्, अमूर्त और मूर्त सभी प्रकार के क्षेत्रो मे समान रूप से गतिमान है। वे समानाधिकार से हर प्रकार के वर्णन करते है। इन नाट्यो मे कवि ने जिन गीतो की रचना की है कही वे विशेष सुन्दर है परन्तु अधिकतर बौद्धिकता से बोझिल। इन नाट्यो को पढकर कामना होती है—

बौद्धिकता मरु में लुप्त हो गया उत्स भाव का!
इसे इन्द्रियों के स्वर्णिम पट में लिपटाओ
रूप गन्ध रस से झंकृत भूषण पहनाओ,.....
इसे खुले द्वारों से, भाव पगों से गुजित,
जन भू के विस्तृत पथ पर चलना सिखलाओ।

वास्तव में पन्तजी के काव्य मे कला की अपेक्षा शिल्प अधिक है। वे नाटकीय प्रसग-योजना, वस्तु-विन्यास, प्रबन्ध-विधान आदि मे उतने पटु नही, जितने अश-अश वर्णन मे, सुन्दर अप्रस्तुत-विधान मे, काव्य की नक्काशी और जड़ाई-कढाई में कुशल है। अतः उनके काव्य मे प्रसग-प्रसग में जो सुन्दर शिल्प, समर्थ अभिव्यजन मिलता है वह उसके समग्र रूप मे नही। इन विचार-

---

१. रजतशिखर, पृष्ठ ४०

प्रधान नाट्यो तक आते-आते जनवादी मूल्यो की स्वीकृति के कारण उनकी कला मे कोमल, सूक्ष्म, मधुर और मसृण के लालित्य के स्थान पर, वर्णन-सामर्थ्य, शक्ति, चिन्तन और सन्देश बढ चला है। नाट्य की दृष्टि से ये कृतियां उतनी सफल नही जान पडती जितनी पाठ्य साहित्य की दृष्टि से सुन्दर और उपयोगी। हम यह कहकर इन कृतियो की कला का अवमूल्यन नही करना चाहते। हमारा निवेदन केवल इतना ही है कि इन रचनाओ मे जितना काव्यत्व है उतनी नाटकीयता नही।

गीति-नाट्य

जैसा शब्द से स्पष्ट है इस काव्य-विधा मे गीति और नाटक के तत्त्वो का विशेष विधि से मिश्रण किया जाता है। बात कुछ विचित्र है—गीति-काव्य के लिए आत्मगत व नाटक के लिए वस्तुगत दृष्टि अपेक्षित है। गीतिकार की वृत्ति अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित, भावप्रवण व अन्तर्मुखी होती है, तथा नाटककार का दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ, इतिवृत्तात्मक और बहिर्मुख होता है। इस प्रकार इन दोनो विधाओ के मूल दृष्टिकोण, अतः सृजन-प्रक्रिया भिन्न होने के कारण दोनो के योग से उद्भूत विधा मे एक विरोधजन्य चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। बाह्याकार की दृष्टि से भी गीत किसी विशेष मन.स्थिति या मनोवेग का सहज व अन्त.स्फूर्त उच्छ्लन होने के कारण आकार मे सक्षिप्त होता है। इस प्रकार के भावावेग मे प्रायः स्थैर्य का अभाव होता है। इससे भिन्न नाटक की रचना किसी क्रमबद्ध उचित योजना (proper planning) और प्रक्रिया (process) से होती है, परन्तु गीति-नाटक मे जब उपर्युक्त विधाओं का मिश्रण किया जाता है तो गीति-काव्य का अन्तर्मुखी भावात्मक दृष्टिकोण, नाटक का कथात्मक सस्पर्श और समाख्यान (narration) के स्थान पर दृश्य काव्य की प्रस्तुति (presentation) की शैली अपना ली जाती है। नाटक मे दृश्यात्मकता के लिए शैली मे प्रदर्शन का गुण तीन रूपो मे लाया जाता है—

(क) कार्य-व्यापार की प्रस्तुति अर्थात् घटनाओ का वर्णन न करके प्रदर्शन।

(ख) सवादो के द्वारा कथा-विकास और

(ग) आत्माभिव्यक्ति के लिए स्वगत का प्रयोग।

गीति-नाट्य मे पहली का नही दूसरी और तीसरी विशेषता का उपयोग होता है। इसका कारण गीति तत्त्व की प्रमुखता है। गीतिकाव्य मे कार्य की अपेक्षा भाव की प्रमुखता होती है, अतः जब गीति के साथ नाटकीयता का संयोग होता है तो गीतिकाव्य की भावमयता पे नाटक के सघर्ष के मिलने से कार्य का रगस्थल बदल जाता है और गीति-नाट्य मे स्वभावतः बाह्य सघर्ष के स्थान पर आन्तरिक सघर्ष का विधान होता है। आन्तरिक सघर्ष से हमारा अभिप्राय एक भावना के दूसरी भावना से सघर्ष अथवा अन्तर्द्वन्द्व से है। जहाँ कही बाह्य परिस्थितियो मे सघर्ष का चित्रण भी होगा वहाँ भी वह आन्तरिक द्वन्द्व को तीव्रतर बनाने अथवा आन्तरिक द्वन्द्व के कारण प्रस्तुत करने के लिए होगा। इस प्रकार अन्तर्मुखी दृष्टिकोण और भावमयता, गीति-नाट्य को पद्यबद्ध नाटक से पृथक् करती है, अतः नाटक और गीति-नाट्य मे अन्तर केवल माध्यम का नही दृष्टिकोण और शैली का है। गीति-नाट्य पद्यबद्ध नाटक का

गीति-विशिष्ट रूप है। अँगरेजी साहित्य मे कवि ब्राउनिंग द्वारा रचित गीति-नाट्यो मे भी यही विशेषताएँ मिलती है, अर्थात् उनका विषय मानव का भाव-जगत् है और उनका अकन नाट्य शैली में किया गया है। हिन्दी के गीति-नाट्यो पर ब्राउनिंग और स्वीनबर्न आदि के गीति-नाट्यो का प्रचुर प्रभाव पडा। आग्ल-साहित्य मे भी यह विधा परम्परागत या रूढ नही, आधुनिक युग के कवियो द्वारा आविष्कृत नवीन विधा थी।[1]

प्रचुर भावमयता होने पर भी दृश्यात्मकता गीति-नाट्य के लिए अनिवार्य है। गीति-नाट्य मे कवि अपनी अनुभूति को पात्रो के माध्यम से दृश्य काव्य का सहारा लेकर संजोता है। यह अनुभूति व उसके अपने मन का अन्तर्द्वन्द्व अन्यान्य पात्रो के रूप में विभक्त होकर नाटकीय कथोपकथन के सहारे व्यक्त होता है। यह कथोपकथन गीतिमय होता है। परन्तु गीति-नाट्य मे पर्याप्त भावमयता होने पर भी उसे 'भाव नाट्य' कहना उचित नही—

"जीवन के ऐसे व्यापार जो सूक्ष्म है, कोमल है, भावात्मक है और मर्मस्पर्शी है यहाँ शब्दो का सहारा लेकर मूर्त रूप धारण करते है। उनमे भावो की अन्विति भी उसी भाँति आवश्यक होती है जैसी गीतिकाव्य के लिए अपेक्षित होती है। ...कहना न होगा कि भावावेश के साथ 'गीति-नाट्य' का प्रवाह आगे बढता है। उनमे भावो के आवेग को जितना महत्त्व दिया जाता है उतना कथा को नही। इसलिए गीति नाट्य-लेखक उदयशकर भट्ट ने अपने गीति-नाट्यो को 'भाव नाट्य' कहकर पुकारा है और उसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि भाव नाट्य एक प्रकार की मानसिक उथल-पुथल मचाने वाली भावधारा को लेकर चलता है और अपनी शृखलाएँ लम्बे-लम्बे छोरो से जोडकर समन्विति को ग्रहण करता है। प्रकृति और गीति उसके आलम्बन है और विचार उद्दीपन, इसलिए परिणति रस है। कायिक व्यापार उसमे नही होते, यदि होते है तो बहुत थोड़े। केवल मानसिक चिन्तन का सतत प्रदर्शन होता है।"[2]

हम इस काव्य-विधा को भाव नाट्य कहने के पक्ष मे नही है। 'गीति-नाट्य' शब्द मे काव्य-रूप की विषयगत विशेषताओ को स्पष्ट करने के साथ शैलीगत विशेषताओ को भी स्पष्ट करने का गुण है। भाव नाट्य कहने के लिए जो तर्क भट्टजी के मत के आधार पर डा० दुबे ने दिये है उनका उत्तर यह कहकर दिया जा सकता है कि भावमयता का भाव 'गीति' शब्द मे और भावान्विति एव दृश्यात्मकता का भाव 'नाट्य' शब्द मे अन्तर्भूत है। इसके अतिरिक्त 'गीति' शब्द इस विशेषता की ओर भी सकेत करता है कि इन नाट्यो की नाटकीयता—गीति शैली मे सवादो से व्यक्त होती है। 'भाव' शब्द से रचना-शैली और माध्यम का स्पष्ट निर्देश नही होता।

---

1. The significant thing about Browning is that he invaded still another province in the interests of poetry; he showed that the psychological analysis of the motives underlying human conduct was full of dramatic possibilities, and because the atmosphere of such an analysis could not be conveyed by the accepted poetic action, he invented a new poetic diction of his own

Phases of English poetry—Herbert Read, page 152.

२. काव्यरूपो के मूलस्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दुबे, पृ० ५३५

यह ठीक है कि भावपूर्ण उच्छ्वास का उचित माध्यम गीतिकाव्य ही होता है। परन्तु गद्य के माध्यम से भावमय रचना न हो सकती हो, ऐसा कोई नियम नही। गद्य भी अत्यन्त भावात्मक शैली में लिखा जा सकता है। भावमय रचना के लिए गीति का आवरण अनिवार्य नही, परन्तु गीतिकाव्य के लिए भावप्रवण दृष्टि अनिवार्य है—इसलिए हमारे मत मे 'भाव नाट्य' की अपेक्षा 'गीति-नाट्य' शब्द इस विधा की विशेषताओ को अधिक स्पष्ट और व्यापक रूप मे व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त भट्टजी ने स्वय स्वीकार किया है कि—"जहाँ गीति-पद्य मे स्वरसभावो का सचालन होता है, उसे गीति-नाट्य कहते है। गीतिकाव्य भाव नाट्यो का बहिरग है।"[1] हम उन्ही के कथन का विपर्यय करके यदि कहे कि भावमयता गीति-नाट्य का अन्तरग है तो हम इस काव्य-रूप की अन्तरग और बहिरग दोनो विशेषताओ की ओर एक ही शब्द 'गीति-नाट्य' से सकेत कर सकेगे। 'भाव नाट्य' मे ऐसा सम्भव नही है। जब हम किसी काव्य को गीति-नाट्य कहते है तो स्पष्ट हो जाता है कि हमारा अभिप्राय ऐसे काव्य-रूप से है जो :—

(क) अनिवार्यत. पद्यबद्ध है।
(ख) दृश्य काव्य की विशेषताओ से युक्त है।
(ग) दृष्टिकोण भावमय—अतः कार्य-व्यापार और सघर्ष बाह्य न होकर अन्तरग है।
(घ) माध्यम पद्य का भी विशेष प्रकार गीतिकाव्य है, अर्थात् उसमे गीतिमय सवाद-योजना है।

एक बात और, गीति-नाट्य मे कथोपकथन-सम्बन्धी एक व्यावहारिक विशेषता की ओर श्री भट्ट ने सकेत किया है, और इस सम्बन्ध मे उनसे मतभेद का प्रश्न नही उठता—

"यह भाव नाट्य मानव के भाव-जगत् से सम्बन्धित होने के कारण सवादो मे उच्च-स्तर का विशद मानसिक विश्लेषण करते है। यह विश्लेषण बहुमुखी होना सभव नही। भाव अपने मे एक अदृष्ट क्रिया है। अतः उसे साधारण रूप मे अल्प शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता। एक भाव के उत्तर मे दूसरा भाव समुपस्थित किया जाता है, जिनके व्यक्तीकरण मे शब्दो का लोभ किया ही नही जा सकता, अतः भाव नाट्यो या कल्पना-प्रधान नाटको मे सम्वाद कभी-कभी लम्बे होने स्वाभाविक हैं।"[2]

जहाँ कवि की दृष्टि वस्तुनिष्ठ है वहाँ उसकी अभिव्यक्ति मे सक्षिप्तता सभव है, परन्तु अनुभूतियो या भाव-चित्रो के मानस-बिम्ब अकित कराने के लिए व्याख्या की अपेक्षा है। उदाहरण लीजिए, प्रकृति के किसी पदार्थ का वर्णन करने के लिए उसका मानस-चित्र एक शब्द से अकित किया जाता है। 'नदी' और 'निर्झर' का अन्तर इन दोनो शब्दो के प्रयोग मात्र से हमारे मन मे अकित हो जाता है, परन्तु 'श्रद्धा' और 'भक्ति' का अन्तर स्पष्ट करने के लिए व्याख्या की अपेक्षा है। किसी पशु-पक्षी का नामोल्लेख हमारे मन मे तत्सम्बन्धी धारणा स्पष्ट कराने व बिम्ब-ग्रहण कराने के लिए पर्याप्त है। ऐसा अमूर्त भावो के विषय मे नही होता। 'कमल' और

१. विश्वामित्र और दो भाव नाट्य—उदयशकर भट्ट, भूमिका, पृ० १
२. वही, पृष्ठ २

'करुणा' इन दो शब्दो से पाठक के मन मे उत्पन्न प्रतिक्रिया सर्वथा भिन्न होगी। एक से वह बिम्ब-ग्रहण करेगा और दूसरे से अर्थ-ग्रहण और इस अर्थ को जितना अधिकाधिक स्पष्ट किया जायगा उतनी ही व्याख्या और विस्तार होगा। भावो की सक्षिप्त अभिव्यक्ति केवल एक ही मार्ग से हो सकती है—व्यजना के प्रयोग-द्वारा। ऐसा करने से अभिव्यजना मे समास-गुण व अर्थ-गौरव की सृष्टि सभव है, परन्तु गीति-नाट्य में उसकी प्रदर्शनीयता के कारण ऐसा भी नही किया जा सकता। शैली मे व्यजना और वक्रता की जितनी अभिवृद्धि होगी उतनी ही वह उसकी प्रेषणीयता मे बाधक होगी और दृश्य काव्य मे प्रसादगुण तथा प्रेक्षक को तत्काल अर्थ-ग्रहण कराने की सामर्थ्य अन्य काव्य-रूपो की अपेक्षा अधिक वाछनीय है, क्योकि उसमे रुककर समझने का अवकाश प्रेक्षक को बिल्कुल नही होता। अपवाद की स्थिति मे वह प्रबन्ध के धारा-प्रवाह कार्य-व्यापार को समग्र रूप से ग्रहण नही कर पाएगा, अतः रस-ग्रहण मे बाधा होगी। इसलिए गीति-नाट्य मे कथोपकथन प्रायः लम्बे होते है। इसका एक कारण और है—साधारण नाटक मे सघर्ष की आशिक अभिव्यक्ति कार्य-व्यापार या कायिक चेष्टाओ द्वारा भी की जाती है, परन्तु गीति-नाट्य मे बहिरग कार्य-व्यापार के अभाव मे समस्त अन्तर्द्वन्द्व वाचिक रूप मे ही व्यक्त होता है।

अभिनेयता की स्वीकृति सभी ने गीति-नाट्य मे अनिवार्य रूप से की है—"नाटक शब्द का सम्बन्ध ही नाट्य-अभिनन्दन से है। यह भाव नाट्य रगमच पर सफलता के साथ खेले जा सकते है। पर इनके लिए इनके उपयुक्त रगमच तथा इस स्तर के भावुकता-प्रवण दर्शक हो।"[1] इन गीति-नाट्यो मे इसीलिए नाटकीय सकेत अवश्य दिये जाते है, यद्यपि विस्तृत नही। आकार भी इनका छोटा ही होता है। प्राप्त गीति-नाट्यो मे से अधिकाश मे चार या पाँच से अधिक दृश्यो की योजना नही की गई। गीति-नाट्य मे पात्रो की बहुलता भी प्रायः नही होती। अदृष्ट कार्य-व्यापार मे यथासभव स्पष्टता की रक्षा के लिए कदाचित् ऐसा किया जाता है, क्योकि गीति-नाट्य के अधिकाश पात्र सघर्ष मे किसी न किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते है, उनकी व्यक्तिगत सत्ता की महत्ता नही होती, अतः अधिकाधिक पात्रो का आशय सघर्ष की बहुविध योजना, अथवा अनेक गुत्थियो का विधान है। गीति-नाट्य मे पात्र-सख्या अनिवार्यतः कम होनी चाहिए, ऐसा प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता, हम इस विशेषता का निर्देश केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपलब्ध सामग्री के आधार पर कर रहे है।

गीति-नाट्य की कथावस्तु का आधार इतिहास, पुराण, जनश्रुति व कल्पना कुछ भी हो सकता है। उपलब्ध गीति-नाट्यो की रचना उपर्युक्त सभी स्रोतों से सामग्री ग्रहण करके की गई है। वस्तुतः गीति-नाट्य की कथा ऐतिहासिक, पौराणिक या काल्पनिक कैसी भी हो, उसका स्वरूप वर्णनात्मक या घटनात्मक न होकर भावात्मक होता है। जहाँ पात्र ऐतिहासिक होते है वहाँ उनका अन्तर्वृत्ति-निरूपण और काल्पनिक पात्रो के माध्यम से स्वानुभूति व अन्तर्द्वन्द्व का अकन कवि का उद्देश्य होता है। सफल चित्रण के लिए जिस अन्तःप्रवेशी व अन्तःसाक्षात्कार करने मे समर्थ दृष्टि की अपेक्षा होती है वह बहुत कुछ कवि की समृद्ध अनुभूति और समर्थ कल्पना

१. विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य – उदयशंकर भट्ट, भूमिका, पृष्ठ २

पर निर्भर है। गीति-नाट्य का उत्कर्ष कथा-स्रोत की अपेक्षा कवि की उर्वरा कल्पना पर आश्रित है।

गीति-नाट्य मे कथा का विकास जैसा हम पहले भी कह चुके है—कथोपकथन के द्वारा होता है, कार्य-व्यापार के प्रदर्शन से नही, और ये कथोपकथन गीतिमय होते है। कही-कही गीतो की योजना भी की जाती है।

इस प्रकार सक्षेप मे गीति-नाट्य की काव्य-रूप-सम्बन्धी विशेषताएँ निम्नलिखित है :-

(१) **कथानक**

(क) गीति-नाट्य का कथानक ऐतिहासिक, प्रख्यात व काल्पनिक कैसा भी हो सकता है।

(ख) कथानक का स्वरूप घटनात्मक व वस्तुरूप न होकर भावात्मक होता है।

(२) **चरित्र**

(क) गीति-नाट्य मे प्रायः पात्रो की सख्या बहुत अधिक नही होती।

(ख) पात्र कार्य-व्यापार के कर्त्ता व भोक्ता रूप मे चित्रित नही किये जाते। वे वक्ता होते है—अपने भाव व विचारो के, अथवा उनके माध्यम से कवि की अनुभूतियाँ या अन्त-सघर्ष व्यक्त होता है। अतएव चारित्रिक विशेषताओ का अभिज्ञान व चरित्र-विश्लेषण उनके क्रिया-व्यापार से नही कथोपकथन के द्वारा होता है।

(३) **शैली व शिल्प**

(क) गीति-नाट्य मूलतः प्रबन्ध और प्रबन्ध का नाट्य रूप है, अतः उसकी भाव-सगठना मे अन्विति अनिवार्य है।

(ख) नाट्य-रूप होने के कारण उसमे परिस्थितियो की सघनता (Tensity), नाटकोचित उत्थान-पतन (भले ही भाव-सम्बन्धी हो) के रूप मे नाट्य-तत्त्व वर्तमान रहना आवश्यक है।

(ग) नाट्य-गुण के लिए गीति नाट्य मे कार्य-व्यापार का प्रदर्शन नही होता। गीति-नाट्य की कथा का विकास घटनाओं के चित्रण के द्वारा नही, कथोपकथन व स्वगत के माध्यम से होता है।

(घ) गीति-नाट्य के सवाद गीति-शैली मे लिखे जाते है, अर्थात् ये सवाद गीति-सवाद होते है।

(ङ) गीति-नाट्य की आत्मा गीतात्मक और शैली नाट्यात्मक होने के कारण उसकी अभिव्यजना मे गीतिकाव्य के गुण—भावप्रवणता, अन्तःस्फूर्त अभिव्यजना, भाषा में लालित्य, मृदुता, कान्ति, और नाट्य के गुण—सजीवता, प्रभावात्मकता, प्रसादमयता आदि का सहज समावेश हो जाता है।

(च) विषय अमूर्त होने के कारण, गीति-नाट्य में कथोपकथन, घटनाप्रधान नाटको की अपेक्षा लम्बे होते है।

(छ) आन्तरिक अर्थात् भाव-संगीत की स्वर-लहरी तो आद्यन्त गीति-नाट्य में अनुस्यूत रहती ही है, आवश्यकता पडने पर स्वर के संगीत का उपयोग कर गीतिमय कथोपकथन के बीच मे गीतो की योजना भी प्रायः की जाती है।

(ज) गीति-नाट्य का आकार सक्षिप्त और नाटक की भाँति विभाजन दृश्यों मे होता है। प्राप्त रचनाओं मे दृश्यो की संख्या चार या पाँच से अधिक नहीं है।

(झ) अभिनेयता के प्रति सचेष्ट होने के कारण अधिकाश रचयिताओ ने रगसकेत तो दिये ही है। कुछ कवियों ने रेडियो के लिए रचना करने के कारण ध्वनि-सकेत भी दे दिये है।

समग्र रूप में

एक ओर गीति-नाट्य का गीति-तत्त्व उसे सामान्य पद्य-नाट्य से भिन्न करता है, दूसरी ओर उसमे अभिनेयता नाट्य-कविता से उसका व्यावर्तन करती है। अतः गीति-नाट्य काव्य-रूपक का ही एक भेद है जिसमे अन्तर्मुखी सघर्ष का अकन गीति के माध्यम से होता है। इस प्रकार डॉ० नगेन्द्र के शब्दो मे इसका "प्राण तत्त्व है भावना अथवा मन का सघर्ष, और माध्यम है कविता।"[1]

गीति-नाट्य शब्द के व्यापक प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी साहित्य मे गीति-नाट्यो का आरम्भ 'करुणालय' से, और सही अर्थ में भगवतीचरण वर्मा के 'तारा' से मानना चाहिये। ऐसी रचनाओ की सख्या इस युग मे बहुत नही। 'तारा' के उपरान्त उदयशकर भट्ट के तीन गीति-नाटयों, 'विश्वामित्र', 'मत्स्यगधा' और 'राधा' का उल्लेख किया जा सकता है। इस नाम पर जो अन्य रचनाएँ हुई उन्हे हम गीति-नाट्य नही स्वीकार करते यह हम पिछले पृष्ठो मे कह आए है, तथा उनकी रूप-विधा-विवेचन का सम्यक् प्रयत्न भी हमने किया है। अतः हम यहाँ किसी प्रकार का विवाद न उठाकर, उक्त गीति-नाट्यो के रूप-विवेचन से आरम्भ करेगे।

तारा के कथानक का आधार है ऋषि-पत्नी तारा और चन्द्रमा के प्रेम और अभिशाप का प्रख्यात आख्यान, और इस नाट्य का प्राण है वासना और धर्म-भावना का उत्कट सघर्ष।

ऋषि-पत्नी तारा का अतृप्त यौवन एक साथ विद्रोह कर उठता है, वह तुरन्त ताड़कर मन को संयत करने का प्रयत्न करती है, परन्तु उसकी कर्तव्य-भावना और कामना के बीच संघर्ष तत्काल उपस्थित होता है। बृहस्पति उसे पूजा के पात्र प्रतीत होते है प्रेम के नही, और यह असह्य विरोध की भावना बृहस्पति पर प्रकट हो जाती है। वे सुनकर चकित हो जाते है और वासना की पापमूलक प्रवृत्ति और संसार की असारता का व्याख्यान कर उसके उद्वेलन को शान्त कर, मनोवृत्तियो को समाहित करने का प्रयत्न करते है, परन्तु उनके अपने मन मे प्रश्न उठ खड़ा होता है—

पुण्य शुष्क है रसमय केवल पाप है।[2]

दूसरे दृश्य मे चन्द्रमा को पढ़ाते समय भी यही पाप-पुण्य के स्वरूप का प्रश्न छिड़ता है। बृहस्पति अपने तर्कों द्वारा वासना का तिरस्कार करते है। परन्तु उनके मुख से निकला एक वाक्य जिसमें वे प्रकृति की एकमात्र सत्ता को स्वीकार करते है, पाप-पुण्य की नही, चन्द्रमा के मन मे पैठ जाता है। उसी समय तारा का प्रवेश होता है और वह चन्द्रमा को देखकर विचलित होती है। चन्द्रमा तभी गुरुपत्नी को माता कहकर प्रणाम करता है और यह सम्बोधन तारा की

१. आधुनिक हिन्दी नाटक—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ८८
२. मधुकण—भगवतीचरण वर्मा, तारा, पृष्ठ ५८

वासना से टकराकर सद्भावना को प्रेरित करता है। तभी आश्रम का भार चन्द्रमा को सौपकर बृहस्पति बाहर जाने का संकल्प करते हैं। तारा और बृहस्पति का प्रस्थान—तारा के अकलुष सौन्दर्य से प्रभावित चन्द्रमा वहीं रह जाता है।

तीसरे दृश्य में तारा और चन्द्रमा के हृदयो का उद्वेलन, और एक-दूसरे को पाने की कामना प्रबलतर हो जाती है। दोनों विवश से आत्म-सयम का प्रयत्न करते है। परन्तु शिक्षा के समय बृहस्पति का कहा वाक्य चन्द्रमा के मन मे पाप-पुण्य की भावना मिटाकर उसे विचलित कर देता है। सामने ही तारा दिखायी देती है। दोनो का सयम बाँध तोडकर बह जाना चाहता है। चन्द्रमा प्रस्ताव करना है, तारा अपनी उद्दाम वासना पर धर्म-भीरुता के कारण सयम पाना चाहती है, परन्तु चन्द्रमा पुरुषत्व मे तर्क की छाया का सहारा लेकर, उसकी धर्म-भीरुता पर विजय पा लेता है। तारा इस दुस्तर प्रवाह में आत्मविस्मृत-सी बह जाती है। अन्तिम दृश्य मे बृहस्पति कुटीर की शून्यता को देखकर तपोबल से रहस्य जान लेते है, और दोनो को शाप देकर अपना क्रोध शान्त करते है।

तारा एक सफल गीति-नाट्य है। उसमे अकित संघर्ष बहुत प्रबल और मनोवैज्ञानिक है। नाटक में आद्यन्त प्रत्येक पात्र की भावनाओ में नाटकोपयुक्त उत्थान-पतन है। बृहस्पति भी इस मन-सघर्ष से नही बचे है। धर्म और वासना का तुमुल सघर्ष तारा और चन्द्रमा के मन मे अत्यन्त सबल रूप मे अकित है। कवि के मत मे वासना की रगीनी और शक्ति अपरिजेय है, और इस नाटक मे उसने वस्तु की गतिविधि का सचालन बडे कलापूर्ण ढग मे बृहस्पति के मुख से निकले उस वाक्य के द्वारा किया है जो चन्द्रमा के मन मे उलझकर उसके स्खलन मे सहायक बन गया—

प्रकृति स्वय है, पाप-पुण्य कुछ भी नहीं। [1]

इस वाक्य का अवलम्ब लेकर वह ऐसा गिरता है कि सँभल नही पाता। आरम्भ मे तारा के मन का विद्रोह अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे व्यक्त है। वह मन को सयत करती है, समाधान करने का प्रयत्न करती है—

भ्रम है, भ्रम है निपट पाप की प्रेरणा,
है कर्त्तव्य प्रधान और आराधना।

परन्तु यह समाधान एक नया प्रश्न बन जाता है, वह सोचती है आराधना किसकी?

मनोभाव की प्रकृति के नियम की?
या स्वामी के पूज्य चरण-रज की? [2]

और वह आश्वस्त नहीं हो पाती। व्यक्ति जब पाप की ओर प्रवृत्त होता है तो वह अनजाने पापवृत्ति के पक्ष में तर्क जुटाता जाता है। वासना का अजेय आकर्षण और दुर्दम शक्ति तारा और चन्द्रमा दोनो के मन मे सबल विद्रोह की सृष्टि करते है। दूसरे दृश्य मे तारा के स्वगत और तीसरे मे चन्द्रमा की उक्ति मे इस कथन के प्रमाण मिल जायँगे। नाटक का अन्त उस युग

---

१. मधुकण—भगवतीचरण वर्मा, तारा, पृष्ठ ५६
२. वही, पृष्ठ ५६

के लिए स्वाभाविक है। ऋषि के अमर्ष मे करुण व्यथा है, पर तारा और चन्द्रमा भी नैसर्गिक मनोवृत्तियो के विद्रोह से पराभूत दुर्बल प्राणियो के रूप मे पाठक की करुणा के पात्र ही होते हैं, आक्रोश के नही। वस्तु मे एकता, गठन, प्रत्येक प्रसंग की अनिवार्यता और प्राण-धारा है।

संघर्ष का केन्द्र समस्त नाटक में पात्रों का अन्तर्मन है, और यह आन्तरिक सघर्ष विचारों का नहीं, भावनाओ का सघर्ष है। अत: नाट्य के साथ गीति-तत्त्व भी अक्षुण्ण है। नाट्य के सवादो मे इस अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करने की पूरी क्षमता है। विजयी भावना के पक्ष से प्रस्तुत तर्कों मे जान है, शक्ति है, और धर्म-भावना तो अन्त मे पराजित होते-होते धर्म-भीरुता मात्र रह जाती है। नाटक के स्वगत और कथोपकथन दोनो ही विशेष समर्थ और मार्मिक है।

वर्माजी की शैली मे विषय को यथावत शब्दो में उतारने की पूरी सामर्थ्य है। वे अपने कथन की अलकारों के प्रसाधन और कल्पना के विलास से सज्जा नहीं करते, उसमे प्राण-शक्ति का सचार करते है। उनकी शैली मे सजीवता, धार और सामर्थ्य, उनकी अनुभूति की प्रबलता और भावो के वेग के कारण होती है, शिल्प की बारीकी के कारण नही। मन की सघन और तीव्र अनुभूतियाँ बिना व्यग और वक्रता का आवरण पहने अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे पृष्ठो पर उतर आती है। उनकी नाटकीय परिणतियो, उत्थान-पतन और सघर्ष-विधान मे वर्माजी अत्यन्त कुशल कलाकार है, अभिव्यजना की श्री और विलास की दृष्टि से उतने कुशल शिल्पी नही। इस गुण की नाट्य-कला के लिए उतनी आवश्यकता भी नही। नाट्य-गुण गीति-नाट्य मे अधिक अनिवार्य है, और वह रग-सकेतो के अभाव मे भी इस रचना मे पूर्णतया वर्तमान है। 'तारा' मे इस प्रकार सर्वप्रथम गीति-नाट्य की कला का उत्कर्ष आधुनिक काल मे परिलक्षित होता है।

'विश्वामित्र', 'मत्स्यगन्धा', 'राधा'—'विश्वामित्र' और 'मत्स्यगधा'—दोनो की कथा-वस्तु मे साम्य है। 'राधा' का कथानक कुछ भिन्न है। सघर्ष 'मत्स्यगन्धा' और 'विश्वामित्र' मे भी भिन्न है। अक्षय यौवन की कामना—'मत्स्यगन्धा' की प्रेरक भावना है। धीवर-कन्या मत्स्यगन्धा यौवन के प्रथम स्पर्श से चचल है। प्रकृति-विलास को देखकर उसका मन मचल उठता है, उसके अन्त: मे हूक उठती है। भोली सखी सुभू के समाधान के प्रयास निरर्थक होते है और मत्स्यगन्धा की इच्छा सीमा तोडकर बिखरती जाती है। उसे अपनी सामाजिक स्थिति का ध्यान आता है पर उसकी दुरभि आकाक्षा उसे दबा देती है। इसी समय मत्स्यगन्धा का मनो-विकार अनग के रूप मे मूर्तिमान होकर सामने आता है। अनग उसे चिर यौवन का वरदान देना चाहता है—परन्तु कातर मत्स्यगन्धा उसके वरदान को अस्वीकृत कर देती है। यह अस्वी-कृति परिस्थिति-ज्ञान के कारण है। अत: यह क्षणिक दमन उसकी यौवन-लालसा को उद्दीप्त कर उसके मन में तूफान उठा देता है। दूसरे दृश्य मे वृद्ध पाराशर को तूफान मे नदी पार कराती केवट-कन्या पाराशर के कामार्त होने पर संघर्ष के उपरान्त उनसे अक्षय-यौवन का वरदान माँग-कर आत्म-समर्पण कर देती है। यहाँ नाटक का सघर्ष अपने चरम पर आकर चौथे दृश्य मे निगति की ओर उन्मुख होता है। मत्स्यगन्धा अनन्त यौवना विधवा सत्यवती के रूप मे प्रासाद पर खडी है—उसका वरदान आज अभिशाप के रूप मे उसे कातर बना रहा है। इसी समय अनग का दर्शन होता है, वह उसकी मनुहार करती है, दान को लौटा लेने का आग्रह करती है, परन्तु वह उसकी दुर्दशा पर व्यंग्य कर चल देता है।

'विश्वामित्र' की कथावस्तु मे कवि के अपने शब्दों मे पुरुष और नारी का सघर्ष है। पुरुष का प्रतीक है विश्वामित्र, नारी का मेनका, और उर्वशी। पुरुष के गुण अहकार, बल, शक्ति और अभिमान से युक्त विश्वामित्र नर है। प्रेम, कोमलता, नम्रता, जीवन, स्फूर्ति व भाव-प्रबलता से युक्त मेनका नारी है। इन विशेषताओ के प्रकाश मे कवि ने विश्वामित्र और मेनका के प्रसिद्ध आख्यान को नाट्य-रूप दिया है। विश्वामित्र का अहंकार उनके समक्ष मूर्तिमन्त है, साक्षात् है। उनका यह अम्बर-चुम्बी अह ार उन्हे विश्व पर सतत् अधिकार की कामना से समाधि मे प्रवृत्त करता है। उर्वशी और मेनका वहाँ प्रकट होती है। मेनका एकरस माधुर्य-भावना की प्रतीक है, और उर्वशी मे माधुर्य के साथ कटुता भी है। इसीलिए विश्वामित्र को देखकर मेनका का नारीत्व चचल हो उठता है, और उर्वशी के हृदय मे कटुता उभर आती है। नर की दूसरों पर शासन करने की भावना उसके नारीत्व को सह्य नहीं। मेनका उसका समाधान करना चाहती है। वह नर के अह के साथ उसकी दुर्बलता से भी परिचित है। उसके मन मे राग के बल पर पुरुष को पराजित करने की सामर्थ्य पर विश्वास है। उर्वशी और मेनका के शब्दो में नारी के दो रूपो का व्याख्यान है। उर्वशी चिर-शासिता नारी की करुणा को व्यक्त करती है और मेनका महत्त्व को। अन्ततः प्रतिस्पर्धा की कामना से उर्वशी मेनका को प्रेरित करती है, और मेनका अपने प्रयत्न में सफल हो जाती है। विश्वामित्र के आत्मसंयम खोकर बेसुध हो जाने पर भी मेनका उनसे भूल की स्वीकृति कराए विना उस क्षण तक समर्पण नही करती जब तक उसे विजय का निश्चय नही हो जाता, और विश्वामित्र आत्मघात करने को प्रस्तुत नही हो जाते। उनके अह के घुलते ही मेनका समर्पण कर देती है।

बारह वर्ष बाद मेनका माता के रूप मे प्रकट होती है, परन्तु इस नवीन रूप के विकास के पूर्व ही विश्वामित्र का अहं पुन जागृत हो जाता है और मेनका को आत्मचेतना प्राप्त होती है। एक क्षण के लिए विश्वामित्र के मन मे स्निग्धता आती है परन्तु पुरुष का अह उन्हे नवजात बालिका को छोडकर चले जाने पर बाध्य कर देता है।

'राधा' इन दोनो के उपरान्त की रचना है। कृष्ण के प्रति राधा का आकर्षण, समर्पण, और अन्त मे निलय इस नाटक मे चित्रित किया गया है। राधा नारी के उस रूप की प्रतिकृति है जिसमे उसका रूप के प्रति मोह, आवेग और अग्निमयी वासना सभी कुछ विद्यमान है। प्रेम की यह लालसा, आवेग, कृष्ण के पक्ष मे निरूपित नही। कवि ने गीता के योगेश्वर कृष्ण का रागातीत जीवन्मुक्त रूप अकित किया है, लीलाप्रिय नटवर रूप नही। स्वभावतः इस नाटक मे आवेग और विवेक, या दूसरे शब्दो मे प्रकृति और ज्ञान के बीच सघर्ष व्यक्त है। हमने इस नाटक को गीति-नाट्य इसलिए माना है कि इसमे आवेग और प्रकृति का वर्णन अधिक है, विवेक और ज्ञान के पक्ष से उतनी ही उत्कट तीव्रता से संघर्ष-विधान नही हुआ। अतः मानसिक चिंतन का प्रदर्शन होने पर भी भावुकता का आवेग ही अधिक है।

नाट्य-तत्त्व की दृष्टि से 'मत्स्यगन्धा' अन्य दो रचनाओ की अपेक्षा अधिक सफल है। काव्य और गीति-नाट्य मे अन्तर यही होता है कि नाटक मे सदैव द्वन्द्वमय परिस्थिति को विशेष महत्व दिया जाता है। इस संघर्ष के विधान मे दो विशेषताएँ मुख्य रूप से होनी चाहिय— समस्त घटनाओ व प्रसगो का सम्बन्ध परस्पर और एक मुख्य कार्य से हो, और इन घटनाओ

का विन्यास इस रूप में किया जाय कि नाटक की द्वन्द्वमय परिस्थिति एक क्षण-विशेष में संकुचित और केन्द्रित हो जाय। यह क्षण नाटक में जितना सघन (Tense) होगा उतना ही उसमें नाटक-तत्त्व अधिक होगा। यह विधान एकाकी और छोटी कहानी के समान होता है। वस्तु की एकता तो इन तीनों रचनाओं मे मिलती है, परन्तु सघर्ष मे घनत्व का क्षण जितना 'मत्स्यगन्धा' में सबल है उतना अन्य रचनाओं में नहीं। 'मत्स्यगन्धा' मे यौवन की दुर्दाम लालसा के, प्रकृति एवं समाज के बन्धनो से सघर्ष और पराजय का दिग्दर्शन है। इस सघर्ष का चरम उस दृश्य मे है जब नित्य अतर्द्रोह मे रत मत्स्यगन्धा पाराशर के समझाने पर भी उनसे अनन्त यौवन का वरदान माँगती है। यह दृश्य नाटक की दृष्टि से बडा प्रबल है। मन की हलचल, जिज्ञासा, सघर्ष यहाँ आकर एकदम स्तब्ध हो गया है। चौथे दृश्य से कार्यव्यापार मे निगति आरम्भ हो जाती है, और नाटक का अन्त होता है उसके पतन मे—जहाँ अनंग भी उस पर व्यग कर चल देता है। वह उस अक्षय यौवन के अन्त की कामना करती हुई अपने आप को विह्वल और निरा असमर्थ पाती है—

अरे कब अन्त होगा मद का प्रमाद का भी।[1]

नाटक की समस्त घटनाएँ इस पराजय मे पर्यवसित हो जाती है। आद्यन्त नाटक की घटनाएँ अप्रतिहत वेग से आगे बढती है, नीरसता या अवकाश—कार्य-व्यापार की सघनता के कारण कही नही आता। मत्स्यगन्धा का अन्तर्द्वन्द्व सर्वत्र अत्यन्त सशक्त रूप मे अकित है।

'विश्वामित्र' और 'राधा' ने सघर्ष के ये स्थल अपेक्षाकृत दुर्बल है। विश्वामित्र तो चरम घटना—मेनका के आत्मसमर्पण के स्थल पर अत्यन्त अशक्त और दुर्बल प्रतीत होते है। उनके जैसा प्रबुद्ध अहंकारी पुरुष नारी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सर्वथा असमर्थ और बेसुध हो जाय तथा आत्मघात के लिए प्रस्तुत हो—बहुत उचित नही लगता। यहाँ पुरुष और नारी का सघर्ष, व विश्वामित्र का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त सजीव रूप मे अकित हो सकता था, परन्तु पुरुष के अहम् ने नारी के आकर्षण के सामने बहुत सरलता से हथियार डाल दिये। इसी कारण इस सयोजना में घनत्व का अभाव हो गया है। 'विश्वामित्र' मे कवित्व 'मत्स्यगन्धा' की अपेक्षा अधिक है, परन्तु सघर्ष और उत्तरार्ध की घटनाओं मे अन्विति का अभाव, उसका बहुत बडा दोष है। नाटक की पिछली घटनाएँ बिखरी सी जान पडती है।

'राधा' मे भी राधा के अत्यन्त भावोद्वेलित और कृष्ण के रागातीत होने के कारण उचित सघर्ष का विधान नही हो सका। नाटक मे यह अवकाश कवि को दो बार प्राप्त होता है। एक तो तीसरे दृश्य में—जहाँ राधा कृष्ण को आत्मसमर्पण करती है, और कृष्ण रागातीत रहते हुए भी उसका सखा बनना स्वीकार कर लेते है। राधा के मन मे अन्तर्द्वन्द्व का विधान कवि ने नही किया। वह अपने निश्चय मे अटल है और प्रेम मे विभोर। कृष्ण रागातीत है, योगेश्वर हैं, अतः उनके मन मे द्वन्द्व का प्रश्न नही उठा। कृष्ण और राधा के बीच द्वितीय दृश्य मे आवेग और विवेक का संघर्ष कुछ देर तक हुआ है, पर इस सघर्ष मे बल इसलिए नही आया कि यह सघर्ष कृष्ण पर रागात्मक प्रभाव नहीं डालता और दोनों पक्षों मे से एक ने भी पराजय का भाव

---

१. विश्वामित्र और दो भाव नाट्य—उदयशकर भट्ट, पृष्ठ ६०

स्वीकार नहीं किया। कृष्ण राधा की मनोवृत्ति पर विजय नहीं पा सके, और राधा उन्हें प्रेमी रूप मे नहीं पा सकी। राधा के आवेग-प्रवाह के कारण यह प्रसंग तरंगायित है पर घनीभूत नहीं। इस स्थल की अपेक्षा अन्त में निलय के चित्रण में अधिक प्रभावक्षमता है। कृष्ण स्वर बदलकर पहले राधा को उत्तेजित करते है और फिर सहसा प्रकट हो जाते हैं। इस आकस्मिकता से इस प्रसग मे तीव्रता आ जाती है। परन्तु इसके उपरान्त राधा आत्मविभोर होकर नाचती है, और निर्वाण के बाद तुरन्त ही कृष्ण एक लम्बा-सा भाषण देने लगते है जिससे प्रसंग की सारी तीव्रता नष्ट हो जाती है। यह व्याख्यान दो-तीन पृष्ठों तक चलता रहा है, अत: इस प्रसंग मे व्यजना से जो चमत्कार आ सकता था, वह वाचिक अभिव्यक्ति से नष्ट हो गया है।

सवादो और स्वगतो मे नाट्य-गुण और कवित्व-गुण, दोनों का प्राचुर्य है। पात्रो की उक्तियाँ सजीव है, और शैली मे मनोगत भावो, अन्तर्द्वन्द्व को शब्दान्तरित करने की विलक्षण सामर्थ्य। प्रसगानुकूल उनकी तरल भावुकता, रगीन कल्पना, चित्रो मे खुलकर खेलती है, और अवसर आने पर यही भावुकता आवेग की प्रखर शिखाओ मे रूपान्तरित हो जाती है। आरम्भ मे विश्वामित्र के अहकार का चित्रण, और अनेक स्थलों पर मत्स्यगन्धा और मेनका का अन्तर्द्वन्द्व, करुणा, और राधा के आवेग-प्रवाह का वर्णन इस कथन को पुष्ट करेगे। कही-कही प्रसगो मे तीव्रता और तरलता दोनो का अभाव है। 'राधा' मे कृष्ण का अन्तिम भाषण ऐसा ही है। कुछ प्रसगो मे अतिशय कल्पना-विलास और भाषा की स्निग्धता मे भाव की तीव्रता नष्ट हो गई है—परन्तु ऐसे अवसर बहुत नही आए। प्रसग-परिवर्तन के साथ उनकी शैली भी विषयानुकूल रूप धारण कर लेती है। 'विश्वामित्र' के संवादों मे ओज है, 'मत्स्यगन्धा' मे गति और वक्रता और राधा' मे भावावेश की तरल प्रवहमानता। 'राधा' के स्वगत कही कही अपेक्षाकृत एकरस और निर्जीव है, इसका कारण है मनोवेग का एकपक्षीय विधान। अत: कही-कही लम्बे स्वगतो का स्वर प्रलापात्मक-सा प्रतीत होने लगा है। वैसे भाव-नाट्य के सवादो के विषय मे कवि की एक विशेष निजी धारणा है—

"मानव के स्वरूप-चित्रण की दृष्टि से नाटक दो प्रकार के है—वाचिक और मानसिक। वाचिक को ही आगिक या कायिक कह सकते हैं। वाचिक मे अग निक्षेप का प्राधान्य रहता है अत. उसमे सवाद यथासाध्य छोटे होने चाहिएँ पर यह भाव-नाट्य मानव के भाव-जगत् से सम्बन्धित होने के कारण संवादो में उच्च स्तर का विशद मानसिक विश्लेषण करते हैं। यह विश्लेषण बहुमुखी होना सम्भव नहीं। भाव अपने में एक अदृष्ट क्रिया है। अत: उसे साधारण रूप में अल्प शब्दो मे व्यक्त नहीं किया जा सकता। एक भाव के उत्तर में दूसरा भाव समुपस्थित किया जाता है, जिनके व्यक्तीकरण मे शब्दो का लोभ किया ही नही जा सकता, अत: भाव-नाट्यो या कल्पना-प्रधान नाटको मे सम्वाद कभी-कभी लम्बे होने स्वाभाविक है।"[1] कवि ने लम्बे सवादों की योजना का कारण स्वय ही स्पष्ट कर दिया है।

जैसा हम पहले कह आए है भट्टजी नाट्य-शैली की रचनाओ मे अभिनेयता का गुण अनिवार्य मानते है, अत: उन्होंने अपनी तीनों कृतियों में अभिनय की व्यावहारिकता और

---

१. विश्वामित्र और दो भाव नाट्य—उदयशंकर भट्ट, भूमिका, पृष्ठ २

प्रभावात्मकता की बड़ी सतर्कता से रक्षा की है। रंग-संकेत भी उन्होंने दिए है। भले ही वह विशेष स्तर के प्रेक्षकों के लिए हों, परन्तु ये तीनों कृतियाँ अभिनय की दृष्टि से विशेष सफल हो सकती हैं। वस्तु-संकलन इनमें है, परन्तु घटनास्थल और समय की दृष्टि से इनकी घटनाओं में अन्तराल है, परन्तु इससे इनके सारभूत प्रभाव व अभिनय मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नही होती।

इन नाट्यो के समग्र रूप मे नाट्य-तत्त्व तो मिलता ही है, परन्तु गीति-तत्त्व उससे भी अधिक है। भट्टजी गीति-कवि है, अतः इन गीति-नाट्यो में घटनाएँ विरल और अन्तर्द्वन्द्व या भाव-वृत्ति का अंकन अधिक होने के कारण उनकी कवि-प्रतिभा उन्मुक्त विहार कर सकी है। ये रचनाएँ छायावाद काल की कृतियाँ है, अत. इनकी कला छायावाद की रेशमी कला है—इनमे महान घटनाएँ और महान दृश्य दुष्प्राप्य है। घटनाओं मे नाटकीयता के स्थान पर गीतात्मकता अधिक है। इसी कारण—एक ओर घटना-विधान मे नाटकीय आकस्मिकता नही होती, दूसरे उनके चित्रो की रेखाएँ धुंधली और कोमल होती है, उनमे स्पष्टता और तीखापन नही मिलता। इन चित्रों में रुककर रंग भी कवि ने नही भरे। कही-कही उनकी तूलिका से छिटककर रग का एकाध बिन्दु बहती भावधारा को रगीन बना देता है, पर बहुत कम। इनमे भी भास्वर नही, हल्के और स्निग्ध वर्णो का स्पर्श ही कवि ने दिया है। 'विश्वामित्र' और 'मत्स्यगन्धा' मे भव्य चित्र अधिक मिलेगे। 'राधा' मे भावो का बहाव अधिक है, अत. रुककर चित्र अंकित करने का अवकाश कवि को नही प्राप्त होता। कहने को आवश्यकता नही कि इन गीति नाट्यो की चेतना व्यक्तिगत चेतना है। इनके सभी पात्रों का व्यक्तित्व आत्मकेन्द्रित है; उनमे व्यक्तित्व का बहिरग प्रसार नही एकाग्रता मिलती है। और "गीति-तत्त्व व्यक्तिगत चेतना मे ही मिलता है, उसमे जीवन के बहिरग की नही, अन्तरग की व्यक्तिगत अनुभूति होती है। व्यक्ति का तरल प्रभावमान रूप गीति-काव्य को जन्म देता है—व्यक्ति का विरोधी तत्त्वो के बीच तना हुआ द्वन्द्वमय रूप गीति-नाट्य को।"[1] भट्टजी की गीति-प्रतिभा उपर्युक्त विशेषता के विशेष अनुकूल थी—अचरज नही उनकी लेखनी से हिन्दी साहित्य को सुन्दरतम गीति-नाट्यो का उपहार मिला।

नाटकीय कविता

नाटकीय-कविता और पद्य-नाट्य तथा गीति-नाट्य मे परस्पर वही अन्तर है जो अँगरेजी के 'पोएटिक-ड्रामा' (Poetic drama) और 'लिरिकल ड्रामा' (Lyrical drama) तथा 'ड्रामेटिक-पोएट्री' (Dramatic poetry) मे। अर्थात्, दोनो मे कविता और नाटक के तत्त्वो का समीकरण होता है, परन्तु नाटकीय कविता में कविता के तत्त्वों की प्रधानता रहती है तथा नाट्य के तत्त्वो मे से सवाद और स्वगत का अधिक, व क्रिया-व्यापार का बहुत कम प्रयोग किया जाता है। ये प्रसग समाख्यान या वर्णनात्मक शैली मे नही सवादो के रूप मे लिखे जाते है, परन्तु कविता मे सजीवता और रोचकता लाने के लिए ऐसा किया जाता है अभिनेयता लाने के लिए नही। नाट्य-तत्त्व इन कविताओं में गौण होता है और गीति-नाट्य मे नाट्य तत्त्व मुख्य होता है। यही दोनो

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ १०७-१०८

लक्ष्मण का आत्म-भाषण, तीसरे में शूर्पणखा की आत्म-रति, चौथे मे राम, लक्ष्मण और सीता का वार्तालाप, तथा अन्तिम में शूर्पणखा का स्वगत-कथन, राम-लक्ष्मण से संवाद, और नाक-कान काटने की घटना की सूचना है।

'बन्दी' मे एक कुलीन बन्दी और उसके बाल्यकालीन मित्र का बन्दीगृह मे वार्तालाप है। दोनों पात्रों के बीच दो भावधाराओं का संघर्ष है। बन्धु स्वार्थ के लिए देश और साथियो मे द्रोह और विश्वासघात के लिए प्रेरित करता है। माँ की दीनावस्था का वर्णन कर, उसे मातृदोषी ठहरा कर, प्रायश्चित के लिए रहस्योद्घाटन कर मुक्ति पाने की प्रेरणा देता है। प्रतिक्रिया-स्वरूप बन्दी के हृदय मे सहयोगियों के साथ विश्वासघात कर अनेक माताओ को दुखी करने के स्थान पर आत्मपीडन का सकल्प दृढतर हो जाता है। इस प्रकार वह समष्टि के हित के लिए व्यक्ति के हित का, और वर्ग के लिए प्राणी का बलिदान कर देने के पक्ष मे है। अत मे उत्सर्ग और त्याग की ही विजय होती है।

'पृथ्वीपुत्र' के दोनो सवादो मे से एक मे भी घटना-विधान नही है। 'जयिनी' मे कवि ने आदर्श दाम्पत्य-भाव व्यजित किया है। मार्क्स अपने सिद्धान्तो की कार्यान्विति के लिए जैनी का परित्याग करना चाहता है, और जैनी सहधर्मिणी के रूप मे उसका साथ देने के लिए समुद्यत है। 'पृथ्वीपुत्र' के पात्र प्रतीक हैं। मातृभूमि के व्यक्तित्व मे कवि ने आध्यात्मिक मूल्यों और मानवता के आदर्शों की प्रतिष्ठा की है और पृथ्वीपुत्र मे यान्त्रिक सभ्यता व पाश्चात्य पूँजीवाद की। कवि नाश की वृत्ति—युद्ध-लिप्सा, व्यक्तिगत उत्कर्ष की साधना, यान्त्रिक बल पर आश्रित सभ्यता के पक्ष मे नही है, अतः मातृभूमि की वाणी मे उसने मानव की उत्कर्षविधायिनी आध्यात्मिक मूल्यों पर आश्रित मान्यताओ के द्वारा, शान्ति और आत्मिक उन्नति का सदेश दिया है। इस प्रकार मानवतावादी जीवन-दर्शन पर आश्रित शान्तिप्रिय प्रवृत्तियो की संवृद्धि इस कृति का उद्देश्य है। 'जयिनी' और 'पृथ्वीपुत्र' मे कथा-विन्यास नही हुआ—इनमे कथा-वर्णन के अतिरिक्त अन्य वैज्ञानिक उद्देश्य समन्वित है।

इन सभी कविताओ की रचना पाठ्य-रूप मे हुई है अभिनय के लिए नही। इनके वस्तु-विन्यास मे इसलिए नाटकीय कार्य-व्यापार का अभाव है, किन्तु इन सभी कविताओ के सवाद केवल प्रभावात्मक व कवित्वपूर्ण ही नहीं, सप्राण हैं। कवित्व की दृष्टि से 'पचवटी-प्रसंग' मे राम और सीता की मधुर पूर्व-स्मृतियाँ, लक्ष्मण की भक्ति-भावना, शूर्पणखा की अभिमान-युक्त आत्म-रति आदि भावनाओ का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है। इन सभी वर्णनो मे एक गीतिमय स्वर आद्यन्त अनुस्यूत है। अन्तिम दृश्य मे सघर्ष-योजना से सघनता भी आ गयी है। 'बन्दी' के सवाद कुछ लम्बे है, पर उनमे सजीवता सर्वत्र है। दो विरोधी भावधाराओं का सघर्ष बड़ी सशक्तता से व्यक्त हुआ है। कविता के अन्तिम अश में कवि ने अद्भुत नाटकीय कौशल का प्रयोग किया है। कविता के दोनों पात्रो के बीच सम्भाषण की अन्तिम परिणति कवि ने सम्भाव्य की असम्भाव्य उपस्थिति के द्वारा सम्पन्न की है।

मातृप्रेम की दुहाई देने वाले बाल्यबन्धु से सहसा बन्दी कह उठता है कि वह उसकी बात मानकर मातृद्रोह कभी न ठानेगा। इस सकल्प से पाठक एक क्षण के लिए भुलावे मे आ जाता है कि कदाचित् मातृप्रेम के वशीभूत होकर बन्दी देशद्रोह मे प्रवृत्त हो गया, परन्तु अगले ही क्षण

अनुवर्त्ती पंक्तिया उसका भ्रम-निवारण कर देती है—

तुमने बचा लिया मुझे है मृत्यु-मुख से।
अन्य साथियों के नाम
कुछ भी हो, बोलूंगा न मैं कभी।
जैसा हो सकेगा मैं कलेजा थाम,
अत्याचार पीड़न, प्रहार सह लूंगा सभी।
आज रो रही है एक मेरी माँ,
कैसे मैं रुलाऊँ अब और बहुतेरी माँ ?[1]

और इस आकस्मिक निश्चय-बल से प्रतिवादी बन्धु निरुत्तर और पाठक स्तम्भित रह जाता है।

'जयिनी' और 'पृथ्वीपुत्र' मे दार्शनिक मतव्यो को काव्यात्मक बनाने का उपक्रम है अतः विशेष सजीवता तो इन सवादो मे नही। 'जयनी' मे दाम्पत्य भाव का रग होने के कारण स्वर गीतिमय हो गया है, 'पृथ्वीपुत्र' मे वैसा नही है। 'जयिनी' मे मार्क्स और जयिनी के भाव-मय सम्बन्धो का उद्घाटन है, यद्यपि कवि ने आर्थिक वैषम्य को समाज के लिए अनुपयोगी सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है, परन्तु जीवन के प्रेमादर्श को व्यजित करने के कारण, वस्तु-विन्यास मे घटनात्मक शक्ति के स्थान पर भावमय कोमलता आ गई है। संवाद सर्वत्र स्पष्ट और कही-कही सजीव है।

'पृथ्वीपुत्र' मे युद्धैषणा का घोर विरोध और सार्वभौम सामाजिक अभ्युन्नति की कामना व्यक्त है। इस कविता के पात्र प्रतीक है—उनका पारिवारिक सम्बन्ध भावात्मक नही, केवल सवाद-योजना के लिए उनकी उद्भावना की गयी है। स्वर एकान्त बौद्धिक है, विचारधाराओ का सघर्ष, बहुमुखी समस्याएँ और उनका समाधान व्यजित है। इस कविता की नाटकीयता इसकी सजीव सवाद-योजना मे ही रक्षित है। इसमे गीति की कोमल भावमयता नही। पात्रो के बीच वत्सल सम्बन्ध केवल औपचारिक रूप से स्थापित किया गया है।

इन कविताओ का प्रणयन अभिनेय रूप मे नही किया गया, परन्तु इनका अभिनय न हो सकता हो, ऐसा भी नही है। इनके रचना-विधान मे दृश्य-वैविध्य का अभाव, एकाकी के ढग पर सकलनत्रय की रक्षा, वर्णित प्रसग की स्वत:पूर्णता और कथानक मे कवित्वमयी सवाद-योजना—इन कृतियो मे अभिनय की सम्भावना अवश्य उत्पन्न कर देती है। 'पृथ्वीपुत्र' के विस्तृत विचार-प्रसंग को भी कवि ने प्रतीक पात्रों की उद्भावना से सीमित कर दिया हे। इनमे रंगमच की दृष्टि से एक ही अभाव है—वस्तु-विन्यास मे सघर्ष का अभाव और यह तत्त्व नाट्य-कृति का प्राण-तत्त्व है। कार्य-व्यापार के अभाव मे ये शुद्ध नाट्य-कृतियाँ नही मानी जा सकती। सवाद-शैली मे रचित होने के कारण इनमे नाट्य-तत्त्व की ही स्वीकृति की जा सकती है। इनमे नाटकीय प्रभावात्मकता नही परन्तु अभिनय की सम्भावना अवश्य निहित है, कही-कही कवियो ने अभिनय-सम्बन्धी सकेत (यद्यपि बहुत कम) भी अनायास दे दिए हैं।

---

१. आर्द्रा—सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १४१

छन्द-विधान और कवित्व के उत्कर्ष की दृष्टि से इन कविताओ का काव्य-वैभव प्रश्नातीत है। 'पचवटी-प्रसग' और 'बन्दी' की रचना मुक्त छन्द मे हुई है तथा 'जयिनी' और 'पृथ्वी-पुत्र' की घनाक्षरी के उत्तरचरणार्द्ध (अमित्राक्षर) के क्रमशः तुकान्त और अतुकान्त रूप मे। छन्द सभी रचनाओ में विशेष अनुकूल है। मुक्त छन्द मे अबाध गति है और पक्तियाँ भावानुकूल छोटी-बडी होती गयी है। 'निराला' तो मनस्तत्त्व के सूक्ष्म विश्लेषण, तथा विराट् और कोमल के अद्भुत चित्रांकन मे समर्थ है ही, 'बन्दी' की कला मे भी कौशल और विलास नहीं, परन्तु विषयानुरूप सजीवता और सत्य की चोट व शक्ति शैली मे सर्वत्र है। पूर्ववर्ती नाट्य-कृतियो मे विशेष सफल न होने पर भी नाटकीय कविताओ मे मैथिलीशरणजी भी नाटकीय कौशल, सवादो की सजीवता और शैली की समृद्धि की दृष्टि से विशेष सफल हुए है। ये कृतियाँ उनके प्रौढि-काल की रचनाएँ है, अत. यहाँ तक आते-आते कवि की शैली मे भी समास गुण, सामर्थ्य और समृद्धि आ गयी है।

निष्कर्ष रूप मे—ये कविताएँ हर दृष्टि से हिन्दी-काव्य की विभूति कही जायँगी। काव्य-विधा की दृष्टि से निश्चय ही अपने वर्तमान रूप मे यह प्रयोग नवीन है। पूर्ववर्ती काव्य ग्रन्थो मे—बीच-बीच मे प्रस्तुत सवाद-योजना या दो पात्रो के बीच कथाएँ कहने-सुनने की प्रवृत्ति से इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही जोडा जा सकता। इनका विषय, विधा तथा प्रेरक अनुभूति सभी कुछ उनसे भिन्न है।

स्वगतकथनात्मक नाटकीय कविता

नाटकों के बीच में पात्रों के स्वगत भाषण का प्रयोग प्राचीनतम कृतियो मे ढूँढा जा सकता है। स्वतन्त्र रूप में इस विधा का विकास यद्यपि आधुनिक काव्य मे ही हुआ, परन्तु इसका आधार नाटको के बीच पात्रो के आत्मभाषण के रूप मे रचित पद्यांश ही है। एकपक्षीय भाषण के रूप मे जो नाटकीय कविताएँ आधुनिक काल मे लिखी गयी उनका सम्बन्ध मूलतः नाटको के स्वगत भाषणो से होने पर भी स्वतन्त्र और वर्तमान स्वरूप इन स्वगत भाषणो से बहुत भिन्न हो गया—ठीक उसी प्रकार जैसे पाश्चात्य साहित्य मे, आरम्भ मे नाटको के बीच प्रयुक्त मोनॉलाग (Monologue) या स्वगत के आधार पर ड्रामेटिक मोनॉलाग (Dramatic-monologue) के रूप मे आधुनिक काव्य मे स्वतन्त्र विधा का विकास हुआ। आरम्भ मे मोनॉलाग का प्रयोग स्वगत के रूप मे नाटक तक ही सीमित था।

स्वगत—नाटक मे पात्र-विशेष के उस सस्वर कथन को कहा जाता था जिसमे वह एकाकी या अन्य पात्रो की मौन उपस्थिति मे अज्ञानवश सस्वर आत्मभाषण करता है। पद्य-बद्ध स्वगत में गीति-तत्त्व तथा कही-कहीं नाटकीयता भी मिलती है।[1] स्पष्ट है ये स्वगत, नाटको मे कथोप-

---

1. MONOLOGUE—A passage in a drama in which a personage speaks unconsciously aloud, either alone on the stage or with others keeping silent.' .....There is something of a lyrical character about the monologue in verse; .....

Encyclopedia Britanica, Volume XV, Page 729.

कथन का प्रकार मात्र है काव्य-रचना मे स्वतन्त्र विधा नही। इसी से मिलती-जुलती परिभाषा भारतीय नाटको मे प्रयुक्त स्वगत भाषण की मिलती है। कथोपकथन के प्रकारो मे अश्राव्य या स्वगत उस कथन को कहा गया जो दूसरों—अर्थात् उपस्थित अन्य पात्रो के सुनने के लिए न हो।[1] नाटक मे स्वगत का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि प्रेक्षक, पात्र के मनोगत भावो से अवगत हो जाय, परन्तु मच पर उपस्थित अन्य पात्रो के लिए यह कथन नही किया जाता। कालान्तर मे इसी कथोपकथन के आधार पर विकसित स्वगतकथनात्मक कविताओ को दृष्टि मे रखते हुए अँगरेजी मे 'मोनॉलाग' की परिभाषा मे विस्तार किया गया। मोनॉलाग को केवल नाटक के अग-रूप तक सीमित न रखकर, उसी के आधार पर विकसित ऐसी स्वतन्त्र नाटकीय कविताओं के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाने लगा जिनका अभिनेता या कार्य-सम्पादक एक ही व्यक्ति हो अथवा जिनकी रचना, जन समागम मे एक ही व्यक्ति की लम्बी वार्ता के रूप मे की गयी हो।[2]

सस्कृत काव्य-शास्त्र मे रूपक के भेदो मे एकपात्रीय नाटक-भेद 'भाण' की चर्चा की गयी है। परन्तु ये स्वगतकथनात्मक नाटकीय कविताएँ 'भाण' से अनेक रूपो मे भिन्न है। इनमे न कार्यव्यापार का अकन अनिवार्य होता है और न इनकी रचना अभिनेय रूप मे की जाती है। 'भाण' के समान हास्य रस की सृष्टि करना भी कवि का लक्ष्य नही होता। नाट्य-तत्त्व इन कविताओ मे इसी रूप मे मिलता है कि कवि पात्र-विशेष की जीवनगत घटनाओ तथा मनोभावनाओ का वर्णन व समाख्यान न करके, उसी के मुख से आत्मपरिचय, आत्मचिन्तन या आत्मविश्लेषण के रूप मे कथन कराता है।

स्वगत से इन कविताओ मे अन्तर यही है कि स्वगत की स्थिति नाटक के अग-रूप मे प्रसंग-सापेक्ष होती है—उसे समझने के लिए सम्पूर्ण प्रसग की जानकारी वाछित है, परन्तु ये स्वगतकथनात्मक कविताएँ इस दृष्टि से स्वत पूर्ण और निरपेक्ष होती है। जिन घटनाओ की पृष्ठभूमि मे पात्र आत्माभिव्यक्ति करता है उनका सकेत किया जाता है अथवा कविता मे ही उनका वर्णन स्मृति-रूप मे कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इनमे ऐसे पात्रो की उद्भावना नही की जाती जो घटनाओ के कर्त्ता और भोक्ता हो, पर श्रोता नही। ये स्वगतकथनात्मक कविताएँ सामान्य रूप से सभी के लिए पाठ्य व श्रव्य होती है, नाटक के स्वगत की भाँति इनके श्रोताओ पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही। नाट्य-शैली की तीन विशेषताओ—कार्यव्यापार का अभिघटन, सम्भाषण, और स्वगत मे से इनमे केवल अन्तिम का प्रयोग होता है। ये कवि-

---

१ अश्राव्य—जो दूसरो के सुनने के लिए न हो। यह एक प्रकार का मुखरित रूप से विचार करना है, इसे स्वगत या आत्मगत कहते है।

काव्य के रूप—गुलाबराय, पृ० ३७

२ Monologue—Scene in drama in which one person speaks by himself; dramatic composition for single performer; long speech by one person in a company, soliloquy.

The Concise Oxford dictionary, Page 766

ताएँ अनिवार्य रूप से कथाश्रित भी नही होतीं—जहाँ घटनाओ का अन्तर्भाव इनमे होता है वहाँ वे प्राय: स्मृति रूप मे वर्णित होती हैं—कही घटनाओ को पृष्ठाधार बनाकर केवल पात्र की भावनाएँ और विचार व्यक्त किये जाते है, तथा अन्यत्र घटनाओ के स्मृत स्वरूप और उनके परिणामस्वरूप पात्र के मन पर होने वाली भावात्मक प्रतिक्रियाएँ विषय होती है। इस प्रकार ये विषय-भेद से स्वगत शैली मे लिखी प्रगीतात्मक अथवा आख्यान-गीतियाँ होती है। अभिनय की दृष्टि से न इनकी रचना की जाती है और न इस काव्य-रूप मे इस प्रकार की कोई सम्भावना निहित है। डा० दुबे ने इनका सम्बन्ध कुछ दूर तक सस्कृत नाटच-शास्त्र मे कथित 'भाण' नामक रूपक-भेद से स्थापित किया है, किन्तु इन कविताओ मे उस नाटच-प्रकार की सबसे प्रमुख विशेषता—अभिनेयता का ही निषेध नही तो अवमानना अवश्य है। इनका सम्बन्ध उस विधा-विशेष से प्रत्यक्ष रूप से नही जोडा जा सकता। केवल इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि इनकी समानान्तर विधा प्राचीन साहित्य मे भी वर्तमान थी।

डा० शकुन्तला दुबे ने इस प्रकार की कविताओ के लिए अभिनय की जिस सम्भावना की ओर सकेत किया है—"इसका पात्र आकाश की ओर मुँह उठाकर स्वगत कथन की भाँति कहता चला जाता है।"[1] उससे हमारा विरोध है। 'लहर' मे सकलित 'अशोक की चिन्ता' और 'प्रलय की छाया' के वक्ता पात्र अशोक और रानी कमला यदि रगमच पर उपस्थित होकर आकाशद्रष्टा के रूप मे उक्त कविताओ का पाठ करे तो हमारी समझ मे इनकी समस्त करुणा और मार्मिकता नष्ट होकर यह कविताएँ अभिहस्य हो जायँगी। इनका रसास्वादन पाठच रूप मे ही सम्भव है अभिनय के द्वारा नही। कथोपकथनमय नाटकीय कविताओ की भाँति इस प्रकार की कविताएँ भी हिन्दी-साहित्य मे इनी-गिनी है। कवि सियारामशरण गुप्त के कविता-सकलन 'आर्द्रा' मे इस शैली की कुछ कविताएँ है—हूक, प्रयाणोन्मुखी, डाकू, नृशस व चोर आदि। ये सभी कविताएँ कथा का आश्रय लेकर लिखी गयी है। प्रयाणोन्मुखी के अतिरिक्त सभी मे किसी घटना का आपबीती के रूप मे वर्णन है। प्रयाणोन्मुखी मे कवि ने मरणासन्न नारी की मन:स्थिति-अन्तर्वेदना का वर्णन किया है, अत: इस कविता का स्वर गीतिमय है। नृशस मे कवि ने सामाजिक समस्या दहेज प्रथा को पारिवारिक धरातल पर अकित किया है। इस प्रथा के कारण परिवार के तीन प्राणियों—माता, पिता और पुत्री के मन मे होने वाली प्रतिक्रिया स्वगतों के रूप मे व्यक्त है, और पुत्री की आत्महत्या के उपरान्त माता-पिता की अन्तर्वेदना। इस कविता में पात्र तीन है परन्तु एक बार मे पाठक के सामने एक ही पात्र रहता है। हूक, डाकू, और चोर मे तीन भिन्न व्यक्तियो के जीवन के प्रसग है। चोर की कथा मे वर्ग-भेद की सामाजिक समस्या है। हूक मे व्यक्ति-विशेष के पुत्री-वियोग का प्रसग है, और डाकू मे कवि ने उदार दृष्टि से एक डाकू के मन के उस तन्तु का स्पर्श किया है जो एक छोटी-सी घटना से करुणा-द्रवित हो उठता है। इस प्रकार समाज की दृष्टि मे विगर्हित इन व्यक्तियो के प्रति पाठक की सहानुभूति आकर्षित करने का प्रयत्न कवि ने किया है।

इन कविताओं में काव्य-कला की दृष्टि से विशेष उत्कर्ष नही मिलता। इनकी विधा

१. काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दुबे, पृष्ठ ५५३

निश्चय ही नवीन है। बडे स्तर पर सामाजिक समस्याओ का वर्णन उपन्यासो मे, तथा विशिष्ट प्रसगो की झलक व अकन कहानी के माध्यम से गद्य-शैली मे तो अप्राप्य नही—पद्य मे भी मैथिलीशरण गुप्त इस शैली का प्रयोग अपने खण्डकाव्यों—'किसान' और 'अजित' में कर चुके थे, परन्तु आपबीती के रूप मे छोटी-छोटी स्वगतकथनात्मक कविताएं लिखने का प्रचलन अपेक्षाकृत बाद मे हुआ। सियारामशरणजी की अन्य रचनाओ की ही भाँति इन कविताओ मे भी जो प्रभावित करने की क्षमता है, वह इनमे वर्णित सत्य और समस्या की है। ये कविताएं हमे आकर्षित इसलिए करती है—हमारी करुणा और मर्म का स्पर्श इसलिए करती है कि उनमे वर्णित प्रसग जीवन के अप्रिय और करुण प्रसग है। इसलिए नही कि उनकी शैली मुग्धकर है। इनमे व्यक्त समस्याएँ अत्यन्त स्पष्ट, सीधी-सादी भाषा-शैली मे हमारे सामने आ जाती है। घटना का भोक्ता पात्र अपने पाठक के मन:चक्षुओ के समक्ष विद्यमान रहकर आपबीती सुनाता है—अतः सहज आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। किसी व्यक्ति के मुख से किसी और की बात की अपेक्षा उसकी अपनी बात श्रोता को सदैव अधिक प्रभावित करती है। यही इन कविताओ की सफलताओ का रहस्य है। शैली मे वैभव और समृद्धि के नाम पर इनमे कुछ नही। कही-कही काव्य का स्तर अत्यन्त सामान्य बोलचाल के स्तर तक उतर आया है—

इधर बिस्तर-ट्रंक सिर पर लाद कर
पास ही नौकर खड़ा था व्यग्र-सा।
बोझ अपना साध कर उसने कहा—
"हो रही है देर बाबू जी बहुत।"[1]

इस प्रकार की अभिव्यक्ति कविता की अपेक्षा गद्य के अधिक अनुकूल जान पड़ती है। कही अन्तर्वेदना के प्रकाशन मे अवश्य कुछ कवित्व मिलता है, पर ऐसे स्थल बहुत कम है। काव्य-रूप सीमित होने के कारण वर्णन-विस्तार का अवकाश विशेष नही रहा। उनकी कल्पना कविता के सूक्ष्म-ललित अवयवो से क्रीड़ा नही करती—जीवन की पीडा, करुणा का अनावरण करती है। यह वेदना व्यक्ति की नही समाज की है—अतः प्रतीको के माध्यम से या लक्षणा-व्यजना के आवरण मे उसे व्यक्त करने की आवश्यकता भी कवि को नही रही है। वह जितनी अधिक से अधिक स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप मे खुलकर व्यक्त हो सकती थी—हुई है। एक ओर उसमे प्रभावात्मकता की वृद्धि हुई है, दूसरी ओर कला की दृष्टि से ह्रास हुआ है। कवि ने परिस्थितियो के अकन मे भी किसी नाटकीय कौशल का प्रयोग नही किया। वे प्राय घटनाओ को मोड़ देने के लिए या तो नियति-बल का आश्रय लेते हैं अन्यथा किसी अत्यन्त साधारण कौशल का। पात्रो के मनोवेगों व अन्तर्द्वन्द्व का अकन भी सजीवता से, या मनोवैज्ञानिक शैली मे नही किया गया। अन्तर्वेदना की कसक और भावनाओ का घात-प्रतिघात भी साधारण भाषा व सहज अनलकृत शैली मे व्यक्त किया गया है। उनके पात्र पर्याप्त मुखर हैं। आत्मपीड़ा में अभिव्यक्ति की स्पष्टता के आग्रह के कारण वे अक्सर झींखना आरम्भ कर देते है, जिससे भाव की तीव्रता और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। कुछ स्थलों पर यदि कवि ने कार्य-स्थल अन्तर्मन रखकर, व्यंजना का प्रयोग किया होता तो

---

१. आर्द्रा—सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ ४

अधिक उचित होता।

इस काव्य-विधा का चरम उत्कर्ष कवि प्रसाद की रचना 'लहर' की अन्तिम तीन गीतियो मे हुआ है। 'अशोक की चिन्ता' और 'शेरसिह का शस्त्र-समर्पण' का स्वर गीतिमय है। 'प्रलय की छाया' मे भावाभिव्यक्ति तथा नायिका के मनोमन्थन के साथ स्मृति-रूप मे आख्यान का संस्पर्श है। कथा का पृष्ठाधार पहली दो कविताओ मे भी है परन्तु साकेतिक रूप मे। ऐतिहासिक प्रसगो की ओर प्रसाद की अभिरुचि आरम्भ से ही रही है। परन्तु इन कविताओ मे इतिवृत्त बहुत कम तथा आत्माभिव्यक्ति व आत्मविश्लेषण अधिक है। घटनाओ के मनोगत कारण, प्रभाव, और मानव-मन का घात-प्रतिघात सभी कुछ इन कविताओ मे है।

'अशोक की चिन्ता' का प्रसग ऐतिहासिक है, परन्तु जैसा नाम से स्पष्ट है कवि ने कलिग-युद्ध का वर्णन उतना नही किया जितना विजेता पर तद्जनित क्षोभ और पश्चाताप का। केवल मनोभावनाएँ ही नही कवि की बौद्ध-दर्शन मे आस्था इस कविता मे व्यक्त हुई। कलिग-विजेता अशोक रणक्षेत्र के भीषण नरसहार को देखकर करुणार्द्र है, उसी के आत्मोद्गारो के रूप मे कवि की बौद्ध-दर्शन के प्रति अनुरक्ति और सिद्धान्तो का प्रतिपादन प्रकट हुआ है। यह ससार दु खमय है, नश्वर है, क्षणिक और परिवर्तनशील है। सुख की स्थिति इसमे घन मे चपला की दमक के समान है—इन्ही समस्त तथ्यो की हृदयगत स्वीकृति इस कविता मे है। बौद्ध-दर्शन मे प्रतिपादित चार आर्य सत्यो का आख्यान और फिर जीवन मे करुणा का स्वागत अशोक की वाणी द्वारा हुआ है। सम्पूर्ण कविता मे अशोक की मन.स्थिति का मनोवैज्ञानिक, परन्तु काव्यमय विश्लेषण कवि ने बौद्ध-दर्शन के सिद्धान्तो के प्रकाश मे किया है। कविता के अन्त मे कवि ने मानो अशोक के माध्यम से अपने भावी कार्यक्रम की घोषणा की है—

जलती सिकता का यह मग,
बह जा बन करुणा की तरंग,
. . . .
जलता है यह जीवन पतंग।[1]

वे ससृति के डगमगाते विक्षत पगों मे अनुलेप सदृश लगना चाहते है। इस प्रकार प्रख्यान ऐतिहासिक घटना की पृष्ठभूमि मे आत्माभिव्यंजन-शैली में प्रमुख पात्र की भावनाएँ, और कवि के दार्शनिक सिद्धान्त व्यक्त हुए है। इस कविता मे करुणा, पीडा और अतर्क्षोभ की प्रमुखता होने के कारण गीति-शैली की द्रवणशीलता और ऋजु सरल प्रवाह मिलता है। अन्तर्द्वन्द्व या भावनाओ के संघर्ष को इस प्रसंग में स्थान नहीं मिला अतः तीव्र घात-प्रतिघात, सजीव नाटकीयता तथा अप्रतिहत वेग इस कविता में नहीं मिलता। कोमल भावनाओं को कवि ने तदनुकूल सादृश्य-विधान और दृष्टान्तो की सहायता से अंकित किया है। कही इन वर्णनो मे प्रत्यक्ष चित्रांकन, और कहीं चित्र-व्यजना है।

कहीं अपने चित्रों में कवि ने रगो का स्पर्श भी दिया है, परन्तु ये रग मधुर और पिगल है, तीखे और भास्वर नहीं। ध्वनि को शब्दान्तरित करने का प्रयत्न भी यथाप्रसंग कवि ने किया

१. लहर—जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ ५०

है। इस कविता का छन्द मानव छन्द के चरणो के आधार पर निर्मित है। पांच पक्तियों की एक इकाई बनाकर कवि ने सम्पूर्ण कविता मे उसका आवर्त्तन किया है। छन्द विषय के सर्वथा अनुकूल है।

शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण—इस कविता में भी ऐतिहासिक घटना की पृष्ठभूमि मे सिक्खों के नेता शेरसिंह के मन मे होने वाली भावात्मक प्रतिक्रिया वर्णित है। अन्तर केवल इतना है कि 'अशोक की चिन्ता' मे विजेता का पश्चाताप अधिक है और इसमे पराजित के मन की ग्लानि। यह पराजय प्रतारणा की थपकी से हुई है, अत प्रवचक के प्रति मन का आक्रोश भी अनेक रूपों मे व्यक्त होने के कारण पंक्तियों मे ओजस्विता का संचार है। इस प्रकार वीर भावना के साथ करुणा का समागम इस कविता में हुआ है। एक ओर शेरसिंह के हृदय की ज्वाला इसमें शब्दबद्ध है और दूसरी ओर सिक्खों की करुण पराजय, ग्लानि और क्षोभ। युद्ध की घटना का उल्लेख भी शेरसिंह के मुख से प्रसग-कथा के रूप मे कराया गया है, अन्यथा प्रमुखता शेरसिंह की आत्माभिव्यक्ति की ही है। शेरसिंह के मन की क्षण-क्षण परिवर्तित भावधारा को कवि ने पृष्ठो पर उतारा है। इन भावनाओ मे राष्ट्र-प्रेम की धारा अन्त सलिला की भाँति बह रही है। स्वगतकथनात्मक होने पर भी कवि ने इस कविता मे नाटकीय शैली का प्रयोग किया है। वक्ता पात्र आत्म-कथन करता हुआ नही, किसी अन्य व्यक्ति के प्रति अपने उद्‌गारो को व्यक्त करता प्रतीत होता है। कविता की अधिकाश उक्तियाँ अत्यन्त ओजस्विनी शैली मे किसी अन्य को सम्बोधित करके कही गयी है। कविता का आरम्भ इसी प्रकार के नाटकीय कथन से होता है—

ले लो यह शस्त्र है
गौरव ग्रहण करने का रहा कर में—
अब तो न लेश मात्र।
लालसिंह ! जीवित कलुष पंचनद का
देख, दिये देता है
सिंहों का समूह नख दन्त आज अपना।[1]

इस प्रकार इस कविता की स्वगत शैली नाटकीय है परन्तु इसमे भावनाओ का तुमुल सघर्ष 'प्रलय की छाया' की भाँति अकित नही है। शेरसिंह के मन मे ग्लानि है—पराजय के कारण, परन्तु आत्मविश्वास है भारतीयता पर—इस प्रकार दो विरोधी भावनाओ का अकन तो है परन्तु परिस्थिति की विवश स्वीकृति है, भावनाओं मे संघर्ष नही। कविता की रचना कवि ने मुक्त छन्द में की है।

प्रलय की छाया इस दृष्टि से सबसे अधिक सफल कविता है। आद्यन्त इस नाटकीय गीति मे सूक्ष्म मनोविश्लेषण और अन्तर्द्वन्द्व व्याप्त है। आत्मिक तेज, गौरव और शील-चारित्र्य की तुलना मे रूप-सौन्दर्य की क्षुद्रता गुर्जरेश की रूप-गर्विता रानी कमला के चरित्र द्वारा स्पष्ट की गयी है। अपना अतीत कमला के मनःचक्षुओं के समक्ष चित्रपट के समान आता है—अतः

१. लहर—जयशकरप्रसाद, पृ० ५१

इन विगत घटनाओ के वर्णन में भी प्रत्यक्षता और चित्रमयता का समावेश कवि ने किया है। आद्योपान्त नारी के दो स्वरूपो की प्रतिष्ठा कवि ने कमला के चरित्र मे करके उनमें सजीव द्वन्द्व का अंकन किया हे। अनुपम-अलौकिक रूप-सौन्दर्य, जिसके अभिषेक का गौरव देव-बालाओ को मिला था, उसे उन्मत्त करने को पर्याप्त था। रूप-वर्णन और तद्जन्य गर्व का वर्णन प्रसाद की तूलिका ने कौशल से किया है। रूप का महोत्सव था—

पागल हुई मै अपने ही मृदु-गन्ध से,
कस्तूरी मृग जैसी।[1]

उपर्युक्त अप्रस्तुत-विधान मे अन्तिम परिणाम की भी व्यजना है। इसी रूप के वैभव के साथ सत्ता के मद ने अभिमान मे और वृद्धि की। गुर्जरेश के इगित पर नाचने का परिणाम—उसके हृदय मे भ्राति का उदय हुआ—

पद्मिनी जली थी स्वयं किन्तु मै जलाऊँगी,
वह दावानल ज्वाला
जिसमे सुलतान जले।[2]

उस समय वह भूल गयी कि इस महान् कार्य के लिए नयनाभिराम सौन्दर्य से अधिक हृदय की महानता और दृढ़ता की अपेक्षा है। नियति ने यह अवसर प्रदान किया—वे बन्दिनी रूप मे सुलतान के समक्ष लायी गई। रूप-गर्व और कर्त्तव्य का सघर्ष समुपस्थित था—

कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का,
.. . .
कितनी अबला थी और प्रमदा थी रूप की।[3]

आत्महत्या का प्रयत्न किया, परन्तु असफलता ने मनोगत भावनाओ को आत्म-प्रवचना का अवकाश प्रदान कर दिया—

जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है।[4]

और अन्त मे हृदय ने निर्बल होकर भारतेश्वरी का पद ग्रहण करने की लोलुपता के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया—

यह उपहार है, यह शृङ्गार है
मेरी रूप माधुरी का।[5]

कवि ने अंतर्द्वन्द्व और आत्म-प्रवचना का सुन्दर वर्णन किया है—

लोभ मेरा मूर्तिमान प्रतिशोध था बना
और सोचती थी मैं, आज हूँ विजयिनी
चिर पराजित सुलतान पद तल मे।

१. लहर, पृ० ५९
२. वही, पृ० ६४
३. वही, पृ० ६८
४. वही, पृ० ७३
५. वही, पृ० ७६

भावना-परिवर्तन के इस क्षण की कितनी विवश स्वीकृति है—

बिखरे प्रलोभनों को मानती-सी सत्य में
शासन की कामना मे झूम मतवाली हो।
एक क्षण, भावना के उस परिवर्तन का
कितना अजित था ?[1]

आन्तरिक सघर्ष का यह रूपान्तरण किसी श्रेष्ठतम नाट्य सघर्ष से कम नही। हृदय की इस मधुर छलना का समर्थन तुरन्त कवि ने बुद्धि के तर्क द्वारा कराया है।

दूर-दूर तक विस्तृत शासन, स्वर्ण-पिंजर में बदिनी कमला के सौन्दर्य और नेत्र-भगिमा के इगितो से परिचालित था, और हृदय इसे ही जीवन की सार्थकता व विजय समझ बैठा। वास्तविक स्थिति का अभिज्ञान उस समय तक नही होता, जब तक शैशव का अनुचर मानिक जो गुर्जर-नरेश से कमला के लिए आत्महत्या का सन्देश लाया था, स्वय अपने स्वामी का प्रतिशोध ले कर्त्तव्य-पालन करता है, और इस प्रकार वह क्षण-क्षण परिवर्तित चचल हृदय अन्त मे जीतकर भी जीवन की सबसे बडी हार स्वीकार कर लेता है। उन्हे भान होता है—

नारी यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है
जिसमे पवित्रता की छाया भी पड़ी नही।[2]

और यहाँ आकर संघर्ष का अन्त होता है। प्रसाद के मनोगत आदर्श इस पराजय-स्वीकृति मे व्यजित है। सौन्दर्य के अमल आवरण की सत्ता हिमबिन्दु-सी ढुलकती प्रतीत होती है।

इस कविता में प्रसाद की कला अपने चरमोत्कृष्ट रूप मे मिलती है। कमला के अन्तस्तल मे होने वाले अनेक घात-प्रतिघात, उसके प्राणों का झझावात, नारी-हृदय की सहज दुर्बलता है। सौन्दर्य का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन और घटनाओ के मानसिक पक्ष का, विशेषकर विरोधी प्रवृत्तियो का नाना-रूप संघर्ष सशक्त शैली मे अभिव्यक्त हुआ है। स्वगत शैली मे रचित होने पर भी इस कविता की नाटकीयता प्रश्नातीत है।

शैली की दृष्टि से भी छायावादी-शैली का अत्यन्त प्रौढ परिनिष्ठित रूप इस कविता मे उपलब्ध है।

मानवीकरण—

श्यामा-सृष्टि युवती थी
तारक-खचित नील-पट परिधान था
अखिल अनन्त मे
चमक रही थीं लालसा की दीप्त मणियां—
ज्योतिमयी, हासमयी, विकल विलासमयी।[3]

---

१. लहर, पृ० ७५-७६
२. वही, पृ० ८६
३. वही, पृ० ६१

विरोध-चमत्कार—

किन्तु दुर्भाग्य पीछा करने मे आगे था।[1]

भाषा सगीत और ध्वन्यात्मक सौन्दर्य—

मेरे उस यौवन के मालती मुकुल मे
रध्र खोजती थीं, रजनी की नीली किरणें।[2]

सचित्र प्रतीक-योजना—

कृष्णा गुरुवर्त्तिका
जल चुकी थी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान मे,
एक धूम्र-रेखा मात्र शेष थी,
उस निस्पंद रंग मन्दिर के व्योम मे,
क्षीण गंध निरवलम्ब।[3]

कला का लालित्य, सुकुमारता और अन्तर्द्वन्द्व के अकन मे सजीवता—सभी कुछ इसमे वर्तमान है। आख्यान और गीति दोनो की विशेषताएँ स्वगतशैली की नाटकीयता के माध्यम से और भी प्रभविष्णु हो गई है। इस प्रकार शिल्प नाटकीयता, शैली और रूपविधा सभी दृष्टियो मे प्रसाद की यह कलाकृति हिन्दी-साहित्य का अलकार है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि आधुनिक काल के काव्य मे इस प्रकार की जिन स्वगतकथनात्मक नाट्य कविताओ की रचना हुई, उनका काव्य-रूप केवल पूर्ववर्त्ती साहित्य की दृष्टि से मौलिक ही नही है, बल्कि इन रचनाओ मे परस्पर भी पर्याप्त वैविध्य और वैशिष्ट्य उपलब्ध है। जिस रूप मे इन कविताओं की रचना इस युग में हुई यथावत् उसी रूप मे इससे पूर्व उपलब्ध नही। यह रचना-विधि आधुनिक काल के साहित्य की नितान्त निजी विशेषता है। अपने मूल रूप मे इनका सम्बन्ध यद्यपि नाटको के बीच मे रचित स्वगतकथनात्मक उक्तियो से जोडा जा सकता है, फिर भी स्वतन्त्र कविताओ के रूप मे इनकी रचना और काव्य-विधा का निर्माण आधुनिक काल के कवियो ने निजी अभिरुचि के अनुसार व्यक्तिगत शैली मे किया। स्वतन्त्र और स्वत पूर्ण नाट्य-कविताओ की रचना आधुनिक आग्ल-साहित्य मे भी हुई, परन्तु हिन्दी-साहित्य पर उसके प्रत्यक्ष प्रभाव का कोई निश्चित् प्रमाण नहीं, दोनों में समानताएँ अवश्य ढूँढी जा सकती है, परन्तु एक, दूसरे का प्रत्यक्ष रूप से उपजीवी है, यह निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता। वस्तुतः हिन्दी-साहित्य में उपलब्ध इस प्रकार की कविताओ मे परस्पर भी समानताएँ इतनी कम है कि किसी एक की रचना दूसरे के अनुकरण पर की गयी हो, यह नही माना जा सकता। सभी कविताओं पर कवि के व्यक्तित्व, विषय, दृष्टिकोण, बाह्य परिस्थितियो और शैली का इतना प्रभाव रहा है कि परस्पर उनमे अन्तर और विशिष्टताएँ अधिक उत्पन्न हो गई है। उनका विवेचन एक सामान्य वर्ग के अन्तर्गत इसीलिए किया गया है कि उनमे मूलवर्ती तत्त्व, और रचना-सिद्धान्त समान है और ये तत्त्व है—(१) स्वतःपूर्णता,

---

१. लहर, पृ० ६३
२. वही, पृष्ठ ५९
३. वही, पृष्ठ ७६

(२) नाट्य शैली—जिसके अन्तर्गत संवाद और स्वगत दोनो का यथाविधि प्रयोग किया गया है। (३) घटनाओं वा वस्तुरूप कार्यव्यापार का अभाव। (४) अनभिनेयता (५) सक्षिप्तता (६) पात्रो की नियत सख्या—जिसमे अधिकतर एक समय मे एक ही पात्र के स्वगत-कथन की, व कही दो या तीन पात्रो के बीच सवाद की योजना मिलती है। पात्रो की भीड-भाड इनमे अप्राप्य है। स्वगत-शैली मे लिखी कविताओ मे एक से अधिक पात्र-योजना का प्रश्न ही नही उठा। इन मूल समानताओ के होने पर भी इन कविताओ की निजी विशेषताओ के कारण ही अधिकाश का विवेचन पृथक् रूप मे पिछले पृष्ठो मे किया गया, उसका पुनरावर्त्तन यहाँ न अनिवार्य है न अभीष्ट, अत इस प्रसग का यही समापन कर आगामी खण्ड मे मुक्तक-विधाओ का रूप-विवेचन किया जायगा।

खण्ड २

मुक्तक या अनिबद्ध काव्य

पंचम अध्याय
स्फुट मुक्तक

काव्य-रूप की दृष्टि से मुक्तक के दो प्रकार है—स्फुट मुक्तक तथा सयुक्त मुक्तक या निबद्ध कविता। इसके अतिरिक्त काव्य-विषय व कवि के दृष्टिकोण के आधार पर मुक्तक काव्य के अनेक भेद—गीत, प्रगीत व उनके उपभेद—उद्‌बोधन गीति, सम्बोधन गीति, शोक गीति, राष्ट्रीय गीति, तथा कला के आधार पर लोकगीत, कलागीत, पद आदि, बाह्य रूप या छन्द की विशेषता के आधार पर—दोहा शैली, कवित्त-सवैया शैली, सॉनेट आदि किये जाते है। काव्य मे सगीत-साधना के अनुपात और प्रकार-सम्बन्धी अन्तर पर आधृत मुक्तको के गेय और पाठ्य, भेद भी विद्वानो ने किये है, तथा आत्मगत और वस्तुगत दृष्टिकोण को क्रमश: प्रगीत और मुक्त-काव्य-रचना के क्षेत्रो मे सीमित कर दिया गया है, परन्तु उपर्युक्त मुक्तक-विधाओ मे पारस्परिक अन्तर अन्य कारणवश किया जाता है, रूप-विधा के भेद से नही। इसके अतिरिक्त प्राय. स्फुट छन्दों मे भी प्रगीत के तत्त्व तथा कविताओ मे वर्णनात्मक व पाठ्य-मुक्तको की विशेषताएँ लक्षित की जा सकती है। इसी प्रकार प्रगीत मे और अनेक छन्दो मे बँधी नीतिपरक या वर्णनात्मक कविताओ मे भी पारस्परिक अन्तर आकार का नहीं प्रकार का होता है। उपर्युक्त कारणो को दृष्टि मे रखते हुए हमने मुक्तक का नितान्त रूपगत विभाजन दो भेदो—'स्फुट-मुक्तक' और 'सयुक्त-मुक्तक' मे किया है, तदनन्तर अन्य विशेषताओ के आधार पर उनका विभाजन अन्य उपभेदो मे किया गया है। उक्त विभाजन में प्राचीन सस्कृत आचार्यों के तद्‌विषयक आशय को दृष्टि मे रखते हुए उनके मत को ही मान्यता दी गई है। अर्थात्, मुक्तक से हमारा आशय ऐसी रचना से है जो स्व-अर्थ-प्रकाशन मे समर्थ और पूर्वापरक्रम से निरपेक्ष हो, व जिसके अर्थ की अन्विति व रसास्वादन के लिए पाठक को अन्य पद्यो का सम्बल ग्रहण न करना पडे। ऐसी मुक्त रचनाओ मे स्वत-पूर्ण छन्द-रचना के अतिरिक्त ऐसे पद्याशो का भी अन्तर्भाव कर लिया गया है जिनका छन्द-विधान पिगल-शास्त्र के नियमानुकूल नही परन्तु जिनमे अर्थ या भाव की अन्विति के लिए एक छन्द से दूसरे छन्द पर नही जाना पड़ता—अर्थात्, जिनका आशय अथवा कवि का प्रेष्य अपनी समग्रता मे एकाधिक पद्य-खण्डो के सम्मिलित अर्थ से नही, एक विशेष स्वत पूर्ण पद्याश से स्पष्ट हो जाय। इस पद्याश का निर्माण एक छन्द तक सीमित हो सकता है, अथवा कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार इस छन्द मे विस्तार, सकोच, मिश्रण, अथवा परिवर्तन करके नव्य आकार का निर्माण कर सकता है, परन्तु इस प्रकार के दो पद्यांशों या छन्दो की स्थिति सापेक्ष नही होनी चाहिए। इस प्रकार के पृथक् पद्यांशो में अन्तराय न हो और अर्थ की अन्विति व पूर्णता की दृष्टि से उनका स्वरूप सावलम्ब नही हो—यही मुक्तक

(स्फुट) काव्य की विशेषता है। इसीलिए एक ही विषय पर लिखे गए अनेक छन्दों को, जिनकी स्थिति निरपेक्ष है, हमने स्फुट मुक्तक और सापेक्ष स्थिति वाले एकाधिक छन्दों को संयुक्त माना है।

संस्कृत काव्य-शास्त्र में मुक्तक काव्य का लक्षण जिस रूप मे निर्धारित किया गया उसका आधार पूर्वापर निरपेक्ष स्फुट काव्य ही है—यह उन आचार्यो के विवेचन से स्पष्ट है। संयुक्त-मुक्तकों का उल्लेख व लक्षण-निरूपण इन आचार्यो ने पृथक् रूप से किया है जिसका उल्लेख यथाप्रसंग किया जायगा। मुक्तक के विषय मे सर्वप्रथम उल्लेखनीय मत अग्निपुराण-कार का है—

मुक्तकं श्लोक एकंकश्चमत्कारक्षमः सताम्।[1]

अर्थात् मुक्तक वह श्लोक है जो स्व-अर्थ की परिव्यक्ति मे स्वत समर्थ है। केवल अर्थ की अभिव्यक्ति मे ही नही, अर्थजन्य चमत्कार उत्पन्न करने, दूसरे शब्दो मे रसास्वाद कराने मे सक्षम, निरपेक्ष छन्द-रचना मुक्तक कहलाती है। अग्निपुराण के उपरान्त अभिनवगुप्ताचार्य का निम्नांकित उद्धरण भी इसी आशय का निरूपक है—

मुक्तमन्येनाऽऽलिंगितम्। तस्य संज्ञायां कन्। तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्तनिराकांक्षार्थ-मपि प्रबन्धमध्यवर्ती मुक्तकमित्युच्यते।'''पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।

अर्थात् पूर्व और पर पद्यो से जो असम्बद्ध हो, स्वतन्त्र रूप से अपने विषय को प्रकट करने में अकेला ही समर्थ हो, ऐसे पद्य को मुक्तक कहते है। निराकाक्ष अर्थ-द्योतन मे समर्थ होने पर भी वह प्रबन्ध के बीच मे समाविष्ट हो सकता है। पूर्वापर अनालिंगित होने पर भी मुक्तक रसोद्रेक मे समर्थ होता है। इस प्रसग मे एक बात स्पष्ट कर देनी उचित होगी। प्रबन्ध के बीच मे मुक्तक की अग रूप मे स्थिति को अभिनवगुप्ताचार्य ने केवल सम्भावना के रूप मे स्वीकार किया है, वह उसका अनिवार्य अनुबन्ध नही। जैसा भूमिका भाग मे पहले भी उल्लेख किया जा चुका है[2] आचार्य दण्डी और वामन ने मुक्तक की स्वतन्त्र महत्ता स्वीकार नही की थी। आचार्य दण्डी ने तो प्रकीर्ण और सयुक्त दोनो प्रकार के मुक्तको को सर्गबन्ध काव्य का अंग ही स्वीकार कर लिया—

मुक्तकं कुलकं कोश. संघात इति तादृशः
सर्गबन्धांगरूपत्वादनुक्त पद्यविस्तर ।१।।१३।[3]

मुक्तक,कुलक,कोश,सघात आदि सर्गबन्ध महाकाव्य के अवयव मात्र है,अत इनका विस्तृत पद्य-विस्तार नही किया गया। आचार्य वामन का मत भी इस मत से बहुत भिन्न नही,उसका विस्तृत उल्लेख भूमिका मे किया जा चुका है। अन्य आचार्यों ने प्राय शब्द-भेद से उक्त लक्षणों का पुनरावर्तन ही किया है। परन्तु क्रमशः परवर्ती आचार्यो के मत मे मुक्तक और प्रबन्ध आदि के पारस्परिक

---

१. अग्निपुराण, अनुवादक—रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० ३१
२. दे० भूमिका—पृ० २२-२३
३. काव्यादर्श—दण्डी, प्रथम परिच्छेद, पृ० १२

सबध के विषय मे किसी प्रकार का भ्रम नही रहा। आचार्य हेमचन्द्र व विश्वनाथ आदि ने स्पष्ट रूप से मुक्तक काव्य को अनिबद्ध व मुक्त काव्य ही माना है।[1] इन आचार्यों का मत मुक्तक को निरपेक्ष रचना मानने के पक्ष मे ही है। आचार्य दण्डी ने केवल मुक्तक के बाह्य रूप को ही दृष्टि मे रखकर इस विषय मे अपना मत व्यक्त किया है। यहाँ मुक्तक शब्द छन्द के पर्याय-रूप मे प्रयुक्त हुआ है और सयुक्त मुक्तक के विभिन्न प्रकारो की परिगणना छन्द-सख्या के आधार पर की गई है। यदि आचार्य दण्डी का मत अग्निपुराणकार के मत के समान होता, तो वे मुक्तक-रूपो को सर्गबद्ध काव्य का अग-मात्र नही मानते। इन दोनो काव्य-प्रकारो की विधा एक-दूसरे से भिन्न है। सर्गबद्ध या निबद्ध काव्य मे विभिन्न छन्दों, पद्याशों या प्रसंगो की सानुबन्ध रचना की जाती है और अनिबद्ध या मुक्तक काव्य मे प्रत्येक छन्द या पद्य-खण्ड निरपेक्ष होता है। प्रबन्ध-रचना मे जितने पद्य या पद्य-समूह पूर्वापर सम्बन्ध से निरपेक्ष होगे उतने ही जोड़ उस रचना मे लक्षित किये जा सकेगे, उसमे निर्बाध धाराप्रवाह वस्तु-विकास नही होगा और यह प्रबन्ध-रचना का बहुत बडा दूषण है। इससे भिन्न पूर्वापर-क्रम से निरपेक्ष स्व-अर्थ व्यजक शक्ति, मुक्तक का प्रथम और आवश्यक अनुबन्ध है। प्रबन्ध का कोई ऐसा छन्द या पद्याशमुक्तक नही हो सकता जिसकी स्थिति सापेक्ष हो। ऐसा हम उसी स्थिति मे मान सकते है जब मुक्तक को छन्द का पर्याय स्वीकार कर लिया जाय, जो उचित नही। व्यवहार मे प्रायः होता यही है—मुक्तक काव्य की प्रेरक अनुभूति या भाव-खण्ड अपने-आपमे इतना क्षणिक और सघन, अत अभिव्यक्ति मे सक्षिप्त होता है कि उसका माध्यम प्रायः एक ही छन्द हुआ करता है। इसी प्रकार चमत्कार-प्रधान अभिव्यक्ति की लालसा भी मुक्तककारो को अर्थगर्भित मुक्तक रचना मे प्रवृत्त करती है, परन्तु मुक्तक काव्य, छन्द नही। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने छन्द को साधन और अभिव्यजना का उपकरण-मात्र माना है, रूप-विधा का पर्याय नही। अतः मुक्तक के प्रसग मे भी उसकी स्थिति महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप मे ही स्वीकार की जा सकती है, वह उसका पर्याय नही हो सकता। 'छन्द योग का वाहन है।'''एक चित्त के अनुभव को अनेक चित्तो मे अनायास सचरित करने वाला महान साधन है।"[2] एक उदाहरण से हम अपनी बात को पुष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। 'रामचरितमानस' के एक दोहे और कबीर या रहीम के दोहों मे छन्द या बाह्याकार की दृष्टि से कोई अन्तर नही, परन्तु काव्य-रूप की दृष्टि से हम दोनो का अन्तर्भाव एक ही विधा के अन्तर्गत नही कर सकते। वास्तव मे मुक्तक का काव्य-रूप विषय-सापेक्ष है। कहा जा सकता है कि स्फुट-मुक्तकों का माध्यम एक छन्द व संयुक्त-मुक्तक का—कुछ दूर तक परस्पर सम्बद्ध, परन्तु अन्यथा निरपेक्ष, एकाधिक छन्द होते है, किन्तु मुक्तक प्रबन्ध का अग नही हो सकता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुक्तक केवल सर्गबद्ध काव्य का अग नही, उसकी अपनी

---

१. अनिबद्ध मुक्तकादि।
काव्यानुशासन—हेमचन्द्र, अध्याय ८, पृ० ४६५
छन्दोबद्धपद पद्य तेन मुक्तेन मुक्तकम्।
साहित्यदर्पण—विश्वनाथ, विमला व्याख्या षष्ठः परिच्छेद, पृ० २२४

२. साहित्य का मर्म—आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ४१ तथा ४६

स्वतन्त्र सत्ता व महत्ता, निजी काव्य-रूप और उसकी विशेषताएँ है। मुक्तक की तीन मूल विशेषताएँ है—सक्षिप्तता, सरसता और निरपेक्ष सत्ता। स्फुट-मुक्तक के प्रसग मे सक्षिप्तता से अभिप्राय एक छन्द या एक पद्य खण्ड मे सीमित रचना से ही होगा। इसी सक्षेप के कारण इन रचनाओ मे एक ही स्थिति, भाव या विचार का सघन वर्णन होता है, जीवन का समग्र व विशद चित्रण नही। एक ही छन्द मे समाहृत होने के कारण मुक्तककार को इस वर्णन मे बडे कौशल से काम लेना पडता है। उत्कृष्ट मुक्तक-रचना मे ग्रहण और त्याग के लिए विशेष विवेक और कौशल वाछित होता है।

मुक्तक का सौरस्य किस प्रकार सस्कृत और हिन्दी के आचार्यों मे समान रूप से मान्य रहा है, इस विषय का विस्तार प्रस्तुत प्रसग मे अनावश्यक है। आचार्य आनन्दवर्द्धन अमरूशतक के एक-एक श्लोक को सैकडो प्रबन्धो की अपेक्षा काव्य-गुण मे अतिशायी स्वीकार करते थे। प्रबन्ध-काव्य के पक्षपाती आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी प्रबन्ध-काव्य को वनस्थली कहकर, मुक्तक को उसकी तुलना मे चुना हुआ गुलदस्ता कह गये, और प० पद्मसिह शर्मा तो मुक्तक को मीठी रोटी के सदृश सर्वांग मधुर मानते थे। यह सब कहने का अभिप्राय यही है कि यद्यपि मुक्तक प्रबन्ध की भाति चिरप्रभावक्षम नही होता परन्तु उसे प्रबन्ध का अग मात्र मानकर उपेक्षणीय या अविवेचनीय भी नही कहा जा सकता। थोडे मे रसानुभूति करा देना मुक्तक की ही सामर्थ्य है, उसकी अपनी उपयोगिता व महत्त्व है।

मुक्तक और विशेष रूप से स्फुट मुक्तक की स्थिति किस प्रकार पूर्वापर निरपेक्ष होती है यह हम स्पष्ट कर आए है। अतः उसका पुनराख्यान न करके हम स्फुट मुक्तको के प्रकारो का विवेचन करेगे।

आधुनिक साहित्य के पूर्ववर्ती युग—रीतिकाल मे काव्य-रचना के लिए मुक्तक शैली का प्रयोग निरपवाद रूप से हुआ। यही परम्परा यथावत् भारतेन्दु-युग के कवि-मडल द्वारा अपना ली गई। विशेष रूप से काव्य के रूप-विधान के क्षेत्र मे किसी विशेष उल्लेखनीय नवीनता के दर्शन नही हुए। "हरिश्चन्द्र के सहयोगियो मे काव्यधारा को नए-नए विषयो की ओर मोडने की प्रवृत्ति तो दिखाई पडी, पर भाषा व्रज ही रहने दी गई और पद्य के ढाँचो, अभिव्यजना के ढग तथा प्रकृति के स्वरूप-निरीक्षण आदि मे स्वच्छन्दता के दर्शन न हुए। इस प्रकार की स्वच्छन्दता का आभास पहले-पहल प० श्रीधर पाठक ने ही दिया। ' ' उन्होने खडीबोली पद्य के लिए सुन्दर लय और चढाव-उतार के कई नए ढाँचे भी निकाले और इस बात का ध्यान रखा कि छन्दो को सुन्दर लय से पढना एक बात है, राग-रागिनी गाना दूसरी बात। ख्याल या लावनी की लय पर जैसे 'एकान्तवासी योगी' लिखा गया वैसे ही सुथरे-साइयो के सधुक्कडी ढग पर 'जगत-सचाई-सार'.....।"[1] नाम गिनाने के लिए जो कतिपय मौलिक प्रयोग इस युग के काव्य में किये गए, तथा उर्दू, अगरेजी आदि के प्रभाव से जो कुछ वैविध्य काव्य-रूपो की दिशा में प्रस्तुत हुआ, उसका विवेचन भूमिका मे किया जा चुका है, अतः उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही। यहाँ इस ओर इगित करने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि रीतिकालीन मुक्तक-

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ७२८-७२९

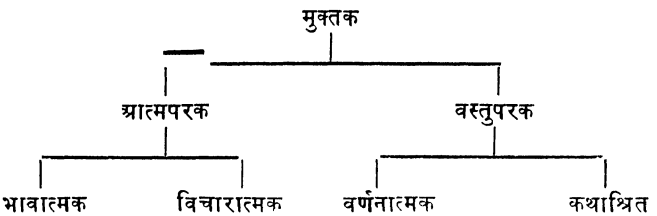
परम्परा, विषय-भेद और रूप-वैविध्य से भारतेन्दु काल से होती हुई द्विवेदी-युग तक चली आई—इस तथ्य की ओर सकेत कर दिया जाय। विवेच्य साहित्य (१९००-१९५७ ई०) मे जो आरम्भिक मुक्तक काव्य मिलता है, उसमे विरासत मे मिलने वाले काव्य-रूपों मे कोई विशेष उल्लेखनीय मौलिकता नही थी। अतः इस युग के काव्य को काव्य-रूपो की दृष्टि से परम्परा से विशेष सम्बल नही मिला। इसके अतिरिक्त मुक्तक काव्य, कला के वैभव की दृष्टि से रीतिकाल मे समृद्धि और उत्कर्ष की उस चरम सीमा का स्पर्श कर चुका था कि उसमे विशेष विकास का अधिक अवकाश नही था। अतः इस काल के आरम्भ मे मुक्तक-रचना का बोलबाला तो रहा परन्तु उसमें विशेष चमत्कार, नवीनता या वैचित्र्य-सृष्टि सम्भव न हो सकी। परम्पराबद्धता और एकरूपता का एक कारण और भी था। काव्य-रचना के क्षेत्र मे ब्रजभाषा के पाँव उखाड़कर खड़ीबोली के पाँव जमाने के प्रयत्न से कुछ समय तक कला के उत्कर्ष पर बाधक प्रभाव पड़ा। कवि-वर्ग अपनी शक्ति, काव्य-रूपों मे नवीन प्रयोगो की अपेक्षा, नवीन भाषा के प्रयोग पर आजमाता रहा और परिणामतः सीधी-सादी, प्रसादगुण-सम्पन्न बोलचाल की भाषा और पुराने ढाँचो मे इतिवृत्तात्मक मुक्तक रचनाओ के ढेर लगते गए। दूसरी ओर इन कवियो ने सरस मुक्तक-रचना की पूर्व-प्रचलित प्रणाली को छोडकर खडीबोली मे पद्य-प्रबन्धो की रचना की ओर ध्यान लगाया। द्विवेदीजी की अधिकाश कविताएँ इसी वर्ग की है। इस प्रकार की काव्य-रचना का प्रमुख कारण जीवन की हलचल और खडीबोली की अनिश्चित स्थिति थी "मुक्तको की काव्य-माधुरी लाने के लिए अपरिपक्व खडीबोली की गागर मे सागर भरना असम्भव था। खण्डकाव्य या महाकाव्य लिखने के लिए पर्याप्त अवकाश की आवश्यकता थी। बहुधंधी कवि इन परिस्थितियों के ऊपर न उठ सके।"[१] मौलिकता के अभाव का आशिक कारण गद्य-विधाओं का प्रचलन और प्रोत्साहन भी था। लेखक की प्रतिभा दोनो क्षेत्रो मे बँट गई। किन्तु इस युग की अधिकाश मुक्तक-रचना का श्रेय द्विवेदी-युग के कवियो को ही दिया जा सकता है, क्योकि छायावाद के उन्मेष के उपरान्त कवियो की प्रवृत्ति, प्रगीत और अंगरेजी काव्य के प्रभाव से आने वाली विभिन्न गीति-विधाओ की ओर उन्मुख हो गई। इन कवियो ने काव्य-रचना आरम्भ करते हुए जो कुछ मुक्तक-रचना की उसमे भी विशेष कलात्मक उत्कर्ष सम्भव न बन पडा। छायावाद के उपरान्त भी विविध काव्य-धाराओ के कवियों ने मुक्तक शैली को विशेष प्रश्रय नही दिया। इस युग के उपरान्त मुक्तक रचनाएँ विरल और उनमे भी मौलिकता का लगभग अभाव ही हो गया। जो कुछ मुक्तक परवर्ती साहित्य मे लिखे गए, उनमे से अधिकांश का अन्तर्भाव परम्परागत रूप-विधाओ मे ही किया जा सकता है।

मुक्तक काव्य के बाह्य रूप-विधान का विवेचन, दूसरे शब्दो मे छन्द-विधान का ही परीक्षण कहा जा सकता है। यह तो हुई बाह्याकार की स्थूल विशेषता की बात; परन्तु एक छन्द में अभिव्यक्त दो भिन्न विषयों मे—भाषा, शैली, अप्रस्तुत-विधान, दृष्टिकोण—एक शब्द मे समग्र अभिव्यजना कला—अतः प्रभाव और बाह्य रूप मे अन्तर होता है। उदाहरण के लिए एक ही छन्द कवित्त और सवैया का प्रयोग रीतिकालीन कवियों ने शृगार और वीर दोनों रसों

---

१. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिंह, पृष्ठ १०५

के लिए किया। इन्हीं छन्दों का प्रयोग द्विवेदी-युग के कवियो ने नीति और उपदेश के लिए किया। अतः सहज प्रश्न है कि क्या केवल छन्द के आधार पर इन सभी रचनाओ को एक वर्ग मे रखा जा सकता है? उत्तर होगा नही। यदि केवल छन्द-योजना का विवेचन ही लक्ष्य हो तो निश्चय ही ऐसा किया जा सकता है। परन्तु मुक्तक-रचना मे विषय और भाव-तत्त्व की स्थिति आत्म तत्त्व के समान, छद का स्थान अस्थिपिजर या ढाँचे के सदृश, और रूप-विधान अस्थि-पिजर समवेत् उस समस्त शरीर-रचना के समान है जिसका निर्माण अनेक अवयवो से होता है। वह उसके समग्र बाह्य रूप-आकार का पर्याय है। इस बाह्य शरीर पर काव्य के मूलवर्ती दृष्टिकोण और विषयस्वरूप का प्रभाव पडता है। अत विवेचन की सुविधा और स्पष्टता के लिए, इस युग के मुक्तको का विभाजन निम्नलिखित वर्गों मे किया जा सकता है—



द्विवेदी-युग के मुक्तक काव्य मे एक विशेषता सामान्य रूप से प्राप्य है, और यह विशेषता है अधिकाश कवियो का वस्तुपरक दृष्टिकोण। द्विवेदी-युग नैतिक आदर्शो और वस्तुगत मूल्यो का युग था। निपट आत्मानुभूति को अभिव्यक्ति का अवकाश सामाजिक प्रतिबन्धो के इस युग मे बहुत कम मिला, अतः व्यक्तिगत भावनाओ या सुख-दुखात्मक अनुभूतियो के प्रकाशन का प्रयत्न इस युग के मुक्तको में भी नही हुआ। छायावादी कवियो द्वारा व्यक्तिगत राग-विराग की अभिव्यक्ति के लिए, स्फुट मुक्तको का आश्रय बहुत कम लिया गया और उसके बाद छोटी कविताओ या सयुक्त-मुक्तको मे काव्य-रचना की प्रवृत्ति कुछ इतनी लोकप्रिय हुई कि प्रगतिवादी काव्य मे वस्तुगत मूल्यो की पुनः प्रतिष्ठा होने पर भी स्वतन्त्र और स्वत पूर्ण छन्द-रचना की प्रवृत्ति पुनरुज्जीवन न पा सकी। इस प्रकार के कुछ इने-गिने प्रयोग होते रहे, परन्तु स्फुट छन्द-रचना की शैली लोकप्रिय न हो पाई। द्विवेदी-युगीन काव्य के उपरान्त अधिकतर मुक्तको मे कवि-वर्ग भावाभिव्यक्ति के लिए प्रगीत—उसके विभिन्न प्रकारो, तथा वर्णन और बुद्धि-प्रधान रचनाओं के लिए छोटी कविताओ का आश्रय लेता रहा। अत. मुक्तको का विवेचन विशेष रूप से द्विवेदी-युग के प्रसग मे ही करना सम्भव होगा।

वस्तुपरक या विषय-प्रधान मुक्तक

द्विवेदी-युग की अधिकाश कविता इतिवृत्तात्मक कविता है, यद्यपि आत्मपरक काव्य का सर्वथा अभाव नही, परन्तु अधिकता वस्तुप्रधान मुक्तक की ही है। इसी कारण हम विवेचन का आरम्भ विषय-प्रधान रचनाओ से कर रहे है। वस्तुनिष्ठ मुक्तक भी दो रूपो मे लिखे जा सकते है—(१) वे मुक्तक जिनमे मानव, प्रकृति, उत्सव, प्रसग, या दृश्य का वर्णन किया जाय, अर्थात् वस्तुवर्णनात्मक मुक्तक (२) वे मुक्तक जिनमें किसी घटना, कथा, या आख्यान का विवरण

प्रस्तुत किया जाय—अर्थात् कथात्मक मुक्तक। इस प्रकार के आख्यानात्मक या कथाश्रित मुक्तको मे विस्तारपूर्वक कथा-वर्णन की सभावना तो नही होती, किन्तु इसमे कथात्मक सस्पर्श या कथा का आश्रय भर लिया जा सकता है। इस प्रकार इन दोनो ही प्रकार के मुक्तको का स्वरूप मूलत वर्णनात्मक है परन्तु एक मे इतिवृत्त-वर्णन और दूसरे मे कथा-वर्णन की प्रधानता होती है। दूसरे-- अर्थात् कथाश्रित मुक्तको की रचना भक्त कवियो द्वारा अपने आराध्य की लीला का वर्णन करने के लिए प्राय. सगुण भक्ति के साहित्य मे की गयी, परन्तु आधुनिक युग तक आते-आते कविता के विषय बदल गए। आराध्य का लीला-वर्णन कुछ दूर तक भारतेन्दु व उनके सहयोगी कवियो ने किया, परन्तु द्विवेदी-युग मे व्यक्तिगत भक्ति-धर्म की अपेक्षा समाज-धर्म और राष्ट्र-धर्म काव्य-चेतना मे अधिक व्याप्त हो गया। काव्य-विषय बदलने से काव्य-रूप बदल गये। कथा-वर्णन की अपेक्षा सिद्धान्त-निरूपण और नैतिक उपदेशो की ओर कवि समुदाय की अभिरुचि हो गयी, अत: कथाश्रित मुक्तक-रचना का अवकाश ही नही रहा। इस प्रकार के प्रयोग इने-गिने है।

वर्णनात्मक मुक्तक इस काल मे प्रभूत मात्रा मे लिखे गये। केवल मात्रा की दृष्टि से ही इन मुक्तको का आधिक्य नही था, वैविध्य की दृष्टि से भी इनमे अनेकरूपता उपलब्ध होती है। इन मुक्तको मे—प्रकृति, युद्ध, ऐतिहासिक स्थल और समाज जैसे व्यापक और विशद विषय भी अपनाए गये तथा मेहदी, चातक, कोकिल और कृष्ण, वीरबहूटी, मुसकान और चकोर आदि, जैसे सीमित और छोटे-छोटे विषयो पर भी काव्य-रचना की गयी। किसी मानव, पदार्थ, प्रसग या व्यापार आदि को विषय बनाकर इस प्रकार की कविता दो रूपो मे की जा सकती है—काव्य-विषय के बाह्य रूपाकार का वर्णन, तथा उस विषय-विशेष के प्रति कवि की अपनी मानसिक प्रतिक्रिया का वर्णन। पहले प्रकार की कविता मे कवि की दृष्टि बाह्य आकार-प्रकार पर टिकी रहती है और वह यथासम्भव रूपाकन का प्रयत्न करता है। दूसरे प्रकार की कविता मे वह अतर्मन मे गहरे पैठकर अपनी अमूर्त व अतरग प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। वस्तुगत आधार, उसके प्रति कवि की आत्मगत प्रतिक्रिया एव शब्दो के माध्यम से उसका प्रत्यकन—इस प्रकार अनुभूति से अभिव्यक्ति तक एक वृत्त बन जाता है। काव्य-प्रकार का निणय और उसका श्रेणी-बधन उसमे अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण विशेषता के आधार पर कर दिया जाता है। जहाँ कवि की आत्मगत भावनाओ का अकन अधिक, और वस्तुगत आधार उद्दीपक मात्र होता है, वह मुक्तक विषयी-प्रधान होता है। तथा जब वस्तु की महत्ता और उसी के रूप को अधिकाधिक यथावत् रूप मे शब्दो मे बाँधने का उपक्रम किया जाता है तब विषय-प्रधान काव्य का सृजन होता है। द्विवेदी-युग की यह अधिकाश वर्णनात्मक मुक्तक कविता दूसरी अर्थात् वस्तुगत या इतिवृत्तात्मक मुक्तक-रचना की कोटि मे आती है। स्वभावत: बाह्यार्थनिरूपिणी दृष्टि के कारण इनमे प्रत्यक्षता और स्पष्टता उत्पन्न हो गयी है। प्रसाद गुण और तत्काल अर्थ-ग्रहण कराने की विशेषता, अभिधा शक्ति में अन्य दो शक्तियों की अपेक्षा अधिक होती है, तथा उक्ति-वैचित्र्य, विलक्षणता और चमत्कार कम। अभिधा मे वाक्यार्थ ही वाच्यार्थ होता है, अत: स्थूल वर्णनो मे कवि इसी शक्ति का आश्रय लिया करते हैं। द्विवेदी-युग के अधिकांश मुक्तक इसी ढग के है। वर्णनकइवियो ने विविध विषयो के किये हैं। इनमें अधिकता स्थान-विशेष, पशु-पक्षी, प्रकृति और

मानव-रूप के वर्णनो की है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'नवलनागरी सुनगरी वर्णन' तथा 'अलका-वर्णन' इसी प्रकार के इतिवृत्तात्मक ढंग पर किये है। कहीं-कही अप्रस्तुत-विधान मे चमत्कार-योजना का प्रयत्न भी है, परन्तु प्रसाधन स्थूल और साकार है। कवि के शब्दो मे अलकापुरी कुछ इस प्रकार है—

तोमें दामिनी है चारु कामिनी विराजें उतै,
तोमें सुरचाप उत चित्र संवारे हैं,
मधुर गजराज तो में गायन के काज तहाँ,
सुन्दर मृदंगन के शब्द होत प्यारे हैं।
तोमें जल जाल थल मनि के विसाल तहाँ,
तेरे सम तिनके शिखर तुग भारे हैं,
अलकापुरी के दिव्य धामन में धाराधर,
एते साज तेरी तुल्यताई के निहारे हैं।[1]

इसी ढग पर कवियो ने बाह्य स्थूल विशेषताओ को मूर्तिमान करते हुए अनेक वर्णन किये है। शैली मे कही प्रसादमयता है, और अन्यत्र अतिशय चमत्कृत वर्णन। ला० भगवानदीन के अधिकाश मुक्तक इसी प्रकार के कल्पनाविलास के आधार पर रचित है, भावप्रेरित वक्रता और सौन्दर्य-सृष्टि उन प्रसगो मे बहुत कम है। ताजमहल के वर्णन के लिए कवि का अप्रस्तुत-चयन देखिये—

कैधौं बासुकी को अंड खड हूँ परयो है आय,
चारिहू मीनार सो सपोलन समाज है।
चारि भुजा धारि के विराजो किधौं भूतनाथ,
जमुना निकट बहै सोई नागराज है॥
'दीन कवि' कैधौं वीर दन्तयुत देखियत,
ब्रजतट इन्द्रगज मस्तक दराज है।
जग के समस्त सौध संघन को सिरताज,
भारत में राजि रह्यो आगरे को ताज है।[2]

उक्त वर्णन में सहृदयता और भावप्रेरित सौन्दर्य-वर्णन उतना नही, जितनी दूर की सूझ और मौलिकता का दुराग्रह।

विशेष स्थलो के वर्णन के अतिरिक्त व्यापक दृष्टि से देश-सुधार का वर्णन भी कवियो ने किया है। 'भारतोदय' शीर्षक मे कवि 'शंकर' ने इसी आशय की षट्पदियाँ लिखी है। स्वभावतः ऐसे वर्णनों मे कवि विशेष स्थल तथा सूक्ष्म बातों का वर्णन उतना नही करता जितना सामान्य और स्थूल प्रसंगो का। अत: इस प्रकार के व्यापक विषय को लेकर रचे गये मुक्तको का स्वरूप परिचयात्मक हो जाया करता है—

---

१. पूर्ण-संग्रह—राय देवीप्रसाद पूर्ण, पृ० २४२
२. नवीन बीन—ला० भगवानदीन, पृ० ७४-७५

कामना विज्ञान-वादी मुक्ति की करने लगे,
ध्यान द्वारा धारणा मे ध्येय को धरने लगे।
आलसी, पापी, प्रमादी पाप से डरने लगे,
अन्धविश्वासी सचाई भूल मे भरने लगे।
धूलि मिथ्या की उड़ा दी दम्भ-दाहक रो गया,
देख लो लोगो दुबारा भारतोदय हो गया।[1]

इस प्रकार के वर्णनो के अतिरिक्त द्विवेदी-युग में मुक्तक-रचना के लिए एक विशेष पद्धति प्रचलित थी। कतिपय प्रसिद्ध पौराणिक, ऐतिहासिक, घटनात्मक या स्थल-विशेष के चित्रो को लक्ष्य करके कवि उनकी विशेषताओं के वर्णन के लिए काव्य-रचना किया करते थे। यह पद्धति इस युग की विशेषता है। जहाँ चित्र का सम्बन्ध किसी घटना या प्रसग से होता है वहाँ तो वर्णन मे तारतम्य अत: छन्दो मे पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और ये रचनाएँ कविताओ का रूप धारण कर लेती है, परन्तु जहाँ कोई प्रसिद्ध ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्ति चित्राकित होता है, वहाँ कवि अपने को प्राय: उसके रूप-वर्णन तक ही सीमित रखता है। इस प्रकार की कविताओ का बहुलाश राजा रविवर्म्मा के चित्रो को विषय बनाकर रचा गया। अधिकाश ऐसी कविताएँ 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई तथा कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाओ को आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सकलित कर 'कविता-कलाप' नाम से प्रकाशित कराया। ला० भगवानदीन ने भी अपनी 'नवीन बीन' मे इस प्रकार के कुछ मुक्तको की रचना की है जिनमे से अधिकतर कथाश्रित है।

इस प्रकार के मुक्तको मे कवि की कल्पना चित्र मे अकित विशेषताओ से सीमित रहती है। इसके अतिरिक्त चित्रकला, प्रयुक्त मूर्त उपादानों की विशेषता के कारण समतल और सपाट होती है तथा उसमे घनत्व और गहराई का अभाव होता है, अत: आकारगत विशेषताएँ इस कला मे अधिक स्पष्ट रूप से तथा मनोगत विशेषताएँ व्यंग्य रूप मे अकित रहती है। इन चित्रों पर आधारित मुक्तकों मे इनकी सतही और बाह्य विशेषताओ का वर्णन तो किया गया है, परन्तु चित्रित पात्रो के मनोगत भावो और अन्तर्वृत्तियो का वर्णन नही किया गया। स्वभावत इनका स्वरूप वर्णनात्मक है और वर्णन है बाह्य रूप का। बाह्य रूप मे भी निश्चित रेखाओ और वर्णों से कवि चित्र की यथावत् प्रतिकृति नहीं कर पाता। उसने प्राय. स्थूल अवयवो का आश्रय ही लिया है। एक विषय पर अधिकतर इस प्रकार के एकाधिक मुक्तक लिखे गए, परन्तु एक शीर्षक मे बँधे होने पर भी इनकी स्थिति सापेक्ष नही तथा इनमे परस्पर भावान्विति भी उपलब्ध नही है। इनके पात्र है—सरस्वती, लक्ष्मी आदि पौराणिक नारियाँ। इनके अतिरिक्त कुछ सामान्य पात्रो पर भी ऐसी मुक्तक-रचनाएँ की गईं, परन्तु उनमे अनेक मुक्तक परस्पर विषय-सम्बन्ध से निबद्ध है, अत: उनका उल्लेख यथाप्रसग किया जायगा। स्फुट-मुक्तको की रचना कवियों ने प्राय: उन्हीं पात्रों पर की है जिनका चरित्र और स्वरूप हमारा चिरपरिचित है अत: यदि कही वर्णनों मे अन्विति या अर्थ की दृष्टि से कोई अन्तराय भी उपस्थित होता है

---

१. शकर सर्वस्व—सं० हरिशंकर शर्मा, पृ० ९९

तो अनजाने ही हमारी कल्पना तत्काल उन रिक्त स्थानो को अर्जित ज्ञान और सस्कार-ज्ञान से भर देती है (यद्यपि ऐसे अवसर बहुत कम आए है)। ऐसे मुक्तको की रचना राय देवी-प्रसाद 'पूर्ण,' नाथूराम शर्मा 'शकर', पण्डित कामताप्रसाद 'गुरु', बाबू मैथिलीशरण गुप्त व स्वय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने की, परन्तु स्फुट मुक्तक अधिकतर राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने ही लिखे। जैसा पहले भी कहा गया है इन वर्णनो की शैली मे विशेष निखार व अभिव्यजना मे सौष्ठव नही मिलता। इनकी रचना परम्परागत अलकारो और छन्दो के सहारे ही की गई है। एक उदाहरण अब तक व्यक्त मान्यता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होगा—

कुन्द घनसार चन्द्र हूते अंग शोभावन्त
भूखन अमन्द त्यों बिदूखत हैं दामिनी।
कजमुखी कंजनैनी बीना करकंज धारे
सोहै कंजआसन सुरी हं अनुगामिनी।
भाव रस छन्दन की कविता निबन्धन की
पूरन प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धिन की स्वामिनी।
जै जै मात बानी विश्वरानी बरदानी देवी
आनंद प्रदानी कमलासन की भामिनी।[1]

बिना चित्रो का आधार लिए कृष्ण आदि के रूप और महत्त्व का वर्णन भी कवियो ने किया है। ला० भगवानदीन ने 'कोकिल-कृष्ण' शीर्षक मे कोकिल और कृष्ण की समानता और तुलना की दृष्टि से वर्णन किया है, किन्तु वहाँ भी कवि गुण-वर्णन की अपेक्षा रूप-वर्णन ही अधिक करता रहा है।

नख-शिख-वर्णन की चमत्कारमूलक शैली का भी इस काल मे अभाव नही। कवि कही अग-विशेष पर रुककर एक के बाद एक अप्रस्तुत-विधान का तारतम्य बाँध देता है। इन चित्रो मे चमत्कार, किन्तु स्थिरता होती है। उक्त शैली मे नायिका की 'लट' का वर्णन देखिये—

विधि लै के मृनाल के तार ते खीनता,
त्यों मकतूल तें कोमलताई।
घन तें घनता अरु भौंर तें स्यामता,
नेहिन के चित सों चिकनाई॥
मन-मोहकता मन-मोहन तें,
पुनि नागिन ते लहरान हि पाई।
मन मीन फंसावन की अंकुसी,
या लटूरी अरी! लट तेरी बनाई।[2]

नख-शिख-वर्णन रायकृष्णदास ने दोहो मे भी किया है। इन दोहो पर हर रूप मे बिहारी के समासगुण-प्रधान दोहों की व्यंजनात्मक शैली का प्रभाव है। अनेक दोहो में उन्होने शृगार,

---

१. कविता-कलाप—स० आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० १
२. ब्रजरज—रायकृष्णदास, पृ० ३

रूप और मुद्राओं का वर्णन किया है—

वाके गौर बदन पै, यों तिल फबत अपार।
इन्दीवर फूलो मनों, रूप तड़ाग मंझार॥
सब विधि सुन्दर तासु मुख, नजर न कहुं लगि जाय।
तातें तिल-मिस देव ने, दियो दिठौनो लाय॥[1]

रूप-वर्णन जब मुद्रा या क्रिया-वर्णन में रूपान्तरित हो जाता है तो उसमे गति उत्पन्न हो जाती है। रूप-वर्णन, कवि की स्थिर दृष्टि के निरीक्षण का परिणाम होता है, और क्षण-क्षण परिवर्तित मुद्राओ, चेष्टाओ व कार्य-व्यापार के साथ कवि की दृष्टि भी गतिशील रहकर गत्यात्मक चित्र अकित करती है—

नासा मोरि, कराहि कै, अंगनि, भौंहनि ऐंठि।
काटो नहिं काढ़न दियो, कांटे-सी हिय पैठि॥[2]

प्रथम दो चरणो मे कवि ने क्रमशः चार मुद्राएँ अकित की है, जिनके परिवर्तन मे समय का अन्तराल भी लक्षित नही किया जा सकता।

रूप-वर्णन की इस शैली मे समय के साथ अन्तर प्रस्तुत हुआ। छायावादी कवि ने हर दिशा मे स्थूल को छोडकर सूक्ष्म की ओर प्रयाण किया। उनके रूप-वर्णनो मे भी स्थूल बाह्य विशेषताओ की अपेक्षा मानसिक प्रभावो को, आन्तरिक जगत् को शब्दान्तरित करने का प्रयत्न अधिक रहा। उनके उपरान्त स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति करने वाले कवियो ने भी मुद्राओ, नख-शिख और स्थूल बाह्याकार का वर्णन करने की अपेक्षा रेखाएँ अकित कर उनमे रग भरे है। रगो से रजित इन चित्रो मे प्रभावात्मकता अधिक है—

मंहदी रजित मृदुल हथेली पर माणिक मधु का प्याला,
अंगूरी अवगुण्ठन डाले स्वर्ण वर्ण साकी बाला,
पाग बैंजनी, जामा नीला डाट डटे पीने वाले,
इद्रधनुष से होड़ लगाती आज रंगीली मधुशाला।[3]

उपर्युक्त उद्धरण मे अनुप्रास का अनुरणन ही नही इद्रधनुषी रगो की एक पूरी दुनिया वर्तमान है। हाला, प्याला और साकी के साथ कवि ने मधुशाला के वातावरण को भी शब्दो मे बाँधा है—

जलतरग बजता, जब चुबन
करता प्याले को प्याला,
वीणा झकृत होती, चलती
जब रुनझुन साकी बाला,
डांट-डपट मधुविक्रेता की
ध्वनित पखावज करती है,

---

१. ब्रजरज, पृ० २९
२. वही, पृ० ३९
३. मधुशाला—बच्चन, पृ० ३१

मधुरव से मधु की मादकता
और बढ़ाती मधुशाला।[1]

उक्त प्रसंग में केवल मधुशाला का क्रियाव्यापार ही वर्णित नहीं, उससे उत्पन्न ध्वनियों की प्रेषणा का भी प्रयास किया गया है।

मानव-रूप के साथ कहीं-कहीं कवियो ने क्रियाओं या चेष्टाओं—शास्त्रीय शब्दावली मे हाव-भाव का वर्णन भी किया है। किन्तु यहाँ भी कवि की दृष्टि ऊपरी विशेषताओं पर केन्द्रित रही है, कहीं उसने महत्त्व-वर्णन या प्रशस्ति-वर्णन के द्वारा कुछ आत्मगत दृष्टिकोण का संस्पर्श दिया है, परन्तु बहुत दूर तक नही। कवि भगवानदीन द्वारा कुछ छन्दों मे हरि की मुसकान का वर्णन करने के उपरान्त, मुसकान मात्र का निम्नाकित वर्णन हुआ है—

देख तुझे प्रेयसी अधर पर जग जन होते हैं कुरबान।
शत्रु अधर पर देख तुझी को लड़कर नष्ट हुए बलवान॥
पुत्र अधर पर देख तुझी को माता के पूजे अरमान।
कहूँ कहाँ तक महिमा तेरी जगदाधार मन्द मुसकान॥[2]

इन पंक्तियो मे विषय और विषयी दोनो की अन्तर्वृत्ति-निरूपण के स्थान पर 'मुसकान' के महत्त्व का वर्णन अधिक है। यद्यपि कवि ने उक्त कविता की रचना 'मुसकान के प्रति' शीर्षकान्तर्गत की है किन्तु प्रगीत-गुण और उदात्त शैली के अभाव मे इसे सम्बोधन गीति (Ode) नही माना जा सकता।

कुछ कवियो ने इस प्रकार का सौन्दर्य-वर्णन रीतिकालीन अलंकृत और चमत्कार-प्रधान शैली मे किया। इनमे नाथूराम 'शंकर' और अयोध्यासिंह उपाध्याय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'रस कलश' मे हरिऔध द्वारा रचित दोहे—इसी शैली के अन्तर्गत आते है। उनमें रीतिकालीन शब्द-चमत्कार, अर्थ-गौरव और भाव-व्यंजना सभी कुछ है—

नवोढा— **इत उत दौरि दुरति रहति दूरहि ते बतराति।**
प्रिय तन छाँह बनन चहत तिय लखि छाँह सकाति॥
विधु बदनी के बदन पै है बिलसत श्रम, बिन्दु।
किधौं सुधा-सीकरन-मय है राका-निसि इन्दु॥[3]

विषय-भेद से सम्पूर्ण 'रस कलश' उपर्युक्त शैली मे ही रचा गया है। कवि ने नायक-नायिका-भेद और रस का वस्तुगत प्रपंच जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार के विषय अन्तर्भूत है, इसी प्रकार की रचना-शैली मे लिखा है।

इसी शैली के कुछ दोहे श्रीधर पाठक की रचनाओं मे भी मिलते है—

अनियारे आयत बड़े कजरारे दोउ नैन
अचक आय जिय में गड़े काढ़े ढीठ कढ़न।[4]

---

१. मधुशाला, पृ० ३०
२. नवीन बीन—ला० भगवान दीन, पृ० ४
३. रस कलश—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ० ११४, ३४
४. मनोविनोद—श्रीधर पाठक, पृ० ११

नाथूराम 'शंकर' का इसी शैली में लिखा गया नख-शिख-वर्णन वर्षों काव्य-प्रेमियों को चमत्कार के कारण कंठस्थ रहा—

कज्जल के कूट पर दीपशिखा सोती है कि,
श्यामघन-मण्डल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि,
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है।
शंकर कसौटी पर कञ्चन की लीक है कि,
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि,
ढाल पर खांडा कामदेव का दुधारा है।

उक्त पंक्तियाँ राजा रविवर्म्मा के द्वारा अंकित 'वसन्तसेना' के रूप-वर्णन के प्रसंग में लिखी गई थी।

व्यंग के निमित्त द्विवेदीजी और समसामयिक कवियों ने कहीं-कहीं अत्यन्त सामान्य विषयों का वर्णन भी किया है। द्विवेदीजी के इसी ढंग पर 'बलीवर्द' शीर्षक में रचित मुक्तक पर्याप्त लोकप्रिय रहे—

बलीवर्द! तुम पशु होने से अविवेकी कहलाते हो,
मद पर भी निज उन्मदता से विजय बड़ाई पाते हो।
साभिमान धनवान पास भी नहीं विवेक फटकता है,
अहंकार-मद में वह अपने चूर सर्वदा रहता है।[1]

वर्णनात्मक मुक्तकों में प्रकृति-वर्णन भी उतनी ही, कदाचित् अधिक मात्रा में हुआ जितना मानव-रूप का वर्णन। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने विभिन्न ऋतुओं—वसन्त, पावस, ग्रीष्म, शरद, शिशिर आदि से लेकर चातक, वीरबहूटी, चकोर आदि प्राणियों पर अनेक कवित्त, रोला और दोहा छन्दों में रचना की। भगवानदीन ने भी 'पूर्णिमा की चाँदनी' और 'मेघ-स्वागत' आदि प्राकृतिक विषयों पर स्फुट रचनाएँ कीं, परन्तु स्वागत की दृष्टि से कविता करने पर भी कवि उसमें आत्माभिव्यक्ति न कर सका। प्राय जिसके स्वागत के अवसर पर काव्य-रचना की जाती है, कवि उसका महत्त्व-वर्णन और अपने आत्मोद्गारों की मिली-जुली अभिव्यक्ति करता है। परन्तु वस्तुनिष्ठ वर्णन की प्रवृत्ति इस काल की कविता में युग-धर्म के रूप में कुछ इस प्रकार व्याप्त हो गई कि अवसर मिलने पर भी कवि अन्त. का उद्घाटन नहीं कर सके प्रकृति पर अपनी भावनाओं का आरोप कर पाता है, न उसके साथ यथाप्रसंग समानुभूति व विषमानुभूति करता है। केवल चमत्कारमूलक अप्रस्तुत-विधान के सहारे उसके बाह्य रूप का वर्णन करता है। 'मेघ स्वागत' शीर्षक के अन्तर्गत ला० भगवानदीन का इसी प्रकार का छप्पय देखिये—

---

१. वेश्या क ला—संग्रहकर्ता देवीदत्त शुक्ल, पृ० २७५

वे पीताम्बर धरत तुमहुँ चित चपला धारी।
वे पहिरत बनमाल देवधनु तव छविकारी॥
वे सिर धारत पंख मोर तुम पर बलिहारी।
वे गोपिन सुखदानि तुमहुँ गोकुल सुखकारी॥
वे श्यामा को सुमनस हरत, तुम श्यामा छविवर करत।
हे घनवर तुम श्रीकृष्ण ते कछुक प्रबल ही लख परत॥[1]

प्रकट है कि कवि मेघो के सौन्दर्य पर मुग्ध और आत्मविभोर नही होता। उसकी बुद्धि कृष्ण की वेशभूषा और क्रियाओ से समानता स्थापन के प्रयत्न मे भटकने लगती है। इसी प्रकार पूर्णिमा की चाँदनी का स्निग्ध, शीतल प्रभाव कवि को शान्ति दान नहीं करता। उसके व्यापक प्रसार मे कवि उसकी उज्ज्वलता, मृदुलता से अभिभूत नही होता, वह उसे हर स्थान पर डटी प्रतीत होती है। इस प्रसार मे क्षीरसागर का फेनोज्ज्वल प्रवाह नही किसी उद्दण्ड की मोर्चा-बन्दी का-सा आभास होने लगता है—

खिल रही है आज कैसी भूमितल पर चाँदनी।
खोजती फिरती है किसको आज घर-घर चाँदनी॥
जिस जगह देखो वहीं पर देख पड़ती है डटी।
कोट, घर, अट्टालिका दीवार, दर पर चाँदनी॥[2]

प्रकृति के विशिष्ट उपादानो के साथ प्राकृतिक स्थलो, वहाँ के वातावरण, पशु-पक्षियो आदि के वर्णन भी इन कवियो ने किये है। ला० भगवानदीन ने सोलह सौ छन्दों मे 'रामगिर्याश्रम' का वर्णन किया है। ऋतुओ के वर्णन सर्वत्र चमत्कार-प्रधान नही, कही-कही सुन्दर बन पडे है। 'पूर्ण' के शब्दों मे वर्षा का आगमन देखिये—

सुखद शीतल सुचि सुगन्धित पवन लागी बहन,
सलिल बरसन लगो वसुधा लगी सुखमा लहन।
लहलही लहरान लागीं सुमन बेलीं मुकुल,
हरित कुसुमित लगे झूमन वृक्ष मंजुल विपुल।[3]

उक्त वर्णन मे माधुर्य भा है, उल्लास और अनुप्रास के प्रयोग से उत्पन्न नाद-सौन्दर्य भी, किन्तु मौलिकता तथा विशेष कलात्मकता का यहाँ भी अभाव है। यह विशेषता इस युग की मुक्तक-रचना मे सामान्य रूप से मिलेगी।

कुछ स्फुट वर्णन श्रीधर पाठक ने 'वनाष्टक' मे किये। किन्तु ये वर्णन भी परम्परागत शैली मे इतिवृत्तात्मक ढग की मुक्तक-रचना के अन्तर्गत ही आते है। नवीन चेतना के द्योतक प्रकृति-वर्णन श्रीधर पाठक की निबद्ध कविताओं मे मिलते हैं। 'वनाष्टक' के सवैये परम्परा-पालन के ही उदाहरण है—

---

१. नवीन बीन—ला० भगवानदीन, पृ० २२
२. वही, ८०
३. सरस्वती—अगस्त १९०३, पृष्ठ ३०६

जेठ की दारुण आतप स,
तप के जगतीतल जावै जला
नभ-मंडल छाया मरुस्थल-सा
दल बांध के अँधड़ आवै चला।
जलहीन जलाशय, व्याकुल हैं
पशुपक्षी, प्रचंड है भानुकला
किसी कानन कुंज के धाम में,
प्यारे, करें विसराम चलौ तौ भला।[1]

क्रमशः प्रकृति-वर्णन की शैली मे तो छायावाद के प्रवर्तन के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत हुआ ही, परन्तु इन वर्णनों के लिए कवियो ने रूप-विधाएँ भी बदल ली। मुक्तक के स्थान पर निबद्ध कविताओं मे रचना का प्रचलन हुआ, परन्तु अपवाद-रूप मे नई कविता मे इस परिवर्तित धारणा और दृष्टिकोण के व्यंजक कुछ प्रकृति-वर्णन मुक्तकों मे मिल जाते है—

निर्जन की जिज्ञासा है निर्झर की तुतली बोली में
विटपों के हैं, प्रश्नचिह्न विहगों की वन्य ठिठोली में
इंगित है, 'कुछ और पूछ लूं' इन्द्रचाप की रोली मे
संशय के दो कण लाया हूँ आज ज्ञान की झोली में।[2]

मानव-जीवन के छाया-सस्पर्श, गुण, क्रियाओ और चेतना का आरोप इन नए वर्णनो की विशेषता है। जहाँ चित्रण प्रधान है वहाँ भी ये कवि रूप की अपेक्षा सूक्ष्मतर उपकरणों—रंग और रेखा पर अधिक बल देने लगे—

शारदीया—

सोना ही सोना छाया आकाश में,
पश्चिम में सोने का सूरज डूबता,
पका रंग कंचन जैसे ताया हुआ,
भरे ज्वार के भुट्टे पक कर झुक गये।
'गला-गला' कर हाँक रही गुफना लिये,
दाने चुगती हुई गलरियों को खड़ी,
सोने से भी निखरा जिसका रंग है
भरी जवानी जिसकी पककर झुक गई।[3]

प्रकृति और मानव के अतिरिक्त भी विविध विषयों पर इस युग में मुक्तक-रचना की गयी। 'युद्ध' जैसे गम्भीर विषय से लेकर 'मेहदी' जैसे चलते विषय तक इन मुक्तकों का विस्तार हुआ। इन विषयो में वैविध्य था—'कृष्ण का गाय से प्रेम', 'काम-कौतुक,' 'जीवन-सग्राम,'

---

१. वनाष्टक—श्रीधर पाठक, पृ० ३
२. तार सप्तक—प्रभाकर माचवे, पृ० ५४
३. वही—रामविलास शर्मा, पृ० ६५

'मेहदी', 'आँख' और 'आँसू' आदि विषयो पर कवियोने मुक्तक लिखे। ला० भगवानदीन के 'आँख' और 'मेहदी' पर लिखे गए मुक्तक विशेष लोकप्रिय हुए। इन मुक्तको की शैली पर उर्दू का प्रभाव होने से संस्कृत पदावली के प्रयोग पर भी इनमे जीवन्तता और चुहल उत्पन्न हो गई है—

कहो तो कह दें आपकी आँखों को क्या समझे,
सिता, सिंदूर मृगमद-युक्त अद्भुत कुछ दवा समझे
अगर इसको न मानो तो बता दें दूसरी उपमा।
सहित हाला हलाहल मिश्रिता सुन्दर सुधा समझे ॥[1]

इसी प्रकार मेंहदी पर कवि की उक्तियाँ है—

तुमने पैरों में लगाई मेंहदी, मेरी आँखों में समाई मेंहदी।
खूनी होते हैं जग के सब्ज रग, दे रही है यह दोहाई मेहदी।
कुल से छुटी, छूटकर पीसी गई, तब तेरे पद छूने पाई मेहदी ॥[2]

परन्तु कही-कही विषय—सामान्य, अभिव्यजना—चमत्कार प्रधान व छन्द—परम्परागत होने पर भी सूझ का चमत्कार अत्यन्त प्रभावक्षम है। 'आसू' पर 'हरिऔधजी' की एक मुक्तक रचना देखिये—

आँख का आँसू ढलकता देखकर,
जी तड़प करके हमारा रह गया।
क्या गया मोती किसी का है बिखर
या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥
ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ी,
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ ॥
या अनूठी गोलियाँ चाँदी मढ़ी,
खेलती हैं खजनों की लड़कियाँ ॥
या जिगर पर जो फफोला था पड़ा,
फूट करके वह अचानक बह गया।
हाय था अरमान जो इतना बड़ा,
आज वह कुछ बूँद बन कर रह गया ॥[3]

अन्तिम दो पक्तियो मे अनुभूति की मार्मिकता विशेष प्रभावशालिनी है। ऐसे विषयो पर स्फुट मुक्तक लिखने की परिपाटी छायावादी कवियो मे उनकी प्रतीकात्मक और परोक्ष-व्यंजना के कारण विरल हो गई। किन्तु जब-जब इस प्रकार के विषयो पर परवर्ती साहित्य मे

---

१. नवीन-बीन—ला० भगवानदीन, पृ० ४४
२. वही, पृ० ३१
३. कवि भारती—सम्पादक—सुमित्रानन्दन पन्त, बालकृष्ण राव, डा० नगेन्द्र } पृ० ५५

मुक्तक-रचना की गई तो उनमें वर्ण्य के बाह्य स्वरूप की व्याख्या की अपेक्षा भाव-व्यंजना पर बल दिया गया। बुद्धि, केवल अलंकार और मौलिक अप्रस्तुत-योजना के दाँव-पेंच जुटाने की अपेक्षा अप्रस्तुत-विधान की प्रभावात्मकता और भाव-व्यजना का अधिक प्रयास करने लगी, फलतः अभिव्यक्ति के उपादान और प्रसाधन बदल गए। आज के कवि के शब्दों मे 'चुम्बन' का वर्णन देखिये—

रख दिये तुमने नज़र मे बादलों को साध कर
आज माथे पर सरल संगीन से निर्मित अधर
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छाँह में
बाँसुरी रखी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर।[1]

वर्णन का सम्बन्ध अधिकतर मूर्त उपादानो, घटनाओं व प्राणियों आदि से जोड दिया जाता है, क्योकि वर्णन प्राय. उसी का किया जाता है जो नेत्रो का विषय हो, अनुभूति व विचार का वर्णन नही, प्रतिपादन, अभिव्यक्ति तथा विश्लेषण ही अधिक सहज सम्भव है। जब ये अमूर्त तत्त्व वर्णन का विषय बनाये जाते हैं, तो कवि इनकी व्याख्या करता है। इस प्रकार के अमूर्त विषयों पर भी व्याख्यात्मक मुक्तक-रचना द्विवेदी-युग से ही आरम्भ हो गई थी। परवर्ती साहित्य मे इस विधा का और परिष्कार एव निखार हुआ। कवि 'सनेही' के शब्दो मे 'क्रान्ति मे शान्ति' का वर्णन देखिये—

घूमता कुलाल-चक्र कितनी ही तीव्रता से,
एक रेखा सुस्थिर, छिपी है चक फेरे में।
छिपी रहती है मंद मुस्कान छवि छाया,
भाग्य-भामिनी के तीखे तेवर-तरेरे में।
आशा-द्वार खुलते भी लगती नहीं है देर,
डालती निराशा जब चित्त घोर घेरे में।
क्रान्ति में 'सनेही' एक शान्ति का निवास छिपा,
प्रबल प्रकाश छिपा अधिक अँधेरे में॥[2]

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'भक्ति और वेदान्त विषयक' छन्दो में 'जीवन की निस्सारता', 'बैस सब गई', 'तपस्वी की महिमा', 'ससार की असारता' आदि विषयो का वर्णन किया है। रूपनारायण पाण्डेय ने 'परिवर्तन' के सर्वव्यापी नियम का विवेचन इसी प्रकार छप्पयो मे किया। इनमे किसी प्रकार का सिद्धान्त-प्रतिपादन या उपदेश नही, कतिपय अमूर्त सन्यो का वर्णन है। कवि शंकर का 'सरस्वती की महावीरता' प्रसंग भी इसी प्रकार का है।

कथाश्रित मुक्तको की रचना आधुनिक युग मे बहुत कम हुई। जैसा पहले भी कहा जा चुका है इस प्रकार के मुक्तक आराध्य के लीलावतार रूप को लक्ष्य करके ही प्रायः लिखे जाते थे। इस युग में इस प्रकार की रचनाओं का एकान्त अभाव नही तो न्यूनता अवश्य हो गई।

---

१. कवि भारती—सम्पादक—सुमित्रानन्दन पन्त आदि, पृ० ७३२
२. वही, पृ० १५१

विष्णु के दो प्रसिद्ध अवतारों राम और कृष्ण का चरित-वर्णन देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'विपद्विरण स्तोत्र' में किया है। कहीं-कहीं इन कवित्तों का स्वर कथात्मक की अपेक्षा निवेदनात्मक हो गया है। ला० भगवानदीन ने बीरबल की प्रशस्ति में कुछ छप्पय लिखे हैं। नायक का महत्त्व वर्णन करने के कारण इनमे कथा का संस्पर्श आ गया है। परन्तु कला की दृष्टि से इनका स्तर अत्यन्त सामान्य कहा जायगा—

निर्धन विप्रकुमार बुद्धि में आगर थे ये।
चतुराई के कूप हास्य के सागर थे ये॥
कठिन समस्या पलकमात्र में हल करते थे।
प्रश्नोत्तर से चारवाक को शल करते थे॥
भर देते थे घटगर्भ में कुम्हड़े का अति दीर्घ फल।
गिन लेते तारे व्योम के लेते माप धरा सुतल।[1]

वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' में ऐतिहासिक पात्रों पर कुछ स्फुट दोहों की रचना की है। इन दोहों मे किसी घटना या तथ्य का समग्र वर्णन तो सम्भव नही हो सका, परन्तु इनमे प्रसंग-गर्भत्व के रूप मे कथा का प्रयोग अवश्य मिलता है। ऐतिहासिक वीर पुरुष और नारियों के प्रति कवि ने अपने हृदय का प्रशस्ति-भाव व्यक्त किया है। इनमे घटनाओं का वर्णन नही, उल्लेख भर है—

ठौर-ठौर ठुकराय अरि, धनि दुर्गा राठौर।
राखी ठकुराई-ठसक, मारवाड़-सिरमौर॥

तथा

निज प्रिय लाल कटाय जो प्रभु शिशु लियो बचाय।
क्यों न होय मेवाड़ में पूजित पन्ना धाय॥[2]

आत्मपरक-मुक्तक

द्विवेदी-युग के काव्य की विशेषताओं में सर्वसम्मति से वस्तु-तत्त्व और इतिवृत्तात्मक शैली की प्रमुखता की स्वीकृति कुछ इस प्रकार कर ली गई है कि इस प्रसग मे आत्मपरक मुक्तक-रचना का प्रश्न उठाना ही विवादास्पद प्रतीत होता है, अतः विवेच्य युग के आरम्भ मे इस प्रकार के वर्ग-विभाजन मे अपना अभिप्राय स्पष्ट करके इस प्रसग को मूल विषय की ओर बढाने का प्रयत्न करेगे। कविता का विषय और विषयी-प्रधान वर्गों में विभाजन, पाश्चात्य चिन्ताधारा के अनुकरण पर किया जाता है और पश्चिम के विद्वानो ने स्वयं इस बात की ओर इंगित किया है कि काव्य मे इस प्रकार का भेद-स्थापन अन्तिम या आत्यन्तिक नही हो सकता। इन दोनों प्रकारों की सीमा-रेखाएँ परस्पर एक-दूसरे का स्पर्श करती है। अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण विशेषताओं के आधार पर इनके प्रकार का निश्चय किया जाता है, कदाचित् विवेचन की सुविधा

---

१. नवीन बीन—ला० भगवानदीन, पृ० ५७
२. वीर-सतसई—वियोगी हरि, पृ० ५६, ५९

के लिए। अतः एक बात स्पष्ट है—इन वर्गों का परस्पर विरोध नहीं है, तथा एक प्रकार की विशेषताओं की एकान्त स्थिति और दूसरे प्रकार की विशेषताओं का नितान्त अभाव भी किसी रचना-विशेष मे सम्भव नही है। कतिपय रचनाओ मे दोनों तत्त्व इस प्रकार घुले-मिले रहते हैं कि एक की सापेक्ष महत्ता का निर्णय करना दुष्कर हो जाता है।

इसी प्रकार आत्मपरक दृष्टिकोण भी कविता मे एकाधिक रूपों में व्यक्त हो सकता है। व्यवहार मे विषयी-प्रधान कविता और व्यक्तिगत कविता मे अभेद स्थापित किया जाता है। अर्थात् वह कविता जिसमे इदम् के वर्णन की अपेक्षा अहम् का विश्लेषण प्रमुख है। जिसमे व्यक्तिगत राग-द्वेष, सुख-दुःख, आदि की अभिव्यक्ति प्रधान हो। दूसरे शब्दों मे अन्तर्मुखी दृष्टिकोण, इस कविता का पर्याय है। यदि इस शब्द का अर्थ-विस्तार किया जाय, तथा इस पर मनन किया जाय, तो केवल अपनी बात नही, जग की बात भी इस प्रकार की कविता का विषय हो सकती है। वस्तुतः जब कवि की दृष्टि विषय पर, वस्तु-तत्त्व पर केंद्रित रहती है, और वह उसकी बाह्य विशेषताओ का वर्णन करने मे प्रवृत्त होता है, तो कविता मे विषय की प्रधानता हो जाती है; और जब वह बाह्य विषय का आधार लेकर भी उसका वर्णन नही करता बल्कि उसके प्रति अपनी भावनाओं या विचारो को व्यक्त करता है, तब उसमे व्यक्ति प्रधान होता है। अतः विषयी-प्रधान कविता मे व्यक्तिगत विषय नही व्यक्तिगत दृष्टिकोण अनिवार्य है। किसी सामाजिक विषय व घटना के प्रति अभिव्यक्त व्यक्ति के मन की भावात्मक व विचारात्मक प्रतिक्रिया भी इस प्रकार आत्मपरक कविता के अन्तर्गत आएगी। उदाहरण देकर बात को स्पष्ट कर दे—अपने इष्टदेव की लीला का वर्णन भक्त कवियो ने आत्मविभोर होकर किया तो हमे उसके लिए एक नए नाम की उद्भावना करनी पडी—कथाश्रित प्रगीत। यही कविता यदि बिना किसी रागात्मक सम्बन्ध के—किसी सामान्य मानव या बालक की लीलाओ का वर्णन करने के लिए लिखी जाय तो इसका स्वरूप वस्तुपरक हो जायगा। क्यो ? पहले मे कवि की अपनी अनुभूति होगी दूसरे मे निरीक्षण-मात्र। और स्पष्ट शब्दो मे—अपनी सन्तान के प्रति तथा किसी अन्य बालक की क्रीडाओ के प्रति मन की प्रतिक्रिया मे जो अन्तर है वही आत्मपरक और वस्तुपरक दृष्टिकोण मे। परन्तु आत्मपरक कविता का सम्बन्ध व्यक्तिगत विषयों पर व्यक्तिगत अनुभूति की व्यंजक कविताओं से जोड दिया गया अतः द्विवेदी-युग के उपरान्त छायावादी तथा स्वच्छन्द प्रेम के काव्य को ही अन्तर्निरूपिणी कविता मानकर—ऐसे समस्त काव्य का इस वर्ग से बहिष्कार कर दिया गया जिसमे वस्तुगत मूल्यों की प्रतिष्ठा हो भले ही वह आत्मपरक दृष्टिकोण से की गई हो अतः एक ही बार में समस्त द्विवेदीयुगीन काव्य इस परिधि से बाहर जा पड़ा।

द्विवेदी-युग में जो कुछ आत्मपरक साहित्य लिखा गया वह निश्चय ही परवर्ती साहित्य से सर्वथा भिन्न है। उसमे व्यक्ति के आत्म को, उसकी निजी अनुभूतियों को, प्रकाशन का अवकाश नहीं मिला। सामाजिक और नैतिक समस्याएँ तथा रीतिकालीन परम्पराओं के प्रति विद्रोह, बाह्य और सामान्य धरातल पर इतना प्रबुद्ध हो चुका था कि कवि को अन्तर्मुखी चिन्तन तथा आत्मकेन्द्रीकरण का अवसर ही नही रहा। उसके सामने प्रस्तुत समस्याएँ—सामाजिक, सार्वजनिक और जातिगत थीं। व्यक्ति की समस्याएँ इनकी तुलना मे उपेक्षणीय और नगण्य, तथा उनकी

अभिव्यक्ति सामाजिक अपराध था। नैतिक प्रतिबन्धों की शृखलाओं मे बधा कवि आत्मा की पुकार को झुठलाता रहा, अथवा आत्माभिव्यक्ति को कम से कम काव्य का विषय न बना सका। इसका अभिप्राय यह नहीं कि किसी रूप में भी आत्माभिव्यक्ति इस युग के काव्य मे हुई ही नहीं। हुई अवश्य, परन्तु उसकी दिशा भिन्न थी और उसके स्वरूप मे छायावादी, रोमानी, और स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति से बहुत अन्तर था। द्विवेदी-युग के कवि आत्माभिव्यक्ति करते रहे परन्तु सामाजिक विषयों, समस्याओ तथा मान्यताओं के प्रति। इन कवियो ने केवल सामाजिक वर्णन नही किये, इन विषयों के प्रति अपने उद्‌गार, समाज की दुर्दशा के प्रति अपनी करुणा, और सामाजिक समस्याओ के विषय मे अपना चिन्तन व्यक्त किया। इस प्रकार सामाजिक विषयो को लेकर कविता दो रूपों में हुई—(१) इन विषयो का वस्तुनिष्ठ वर्णन तथा (२) इनसे सम्बन्धित कवि की अपनी भावात्मक या बौद्धिक प्रतिक्रिया। पहले प्रकार के मुक्तको का परिचय पीछे दिया जा चुका है अत प्रस्तुत प्रसग मे दूसरे, अर्थात् आत्मपरक मुक्तको का विवेचन किया जायगा।

किसी बाह्य विषय के प्रति भी कवि की प्रतिक्रिया दो रूपो मे सम्भव हो सकती है। जब विषय का स्वरूप घटनात्मक होता है तब वह हमारी अनुभूति अर्थात् राग-तत्त्व का स्पर्श करती है। ऐसी स्थिति मे हमारी प्रतिक्रिया अनुभूतिपरक या भावात्मक होती है। जब विषय का स्वरूप समस्यात्मक होता है तो वह हमारी बुद्धि अर्थात् चिन्तन-शक्ति को उत्तेजना प्रदान करता है और ऐसी स्थिति मे इस प्रतिक्रिया का रूप मननात्मक और बुद्धिपरक हो जाता है। द्विवेदी-युग में उक्त दोनो प्रकार की मुक्तक-रचना प्रभूत मात्रा में हुई। कवियो ने समस्याओ के सामाजिक दुःख-द्वन्द्व के प्रति आत्मोद्‌गार भी व्यक्त किये और इनका बौद्धिक निदान भी नीति और कर्तव्य के उपदेश द्वारा प्रस्तुत किया। इस प्रकार इन मुक्तको के दो रूप हो गए—(१) भावप्रधान और (२) विचारप्रधान।

भावप्रधान मुक्तक

वर्णनात्मक मुक्तको की भाँति भावप्रधान मुक्तको की रचना भी बहुविध हुई। कही इनमे भक्तो की सी विनय है, आराध्य के प्रति आत्मनिवेदन है और कही देशोद्धार की याचना। कहीं देश के गत गौरव की स्मृति कर कवि का शोकोद्‌गार व्यक्त हुआ है और कही भारत के ऐतिहासिक वीरों का स्तवन-वन्दन कर कवि ने उनके प्रति अपने भावोद्‌गार व्यक्त किये है। कहीं देवी-देवताओं की वन्दना, उनका महत्त्ववर्णन और उनके स्वरूप और विरद की भावात्मक व्याख्या की गई है।

भक्ति-भाव से रचित मुक्तको मे आराधना का स्वर है। ऐसी रचनाएँ गेय पदों के रूप मे हुई है। ये पद भक्त-कवियों के विनय-पदों की परम्परा के अन्तर्गत आएँगे। कहीं संसार की असारता का वर्णन है कही ईश्वर की महिमा का, कही अपनी असमर्थता और ग्लानि तथा उद्धार की कामना व्यक्त हुई है। कभी-कभी कवि इनमें संसार की असारता का उपदेश और चेतावनी भी देने लगता है। नाथूराम 'शंकर' ने इस प्रकार के अनेक पदों की रचना की है। कवि 'पूर्ण' ने कुछ विनय-प्रधान छप्पय लिखे हैं। कवि 'शंकर' का इस शैली का एक पद लीजिये—

हे प्रभु मेरी ओर निहार।
एक अविद्या का अटका है, पचरंगी परिवार,
मेल मिलाप एषणा तीनों, करता है कुविचार।
काट रहे कामादि कुचाली, धार कुकर्म-कुठार,
जीवन वृक्ष खसाया, सूखा पौरुष-पाल-पसार।
.. ..
जो तू करता है पतितों का, अपनाकर उद्धार,
तो शंकर मुझ पापी को भी, भव-सागर से तार।[1]

इन पदो मे स्पष्ट रूप से उतनी अन्त:स्फूर्त अभिव्यक्ति नही, जितनी भक्त-कवियों की पद-रचना में। वे लोग ईश्वर से विनय इसलिए करते थे कि वे स्वयं संसार की विषय-वासनाओं से सत्रस्त और उद्धार के अभिलाषी थे। आधुनिक काल के कवि की ग्लानि और दैन्य व्यक्तिगत नही, वह समस्त समाज के, देश के दु:ख से दु:खी है। वह व्यक्ति नही, अपने को टाइप समझता है, और समष्टि की भावनाओ का समभागी होने के नाते, प्रतिनिधि के रूप में उनका निवेदन करता है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने भी ईश्वर-स्तुति में विनय-पदों की रचना की है।

सर्वत्र ये मुक्तक गेय रूप मे नही लिखे गए तथा कही-कही कवियो ने केवल आराध्य के स्वरूप और विरद की व्याख्या तक अपने को सीमित रखा है—

हे आनन्द महासुख दाता, तू त्रिभुवन का त्राता है,
मुक्तक, माता, पिता हमारा, मित्र, सहायक, भ्राता है,
जो सब छोड़ एक तेरा ही, नाम निरन्तर लेता है,
तू उस प्रेमाधार पुत्र को, मंत्र, बोध, बल देता है।[2]

कही-कही यह स्वर बदल गया है। दैन्य की अपेक्षा विनय, और याचना की अपेक्षा कवि की कामना मे आत्मविश्वास का बल प्रकट हुआ है। वह अधिकारपूर्ण स्वरो से अपनी मनोकामनाएँ व्यक्त करता है, और परिवर्तन एव उद्धार की अभिलाषा करता है। इस प्रकार के मुक्तको मे विश्वास का उल्लास और स्फूर्ति है—

मत-जाल जलें, छलिया न छलें, कुल फूल फलें, तज मत्सर को,
अघ दम्भ दबें, न प्रपंच फबें, गुरु मान नवें, न निरक्षर को,
सुमरे जप से, निरखें तप से, सुर-पादप से, तुझ अक्षर को,
दिन फेर पिता, वरदे सविता, करदे कविता, कवि शंकर को।[3]

भक्त कवियो के ढग पर विनयप्रधान पद-रचना की शैली परवर्ती साहित्य मे विशेष लोकप्रिय तो नही रही, परन्तु प्रसाद आदि छायावादी कवियो ने अपनी आरम्भिक रचनाओं में

१. शंकर सर्वस्व—स० हरिशंकर शर्मा, पृष्ठ १०
२. वही, पृष्ठ ३६
३. वही, पृष्ठ ३७

इस विधा और ब्रजभाषा, दोनो का अवलम्बन लिया है। इस शैली मे रचित प्रसाद के पद अपनी मार्मिकता और अनुभूति की प्रगाढता मे सूर, तुलसी की पद-रचना के समकक्षी हैं—

आज तो नीके नेह निहारो।
पावस के घन तिमिर भार में बीती बात बिसारो।
चमकि गयो जो चपला सम यह प्रियतम बिरह तिहारो।
ताकि बहाओ रस बरसा में, हे घन आनन्द वारो॥
चातक लौं नित रटत रहत हम, हे सुन्दर पी प्यारो।
हरित करो यह मरुसम मो मन, देहु 'प्रसाद' पियारो।[1]

हरिऔध ने 'मर्मस्पर्श' में विनयप्रधान दोहो की रचना की है। प्रसाद ने कुछ पद 'भ्रमर गीत' प्रसंग से प्रभावित होकर भी लिखे है। इन पदों में वही निर्गुण-सगुण का झगडा, वाक्‌विदग्धता और उपालम्भ की वक्रता है। इस प्रकार के स्थलों पर कवि प्रतीयमान रूप से पात्र की तथा वास्तव मे उससे तदाकृत अपनी अनुभूति की व्यजना करता है—

ऐसे ब्रह्म लेइ का करि हैं ?"
जो नहीं करत, सुनत नहिं जो कुछ, जो जन पीर न हरिहैं॥
होय जो ऐसो ध्यान तुम्हारो ताहि दिखाओ मुनि को।
हमरी मति तो, इन झगड़न को समुझि सकत नहिं तनिको॥
परम स्वारथी तिनको अपनो आनंद रूप दिखाओ।
उनको दुख, अपनो आश्वासन, मनसे सुनो सुनाओ॥
करत, सुनत, फल देत, लत सब तुमहीं, यही प्रतीत।
बढ़ै हमारे हृदय सदा ही, देहु चरण मे प्रीत।[2]

प्रश्न हो सकता है कि उक्त पक्तियों मे दो दर्शनो का झगडा है और कवि ने सगुण के पक्ष मे मतदान करते हुए उस पक्ष की सैद्धान्तिक हिमायत ली है अतः इसे विचार-प्रधान रचना क्यों न मान लिया जाय। उत्तर होगा कि उक्त प्रसग मे प्रयुक्त सब तर्क काव्य के, अनुभूति के और व्यवहारसिद्ध तर्क हैं, दर्शन और बुद्धि प्रेरित नहीं। गोपी-विरह सर्वत्र दर्शन-सम्बन्धी विचार-विमर्श के रूप में व्यक्त नहीं हुआ, उसमे विरहिणी के हृदय की पीर और प्रकृति के प्रति उपालम्भ और विरह-निवेदन की भावना पर्याप्त और स्पष्ट है—

आज रितुराज ! तुम सुमन समाज साजि,
रच्यो राग-रंग महामोद बितरो हौ जू।
त्यों ही रस-निरत मधुव्रत के पालिबे को,
फूलनि अपार मधु-धारन ढरो हौ जू॥
किसलै-बसाय कल-कंठ हूँ को प्याय प्याय;
दूनों के गुमान, गान-गरक करो हौ जू।

---

१. चित्राधार—जयशंकरप्रसाद, पृष्ठ १८८
२. वही, पृष्ठ १८६

काहे पै वियोगिन बिचारिन के जारिबें कों,
किंसुक-अंगार डार डारनि झरी हौ जू।[1]

एक क्षीण सी धारा द्विवेदी-युग मे उन विरह-व्यजक सवैयों की भी मिलती है जिनमे आराध्य कृष्ण के प्रति विरहाकुल गोपियों की मर्म-वेदना व्यक्त हुई है। कृष्ण के प्रेम मे आसक्त गोपियों के इस अन्त:स्फूर्त विरहोद्गार का स्वर बहुत कुछ रीतिमुक्त कवियों का सा है। इनका स्वरूप प्रगीतात्मक है

सखियान की सीख लगे बिख-सी बँसुरी धुनि कान पगे सो पगे,
मति बौरी भई है अचेत दसा तन मैन के ज्वाल जगे सो जगे।
रंग त्यागि सबै दृग 'पूरन' ये घनश्याम के रग रंगे सो रगे;
अँखियाँ पल एक न रैन लगैं ब्रजचन्द सौं नैन लगे सो लगे।[2]

इस प्रकार के मुक्तक इस युग मे बहुत कम सख्या मे लिखे गए। इनमे पूर्ववर्ती परम्परा का पालन नही आभास मात्र खोजा जा सकता है। कवि प्रसाद ने इस शैली मे कुछ अत्यन्त सुन्दर विरह व्यजक कवित्त-सवैयो की रचना की है। कहीं-कही हार्दिकता का, चमत्कृत अप्रस्तुत-योजना से अद्भुत समागम हुआ है·

प्रेम की प्रतीति उर उपजी सुखाई सुख,
जानियो न भूलि याहि छलना पतंग की॥
खेंचि मनमोहन ते काट-पेंच कौन करै,
चली अब ढीली बाढ़ प्रेम के पतंग की॥
मूंदे हम खोलें किन छाइ छबि एक तैसी,
प्यासी भरी आँखें रूप सुधा के तरंग की॥
उनतै रह्यो न भेद बिछुरे मिले में,
भई, बिछुरनि मीन की औ मिलनि पतंग की।[3]

अन्तिम दो पक्तियो मे साधर्म्य के आधार पर जिस उपमा का प्रयोग किया गया है उसमे अर्थ-गौरव और व्यजना का चमत्कार है। सर्वत्र उन्होने इसी प्रकार भाव-व्यजना नही की। कही कही वे अनुभूति की व्यजना के लिए, अनुभाव-वर्णन का आश्रय ले लेते हैं। ऐसे में वाक्यार्थ का सम्बन्ध बाह्य चेष्टाओ से और व्यग्यार्थ का अनुभूति से हो जाता है·

पुलकि उठे हैं रोम-रोम खड़े स्वागत को,
जागत हैं नैन बरुनी पै छबि छायो तो॥
मूरति तिहारी उर अन्तर खड़ी है तुम्हें,
देखबे के हेतु ताहि मुख दरसाओ तो॥

---

१. ब्रजरज—रायकृष्णदास, पृष्ठ १८
२. पूर्ण सग्रह—रचयिता देवीप्रसाद पूर्ण, 'प्रेम-पथ', पृष्ठ २९०
३. चित्राधार—जयशंकरप्रसाद, पृ० १८२

भरिक उछाह सों उठे हैं भुज भेटिबे को,
मेटिबे को ताप क्यों 'प्रसाद' तरसाओ तो।।
हिय हरखाओ प्रेम रस बरसाओ आओ,
बेगि प्रानप्यारे नेक कण्ठ सों लगाओ तो ।।[1]

व्यक्तिगत अनुभूतियों के व्यंजक भी कुछ मुक्तक इस युग में मिल जाते हैं। ऐसे मुक्तकों मे अनुभूति नितान्त आत्मीय है, किन्तु उसे रीतिकालीन शब्द-चमत्कारमय शैली मे व्यक्त किया गया। इस शैली मे कवि 'सनेही' का एक कवित्त देखिये .

आंखों आंखों में न मुसकाते कभी आते जाते,
घुटते ही लोचनों मे जल भरते नहीं।
बनना न होता यदि उनको हृदय हार,
हँसते ही हँसते हृदय हरते नहीं ।
सच्ची जो लगन नहीं मिलन असंभव तो,
आशावान प्रेमी हैं निराश मरते नहीं।
अङ्गीकार करना न उनको 'स्नेही' होता,
नहीं कर देते "नहीं-नहीं" करते नहीं।[2]

व्यक्तिगत राग-विराग का वर्णन करने के स्थान पर गोपियों के वियोग का वर्णन इस युग के आरम्भ में कवि अधिक करते रहे। इस प्रकार के मुक्तक यद्यपि संख्या मे बहुत नही लिखे गये, परन्तु मार्मिकता और भावव्यजना की दृष्टि से ये पद उत्कृष्ट है। इनमे भक्तो का दैन्य, वियोग-पीडा, उपालम्भ सभी कुछ है, और वैसा ही हृदयस्पर्शी जिससे कई शताब्दी पूर्व कृष्ण-भक्तो ने साहित्य का शृगार किया था। रायकृष्णदास ने 'ब्रजरज' मे इस प्रकार के अनेक मुक्तको की रचना की है।

'छायावाद' के कवियो ने भावप्रवण और विषयीप्रधान काव्य की रचना अनुपात की दृष्टि से सर्वाधिक की। इस काव्य में जितना आत्मद्रव, अन्त स्फूर्त और सस्कृत भाव-राशि उपलब्ध है, अन्यत्र कदाचित् ही मिले किन्तु इनका माध्यम प्रगीत और उसके विभिन्न प्रकार एव निबद्ध कविताएँ रही। मुक्तक-रचना इन कवियों ने अधिक नही की। उल्लेख के लिए अपवाद रूप मे कुछ अनिबद्ध मुक्तक आत्मानुभूति की व्यंजना के लिए लिखे अवश्य गये, परन्तु सख्या की दृष्टि से ऐसे मुक्तक कम है। निबद्ध कविताओ के बीच कहीं छिटके मिल जाते हैं। शैली की उदात्तता, उच्छ्वसित अनुभूति और संगीतमय अभिव्यक्ति इन मुक्तकों में प्रगीत-रचना की ही भाँति मिलती है—

नयन, मुँदेंगे जब, क्या देंगे ?
चिर–प्रिय–दर्शन ?

---

१. चित्राधार, पृ० १७७
२. कवि भारती—सम्पादक सुमित्रानन्दन पन्त आदि, पृ० १५२

शत-सहस्र-जीवन-पुलकित, प्लुत
प्यालाकर्षण ?
अमरण-रणमय मृदु-पद-रज ?
विद्युत-घन चुम्बन ?
निर्विरोध प्रतिहत भी
अप्रतिहत आलिंगन ?[1]

निराला ने इस प्रकार के कुछ अन्य मुक्तको की भी रचना की है। बाद मे बच्चन ने 'हलाहल', 'मधुशाला' आदि मे चतुष्पदियाँ लिखकर व्यक्तिगत भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए मुक्तको का आश्रय लिया। उनके उपरान्त तो उर्दू की 'रुबाइयो' के ढग पर मुक्तक-रचना की परिपाटी नवीन खेवे के युवा कवियो मे विशेष लोकप्रिय हो चली। कवि ने इनमे व्यक्तिगत भावनाओ की अभिव्यक्ति की है :

न मुझको मधुता ही पर्याप्त,
न मुझको कटुता ही पर्याप्त,
न ऐसे रस से ही अनुराग,
न हों दोनों ही जिसमें व्याप्त।
नहीं की अन्तरतम की खोज,
मगर इतना मुझको मालूम,
मुझे है जिस रस की दरकार,
नहीं बाहर के जग में प्राप्त।[2]

सर्वत्र इस युग के कवि की भावाभिव्यक्ति मे दैन्य नही। वह कही-कही अपूर्व आत्म विश्वास से अपनी भावी कार्य-योजना और सकल्प का वर्णन करता है। ऐसे मुक्तकों में कवि ने आत्माभिव्यक्ति की है, किन्तु सामाजिक कर्त्तव्य और सार्वजनिक उद्देश्य के लिए—

हे जन्मभूमि जननी ! मैं तुझको आवरूंगा।
निज बाहुबल से तेरे संकट सभी हरूंगा।।
निज बुद्धि वाक्य बल से साहित्य घर भरूंगा।
सम्पत्ति अपनी सारी चरणों पै ले धरूंगा।।
तन मन वचन से धन से सेवा तेरी करूंगा।
तेरे लिए जिऊँगा तेरे लिए मरूंगा।।[3]

ऐसे मुक्तको का सम्बन्ध वस्तुगत सत्यो से होने के कारण इनमे भावनाओं का विस्तार और सरलता तो मिलती है घनता और मार्मिकता उतनी नही। कर्त्तव्य के प्रति व्यक्तिगत अनुभूति के व्यजक इन मुक्तकों में भाव की अपेक्षा उद्देश्य प्रधान रहता है। मुक्तकों की वह शैली

---

१. परिमल—निराला, पृ० ६३
२. हलाहल—बच्चन, पृ० ११५
३. नवीन बीन—ला० भगवानदीन, पृ० १२६

जिसमे राजभक्ति का स्वर है, और भारतेन्दु-युग मे जिसका विशेष प्राबल्य रहा, अवशेष-रूप मे इस काल मे भी प्राप्त होती है। परन्तु क्रमशः देश की वास्तविक स्थिति का अभिज्ञान कर जनता मे विद्रोह के स्फुलिंग उभर रहे थे, अत राजभक्ति और शासकों के प्रशस्तिगान की भावना सामान्य रूप से कविता मे व्याप्त नही मिलती। ऐसे प्रयास विद्यमान होने पर भी विरल हो गये थे। इनमे केवल आलम्बन का जयजयकार और स्तवन ही मिलता है, कवि की भाव-मणियाँ नहीं। इन मुक्तको का स्वर अतः सहज और अन्त स्फूर्त नही है—

जय जय पंचम जार्ज आर्ज अवनीस हमारे
जयति सेत-कुल-केतु, जयति इंगलैंड उज्यारे
जयति मनुज-कुल दयाद्रवित, दुखियन-दुख-भंजन
जय भारत-निज-प्रजा-प्रनय-भाजन, जन रंजन
जय ब्रिटिश-पुरातन वीरता-विदित हनोवर-बंसधर
जय विक्टोर्या प्रिय-तनुज-श्री ऐडवर्ड-नृप-तनयवर।

विनय के इन मुक्तको के अतिरिक्त देश की वर्तमान दशा के प्रति कवियो की भावनाएँ अनेक रूपो मे व्यक्त हुई। देश मे उद्धार का प्रयत्न जहाँ उन्होंने कर्तव्याकर्तव्य सम्बन्धी उपदेश देकर किया वहाँ वे देश की तत्कालीन दुरवस्था से दुखी व खिन्न भी हुए। इसकी प्रतिक्रिया दो रूपों मे हुई। एक ओर जननी जन्मभूमि और उस पर जन्म लेने वाले ऐतिहासिक महापुरुषो की अनेक वन्दनाओ के रूप मे कवियो ने देश के गत व अनागत गौरव का गान किया—यह प्रयत्न कदाचित् जन-जागरण के लिए और अपने आदर्श रूप की स्मृति दिलाने के लिए था। दूसरी ओर कवियों ने देश की समसामयिक दुरवस्था पर अपने मन का खेद और ग्लानि व्यक्त की। ऐसा वर्तमान, यथार्थ, किन्तु कठोर और कटु वास्तविकता का साक्षात्कार कराने के हेतु किया गया। 'हमारा अधःपतन' शीर्षक मे कवि शंकर ने देश के गत गौरव पर शोक प्रकट किया है। परवर्ती गीति काव्य से भिन्नता यही है कि यह शोक व्यक्तिगत शोक नही, समाज की दुर्दशा और पतन पर अनुभूत होने वाला शोक है। जन्मभूमि का स्तव-गान इस युग के अधिकाश कवियों ने किया। जिनमें नाथूराम 'शकर', रूपनारायण पाण्डेय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, श्रीधर पाठक आदि सभी है।

इस प्रकार भाव-प्रधान मुक्तकों में मुख्यत दो प्रकार की रचनाएँ की गई—(१) परम्परागत शैली के अनुसरण पर लिखे गए मुक्तक, (२) नवीन चेतना और प्रभाव के व्यजक मुक्तक। पहले प्रकार के मुक्तकों मे निम्नलिखित विधाओ का प्रयोग हुआ—

(क) भक्त कवियों की विनय-प्रधान गेय पद-रचना की शैली।

(ख) कृष्ण-भक्तों की गोपी-विरह-व्यंजक पद-शैली।

(ग) रीतिकालीन कवियों के विरह-वर्णन की चमत्कार-प्रधान मुक्तक शैली।

(घ) ईश्वर की महिमा मे आत्मोद्‌गार के व्यजक दोहो और मुक्तको की शैली।

नवीन विधाओं मे मुख्य रूप से निम्नाकित प्रकार के मुक्तक लिखे गये—

(क) तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित—जन्मभूमि, महान व्यक्तियो, और कहीं-कहीं शासकों के स्तवन, गौरव-गान के रूप में लिखे गये प्रशस्तिमूलक मुक्तक।

(ख) देश की समसामयिक अवस्था के प्रति कवि के आत्म-संकल्प और आत्मोद्‌गारों के व्यंजक मुक्तक।

(ग) व्यक्तिगत राग-विराग को विषय बनाकर लिखे गये अध्यन्तरिक मुक्तक। इनका स्वर अनेक स्थलो पर आत्मपरक दृष्टिकोण के कारण प्रगीतात्मक है।

(घ) उर्दू की रुबाइयो और बहर के ढग पर रचित मुक्तक।

विचार-प्रधान मुक्तक

अन्य मुक्तकों की भाँति विचारप्रधान मुक्तक भी इस युग मे अनेक रूपो मे और विषयों पर लिखे गए। समग्र रूप मे इस प्रकार के मुक्तको की रचना इस युग मे सर्वाधिक हुई। चिन्तन-प्रधान मुक्तको को मुख्य रूप से तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है—(१) उपदेशात्मक, (२) आलोचनात्मक और (३) विवेचनात्मक। सर्वाधिक सख्या पहले, अर्थात् नीति और उपदेश सम्बन्धी मुक्तको की है। इस युग मे समाज-सुधार का विशेष बोलबाला होने के कारण कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान कराने के लिए कवियो ने भी पद्य-रचना को माध्यम बना लिया। एक ओर काव्य की परिधि इस दृष्टिकोण-परिवर्तन के कारण—व्यक्ति से समाज तक विस्तृत हो गई; दूसरी ओर कविता—प्रचार और सिद्धान्त-प्रतिपादन का माध्यम बन गई, अत. वह लक्ष्य-भ्रष्ट होकर रसानुभूति की अपेक्षा शिक्षा-दीक्षा का साधन बनी। हृदय-रस से आप्लावित न होने के कारण उसका स्वरूप गद्यवत्, अनुभूति व राग-तन्त्व अत्यन्त परिक्षीण, व कला की दृष्टि से स्तर अत्यन्त साधारण हो गया।

उपदेशात्मक मुक्तक, सामाजिक जीवन ने सम्बद्ध अधिकांश विषयो पर लिखे गये। द्विवेदी-युग के सभी प्रसिद्ध कवियो ने इस दिशा मे लेखनी चलाई। प० रूपनारायण पाण्डेय ने 'पराग' मे—'कौन कृति कहाते है', 'वैद्य', 'स्त्री-शिक्षा' आदि विषयो पर कर्त्तव्य का निर्देश करते हुए, एक-एक विषय पर अनेक छन्द लिख डाले। 'पूर्ण सग्रह' मे राय देवीप्रसाद के अनेक उपदेशात्मक मुक्तक 'भक्ति और वेदान्त' शीर्षक मे सकलित है। इनमे कवि ने नाना रूपों मे कर्तव्य का उपदेश दिया है। जीव को चेतावनी देकर उसके उद्‌बोधन का प्रयत्न भी किया है। इसी प्रकार के मुक्तक नाथूराम शर्मा 'शकर' ने विविध शीर्षको मे लिखे है। कही कवि प्रत्यक्ष रूप से उपदेश देता है और कहीं उपदेश मुक्तक-ध्वनि के रूप मे व्यग्य है। शीर्षक और अभिव्यंजना दोनो मे उपदेश की वाच्य स्थिति 'कर्मवीरता', 'नैसर्गिक शिक्षा', 'समालोचक-लक्षण' आदि शीर्षको में रचित पद्यो मे उपलब्ध है—

जो बड़भागी ब्रह्म-ज्ञान के जितने टुकड़े पाते हैं,
वे सब साधारण लोगों को देकर बोध बढ़ाते हैं।
तर्क-सिद्ध सद्‌भाव अनूठे विधि-निषेधमय मन्त्र,
संग्रह, ग्रन्थाकार उन्हीं के प्रकट प्रचलित तन्त्र ॥[1]

पं० रूपनारायण पाण्डेय ने इसी प्रकार 'आर्य शीर्षक' मे आर्य व्यक्ति के कर्त्तव्य का निर्देश किया तथा 'जाति-सेवक' के अन्तर्गत आत्म-संकल्पात्मक स्वर में अनेक संदेशात्मक व

---

१. शंकर सर्वस्व—सम्पादक हरिशंकर शर्मा, पृष्ठ ४५

उद्‌बोधनात्मक छप्पयो की रचना की है। इसी प्रकार 'देश-सम्बन्धी प्रोत्साहन', 'मातृ-भूमि', 'अहिंसा-सग्राम' आदि कविताओ मे नीति-प्रधान उपदेश दिया गया है। उद्‌बोधन-प्रधान कुछ पद्य कवि ने सख्या के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से 'उद्‌बोधनाष्टक' शीर्षक मे ही रख दिये है।

कभी कवि साधना-मार्ग की कठिनाइयो का सकेत करते हुए भी किसी विशेष चारित्रिक गुण की साधना का उपदेश देता है। ऐसे मुक्तकों मे वर्णन और उपदेश का समागम मिलता है। 'सत्य की उपासना' पर गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के मुक्तक पद्य इसी शैली के अन्तर्गत आएगे--

होंगे शीतल तुम्हें आग के भी अगारे,
मर न सकोगे कभी मौत के भी तुम मारे।
क्या गम है, गर छूट जाएँगे साथी सारे,
बहलावेंगे चित्त चन्द्र चमकीले तारे॥
दुख में भी सुख शान्ति का नव अनुभव हो जायगा।
प्रम सलिल से द्वेष का सारा मल धो जायगा॥[1]

स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक विषयो पर उपदेशात्मक मुक्तक रचना की है। कही-कही यह उपदेश गम्भीर प्रसगों पर न होकर सामान्य आचार-व्यवहार से सम्बन्धित विषयों पर दिये गए हैं। द्विवेदीजी ने सेवावृत्ति का विरोध इसी प्रकार किया :

सेवा समान अति दुस्तर दु:खदायी,
दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आई
जीना कभी न उसका जग में भला है,
जो पेट-हेत पर सेवन को चला है॥[2]

'हरिऔध' ने इसी प्रकार विविध विषयो पर नीतिपरक दृष्टिकोण से दोहो मे सतसई रचना की। 'हरिऔध सतसई' के समस्त दोहे उपदेशात्मक स्वर मे लिखे गए। इनमे गुरुगौरव, मत्तमिलिन्द, नीति, विश्व-प्रपच आदि अनेक विषयो पर कवि ने लिखा, परन्तु इनका मूल स्वर कर्त्तव्याकर्त्तव्य-सम्बन्धी मार्ग-निर्देश तथा उपदेश ही है और मूल्य वस्तुगत। 'मर्मस्पर्श' मे भी 'हरिऔध' ने नीतिपरक प्रबोधनात्मक दोहे लिखे है। इन दोहों पर कबीर, रहीम आदि कवियो की नीति उपदेशपरक रचनाओ का प्रभाव प्रत्यक्ष है.

चींटी कन पावत रहत, पंखी तरुफल खात।
जन कत पापी पेट हित, पाप करत न अघात॥
सुख-समूह सुन्दर सदन, है सब रस-आधार।
तो किस मां है सार जो, है असार संसार ?[3]

उपदेशात्मक मुक्तक सर्वत्र इसी नीरस और व्याख्यानात्मक शैली मे नही लिखे गए। जहाँ उनमे अनुभूति अधिक मार्मिक है और विनय और निवेदन का स्वर आ गया है वहाँ वे

१. कवि भारती--स० सुमित्रानन्दन पन्त आदि, पृ० १५०
२. द्विवेदी काव्यमाला--संग्रहकर्त्ता देवीदत्त शुक्ल, पृ० ३००
३. मर्मस्पर्श--हरिऔध, पृ० ३७-३८

भक्तो की भावमय विनम्र शैली में व्यक्त हुए हैं। उनमे प्रत्यक्ष निषेध व कटु आलोचना की अपेक्षा, आलोच्य तत्त्व या आचरण का दोष-दर्शन अधिक है। इनके विषय भी अपेक्षाकृत गम्भीर है। ये मुक्तक भक्तो की पद-रचना की परम्परा के अन्तर्गत आते है—

इक दिन खाक में खाक समैहै,
सिगरे जग झंझट झूठे है, इनमे सुख नहीं पैहै।
प्रिय पितु-मातु, बन्धु, सुत, दारा, कोऊ काम न ऐहै,
एक एक करि लाख बटोर्‌यौ, सोऊ संग न जैहै॥
सिर पर काल बली नाचत है, जब तब पकर बबैहै,
अजहूँ-गहु पद-पदुम राम के, समय गए पछतैहै॥[1]

प्रत्यक्ष उपदेश-कथन के अतिरिक्त उपदेश की दूसरी शैली सूक्ति-शैली थी। अनेक आचार-व्यवहार सम्बन्धी उपदेश सूक्तियो के द्वारा दिये गए। कहना व्यर्थ होगा कि इन सूक्तियो मे विशेष कलात्मक उत्कर्ष, सरसता और वचन-वक्रता नही मिलती—

विचारो जो कुछ कहना है
कहो मत जिसे विचारा है।
नहीं वह सब कहने की है
विचारों की जो धारा है।[2]

उपदेश की तीसरी शैली अन्योक्ति शैली थी। सूक्तियों की अपेक्षा इस युग मे रचित अन्योक्तियाँ अधिक सुन्दर बन पड़ी है।

राधाकृष्णदास ने 'रहीम विलास' शीर्षक मे 'सरस्वती' के अनेक अको मे क्रमशः नीति-उपदेश विषयक कुण्डलियों की रचना की। इन कुण्डलियों की रचना कही-कही अन्योक्तियो के रूप मे की गई है। अन्योक्ति सदैव विवेक से नियमित अत बुद्धि-आश्रित होती है। राधाकृष्णदास द्वारा रचित इस प्रकार की कुछ कुण्डलियाँ अत्यन्त सुन्दर है—

रहिमन राज सराहिए जो विधु के विधि होय।
रवि को कहा सराहिए उगै तरैयाँ खोय॥
उगै तरैयाँ खोय नाहिनै तासु बड़ाई।
बड़े सराहन जोग सोई जो जग सुखदाई॥
प्रभुता मदजिनि भूलु प्रजापालहि किन सुख सन।
यह शरीर नसि जाय रहै इक कीरति रहिमन।[3]

रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'अन्योक्ति विलास' मे अनेक अन्योक्तिमूलक कवित्त-सवैये लिखे हैं। इनके विषय विविध है—चकोर, नैराश्य, अमगल, उलूक, कोसने वाले, स्यार, निःशक मृग, कपास, सुआ और सेमर आदि। कवि जब उपदेश या आलोचना का रूप-परिवर्तन कर उसे

---

१. ब्रजरज—रामकृष्णदास, पृ० ४०
२. मन के मोती—पुरोहित श्री प्रतापनारायण, पृ० ४२
३. सरस्वती—१९०३, संख्या ८, पृ० २४९

अधिक विनम्र व शिष्ट रूप मे प्रस्तुत करना चाहता है, तो वह प्रायः अन्योक्ति का आश्रय लेता है। अन्योक्ति मे उपदेश व्यंग्य होता है। अन्योक्तियो के अतिरिक्त कवियो ने अन्य रूपो में भी उपदेश-व्यंजना की। कही किसी गुण-विशेष की महत्ता का वर्णन मात्र करके कवि उसके पालन की अनिवार्यता की व्यजना करता है और कही वह व्यक्तिगत सकल्प और मनोकामना के रूप में समष्टिगत नीति का सकेत करता है।

कभी-कभी केवल किसी विशेष दुरवस्था या दोष का वर्णन मात्र करके उसमे सुधार और परिवर्तन की कामना की व्यजना कवि करता है। प० रूपनारायण पाण्डेय ने 'दिग्दर्शन' (जाति-विषयक) शीर्षक मे अनेक छप्पयो मे देश की समसामयिक अवस्था का वर्णन किया।

द्विवेदी-युग के उपरान्त उपदेश की इस प्रवृत्ति का कविता मे एकान्त अभाव तो नही हुआ किन्तु मात्रा कम अवश्य हो गई तथा इस प्रवृत्ति ने अधिक 'कान्ता-सम्मित' रूप धारण कर लिया, परिणामत इन मुक्तको मे अधिक वैदग्ध्य, सरसता और अभिव्यजना-कौशल व व्यजनात्मकता उत्पन्न हो गई। 'हलाहल' का कवि जीवन की निस्सारता की व्यजना सर्वथा भिन्न शैली मे दृष्टान्त द्वारा करता है—

घूमती नूरमहल थी एक
दिवस बन जिन महलों की नूर
खड़े हैं खण्डहर से वे आज
किसी दिन हो जाएँगे धूर,

नूर भी थी मिट्टी का अंश,
महल भी है मिट्टी का भाग,
धरे वह चाहे जिसके पास
धरोहर अपनी लेती मांग।[1]

आलोचनात्मक मुक्तक अन्य दो प्रकारो की अपेक्षा सख्या की दृष्टि से कम लिखे गये। केवल इस प्रकार के मुक्तको की मात्रा ही इस युग मे कम नही थी, काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भी इनका महत्त्व बहुत अधिक नही था। प० रूपनारायण पाण्डेय ने 'सत्कवि' मे तथा कवि 'शकर' ने कही-कही 'समालोचक लक्षण' मे आलोचनात्मक शैली मे कर्त्तव्य-निर्देश किया है। प० रूपनारायण पाण्डेय ने इसी प्रकार रूपासक्ति का घोर विरोध 'लज्जावती' कविता मे किया। समालोचक-लक्षण का निर्देश करते हुए असमर्थ कवि की आलोचना देखिये—

कुछ ग्रन्थ किसी भाषा के पढ़ लेते हैं,
टूटी फूटी कविता भी गढ़ लेते हैं,
मिथ्याभिमान कुजर पर चढ़ लेते हैं,
लड़-भिड़ कलक माथे पर मढ़ लेते हैं।

---

१. हलाहल—बच्चन, पृ० ८३

उनका घमण्ड जिसकी ठोकर खाता है
वह वीर समालोचक पदवी पाता है।[1]

उपर्युक्त पद्य में प्रत्यक्ष रूप से समालोचक के गुणों का और परोक्ष रूप में कवि के गुणों का निर्देश कवि ने किया है। द्विवेदीजी अपनी उपदेश-वृत्ति के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। उन्होंने यह कार्य केवल गद्य-रचनाओं में ही नही किया, कविता मे भी उनकी यह प्रवृत्ति मुखर रही। कही वे खेद-प्रकाशन के रूप में मार्ग-निर्देशन करते थे, और अन्यत्र प्रत्यक्ष और तीखी आलोचना के स्वरों मे उनकी यह लक्ष्य-साधना हुई है। 'ग्रन्थकार लक्षण' वस्तुतः ग्रन्थकार-आलोचना है जिसमे प्रत्यक्षता और तीखापन दोनो ही वर्तमान है—

अपनी पुस्तक की सानन्द
स्वयं समीक्षा लिख स्वच्छन्द
अन्य नाम से अखबारों में जो शतबार छपाते हैं।
निज मुख से जो गुण विस्तार
करते सदा पुकार पुकार
ग्रन्थकार पद-योग्य सर्वथा वे ही समझे जाते हैं।[2]

द्विवेदी-युग में तो सुधारवादी दृष्टिकोण कविता के युग-धर्म के रूप में व्याप्त था ही, परन्तु छायावादी काव्य मे नैतिक मूल्यों की अवहेलना और आत्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के कारण उपदेश की नीरसता और आलोचना की कटुता दब गई। समाजवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ देश मे राजनैतिक आन्दोलनों और विद्रोह का सूत्रपात हुआ और आलोचनात्मक कविता का पुनः सृजन एव पठन आरम्भ हो गया, परन्तु इस बार उसकी दिशा और शैली दोनों ही भिन्न थीं—

शक्ति और सिद्धान्त राजनीतिज्ञ जनों में
खूब चमकते हैं जब तक अधिकार न मिलता।
मंत्री बनने पर दोनों ही दब जाते हैं।[3]

कही विषय प्राचीन है, बात भी पुरानी, परन्तु कहने का ढग बदल गया है, अतः इस आलोचना में अधिक वक्रता और चमत्कार उत्पन्न हो गया है—

रचना में क्या-क्या गुण होने चाहिए,
कूद-फाँदकर भी तुम नहीं बताते हो।
पर, रचना के दुर्गुण अपनी ही कृति मे,
कदम-कदम पर खूब दिखाये जाते हो।[4]

'छायावाद' के कवियों ने मुक्तक-रचना बहुत कम की और आलोचनात्मक मुक्तक और

---

१. शंकर सर्वस्व, पृ० १४२
२. द्विवेदी काव्यमाला—संग्रहकर्ता देवीदत्त शुक्ल, पृ० २९८
३. नये सुभाषित—दिनकर, पृ० २१
४. वही, पृ० १३

भी कम लिखे। इस वर्ग के अधिकांश कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यजना लक्षणा-व्यजना और प्रतीको के माध्यम से करते रहे। विचारात्मक कविताओं मे भी आलोचनात्मक रचनाएँ वे बहुत कम कर सके। इनका उदार दृष्टिकोण और भावनाओं व विचारों के अतिशय सस्कार, और कभी-कभी गोपन के प्रयत्नों ने उन्हे इस प्रकार की कठोरता से दूर ही रखा। 'निराला' के पौरुषमय और आवेग-दीप्त व्यक्तित्व के अतिरिक्त इस दिशा मे अन्य कवियों ने लेखनी नही उठायी। वे अपेक्षाकृत उदार, सहिष्णु और दृष्टिकोण मे विनयी थे, अत. द्विवेदीयुगोत्तर काव्य मे विचारात्मक कविताएँ दर्शन, राजनीति तथा जीवन के गम्भीर विषयो के विवेचन-विश्लेषण तक सीमित रहीं। परन्तु छायावाद के उपरान्त का कवि जब अधिक आत्मविश्वास और स्वच्छद दृष्टिकोण को लेकर काव्य-रचना मे तत्पर हुआ तो अपने मन का आक्रोश भी आलोचनात्मक स्वरो मे यदा-कदा व्यक्त कर गया, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति निश्चय ही पूर्ववर्ती काव्य की अपेक्षा कहीं कलात्मक रही—

देखकर तुझको रचना-मग्न
निरंतर संहारों के बीच,
करेगा जो तेरा उपहास
सृष्टि के नीचों मे वह नीच,
मर्त्य की मिट्टी तू म्रियमाण
साधना तेरी सब स्वर्गीय,
देवतों में तू ईर्ष्या-पात्र,
मानवों मे तू हो दयनीय।[1]

विवेचनात्मक मुक्तक—तीसरे प्रकार के विचारात्मक मुक्तको मे कवियो ने प्रायः किसी गम्भीर विषय को अपनाकर उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया है। द्विवेदी-युग मे ये विषय अधिकतर दर्शन, धर्म, भक्ति आदि से ग्रहण किये गए। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'ब्रह्म विज्ञान' मे अनेक कवित्त-सवैयो मे ब्रह्म के स्वरूप और महत्ता का विवेचन किया है। इसी प्रकार 'ईश्वर प्राणिधान' मे कवि 'शकर' ने ईश्वर के स्वरूप और गुणो का परिगणन कराया है।'ब्रह्म विवेकाष्टक' मे विविध दार्शनिक विषयो पर विचार किया गया है। इनमे ईश्वर का स्वरूप, ससार का स्वरूप, सगुण-निर्गुण, सृष्टि-रचना आदि अनेक विषय अन्तर्भूत है। परन्तु विस्तृत और सागोपाग वर्णन कवि ने किसी विषय विशेष का नही किया—

आदि, मध्य, अन्तहीन भूमा भद्र भासता है,
पूरा है, अखण्ड है, असंग है, अलोल है,
विश्व का विधाता परमाणु से भी न्यारा नहीं,
विश्वता से बाहरी न ठोस है न पोल है,
एक निराकार ही की नानाकार कल्पना है,
एकता अतोल में अनेकता की तोल है,

---

१. हलाहल—बच्चन, पृ० ८७

भेदहीन नित्य में सभेदों की अनित्यता है,
खोज ले तू शंकर जो ब्रह्म की टटोल है।[1]

विवेचन के लिए कवियों ने अधिकतर धर्म, दर्शन और जीवन की परिधि में आने वाले गम्भीर विषय ही अपनाये हैं। इनमें ईश्वर, जीव और ससार के स्वरूप और पारस्परिक सम्बधों की विवेचना कवियों का प्रिय विषय रहा है। परन्तु इन विषयों पर अधिकतर एकाधिक छन्दो मे अन्वित होने वाली निबद्ध कविताएँ ही लिखी गईं। परन्तु विविध प्रसगों पर रचित मुक्तको मे बीच-बीच मे इस प्रकार के विवेचनात्मक पद्य प्राय बिखरे मिल जाते है। जीवन की विवेचना कवि 'बच्चन' के द्वारा इस रूप मे की गई—

देखने को मुट्ठी भर धूलि
जिसे यदि फूंको तो उड़ जाय
अगर तूफानों मे पड़ जाय
अवनि-अंबर के चक्कर खाय,
किंतु दी किसने उसमें डाल
चार सांसों में उसको बांध,
धरा को ठुकराने की शक्ति,
गगन को दुलराने की साध।[2]

समय के साथ-साथ आधुनिक काल का कवि अधिकाधिक बुद्धिजीवी होता गया है, अतः वह जीवन के अनेक गम्भीर प्रश्नो पर गम्भीर दृष्टि से विचार, तथा दर्शन, मनोविज्ञान व मनोविश्लेषण-शास्त्रो के आलोक मे उनका आख्यान और विवेचन करता रहा है। इस प्रकार का विवेचन प्रबन्ध-रचनाओं व निबद्ध कविताओ में मुक्तक की अपेक्षा अधिक सुगमता से और व्यवस्थित रूप में सम्भव होता है, परन्तु फिर भी कुछ हलके विषयो का गहरी और पैनी दृष्टि से बौद्धिक विवेचन कवियों ने यदा-कदा प्रस्तुत किया है। कहीं-कही यह प्रयास सूत्र शैली में हुआ है। कवि दिनकर ने अनेक विषयो पर कुछ सुभाषित इसी ढग पर लिखे है। इन सुभाषितों की शैली मे विशेष चमत्कार, वाग्विदग्धता तथा कला मे वैभव और अलकरण तो नही है, परन्तु विषय का ग्रहण और विवेचन सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण और तत्त्वग्राहिणी दृष्टि से किया गया है। कवि के शब्दो मे—"इन सुभाषितो मे 'व्यग्य-विनोद' का काफी पुट है और जो हृदय तथा बुद्धि को गुदगुदाना जानते हैं।"[3] दिनकर के अनुसार 'कल्पना' कुछ ऐसा तत्त्व है—

आत्मा की है आंख, बुद्धि की पांख है,
मानस की चांदनी विमल है कल्पना।[4]

समझौते की शान्ति कवि को ज्वर में सिर पर रखी बर्फ के समान प्रतीत

---

१. शकर सर्वस्व—सं० हरिशंकर शर्मा, पृ० ४२
२. हलाहल—बच्चन, पृ० १२७
३. नये सुभाषित—रामधारीसिंह दिनकर, 'दो शब्द'
४. वही, पृ० १४

होती है—

ज्वर में सिर पर बर्फ़ रखा करते हैं,
यही बहुत कुछ समझौते की शान्ति है।
किंतु, कभी क्या ज्वर भागा है बर्फ़ से ?
हिम को ज्वर की दवा समझना भ्रान्ति है।[1]

मुक्तकों की एक शैली जिसका अन्तर्भाव आत्मपरक और वस्तुपरक आदि भेदो मे किसी एक के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता—समस्यापूर्ति के लिए मुक्तक-रचना की शैली है। समस्यापूर्ति के लिए रचे गए मुक्तकों के विषय विभिन्न हुआ करते थे—शृगार, नीति-उपदेश, व्यंग आदि। अनेक चमत्कारमूलक रचनाएं भी इसी शैली मे की गई। समस्यापूर्ति बहुधा कवित्त और सवैया छन्दो मे की जाती थी। वस्तुत: मुक्तक-रचना की यह शैली भारतेन्दु-युग के कवियो मे विशेष रूप से प्रचलित थी, वही से द्विवेदी-युग तक यह परम्परा चली आई। समस्यापूर्ति के पीछे कवि-गोष्ठियो मे कवि-प्रतिभा की वाचिक प्रतियोगिता की प्रवृत्ति मुख्य रूप से विद्यमान रहती थी। द्विवेदी-युग तक आते-आते उस प्रकार की सभाएँ और बैठके तो नही रही, परन्तु अवशेष रूप मे काव्य-रचना की यह विधि रह गई। इन मुक्तको की प्रेरणा सहज और अन्त.स्फूर्त तो स्वीकार की ही नही जा सकती, क्योकि समस्यापूर्ति का विषय कवि का आत्मप्रेरित नही अर्जित विषय होता था। यदि सयोगवश समस्यापूर्ति के लिए दी गई पक्ति, कवि के मनोनुकूल हुई अथवा वह उसे यथारुचि मोड़ देने में समर्थ होगया, तब तो ये समस्यापूर्तियाँ अत्यन्त मार्मिक, सरस और भावमय बन जाती थी, अन्यथा बुद्धि के खिलवाड द्वारा कवि अपनी प्रतिभा का प्रमाण तो उपस्थिति कर देता, परन्तु इनकी रचना भावप्रेरित व प्रभावव्यजक रूप मे नही हो पाती थी। अत: वे बौद्धिक व्यायाम से अधिक कुछ नही जान पडती थी। इस प्रकार समस्यापूर्ति की कलात्मक सिद्धि बहुत कुछ विषय और कवि की अभिरुचि की पारस्परिक अनुकूलता पर निर्भर रहती थी। परन्तु निरन्तर प्रयास से अभ्यस्त कवियों ने इस शैली मे अनेकानेक सुन्दर रचनाएँ की। पडित नाथूराम शर्मा इस शैली मे रचना करने के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। उन्होने विविध विषयो पर प्रभूत मात्रा मे सौन्दर्य-व्यजक समस्यापूर्तियाँ की। उनके अतिरिक्त रूपनारायण पाण्डेय आदि ने भी कतिपय सुन्दर समस्यापूर्तियाँ की। कवि शकर की 'उपमा न पाई है' पर की गई समस्यापूर्ति देखिये—

आपस मे अँखियाँ लड़ें न कहूँ याही डर
मेड़ मरियाद की बिरंचि ने लगाई है।
कैधों नीकी नाक-सी निवासथली पाय कर,
छबि ने छपाकर पै मोदमढी छाई है।
तो तन निहार हारि जाय दुरे हारन में,
तोतन ने तो तन पै नाक-सी कटाई है।

---

१. नये सुभाषित, पृ० २७

शंकर नकीले कवि खोज-खोज हारे पर,
एरी तेरी नासिका की उपमा न पाई है ।[1]

कविता मे प्रगति प्रयोगवाद के आरम्भ के साथ मुक्तकों के क्षेत्र में भी युगान्तर प्रस्तुत हुआ। यद्यपि इन कवियो मे से अधिकाश छायावाद के ह्रास काल के कवि थे, अतः अपने को उस व्यापक काव्य-चेतना और शैली से सर्वथा असम्पृक्त तो नही रख सके, परन्तु वे काव्य-रचना मे विशेष दृष्टिकोण और सिद्धान्तो का आधार लेकर प्रवृत्त हुए और काव्य-रचना के प्रति उनकी इन नियत धारणाओ ने उनकी शैली को पर्याप्त रूप मे प्रभावित किया।

प्रगतिवाद के कवि ने काव्य की सृष्टि वैयक्तिक नही, सामाजिक चेतना के आधार पर की। सौन्दर्य का अनुसधान ये कवि न अपने हृदय मे करते थे, न दूसरो के नेत्रो मे। इनके लिए सौन्दर्य के मानदण्ड बदल गये। इनका सत्य—भौतिक वास्तविकता, शिव—जन-कल्याण, और सुन्दर—स्वाभाविक, प्रकृत और स्वस्थ जन-जीवन बना। इस प्रकार जीवन के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण और मूल्यो मे उन्होने अन्तर प्रस्तुत किया। केवल भावनाओ का विलास, रूप, रग और रोमास का मोह इनकी कला का प्रेरक नही था, अत. छायावादी रेशमी कला का परित्याग कर इन्होने जीवन के प्रकृत, अनगढ रूप को ग्रहण किया। इनके वर्णनो मे छायावाद की मधु-चर्या और रीति-काव्य की मसृणता और चमक दोनो का अभाव हो गया। परिणामत. इनके विषय भी बदले और शैली व रूप-विधाएँ भी।

शोषित वर्ग के साथ सहानुभूति के कारण इन कवियो ने उनके यथार्थ, प्रकृत, रूप को ग्रहण किया। विषय का यह ग्रहण दो रूपो मे किया गया—(१) ये कवि इस शोषित, दलित किन्तु जीवन के यथार्थ और अनगढ रूप का सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से वर्णन करते रहे। (२) समाज की वर्तमान अवस्था के प्रति असन्तोष के कारण इन्होने आलोचना, व्यग और उपदेश के द्वारा क्रान्ति और परिवर्तन के लिए जनमन को प्रेरित किया। दोनो स्थितियो मे मुक्तक इनके लिए उपयुक्त माध्यम नही सिद्ध हो सकता था। पहले प्रकार के वर्णनो मे विस्तार इसलिए आया कि इन्होने पूरी प्रत्यक्षता से अभिधा मे इस वर्ग के जीवन और समस्याओं का खुलकर वर्णन किया। पाठक की सहानुभूति जागृत करने के लिए वे अपनी बात खुलासा रूप मे अपने पाठक तक पहुँचा देना चाहते थे। जिस वर्ग का ये चित्रण कर रहे थे उसकी समस्याएँ विविध थी और अनगढता अनेकरूपिणी। इस सब को पाठक तक पहुँचाने मे शब्दों की कृपणता या प्रयोग-कौशल इन्होने नही दिखाया क्योकि इनका उद्देश्य किसी प्रकार का कलात्मक चमत्कार या चकाचौध उत्पन्न करना नही था। न इनमें अनुभूतियो के दुराव, प्रतीकात्मक व्यजना या लक्षणा-व्यजना के माध्यम से अभिव्यक्ति का प्रयत्न था। इस साहित्य मे भाव-तन्मयता के स्थान पर बौद्धिकता, और आलोचनात्मकता अधिक मिलती है। ऐसी स्थिति मे गागर मे सागर भरने का प्रयत्न करने का न इनमे धैर्य था न अवकाश। ये जिस विषय को उठाते या जिस समस्या पर कुठाराघात करते प्रायः उसके कारणो, निदानों और स्वरूप का कुछ दूर तक विश्लेषण करते चले जाते थे। अतः वर्णनात्मक या कथात्मक मुक्तकों की रचना इन्होंने नहीं की। उपदेश और

---

१. शंकर सर्वस्व—स० हरिशकर शर्मा, पृ० २६७

आलोचना के लिए सूत्र या व्यंजना-शैली की अपेक्षा व्याख्या और विश्लेषण-शैली एव निबद्ध विधाओं का ग्रहण स्वाभाविक ही था। कुछ मुक्तक जिनका सम्बन्ध किसी 'वाद' से नही जोडा जा सकता —गाधीजी के निधन पर अथवा उनका महत्त्व वर्णन करने के लिए लिखे गए। इस प्रकार के कुछ मुक्तक नरेन्द्र शर्मा की कृति 'रक्त-चन्दन' मे सकलित है। नरेन्द्र शर्मा की कविता को निश्चित रूप से किसी एक 'वाद' की कारा मे बन्दिनी नही किया जा सकता। उनके काव्य में प्रगतिवाद का जितना प्रभाव है, उतना ही उन्हे छायावाद और स्वच्छन्द प्रेम के गायक कवियो की कोटि मे घसीटा जा सकता है। ऐसा बहुत से कवियो के विषय मे सत्य है, परन्तु जिन कवियो ने मुक्तक-रचना नहीं की इस प्रसग मे हम उनका उल्लेख नही कर रहे है। प्रकृति-वर्णन के लिए लिखे गये नरेन्द्र शर्मा के मुक्तको मे परम्परा का बढाव ही है—

तेजस्वी तरुण तपस्वी-सा,
गैरिक लपटों से तन लपेट,
यह कृष्ण पक्ष का प्रथम चंद्र,
है उदित अखिल आभा समेट।
आरूढ़ भूमि के मस्तक पर
प्रद्योत, विशाल प्रबालखंड,
मोहित पतंग-से मंदकान्ति
दिखते बिखरे अनगिनत खेट![1]

प्रयोगवाद के कवि यद्यपि सिद्धान्त-रूप में छायावादी भाव, विषयवस्तु तथा शैली-शिल्प के विरुद्ध प्रतिक्रिया का नारा बुलद करते हुए काव्य-रचना मे प्रवृत्त हुए। छायावाद की तरल अमूर्त अनुभूतियों की अपेक्षा सामाजिक मूर्त अनुभूतियो की माँग, और सुनिश्चित बौद्धिक धारणाओं का महत्त्व बढा, परन्तु व्यवहार मे, विशेषकर वर्णनात्मक कविता मे बहुत दूर तक छायावादी प्रवृत्ति से अपना पल्ला न छुडा सके। मुक्तको मे यह प्रभाव इनकी अन्य विधाओ की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। अपने मूल रूप में यह कविता बौद्धिक थी तथा इन कवियो ने छायावादी रोमानी काव्य की अतीन्द्रियता और वायवी सौन्दर्य-चेतना के विरुद्ध वस्तुगत मूर्त और ऐन्द्रिय-चेतना का विकास करने का प्रयत्न किया। सौन्दर्य की परिधि मे मसृण और मधुर के अतिरिक्त परुष, ग्राम्य और अनगढ के अन्तर्भाव का प्रयत्न किया। रोमान्टिक काव्य की सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा का पुनर्मूल्यन करने का दावा किया। इस काव्य की सीमित और एकागी दृष्टि के स्थान पर व्यापक सौन्दर्य-चेतना का विकास किया। छायावाद के काव्य मे व्यक्ति तत्त्व का प्राधान्य था। इन कवियो ने इसके विपरीत वस्तु की आन्तरिक अर्थ व्यंजना को बिना अपनी भावना का रंग चढाए अनूदित करना कविता का लक्ष्य माना। वे वस्तु के भावपरक वर्णन में विश्वास न करके, उसकी आत्मा को शब्दों द्वारा उद्घाटित करना समर्थ काव्य का गुण मानते थे। परन्तु इस वर्ग के अधिकांश कवि छायावाद के ह्रास काल के वे कवि थे जिनकी मूल प्रवृत्ति अन्तर्मुखी थी—जिनमें छायावाद का रूप रंग और रोमांस सर्वथा निःशेष नहीं हुआ था। अतः

१. अग्निशस्य—नरेन्द्र शर्मा, पृ० ६१

स्वभाव से व्यक्तिगत दृष्टिकोण और अपने लक्ष्य के रूप में वस्तु-सत्य के उद्घाटन को अपनाने से इनकी कविता मे उभय प्रवृत्तियो का अद्भुत संगम परिलक्षित होता है। विशेष रूप से इनके वर्णनों मे बाह्य वस्तु को महत्त्व देने पर भी उसके प्रति इनकी अनुभूति, इनका राग तत्त्व सर्वथा निःशेष नही हुआ है। इस मत की पुष्टि मे प्रयोगवाद के अनेक प्रमुख कवियों की कविता से उदाहरण दिये जा सकते है। प्रकृति-वर्णन मे इन्होने कही तो समस्या की व्यजना की है, कही उसके वस्तु रूप का उद्घाटन-मात्र, परन्तु सर्वत्र नही। उदाहरण के लिए अज्ञेय और भारतभूषण अग्रवाल के ये मुक्तक प्रस्तुत है—

(क) भाले की अनी-सी बनी
बगुलों की डार,
फुटकियां छिटफुट
गोल बांध
डोलतीं
सिहरन उठती है एक देह मे।
कोई तो पधारा नहीं मेरे सूने गेह में—
तुम फिर आ गये, क्वांर ?[1]

(ख) बादल, गरज ले !
बिजली, विभूति से तू अपने अंग सज ले ॥
बज ले
ओ मेरे रोम-तार !
तू इस वर्षाघात से बज ले !
क्या पता, उतरती इस धार में ही धुलकर
मेरा मन मज ले ![2]

प्रकृति के उपर्युक्त वर्णनो मे केवल द्रष्टा की तटस्थ दृष्टि से वस्तु-सत्य का उद्घाटन नही, कवि की अपनी रागात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। इस प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण इन प्रतिनिधि व अन्य कवियो की रचनाओ से प्रस्तुत किये जा सकते है। कुछ अन्य मुक्तक इन कवियों ने प्रकृति के वस्तु-रूप का वर्णन करने के लिए लिखे है। इनमे कवि एक ओर खडा होकर केवल प्रकृति का निरीक्षण और उसका यथावत् वर्णन करने का प्रयत्न करता है, उसके द्वारा अपने मन पर पडे प्रभाव अथवा उस पर अपनी भावनाओं का आरोप कर व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से उसका अंकन नही करता। इन वर्णनो मे निश्चय ही वस्तु प्रधान है परन्तु सौन्दर्य-चेतना, उसके मूल्य और मानदण्ड परम्परागत है। इनमे कवि ने मूर्त परन्तु मधुर और मसृण को स्थान दिया, अनगढ, ग्राम्य और परम्परागत अर्थ मे कुरूप को नही। प्रकृति के अनेक रम्य और कोमल चित्र प्रयोगवादी काव्य में बिखरे हैं—

---

१. बावरा अहेरी—अज्ञेय, पृ० २०
२. ओ अप्रस्तुत मन—भारत भूषण अग्रवाल, पृ० १३६

(क) व्योम-गगा में आयी बाढ़,
चांद से टकरायी हिलकोर।
इधर से सुधा उधर से दूध,
भीगने लगे गगन के छोर।
दिशाओं में ढरका सब दूध,
धरा पर गयी सुधा सब फैल।
हो गयी सहसा गोरी-रात,
धुल गया युगों-युगों का मैल।[1]

(ख) चांद तो थक गया
गगन भी बादलों से ढक गया,
वन तो वनैला है
अभी क्या ठिकाना कितनी दूर तक फैला है ?
अन्धकार।
घनसार।
अरे पर देखो तो वो पत्तियों में
जगनू टिमक गया ![2]

कही-कही कवि अपने सिद्धान्तो के अनुरूप प्रकृति-वर्णनो के साथ जीवन की समस्याओ का गूँथ देता है। इन वर्णनो मे व्यजना यही है कि केवल प्रकृति के मनोरम और हृदयग्राही रूप ही सत्य नही जीवन की यथार्थ, आर्थिक, भौतिक समस्याएँ सत्य है। इन मुक्तको मे वस्तु-सत्य की प्रतिष्ठा है—

बह चुकीं बहकी हवाएँ चैत की
कट गईं पूलें हमारे खेत की
कोठरी में लौ बढ़ाकर दीप की—
गिन रहा होगा महाजन सेत को।[3]

सर्वत्र यह वस्तु-तथ्य प्रकृति-वर्णन के माध्यम से व्यक्त नही होता। कभी कवि मन की निविड़ताओ और मन के उलझे अनुभव-खण्डों का वस्तुपरक अभिव्यजन करता है। इन वर्णनो के मूल मे कोई सघर्ष, कल्पना या विचार रहता है। मनोविश्लेषण-शास्त्र की पद्धतियाँ—मुक्त विचार-प्रवाह, स्वप्न-चित्र आदि का अकन—इनमे सहायक हुई है। भारतीय पौराणिक सस्कृति और वर्तमान सांस्कृतिक जीवन के अन्तर को लेखक 'टूटे सपनों का सपना' मे कुछ इस प्रकार के अर्धस्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता है—

---

१. नाव के पाँव—जगदीश गुप्त, पृ० ६२
२. बावरा अहेरी, पृ० ५०
३. वही, पृ० २१

रात मैंने एक स्वप्न देखा।
मैंने देखा
कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है,
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं,
उर्वशी ने डान्स-स्कूल खोल दिया है,
नारद गिटार सीख रहे हैं
गणेश टाफ़ी खा रहे हैं,
और बृहस्पति अंग्रेजी से अनुवाद कर रहे हैं।[1]

उपर्युक्त मुक्तक के मूल मे एक अर्ध स्पष्ट विचार है जिसको यद्यपि वस्तुपरक रूप मे अकित किया गया है, परन्तु प्रयुक्त प्रतीक कवि का आशय पूर्णतः स्पष्ट नही कर सके। इसके अतिरिक्त सगीतात्मकता (यह सगीत भाव, स्वर, नाद, लय, एक, दो या सभी का हो सकता है) और रागात्मकता का—जो कविता के प्राण तत्त्व है, इस प्रकार के मुक्तकों में अभाव है। इन रचनाओ मे एक बात प्राय दृष्टिगत होती है—जिन मुक्तको मे छन्द-विधान के अतिरिक्त अभिव्यजना और समवेत रूप-विधान मे छायावाद की परम्परा का विकास हुआ है, उनमे काव्य-गुण अधिक है, कविता की मूलभूत विशेषताओ की रक्षा हो सकी है। परन्तु जिन मुक्तको मे ये कवि नवीनता के दुराग्रह से परम्परा से सर्वथा उच्छिन्न होकर क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते है, वहाँ प्राय: इनकी रचनाओं में गद्यमयी निविडता आ जाती है। अथवा कुतूहलजनक वचित्र्य उत्पन्न हो जाता है, जिसके नएपन की सूझ पर दाद दी जा सकती है, तन्मय होकर आनन्दलाभ नहीं किया जा सकता।

कुछ मुक्तको में वर्ण्य के वस्तुरूप को अधिकाधिक यथावत् रूप मे शब्दों मे बाँधा गया है। क्रियाओ, ध्वनियों आदि के द्वारा मन पर पडने वाले प्रभावों को ज्यो-का-त्यों कवि शब्दों मे उतारता है। ध्वन्यार्थव्यंजक शब्दावली के प्रयोग के रूप मे यह प्रयत्न अलकार योजना की विशेषता बहुत पहले ही बन चुका था, परन्तु नई कविता मे यह प्रयत्न वस्तु के प्रति सवेदना को वस्तु के माध्यम से ही व्यक्त करने के लिए किया गया, सौन्दर्य-बोध जगाने के लिए या यथा-प्रसग शब्द-सगीत और रसानुभूति के वर्द्धन के लिए नहीं—

भोर बेला। सिंची छत से ओस की तिप्-तिप्!
पहाड़ी काक
की विजन को पकड़ती-सी क्लान्त बेसुर डाक—
'हाक्! हाक्! हाक्!'
मत सजो यह स्निग्ध सपनों का अलस सोना—
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक।
'थाक्! थाक्! थाक्![2]

---

१. ओ अप्रस्तुत मन—भारत भूषण अग्रवाल, पृ० १०२
२. हरि घास पर क्षण भर—अज्ञेय, पृ० ३४

नए ढंग के कुछ मुक्तक कवि 'दिनकर' ने भी लिखे। यह प्रभाव उनकी पिछली रचनाओं मे विशेष रूप से देखा जा सकता है। 'सीपी और शंख' में 'आधा चाँद' का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

सरसी में लो उतर गया अब चाँद,
व्योम अभी कितना निश्चल लगता है।
तारों की जो फसल ताल में लहराती है,
हँसिया बनकर चाँद काटने को आया है।
किन्तु, एक मेढ़क उस पर यों झपट रहा है,
मानों, वह चन्द्रमा नहीं, दर्पण हो कोई।[1]

इस वर्णन की विशेषता कवि की सौन्दर्य-चेतना नही—नवीन ढग की अप्रस्तुत-योजना, वस्तुरूप मूर्त उपमानों का चमत्कारपूर्ण उपयोग है। यूं उपमा का आधार रूप-साम्य है, परन्तु बिम्ब-विधान परम्परामुक्त है।

भावप्रधान मुक्तक-रचना का जहाँ तक प्रश्न है—व्यक्तिगत अनुभूत और सवेदनीयता को कविता से अलग तो कभी किया ही नही जा सकता केवल मात्राभेद से उसकी स्थिति में अन्तर हो सकता है, अतः प्रत्येक कवि की कविता में अनायास ही कभी-कभी झुठलाने पर भी अनुभूति या भाव-तत्त्व की प्रधानता हो जाती है। नई कविता मे भी यद्यपि प्राय: भावुकता और अतिशय कल्पना-विलास का निषेध किया गया, परन्तु सर्वत्र ये कवि आत्मानुभूति का चिन्तन और वर्णन से दमन न कर सके, और ये भाव-स्फुलिग अवसर पाकर इधर-उधर बिखरते ही रहे। जहाँ ईमानदारी से इन्होने अपनी भावनाओ को बिना चीर-फाड़ किये पृष्ठो पर उतार दिया वहाँ वे अपने पाठक और काव्य दोनो के प्रति न्याय कर सके है। यदि ध्यान से देखे, तो संख्या की दृष्टि से भाव-प्रधान मुक्तकों की रचना नए कवियों ने छायावादी कवि की अपेक्षा अधिक की। इस विषय मे कुछ कवियो की नियत धारणाएँ साधक हुई—

"मैंने कुछ बहुत छोटी-छोटी कविताएँ लिखी हैं। छोटी कविता को महत्त्व भी देता हूं। 'नावक के तीर' वाली बात ही नही है, यो भी मैं मानता हूँ कि भावना-प्रधान कविता छोटी ही हो सकती है, नही तो अपने भावों का 'पैराफ्रेज' होने लगता है। 'जो घनीभूत पीडा थी मस्तक मे स्मृति-सी छायी' वह एक आँसू बनकर आये यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु जब वह बरसाती झडी-सी बरसने लगती है, तब वह शायद वही पीडा नही रहती, और घनीभूत तो भला रह ही कैसे सकती है। लम्बी कविताएँ भी होती हैं, हो सकती हैं, अच्छी भी हुई हैं, पर उनको कलात्मक एकता और गठन देने वाली चीज फिर दूसरी हो जाती है—भाव की सहति और तीव्रता नही।"[2]

घनीभूत पीड़ा का बरसाती झड़ी के समान बरसकर बह जाना अधिक स्वाभाविक है,

---

१. सीपी और शंख—दिनकर, पृ० २५
२. आत्मनेपद—अज्ञेय, पृ० ३१

अथवा 'सहति, तीव्रता और गठन' के साथ घनीभूत रूप मे सूत्र-शैली मे व्यक्त होना, यह विवाद का प्रश्न हो सकता है। परन्तु उपर्युक्त मत से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि नयी कविता मे मुक्तक का आश्रय लिया गया तो क्यो ? और उनसे पहले के कवि इस काव्य-रूप के प्रति ममत्व न दिखा सके तो क्यो ? कारण जो भी हो—यह स्पष्ट है कि 'नावक के तीर' वाली शैली मे अभिव्यक्ति के लिए मुक्तको का एक बार नयी कविता मे पुनरुद्धार हुआ। यद्यपि सर्वत्र ये कवि (स्वय अज्ञेय भी) मुक्तको मे इतना अर्थ भर नही सके, कि उन्हे 'नावक के तीर' कहा जा सके।

इन भावप्रधान मुक्तको को यदि ध्यान से देखा जाय तो वे छायावाद की परम्परा के, दिशा-विशेष मे विकास ही प्रतीत होगे, इनमे किसी नयी काव्य-पद्धति का आरम्भ या पुरानी परम्परा का पुन. सृजन नही मिलता। जिस प्रकार छायावाद की अतिशय अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, प्रतीकात्मकता, पलायन और गोपन के उपरान्त स्वच्छन्द प्रेम की निष्कपट अभिव्यक्ति 'बच्चन' आदि के काव्य मे हुई, उसी प्रकार नयी कविता के कवियों ने अपनी भावनाओ को स्पष्ट रूप मे व्यक्त किया है। इनके विषय भी वही थे और अभिव्यंजना में भी कोई विशेष उल्लेखनीय मौलिकता दृष्टिगत नही होती, केवल मुक्त छन्द मे मुक्तक रचना की परिपाटी इन्होंने अवश्य आरम्भ की, परन्तु वह केवल भावप्रधान मुक्तको की नही, इनकी रचना-शैली की ही विशेषता है। अन्यथा इन्होने स्वच्छन्द प्रेम की धारा को ही आगे बढाया है। अपने कथन की पुष्टि में कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते है—

रो उठेगी जागकर जब वेदना
बहेंगी लूहे विरह की उन्मना
उमड़ क्या आया करेगा हृदय में
सर्वदा विश्वास का वारिद घना ?[1]

प्रतीको का भी इनकी भावाभिव्यजना में अभाव नही—

प्यासा तट जहाँ था वहीं रहा—
धारा ही आई।
प्लावन की बेला में
आज नई उपलब्धि पाई :
निश्चल समर्पण ही सिद्धि है,
रस की खोज में भटक
मैंने उम्र यों ही गँवाई।[2]

प्रकृति का इन्होने प्रतीक-योजना और अप्रस्तुत-चयन के लिए ही उपयोग नही किया, अपनी भावनाओं की सहचरी और उद्दीपन के रूप में भी चित्रण किया है—

ओस में भीगी हुई अमराइयों को चूमता
झूमता आता मलय का एक झोंका सर्द

---

१. हरी घास पर क्षण भर—अज्ञेय, पृ० २३
२. ओ अप्रस्तुत मन—भारतभूषण अग्रवाल, पृ० १३७

कांपती मन की मुंदी मासूम कलियां कांपती
और खुशबू-सा बिखर जाता हृदय का दर्द।[1]

उपर्युक्त मुक्तक पर अशतः उर्दू की अभिव्यंजना का प्रभाव है, परन्तु यह प्रभाव भी इन कवियो से पूर्व 'निराला', 'बच्चन' आदि के काव्य मे पर्याप्त मात्रा मे परिलक्षित होता है, अतः इसे भी मौलिक प्रभाव-ग्रहण नही माना जा सकता। उर्दू से प्रभावित कुछ मुक्तक भारतभूषण अग्रवाल ने 'मुक्ति मार्ग' मे भी लिखे है। कही कुछ रुबाइयो के ढग पर मुक्तक-रचना की गई। इस प्रकार के मुक्तक यद्यपि कम हैं, पर जो है वे स्पष्ट, सरस और हृदयग्राही। विधा हिन्दी मे प्रयोग की दृष्टि से पुरानी है :

याद पिछली चाँदनी रातें करें आओ।
अनकहे स्वीकार सौगातें करें, आओ।
भोर होते जिन्दगी से जूझना होगा,
रात है, कुछ प्यार की बातें करें आओ।[2]

कुछ मुक्तक रचनाओ मे शिल्प की दृष्टि से नवीन प्रयोग किये गए। यद्यपि हर प्रकार के सगीत का परित्याग करने से एक प्रकार की गद्यवत् जड़ता इनकी शैली और गति दोनो में आ गई है, परन्तु प्रयोग की दृष्टि से ये नवीन अवश्य है। ऐसे मुक्तक मे कवि अपनी अनुभूति को सहज रूप मे नही, बुद्धि के सहारे विश्लेषण करके अभिव्यक्त करता है। नरेश मेहता के निम्न-लिखित मुक्तक मे समय रूपी दर्पण मे अपनी छाप, अपनी प्रतिच्छाया अकित करने की लालसा का विश्लेषण इस प्रकार किया गया—

आओ इस झील को अमर कर दें—
छू कर नहीं,
किनारे बैठ कर भी नहीं,
एक सग झाँक इस दर्पण में
अपने को दे दें हम,
इस जल को—
जो समय है!![3]

उपर्युक्त पक्तियो मे भावव्यजना बहुत स्पष्ट और पूर्ण नही। मुक्तक की विशेषता—स्व-अर्थ-प्रकाशन और चमत्कार उत्पन्न करने की क्षमता इन पक्तियो मे नही है। इनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है, मूल भाव का आभास भी हो जाता है, परन्तु भाव खण्डित प्रतीत होता है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि नई कविता के भावप्रधान मुक्तक रूप-विधा की दृष्टि से 'बच्चन' आदि की स्वच्छन्द-प्रेम-व्यजक कविता की परम्परा में ही आयेंगे। केवल मुक्त छन्द के प्रयोग के अतिरिक्त शैली, छन्द, अप्रस्तुत-योजना, भाव-भगिमा सभी दृष्टियो से यह

---

१. ठण्डा लोहा—धर्मवीर भारती, पृ० २५
२. नाव के पाँव—जगदीश गुप्त, पृ० ७२
३. वनपाखी सुनो—नरेश मेहता, पृ० ५०

कविता परम्परासिद्ध है। उर्दू का जो प्रभाव उन्होंने ग्रहण किया वह भी बहुत पूर्व अन्य कवियो के माध्यम से हिन्दी काव्य में पहुँच चुका था।

विचारप्रधान मुक्तक भी नई कविता में कम नहीं लिखे गये। बौद्धिकता इस काव्य की प्रमुख विशेषता है और समाजवाद का प्रभाव भी अधिकांश कवियों की चिन्ताधारा पर रहा है। भारतीय वैष्णव-दर्शन मुख्यतः आस्था और विश्वास पर आधारित दर्शन है, अत· यदि इसकी स्वीकृति कवि काव्य मे करता है तो रागप्रधान कविता का सृजन होता है। समाजवाद–अनास्था, विरोध और आत्मा के स्थान पर वस्तु के महत्त्व-प्रतिपादन पर आधृत चिन्ताधारा है। अत. इन वाममार्गीय विचारो पर आस्था रखने वाले कवि की कविता मे बौद्धिकता और वस्तुगत मूल्यो की स्वीकृति, दोनो का समान स्थान होता है। इसी ताने बाने से नई कविता के मुक्तक निर्मित है। इन कवियो का विद्रोह बहुविध था। इन्होंने केवल सामाजिक नही, साहित्यिक रूढियो के प्रति भी विद्रोह किया। अत इनकी रचनाओ मे उपदेश और आलोचना का लक्ष्य और स्वरूप बहुमुखी हो गया। जीवन मे मिट्टी का महत्त्व-प्रतिपादन इस वर्ग का कवि इस प्रकार करता है—

मिट्टी का परस अभी जाना नहीं
मिट्टी का सम्मोहन ?
माना नहीं।
अपने हाथों उगाया कभी एक दाना नही
इसीलिए—
आया तुझे गाना नहीं।[1]

वह कला की सार्थकता मिट्टी के सम्मोहन मे मानता है। जिस कला मे यथार्थ जीवन, और मिट्टी मे आस्था नही होगी वह कल्पनाविलासिनी, व्योमचारिणी कला, कला नही बेसुरा राग होगी। नरेन्द्र शर्मा ने स्वर्ग और अपवर्ग की रूढ़ धारणाओ पर कुठाराघात करते हुए कहा—

जो लौकिक है वही अलौकिक है,
सामान्य सत्य ही परम गूढ़।
मानव ही दिव्य मानवोपरि,
मानव ही दानव अधम मूढ़।
आचरण विचार कामना में
मानव देही की मुक्ति निहित,
है यह जगती ही आदि-अन्त,
अपवर्ग-स्वर्ग कल्पना रूढ़।[2]

उपर्युक्त मुक्तक के समान ही अन्य समानान्तर विषयो पर नरेन्द्र शर्मा ने कुछ मुक्तक लिखे। कुछ मुक्तकों में संसार की असारता आदि का उपदेश सन्त कवियों के ढग पर दिया

---

१. ओ अप्रस्तुत मन—भारतभूषण अग्रवाल, पृ० १४७
२. रक्त-चन्दन—नरेन्द्र शर्मा, पृ० ६४

गया है।

जहाँ ये मुक्तक सिद्धान्तो व वस्तुजगत्, अध्यात्म या नीति-आचार की समस्याओं से सम्बद्ध हैं, वहाँ इनमे काव्यात्मकता और विचारो की गहनता उतनी नही मिलती। परन्तु जहाँ इनके कवि व्यापक क्षेत्र से विभिन्न विषयों का चयन कर तत्सम्बन्धी व्यक्तिगत बौद्धिक प्रतिक्रिया का विश्लेषण करते हैं, वहाँ इन मुक्तको की शैली और अर्थ दोनो मे गम्भीरता आ गई है। इनके विषय, विचार और उनकी अभिव्यक्ति सभी मे नवीनता है। उपदेश भी आत्मरस मे भीगकर नीरस से सरस हो गया है—

फूल को प्यार करो
पर झरे तो झर जाने दो,
जीवन का रस लो : देह-मन आत्मा की रसना से
पर जो मरे उसे मर जाने दो।
जरा है भुजा तितीर्षा की :
मत बनो बाधा
जिजीविषु को तर जाने दो
आसक्ति नहीं आनन्द है सम्पूर्ण व्यक्ति की
अभिव्यक्ति ·
मरूँ मैं किन्तु मुझे घोषित यह कर जाने दो।[1]

केवल उपदेश नही, 'अज्ञेय' के मुक्तको मे आलोचना और विश्लेषण भी अत्यन्त गम्भीर और शिष्ट स्वरों मे हुआ है। किसी विचार को अनुभूति का विषय बनाकर व्यक्त करने से वह जितना हृदयग्राही और उसका प्रभाव जितना रागात्मक हो सकता है, उतना विचार को विचार के रूप मे प्रस्तुत करने से नही। अज्ञेय के कुछ मुक्तको मे विचार तत्त्व की प्रधानता होने पर भी वे सरस होने के कारण ग्राह्य है। कही अतिशय बौद्धिकता भी बुद्धि पर भार नही डालती—

क्रान्ति है आवर्त्त, होगी भूल उसको मानना धारा।
उपप्लव निज में नहीं उद्दिष्ट हो सकता हमारा।
जो नहीं उपयोज्य, वह गति शक्ति का उत्पात भर है,
स्वर्ग की हो—माँगती भागीरथी भी है किनारा।[2]

उपदेश व्यजना कवि 'दिनकर' के द्वन्द्व गीत के कुछ पदो मे भी वर्तमान है। नरेन्द्र शर्मा के इस प्रकार के मुक्तकों में अर्थ—वाच्य, स्पष्ट और कवि का आशय प्रत्यक्ष है। उस पर कलात्मक शैली का आवरण नही लपेटा गया। जगदीशगुप्त के कुछ मुक्तक केवल विश्लेषण तक ही सीमित है। कही कवि स्वय पथ-निर्देश करने के स्थान पर केवल जिज्ञासा की अभिव्यक्ति कर, प्रश्न उठाकर ही रह गया है। कवि के शब्दो मे जिन्दगी की व्याख्या देखिये—

नाश और निर्माण के दोनों ध्रुवों के बीच,

---

१. हरी घास पर क्षण भर—अज्ञेय, पृ० ६१
२. वही, पृ० ४७

सारी जिन्दगी तिरती
जागरण में, स्वप्न में, सुख दुख संजोये—
ठीक पुतली की तरह फिरती
चिर शयन बन,
शीश पर जब मृत्यु आ घिरती,
फिर नहीं फिरती, नहीं तिरती।[1]

जगदीशगुप्त मे कवि और चित्रकार की प्रतिभाओ का सगम है, अत कवि ने जो कविता मे लिखा है, उसे चित्रो मे भी बाँधा है। प्रत्येक कविता के उपरान्त कविता के आशय का व्यजक एक चित्र अकित है। ये चित्र अधिकतर रेखाचित्र है जिनमे आधुनिक कविता की भाँति बाह्य रूप-आकार पर बल न देकर प्रभाव-साम्य या प्रभाव-व्यजना पर बल दिया गया है। ये रेखाएँ स्थूल नहीं व्यजनाप्रधान (Suggestive) है। यह विशेषता वर्तमान युग के समस्त कलात्मक प्रयत्नो की मूल है। वैसे कवि ने चित्रों का उपयोग कविता मे अस्पष्ट भाव या विचारों के स्पष्टीकरण के लिए नही किया, क्योकि उनकी कविता मे इस प्रकार का उलझाव है ही नही।

बौद्धिक मुक्तको की एक शैली जिसका मूल पुरातन और परम्परागत तथा रूप नवीन है—सूक्ति शैली है। कुछ कविताएँ यद्यपि इस प्रकार की विज्ञप्ति देकर नही लिखी गई, परन्तु उनका अन्तर्भाव काव्य-गुण की दृष्टि से इसी विधा के अन्तर्गत किया जायगा। परन्तु कुछ मुक्तको के सम्बन्ध में कवियो ने स्वय स्वीकृति की है। भारतभूषण अग्रवाल की एक 'सूक्ति' इस प्रकार है—

रेत का महल
कोरी कल्पना है।
इसीलिए,
कोरी कल्पना की कला
रेत का महल है।

इन सूक्तियो मे चमत्कार भावना का नही तर्क का है। 'दिनकर' के 'नए सुभाषित' भी इसी प्रकार के है। छन्द-प्रयोग, लय, सगीत अथवा अनुभूति का चमत्कार इन सूक्तियो मे विलक्षण नही, इनकी नए ढग की अप्रस्तुत-योजना ही, जो भाव-प्रेरित नही तर्कपुष्ट है, इनकी विशेषता है।

अभिव्यंजना शैली

मुक्तक के विभिन्न प्रकारो के समान ही उनमे प्रयुक्त शैली के भी विविध रूप मिलते है। परन्तु रूप, शैली, छन्द-विधान आदि का जितना वैविध्य और नवीनता निबद्ध-मुक्तको में मिलती है उतनी स्फुट-मुक्तकों मे नही। काव्य-विषय और रूप की भाँति अधिकाश मुक्तकों की

---

१. नाव के पाँव—जगदीशगुप्त, पृ० ८

रचना-कला भी रूढ है। विषय और रूप के भेद से इनकी शैली के भी अनेक भेद हो गए हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) **इतिवृत्तात्मक शैली**—मुक्तक काव्य का अधिकांश द्विवेदी-युग मे और इसी शैली मे लिखा गया। कारण, इस युग के कवियो का वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण आत्म की अवहेलना और नैतिक उपदेश देने की प्रवृत्ति है। उपदेश भी ये कवि बाह्य आचार-व्यवहार मे सम्बद्ध विषयो पर देते रहे, आन्तरिक भाव-सम्बन्धी विषयो पर नही, इसलिए विश्लेषण और व्यजना को बहुत स्थान नही मिला। भाषा की अनिश्चित स्थिति भी इस शैली के प्रचुर प्रयोग का एक कारण थी। कला-साधना की अपेक्षा भाषा-साधना मे कवि अधिक सलग्न रहे, परिणामत खडीबोली के प्रयोग मे अपटु कवि प्राय. गद्यवत् उपदेश मात्र देकर सन्तुष्ट हो जाते थे। बाह्य जीवन मे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सभी दृष्टियों से कुछ इस प्रकार की अव्यवस्था व्याप्त थी कि उनसे विमुख होकर आत्मसस्कार आत्मविश्लेषण और आत्माभिव्यक्ति का प्रयत्न कवियो के लिए सम्भव न था, अत' उनका दृष्टिकोण सर्वथा वस्तुनिष्ठ हो गया। जिन मुक्तकों का विषय और भाषा (ब्रज) परम्परागत है उनमे अपेक्षाकृत अधिक भावतन्मयता और सरसता मिलती है। तुलनात्मक दृष्टि से खडीबोली के मुक्तक नीरस, व शैली चमत्कार-शून्य एव गद्यात्मक है। इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग मुख्य रूप से दो प्रकार के मुक्तको मे हुआ है—(१) वे मुक्तक जिनमे वस्तु-वर्णन प्रधान है तथा (२) वे रचनाएँ जिनमें नैतिक विषयों से सम्बद्ध उपदेश-कथन और आलोचना की गई है।

वस्तुवर्णनात्मक मुक्तको मे विषय की रूपाकारगत विशेषताओ को ही शब्दो मे उतारा गया, उनके द्वारा द्रष्टा के मन पर पडे प्रभाव या दूसरे शब्दो मे विषय के प्रति कवि की आन्तरिक प्रतिक्रिया का विश्लेषण और वर्णन नहीं किया गया। यह विशेषता रूप, प्रकृति, समाज आदि से सम्बद्ध सभी वर्णनो मे प्राप्त है। इन वर्णनो मे विषय का रूप तो स्थूल चित्र के समान सम्मुख उपस्थित हो जाता है, परन्तु उसकी सूक्ष्म विशेषताएँ, अमूर्त भावनाएँ, गति और व्यापार आदि मन पर अकित नही होते। इनमें विषय का स्थूल बाह्य रूप सामने आ जाता है, परन्तु रग और नियत रेखाएं स्पष्ट नही होती। केवल वस्तु-वर्णन ही नही द्विवेदी-युग की मुक्तक रचनाओं मे कही-कहीं भाव-वर्णन और विचार-प्रतिपादन भी इसी शैली मे किया गया है। वर्णनात्मक मुक्तको के प्रसंग मे पीछे दिये गए उदाहरणो मे यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। छायावाद और परवर्ती कविता मे, वस्तु-वर्णन की इस पद्धति मे अन्तर आ गया। बाह्य रूप की अपेक्षा प्रभाव-व्यंजना पर अधिक बल दिया गया। कवियो की दृष्टि अन्तर्मुखी हो गई, अत. वस्तु-वर्णन मे भी मानव-भावनाओ का आरोप किया जाने लगा, किन्तु इस प्रकार की रचनाओ का माध्यम भी बदलकर मुक्तक से प्रगीत हो गया। अभिव्यंजना के उपकरणों—भाषा, अलकार, छन्द और शैली के साथ रूप-विधाएँ भी बदल गईं।

इतिवृत्तात्मक वर्णन-शैली, और रीतिकालीन चमत्कारप्रधान अभिव्यजना, दोनो का ही छायावादी कविता मे अभाव हो गया। पिछले खेवे के कवियो ने जहाँ मुक्तक-रचना की भी है, वहाँ भी उनकी शैली पूर्ववर्ती वर्णन-शैली से भिन्न है। उन्होने चित्र आँके तो उनमें रग भी भरे और गति व ध्वनि को भी शब्दों मे बाँधा ('मधुशाला' के उदाहरणों में पहले स्पष्ट किया जा चुका

है) तथा वर्णन की अपेक्षा प्रभाव-व्यंजना पर बल दिया। इतिवृत्तात्मक शैली द्विवेदी-युग के मुक्तकों की विशेषता है, परवर्ती काव्य में यह शैली अलभ्य नही तो अल्प अवश्य हो गई। वस्तु-वर्णन के लिए तो इस शैली का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से किया ही गया, परन्तु भाव और विचार का भी इन्होने वर्णन ही किया है, व्यजना या विश्लेषण नही। भाव-वर्णन या तो विनयपरक पद-रचना मे किया गया अथवा देश व समाज के प्रति व्यक्ति के कर्त्तव्य के आत्मसकल्पात्मक-वर्णन के रूप मे, अथवा देश और समाज की दुर्दशा का वर्णन कर देश के प्रति कर्त्तव्य-व्यजना की गई। ईश्वर से विनय निवेदन करते हुए ससार की असारता, कष्टों आदि का वर्णन है। अपने सकल्पो का वर्णन भी कवि प्रायः अत्यन्त अभिधात्मक और गद्यवत् शैली मे करता है—

हे जन्मभूमि जननी ! मैं तुझको आवरूगा।
निज बाहुबल से तेरे संकट सभी हरूगा॥
निज बुद्धि वाक्य बल से साहित्य घर भरूंगा।
सम्पत्ति अपनी सारी चरणों पै ले धरूंगा॥
तन-मन वचन से धन से सेवा तेरी करूंगा।
तेरे लिए जिऊंगा तेरे लिए मरूगा।[1]

यह अभिव्यक्ति मार्मिक स्थलो मे भी कही-कही अत्यन्त साधारण है। देशोद्धार के लिए ईश्वर से की गई विनय मे भाव-वर्णन की अपेक्षा देश की दयनीय अवस्था का वर्णन अधिक किया जाता है—

नाथ, कहां तुमने बिलंब लगाया ?
कोई आता नहीं, कोई नाता नहीं,
दुख जाता नहीं है दिखाया।
जि हें सब सिर झुकाते थे, वही अब सिर झुकाते हैं,
जिन्हें सब आर्य कहते थे, वही काले कहाते हैं।[2]

ये कवि बाह्य जीवन की अव्यवस्था से क्षुब्ध होते है। नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक सुधारो की आकाक्षा करते है, अतः आचार और कर्त्तव्य-सम्बन्धी उपदेश भी देते हैं, परन्तु ये उपदेश परोक्ष रूप मे या वक्रतापूर्ण व चमत्कारयुक्त शैली मे कलात्मक ढग से नही, प्रत्यक्ष इतिवृत्तप्रधान अभिधात्मक शैली मे व्यक्त हुए है। इनका प्रथम उद्देश्य है उपदेश देना, और काव्य-रचना उसका साधन-मात्र है, कलात्मक सिद्धि इनका साध्य नही। परिणामतः इनकी दृष्टि जितनी उपदेश के प्रत्यक्ष-कथन पर केन्द्रित है, उतनी कलात्मक काव्य-रचना पर नही। स्वय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अधिकाश उपदेशात्मक मुक्तक इसी शैली मे लिखे गए। 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार', 'ग्रन्थकार-लक्षण' 'कर्त्तव्य-पचादशी' आदि शीर्षको मे इसी प्रकार का उपदेश-कथन है—

---

१. नवीन बीन—ला० भगवानदीन, पृ० १२६
२. पराग—रूपनारायण पांडेय, पृष्ठ ४०

विद्वज्जन जहाँ परकीय भाषा,
होती तिरस्कृत जहाँ निज मातृ-भाषा !
ऐसी अनर्थकार-रीति भला जहाँ है,
कर्त्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है?[1]

इस प्रकार द्विवेदी-युग के अधिकांश वर्णनात्मक, कथात्मक,कहीं-कहीं भावात्मक और उपदेशात्मक व आलोचनात्मक मुक्तको की शैली यही है। यह इतिवृत्त मुक्तक-रचना की प्रवृत्ति केवल द्विवेदी-युग की कविता तक ही सीमित रही हो ऐसा नही कहा जा सकता। छायावादी काव्य का दृष्टिकोण आत्मसापेक्ष होने के कारण उसमे तो नही, परन्तु नयी कविता मे कुछ भिन्न ढग से इस प्रवृत्ति का पुनः आवर्त्तन हुआ। हाँ, इन कवियों की शैली सर्वथा अभिधाश्रित नही है। प्रभाकर माचवे का मुक्तक 'छलना' इस कथन की पुष्टि मे उद्धृत किया जाता है—

हेमन्ती सन्ध्या है, सूरज जल्दी ही डूबा जाता है–
मन भी आज अकारज चिर-प्रवास से क्यों ऊबा जाता है ?
फसल कट गई, कहीं गड़रिया बचे-खुचे पशु हाँक रहा है,
सांध्य क्षितिज पर कोई अंजन-म्लान-गूढ़ छवि आंक रहा है।
बचे-खुचे पंछी भी लौटे, घर का मोह अजब बलमय है,
मानव से प्रकृति की छलना, प्रकृति से मानव छलमय है।[2]

इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं--वस्तु-तत्त्व की प्रधानता, गद्यात्मकता, अभिधात्मकता और स्पष्टता। स्वाभाविक है इन मुक्तको मे छन्दोबद्धता के कारण नियतलयता तो प्राप्त है किन्तु वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण और इतिवृत्तात्मकता के कारण आन्तरिक और बाह्य संगीत की योजना नही। इनकी शैली में प्रसादमयता तो है, माधुर्य का लालित्य नहीं। कही-कही आलोचना मे उत्तेजना के कारण भाव-प्रेरित ओज आ गया है, परन्तु कला को उसका श्रेय नही दिया जा सकता। वह ओज और दीप्ति आक्रोश की है, परुषा वृत्ति की नही। सामान्यतः इस शैली मे सघनता, महाप्राणता और गरिमा का अभाव है, हाँ स्फीतता, प्रसादत्व अवश्य मिल जाता है। छायावादोत्तर रचनाओ में अपेक्षाकृत लालित्य और मृदुता प्राप्त होती है। इसी प्रकार वियोगी हरि की 'वीर सतसई' में कुछ ओज-दीप्त वर्णन भी मिल जाते है।

(२) **प्रगीतात्मक शैली**—मुक्तक-रचना की दूसरी शैली भावप्रवण मुक्तको में प्रयुक्त प्रगीतात्मक शैली है, परन्तु इस प्रकार की मुक्तक-रचना परिमाण की दृष्टि से इस युग मे बहुत नहीं हुई। इसका एक निश्चित कारण था। कवि समुदाय भावप्रवण प्रगीतात्मक मुक्तकों की रचना दो स्थितियों में करता रहा है—(१) भगवद्भक्ति के प्रसंग में—आत्मविभोर होकर आराध्य के प्रति आत्म-निवेदन, और लीला के प्रति मानसिक प्रतिक्रिया और तन्मयता की अभिव्यक्ति के लिए तथा (२) व्यक्तिगत प्रेम, विरह, उपालम्भ आदि की अभिव्यक्ति के लिए। पहले प्रकार की रचनाएँ इस युग की परिस्थितियाँ भिन्न हो जाने के कारण अधिक पनप न

---

१. द्विवेदी काव्यमाला—संग्रहकर्ता देवीदत्त शुक्ल, पृष्ठ ४१८
२. तारसप्तक (प्रथम)–प्रभाकर माचवे, पृ० ५७

सकीं। भौतिक और ऐहिक मूल्यों व समस्याओं की प्रमुखता के इस बौद्धिक और चिन्तनप्रधान युग में धर्म के प्रति अन्धविश्वास अतः आत्मविभोरता नही रही। आत्मविस्मृति और आत्म-निलय के अभाव में इष्ट के प्रति हृदयोद्‌गारों का अन्त.स्फूर्त उच्छलन सहज सम्भव न था। द्विवेदी-युग तक तो इष्ट के प्रति आत्मनिवेदन के लिए इस प्रकार के विनय-पदों की रचना कुछ दूर तक होती रही। कवि प्रसाद ने भी इस शैली मे कुछ पदों की रचना की है। परन्तु उनके पश्चात् चिन्तन की विश्वव्यापी प्रवृत्ति धर्म पर भी कुछ इस प्रकार व्याप्त हो गई कि धार्मिक विश्वास, आस्थाएँ, दर्शन-विवेचन, विश्लेषण का विषय बन गए। उनके प्रति अगाध विश्वास और राग की अपेक्षा मन की जिज्ञासा और बुद्धि द्वारा अन्वेषण मुक्तको में व्यक्त हुआ। वस्तुतः ऐसे विषयों पर मुक्तक लिखे ही नही गए, लम्बी कविताओं की रचना अधिक हुई। कवि 'शकर', 'पूर्ण' तथा प्रसाद की आरम्भिक रचनाओं मे विनय के कुछ सुन्दर आत्मनिवेदनात्मक पद प्राप्य हैं। कवि प्रसाद ने और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने गोपियो के प्रेम और विरह-वर्णन के लिए कतिपय सुन्दर पदों की रचना की है जिनमे मार्मिकता, उपालम्भ, व्यंग्य-वक्रता सभी कुछ है। कहीं-कहीं इनमें रीतिमुक्त धारा के कवियों की सी अन्त स्फूर्ति एव भावदीप्ति भी वर्त्तमान है। विरहिणी नायिका की प्रेमविह्वलता निम्नांकित सवैये मे देखिये :

सखियान की सीख लगे बिख-सी बसुरी धुनि कान पगे सो पगे,
मति बौरि भई है अचेत दशा तनमैन के ज्वाल जगे सो जगे।
रंग त्यागि सबै बृग 'पूरन' ये घनश्याम के रग रंगे सो रंगे,
अंखियां पल एक न रैन लगैं, ब्रजचन्द सों नैन लगे सो लगे।[1]

प्रसाद ने गोपियो का प्रेम-वर्णन उपालम्भ-मिश्रित वक्रता से किया है। इनका स्वर सूर-दास आदि भक्त कवियो से भिन्न नही। अन्तर केवल इतना है कि उन्होने गेय पदों की रचना अधिक की, और इस युग के कवियों ने कवित्त-सवैया शैली को अपनाया। उपालम्भ-शैली में जो मुक्तक लिखे गए, उनमे व्यजना, वक्रता और चमत्कार सभी कुछ है। इनकी भाषा भी ब्रज है—

भई ढीठ फिरे चल चंचल-सी,
यह रीति नहीं इनकी है नई॥
नई देखि मनोहरता कतहूँ,
थिरता इनमें नहीं पाई गई॥
गई लाज सरूप-सुधा चखि के,
इनकी न तबौं कुटिलाई गई॥
गई खोजत ठौर-ही-ठौर तुम्हें,
अंखियां अब तो हरजाई भईं॥[2]

उपर्युक्त पक्तियों मे परम्परागत भाषा और शैली में रूपक, अनुप्रास, विशेषोक्ति आदि के सहारे उपालम्भ-जन्य भाव-वक्रता के परिणामस्वरूप वचन-वक्रता उत्पन्न हो गई है। इस शैली

१. पूर्ण संग्रह—राय देवीप्रसाद पूर्ण, पृ० २६०
२. चित्राधार--प्रसाद, पृ० १८३

में चमत्कार और वक्रता परम्परागत ढंग की है, परन्तु ऊहात्मक नहीं, भावप्रेरित। इस पर भक्त कवियों की पद शैली की भाव-समृद्धि, और कथन-भंगिमा पर रीतिमुक्त कवियों की कवित्त-सवैया शैली की विदग्धता का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, अत मौलिकता की दृष्टि से इनकी सिद्धि विशेष नहीं। इनका सम्बन्ध पूर्व-परम्परा की किसी न किसी कड़ी से जोड़ा जा सकता है।

दूसरे प्रकार—अर्थात् व्यक्तिगत राग-विराग की अभिव्यक्ति के लिए द्विवेदी-युग मे अवकाश ही नही था और परवर्ती कवियो ने निबद्ध गीतियों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। रम्याद्भुत अनुभूतियो की अभिव्यक्ति के लिए छायावाद और उत्तरकालीन कवियो ने मुक्तक का आश्रय नही लिया। कुछ गिने-चुने प्रयोग 'बच्चन' आदि स्वच्छन्द प्रेमधारा के तथा नए कवियों की रचनाओ मे बिखरे है, परन्तु इन मुक्तको मे विशेष शैलीगत चारुत्व नही मिलता। वस्तुतः मुक्तकों मे जहाँ अनुभूति व्यक्त होती है वहाँ उसकी एक झलक मात्र मिलती है विशेष तन्मयता की स्थिति से पूर्व ही क्षणिक भावोद्वेग का परिशमन हो जाता है। इसी कारण आत्म-निरूपिणी भावाभिव्यक्ति का माध्यम मुक्तक न होकर इस युग की कविता मे प्रगीत ही रहे हैं। इस शैली में फिर भी जो कुछ विरल रचनाएँ हुई उनमे अनुभूति की सत्यता, सघनता, अतः शैली मे द्रवणशीलता और माधुर्य विद्यमान है। एक उदाहरण देखिये—

छलक कर आई न पलकों पर विगत पहचान
मुसकरा पाया न ओठों पर प्रणय का गान
ज्यों जुड़ी आंखे मुड़ीं तुम, चल पड़ा मैं मूक
इस मिलन से और भी पीड़ित हुए ये प्राण।[1]

इतिवृत्त-वर्णन की भाँति आत्मनिरूपक मुक्तक-रचना मे कवि की दृष्टि विषय के बाह्य रूप पर ही केन्द्रित नहीं रहती। उसका आत्म या तो द्रवित होकर बह जाना चाहता है, अथवा वह बाह्य तत्त्वों पर अपनी मनसा का आरोप कर देता है। इष्ट या प्रिय के प्रति आत्मनिवेदन करने की स्थिति मे भी उसे अपने अन्तःकरण को टटोलना पडता है। यदि वह भक्त के रूप मे सामान्य जीवमात्र का प्रतिनिधित्व भी करता है, तब भी आत्मानुभूति के अभाव मे वह उपदेश दे सकता है, दार्शनिक विषयों का विवेचन कर सकता है, विनय और आत्मनिवेदन नही कर सकता। अतः अन्तर्मुखी दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण भावात्मक मुक्तको की शैली मे माधुर्य, अन्तः-स्फूर्त अभिव्यक्ति और भावो की सघनता के कारण समृद्धि और घनत्व मिलता है। इस शैली मे उपालम्भ, विरह-निवेदन आदि के स्थलों पर वाग्वैदग्ध्य, वचन-वक्रता, तथा सर्वत्र प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति न करने के कारण कही-कहीं लक्षणा और व्यजना का चमत्कार भी आ गया है।

(३) चमत्कार-प्रधान अभिव्यंजना-शैली—आधुनिक काल के मुक्तको की तीसरी शैली चमत्कार-प्रधान अभिव्यंजना-शैली है। चमत्कार-नियोजना इन कवियों ने अनेक रूपों में की है। कहीं यह चमत्कार उक्ति का है और कहीं अलकार का। अलकारों का सहज स्वाभाविक प्रयोग इतिवृत्तात्मक मुक्तकों के अतिरिक्त अन्य सभी मुक्तको मे हुआ किन्तु कुछ मुक्तको मे अलंकार-जन्य चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार के मुक्तक भी अनुपात की

---

१. तारसप्तक (प्रथम) भारतभूषण अग्रवाल, पृ० ३७

दृष्टि से अन्य मुक्तकों की अपेक्षा कम लिखे गए। क्योंकि द्विवेदी-युग के कवि काव्य-कला की नहीं, काव्य-भाषा और उद्देश्य की साधना मे लगे रहे, और छायावादी काव्य की रम्यादभुत रोमानी कला मे भी कलात्मक चमत्कार कवि का साध्य नही बना। इसके अतिरिक्त उस काव्य की कला स्निग्ध, मृदु-ललित, रेशमी कला है, उसमें चमक, चकाचौध, और तड़क-भडक नहीं है। उसमे चौंका देने वाला चमत्कार नही, रम्यता मिलती है। हम चमत्कृत होने की अपेक्षा उस पर मुग्ध होकर तन्मयता की अनुभूति करते है। इनकी कला का चमत्कार भी भावप्रेरित चमत्कार है, बाह्य प्रसाधनो से जुटाया हुआ चमत्कार नही।

जैसा पहले भी कहा जा चुका है, मुक्तको में यह वैचित्र्य-साधना दो रूपो मे की गई—उक्ति-वैचित्र्य के रूप मे और अलकार-वैचित्र्य के रूप में। उक्ति-वैचित्र्य प्रधान मुक्तकों के उत्कृष्ट उदाहरण अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की रचना 'चोखे चौपदे' में मिलते हैं—

लालसा है रस बरसती ही रहे
पर तुम्हारी आंख रिस से लाल है।
यह चमेली है खिलाना आग मे
यह हथेली पर जमाना बाल है ॥[1]

ला० भगवानदीन ने भी इसी शैली मे कुछ वर्णन किए है जिनका उल्लेख और उद्धरण पीछे किया जा चुका है। मेहदी, आँख आदि विषयो पर रचित मुक्तक इसी शैली के हैं। इनकी रचनाओ के विषय विविध, भाषा मुहावरेदार और शैली प्रभावात्मक है। इन मुक्तको मे उक्ति की स्पष्टता के कारण तीव्रता और प्रभावात्मकता है, अलंकारो की बोझिलता या वैचित्र्य के कारण नहीं। इस शैली पर उर्दू-कविता की जिंदादिली और प्रत्यक्ष कथनात्मकता का गहरा प्रभाव है। आँख के आँसू पर लिखा इस प्रकार का एक उदाहरण देखिये—

किस तरह वह कलेजा है बना,
जो किसी के रंज से हिलता नहीं।
आंख से आंसू छना तो क्या छना,
दर्द का जिसमें पता मिलता नहीं।
वह कलेजा हो कई टुकड़े अभी
नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं।
फूट जाए आंख वह जिसमे कभी,
प्रेम का आंसू उमड़ आता नहीं ॥[2]

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने उक्तिचमत्कार-युक्त ब्रजभाषा के सवैयों की रचना की है। एक अन्य शैली जो उक्तिवैचित्र्य-पूर्ण परन्तु कोरी चमत्कारवादी और रसविहीन है, खुसरो के अनुकरण पर रचित पहेलियों की शैली है। इनकी रचना मुख्य रूप से रामचरित उपाध्याय ने की, परन्तु इन पहेलियों में भावप्रेरित कलात्मक सौन्दर्य नही मिलता।

---

१. चोखे-चौपदे—हरिऔध—'केसर की क्यारी', पृ० ५६
२. पद्य-प्रमोद—हरिऔध, पृ० १४८

चमत्कारप्रधान मुक्तकों का दूसरा प्रयोग अलकृत मुक्तक-रचना के रूप मे मिलता है। अलंकारों का चमत्कृत प्रयोग यत्र-तत्र सभी कवियो ने किया है। 'हरिऔध', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', नाथूराम शर्मा 'शकर' आदि सभी कवियो ने, विशेष रूप से वर्णनात्मक कविता मे अलकारो का यह चमत्कार दिखाया है। इन वर्णनो मे भाव-प्रेरित सौन्दर्य कम, और कलागत चमत्कार अधिक है। इस प्रकार के प्रयोग शब्द और अर्थ दोनो से सम्बद्ध अलकारों में किये गए। सदेहालकार के आश्रित चन्द्रमा के बिम्बार्द्ध का वर्णन देखिये—

कै, कोऊ मात्रा, व्याकरनिन की अति प्यारी।
किधौं, शेष-फन, एक, धरातल-ऊपर आयो।
कै, कौऊ मुनिवर को चमकत, भाल सुहायो।
कै, शिशुमार चक्र की बीसत धुरी, अधूरी।[1]

उपर्युक्त अप्रस्तुत-विधान मे कवि की सूझ की प्रशसा मौलिकता की दृष्टि से भले ही कर दी जाय, किन्तु इस प्रकार की अप्रस्तुत-योजना भाव-प्रेरित कदापि नही स्वीकार की जा सकती। वियोगी हरि की 'वीर सतसई' मे अलकृत शैली आद्यन्त वर्तमान है। विभिन्न विषयो पर लिखे गए दोहे जैसे छोटे छन्द मे केवल अर्थ-गर्भत्व और समास-गुण ही नही, चमत्कार भी है। यह चमत्कार-सृष्टि शब्दालकार-साधना के द्वारा भी की गई। ला० भगवानदीन द्वारा 'जीवन सग्राम' के निम्नांकित वर्णन मे श्लेषालकार की त्रैअर्थक साधना द्रष्टव्य है—

मिलन को आवें धाय धाय रसवती बहु,
उठतीं तरंगे मकरध्वज को ग्राम है।
अमृत कलस कहुँ, अनल अपार कहुँ,
हय, गय, रतन की छटा अभिराम है।
गायन को शब्द कहुँ, रुदन को शोर अति,
कोऊ रूष मोर कोऊ करत विराम है।
ससुर को धाम अभिराम कैधौं पारावार,
कैधौं जग जीवन, कै विकट सग्राम है।[2]

उपर्युक्त कवित्त मे ससुराल, समुद्र, जीवन और सग्राम, तीनो पक्षो मे घटित अर्थ की योजना है। सर्वत्र यह चमत्कार केवल शब्द या अलकार-आश्रित नही, कभी कभी भाव-प्रेरित चमत्कार के कारण अभिव्यजना मे अलकाराश्रित चमत्कार उत्पन्न हो गया है, अतः ऐसे मुक्तकों मे भाव-प्रेरित उक्ति-वैचित्र्य के साथ अलकारजन्य चमत्कार का अद्भुत समागम हुआ। नायिका राधा के सौन्दर्य और चन्द्रमा में पारस्परिक 'होड़' का कवि के शब्दो मे रूपान्तरण देखिये—

उत बाहन हैं इत नैन मृगा उत चाँदनी ह्यां तन तेज कनी,
उत कोस सुधा को सराहों इते बतरान है मंजू पियूष सनी।

---

१. सरस्वती—१९०५ रायकृष्णदास, पृ० १६०
२. जीवन सीन—ला० भगवानदीन, पृ० ८७

उत पूरन षोड़स पेखी कला इत सोरा सिंगार की सोभ बनी,
वृषभानु की नंदिनी नागरि की अरु चंद की होड़ ठनी सी ठनी।[1]

राधा के अतिशय सौन्दर्य का वर्णन कवि स्पष्ट शब्दो में न कर, उसे चन्द्रमा से प्रतिस्पर्धा का रूप देकर व्यंग्य बना डालता है। भाव-प्रेरित उक्ति-वैचित्र्य और अलकाराश्रित चमत्कार-योजना में अन्तर यही है कि एक का साध्य भाव-वक्रता होती है, उसी से बाह्य अभिव्यजना मे चमत्कार उत्पन्न हो जाता है, और दूसरी मे कलात्मक अथवा अभिव्यजनागत चमत्कार ही कवि का साध्य होता है। इसी प्रकार की चमत्कारप्रधान अभिव्यंजना शैली मे द्विवेदी-युग की समस्यापूर्तियाँ आ जाती हैं। समस्यापूर्ति की रचना भाव-प्रेरित व सहज नही होती। ऐसी मुक्तक रचना वस्तुतः कवि की कला-सिद्धि की कसौटी है। कवि विषय-चयन आत्माभिव्यक्ति की लालसा अथवा अन्तःप्रेरणा से नही करता। विषय उसे अनायास दे दिया जाता है तथा अपनी प्रतिभा और लेखनी के कौशल के अनुकूल कवि सम्पूर्ण छन्द की रचना यथासभव उद्योग से करता है। जो कवि बाह्य कला की दृष्टि से जितनी अधिक सिद्धि कर पाता है उतनी ही उत्कृष्ट उसकी मुक्तक-रचना स्वीकार की जाती है, और यह उत्कृष्टता कलागत होती है भावगत नहीं। सयोगवश जहाँ विषय कवि की अभिरुचि के अनुकूल प्राप्त हो जाता है वहाँ अवश्य अभिव्यक्ति के चमत्कार के साथ भाव-सौन्दर्य उत्पन्न हो जाता है, परन्तु समस्यापूर्तियों का साध्य शैलीगत चमत्कार है, अन्य सिद्धियाँ प्रासंगिक रूप में हो सकती हैं। यथासंभव चमत्कृति-योजना मौलिकता के साथ करने का प्रयत्न भी कवि करता है। समस्यापूर्ति का चमत्कार इसी मे नहीं है कि वह कैसे की गई, बल्कि इसमें भी है कि कितने नए ढग से की गई। अतः मौलिकता की आकांक्षा, शब्द और अर्थ दोनों से सम्बद्ध चमत्कार-साधना की ओर रचयिता को प्रेरित करती है। 'बरसात मे' विषय पर अनुप्रास-छटा से झकृत कवि 'शंकर' की निम्नांकित समस्यापूर्ति उक्त कथन की पुष्टि करेगी—

उमड़ि-घुमड़ि घहरात घने घन घिर-घिर आये,
छोड़त छिति पर छवि छटान छिन-छिन छवि छाये।
और धूसर धूम धार सम श्याम सुहाये,
झंझा झोकन झूमि झूमि झुकि-झुकि झर लाये।
अब ताप न आतप मे रह्यो पावक बहत न बात में,
सब जगतीतल सीतल भयो शंकर या बरसात मे।[2]

(४) चौथी शैली जिसे विचारात्मक या विश्लेषणात्मक शैली कहा जा सकता है विचार या उपदेश-प्रधान मुक्तको मे उपलब्ध होती है। इस प्रसंग में एक बात स्पष्ट कर देनी सभवतः अनुचित न होगी। पहले हम कह आए हैं कि द्विवेदी-युग की अधिकांश नैतिक-उपदेशात्मक कविता इतिवृत्त-वर्णनात्मक शैली में लिखी गई, अतः पुनः विचारात्मक कविता की शैली का पृथक् उल्लेख इसलिए किया जा रहा है कि इस प्रकार की समस्त कविता मे इतिवृत्त-वर्णन की

---

१. पूर्ण संग्रह—राय देवीप्रसाद पूर्ण, पृ० १७१-७२
२. शंकर सर्वस्व—स० हरिशंकर शर्मा, पृ० ३५१

प्रवृत्ति का प्राधान्य नही रहा। जहाँ एक ओर वर्तमान या विगत समस्याओ का यथातथ्य चित्रण और अपने मन्तव्य का उपदेश सीधी तथ्यात्मक, प्रसादमय और अभिधाश्रित शैली में किया गया, वहाँ दूसरी ओर व्यग और वक्रता के आवरण मे और अन्यत्र विश्लेषण द्वारा कवियो ने अपने विचारो का वाच्य से व्यग्य बनाने का प्रयास किया। इस प्रकार इतिवृत्त शैली के अतिरिक्त विचारप्रधान कविता की दो अन्य शैलियाँ प्रचलित हुई—व्यग्यात्मक शैली और विश्लेषणात्मक शैली। कवि जब अपने उपदेश का प्रभाव अधिक स्थायी और तीक्ष्ण बनाना चाहता है तब व्यग्य और वक्रोक्ति का आश्रय लेता है और जब वह अपने विचारो का स्पष्टीकरण या किसी विषय की व्याख्या प्रस्तुत करना चाहता है तब विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करता है। व्यग्य-प्रधान मुक्तको में उपदेश और आलोचना इस प्रकार व्यजित रहते है। व्यग्य मे जितनी सूक्ष्म व्यजना का आश्रय लिया जाता है उतना ही वह शिष्ट होता है, परन्तु कही-कही यह आलोचना स्पष्ट और प्रखर हो गई है। 'बलीवर्द' शीर्षक मे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी-द्वारा रचित निम्नाकित मुक्तक मे धनी-वर्ग के प्रति व्यग देखिये—

बलीवर्द ! तुम पशु होने से अविवेकी कहलाते हो,
मद पर भी निज उन्मदता से विजय-बड़ाई पाते हो।
साभिमान धनवान पास भी नहीं विवेक फटकता है,
अहंकार-मद में वह अपने चूर सर्वदा रहता है।[1]

विश्लेषणात्मक-शैली मे मुक्तक-रचना तुलनात्मक दृष्टि से कम हुई है। किसी विषय का विश्लेषण प्राय: उसको स्पष्टतर रूप मे समझने और समझाने के निमित्त किया जाता है। अत. विश्लेषण मे व्याख्या, और इस प्रकार विस्तार की प्रवृत्ति सहज है और विस्तार मुक्तक के सीमित कलेवर मे सम्भव नही। फिर भी कुछ दर्शन और अध्यात्म से सम्बद्ध विषयो—ईश्वर, आत्म, जगत् आदि का स्वरूप-विश्लेषण मुक्तको मे किया गया। कही-कही समस्या-वर्णन और निवारण के लिए उपदेश देने के स्थान पर कवियो ने उनका विश्लेषण भी किया है, किन्तु कुछ ही दूर तक। सामान्यत: समस्याओं के प्रति इनका दृष्टिकोण सुधारवादी उपदेशको का ही अधिक रहा है। आत्मविश्लेषण मुक्तको मे नही के बराबर ही हुआ है। स्वय को समझने और दूसरो को समझाने के लिए मुक्तक मे किया गया आत्मपरीक्षण पर्याप्त नही हो सकता। अत: विश्लेषणात्मक ढग के वर्णन अधिकतर भक्त-कवियो की शैली के ढग पर किये गए। इस प्रकार भक्ति और दर्शन से सम्बद्ध विषयो पर मुक्तक-रचना द्विवेदी-युग के अधिकाश प्रमुख कवियो ने की।

(५) मुक्तकों की एक और शैली सूक्ति और अन्योक्ति-रचना के रूप मे प्राप्य है। जसा नाम से स्पष्ट है इस शैली मे रचित मुक्तको मे विशेष उच्च कोटि का कलात्मक चमत्कार और काव्यगत सौन्दर्य उपलब्ध नही। सूक्तियाँ अधिकतर रामचरित उपाध्याय तथा पुरोहित प्रतापनारायण ने लिखी। प० उपाध्याय ने तो सूक्ति और अन्योक्तियों के अनेक सग्रह रच डाले। इनमे भावाभिव्यंजना विविध विषयों पर की गई है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने भी कुछ सुन्दर

---

१. द्विवेदी काव्यमाला—सग्रहकार देवीदत्त शुक्ल, पृ० २७५

अन्योक्तियो की रचना की है।

(६) नाम गिनाने के लिए मुक्तक-रचना की अन्तिम शैली—जिसमे कुछ इने-गिने पद्य ही रचे गए—स्तोत्र शैली है। स्वय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने देवी की स्तुति मे 'देवी स्तुति शतक' लिख डाला। स्तोत्र शैली मे अन्य देवी-देवताओं की स्तुतियाँ अधिकाश कवियो ने लिखी हैं। संख्या मे ये स्तुतियाँ बहुत नही है, तथा इनमे विशेष अभिव्यजनागत सौन्दर्य भी उपलब्ध नहीं होता। प्राय सस्कृत पदावली से युक्त समासबहुल भाषा मे देवताओ का गुणानुवाद और उनके प्रति श्रद्धार्पण किया गया है। मुक्तक काव्य में इन स्तुतियों का महत्त्व कला की दृष्टि से उतना ही है, जितना किसी प्रबन्ध मे मगलाचरण का।

वर्णनो मे चित्रमयता और सर्वांगीणता की दृष्टि से मुक्तक के सक्षिप्त आकार मे अवकाश ही बहुत कम होता है। शब्दों के द्वारा जब चित्र अकित किये जाते है तो सदैव एक रेखा का स्थानापन्न एक ही शब्द नही होता, प्राय: चित्रकला मे जो प्रभाव कुछ नियत रेखाओ से व्यजित किये जाते है, उनके लिए शब्दों में अधिक व्याख्या-विस्तार अपेक्षित होता है, अन्यथा लक्षक, व्यजक शब्दावली का दूरारूढ़ प्रयोग अर्थ को दुरूह बना देता है, और तदाश्रित चित्र-व्यजना प्राय. खडित और अस्पष्ट होती है। शब्द के द्वारा किसी विषय का पूर्ण चित्र कल्पना के समक्ष खडा करने के लिए मुक्तक का संक्षिप्त आकार पर्याप्त नहीं हो सकता, उसके लिए बड़े काव्य-रूप की अपेक्षा है। विराट् चित्रो का तो प्रश्न ही नहीं उठता, विशद रूप मे कोमल और मधुर चित्र भी मुक्तको मे नही आके जा सकते, साथ ही गत्यात्मक वर्णनों का अवसर भी इनमें कम होता है। क्योकि गति का अर्थ है स्थान एव काल की दृष्टि से विषय का स्थानान्तरण और एक स्थल से दूसरे पर जाने के लिए विस्तार अत: बड़े काव्य-रूप की अपेक्षा है। चित्र अधिकतर मूर्त वर्णनो मे अथवा अशरीरी विषयों को मूर्त रूप देकर ही आंके जाते है। विचारो, समस्याओ का विश्लेषण, भावो का अभिव्यजन और वस्तुरूप विषयों का अकन किया जाता है। आधुनिक काल के मुक्तककारो ने भी वर्णनात्मक प्रसगो में सागोपांग चित्र तो अंकित नही किये, किन्तु अश-अश के तथा मानव-रूप के प्रसग में विशेष मुद्रा, क्रिया, अथवा भाव-भगिमा को लघु शब्द-चित्रो मे सूत्रबद्ध कर दिया है। स्वाभाविक है इस प्रकार के चित्रो में सूक्ष्म विवरण (details) लाने की गुजाइश ही नही थी किन्तु स्थूल रूप से कुछ वस्तुगत विशेषताओं को शब्दो मे पकड लिया गया है। इन मुक्तककारो को इसके लिए दोषी नही ठहराया जा सकता। किसी भी विषय को उसकी समग्रता मे चित्राकित करने के लिए शब्द-विस्तार अत: बृहदाकार की अपेक्षा होती है, अत: चित्र-कला की दृष्टि से मुक्तक काव्य का अन्तरग परीक्षण विशेष उपादेय नही होगा। इन कवियो ने वर्णनात्मक विषयो में जो कतिपय इने-गिने चित्र अकित भी किए हैं, उनमे मधुरता और कोमलता तो है, विराट्ता और महाप्राणता नही।

अलंकरण-कला

अलकार-योजना की दृष्टि से भी आधुनिक युग के मुक्तक काव्य मे मौलिक या नवीन कहने के लिए बहुत कम मिलेगा। इस प्रवृत्ति का एक प्रमुख कारण यह था कि जिस समय तक मुक्तक विधाएँ कवियों को विशेष प्रिय रहीं, उस समय तक कला की दृष्टि से विशेष विद्रोहात्मक

प्रवृत्तियाँ तथा नूतन कलागत चेतना—अप्रस्तुत-योजना, काव्य-रूप, अभिव्यजना आदि में नहीं मिलती, और जब से काव्य के कलागत प्रसाधनो मे नवीनता आरम्भ होती है तब से परम्परागत काव्य-रूपों के प्रति भी क्रमशः ममत्व का अभाव दिखाई पड़ने लगता है। परिणामस्वरूप नूतन अलकारो के साथ प्रगीत और उसके विभिन्न प्रकारो का प्रचलन द्विवेदी-युग के उपरान्त अधिक, और मुक्तक रचना अपेक्षाकृत विरल होती गई अतः नूतन अभिव्यजना का जो वैविध्य और प्रसार छायावाद और परवर्ती नई कविता मे मिलता है वह उससे पूर्व के काव्य मे नही और आधुनिक युग के मुक्तक काव्य का बहुलांश द्विवेदी-युग मे ही लिखा गया, अतः इस काव्य की अलंकरण-विधि भी अधिकतर रूढ और परम्पराभुक्त है। शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित अनेकानेक चमत्कारमूलक अलंकार-योजनाएँ इन मुक्तकों मे प्राप्य हैं। इनकी समस्त अप्रस्तुत-योजना, मूर्त-विधान, साम्य व वैषम्यमूलक चमत्कार, पूर्ववर्ती साहित्य से अपना लिये गए। द्विवेदी-युग की अधिकांश नैतिक उपदेशात्मक कविता, अनलकृत, सीधी सादी, प्रत्यक्ष और गद्यवत् नीरस व चमत्कारशून्य है। जहाँ इन्होने उपदेश से इतर विषयो पर अपेक्षाकृत सरस कविता की है वहाँ अलंकार, छन्द, अप्रस्तुत-विधान सभी कुछ परम्परा से यथावत् अपना लिया है। छायावाद और तदनुवर्ती मुक्तको में अवश्य अलकार-विधान की दृष्टि से कुछ नए ढग के प्रयत्न देखे जा सकते हैं, परन्तु इस प्रकार के प्रयत्न विरल ही कहे जायंगे। इनकी अलकार-योजना मे एक विशेषता स्पष्ट है। समय के साथ-साथ अधुनातन कवियो की सौन्दर्य-चेतना मे परिवर्तन उपस्थित हुआ। नए खेवे के कवियों ने सौन्दर्य के मानदण्ड, सौन्दर्य-बोध, उसके व्यजक प्रसाधनो और उपकरणों, सभी मे अन्तर प्रस्तुत किया। किसी भी विषय के बाह्य स्वरूप के वर्णन की अपेक्षा उसके प्रति अपनी भावात्मक और विचारात्मक प्रतिक्रिया के रूपान्तरण का प्रयत्न इन कवियों का अधिक रहा। यह दृष्टिकोण समीक्षाशास्त्र की शब्दावली मे विषयी-प्रधान कहा जायगा। इस विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण इनकी समस्त अभिव्यजना प्रभावित हुई। अपनी मनसा का आरोप कर विषयों को शब्द-रूप देने के उपकरण भी बदले। अतः इनकी अप्रस्तुत-योजना मे भी परिवर्तन हुआ। अन्तर्मुखी दृष्टिकोण या अन्तर्वृत्ति-निरूपण की इस प्रवृत्ति के कारण मूर्त के स्थान पर सूक्ष्म, अभिधा की अपेक्षा लक्षणा-व्यजना, और विषयो के रूप-चित्रण की अपेक्षा प्रभाव-व्यंजना पर अधिक बल दिया जाने लगा, परन्तु स्फुट मुक्तको में इस प्रकार के प्रयोगों की बहुलता और वैविध्य उतना नही मिलता जितना प्रगीत आदि सयुक्त मुक्तकों मे।

एक बात और—द्विवेदी-युग के मुक्तकों में उपदेश, विचार और विश्लेषण आदि की प्रधानता के कारण अतिशय और चमत्कार-प्रधान अलंकरण की प्रवृत्ति कवियों में नहीं रही। केवल रूप-सौन्दर्य, नख-शिख और प्रकृति आदि के वर्णनों में साम्य और विरोधमूलक परम्परागत अलंकार-योजना के सहारे चमत्कार उत्पन्न किया गया। मुक्तक-प्रकारों के विवेचन के प्रसंग में दिये गए उदाहरणो मे इस प्रवृत्ति के उदाहरण ढूढ़े जा सकते है। छायावाद से सम्बद्ध काव्य में मुक्तक नहीं के बराबर लिखे गए। अन्यथा भी इन कवियो की दृष्टि शब्द और अर्थ के चमत्कार उत्पन्न करने की अपेक्षा भाव और अनुभूति की वक्र-व्यंजना और प्रभावशाली प्रेषणा पर अधिक टिकी रही। यह विशेषता इन्होंने वर्णनाद, सचित्र वर्णन और रूप के स्थूल वर्णनों की अपेक्षा रंग और रेखाओं के अंकन से उत्पन्न की, परन्तु मुक्तक के क्षेत्र में इनका योगदान विशेष

नही कहा जा सकता।

छायावादोत्तर कविता में विश्लेषण, व्यंग और आलोचना की प्रवृत्ति अधिक प्रबल हो गई। कविता राजनैतिक विचारधाराओं के पृष्ठपोषण का माध्यम, और तदुपरान्त पूर्व-नियत काव्य-रचना के सिद्धान्तो की अभिव्यक्ति का साधन बनी। इस प्रवृत्ति ने उसके बाह्य और रूप-सज्जा को प्रभावित किया। प्रगतिवाद के कवि की दृष्टि काव्य-विषयो मे सौन्दर्य का साक्षात्कार करने की अपेक्षा उपयोगिता की तुला पर उनका मूल्यांकन और आलोचना करने मे अधिक रमी, अतः इनके वर्णनों में यथार्थ की वस्तु-रूप में स्वीकृति तथा उसे यथासभव कल्पना के वायवी आच्छादन से अनावृत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न रहा। इनके काव्य मे चमत्कार अलकार-योजना का नही, सत्य की प्रत्यक्षता और तीखेपन का था। विचारो के प्रतिपादन मे भी विशेष नए ढग की अलकरण सामग्री का अनुसंधान करने की आवश्यकता नही थी। वे अपनी बात कहकर पाठक से मनवाने के, उसके समर्थन के आकांक्षी थे—अत. आवश्यकता इस बात की नही थी कि उसे कितने मोहक और सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया जाय, बल्कि उसे किस प्रकार अधिकाधिक प्रभावशाली बनाया जाय जिससे पाठक उस पर मुग्ध और तन्मय न होकर तिल-मिला कर सजग हो जाय। इसलिए अलंकार-योजना इनका साध्य नही रही। इधर नये खेवे के कवि अवश्य नये सौन्दर्य-बोध, नवीन दृष्टि, अतः नवीन अभिव्यंजना-शैली पर विशेष बल देते रहे। परन्तु इन्होने भी अपना कौशल मुक्तक-रचना में विशेष नहीं दिखाया। अपने विचारों, अनुभव-खण्डों और तर्क और भावात्मक प्रतिक्रियाओं को उनकी समग्रता मे पाठक तक हर संभव साधन से पहुँचाने का प्रयत्न करना इनका नारा था। इस प्रयत्न मे कही इनकी अप्रस्तुत-योजना विचित्र हो जाती थी, और कही अलंकारों का एकान्त अभाव। इनका प्रयत्न अभिव्यजना को सजाने-सवारने की अपेक्षा अपनी अनुभूति की अनौपचारिक प्रषणा का अधिक रहा, अतः कहीं-कही मात्र विश्लेषण के मध्य अनजाने, सहज भाव से कुछ अलकार चले आये हैं। प्रभाकर माचवे का निम्नलिखित मुक्तक 'कविता क्या है' उक्त मत की पुष्टि करेगा—

कविता क्या है ? कहते हैं जीवन का दर्शन है—आलोचना,
(वह कूड़ा जो ढंक देता है बचे-खुचे पत्रों में के स्थल)।
कविता क्या है ? स्वप्न श्वास है उन्मन कोमल,
(जो न समझ में आता कवि के भी ऐसा है वह मूरखपन)।
कविता क्या है ? आदिम कवि की दृग-झारी से बरसा वारी—
(वे पंक्तियाँ जो कि गद्य हैं कहला सकती नहीं बिचारी)।[1]

इन पंक्तियों में कवि ने मुख्य रूप से उल्लेख और 'दृग झारी' में रूपक अलंकार का प्रयोग कर लिया है, परन्तु स्पष्ट है कि वे सायास या साध्य रूप मे प्रयुक्त नही हुए। कहीं इस विषय में कवि ने और भी उपेक्षा दिखाई। वह केवल अपनी अनुभूति, अपना विचार व्यक्त करता है परन्तु बिना अलंकारों की सहायता के—

---

१. तारसप्तक—प्रथम, पृ० ५७

यहाँ मुक्ति की प्रबल चाह है उसी एक दुर्दान्त शक्ति की—
हमें न कोई पनाह अथवा शरण चाहिए अन्य भक्ति की।
यहाँ सरल अन्तर दो परस्परातुर, और चाहिए भी क्या ?
हमें न किंचिन्मात्र जरूरत किसी तर्क की किसी युक्ति की।[1]

इस प्रकार इस युग के मुक्तकों की अलंकार-योजना मे प्रमुख रूप से चार पद्धतियो का अवलम्ब लिया गया—(१) परम्परागत शैली का अनुसरण करते हुए अभिव्यजना मे प्रयत्न-पूर्वक चमत्कार-विधान की पूर्व-प्रचलित शैली और अप्रस्तुत-योजना का सायास अनुसरण। (२) उपदेश तथा नीति-कथन के लिए, सौन्दर्य के आभरणो से मुक्त अनलकृत गद्यवत्, इतिवृत्त शैली मे काव्य-रचना। (३) अन्तःप्रेरित भाव या विचार-चमत्कार के कारण साधन-रूप मे अलकारों का सहज प्रयोग। (४) भाव या विचार की प्रेषणा और विश्लेषण को प्रामुख्य देते हुए अलंकारो के प्रति उपेक्षा भाव।

छन्द-विधान

मुक्तक-रचना मे बाह्याकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध छन्द के आकार-प्रकार से ही होता है। लम्बी कविताओं और प्रबन्ध-रचना में तो कवि को अवकाश रहता है कि वह भाव-वैविध्य के साथ छन्द मे भी विविधता-पूर्ण प्रयोग कर सके, अतः किसी अश-विशेष मे यदि अन्तर और बाह्य का पूर्ण सामजस्य घटित न भी हो तो समस्त प्रबन्ध या लम्बी कविता के कलेवर मे वह अंश-विशेष उपेक्षित भी रह सकता है, परन्तु मुक्तक-रचना करते समय कवि 'नावक के तीर' का सा लक्ष्य सम्मुख रखकर काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है, अतः उसे छन्द के चुनाव के विषय मे विशेष सावधान रहना पडता है। इसके अतिरिक्त मुक्तक का सीमित आकार कवि को कुछ दूर तक व्याख्या-प्रधान व्यस्त शैली मे अपनी बात कहने का अवसर नही देता, परिणामत. आवश्यकता इस बात की होती है कि वह प्रेष्य भाव या विचार-खण्ड को ऐसे छन्द के माध्यम-द्वारा अभिव्यक्त करे, कि वह समग्रता मे पाठक तक पहुंच जाय। लक्षण-निरूपण की भाँति छन्द-चयन भी अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोनों दोषों से मुक्त होना चाहिए। इसीलिए कुछ विशेष रसो व भावों के लिए कुछ विशिष्ट छन्दों या लय-खण्डों को अन्य की अपेक्षा अधिक उचित स्वीकार किया गया है। विषय के अतिरिक्त छन्द का ग्रहण भाषा पर भी बहुत कुछ निर्भर है। कुछ विशेष छन्द, भाषा-विशेष की प्रवृत्ति के अधिक अनुकूल होते है, कुछ कम। अपभ्रश से खड़ीबोली हिन्दी तक काव्य का क्रमिक विकास इस बात का साक्षी है।

आधुनिक काल में द्विवेदी-युग और उसके उपरान्त मुक्तक काव्य-रचना मुख्यतः दो भाषाओं में की गई—ब्रज और खडीबोली। इनमें भी मात्रा की दृष्टि से खडीबोली की रचनाएँ ब्रज की अपेक्षा कही अधिक हुईं। ब्रजभाषा मे तो अधिकतर दोहा, कवित्त, सवैया का ही प्रयोग किया गया, परन्तु खड़ीबोली मुक्तक-रचना के लिए एक ओर तो परम्परा-विहित सम, विषम और मिश्र मात्रिक एवं वर्णिक छन्द प्रयोग में लाये गए, दूसरी ओर उर्दू-साहित्य के प्रभाव

---

१. तारसप्तक, पृष्ठ ५४

से कुछ उनके लयबन्धों को अपनाया गया, और कुछ नये ढंग पर अतुकान्त प्रयोग भी किये गए। स्फुट मुक्तकों के लिए मुक्त छन्द का विशेष प्रयोग इस काल के नए कवियों ने ही किया। इस छन्द का अधिक प्रयोग कुछ दूर तक निर्बाध रूप से प्रवाहित होने वाली भावधारा की अभिव्यक्ति के लिए छोटी-छोटी कविताओं मे किया गया। मुक्तक—प्रयुक्त छन्द-विशेष की पंक्तियों की सख्या अथवा कवि की स्वनिर्मित इकाई से बँधा होता है। चार या कुछ अधिक पंक्तियों में आबद्ध भाव-खण्ड के लिए कवि अधिकतर किसी शास्त्रबद्ध छन्दाकार का आश्रय लेता है अथवा स्वय किसी नवीन छन्द का निर्माण कर लेता है, परन्तु इतने छोटे आकार मे प्राय. मुक्त छन्द का खिलवाड प्रस्तुत नही करता।

परम्परागत सम और विषम मात्रिक छन्दो में—रोला, दोहा, वीर, ताटक, सार, हाकलि, सरसी, राधिका, हरिगीतिका, पद्धरि, भुजंगी आदि छन्दो का प्रयोग प्रचुर हुआ (विस्तार-भय से हम सभी के उदाहरण न देकर केवल उल्लेख कर रहे हैं)। मिश्र छन्दों मे छप्पय और कुण्डलिया का, तथा आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से कुछ संस्कृत के वर्णिक छन्दो एव अतुकान्त छन्दो का प्रयोग भी किया गया। अतुकान्त छन्द-रचना की प्रेरणा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने स्पष्ट निर्देश के रूप मे कवि-वर्ग को प्रदान की।

"इस प्रकार के छन्द जब सस्कृत, अँगरेजी, बँगला मे विद्यमान हैं तब कोई कारण नही कि हमारी भाषा मे वे न लिखे जावें। अनुप्रासयुक्त पादान्त सुनते-सुनते हमारे कान इस प्रकार की पंक्तियों के पक्षपाती हो गए हैं। इसलिए अनुप्रासहीन रचना अच्छी नही लगती, बिना तुक वाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी होने लगेगी इसमे कोई सन्देह नही। अनुप्रासो के ढूँढने का प्रयास उठाने मे समर्थक शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है जिससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने मे सुकरता भी होती है और मनोऽभिलषित अर्थ को व्यक्त करने मे विशेष कठिनाई भी नही पडती। अतएव पादान्त मे अनुप्रासहीन छन्द भाषा मे लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है।"[1] द्विवेदीजी ने इसी प्रकार अलकार और अन्त्यानुप्रास के विरुद्ध अपनी धारणा 'हे कविते' नामक निबन्ध मे व्यक्त की।[2] अतुकान्त छन्द मे काव्य-रचना की प्रवृत्ति का खण्डन और मण्डन द्विवेदी-युग मे ही सम्पन्न होकर काव्य मे इसकी प्रतिष्ठा हो चुकी थी। लोचनप्रसाद पाडेय ने इस छन्द के सम्बन्ध मे १९१५ में 'इन्दु' पत्रिका के जुलाई-अगस्त अक मे एक प्रश्नावली प्रस्तुत की। जिसका उत्तर देते हुए, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मिश्रबन्धु, मैथिलीशरण गुप्त, जयशकरप्रसाद आदि ने इस छन्द के समर्थन मे लिखा, परिणामतः द्विवेदी-युग के समाप्त होते-होते इस छन्द को हिन्दी के सभी अग्रिम कवियो का समर्थन प्राप्त हो गया था, परन्तु अतुकान्त छन्द मे काव्य-रचना १९१५ से पर्याप्त पूर्व ही आरम्भ हो चुकी थी। इतना

---

१. रसज्ञ रंजन—महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३

२. तुकान्त ही में कवितान्त है, यही
प्रमाण कोई मतिमान मानते।...
कवीश कोई यमकच्छटामयी...

अवश्य है कि अतुकान्त प्रयोग मुक्तकों की अपेक्षा संयुक्त-मुक्तक और प्रबन्धों में, और आरम्भ मे मात्रिक की अपेक्षा वर्णिक छन्दों में अधिक किये गए और द्विवेदी-युग के उपरान्त तो अतुकान्त रचना अथक रूप से हर प्रकार के छन्द में होने लगी। मात्रिकों मे अतुकान्त मुक्तक-रचना द्विवेदी-युग मे भी (यद्यपि अत्यन्त विरल) प्राप्त हो ही जाती है—

मैं भारत सन्तान सत्य का भक्त हूँ,
न्यायनिष्ठ, कर्मिष्ठ, धीर, धर्मिष्ठ भी।
स्वावलम्ब की राह चलूँ उत्साह से।
स्वाभिमान की तान, और जातीयता,
राष्ट्र प्रेम के गीत, मुझे अच्छे लगें।[1]

उपर्युक्त क्रम में अन्य मुक्तक कवि रूपनारायण ने 'चन्द्रायण' छन्द मे लिखे हैं।

वर्णिक छन्दों का प्रयोग मुक्तकों के लिए अपेक्षाकृत कम हुआ। कम से कम कोई विशेष उल्लेख योग्य नवीनता इस दृष्टि से दिखाई नहीं पड़ी। वर्णिक छन्दों के मुक्तक रूपों—कवित्त और सवैया का तो पूर्ववर्ती साहित्य पर एकछत्र आधिपत्य वर्तमान ही था। उसी परम्परा को आधुनिक युग के कुछ कवि आगे बढ़ाते रहे। नाथूराम शंकर, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि ने विशेष रूप से इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया। गोपालशरण सिंह ने खड़ीबोली में भी कुछ सुन्दर कवित्तों की रचना की तथा मैथिलीशरण गुप्त और स्वयं द्विवेदीजी भी इस परम्परामोह से सर्वथा अछूते न रह सके। परन्तु इस युग में इन छन्दों और दोहे आदि के प्रति अनुचित पक्षपात और अन्य छन्दों के प्रति उदासीनता के विरुद्ध कवियों में असन्तोष उत्पन्न हुआ और अनेकानेक मात्रिक छन्दो की पुन: प्रतिष्ठा के साथ मुक्तक-रचना मे भी महेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका आदि वर्णिक छन्दों को वैविध्य के लिए अपनाया गया। 'हरिऔध' संस्कृत कविता मे प्रयुक्त अतुकान्त वर्णिक वृत्तों के अनुकरण पर अतुकान्त रचना के ही पक्ष में थे और गुप्तजी अपनी रचनाओं में वर्णिक छन्दों का भी तुकान्त रूप में प्रयोग करने के पक्षपाती थे। वर्णिक छन्दों का प्रयोग मुक्तक-रचना के लिए बहुत कम हुआ। केवल कुछ चित्रों पर आधारित रूप-वर्णन वर्णिक मुक्तकों मे किए गए।

मुक्तक-रचना में इन परम्परासिद्ध मात्रिक और वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त उर्दू की बहर का प्रयोग प्रचुरता से किया गया। ला० भगवानदीन ने 'वीर पचरत्न' की रचना बहर मे ही की थी। उन्होंने प्रबन्ध रचनाओं के लिए इस छन्द को अपनाया, परन्तु यह शैली मुक्तक-रचना मे भी पर्याप्त लोकप्रिय हुई। बहर वास्तव में पिंगल-शास्त्र के नियमों से आबद्ध—मात्रा व वर्ण-सम्बन्धी बन्धनों से बँधा कोई विशेष छन्द नहीं, उसका आधार केवल उसकी लय होती है। अत: हिन्दी में प्रयुक्त इस लय में मात्राओं की दृष्टि से कोई निश्चित क्रमबद्धता नही मिलती प्राय: मात्रा-गणना की दृष्टि से पंक्तियाँ असमान ही होती हैं। कवि 'हरिऔध' ने अपने चौपदे और छपदे उर्दू की बहर मे ही लिखे हैं—

चुन सकें तो चाहिए चुन लें उन्हें।
आज तक काँटे न कम हैं बो गये।

---

१. पराग—रूपनारायण पांडेय, पृ० ४६-४७

आज भी क्यों है धड़क खुलती नहीं।
दिल धड़कते तो बहुत दिन हो गये ॥[1]

उनसे पूर्व रूपनारायण पाण्डेय भी इस लय का प्रयोग अपने काव्य में कर चुके थे :

मिलेगा फिर नहीं ताना, जो ताना-बाना अब ताना,
हम अपने वीर बाने को, न डर खा करके छोड़ेंगे।[2]

बहर के साथ कवि बच्चन ने उर्दू की रुबाइयों के ढग पर 'मधुशाला' की रचना की। इन रुबाइयों का छन्दाधार मात्रा-गणना की दृष्टि से हिन्दी का सम मात्रिक ताटंक छन्द ही ठहरता है—पर कवि के शब्दो मे उसकी रचना 'रुबाई' के ढंग पर की गई है—

मैं मदिरालय के अन्दर हूं, मेरे हाथों में प्याला,
प्याले मे मदिरालय बिंबित, करने वाली है हाला,
इस उधेड़-बुन मे ही मेरा सारा जीवन बीत गया—
मैं मधुशाला के अन्दर या मेरे अन्दर मधुशाला।[3]

बहर और रुबाई के अतिरिक्त 'गज़ल' का प्रयोग भी हिन्दी-कविता मे प्रचुर मात्रा में किया गया—जिसका विवेचन आगामी परिच्छेद मे गेय काव्य-रूपो के प्रसग में किया जायगा।

मुक्तक काव्य की छन्द सम्बन्धी विशेषताएँ सक्षेप मे इस प्रकार निर्धारित की जा सकता है—

(१) पूर्ववर्ती काव्य में प्रचलित कुछ विशेष छंदों—कवित्त, सवैया और दोहा आदि के साथ अन्य सम और विषम मात्रिक, मिश्र एव कतिपय वर्णिक छन्दों का वैविध्यपूर्ण प्रयोग। नवीनता की उद्भावना और आविष्कार की दृष्टि से ही नही किन्तु प्राचीन के पुनरुद्धार की दृष्टि से विकास और वैविध्य।

(२) छन्दो के चिरप्रचलित अन्त्यानुप्रासबद्ध प्रयोगो से मुक्ति तथा वर्णिक और मात्रिक दोनो प्रकार के छन्दो में अतुकान्त छन्द-रचना, इस प्रकार प्रचलित मे परिवर्तन या परिशोधन की दृष्टि से यह इस युग की नूतन सिद्धि कही जायगी।

(३) हिन्दी-इतर साहित्य से नियत लय-खण्डों का उदारतापूर्वक ग्रहण और प्रयोग।

(४) अँगरेजी साहित्य के व अन्य किसी प्रकार के उल्लेखनीय प्रभाव व मौलिक परम्परामुक्त प्रयोग का अभाव। यह नवीनता स्फुट मुक्तको की अपेक्षा सयुक्त-मुक्तकों और विविध प्रगीत रूपो मे उपलब्ध हुई जिसका विवेचन आगामी परिच्छेद में किया जायगा।

(५) नये कवियो द्वारा मुक्तक-रचना के लिए भी छोटे-छोटे मुक्त छन्दों का आविष्कार।

---

१. चुभते चौपदे—अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पृ० ६८
२. पराग—रूपनारायण पाण्डेय, पृ० ३६
३. मधुशाला—बच्चन, पृ० ८४

छठा अध्याय

संयुक्त मुक्तक

सयुक्त मुक्तको से सस्कृत के आचार्यों का अभिप्राय निरपेक्ष स्वत.पूर्ण स्फुट छन्द-रचना से भिन्न एकाधिक छन्दों मे विरचित ऐसे मुक्तकों से था जिनमे प्रबन्ध की भाँति दूर तक कथा-निबन्धन या तारतम्य तो नही हो, परन्तु जो एकाधिक छन्दो मे लिखे गए हो, तथा ये छन्द भावान्विति की दृष्टि से परस्पर सापेक्ष हों। यह विधा मुक्तक इसलिए स्वीकार की जाती है क्योकि इसमे कवि प्रबन्ध की भाँति किसी स्थायी नही, क्षणिक अनुभूति को व्यक्त करता है। सयुक्त यह इसलिए है कि व्यक्त अनुभूति क्षणिक होते हुए भी एक से अधिक छन्दो मे प्रवाहित रहती है। प्राचीन आचार्यों ने परस्पर निबद्ध छन्दों का सख्या-भेद के अनुसार नामकरण किया। इस प्रकार के सयुक्त मुक्तको का उल्लेख 'अग्निपुराण' और तत्पश्चात् अनेक अन्य ग्रन्थो मे मिलता है। इस प्रसंग मे एक बात का स्पष्टीकरण कर देना अभीष्ट होगा। सयुक्त मुक्तक का सम्बन्ध एकाधिक छन्दो में विरचित काव्य-रचना से होने पर भी, परस्पर-निरपेक्ष मुक्तको के सकलन अथवा सजातीय मुक्तको के एक स्थान मे सन्निवेश को सयुक्त मुक्तक नहीं माना जा सकता। सयुक्त मुक्तक मे प्रयुक्त छन्दो की परस्पर सावलम्ब स्थिति अनिवार्य है। परस्पर निरपेक्ष श्लोक-समूह को आचार्य विश्वनाथ ने 'कोष' माना, और सजातीय छन्दो के एक स्थान मे सन्निवेश को 'व्रज्या' कहा।[1] हिन्दी-साहित्य में इस प्रकार के मुक्तक-सकलनों को अनेक आधारों पर विभिन्न नाम दिये गए—सख्या के आधार पर—सतसई, शतक, अष्टक आदि, तथा छन्द की विशेषता पर दोहावली, पदावली आदि। इस प्रकार के मुक्तक-सकलन की प्रवृत्ति आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे सर्वथा लुप्तप्राय नही तो विरल अवश्य है, तथा बन्ध की दृष्टि से ऐसे अनिबद्ध छन्दो का निर्देश स्फुट-मुक्तक के प्रसग मे किया जा चुका है।

सस्कृत काव्य-शास्त्र मे संयुक्त मुक्तक नाम से जिस काव्य-विधा का विवेचन मिलता है उसमे छन्दो की सापेक्ष स्थिति अनिवार्य मानी गई है, परन्तु इनमे किसी प्रकार का कथा-विन्यास, प्रसग-विन्यास, या वर्णन-विन्यास अपेक्षित नही। वे केवल कुछ दूर तक चलने वाली क्षणिक भाव या विचारधारा की अभिव्यक्ति के माध्यम-मात्र है।

---

१. कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः ॥६॥३२६॥

तथा

सजातीयनामेकत्र संनिवेशो व्रज्या।

साहित्यदर्पण—विश्वनाथ, पृ० २२६

जैसा पहले भी सकेत किया जा चुका है, इस प्रकार के काव्य-रूपों का सर्वप्रथम उल्लेख 'अग्निपुराण' मे मिलता है।[1] तदुपरान्त आचार्य दण्डी ने भी अपने 'काव्यादर्श' में इस काव्य-विधा की स्थिति का सकेत किया और उनके उपरान्त आचार्य आनन्दवर्द्धन और विश्वनाथ ने क्रमशः 'ध्वन्यालोक' व 'साहित्यदर्पण' में इनका प्रत्यक्ष वर्णन किया है।[2] आचार्य आनन्दवर्द्धन के मत की व्याख्या करते हुए आचार्य विश्वेश्वर ने आग्नेय पुराण के आधार पर इन विभिन्न मुक्तक-रूपों का विवेचन इस प्रकार किया—

(१) "निबद्ध-मुक्तक—(स्वयं में परिपूर्ण स्फुट श्लोक जैसे, अमरूक शतक, गाथा सप्तशती, आर्या सप्तशती आदि के श्लोक)

(२) सन्दानितक (दो श्लोकों में क्रिया का अन्वय होने वाले युग्म)

(३) विशेषक (तीन श्लोकों मे क्रिया समाप्त होने वाले)

(४) कलापक (चार का एक साथ अन्वय होने वाले श्लोक)

(५) कुलक (पाँच या पाँच से अधिक एक साथ अन्वित होने वाले श्लोक)[3]

ऊपर विवेचित काव्य-रूप, विशेष रूप से सन्दानितक, विशेषक, कलापक तथा कुलक आदि विचारणीय है। आगे चलकर साहित्यदर्पणकार ने भी इन संयुक्त मुक्तकों की स्वीकृति एवं पुनराख्यान किया है। परन्तु आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रयुक्त शब्दो मे 'ध्वन्यालोक' से कुछ अन्तर है। जैसा पीछे दिये गए उद्धरण में स्पष्ट है उन्होंने माना कि छन्दोबद्ध पद पद्यकाव्य होता है तथा, वह यदि मुक्त अर्थात् दूसरे पद्य से निरपेक्ष हो तो मुक्तक, अन्यथा दो, तीन, चार और पाँच अथवा अधिक पद्यों मे वाक्य-पूर्ति के स्थलो में क्रमशः युग्मक, सन्दानितक, विशेषक, कलापक एव कुलक कहलाते हैं। इस प्रकार आचार्य आनन्दवर्द्धन ने दो और तीन छन्दों में अन्वित होने वाले मुक्तको को क्रमशः सन्दानितक और विशेषक कहा था, तथा आचार्य विश्वनाथ ने युग्मक और सन्दानितक। इसके अतिरिक्त कोई मौलिक अन्तर उनके मत में नहीं प्राप्त होता।

यह काव्य-विधा निश्चय ही आकार और विषय दोनों की ही संक्षिप्तता के कारण मुक्तक के अन्तर्गत आएगी, इस विषय मे वैमत्य नहीं हो सकता। परन्तु क्या यह संयुक्त मुक्तक किसी रूप में हमारे वर्तमान साहित्य मे भी उपलब्ध हैं? यह सहज प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित

---

१. महाकाव्यं कलापश्च पर्याबन्धो विशेषकम्।
कुलकं मुक्तकं कोष इति पद्यकुटुम्बकम्।

अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग—अनु० रामलाल वर्मा शास्त्री, पृ० २६

२. यतः काव्यस्यप्रभेदा मुक्तक सस्कृतप्राकृतापभ्रंशनिबद्धं, सन्दानितक-विशेषक-कलापक-कुलकानि,.....
ध्वन्यालोक—सम्पादक डा० नगेन्द्र, १९५२ में प्रकाशित संस्करण, पृ० २४८

तत्र पद्यमयान्याह—

द्वाभ्या तु युग्मकं संदानितकं त्रिभिरिष्यते ॥६॥३१४॥
कलापक चतुर्भिश्च पंचभिः कुलकं मतम्।

साहित्यदर्पण—विश्वनाथ, पृ० २२४

३. ध्वन्यालोक—सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २४८-२४९

है। व्यवहार में भले ही प्राचीन संस्कृत-साहित्य की इन रूप-विधाओं में हमारे आधुनिक साहित्य से अन्तर रहा होगा। निश्चय ही युगों के उपरान्त काव्य की आत्मा युग-चेतना के अनुकूल परिवर्तित होती आई है, पर पारिभाषिक रूप से तथा आकार-मात्र को दृष्टि में रखते हुए आज के गीत या लघु आकार की मुक्तक कविताएँ इन्हीं सयुक्त मुक्तकों के अन्तर्गत आयेंगी। उनमें प्रयुक्त होने वाले विभिन्न छन्दों में भाव की अन्विति सम्पूर्ण गीत या कविता की पूर्ति के उपरान्त ही पूर्ण होती है। इनमें प्रयुक्त होने वाला प्रत्येक छन्द पूर्वापर सम्बन्ध से ग्रथित होता है, वह स्वत: पूर्ण नहीं होता। उदाहरण के लिए कविवर पन्त की पतझर के प्रति लिखी गई कविता द्रष्टव्य है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क-शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात भीत,
तुम वीत-राग, जड़, पुराचीन ।।
निष्प्राण विगत-युगमृत विहंग ।
जग-नीड़ शब्द औ' श्वास हीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन !
कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली !
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !
मंजरित विश्व में यौवन के
जगकर जग का पिक, मतवाली
निज अमर-प्रणय स्वर मदिरा से
भर दे फिर नवयुग की प्याली ![1]

केवल पन्त के ही गीत नहीं, निराला, महादेवी, प्रसाद आदि सभी आधुनिक कवियों द्वारा लिखे गए गीत अथवा स्फुट कविताएँ इसी रूप-विधा के अन्तर्गत समाविष्ट की जायंगी। इस प्रकार के सयुक्त मुक्तकों को इन कवियों ने शास्त्र-सम्मत विभिन्न परम्परागत छन्दों में बाँधा, अथवा प्राचीन छन्दों के मिश्रण से नवीन प्रयोग किये या—

खुल गए छन्द के बन्ध,
प्राण के रजत पाश,
अब गति मुक्त,
औ' युग वाणी बहती अयास ![2]

---

१. आधुनिक कवि—सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ६२
२. वही, पृ० ७२

का आवाहन कर मात्राओं और वर्णों की नपी-तुली शृखलाओ से विमुक्त छन्दों का प्रयोग किया, या फिर नवीन युग-चेतना को भाव और विषय-वस्तु के साथ कला मे भी अगीकृत कर विदेशी साहित्य का प्रभाव अपनाया—यह सब अपने-आप में विस्तृत विवेचना का विषय है जिसका विवेचन आगामी पृष्ठो मे किया जायगा, परन्तु इन सब बातो से भिन्न इनका एक सामान्य तत्त्व जो इन्हे सयुक्त मुक्तको की परम्परा के अन्तर्गत परिगणित करने के लिए बाध्य करता है—वह इनमे प्रयुक्त विभिन्न छन्दो का पारस्परिक सम्बन्ध है। हर गीत अथवा इस प्रकार का सयुक्त मुक्तक अपने-आप मे पूर्ण होते हुए भी उसमे प्रयुक्त हर छन्द एक स्वतन्त्र इकाई नही हो सकता। भाव, विचार अथवा कल्पना की अन्तर्निहित एकसूत्रता इस काव्य-रूप को आकार सम्बन्धी एकसूत्रता प्रदान करती है।

श्री गुलाबराय ने भी आजकल के गीतों को इसी प्रकार के सयुक्त मुक्तक माना है। उन्होने स्पष्ट लिखा है—

"साहित्यदर्पणकार ने दो-दो, तीन-तीन, चार-चार और पांच-पांच मुक्तको के समूहो को क्रमशः युग्मक, सदानितक, कलापक और कुलक नाम दिया है।"[1]

तथा

"साहित्यदर्पणकार ने दो-दो और तीन-तीन छन्दो के भी मुक्तक माने हैं। अँगरेजी स्फुट कविताओ के स्टेन्जा समूह और आजकल के गीत भी इसी प्रकार के सयुक्त मुक्तक गिने जावेंगे।"[2]

वस्तुत: मान्य लेखक ने जिन काव्य-रूपो के युग्मक, सदानितक, कलापक आदि नामो को साहित्यदर्पणकार की देन माना है वह उनकी निजी देन न होकर पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्य-रूप सम्बन्धी विवेचन की पुनरावृत्तिमात्र है। सयुक्त मुक्तको के लिए इन शब्दो का प्रयोग साहित्यदर्पणकार से पर्याप्त पूर्व आनन्दवर्द्धन द्वारा प्रणीत 'ध्वन्यालोक' मे, और उनसे भी पूर्व इनका सकेत आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श' मे एव विस्तृत विवेचन 'आग्नेय-पुराण' मे प्राप्त है। 'साहित्यदर्पण' मे आचार्यों द्वारा पूर्वकृत विवेचन का सार उपलब्ध है। सस्कृत आचार्यों द्वारा प्रणीत काव्य-शास्त्रीय साहित्य के विशाल क्षीर-सागर के नवनीत रूप मे उनकी यह रचना आज के जिज्ञासु पाठक के सामने प्रस्तुत है। परन्तु विद्वान् आचार्य की विभिन्न मान्यताएँ सर्वथा उनकी निजी उद्भावनाएँ ही है, अथवा उसमे कितना अश पूर्ववर्ती साहित्य से गृहीत, परिवर्तित, प्रक्षालित और व्यवस्थित रूप मे हमारे सामने है? यह विवाद और अनुसन्धान का विषय हो सकता है। जो भी हो, आधुनिक युग के गीतों का सम्बन्ध (आकार की दृष्टि से) गुलाबराय सस्कृत-साहित्य मे विवेचित इन्ही सयुक्त मुक्तको से ही मानते हैं जो सर्वथा उचित ही है।

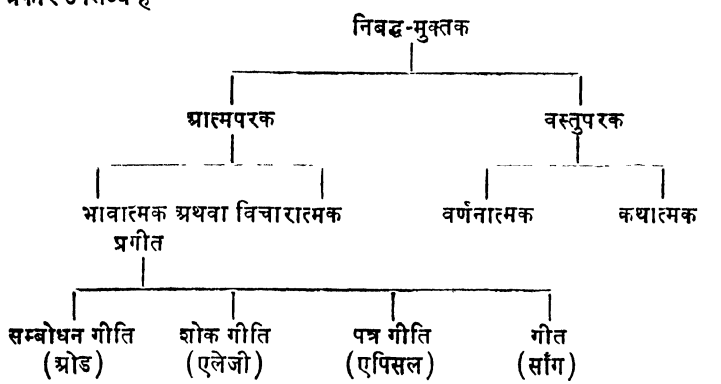
स्थूल व बाह्य आकारगत समानता के अतिरिक्त आधुनिक युग मे विरचित इन निबद्ध मुक्तकों अथवा कविताओ मे इतना वैविध्य उपलब्ध है कि इनका पृथक् वर्ग-विभाजन करने के उपरान्त ही साग विवेचन अधिक सुकर और सहज हो सकेगा। इन कविताओ मे एक प्रकार का दूसरे प्रकार से ही नही—भिन्न-भिन्न कवियो द्वारा और भिन्न-भिन्न समय पर लिखी जाने वाली

---

१. काव्य के रूप—गुलाबराय, पृ० ११६

२. वही, पृ० ८६

मूलतः एक ही प्रकार की रचनाओं में परस्पर पर्याप्त अन्तर और विविधता दृष्टिगत होती है। कारण—बीसवी शती मे हमारी प्रगति हर दृष्टि से विशेष क्षिप्र रही है। विदेशी प्रभाव, जीवन के बदलते मानदण्ड, सभ्यता और विचारधाराओ के नित नवीन प्रतिमान, और सबका हमारे व्यक्तित्व और कला पर समवेत् प्रभाव, इस नानारूपिणी रचना-विधि के लिए उत्तरदायी है। परन्तु एक सामान्य बात इस रूप-परिवर्तन के विषय मे द्रष्टव्य है—इन पचास वर्षों के (बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध) अल्प समय मे काव्य-रूपो के विकास और परिवर्तन की अनेकरूपात्मक गति काव्य-क्षेत्र की अभूतपूर्व घटना है। इतने थोडे से समय मे इतनी विविध और क्षण क्षण परिवर्तन-शील कला और कृतियाँ आधुनिक युग से पूर्व हिन्दी-साहित्य के किसी भी युग मे अप्राप्य है। विषय और रूप-विधान—दोनो दृष्टियो से नवीनता के ग्रहण मे यह उदार भावना इस युग की अपनी विशेषता और सिद्धि है। प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक, और स्फुट मुक्तक-रचना की अपेक्षा सयुक्त मुक्तको मे यह नवीनता और विविधता अधिक उपलब्ध है। कारण स्पष्ट है—परिमाण की दृष्टि से मुक्तक काव्य की रचना प्रबन्ध की अपेक्षा इस युग मे कही अधिक हुई—कारण अनेक हैं, जिनके विस्तार मे जाना अप्रासंगिक होगा। इतना अवश्य है कि बीसवी शती के आरम्भ से ही कवियो की अभिरुचि जहाँ प्रबन्ध-रचना की ओर उतनी नही रही, वहाँ एक-एक छद मे गागर मे सागर भरने और चमत्कार-प्रधान मुक्तक-रचना करने का प्रयास भी कवियो ने नही किया। अपेक्षाकृत कुछ दूर तक एकाधिक छदो मे छोटी-छोटी कविताओ की रचना की ओर कवियो की प्रवृत्ति अधिक हो गई। इनका प्रयास एक ही छद मे इतना चमत्कार भर देने का नही होता कि इनका श्रोता या पाठक चमत्कार की चमक से चौधियाकर वाह-वाह कर उठे, बल्कि कुछ दूर तक अपने साथ भाव की तन्मयता मे रमा कर सहानुभूति उत्पन्न कर देने का, अथवा विचारो की पैनी धार पर बौद्धिक उत्तेजना प्रदान करने का होता है। इन छोटी कविताओ में प्रेष्य चमत्कृत नही करके रमण कराता है, हमे चौकाने की अपेक्षा मुग्ध करता है। यह विशेषता भावप्रधान और विचारात्मक कविताओ मे और भी अधिक मात्रा मे प्राप्त होती है। विवेचन की सुविधा के लिए इन कविताओ का भी उसी रूप मे वर्ग-विभाजन किया जा सकता है, जिस प्रकार स्फुट मुक्तको का। सामान्यतः आधुनिक युग मे रचित सयुक्त मुक्तको के निम्नाकित प्रकार उपलब्ध है—



उपर्युक्त प्रकारो के अतिरिक्त एक अन्य काव्य-रूप का प्रयोग इस युग की कविता में किया गया जिसका मूल विदेशी है, तथा पोषण कवियो ने अपनी मौलिक प्रतिभा और मान्यताओ के आधार पर किया। यह काव्य-रूप है—सॉनेट या चतुर्दशपदी। उक्त काव्य-रूप की गणना अन्य प्रकारो के अन्तर्गत न करके इसका पृथक् उल्लेख इस कारण किया गया है कि सॉनेट की रचना के सम्बन्ध मे विषय और दृष्टिकोण-सम्बन्धी किसी प्रकार के प्रतिबन्ध नही लगाए जा सकते। उसमे प्रतिबन्ध पक्तियो की सख्या और अन्त्यानुप्रास से सम्बन्धित ही होते है। इसके अतिरिक्त कवि का दृष्टिकोण सॉनेट रचना मे—आत्मनिष्ठ भी हो सकता है और वस्तुनिष्ठ भी, वह उसमे विचार भर सकता है, वर्णन कर सकता है अथवा उसे भावमय बना सकता है। अतः सॉनेट की विशेषता आकारगत है, जिसका प्रयोग किये गए विभाजन में किसी भी प्रकार के लिए किया जा सकता है।

बीसवी शती के साथ आरम्भ होने वाली अधिकाश रचनाएँ वस्तुपरक दृष्टिकोण को लेकर लिखी गईं। इतिवृत्त-वर्णन की प्रवृत्ति का प्रथम दो दशाब्दो मे रचित काव्य मे विशेष प्राबल्य रहा, अतः हम अपना विवेचन वस्तुपरक कविता से ही आरम्भ करेगे। स्फुट मुक्तक के प्रसंग मे जैसा पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, इस प्रवृत्ति की प्रधानता—अंशत: रीतिकालीन कविता के घोर ऐहिक जीवनगत मूल्यो के विरोध मे नैतिक उपदेशात्मक सुधारवादी आन्दोलनों के कारण, अंशतः रीतिकाल की वस्तुपरक परम्परा के अनुसरण के कारण और कुछ खडीबोली की अनिश्चित स्थिति के कारण हुई। परिस्थितियो और विचारधाराओ मे उत्तरोत्तर परिवर्तन और प्रगति के साथ सम्पूर्ण काव्य-क्षेत्र और काव्य-रचना के विशेष प्रकार—दोनों मे ही परिवर्तन और वैविध्य दृष्टिगत हुआ। अत इन कविताओ के प्रकार-विशेष मे प्राप्त होने वाली अनेकरूपता के कालक्रमानुसार परीक्षण का प्रयास किया जायगा।

वर्णनात्मक कविताएँ

इस प्रकार की रचनाओं के विषय मे एक बात सामान्य रूप से सत्य है कि कवि की दृष्टि आत्म से भिन्न इदम् पर केन्द्रित रहती है, और वह वस्तुनिष्ठ अभिव्यक्ति करता है। इतर सृष्टि मे विषय दो प्रकार के हो सकते है। चेतन प्राणियों का रूप-वर्णन, अथवा जड तत्त्वों—प्रकृति आदि के वर्णन। इन्हीं दो प्रकारो से, एक तीसरे प्रकार की वर्णनात्मक कविताओ का उदय स्वयमेव होता है—चर और अचर जगत् मे प्राणी या तत्त्व-विशेष का वर्णन न करके, उनसे सम्बद्ध किसी प्रसग, उत्सवादि या वातावरण का अकन। जब इस प्रकार के वर्णन घटनात्मक रूप धारण कर लेते है तो वे कथात्मक कविताओ की कोटि मे आते है। कभी-कभी (यद्यपि ऐसा बहुत कम होता है) कवि किसी भाव या विचार का भी वर्णन व्याख्यात्मक शैली मे कर देता है व्यजना या सकेत नहीं, परन्तु इस प्रकार की रचनाएँ बहुत कम मिलेगी। अधिकाश भाव या विचारप्रधान कविताएँ आत्मरस मे सिक्त कर अत्यन्त व्यक्तिगत आत्मनिष्ठ शैली मे लिखी जाती है।

वर्णनात्मक कविताओं का आरम्भ विवेच्य काव्य में सर्वप्रथम मानव-रूप के वर्णनों मे मिलता है। द्विवेदी-युग के कवियों ने अपने समय में एक विशेष प्रकार की कविताओं की रचना

की जो इस युग के काव्य की निजी विशेषता है, जो पूर्ववर्ती साहित्य मे अप्राप्य है और परवर्ती काव्य मे उसका अनुसरण नही किया गया। ये कविताएँ चित्र-विशेष मे अकित नायिकाओं की चित्राकित विशेषताओ को लक्ष्य करके उनके वर्णन के निमित्त लिखी गई और समय-समय पर 'सरस्वती' के विविध अको मे प्रकाशित होती रही। चित्रकार थे राजा रविवर्म्मा और कवियो मे राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', नाथूराम शर्मा 'शकर,' पण्डित कामता प्रसाद 'गुरु', स्वय महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि। उस समय के लगभग सभी प्रसिद्ध कवियो ने इस प्रकार की कविताएं लिखी। इनमे पौराणिक नारियो—अहिल्या, सीता, इन्दिरा, गौरी, साहित्य की प्रख्यात नायिकाओ—कादम्बरी, रम्भा, प्रियवदा, वसन्तसेना आदि से लेकर कुछ कल्पित सुन्दरियो—केरल की तारा, मोहिनी, सलज्जा, कुमुदसुन्दरी, सुकेशी अथवा मलावार सुन्दरी तक के चित्र तूलिका और लेखनी से आँके गए। ये सभी कविताएँ मानव रूप सौदर्य या कही-कही क्रिया-कलाप के स्थूल वस्तुपरक वर्णन के वृत्त से बाहर नही जाती। कवियो की कल्पना भी इनमे उन्मुक्त विहारिणी नही, चित्रगत विशेषताओ से बँधी है। ये वर्णन नख-शिख वर्णन की परम्परा के अन्तर्गत आएँगे। कही-कही अपवाद-रूप मे रूप-वर्णन के साथ मुद्राओ तथा भावनाओ का वर्णन भी कर दिया गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'सलज्जा' कविता मे किसी चित्राकित सलज्जा नारी के रूप का वर्णन करने की अपेक्षा उसकी लज्जामय मुद्राएँ शब्दो मे उतारी है। इस प्रकार अशोकवन-वन्दिनी सीता के एक चित्र के आधार पर कवि ने उसके विरह-विगलित रूप का नही, मनोव्यथा का वर्णन ही किया है और मालावार सुन्दरी का रूप-वर्णन करते समय कवि ने कुछ कवित्त मालावार के प्राकृतिक सौन्दर्य पर भी रच डाले, परन्तु ऐसा प्रायः नही हुआ। गुप्तजी के अतिरिक्त अन्य कवियो ने इस प्रकार के कल्पना-विलास का प्रयत्न नही किया। कही-कही इतिवृत्त शैली के स्थान पर रीतिकालीन कवियो के नख-शिख वर्णन की भाँति अप्रस्तुत योजना मे चमत्कार की चकाचौध अवश्य उत्पन्न हो गई है (अधिकतर कवि शकर की कविताओ मे), किन्तु अधिकाश वर्णन एक सधी बधी लीक पर किये गए है। हाँ, जहाँ पुरुषो के वर्णन किये गए है, वहाँ दिशा बदल गई है। कवि या तो महिमा-गान करता रहा है, अथवा रूप के स्थान पर शौर्य, शक्ति, पराक्रम आदि का गुणगान। मैथिलीशरण गुप्त की 'व्यास स्तवन' नामक कविता पहले प्रकार की है और कवि 'शकर' की 'परशुराम' नामक रचना दूसरे प्रकार की। इस शैली मे रचित अधिकाश महत्त्वपूर्ण रचनाओ को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'कविता-कलाप' नामक ग्रन्थ मे सकलित कर प्रकाशित कराया।

नख-शिख वर्णन मे क्रमश. दर्शन से प्रभाव-ग्रहण, और स्थूल से सूक्ष्म की ओर आधुनिक काल का कवि बढता गया, अत उसके वर्णनो मे धीरे-धीरे रूप, गुण, क्रिया आदि वस्तुगत साम्य के आधार पर अप्रस्तुत-चयन कर, कल्पना मे चित्र खडे करने के स्थान पर, प्रभाव-साम्य के द्वारा हृदय मे भावात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने का, अर्थात् प्रभाव-व्यंजना का प्रयत्न अधिक होने लगा। इस प्रवृत्ति का आभास प्रसाद की आरम्भिक रचनाओ मे ही मिलने लगा था—

ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल, कुन्तल घने,
नील नलिन से नेत्र-चपल मद से भरे,

अरुण राग रंजित कोमल हिम खण्ड से—
सुन्दर गोल कपोल, सुडर नासा बनी,

. . ..

मुक्तागण हैं लिपटे कोमल कम्बु में।
चंचल चितवन चमकीली है कर रही—
सृष्टि मात्र को, मानो पूरी स्वच्छता—
चीनांशुक बनकर लिपटी है अंग में।[1]

कवि ने आरम्भ, सौन्दर्य-बोधक स्थूल उपकरणों के वर्णन से किया था, परन्तु अन्त तक' उसकी उपमाएँ प्रभावव्यंजक हो गई। मूर्त से अमूर्त, वस्तु से भाव, और रूप से प्रभाव की ओर कवियों का यह प्रयाण ही बाद मे छायावादी काव्य में लक्ष्य-सिद्धि कर पाया।

इतिवृत्त-वर्णन की यह प्रवृत्ति केवल मानव के ही नही, प्राकृतिक तत्त्वो व दृश्यो के वर्णन मे भी आरम्भिक कविताओ मे यथावत् पायी जाती है। विवेच्य युग के काव्य मे लगभग प्रथम दो दशाब्दो तक, इस प्रवृत्ति का काव्य-रचना के सभी क्षेत्रो और विषयो पर एकछत्र अधिकार रहा। प्राकृतिक वर्णन चित्रो को लक्ष्य करके तो नही किये गए, परन्तु प्राकृतिक तत्त्वो के प्रत्यक्ष चमत्कारमूलक शैली मे चित्र अवश्य अंकित किये गए। इन कविताओ का आरम्भ भी 'सरस्वता' पत्रिका से हुआ। १९०० ई० मे प० किशोरीलाल के—चन्द्रोदय के बिम्बार्द्ध और पूर्ण बिम्ब पर दो अत्यन्त चमत्कार-प्रधान पद्यबद्ध वर्णन प्रकाशित हुए, जिनके अप्रस्तुत-चयन मे कवि दूर-दूर तक दौडता रहा और सन्देहालंकार के सहारे उसने उपमानो का तांता बाँध दिया। इन कविताओ में प्रगाढानुभूति भले ही न हो परन्तु कवि की विलक्षण सूझ-बूझ की सराहना अवश्य करते बनती है। इस शैली की अनेक कविताएँ प्रथम दशाब्द मे सरस्वती मे प्रकाशित होती रहीं। राधाकृष्ण दास और किशोरीलाल ने प्रकृति-वर्णन इसी परम्पराभुक्त ढङ्ग पर किये है, जिनमे या तो चमत्कारमूलक रूढिसिद्ध अलकारो की ऊहापोह है या नामपरिगणन शैली का प्रयोग। इसी शैली का अनुसरण रायकृष्णदास ने किया है। 'प्रभात', 'सावन' आदि पर रचित उनकी कविताओं से उक्त प्रवृत्ति की व्यंजक पंक्तियाँ देखिये—

सावन-सरसावन सब रूख, रूखता सबै नसावन।
हरियारी चहुँ ओर करन, सरितान बढ़ावन।
बागन महँ विविध ललित नव कुंज बनावन।
रजनीगंधा, मौलसिरी, मालती, सुहावन,
कदम्ब, केतकी, कुटज, जुही चम्पक विकसावन।[2]

छायावाद के गौरव-स्तम्भ कवि 'प्रसाद' भी अपनी आरम्भिक कविताओ मे इसी परम्परा को बढ़ाते रहे। 'करुणालय' मे आत्मेतर विषयनिष्ठ दृष्टिकोण से उन्होने प्रकृति के विविध विषय और रूपों—प्रभात, रजनी, चन्द्र, प्रभात कुसुम, रसाल मजरी, वर्षा मे नदी, कूल, आदि

---

१. झरना—प्रसाद, पृ० ६
२. नवरंग—रायकृष्णदास, पृ० ४७

पर लघु आकार के निबद्ध मुक्तकों की रचना की, जिनमे पूर्वोक्त सभी वर्णन विशेषताएँ प्राप्य हैं। कवि के शब्दो मे सन्देहालकाराश्रित चमत्कारयुक्त चन्द्र-वर्णन देखिये—

कमला जल केलिहि हेतु रमें।
उडुराज किधौं नलिनीगन में॥
शुचि व्योम-सरोवर के जल में।
शशि के मुख-कज विकासन में॥
समुहोत्पल है कि मयंक कला।
यह बारिधि कै शुचि व्योम झला॥
यह चारु पराग मरन्द सनो।
बरसै कि जुन्हाइहिं चन्द मनो॥[1]

यह प्रवृत्ति ब्रजभाषा की कविताओं मे अधिक प्रगट हुई। कवियो ने वर्णन के लिए परम्परागत शैली और अलकार-योजना के साथ भाषा भी पुरानी ही अपना ली। उस भाषा मे वे खुलकर अभिव्यजना-चमत्कार की सृष्टि कर सके। परन्तु जब खडीबोली मे काव्य-रचना की अनभ्यस्त लेखनियो ने शैशवावस्था मे ही कविता का भार इस भाषा पर रखना चाहा, तो अत्यन्त सरल, चमत्कारशून्य, अनलकृत, बालोपयोगी तुकबन्दियाँ होने लगी। निश्चय ही यह कविता इतिवृत्तात्मक, प्रसादमय, परन्तु कला के आभरणो से विहीन थी—

कोकिल अति सुन्दर चिड़िया है,
सच कहते हैं अति बढ़िया है।
जिस रगत के कुंवर कन्हाई,
उसने भी वह रंगत पाई॥[2]

इसी बाल-गीत (nursery-rhyme) की सी शैली मे द्विवेदीजी ने वसन्त-वर्णन किया है। इस युग और भाषा मे रचना करने वाले सभी कवियो ने इसी प्रकार की कविताए लिखी है—ऐसा नही कहा जा सकता। सौदर्य-बोध की वह नवीन चेतना जो परवर्ती काव्य मे पुष्पित-पल्लवित हुई, इसी युग के अनेक कवियों की रचनाओ मे अकुरित होने लगी थी। श्रीधर पाठक इनमे अग्रिम थे। आ० रामचन्द्र शुक्ल भी प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुभूति और तद्जनित आनन्द, अणु-अणु मे रमण करने, आत्मविस्मृत होकर तन्मय हो जाने मे ही स्वीकार करके थे। परिणामत: इन कवियो की दृष्टि अपने वर्णनो मे तटस्थ द्रष्टा की नही समभोक्ता की सी रही है, जिससे कविता का स्वरूप प्रभावित हुआ है। इन कविताओ ने छायावाद-पूर्व इतिवृत्तात्मक प्रकृति-वर्णनो और छायावाद के आत्मरस से आर्द्र चित्रो के बीच सेतु का सा कार्य किया। यद्यपि प्रकृति पर वे अपनी भावनाओ का आरोपण नही करते, परन्तु तटस्थ द्रष्टा की भाँति एक ओर खड़े होकर निरीक्षण के परिणामस्वरूप उसकी रूपात्मक विशेषताओ का वर्णन मात्र भी नही करते। छायावादी काव्य से इनमे अन्तर यही है कि प्रकृति इनकी भावनाओं के रग मे नही रंगती, इनका

---

१. करुणालय—जयशकर प्रसाद, पृ० १४८
२. द्विवेदी काव्यमाला—संग्रहकर्त्ता देवीदत्त शुक्ल, पृ० २४७

अपना मन प्रकृति के रग मे रग जाता है—अत. ये कवि वर्णन करते हैं परन्तु तन्मय होकर, केवल द्रष्टा के रूप में नही । उदाहरण देकर हम अपनी बात कदाचित् स्पष्ट कर सकेगे—

ए हो वन, बंजर, कछार, हरे-भरे खेत !
विटप, विहंग ! सुनो अपनी सुनावें हम।
छूटे तुम, तो भी चाह चित्त से न छूटी यह,
बसने तुम्हारे बीच फिर कभी आवे हम।
....

धुँधली-सी धूप धूल-सने वात-मंडल से
ढालती है मृदुता की आभा हर रंग में।
अंजित दृगंचल की कोर से किसी की खुल
रंजित रसा में रसी झूमती तरंग में—
मानों मदभरी ढीली दृष्टि है किसी की बिछी,
मन को रमाती रम जाती अंग अग में ॥[1]

आरम्भ मे 'ए', 'हो' आदि सम्बोधनवाचक शब्दों के प्रयोग से कवि वर्ण्य विषय से और भी आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। गुरुभक्तसिह ने भी प्रकृति के कुछ सुन्दर वर्णन किये है। कवि आत्मा से व्यक्तिगत रूप में ही नहीं वरन् मानव-जीवन के छाया-स्पर्शों द्वारा अखिल मानव-सृष्टि से प्रकृति को सम्बद्ध कर देता है। यही विशेषता मानव-रूप, क्रिया और भावनाओ के आरोप के रूप मे बाद मे वर्णन की विशेष शैली बन गई—

अंगड़ाई लेती शतदल पर, अरुणा नत शोभा के भार,
छक-छक रस, मन मे उमंग भर, निकल पड़ी करने अभिसार।
दबे पाँव चलने पर भी नूपुर कलिका दल उठे चिटक
दृग तूली जिस ओर फेरती सप्तराग छवि गई छिटक,
उसके पावन पद प्रहार से विहँस विटप होते मुकुलित,
रश्मि चित्रलेखा ने कर दी चित्रो से भूपट मुद्रित।[2]

आधुनिक अलकार-शास्त्र की शब्दावली मे इसी को मानवीकरण अलकार कहना होगा। कुछ कविताओ मे मानव-जीवन के सस्पर्श और गहरे और स्पष्ट हो गए है। कवि मानवीय क्रिया-कलापो और रूप-सौन्दर्य का आरोप प्राकृतिक तत्त्वो पर करने लगा है। 'प्रसाद' द्वारा उद्यान-लता का नारी रूप मे वर्णन इस प्रकार हुआ—

सुमनावलि सों लवि मोद-भरी,
पतियाँ सुलखात नवीन हरी ॥

---

१. कवि-भारती—स०, पन्त, राव, नगेन्द्र, पृ० १४६
२. वही, पृ० १७५

भरि अंक अहो तुम भेंटति हो,
तरु के हिय दाह समेटति को ॥
तुम देखति हौ केहि आस-भरी,
नहिं बोलति हौ तरु-पास खरी ॥[1]

परन्तु मानवीय भावनाओं का आरोप करने पर भी इन वर्णनों मे एक बात स्पष्ट है—इन कविताओं मे रूप और क्रियाएँ ही स्पष्ट हो सकी है भाव-व्यजना नही। परन्तु जैसे-जैसे काव्य-रचना के क्षेत्र मे इदम् की अपेक्षा आत्म की प्रतिष्ठा बढ़ती गई, वस्तु-तत्त्व कवि की दृष्टि मे गौण और आत्म प्रमुख होता गया। प्राकृतिक तत्त्व भावोद्दीपन के हेतु बन गए :

यह स्निग्ध सुखद सुरभित समीर,
कर रही आज मुझको अधीर,
किस नील उदधि के कूलों से,
अज्ञात वन्य किन फूलों से।
इन नव-प्रभात मे लाती है,
जाने यह क्या वार्ता गभीर ॥[2]

आलम्बन-रूप मे भी प्रकृति-चित्रण के रूप बदल गए। कवि अधिकाधिक मानवीय क्रिया-कलापो, रूप और चेतना के छाया-स्पर्शों द्वारा प्रकृति को चेतन रूप प्रदान करने लगा—

दूर क्षितिज में जाकर सोता था जीवन का नव उल्लास
द्रुतगति से था दौड़ लगाता चक्कर खाता पवन हताश,
विह्वल सी थी दीन वेदना मुंह खोले मलीन आकाश।
हृदय एक नि:श्वास फेंककर खोज रहा था प्रेम-निकेत,
जीर्ण काण्ड वृक्षों से हँसकर रूखा सा करते सकेत।[3]

इस प्रकार क्रमश. कवि ने प्रकृति के बाह्य रूप से उसके अतरग रूप मे पैठने का प्रयत्न किया। उसकी बाह्य रूपगत विशेषताओं पर उसकी दृष्टि टिकी न रहकर, भाव-व्यजना की ओर बढ़ी, बाह्य रूप-रग की अपेक्षा अन्तरतम के पट-उन्मीलन का प्रयत्न अधिक होने के कारण वर्णनो मे विस्तार की अपेक्षा गहराई उत्पन्न होती गई। इस शैली का विपर्यय उन रचनाओं मे किया गया जहाँ प्रकृति-वर्णन के माध्यम से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति को कवि ने अपना लक्ष्य बनाया। वह प्रकृति मे चेतना का अनुसंधान करने के स्थान पर प्राकृतिक क्रिया-व्यापारो में अपनी ही भावनाओं की समानता पाता है, समानानुभूति या विषमानुभूति करता है। 'होली की रात' का उपसहार आरम्भ में कुछ मनोरम और सुन्दर चित्र अकित करने के उपरान्त कवि 'प्रसाद' ने इस प्रकार किया है—

---

१. चित्राधार—प्रसाद, पृ० १५३
२. कवि भारती—मुकुटधर पाण्डेय, पृ० २७६
३. झरना—प्रसाद, पृ० १४

पिये, गाते मनमाने गीत,
टोलियाँ मधुपों की अविराम।
चली आतीं, कर रहीं अभीत,
कुमुद पर बरजोरी विश्राम॥
उड़ा दो मत गुलाल सी हाय,
अरे अभिलाषाओं की धूल।
और ही रंग नहीं लग जाय,
मधुर मंजरियाँ जावें भूल।
विश्व में ऐसा शीतल खेल,
हृदय में जलन रहे, क्या बात।
स्नेह से जलती होली झेल,
बनाली हाँ, होली की रात।[1]

आलम्बन-रूप मे प्रकृति वर्णन की शैली का भी छायावादी कवियो द्वारा नवरूपान्तरण हुआ। 'पन्त', 'महादेवी', 'निराला' सभी ने प्रकृति के अनेक सुन्दर वर्णन किये। इन वर्णनो की एक विशेषता है। इसमे स्थूल रूपाकार सम्बन्धी विशेषताओ की अपेक्षा उनकी सूक्ष्म रूपगत, क्रियागत और गुण तथा प्रभाव-सम्बन्धी बारीकियो को उभारकर कवि सामने लाने लगा। उसकी सौन्दर्य-चेतना मे परिवर्तन हुआ, प्रकृति मे उसे चेतन सौन्दर्य तो प्रतिभासित हुआ ही, उसकी छोटी से छोटी विशिष्टता को वह शब्दो मे रूपान्तरित करने का प्रयास करने लगा। इससे पूर्व के वर्णनो और, इन कवियो की तूलिका से अकित चित्रो मे वही अन्तर था जो कले मॉडल और चित्रकला मे होता है। सम्पूर्ण विषय को उसकी सभी बारीकियो के साथ, प्रभाव के साथ ये कवि पृष्ठों पर उतार देते है। ध्वनि, गति और रूप को शब्दो मे बाँधकर इन्होने उन चित्रो मे यथारुचि रग भी भरे है। निश्चय ही इनकी अभिव्यजना इस प्रयास में विशेष निखर आई। पन्त की 'नौका-विहार', महादेवी की 'वसन्त रजनी', निराला और पन्त की 'सध्या-सुन्दरी' आदि कविताओं मे से इस प्रकार के अनेक सुन्दर चित्र बिखरे मिलेंगे।

प्रगतिवादी कवि अधिकतर वर्ग-वैषम्य और दीन-दलितो की समस्याओ मे व्यस्त रहा, अतः उसे वस्तु-सत्य, यथार्थ जीवन, उसके सघर्ष और समस्याओ को छोडकर प्राकृतिक सौन्दर्य-बोध का अवकाश कम ही मिला। परन्तु प्रयोगवाद के 'अन्वेषियो' ने इन विषयो को आलम्बन बनाया। इन कवियों का सम्बन्ध एक ही वाद से होने पर भी इनकी वर्णन-शैलियाँ, सौन्दर्य-चेतना और अभिव्यंजना के प्रसाधन बहुत भिन्न हैं। सबकी अपनी-अपनी मान्यताएँ, संस्कार और प्रतिभा है। परिणामतः सौन्दर्य-बोध, कल्पना, और विवेक भी अपना है, अतः वर्णन-पद्धति भी विशिष्ट है। जीवन की यथार्थता के प्रति सभी कवि सजग रहे (ऐसी उनकी निश्चित धारणा थी)। कुछ की दृष्टि इस यथार्थता से, वस्तु-तथ्य से, इतनी अभिभूत थी कि सौन्दर्यानुभूति के सामने यह कटुतर तथ्यवादिता आवरण बनकर रूप-रंग की चकाचौंध से मुग्ध नहीं

---

१. झरना, पृ० ४५

होने देती और कवि को 'शिशिर की राका-निशा' वंचना सी प्रतीत होती है—

वंचना है चाँदनी सित
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार—
शिशिर की राका-निशा की शान्ति है निस्सार।
दूर वह सब शान्ति, वह सित भव्यता, वह
शून्य के अवलेप का प्रस्तार—
इधर केवल झलमलाते
चेत-हर दुर्धर कुहासे की हलाहल-स्निग्ध मुट्ठी में
सिहरते-से, पंगु टुंडे
नग्न, बुच्चे वई मारे पेड़ ।
पास फिर दो भग्न गुम्बद—
निविड़ता को भेदती चीत्कार-सी मीनार—
बाँस की टूटी हुई, टट्टी लटकती
एक खम्बे-से फटी-सी ओढ़नी की चिन्दियां दो चार।
निकटतर धंसती हुई छत, आड़ मे निर्वेद
मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नत-ग्रीव
धैर्यधन गदहा।[1]

उक्त वर्णन में कवि की दृष्टि सित चाँदनी को दूर की वस्तु मानकर उसमे वंचना का साक्षात्कार करती हुई निकटतर तथा अधिक वास्तविक तथ्य—साढे तीन पाँव पर स्वनिर्मित मूत्र-सिंचित मृत्तिका-वृत्त मे खडे धैर्यधन गदहे महाशय पर टिक गई है। काव्य का लक्ष्य है सौन्दर्य की अभिव्यजना और इसी विश्वास पर जीवन की कटुतर अनुभूतियाँ काव्य विषय बनकर दश-नि.शेष सरस रूप में प्रस्तुत होती है। परन्तु उपर्युक्त दृष्टि का सौन्दर्य-बोध उस प्रकार का नहीं। सामान्य पाठक इन अनुभव-खण्डों और विचार-खण्डो की उपर्युक्त निरावृत शैली से आनन्दानुभूति और सौन्दर्यबोध नही कर सकता। इन वर्णनो मे यथार्थता का दावा किया जा सकता है, परन्तु सभी यथार्थ सुन्दर और काम्य नही, अन्यथा कल्पना की अपेक्षा ही नही रहे, और जो सुन्दर नही वह काव्योचित विषय तभी बन सकता है जब काव्य-सृजन-प्रक्रिया मे उसका पुनः रूप-निर्माण हो। सौन्दर्य-बोध और अभिव्यजना के मानदण्ड अभी इतने नही बदले है कि ऐसे चित्र पाठक को रमा सके। परन्तु यह बात सभी नई कविता मे नही। गिरिजाकुमार माथुर ने 'विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी' अपने चित्रो मे सौन्दर्य-व्यजना का विघात नही होने दिया। उन्होने चित्र ही नही आँके, सुन्दर चित्र आँके है और उनमें अभिव्यजनात्मक शब्द-विन्यास के साथ वातावरण के रंग भरे हैं—

---

१. तारसप्तक—पहला—अज्ञेय, पृ० ७८

आज हैं केसर रंग रंगे वन
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली-सी
केसर के वसनों में छिपा तन
सोने की छाँह-सा
बोलती आँखों में
पहिले बसन्त के फूल का रंग है।
गोरे कपोलों पै होले से आ जाती
पहिले ही पहिले के
रंगीन चुम्बन की सी ललाई।
आज है केसर रंग रंगे—
गृह, द्वार, नगर, वन
जिनके विभिन्न रंगों में है रंग गई
पूनों की चन्दन चाँदनी।[1]

उपर्युक्त वर्णन मे कवि ने हल्के, स्निग्ध और रेशमी रगो का ही प्रयोग किया है। इस विषय मे कवि की अपनी मान्यता थी—"मैंने रगो का आधार विशेष रूप से रक्खा है, किन्तु मैं चित्र को सदा हल्के रगो की छाँहों के आवरण मे लिपटा पसन्द करता हूँ। क्योकि यथार्थ चित्र के सभी डिटेल मै कला की दूरी से देखता हूँ।"[2] सभी कवियो मे मात्रा-भेद से यह वर्ण-परिज्ञान वर्तमान है किन्तु सभी ने सर्वत्र इसी प्रकार रगो के डिटेल नही भरे। नेमिचन्द्र जन की कविताओ मे रूप और आकारगत विशेषताओं के स्पष्टीकरण का प्रयत्न अधिक है। कवि ने कही-कही सूक्ष्म निरीक्षण से मन पर पडे प्रभाव को पृष्ठों पर उतारा है। 'डूबती संध्या' के समय पहाडी पत्थर, विभा के पार्श्व मे कन्ट्रास्ट के कारण किस प्रकार अपनी कुरूपता मे और भी भासमान हो उठते है यह सामान्य अनुभव की बात कवि ने उक्त प्रसग मे पकड़कर सम्पूर्ण चित्र मे इसको उभारकर प्रस्तुत किया है—

इन पहाड़ी पत्थरों के हृदय में कुछ स्नेह-कम्पन
प्राण का संचार
वे खड़े हैं अचल चिर अविकार !
वह विचित्र कुरूपता—उनकी,
विभा के पार्श्व में,
है हो उठी कुछ और भी असमान।[3]

भारतभूषण अग्रवाल ने रगों का प्रयोग किया है किन्तु उनके रंगों मे भास्वरता और दीप्ति है, स्निग्धता और धूमिलता नही। उनका प्रभात वह्नि-बाण और ज्योतिशल्य के समान

---

१. तार सप्तक—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ४२
२. वही, पृ० ४०
३. वही, पृ० २५

फूट निकलता है—

फूटीं किरणें ज्यों वह्नि बाण, ज्यों ज्योति शल्य,
तरु वन में जिनसे लगी आग।
लहरों के गीले गाल, चमकते ज्यों प्रवाल,
अनुराग लाल[1]

प्रतीत होता है मानो जीवन के आलोक से दीप्त प्रकाश-पुंज, इधर-उधर सभी स्थलों पर छितरा गया है। वर्णन की यह शैली छायावाद से भिन्न परन्तु विरोधी नहीं, उसी का विकास और प्रसार कही जायगी।

मानव-रूप और प्राकृतिक वर्णनों के अतिरिक्त कवियों ने उत्सव और पर्व आदि के वर्णन भी किये। ऐसे विषयों में जहाँ रागात्मक अनुभूति अधिक प्रगाढ होती है, माध्यम प्रायः गेय काव्य हो जाता है, हाँ सामाजिक जीवन से सम्बद्ध इन उत्सवों के प्रति व्यक्त व्यक्ति के आत्मोद्गार सामूहिक भावना का प्रतिनिधित्व ही करते हैं। जब कवि इनके प्रति अपनी या जन-जीवन की रागात्मक अनुभूति का वर्णन न करके केवल इनके महत्त्व का वर्णन करता है, वहाँ कविता में वस्तुरूप वर्णन ही सम्भव होता है। ऐसी कविताएँ संख्या की दृष्टि से बहुत नहीं लिखी गई।

राष्ट्रीय भावना से अभिभूत होकर देश के गौरव-गान व महिमा-वर्णन के लिए भी कवि-वर्ग काव्य-रचना करता रहा। ये कविताएँ दो रूपों में लिखी गई—(१) राष्ट्र के गौरव-गान के उद्देश्य से सामान्य रूप में उसकी प्रकृति, आदि का वर्णन तथा (२) किसी स्थान या प्रसंग-विशेष से उद्दीप्त देश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर उसी स्थल का भावमय वर्णन। दोनों प्रकार की कविताएँ स्वतन्त्रता-संग्राम की साधनावस्था में ही रची गई। रूपनारायण पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान आदि का इस प्रसंग में विशेष उल्लेख किया जा सकता है।

'झाँसी की रानी की समाधि' से प्रेरित कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान की भावाभिव्यक्ति उस स्थल-विशेष के गौरव-वर्णन के रूप में इस प्रकार हुई—

यह समाधि, यह लघु समाधि है,
झांसी की रानी की।
अन्तिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की॥
यहाँ कहीं पर बिखर गई वह,
भग्न विजय-माला-सी।
उसके फूल यहाँ संचित हैं,
है यह स्मृति-शाला-सी।[2]

देश-भक्ति के प्रसंग में कवियों ने देश-भक्तों के क्रिया-कलापों, शासकों के अत्याचार,

---

१. तारसप्तक, पृ० ३६
२. कवि-भारती—सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ० २००

आन्दोलन, असहयोग आदि का वर्णन भी जनता के हृदय में उत्साह-जागरण के निमित्त किया। स्वाभाविक था—इन कविताओ मे कला की अपेक्षा उद्देश्य प्रधान होने के कारण वर्णन अधिकाधिक प्रत्यक्ष और प्रभावक्षम शैली मे किये गए। अपनी बात को पाठक तक इस प्रकार पहुँचा देना कि उसके हृदय पर वाँछित प्रभाव पड जाय, यही इन कविताओ का लक्ष्य था। अर्थ के तत्काल-ग्रहण मे बाधा न हो, इसलिए इन्होने यथासभव शैली में प्रसादमयता की रक्षा की, भले ही कही-कही इस लक्ष्य-सिद्धि के लिए उर्दू से इन्हे शब्द-चयन करना पडा, कविता अनलकृत रह गई और उसमे किसी प्रकार का वक्रतापूर्ण चमत्कार उत्पन्न न हो सका, कवि केवल कार्यों का लेखा ही करता रहा—

शौक से शोकत जाते जेल,
मोहम्मद को तो बह है खेल,
न 'शंकर' 'किचलू' होगे फेल,
बढ़ रही वीरवरों की बेल।
हुआ है कारागार स्वगेह, विजय मे अब क्या है सदेह।[1]

देशप्रेमी नेताओ की कारागार-यात्राएँ, चर्खा रूपी चक्र-सुदर्शन, विविध आन्दोलन, देश की गौरव-गाथाएं, इन कविताओ का प्रधान वर्ण्य विषय रहीं।

देश के अतिरिक्त अन्य विषयो की ओर कवियो की भावधारा जब उन्मुख हुई तो इसी शैली मे किंचित् परिवर्तन हो गया। राष्ट्र के गौरव-वर्णन मे कवि जहाँ उसकी प्रकृति और वैभव के वर्णन मे दत्तचित्त रहे, वहाँ जब आराध्य के प्रति श्रद्धा-निवेदन किया गया तो उसकी महिमा, विराट् रूप और कृत्यो का गौरव-गान अधिक हुआ। इस प्रकार की कविताओ मे बिना तर्क और युक्ति का अवलम्ब लिए भक्त-हृदय की अपार श्रद्धा व्यक्त हुई है। अतः ईश्वर के स्वरूप को कवि व्याख्या-विश्लेषण के द्वारा दर्शन की तर्कमयी शैली मे सिद्ध नहीं करता, उसका रागमय विश्वास से युक्त वर्णन करता है—

जो सर्व व्यापक तऊ सबसे परे हैं।
जो सूक्ष्म है पर तऊ बसुधा धरे हैं॥
जो शब्द मे रहत शब्द न पार पावै।
ताकी महान महिमा कवि कौन गावै॥
जो भानु मध्य नित भासत ओज धारे।
शीतांशु जासु लहि कान्ति प्रभा पसारे॥
जाको सुगन्ध मलयानिल पाइ डोले।
ताके महान गुण ग्रंथिहि कौन खोले॥[2]

श्रद्धार्पण का आलम्बन केवल अलौकिक और आध्यात्मिक सत्ता नहीं, इस लोक के वीर पुरुष भी बनाये गए। राष्ट्र-गौरव के आधार-स्तम्भ कतिपय ऐतिहासिक और साहित्यिक

---

१. पराग—रूपनारायण पाण्डेय, पृ० ३२
२. चित्राधार—प्रसाद, पृ० १५५

व्यक्तियों को आलम्बन बनाकर कवियों ने उनके गुणों का इतिवृत्त-वर्णन किया है। इन कविताओं मे वीर-पूजा की भावना से प्रेरित गौरव-वर्णन किया गया है। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'मेवाड़ गाथा' मे राणा सागा, राणा सग्रामसिंह, राणा सज्जनसिंह आदि ऐतिहासिक महापुरुषों के महिमापूर्ण कृत्यो का वर्णन, और साहित्यिक क्षेत्र के महारथी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रशस्ति गान विभिन्न कविताओं मे किया। इन कविताओं मे ओज, उत्साह, सःप्रेरणा और वीर-पूजा का भाव तो प्रचुर मात्रा मे है, किन्तु कलात्मक सिद्धि इनमे बहुत ऊंचे स्तर की नही हो सकी।

वर्णन का सम्बन्ध प्राय मूर्त उपादानो से जोडा जाता है, अमूर्त भावों या विचारो से नही। जिस वर्ण्य का बाह्य रूपाकार नही उसका रूप-चित्रण तो सभव नही हो सकता, परन्तु कतिपय ऐसी अनुभूतियो या भावस्थितियो का निरूपण किया जा सकता है, जो नितान्त व्यक्तिगत और अन्तरग तो नही परन्तु जिनका निवास अन्तर्मन में होता है, वस्तुजगत् मे नही। अधिक स्पष्ट शब्दो मे यह अनुभूतियाँ अन्तर्मुखी (Subjective) तो होती है, व्यक्तिगत (Personal) नही। कवि इस प्रकार की भावस्थितियो के वर्णन मे कदाचित् स्वानुभूति को प्रमाण मानता हुआ भी सामूहिक धरातल पर उनकी विशेषताओं का निरूपण करता है। आत्म से उद्भूत ये मनोवृत्तियाँ बाह्य-जगत् मे क्रमश विस्तार पाती हैं, अतः अत्यन्त सूक्ष्म सवेदन जो व्यक्ति-विशेष की अनुभूतियो से सम्बद्ध होते हैं, इनका विषय नहीं बन पाते। परन्तु साथ ही अमूर्त विषयो—गुण, क्रिया या भाव के वर्णनो मे स्वभावतः वस्तु रूप के अभाव में विशेषताओं का वर्णन ही अधिक प्राप्त होता है। रामनरेश त्रिपाठी द्वारा 'प्रेम' के स्वरूप और महत्ता का वर्णन इसी प्रकार किया गया है—

प्रेम विचित्र वस्तु है जग में,
अद्भुत शक्ति-निधान,
निद्रा में जागृति, जागृति मे,
है वह नींव समान !
.....
गन्ध विहीन फूल है जैसे
चन्द्र चन्द्रिका-हीन,
यों ही फीका है मनुष्य का
जीवन प्रेम-विहीन ![1]

प्रसाद ने 'चित्राधार' में इसी प्रकार 'कल्पना-सुख', 'मानस', 'नीरव-प्रेम' आदि विषयों पर छोटी-छोटी कविताओं की रचना ब्रजभाषा मे की। इन कविताओं मे वस्तु-तत्त्व की नही परन्तु वर्णन की प्रधानता है। हाँ, कभी-कभी साकार बिम्ब-विधान का आश्रय कवि अपने आशय के स्पष्टीकरण के उद्देश्य से ले लेता है।

---

१. कवि भारती—रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १११

कथात्मक निबद्ध-मुक्तक

इन निबद्ध-मुक्तको और आख्यानक गीतियों तथा प्रसग-कथाओं में परस्पर अन्तर होता है। इसी कारण लघु-प्रबन्ध-रूपों के अन्तर्गत इनका विवेचन न करके इनकी गणना मुक्तक-रूपों के मध्य की गई है। एक अत्यन्त स्थूल अन्तर इनमे बाह्य आकार-सम्बन्धी है। ये मुक्तक विस्तार मे आख्यान-गीतियो तथा प्रसंग-कथाओं का अपेक्षा सीमित होते है। इस आकारगत परिसीमा का सम्बन्ध इनकी विषयगत विशेषता से है। इनमे कथा का उसी प्रकार सुनिश्चित विन्यास नही होता जिस प्रकार प्रबन्ध-रूपो मे। इनमे कथा का सस्पर्श-मात्र किया जाता है, अथवा कथा प्राय किसी अन्य उद्देश्य की सिद्धि का माध्यम-मात्र होती है। उद्देश्य से यहाँ तात्पर्य उसी प्रकार की सिद्धि मे नही जो प्रबन्ध-ध्वनि के रूप मे सभी बृहदाकार प्रबन्ध-रचनाओ मे व्यग्य रहता है। इन कविताओ मे उपदेश प्रत्यक्ष कथित होता है और उसके दृष्टान्त या पृष्ठभूमि के रूप मे आख्यान उसमे अनुस्यूत रहता है। इनके अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार की मुक्तक कविताएँ वर्णनात्मक कविताओ की भाँति चित्र को आलम्बन बनाकर लिखी गईं। किसी चित्र-विशेष मे अकित प्रसग के वर्णन के लिए कवि उसके पूर्वापर प्रसगो तथा घटनाओ के सूत्र मिलाता है, जिससे चित्रांकित घटना का वह कार्य-कारण-सम्बन्ध के सहित इस रूप मे वर्णन कर सके कि वह पाठक को बिना किसी उलझन के ग्राह्य हो। परन्तु इन चित्रो का सम्बन्ध अधिकतर किसी प्रख्यात या ऐतिहासिक घटना से होता था और कवि यह मानकर चित्र-वर्णन करता था कि उसका पाठक प्रसग से अभिज्ञ है। ये कथाश्रित वर्णन इस रूप मे उचित आदि, मध्य और अवसान से युक्त नही होते कि इन कथाओ के प्रख्यात रूप से अनभिज्ञ पाठक बिना सहायता के इन्हे हृदयगम कर सके और उसकी जिज्ञासा परितुष्ट हो जाय। यही इनमे और आख्यानक गीतियो तथा पद्य-कथाओं में अन्तर है। स्वत. पूर्णता और पूर्वापर निरपेक्ष स्थिति यद्यपि मुक्तक रचनाओ का अनिवार्य अनुबन्ध है. परन्तु इन मक्तको की रचना भारतीय सस्कृति, बल्कि हिन्दुत्व से परिचित पाठक की दृष्टि से हुई है और इस प्रकार के सस्कारी प्रमाता की कल्पना इनमे छूटे हुए कथा-सूत्रो को स्वय मिलाती जाती है। अपवाद की स्थिति मे निराशा के अतिरिक्त और कुछ नही प्राप्त हो सकता।

इस प्रकार की अनेक कविताएँ रूपनारायण पाण्डेय, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', लाला भगवानदीन, लोचनप्रसाद पाण्डेय, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि ने पुराने पौराणिक आख्यानो के ढग पर लिखी तथा अपेक्षाकृत नवीन प्रसग और समस्याओ की कथा के सस्पर्श द्वारा व्यजना की परिपाटी परवर्ती कवियो तक चली आई। रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त तथा भगवतीचरण वर्मा आदि कवियो ने अधिक कलात्मक ढग से आख्यानात्मक कविताओ की रचना की।

प्रत्यक्ष उपदेश कथन के लिए किसी घटना का दृष्टान्त-रूप मे वर्णन पुरानी परिपाटी के कवियो ने अधिक किया। इन कविताओ मे धर्मग्रन्थो की भाँति किसी प्रख्यात या ऐतिहासिक व्यक्ति के आदर्श आचरण का दृष्टान्त-रूप मे वर्णन तथा तदुपरान्त नीति-कथन रहता था। कभी-कभी ये पात्र कल्पित भी होते थे, अथवा पचतन्त्र या जातक-कथाओ आदि की भाँति मनुष्येतर जगत् की छोटी-छोटी घटनाओ और उनके परिणामो मे उपदेश-व्यंजना की जाती थी। इस

प्रकार की उपदेशात्मक कविताएँ चित्रों को आलम्बन बनाकर भी लिखी गईं और इनके प्रमुख रचयिता हुए ला० भगवानदीन। उन्होंने अपनी रचना 'नवीन बीन' में चित्राकित प्रसगों पर अनेक उपदेशात्मक कविताएँ लिखी।

कभी-कभी तो यह उपदेश सर्वथा वाच्य हो जाता है। 'गजेन्द्र गाथा' का आरम्भ ऐसे होता है :

पाठक प्रवर ! आज हम तुमको अद्भुत कथा सुनाते हैं।
शरणपाल श्री नारायण का रक्षक भाव दिखाते हैं॥

और अन्त में कवि कहता है :

कुछ भी हो, पर मेरे चित में यह सिद्धान्त समाता है।
यह गजेन्द्र का चरित विलक्षण हमको यह सिखलाता है।
अशरण-शरण एक ईश्वर है जिसके गुण जग गाता है।
हरि के हाथ निबाह सभी का अन्त समय हो जाता है।[1]

सर्वत्र ये कविताए उपदेश के निमित्त नही लिखी गई। जैसा पहले भी कहा जा चुका है, चित्राकित प्रसगो के वर्णन मे केवल चित्र की व्याख्या के निमित्त कुछ कविताओ की रचना हुई, परन्तु इनमे घटना-विशेष का कोई अश अथवा झलक-मात्र है, सम्पूर्ण कथा नही और ये अधिकांश प्रसग प्रख्यात है, अत: इन्हे समझने के लिए परम्परा का परिज्ञान अनिवार्य है। कवि इनमे कथा के लक्ष्य की पूर्ति अर्थात् जिज्ञासा का उद्बोधन और परितोष नही कर पाता, केवल जिज्ञासा उद्बुद्ध भर होती है। कवि का उद्देश्य चित्र की व्याख्या करना और उसकी पृष्ठभूमि का स्पष्टीकरण मात्र होता है :

देखिये पाठक प्रवर ! इस चित्र पट के चार चित्र।
कर रहे हैं व्यक्त कैसे भिन्न भाव महा विचित्र॥[2]

ला० भगवानदीन ने अनेक प्रख्यात प्रसगों का चित्राश्रित वर्णन किया है। चित्रो के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'ऊषा-स्वप्न' व 'गगा-भीष्म' आदि कविताओ मे उषा और अनिरुद्ध की भेंट का, और भीष्म-जन्म के प्रसग का छायाभास वर्णन किया है।

पशु-पक्षियों की कथा से उपदेश-व्यजना अपेक्षाकृत कम की गई। रूपनारायण पाण्डेय की 'वन-विहगम' और लोचनप्रसाद पाण्डेय की प्रसिद्ध कविता 'मृगी-दु ख मोचन' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

कथात्मक मुक्तक-रचना की परिपाटी समय की प्रगति के साथ क्षीण होती गई, कम से कम कथा-तत्त्व गौण अवश्य हो गया। केवल कथा कहने के लिए तो इस प्रकार की रचनाएँ क्रमश: अलभ्य ही हो गईं, जहाँ अन्य उद्देश्यो के लिए घटना का आश्रय लिया गया, वहाँ केवल उसका स्पर्श भर किया गया है, सागोपाग वर्णन व सुनिश्चित विन्यास नही। अन्य उद्देश्य से यहाँ अभिप्राय—किसी समस्या की व्यंजना, किसी प्रसग-विशेष मे किसी भावस्थिति, अथवा किसी

---

१. नवीन बीन—ला० भगवानदीन, पृ० ११५, १२०
२. वही, पृ० १७

घटना या प्रसंग के प्रति किसी पात्र की या निजी भावात्मक प्रतिक्रिया को शब्द-रूप देने से है। कथात्मक वर्णन की यह पद्धति निश्चित रूप से अधिक कलात्मक सिद्ध हुई क्योंकि इनमें वस्तु तत्त्व साधन और आत्म तत्त्व साध्य हो गया, तथा उपदेश अथवा समस्याओं को ये कवि कथा का बाना पहनाकर कुछ सीमा तक अधिक रोचक और ग्राह्य बना सके। रामनरेश त्रिपाठी ने 'विधवा का दर्पण' शीर्षक कविता मे हिन्दू विधवा की दयनीय स्थिति का अंकन किया है, और सियारामशरण गुप्त ने 'खिलौना' नामक कविता मे खिलौने के प्रति दो बालको—राजकुमार और दीना के लाल की मनोवृत्ति का वर्णन कर वर्ग-भेद की भावना के परिहार का संकेत किया है तथा अनेक छोटी-छोटी कविताओं—'स्वप्न भंग', 'सम्मिलित' आदि मे जीवन की किसी घटना की पृष्ठभूमि मे अपना भावात्मक प्रतिक्रिया को व्यक्त किया है। भगवतीचरण वर्मा ने इसी प्रकार 'नूरजहाँ की कब्र पर' रचना मे अपनी अनुभूति को वाणी दी है। कवि को क्रमशः नूरजहाँ के जीवन की समस्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं का स्मरण होता है, और वह अपने मन मे उठने वाली भावनाओं की आवृत्ति कविता मे करता जाता है। सम्पूर्ण कविता मे अद्‌भुत नाटकीयता और घटना संयोजन मे कला-कौशल है, कोरा इतिवृत्त नही। इसके अतिरिक्त वह एक महत्तर उद्देश्य के लिए इस प्रकार के घटनात्मक प्रसगो का आश्रय लेता है। घटनात्मक तथ्य के मूल मे निहित भावात्मक सत्य का उद्‌घाटन उसका लक्ष्य है। बाह्य घटनाएँ इस मूलभूत सत्य के अभिज्ञान और अनुसधान का निमित्त अथवा दृष्टान्त बन जाती है। अत कविता के अन्त मे समस्त घटनाओं का सक्षेप मे सिंहावलोकन कर लेने के उपरान्त कवि अपना निष्कर्ष देकर भावात्मक सत्य का उद्‌घाटन करता है :

ऐ रजकण के ढेर तुम्हारा है विचित्र इतिहास।
तुम मनुष्य की उन अभिलाषाओं के हो उपहास
कि जिनका असफलता है अन्त
और आशा जीवन।
बना अजान खण्ड ही यह लो आज तुम्हारा सदन,
कभी उत्थान, कभी है पतन।
वासनाओं का यह संसार
भयानक भ्रम का है बन्धन,
और इच्छाओं का मण्डल
आदि से अन्त रुदन है रुदन,
एक अनियन्त्रित हाहाकार
इसी को कहते हैं जीवन![1]

इस प्रकार इन घटनाप्रधान कविताओं मे कवि क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म, मूर्त से अमूर्त और वस्तु से भाव और विचार की ओर बढता गया है। आरम्भ में केवल घटनाओं के वस्तुरूप को महत्त्व देकर घटना का अंकन करने वाला कवि क्रमश. उनके अन्तर मे पैठकर भाव और विचार-

---

१. कवि-भारती—'नूरजहाँ की कब्र पर'—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४४७

सूत्रों का अन्वेषण करने लगा है। घटनाओं का बाह्य रूप गौण और आन्तरिक रूप प्रमुख हो गया। कला की दृष्टि से यह परिवर्तन शुभ ही हुआ। अमूर्त की अभिव्यक्ति के उपकरण भी स्थूल से सूक्ष्म हो गए और अभिव्यंजना-शैली में उत्कर्ष हुआ। इतिवृत्त-वर्णन के स्थान पर भाव और विचार-व्यंजना की प्रमुखता के कारण शैली मे भी भावप्रेरित वक्रता और व्यंजना का संचार हुआ। परिमाण की दृष्टि से कथाश्रित कविताओं की रचना इस युग मे कम हुई।

भावात्मक निबद्ध-मुक्तक

आधुनिक काव्य मे परिमाण की दृष्टि से सर्वाधिक सख्या भावप्रधान निबद्ध कविताओं की है। परम्परा की दृष्टि से इस विधा का सम्बन्ध प्राचीनतम काव्य से जोड़ा जा सकता है, परन्तु विशुद्ध आत्माभिव्यंजन के लिए इनकी रचना अत्यन्त विरल थी। भावप्रधान कविताओं की रचना आधुनिक युग से पूर्व निम्नांकित रूपो मे की गई—

(१) किसी विशेष अवसर, पर्व, उत्सव आदि के अवसर पर बधाई या गेय रचनाओं के रूपो में। इन रचनाओं की चेतना व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत होती थी। व्यक्ति की वाणी से सामूहिक भावना का उत्स इनमे प्रवाहित होता था।

(२) दूसरे प्रकार की भावोद्‌गीतियाँ भक्तो के कण्ठ से कही प्रत्यक्ष आत्मानुभूति के रूप में (मीरा, कबीर आदि के पदों मे) तथा कही पात्रों के माध्यम से (कृष्ण-लीला के गायक सहृदय भक्तों के काव्य मे) व्यक्त हुई।

उपर्युक्त दोनो ही प्रकार की कविताओं मे उसी प्रकार विशुद्ध आत्माभिव्यंजन नही मिलता, जिस प्रकार विवेच्य युग की गीति रचनाओं मे। केवल कुछ दूर तक रीतिमुक्त कवियो के विरह-निवेदन की समानता इनसे स्थापित की जा सकती है परन्तु शैली के प्रसाधनो मे विपुल अन्तर है।

आधुनिक काव्य में भावात्मक रचनाओं का आरम्भ प्रख्यात और महिमामडित पुरुषो के स्तवन और प्रशस्तिगान के रूप मे रचित कविताओं से हुआ। किसी वीर गौरवशाली व्यक्ति या महान अधिनेताओं की जन्मदात्री भूमि का गौरव-गान कर कवियो ने अपनी श्रद्धाजलि इनको अर्पित की। भावप्रधान कविताओं का दूसरा रूप उन रचनाओं मे प्राप्त होता है जो किसी भौतिक तत्त्व से प्रेरित कवि की भावाभिव्यजना के रूप मे लिखी गईं। इन कविताओं का प्रेरणा-सूत्र किसी व्यक्ति, घटना, या प्राकृतिक तत्त्व मे निहित रहता था। इनमे कुछ सम्बोधन गीतियों के रूप में लिखी गई अन्य सामान्य प्रगीत के रूप मे। इन प्रगीतो मे प्रेरक विषय को आलम्बन बना-कर नही, उद्दीपन-रूप मे ग्रहण कर उससे भावोद्दीप्त, अपनी मन.स्थिति का वर्णन कवि करता है। यही सम्बोधन गीति और इन प्रगीतो मे अन्तर है। एक मे बाह्य विषय आलम्बन होता है दूसरी मे उद्दीपन। वस्तुजगत् के किन्ही विषयो से उद्दीप्त इस प्रकार की कविताओं मे, और व्यक्तिगत सुख-दुखात्मक प्रगीतों मे अन्तर यही है, कि दूसरे प्रकार की कविताओं के निमित्त कारण भी यद्यपि आत्मेतर घटनाओं मे प्रायः निहित रहते है किन्तु वे तत्काल उद्दीपन का कार्य नही करती। इसके विपरीत पहले प्रकार की कविताओं की रचना किसी प्राकृतिक तत्त्व अथवा प्रसग आदि के द्वारा तत्काल उद्दीप्ति के परिणामस्वरूप होती है। अतः मुख्य रूप से भावप्रधान निबद्ध-मुक्तकों में पाँच प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं :

(क) उत्सव, पर्व या किसी अन्य मागलिक व उल्लासमय अवसर पर लिखी गई कविताएँ।

(ख) व्यक्ति या देश के प्रति श्रद्धाजलि-अर्पण या स्तवन-वन्दन के स्वरो मे रचित कविताएँ।

(ग) विनय या प्रार्थना के रूप मे रचित कविताएँ।

(घ) व्यक्तिगत सुख-दुखात्मक या अन्य भावनाओ की व्यजक रचनाएँ, जिन्हें प्रगीत कहा जाता है (इनके अनेक अन्य प्रकार काव्य मे उपलब्ध है)।

(ङ) किसी विशेष तत्त्व, व्यक्ति या प्रसग से तत्काल उद्दीप्त व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यंजक कविताएँ।

उपर्युक्त प्रकारों मे से अनुपात (संख्या और कलात्मक उत्कर्ष) की दृष्टि से प्रथम तीन की अपेक्षा अन्तिम दो प्रकार की कविताओ का महत्त्व अधिक है।

मगलमय पर्वों पर रचित कविताओं की सख्या अधिक नहीं। कारण—आधुनिक युग में उत्सवों के उल्लास और राग-रग की अपेक्षा समस्याओं की प्रमुखता, विपत्तियो से सघर्ष, तथा सामाजिक और विश्वव्यापी समस्याओ का प्राबल्य रहा। भारतीय मन, जो वर्षों से विदेशी शासन के मोहांधकार मे प्राय. चेतना-शून्य हो गया था, क्रमश. आत्मसाक्षात्कार कर रहा था, अतः संघर्ष-रत देश के जीवन मे ये प्रसग आत्मविभोर करने वाले उल्लास की सृष्टि नही कर सकते थे। शताब्दी के प्रथम दो दशाब्दो मे तो कही-कही राजभक्ति और देशभक्ति की द्विधा मे उलझे कवि की लेखनी से यदा कदा ऐसी रचनाएँ होती रहीं परन्तु तदुपरान्त आत्म और जगत् की समस्याओं में उलझा कवि-मन इनके प्रति उदासीन हो गया और ये कविताएँ विरल हो गईं।

उक्त प्रकार की रचनाएँ प्राय. द्विवेदीयुगीन कवियो ने ही कीं। ऐसे अवसरो पर काव्य-रचना की प्रेरणा सहज नही अर्जित होती है। स्वभावत. इन कविताओ मे अवसर-विशेष पर उदित कवि की भावनाओ और कामनाओ के साथ प्रसग या अवसर का वर्णन भी आशिक रूप से मिला रहता है। नये वर्ष के अभिनन्दन 'सरस्वती' में प्रकाशित होते रहते थे। इनकी मूल भावना प्राय सामूहिक होती थी। कवि इनमे समष्टिगत हित की कामनाएँ ही व्यक्त करता था। उदाहरण के लिए रायकृष्णदास की 'छप्पन की विदाई नए वर्ष की बधाई' की जिसमे कवि ने कतिपय समाजगत समस्याओ और विपत्तियो का वर्णन, तथा गत वर्ष के प्रति आत्मोद्गार व्यक्त किया है, कुछ पक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

कोउ कोउ भाँति चलो भैया
छप्पन की भई विदाई।
नए बरस की आओ हम सब
हिलिमिलि देंहि बधाई।[1]

कवि 'हिलिमिलि' बधाई देने की कामना करता है एकाकी नही। इन सर्वजन-सम्बद्ध अवसरों पर की गई सभी रचनाओं में सामूहिक भावना के ही दर्शन होते है।

---

१. सरस्वती—संख्या ३, १९०० मार्च, पृ० ९०

इसी प्रकार की सामूहिक भावनाओ की अभिव्यक्ति उन अनेक रचनाओं मे मिलती है जो जन-जीवन का नेतृत्व व हित-साधन करने वाले महापुरुषो के अभिनन्दन के लिए लिखी गईं, अथवा जिनमे परम सत्ता या अन्य किसी शक्ति के प्रति श्रद्धा अथवा उद्धार की लालसा व्यक्त की गई। इन प्रशंसात्मक कविताओं मे कभी-कभी माहात्म्य वर्णन के लिए घटनाओं का उल्लेख भी किया गया। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'मेवाड गाथा' की कविताओं में कथात्मक संस्पर्श के साथ महाराणा प्रताप का गुणानुवाद किया है। ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रशस्ति-गान के अतिरिक्त कुछ कविताएँ तत्कालीन शासन-सत्ताधारियो की प्रशसा मे लिखी गई। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने भारतेन्दु की परम्परा का पालन करते हुए—'राजदम्पति को आशीर्वाद' और 'भूपसप्तक' आदि शीर्षको में शासको की प्रशसा की है।

देशभक्ति की भावना से प्रेरित अन्य कविताओं में से कुछ प्रार्थनाओं के रूप में लिखी गईं, जिनमे उद्धार के लिए कही ईश्वर से, और अन्यत्र शासकों से विनय-निवेदन किया गया है। ऐसी कविताओ मे भी एक ओर प्रगति और उद्धार की लालसा व्यक्त हुई है, दूसरी ओर विद्यमान कष्टो और दुरवस्था का परिचय देने के लिए कुछ वर्णनात्मक स्थल आ गए है। इन कविताओं का सम्बन्ध भौतिक जीवन की बाह्य समस्याओ, तथा नैतिक आचार-व्यवहार से, और समष्टि से है, व्यक्ति से सम्बन्धित अन्तरंग व आत्मनिष्ठ प्रसंगों से नही। काव्य-शिल्प की दृष्टि से ये कविताएँ अति साधारण ही कही जायंगी।

वर्षों मुसलमानो के बर्बर शासन से संत्रस्त भारतीय जनता मे अंग्रेजों की अपेक्षाकृत उदार नीति के प्रति कृतज्ञता की भावना वर्तमान थी। शासकसत्ता के प्रति कम-से-कम आक्रोश और विद्रोह उत्पन्न नही हो पाया था, अत. शासक मे आस्थावान कवि ने देशोद्धार के लिए उससे भी प्रार्थना की एवं देश के कष्टों का वर्णन किया :

प्राचीन चिह्न अभिभावक लाटवीर।
हे दुर्जनान्तर कर्जन ! धर्ममीर।
लीजो बचाय म्रियमाण शरीर मेरो;
कल्याण होय सब काल दयालु ! तेरो।[1]

(अयोध्या का विलाप)

इस युग मे सर्वाधिक संख्या व्यक्तिगत राग-विराग, सुख-दु ख की अभिव्यजक गीतियों की है। इन कविताओ की वह विशेषता जिसके आधार पर इनका व्यावर्त्तन पूर्ववर्ती तथा तत्कालीन अन्य कविताओं से किया जाता है, इनके रचयिताओं का अन्तर्मुखी दृष्टिकोण है। ये कवि अपनी मनोवृत्तियों को चारों ओर से सिमेट-सिकोडकर अन्तर्मन मे केन्द्रित करते है। इनके व्यक्तित्व का बहिरग विस्तार नहीं, आत्म में केन्द्रीकरण होता है, अत इन कविताओं की प्रेरक अनुभूति स्फीत नहीं घनीभूत तथा अभिव्यक्ति सहज एव अन्तःस्फूर्त होती है। कभी कवि का दृष्टिकोण नितान्त व्यक्तिपरक और आत्मनिष्ठ होता है और कभी वह बाह्य जगत् के उपकरणों तक अपनी अनुभूति और समवेदना का विस्तार करता है। किन्तु बाह्य जगत् के तत्त्वो का संस्पर्श भी आत्म-

---

१. द्विवेदी काव्यमाला—सं० देवीदत्त शुक्ल, पृष्ठ २७०

रंजित रूप में व्यक्ति की निजी अनुभूतियों के नाते होता है, आलम्बन-रूप में नहीं, उद्दीपन-रूप मे। कवि इनमे अन्त. से बाह्य की ओर बढ़ता है, बाह्य जगत् से अन्तः की ओर नहीं। इस विधा-विशेष पर विदेशी साहित्य और अभिव्यंजनाशैली का प्रभाव बहुत अधिक मात्रा में रहा है। इसी कारण इसके लिए पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र में प्रचलित शब्द 'लिरिक' का भावानुवाद 'प्रगीत' प्रचलित हुआ, अत इसे भलीभाँति समझने के लिए तद्विषयक पाश्चात्य मान्यताओं से अवगत होना अभीष्ट होगा।

प्रगीत—प्रगीत का इतिहास कालक्रम की दृष्टि से उतना ही प्राचीन है जितना काव्य-रचना का। भावप्रवण क्षणों की छन्दोबद्ध आत्माभिव्यक्ति काव्य-रचना के क्षेत्र में नवीन घटना नही, परन्तु जिस अर्थ में आधुनिक काल में 'प्रगीत' शब्द का प्रयोग किया जाता है उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध अँगरेजी की 'लिरिक' शैली से और परोक्ष सम्बन्ध हिन्दी-साहित्य में उपलब्ध पद और गीति शैली से जोड़ा जा सकता है। स्वाभाविक है—जिस काव्य-विधा के लिए अंगरेजी के शब्दानुवाद की आवश्यकता प्रतीत हुई, उस विधा मे कुछ ऐसा विदेशी रंग रहा होगा जिसके लिए हिन्दी काव्य-शास्त्र में कोई ऐसा शब्द उपलब्ध न हो सका जो इस विधा की सर्वांग-व्यंजना मे समर्थ हो। दूसरे शब्दो मे भारतीय काव्य-शास्त्र में, उन काव्य-रूपों का सैद्धान्तिक विवेचन अथवा लक्षण-निरूपण किया गया जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे, अतः प्रगीत अथवा किसी समानान्तर विधा के सैद्धान्तिक विवेचन का प्राचीन काव्य-शास्त्र के इतिहास में एकान्त अभाव, इस तथ्य का प्रमाण है कि इस काव्य-रूप मे किसी ऐसी व्यावर्त्तक अथवा महत्त्वपूर्ण विशेषता की प्रतीति मनीषियों को नही हुई जो इसे अन्य मुक्तक-विधाओं से पृथक् और विशिष्ट महत्त्व प्रदान कर सके। आधुनिककाल मे जब स्वदेशी संस्कारों और विदेशी वेशभूषा के संयोग से इस काव्य-विधा का प्राचुर्य हुआ तो इसमे कतिपय पूर्ववर्ती शैलियों की समानान्तर विशेषताएँ तो परिलक्षित हुईं परन्तु किसी सर्वथा प्रचलित शैली का आधुनीकरण इस काव्य-रूप मे हो गया हो, ऐसा नही था। स्वदेशी सस्कारों की रक्षा करते हुए भी, इस विधा पर अपेक्षाकृत चमक विदेशी रंग की ही अधिक थी। अतः उन विशेषताओं की व्यंजना के लिए विदेशी मूल 'लिरिक' का अनुवाद कर, 'प्रगीत' शब्द का प्रयोग व प्रचलन समीक्षा-शास्त्र की शब्दावली में हुआ। इस काव्य-रूप की अधिकाश विशेषताएँ भी वही स्वीकार कर ली गईं, जो अँगरेजी के लिरिक साहित्य में प्राप्त होती है, अतः आधुनिककाल की इस रम्यादभुत कला और शिल्प को समझने के लिए आंग्ल साहित्य मे प्रचलित प्रगीत-विषयक मान्यताओं को जान लेना अनिवार्य ही है।

आरम्भ में प्रगीत शब्द का प्रयोग सामान्यतः ऐसी समस्त कविता के लिए किया जाता था जो वाद्य-विशेष के साथ गेय हो। वस्तुतः महाकाव्य और प्रगीत काव्य में अन्तर इसी आधार पर किया गया कि महाकाव्य समाख्यानात्मक होता है और प्रगीत-काव्य गेय।[1] प्राचीन यूनानी कविता की विभिन्न काव्य-विधाओ मे परस्पर अन्तर उनके सृजन के उद्देश्य और उत्तरदायी

1. Lyrical Poetry, a general term for all poetry which is, or can be supposed to be susceptible of being sung to the accompaniment of a

परिस्थितियों के आधार पर किया गया। प्रगीत काव्य की रचना गाने के लिए की जाती थी, तथा ये कविताएँ नियत अवसरो पर, निश्चित प्रसगो के लिए, तथा निश्चित धार्मिक या ऐहिक उद्देश्य से गाई जाती थी।[1] यूनानी प्रगीत रचना का सगीत से ऐसा अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो गया था कि कवि-वर्ग इनकी रचना गाने के लिए ही करता था, तथा अधिकांश प्रगीतकार काव्य-रचना के साथ ही सहायक लय का विधान भी कर देते थे। इस प्रकार शब्दों की लय संगीत का यथावत् निर्देश करती थी, और छन्दगत विशेषता सगीत-सम्बन्धी विशेषता की व्यजक होती थी।[2]

व्यवहार मे क्रमशः प्रगीत का स्वरूप उपर्युक्त प्राचीन और परम्परागत रूप से बहुत भिन्न हो गया। गेयता प्रगीत-रचना का अनिवार्य गुण न रहकर प्रगीत के विशेष प्रकार—गीत (song) तक सीमित हो गया। अत प्रगीत की विशेषताएँ भी अपने मूल से बहुत भिन्न हो गईं। मध्ययुगीन और आधुनिक विदेशी और हिन्दी-साहित्य मे जिस प्रगीत-काव्य की रचना हुई उसका स्वरूप प्रगीत की प्राचीन परिभाषा के आधार पर निश्चित नही किया जा सकता।

प्रगीत की परिभाषा या वर्णन दो आधारों पर सम्भव है—

(१) विशिष्ट और व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या।

(२) व्यावहारिक और सामान्य व्याख्या।

परन्तु उपर्युक्त आधारो पर निश्चित विशेषताओं मे प्राय. परस्पर विलक्षण विरोध

---

musical instrument. However, the distinction between epic and lyrical, between—what was said, and—what was sung is accepted.

Encyclopedia Britannica, page 532.

1. The division was determined by the conditions under which each of the kinds named was to be produced, spoken on the stage, recited, intoned, chanted, sung to the accompaniment of music, and, it might be, of dance. Lyric poetry was poetry written to be sung, to be sung on quite definite occasions, for quite definite occasions, for quite definite purposes, religious or secular.

Lyrical Poetry from Blake to Hardy. by H J. C. Grierson, Introduction, page 10.

2. Greek Lyrics were written expressly for song, and the poet in most cases simultaneously created the accompanying melody. Thus the rhythm of the words indicates exactly that of music, and as the metre is simple or involved, regular and stately or abrupt and impetuous, such must have been the character of the melody.

Ibid. (quoted from Farnell, Greek Lyric Poetry—1891) Page 11.

दृष्टिगत होता है। पहले प्रकार की व्याख्या का आरम्भ प्रगीत की प्राचीन परिभाषा से हुआ—जिसमे उसे गेय रचना माना गया, और दूसरी का आधार विशेष वर्ग के कवियो द्वारा रचित प्रगीत काव्य के सामान्य लक्षण है—विशेष रूप से रोमाटिक कवियो द्वारा रचित प्रगीत काव्य के।

पहले प्रकार के प्रगीतों में स्वभावतः ऐसी कविता के समस्त रीतिबद्ध लक्षणों को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया, क्योकि गायक या वाचक-स्वर के मधुर उच्चारण पर बहुत कुछ निर्भर करता था कि इस विशिष्ट अर्थ मे उन्हे 'लिरिक' (वह जो 'लायर' नामक वाद्य पर गाया जा सके) कहा भी जा सकता था या नही। ये प्रगीत प्रायः सक्षिप्त होते थे। इनकी रचना सुनाने के लिए की जाती थी अतः इनमे सार्वजनिक विशेषताएँ हाती थी। इन प्रगीतो मे व्यक्त भावनाएँ चाहे कितनी गम्भीर और अकृत्रिम हों परन्तु वे इस प्रकार की होती थी, अथवा उनका प्रयोग इस रूप में किया जाता था, कि सभी श्रोताओं तक उनका प्रेषण सम्भव हो सके। अर्थात्, कविता का विषय—चाहे भाव हो अथवा भावो को उद्बुद्ध करने वाली परिस्थिति, उन समस्त तत्त्वो से मुक्त होना चाहिए जो व्यक्ति से उसका इतना अन्तरंग और घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर दे कि उनकी अभिव्यक्ति से कवि की एकान्तिकता पर आघात पहुँचे। अतः इन व्यक्तिगत भावों अथवा स्थितियो का कुछ दूर तक समाजीकरण कर दिया जाता था। इसी कारण, तथा इनमे काव्य-गुण के साथ सगीत की विशेषताओं के विद्यमान होने के कारण पाठ्य कविता की भाँति अर्थ-गाम्भीर्य होने पर भी चिन्तन का अवकाश कम रहता था, अतः इनकी भावना और अप्रस्तुत-योजना प्राय. सरल और स्पष्ट होती थी। इस प्रकार के प्रगीतो में प्रत्यक्ष रूप मे कोई मौलिकता नही होती तथा इनकी रचना विषयीप्रधान रूप मे नही की जाती। इनके रचयिता भी प्रायः अज्ञात रहते है। यह प्रगीत का वह प्राचीन स्वरूप है जिसकी व्याख्या शब्द के व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ और उपलब्ध सामग्री के आधार पर की गई।

दूसरे प्रकार के प्रगीत, अवैयक्तिक गीतो से भिन्न, वह रचना होती है जिसमे पाठक किसी अत्यन्त तीव्र, व्यक्तिगत एव आत्मीय अनुभूति के प्रकाशन की सम्भावना करता है। ऐसे प्रगीतो की रचना प्रायः गाने के लिए नही, पाठ्य रूप मे की जाती है। इस प्रकार की रचनाओं मे बाह्य सगीत-विधान के प्रयत्न अत्यल्प हुए। उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ से वर्तमान समय तक आंग्ल साहित्य मे इसी ढग की प्रगीत-रचना कवि-वर्ग द्वारा बहुशः की गई, परन्तु सत्रहवी शताब्दी से पूर्व इस प्रकार के प्रयोग बहुत कम हुए। इन प्रगीतो मे शब्द-ध्वनि की दृष्टि से उच्च कोटि की संगीतात्मकता का समावेश होता है, परन्तु इनकी अभिव्यजना व रूप-आकार, विषय और मूलभावना का सहज अनुवर्ती होता है। ये प्रायः गेय प्रगीत से लम्बे होते है, क्योकि इनका विषय अन्तरग और भावनाएँ सूक्ष्म होती हैं, जिनकी सचेष्ट और बहुधा विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा होती है। इन प्रगीतों की अभिव्यंजना अपूर्व और अप्रस्तुत-योजना विलक्षण होती है।

उपर्युक्त दोनो प्रकार की प्रगीत-शैलियो मे बहुत-सी समानताएँ है। ऐसा स्वाभाविक भी है, क्योकि अपने समस्त प्रत्यक्ष विरोधों के होते हुए भी, दूसरे प्रकार की प्रगीत-शैली का विकास सीधे और अनिवार्य रूप से पहली से हुआ है। गीत में सगीतजन्य सक्षिप्तता के कारण आख्यान, अथवा किसी स्थिति-विशेष का विस्तृत विवरण नही हो सकता, वह केवल सघन अनु-

भूति का वाहक होता है। अतः भावना या अनुभूति प्रगीत का सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्त्व है। इसलिए कवि प्रगीत को भावनाओं की अभिव्यक्ति का उपयुक्त वाहक पाकर, भाव-सामग्री का इतना विकास और विस्तार करता है कि वह सूक्ष्म, जटिल और प्रायः अन्तरग और व्यक्तिगत तथा अपने समग्र रूप में गेयता की दृष्टि से अनुपयुक्त हो जाती है। इस विधा के, संगीत से मूल सम्बन्ध को स्मरण रखते हुए वह प्रयुक्त भाषा की सगीतात्मकता का तब तक विकास करता है जब तक उसकी भाषा अत्यन्त समृद्ध, स्वत. पूर्ण, सन्तोषप्रद और परिणामस्वरूप गाने की दृष्टि से पुनः अनुपयोगी नही हो जाती। कुछ कवि भाषा के सगीत की अपेक्षा भावतत्त्व का अधिक विकास करते है, और कुछ विषय-वस्तु की अपेक्षा भाषा की नादमयता का।

हिन्दी के आधुनिकयुगीन प्रगीत काव्य पर दूसरे प्रकार के प्रगीत काव्य का प्रभाव रहा है। उपर्युक्त कतिपय विशेषताओं—भावना की प्रधानता, आत्मकेन्द्रित दृष्टिकोण, अभिव्यजना-कौशल मे विलक्षण बिम्बविधान, भाषा का सगीत, नादमयता आदि के अतिरिक्त प्रगीत की कुछ अन्य विशेषताओं का निर्देश प्रायः किया गया है, जिनका उल्लेख अप्रासगिक न होगा।

प्रगीत स्वत.पूर्ण रचना होती है जिसमें केवल भावना का प्राधान्य ही नही होता, वह किसी अनुभूति-विशेष का अखण्ड प्रतिबिम्ब होता है। हर्ष, शोक, आह्लाद, उत्कण्ठा, त्याग, प्रेम आदि किसी भी अमिश्र भाव की उद्वेगपूर्ण पुकार प्रगीत के माध्यम से व्यक्त होती है।[1] प्रगीत-रचना की प्रेरक अनुभूति की अखण्डता पर विद्वानो ने बारम्बार बल दिया है। हम प्राय किसी भी छोटी कविता को प्रगीत कह देते है, परन्तु अपने मूल रूप में इसका अभिप्राय ऐसी कविता से होता था जो स्वर-साधन के लिए पर्याप्त होती थी, तथा जिसे क्षणिक आनन्दानुभूति के लिए गाया जाता था। कवि के दृष्टिकोण से प्रगीत को परिभाषा—वह कविता जिसमें सरल अथवा अमिश्र भावस्थिति का समावेश होता है, वह कविता जिसमें किसी अबाधित चित्तवृत्ति अथवा प्रेरणा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है—कहकर की जा सकती है।[2]

सक्षिप्त आकार प्रगीत की प्रमुख विशेषता है। किसी क्षणिक अनुभूति का वाहक होने के कारण प्रगीत के लिए आकार-विस्तार सम्भव भी नहीं है। प्रगीत मे वर्ण्य और आकार दोनों

---

1. The total poem, the poem which is also a single image, is most often a lyric—a single agonised cry of joy, delight, sorrow, longing, renunciation, love. .

   Poetic Process—George Whelley, page 158

2. We often call the short poem a lyric, which meant originally a poem short enough to be set to music and sung for a moment's pleasure From the poet's point of view, we might define lyric as a poem which embodies a single or simple emotional attitude, a poem which expresses directly an uninterrupted mood or inspiration.

   Forms in Modern Poetry—Herbert-Read, page 62.

वर्तमान होते है परन्तु सहज रूप मे, उसका विस्तार इतना सीमित और अनुभूति इतनी तात्कालिक तथा अन्य काव्य-रूपो की तुलना मे सरल होती है कि हमे प्रयुक्त समय का अनुभव नही होता। काव्य सृजन-प्रक्रिया मे आकार और विचार, भाव और अभिव्यक्ति एकाकार हो जाते है।[1]

प्रगीत के सम्पूर्ण आकार के साथ कुछ विद्वानो ने पृथक् पक्तियो मे भी सक्षेपण की प्रवृत्ति की ओर इगित करते हुए, सगीत से सम्बन्ध को इस विशेषता के लिए उत्तरदायी ठहराया है। भले ही प्रगीतकार स्वय उसे न गाए, अथवा उसकी स्वर-साधना का अभिलाषी भी न हो, परन्तु फिर भी उसके मन मे यह भावना विद्यमान रहती है कि प्रगीत-रचना गाने के उद्देश्य से की जाती है। वह स्वय गेय है, यही छोटी पक्तियों मे रचना का कारण है।[2] क्योकि नियमतः प्रगीत आकार मे छोटा होता है, अत उसकी पक्तियो मे विलक्षण गति उत्पन्न हो जाती है। कहा जा सकता है कि प्रगीत मे तीर की-सी सीधी उडान के समान भावना की वह अन्त स्फूर्त दीप्ति होती है जो स्वय सगीतात्मक होती है।[3]

आधुनिक कवियो द्वारा रचित प्रगीतो मे छन्दाकार को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। निर्दोष प्रगीतो मे छन्द वह साधन होता है, जिसके अनुरूप शब्दो को ढालना होता है।[4]

प्रगीत की भूल भावना के विषय मे एक विशेषता का स्पष्टीकरण प्रायः विद्वानो ने किया है। यद्यपि प्रगीत का मूल तत्त्व व्यक्ति-तत्त्व होता है, परन्तु इस बात को भूलना उपयुक्त नहीं कि ससार के अधिकांश महत् प्रगीत काव्य का स्थान साहित्य मे इस कारण है कि उनमे नितान्त व्यक्तिगत व विशिष्ट की अपेक्षा आदर्श मानवीय मूल्यों का समावेश है। प्रत्येक पाठक उनमे ऐसे अनुभवो और भावनाओ की अभिव्यजना पाता है जिनका वह स्वय समभोक्ता हो सकता

---

1 Form and conception are present in the lyric, but they are unobtrusive, the duration of the poetry is so short, the emotion so immediate (and relatively simple) that we do not perceive (it is the poet's business to conceal) the time-structure. Form and conception are fused in the act of creation Ibid, page 66.

2 It may be, as we have said, that one does not sing it oneself, or with it to be set to music, nonetheless one feels that it is intended to be sung. It sings itself. Hence the shorter lines.
Lyrical Poetry from Blake to Hardy—H. J. C. Grierson
—Introduction, page 14.

3. Since as a rule, the lyric is short, its lines attain unusual speed and direction It may be said that a lyric is a direct, arrow like flight, a spontaneous flash of emotion which makes its own music.
Encyclopedia Britannica—Volume 14, page 532.

4 In a perfect lyric by a modern writer the instrument is the metrical form, to which the words have to adapt themselves.
Ibid, page 533.

है। इसलिए ऐसी स्थिति मे हमे कवि का स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न नही करना पड़ता क्योकि वह स्वयं पहले ही हमारा स्थान ग्रहण कर लेता है।[1]

प्रगीत का विवेचन करते हुए हडसन ने प्रगीत काव्य के मूल्याकन के लिए कुछ मानदण्ड निश्चित किए है जो उसकी विषय और शैलीगत विशेषताओ के व्यजक है। उनके अनुसार प्रगीत को श्रेष्ठ स्वीकार करने के लिए यह आवश्यक है कि हमें सन्तोष हो जाय कि उसमें किसी बहुमूल्य अनुभूति का समावेश है। हमारे मन पर उसकी हार्दिक अभिव्यक्ति का प्रभाव भी अवश्य पडना चाहिए। उसकी भाषा और बिम्ब-विधान मे केवल सौन्दर्य और सजीवता ही नही बल्कि वह औचित्य और अनुकूलता भी हो जो सब कलाओ के विषय और अभिव्यक्ति के बीच अपेक्षित है। साथ ही साथ शुद्ध प्रगीत में अभिव्यक्ति के लिए विशेष भाव या अनुभूति को अपनाने से संक्षेप, और घनत्व के कारण सामान्यत: भावात्मक शक्ति की दृष्टि से सिद्धि होती है, तथा अतिविस्तार प्राय: निश्चित रूप से प्रभाव की दृष्टि से हानिकारक होता है।[2]

प्रगीत की अब तक दी गई परिभाषाओ और विवेचन के आधार पर उसके मूल तत्त्वो का सक्षेप मे निरूपण किया जा सकता है। प्रगीत की विशेषताएँ इस प्रकार है—

१. आत्मपरक दृष्टिकोण या वैयक्तिकता—प्रगीत काव्य विषयीप्रधान होता है, उसमे व्यक्तित्व की प्रधानता होती है। कवि का हर्ष-शोक, आशा-निराशा, क्षोभ-उत्साह, उत्कण्ठा-प्रेम, आदि हार्दिक अनुभूतिया प्रगीत के माध्यम से व्यक्त होती हैं। व्यक्ति तत्त्व से तात्पर्य किसी ऐसे व्यक्तिवैचित्र्य से नही जो सर्वथा विशिष्ट हो, बल्कि ऐसी अनुभूति से है जो व्यक्तिगत होते हुए भी सार्वजनिक हो सके। साधारणीकरण के द्वारा पाठक-मात्र उसका समभोक्ता बन सके, किन्तु उसमें प्रधानता आत्मानुभूति, निजी राग-विराग की हो, वस्तु तत्त्व की नही।

---

1. Though the essence of lyrical poetry is personality, it must yet be remembered that the majority of the world's great lyrics owe their place in literature very largely to the fact that they embody what is typically human rather than what is merely individual and particular, and that thus every reader finds in them the expression of experiences and feelings in which he himself is fully able to share. In such cases we do not have to put ourselves in the poet's place because he has already put himself into ours.

   An Introduction to the Study of Literature—W. H. Hudson, page 97.

2. .. ...., for a lyric, to be good of its kind, must satisfy us that it embodies a worthy feeling; it must impress us by convincing sincerity of utterance; while its language and imagery must be characterised not only by beauty and vividness, but also by propriety, or the harmony which in all art is required between the subject and its medium. It will also be found that the pure lyric, having for its purpose the expression of some single mood or feeling, commonly gains much in emotional power by brevity and condensation, and that over elaboration is almost certain to entail loss in effectiveness. Ibid, page 97.

२. **अन्त स्फूर्त अभिव्यक्ति**—प्रगीत मे किसी विशेष मनोदशा का उच्छलन होता है। कोई तीव्र अनुभूति जब कवि की चेतना को अन्तर्मुखी बना देती है, और वह उसी भावाविष्ट मनःस्थिति की अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता है, तब वह आवेगदीप्त प्रगीत के रूप में शाब्दिक माध्यम के द्वारा अपनी मनोभावनाओ की अवतारणा करता है। इसी विशेषता को वर्डस्वर्थ ने काव्य-मात्र की परिभाषा बना दिया था।

३. **हार्दिकता या भावमयता**—प्रगीत-रचना के लिए अनुभूति की सचाई और मार्मिकता सर्वथा अनिवार्य है। प्रगीत-रचना के मूल मे भावाविष्ट चित्तवृत्ति की अपेक्षा है, परन्तु प्रगीत की प्रेरणा सर्वथा बौद्धिक या निपट काल्पनिक नही हो सकती। यदि सहज अन्त प्रेरणा का प्रगीत मे अभाव होगा तो उसमे प्रभावक्षमता नही आ पाएगी। उसके लिए निश्छल भावना, हार्दिक अनुभूति और उसकी निष्कपट अभिव्यक्ति अभिप्रेत है।

४ **अखण्ड अनुभूति**—प्रेरक अनुभूति की अखण्डता भी प्रगीत-काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। प्रगीत मे जिस विशेष सुख-दुखात्मक अनुभूति का अकन होता है वह अखण्ड और अभिन्न होती है। अनुभूति की विविधता प्रगीत मे अलभ्य होती है। वह कवि के मन मे होने वाली एक प्रतिक्रिया, उसकी एक अनुभूति का परिणाम होता है। इस अनुभूति मे उतार-चढाव तो हो सकते है वैविध्य, सघर्ष एवं विस्तार नही होता।

५. **अन्विति**—अनुभूति की अखण्डता से ही प्रगीत मे रागात्मक अन्विति का समावेश होता है। प्रगीत की रचना एक या अनेक छन्दो मे हो सकती है। उसमे एक विशेष अथवा एकाधिक खण्ड-चित्रो का अकन किया जा सकता है, परन्तु यह खण्ड-चित्र एक ही मूल भावना से अनुप्राणित होते है। प्रगीत की दृश्यमान विविधता एक ही केन्द्रवर्ती भावना से आबद्ध होती है। इसी विशिष्ट रागात्मक अनुभूति के पोषण के लिए इनकी रचना होती है। अत: रागात्मक अन्विति प्रगीत का अनिवार्य गुण है।

६ **संक्षिप्त आकार**—प्रगीत की मूल प्रेरक भावना इतनी क्षणिक, आवेगदीप्त और तात्कालिक होती है कि उसमे नियमित व्यवस्था और विस्तार का अवकाश कवि को नही मिलता। यदि वह आकार का विस्तार करता है तो कल्पना या चिन्तन का आश्रय लेकर। प्रगीत की प्रेरक भावाविष्ट मन स्थिति बहुत समय तक स्थायी नही रह सकती, अत: इसका वाहक भी आकार मे सक्षिप्त होता है।

७ **गति-प्रवाह**—आवेग, अन्त:स्फूर्ति, और सक्षिप्त आकार के कारण प्रगीत की पक्तियो मे अद्भुत गति और प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। उसमे एक प्रकार की द्रवणशीलता, अत: हृदय की द्रुति का गुण होता है। प्रगीत की पक्तियाँ अप्रतिहत वेग से पाठक के मन को प्रभावित करती हैं।

८ **संगीतात्मकता**—सदैव स्वर-ताल आदि के बाह्य सगीत की नही, परन्तु भाव के आन्तरिक सगीत और भाषा के शब्द-सगीत की अवस्थिति प्रगीत में अनिवार्य है। शब्द सगीत से यहाँ अभिप्राय स्वर और व्यजन-मैत्री, भावानुकूल पदावली व सुचारु शब्द-विन्यास से भाषा मे भावापेक्षी अनुरणन या नाद-गुण उत्पन्न करने से है। भाषा की यह नक्काशी प्रगीत काव्य मे प्रभाव की दृष्टि से हितकारी होती है।

६. कलात्मक-शैली—प्रगीत में प्राय: किसी बहुमूल्य अनुभूति का समावेश होता है, अत: उसकी अप्रस्तुत-योजना प्राय: अपूर्व, सौन्दर्योन्मेषिनी और चमत्कारिक होती है। चमत्कार से यहाँ अभिप्राय कुतूहलवर्धन या मनोरजन से नही, प्रभावक्षमता से है। प्रगीत की शैली की अलंकृति सहज, भावप्रेरित, विलक्षण अत: प्रभावक्षमा होती है। अनुभूति की वक्रता और चमत्कार से अभिव्यजना मे चमत्कृति स्वय उत्पन्न हो जाती है।

प्रकार की दृष्टि से प्रगीत काव्य के विभिन्न आधारों पर अनेक भेद किये गए हैं। अधिकाश भेद विषय-भेद के आधार पर व कुछ आकारगत विशेषता की दृष्टि से किये जाते है। हमारा सम्बन्ध मुख्यत. रूप-विधा से है और इस दृष्टि से प्रगीत के निम्नाकित प्रकार उपलब्ध है :

१. सम्बोधन गीति (Ode)
२. शोक-गीति (Elegy)
३. पत्र-गीति (Epistle)
४ गीत (Song)
५ चतुर्दशपदी (Sonnet)

उपर्युक्त प्रकार, विशेष शैली मे लिखे गए प्रगीतो के है। परन्तु इनके अतिरिक्त आधुनिक काव्य मे एक विपुल राशि ऐसी गीतियो की प्राप्त होती है जिसमे जीवन की किसी सुख-दु:खात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति उपर्युक्त पद्धतियो से भिन्न सामान्य शैली मे की गई है। इन कविताओं में वे सभी विशेषताएँ वर्तमान है जिनका निर्देश पिछले पृष्ठो मे किया गया। जिन प्रगीतों में उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त कोई अन्य रचनागत या शिल्पगत वैशिष्ट्य वर्तमान है, उनका अन्तर्भाव उपर्युक्त प्रकारों में से किसी एक के अन्तर्गत किया जा सकता है। इन विविध भेदो मे से केवल सॉनेट मे नितान्त आकार-सम्बन्धी विशेषता है, शेष का परस्पर व्यावर्तन शिल्प या रचना-शैली की विशेषता के आधार पर किया जाता है।

आत्माभिव्यजक भावप्रवण गीतियो की रचना द्विवेदी-युग से ही आरम्भ हो गई थी, परन्तु इस शैली का विशेष उत्कर्ष, छायावाद-वर्ग के कवियो की रचनाओ मे, और उसके उपरान्त स्वच्छन्द प्रेम-धारा के कवियो मे मिलता है। यहाँ तक कि प्रयोगवाद का बुद्धिजीवी कवि भी अपनी लक्ष्य-सिद्धि मे अशत. इस प्रभाव से खण्डित हुआ है।

इन प्रगीतो मे मुख्य रूप से विगत की स्मृतियाँ, वर्तमान की अनुभूतियाँ और भविष्य के मोहक स्वप्न व्यक्त हुए है। इनके विषय का वृत्त अधिकतर व्यक्ति और उसके सम्बन्धों से उद्भूत निजी अनुभूतियो से आगे नहीं जाता। हाँ, कभी कवि किसी सामाजिक या राजनैतिक प्रतिबन्ध के कारण स्वय अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति न कर किसी अन्य जड या चेतन तत्त्व पर अपनी भावना का आरोप कर देता है, अथवा प्रतीको की उद्भावना कर उन्हे माध्यम बनाता है, अथवा कुछ काल्पनिक पात्रो की सृष्टि कर उनकी वाणी को अपनी अनुभूति का वाहक बना देता है। राष्ट्रीय कविताओं में अवश्य भावना का यह परिवेश कुछ व्यापक हो जाया करता है और व्यक्ति, व्यक्ति के, या समाज के प्रति अपनी अनुभूति को विस्तृत कर सम्पूर्ण देश या राष्ट्र को उसके कलेवर में समेट लेता है, परन्तु यह भी राष्ट्र या जन-जीवन के प्रति व्यक्ति की

भावनाओं की ही अभिव्यक्ति होती है।

भावप्रधान कविताओं में उत्तरोत्तर एक निश्चित परिवर्तन लक्षित होता है। द्विवेदी-युग का कवि अपनी अभिव्यजना में अधिक स्पष्ट किन्तु औपचारिक है। कविता में प्रसाद गुण और स्पष्टता तो है, किन्तु उसमें अन्त स्फूर्त उद्रेक और आत्मद्रव नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि जानता है कि अमुक स्थिति में ऐसा होता है अत वर्णन करता है, इसलिए नही कि वह ऐसी अनुभूति कर रहा है। कभी-कभी इसी कारण अनगढता आ गई है भावप्रेरित वक्रता नही। प्रिय को 'उपालम्भ' रूप मे रचित निम्नलिखित पक्तियो मे, किसी प्रकार का वाग्वैदग्ध्य, वचन-भगिमा या वक्रता नहीं, स्पष्टता और अनगढता मिलेगी :

रुठोगे, तो तुम्हें मनाना भी आता है,
बिगड़ोगे तो तुम्हें बनाना भी भाता है।
आओगे, तो तुम्हें हृदय मे बिठलावेंगे,
आओगे जो नहीं, ढूंढ तुमको लावेंगे।[1]

उपालम्भ ही नहीं, आत्मोद्गार और प्रेम-निवेदन भी द्विवेदी-युग के कवियों ने उपर्युक्त शैली मे ही किया है। द्विवेदी-युग मे गीति काव्य का पुन सृजन और नवीन दिशा-परिवर्तन लगभग सन् १९१४ के आसपास हुआ। जिस काव्यधारा का चरम शृंगार बाद में छायावाद के कवियो की लेखनी से हुआ उसका आरम्भ इसी समय मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय और बद्रीनाथ भट्ट आदि के द्वारा हो रहा था। परवर्ती कवियों द्वारा गृहीत गीतिकाव्य के सभी उपकरणो का समीकरण इन कवियों द्वारा कर दिया गया था। स्वानुभूति की अभिव्यजना, भाषा में सरसता व सगीत, छन्दों में पर्याप्त स्वतन्त्रता सभी का परिचय इनकी गीतियों में मिलता है। कुछ बाह्य परिस्थितियों ने इस काव्य-रूप के उत्तरोत्तर विकास में सहयोग दिया। अँगरेजी साहित्य से प्रत्यक्ष सम्पर्क, ग्रे, वर्डस्वर्थ आदि कवियों की रचनाओं के अनुवाद, 'सरस्वती' मे प्रकाशित होने वाले बगला की कविताओ के अनुवादो के माध्यम से अग्रेजी का परोक्ष प्रभाव, और 'गीतांजलि' का प्रकाशन—ये सभी परिस्थितियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आगामी काव्य-धारा का पथ-निर्माण करती रही और परिणामत: धीरे-धीरे उन सभी विशेषताओं से युक्त हो कर जो गीतिकाव्य का प्राण है, नवीन शैली के गीतिकाव्य का स्वरूप निर्माण हुआ। अँगरेजी भाषा की लाक्षणिकता और प्रतीक-उद्भावना का प्रभाव भी भाषा पर सगीतात्मकता मे सारस्य के साथ नयन-गोचर होने लगा था। परवर्ती छायावादी कवि से अब भी गुप्तजी की कला मे बहुत अन्तर था। गुप्तजी ने 'झंकार' की रहस्यवादी प्रगीतियों में सूक्ष्म भाव-संवेदनों के स्थान पर जीवन की परिस्थितियो के मध्य हृदय-सौन्दर्य का उद्घाटन ही किया है। आत्माभिव्यंजन इस काव्य का प्रतिपाद्य और ईश्वर-आराधन अभिप्रेत है। गुप्तजी की भक्तिमूलक रहस्यभावना का माध्यम प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, परन्तु उन्होंने सूक्ष्म सौंदर्य की चित्रोपम प्रतीक-व्यजना नही करके व्यक्त सौन्दर्य का भावनाशील चित्रण किया है। 'झकार' के गीतो में विकासोन्मुख गीति-कला का आरम्भिक रूप ही मिलता है। अपने समसामयिक प्रगीतों में उसका स्थान

---

१. पराग—रूपनारायण पाण्डेय, पृ० १००

विशिष्ट और महत्त्व ऐतिहासिक है, परन्तु पद-लालित्य, शब्दों के माध्यम से अर्थों की झंकृति, और सौन्दर्यवादी अभिव्यजना—एक शब्द मे प्रौढ शिल्प का उसमे अभाव है। क्रमश: इन कविताओं में अधिक मर्मस्पर्शिता और अनुभूति की समृद्धि व अन्त:स्फूर्ति तथा समृद्ध कला की वृद्धि हुई। अनुभूतियों के बाह्य, क्रियात्मक रूपों—उद्दीपन और अनुभावो के वर्णन और व्याख्या की अपेक्षा ये कवि अन्तर्वृत्तिनिरूपक अधिक हो गए, अत: छायावाद की कविता कही अधिक भाव-समृद्ध है। उसमे इसी कारण वर्णन नही, चित्रण, व्याख्या, और व्यंजना मिलती है, और इस भावाभिव्यजना की पद्धतियाँ भी अनेकानेक, अधिक चमत्कार और वैदग्ध्यपूर्ण है। कविता मे लक्षणा-व्यजना, प्रतीकात्मकता, जड मे चेतन का आरोप, अचर जगत् मे मानव जीवन के छाया-स्पर्शों मे भाव-व्यजना आदि, अनेक नूतन पद्धतियाँ छायावाद के साथ प्रचलित हुई। छायावादी कवि की प्रिय को उपालम्भ-रूप मे रचित निम्नाकित पक्तियाँ उपर्युक्त विशेषताओं को स्पष्ट कर, पीछे दिये गए उदाहरण से अन्तर और शैली-परिवर्तन को स्पष्ट कर सकेगी :

निधरक तूने ठुकराया तब
मेरी टूटी मृदु प्याली को,
उसके सूखे अधर मांगते
तेरे चरणों की लाली को।
जीवन-रस के बचे हुए कन,
बिखरे अम्बर में आंसू बन
वही दे रहा था सावन घन—
वसुधा की इस हरियाली को।[1]

इन कवियों ने जीवन के दु ख और सुख दोनों को समान रूप से अपनी गीतियों का विषय बनाया, परन्तु वेदना ने उल्लास से कुछ अधिक स्थान पा लिया है। प्रसाद और महादेवी की कविता मे यह वेदना कण-कण मे व्याप्त है। प्रसाद ने उसकी आवेगमय अभिव्यक्ति की है, और महादेवी ने उसे स्वीकार कर समझौता कर लिया है। 'निराला' मे जीवन की पीडाओ से, असफलताओं से चोट खाया हुआ मन कविता मे आक्रोश और विद्रोह कर उठा है। ये मन को जलाने और तपाकर निखारने मे उतना विश्वास नही करते। इन कवियों के उपरान्त प्रेम की प्रत्यक्ष और स्वच्छन्द अभिव्यक्ति हालावाद के प्रवर्त्तक कवि 'बच्चन' और उनके अनुयायी कवियो मे मिलती है। इन कवियो मे अधिक प्रत्यक्षता तथा जीवन की अनुभूतियो को उनके यथावत् रूप मे व्यक्त करने की प्रवृत्ति है। पूर्ववर्ती कवियों के रचना-काल में विद्यमान सामाजिक नैतिक प्रतिबन्ध अब उतने ही सकीर्ण, कठोर रूप मे वर्तमान न थे, अत: वे छायावादी कला की रेशमी जाली उठाकर अधिक वास्तविक और प्रकृत रूप में सामने आए। इन्होंने न प्रेम के उन्नयन का प्रयत्न किया, न उसे बौद्धिक व कल्पनात्मक रहस्यवाद बनाने का, और न दु.ख को काम्य मानकर जीवन मे उसकी सैद्धान्तिक स्वीकृति की। वे जिस रूप मे जिस बात का अनुभव करते है, उसी रूप मे प्रत्यक्ष, बिना किसी दुराव-छिपाव के पाठक के सम्मुख रख देते

---

१. लहर—प्रसाद, पृष्ठ ४२

हैं। इस प्रकार वे सुख-दुख का खेल खुलकर खेलते रहे, और अपने पाठक को उसमें समभागी बनाते रहे। इसे पाठक के प्रति एक प्रकार की ईमानदारी माना जा सकता है। इस प्रवृत्ति ने इनकी अभिव्यक्ति को प्रभावित किया। इन्होने न प्रतीको का आश्रय लिया और न अतिशय लक्षणा-व्यंजना और वाग्विदग्धता का और न अपनी भावनाओ का बोझ जड-चेतन प्रकृति को वहन करने के लिए बाध्य किया। इनकी कविता में अनुभूति का प्रकृत, वास्तविक और मासल रूप, तथा अभिव्यक्ति मे भावावेग, आत्मद्रव और प्रसादमयता मिलती है।

प्रगीत काव्य की इस प्राप्त राशि मे कही मिलन (वास्तविक व काल्पनिक) का उल्लास और आत्मविभोरता है तथा अन्यत्र विरह की वेदना, व्याकुलता, आत्मविस्मृति और तन्मयता। पहले से दूसरे प्रकार की कविताएँ मात्रा मे अधिक है। असफल प्रेमजन्य सताप ये कवि सिद्धि और सफलता की अपेक्षा अधिक सहते रहे। उपालम्भ गीतियाँ भी इन्होने पर्याप्त लिखी है।

एक तीसरे प्रकार की भावसकुल गीतियाँ किसी वर्तमान पदार्थ से उद्दीप्त कवि की भावनाओ अथवा किसी विगत प्रसग की पुन: स्मृति के रूप में लिखी गई। प्रिय अथवा किसी विगत मधुर घटना से सम्बद्ध कोई पदार्थ या प्राकृतिक तत्त्व, मन मे स्थित स्थायी भाव को उद्दीप्त कर देता है, और कभी उसी उद्दीपक विषय को सम्बोधित कर, तथा कभी केवल अपनी मनोभावनाओ का अकन कर, कवि हृदय का यह भार हलका कर लेता है।

सर्वत्र कवि का दृष्टिकोण व्यक्तिगत राग-विराग का व्यजक नही होता। कभी-कभी वह किसी ऐतिहासिक पात्र, प्राकृतिक तत्त्व या प्रसग के प्रति अपनी भावात्मक प्रतिक्रिया का वर्णन करता है, और कभी देश-काल से विशिष्ट और आबद्ध पात्रो से किसी प्रसग-विशेष मे भाव-तादात्म्य करने का प्रयत्न भी करता है। पहले प्रकार की कविताओ के उदाहरण रामकुमार वर्मा की 'फूलवाली', 'नूरजहाँ', 'चट्टान' तथा प्रसाद की 'पेशोला की प्रतिध्वनि' आदि रचनाओ मे मिल जाते हैं—

फूल-सी हो फूलवाली।
किस सुमन की साँस तुमने आज अनजाने चुरा ली।
जब प्रभा की रेख दिनकर ने
गगन के बीच खींची।
तब तुम्हीं ने भर मधुर
मुस्कान कलियाँ सरस सींची,
किन्तु दो दिन के सुमन से
कौन सी यह प्रीति पाली ?[1]

कभी-कभी इस प्रकार के प्रसगो में आख्यान तत्त्व भी सिमट आया है। उदाहरण के लिए 'चट्टान' मे कवि को शापित ऋषि-पत्नी अहल्या का स्मरण हो आता है। दूसरे प्रकार के उदाहरण कवि प्रसाद की 'लहर' मे सग्रहित कविताओ 'अशोक की चिन्ता' तथा 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' मे मिल जाते है। कवि ने इन दो इतिहासप्रसिद्ध वीरों के, प्रसग-विशेष मे उत्पन्न हृदय-

---

१. कवि भारती—रामकुमार वर्मा, पृ० ४६६

गत विप्लव और विक्षोभ को व्यक्त किया है। ऐसा प्रायः तभी होता है, जब वर्ण्य-विषय का सम्बन्ध इतिहास-पुराण के तथ्यपरक प्रसंगों से होता है, परन्तु इनमें भी कवि की दृष्टि व्यक्ति-निष्ठ होती है वस्तुनिष्ठ नहीं। कवि ऐतिहासिक पात्रों के बाह्य जीवन में घटित होने वाली वस्तुरूप घटनाओं का नहीं, उनकी मानसिक और हृदयगत सक्रियता का वर्णन करता है। केवल अपने हृदय की बात न कहकर किसी अन्य व्यक्ति के हृदय की बात कहता है। स्वभावतः ऐसा वह उस पात्र के साथ भावतादात्म्य स्थापित करके करता है। परन्तु काव्य-रूप की दृष्टि से ये कविताएँ गीति-काव्य के अन्तर्गत ही आयँगी।

परिमाण की दृष्टि से जितनी अधिक रचना आधुनिक युग मे प्रगीत काव्य की हुई उतनी किसी अन्य काव्य-रूप की नहीं। द्विवेदी-युग से इस काव्य की परम्परा विवेच्य साहित्य की अन्तिम कड़ी—प्रयोगवाद तक अनाहत, अबाधित रूप से चली आई है। छायावाद के कवि तो गीति कवि थे ही, परन्तु इस धारा के विरोध मे जिन वादों का जन्म हुआ, उनके कवि भी प्रगीत-रचना के आकर्षण से अपने को नही बचा सके। यहाँ तक कि 'तारसप्तक' के 'अन्वेषी' कवियो ने भी जहाँ नई राहों के अन्वेषण का प्रयत्न किया, वहाँ इस पुरानी राह का भी लीक-लीक अनुसरण किया है। नये खेवे के इन कवियों की अनेक रचनाएँ प्रगीत के सुन्दर उदाहरण है। कही तो भाव के संगीत के साथ कवि ने बाह्य संगीत के सुकर विधान को दृष्टि मे रखकर रचना की है :

मैं उनका ही होता, जिनसे
मैंने रूप भाव पाए हैं।
वे मेरे ही हिए बँधे हैं,
जो मर्यादाएं लाए हैं।[1]

अन्यत्र इतनी नियतलयता व छन्द-बन्धन तो नहीं परन्तु आत्मद्रव, अन्त.स्फूर्ति और भाव-संगीत निश्चित रूप से मिलता है। इसके लिए बहुत दूर तक मुक्त छन्द का प्रयोग उत्तर-दायी है :

अनजाने चुपचाप अधखुले वातायन से
आती हुई जुन्हाई-सा ही
तेरी छवि का सुधि-सम्मोहन
आज बिखरकर सिमट चला है मेरे मन में।
छलक उठा है उर का सागर
किसी एक अज्ञात ज्वार से,
किन सपनों के मदिर भार से,
किन किरनों के परस प्यार से,
पल भर में यों आज अचानक।[2]

इस प्रकार की प्रगीतियो के उदाहरण 'तारसप्तक' में संकलित सातो कवियों की

---

१. तारसप्तक—गजानन मुक्तिबोध, पृ० २०
२. तारसप्तक—नेमीचन्द्र जैन, पृ० २६

कविताओं में प्राप्त हो जाते हैं।

कुछ प्रगीतियाँ कवियों ने प्रथम पुरुष में अपनी बात के रूप में न लिखकर प्राकृतिक उपादानों पर अपनी मनसा का आरोप कर पराभिव्यक्ति के रूप में लिखीं। ऐसी कविताओं में कवि प्रकृति के प्रति केवल द्रष्टा का दृष्टिकोण न रखकर, उस पर चेतना का आरोप करता है, और तदुपरान्त उनके साथ समानानुभूति और भाव-विनिमय करता है। इस प्रकार कवि की आत्माभिव्यक्ति का माध्यम ये प्राकृतिक उपादान बन जाते हैं। कभी-कभी इस शैली का अवलम्बन लेने से कविता मे अद्भुत नाटकीयता का समावेश होता है। कवि उदयशंकर भट्ट की 'दीप कहता अँधेरे से', और 'पूछती मँझधार कवि से' इसी शैली में रचित सुन्दर गीतियाँ हैं—

कौन मेरा तट, कहाँ आधार कितनी दूर ?
पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर ?
—कह उठा कवि तट नहीं तेरा कहीं है,
मध्य को किस अन्त ने घेरा कहीं है ?
तट हुआ मँझधार का मँझधार क्या फिर।
अन्त हो जिस प्यार का वह प्यार क्या फिर।
मुक्त पारावार मे जाकर मिलेंगे,
लहरियों के प्यार में जाकर खिलेंगे,
आप ही सम्पूर्ण को अधिकार कितनी दूर ?
पूछती मँझधार कवि से पार कितनी दूर ?[1]

उक्त शैली में माखनलाल चतुर्वेदी ने भी कुछ अत्यन्त सुन्दर गीतियों की रचना की। उनकी 'पुष्प की अभिलाषा' तथा 'कैदी और कोकिला' विशेष लोकप्रिय हुईं। कवि की क्रान्तिकारी राष्ट्रीय भावनाओ की अभिव्यक्ति इन प्रतीकों और पात्रों के माध्यम से हुई है। राजनैतिक प्रतिबन्धो के कारण कदाचित् कवि ने ऐसा किया। साथ ही इस प्रकार के उपक्रम से इन गीतियो मे अधिक नाटकीयता अतः रोचकता और परिणामस्वरूप प्रभावात्मकता उत्पन्न हो गई है।

किसी विशेष प्राकृतिक अथवा अन्य पदार्थ के दर्शन से उद्दीप्त अपनी भावनाओं को, जिनमें अधिकतर विगत की करुण-मधुर स्मृतियाँ संचित है कवि सियारामशरण गुप्त ने 'विषाद' में सकलित लघु गीतियो मे बाँधा है। 'दूरागत गान', 'किरण', 'चित्राकिता', 'एक चमक' आदि शीर्षकों में कवि ने उक्त उद्दीपक उपकरणों का वस्तुनिष्ठ वर्णन न करके हृदयगत प्रभाव का वर्णन किया है। इन प्राकृतिक उपकरणो व कार्यव्यापारों से वह समानानुभूति करता है अथवा वे उसकी भावनाओ के लिए उद्दीपक का कार्य करते है। कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने इसी शैली मे 'मेरा बचपन' तथा 'इसका रोना' आदि वत्सल भाव की कविताएँ लिखी है।

प्रगीत-रचना सभी वादो तथा सभी चिन्ताधाराओ के कवियों के मध्य इतनी प्रचलित हुई कि जीवन की मधुर और मसृण व्यक्तिगत भावनाओं को वाणी और प्रतिष्ठा देने वाले

---

१. कवि-भारती—उदयशंकर भट्ट, पृ० ४७३

छायावादी कवि तो निरन्तर इसके साधक रहे ही, राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा में प्राण-संचार करने वाले कवि सियारामशरण, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन आदि, तथा प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के समर्थक कवि भी इस विधा की माया से असंपृक्त न रह सके। काव्य की रूप-विधा के क्षेत्र में प्रगीत-रचना की यह शैली वह एकमात्र विधा है, जिसका एकछत्र आधिपत्य और सभी अग्रणी कवियों द्वारा अपवाद-रहित प्रयोग विवेच्य युग के साहित्य में रहा।

प्रगीतों के कुछ विशेष प्रकार जिनका उल्लेख प्रसंगारम्भ में किया जा चुका है, कहीं अंशतः, और कहीं मूल रूप मे पाश्चात्य कविता से प्रभावित हैं। अंशतः से यहाँ अभिप्राय ऐसी विधाओं से है जिनका मूल भारतीय है, कम से कम कुछ भिन्न रूप मे वे प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त होती हैं, परन्तु विदेशी काव्य के संसर्ग से उनको पुनरुज्जीवन प्रदान किया गया, अथवा उनका पुनर्निर्माण किया गया। मूल रूप में पाश्चात्य कविता से प्रभावित रूप-विधाएँ वे है जिनका मूल विदेशी है, और प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से, जिनके हिन्दी-काव्य में प्रवेश का इतिहास आधुनिक युग से पीछे नहीं जाता, भले ही कवियों ने कुछ पूर्व-प्रचलित रूप-विधाओं के आधार पर और कुछ अपनी प्रतिभा के बल पर तथा रुचि के अनुकूल उनमें रूप-परिवर्तन किया हो।

यद्यपि आधुनिक युग का बुद्धिजीवी कवि केवल भावुकता के आधार पर काव्य-रचना कम करता है, उसमें विचार तत्त्व किसी-न-किसी रूप में कुछ दूर तक निहित अवश्य रहता है, किन्तु काव्य-विधा का निर्णय अपेक्षाकृत महत्त्वपूर्ण विशेषता के आधार पर कर लिया जाता है। अतः प्रगीत के जिन विभिन्न प्रकारों का उल्लेख पहले किया जा चुका है, उनमें विचार-तत्त्व की दृष्टि से परस्पर मात्रा-भेद अवश्य मिलता है परन्तु उनमें प्रधानता राग-तत्त्व की ही है। केवल चतुर्दशपदी अथवा 'सॉनेट' की रचना आकारगत विशेषता को आधार मानकर की जाती है और उसमें भाव और विचार मे से किसी की भी प्रेषणीयता सम्भव है।

प्रगीत के इन विशेष भेदों में, सामान्य गीतिकाव्य से अन्तर यही होता है कि इनमे प्रगीत की पूर्वकथित सभी विशेषताओं के साथ कुछ अन्य व अतिरिक्त विशेषताएँ ऐसी होती है जो इन्हें सामान्य गीतिकाव्य से तथा उसके अन्य प्रकारों से पृथक् करती है। प्रगीत के इन विविध रूपों में प्रयोग और परिमाण की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्व सम्बोधन गीतियों का है। जिन्हे आंग्ल काव्य में 'ओड' कहा गया है। इसी विधा से हम आरम्भ करेंगे।

सम्बोधन-गीति (Ode)

पशु-पक्षियों के प्रति आत्माभिव्यक्ति, तथा चराचर जगत् के प्राणियों के प्रति मध्यस्थ सन्देशवाहक के रूप में आत्मनिवेदन की पद्धति संस्कृत और हिन्दी साहित्य में बहुत पुरानी है, परन्तु आधुनिक काल के काव्य में सम्बोधन गीतियों के रूप में जिन कविताओं की रचना हुई उनमें उक्त परम्परा का परिवर्द्धन नहीं, विदेशी साहित्य का प्रभाव अधिक है। अँगरेजी साहित्य मे इस काव्य-रूप का प्रचार उन्नीसवीं शताब्दी के उपरान्त विशेष रूप से हुआ, अतः आंग्ल साहित्य में भी इसका इतिहास विशेष प्राचीन नहीं है।

ओड, प्रगीत-काव्य का प्रकार-विशेष है। उसकी अधिकांश विशेषताएँ वही हैं जो गीति-काव्य में सामान्यतः उपलब्ध होती हैं, किन्तु इस गीति में कुछ अन्य विशेषताओं का निर्देश

पाश्चात्य विद्वानों ने किया है, जिनके आधार पर अन्य गति-प्रकारों से इस काव्य का व्यावर्तन किया जाता है।

ओड, वैभवपूर्ण, विस्तृत, प्रगीतात्मक पद्य-रचना को कहते हैं। मूलतः ओड का अभिप्राय ऐसी कविता से होता था जो वाद्य-संगीत के साथ गेय हो। यूनान के आरम्भिक गेय काव्य की रचना मुख्यतः दो रूपों में होती थी—पहली प्रगीत, और दूसरी ऐसा वृन्द-गान जिसमें कवि आत्माभिव्यक्ति करता था, परन्तु यह आत्माभिव्यजन सदा सहगानाश्रित व रूपान्तरित होता था। इसी काव्य-रूप से ओड का विकास हुआ।[1] यूनानी और रोम के प्राचीन काव्य मे जिस रूप में यह काव्य-रूप व्यवहृत हुआ, १९वी शताब्दी के अँगरेज़ी कवियों की रचना-विधि उससे सर्वथा भिन्न थी। वर्डस्वर्थ, कॉलरिज, टेनीसन आदि कवियों की सिद्धि इस दिशा मे विशेष महत्त्वपूर्ण नही स्वीकार की गई। तुलनात्मक दृष्टि से इन कवियों की रचना को अव्यवस्थित कहा गया।[2] स्वीनबर्न और कीट्स की सिद्धि इस दिशा मे अपेक्षाकृत अधिक अभिनन्दनीय मानी गई। कारण—इन कवियो ने वस्तुतः कुछ विशदाकार प्रगीतों की रचना समान और क्रमबद्ध छन्दों मे की और यूनानी ओड-शैली के विकास का प्रयास किया।[3] इस प्रकार ओड की मुख्य रूप से चार विशेषताएँ आरम्भ मे स्वीकार की गई थी—विशदाकार, भव्य-शैली, आत्मपरक दृष्टिकोण और गेयता। कालान्तर में इन विशेषताओं में कुछ वृद्धि हो गई, और इस गीति-रूप को गेय, परन्तु प्रायः सम्बोधनात्मक शैली में विरचित स्वीकार किया जाने लगा। साथ ही शैली मे उत्कर्ष, स्वर मे उत्साह और विविध या विषम छन्दो मे रचना ओड शैली की विशेषताएँ मानी गईं। इस कविता के आकारगत संकोच और विस्तार का निश्चय भी ५०-२०० पक्तियों के बीच मे कर दिया गया। अव्यवस्थित छन्द-रचना की बात शायद अँगरेज़ी कवियों की रच-

---

1 ODE, a form of stately and elaborate lyrical verse. The original signification of an ode was a chant, a poem arranged to be sung to an instrumental accompaniment. There were two great divisions of the Greek melos or song One of them—came close to what modern criticism knows as lyric. On the other hand, the choir song, in which the poet spoke for himself, but always supported or interpreted, by a chorus, led up to what is known as ode proper.

Encyclopedia Britannica—Volume XVI, page 705

2 The odes of Wordsworth, Coleridge and Tennyson are entirely irregular. Shelley desired to revive the pure manner of the Greeks, but he understood the principle of form so little that he began his 'Ode to Naples...'

3. Swinburne, although some of his odes like those of Keats, are really elaborate lyrics written, in a succession of stanzas identical in form, cultivated the Greek form also, and some of his.....Ibid, page 705.

नाओं को दृष्टि में रखते हुए कही गई। प्राचीन और आधुनिक परिभाषाओ का यह अन्तर 'ऑक्सफोर्ड' शब्द-कोष मे दिये गए शब्दार्थ से स्पष्ट है।[1] इस प्रकार आधुनिक काल तक आते-आते इस काव्य-विधा में जो अन्तर हो गया वह सक्षेप में इस प्रकार है—

१. ओड की रचना अनिवार्यतः वृन्द-गान या गेय रूप मे नही की जाती थी।

२. सम्बोधन के रूप में इस प्रकार की कविताएँ लिखना तत्कालीन रूढ़ि हो गई।

३. शैली में उत्कर्ष या भव्यता के साथ उत्साह-समन्वित स्वर ओड के लिए आवश्यक मान लिया गया।

४. छन्दो का वैविध्य या अनियमित प्रयोग जो प्राचीन ओड का दूषण माना जाता था, इस काव्य-विधा की सामान्य विशेषता स्वीकार कर ली गई।

५. पक्ति-संख्या के रूप में इनका आकार निश्चित कर दिया गया।

६. सामान्यतः तुकान्त, व कही-कही अन्त्यमुक्त प्रयोग भी 'ओड' की विशेषताओ मे परिगणित किये गए।

अँगरेजी साहित्य में क्रमशः इस काव्य-रूप का व्यवहार की दृष्टि से जो रूप स्थिर हो गया उसकी ओर निर्देश करते हुए एनिड-हेमर ने कहा कि 'ओड' शब्द का कवियो द्वारा ही शिथिल प्रयोग बहुधा गीति या प्रगीत के पर्याय-रूप मे किया जाता रहा है, परन्तु क्रमशः इसका प्रयोग विशेष रूप से ऐसे सबोधनात्मक या चिन्तनप्रधान प्रगीत के लिए किया जाने लगा जिसकी रचना किसी आनन्दमय या मांगलिक अवसर पर औपचारिक रूप मे की गई हो तथा अन्य अधिक अन्तःस्फूर्त प्रगीत-रचनाओं की अपेक्षा जिसकी छन्द-रचना विशद और जटिल हो।[2] इस प्रकार 'ओड' सामान्य अन्तःस्फूर्त प्रगीत से भिन्न, चिन्तनप्रधान, विशद और भव्य शैली व सश्लिष्ट छन्द-विधान मे अवसर-विशेष पर लिखी औपचारिक प्रगीत-रचना है। स्पष्ट है, अँगरेज़ी साहित्य तक आते-आते 'ओड' का स्वरूप यूनानी काव्य से बहुत भिन्न हो गया।

अब तक हमने ओड की जिन विशेषताओ का पाश्चात्य विद्वानो के मताधार पर उल्लेख

---

1. Ode, n. (orig) poem meant to be sung (choral—song of chorus in Greek play etc.); (mod.) rhymed or rarely unrhymed lyric often in form of address, usu. of exalted style and enthusiastic tone, often in varied or irregular metre & usu. between 50 & 200 lines in length.

The Concise Oxford Dictionary—IV edition, page 819.

2. The term 'ode' has been loosely used in English, especially by poets themselves, sometimes as synonymous with 'song' or 'lyric', but it has gradually come to be applied especially to a lyrical address or meditation on a solemn or joyful occasion, often with a ceremonial character, and demanding a metrical form of greater elaboration and complexity than the more spontaneous lyric.

The Metres of English Poetry—Enid Hamer, page 218.

किया, उनमे किसी ऐसे विशिष्ट और व्यावर्त्तक तत्व का निर्देश नही मिलता जिसके आधार पर अन्य प्रगीत-रचनाओ से उसमे अन्तर-स्थापन किया जा सके। इस काव्य-रूप के विषय मे आलोचको मे परस्पर इतना मतान्तर है कि यह निश्चित कर पाना बहुत कठिन है कि 'ओड' के अन्तर्गत किस प्रकार की रचनाओं का अन्तर्निवेश किया जाय। अधिकाश उपलब्ध परिभाषाओ मे उन्हीं विशेषताओं का पुनराख्यान किया गया है जिनका उल्लेख हम पीछे कर आए है—विषय, भाव और शैली की गरिमा एव उदात्तता।[1] परन्तु इन परिभाषाओ मे किसी ऐसे व्यावर्त्तक तत्व का उल्लेख नही मिलता जिसके आधार पर अन्य गीति-प्रकारों से इसमें भेद-स्थापन किया जा सके। इसी अनिश्चितता को लक्षित करते हुए हड्सन ने कहा कि यह सज्ञा अपने आप मे अस्पष्ट और अनियत है। ओड की अधिक स्वाभाविक विशेषताओ में—विषय और शैली की भव्यता और उत्कृष्टता तथा विचार के तर्कसम्मत क्रम-विस्तार के साथ, आवश्यक रूप से नही, किन्तु सामान्यत: सश्लिष्टता और विशदाकार मिलता है। ओड का स्वर प्राय. पद्य-वक्तृता का सा होता है।[2] 'ओड' की शिल्पगत विशेषता पर आग्ल साहित्य के विद्वानो ने अधिकतर बल दिया है। 'ओड' की रचना के लिए कुछ सीमा तक लयात्मक-रूपान्तरण की क्षमता आवश्यक मानी गई तथा उसे ऐसी काव्य-विधा स्वीकार किया गया है जिसकी समानता सगीत कला से होती है परन्तु केवल काव्यगत दृष्टिकोण से—सामान्य रूप से जो लम्बी कविता से भिन्न नही होती। ओड अनिवार्य रूप से विस्तृत या लघु नही, प्रगीत-रूप मे ग्राह्य होना चाहिये।[3] आग्ल साहित्य मे प्रयोग और सिद्धान्त की दृष्टि से 'ओड' की निम्नांकित विशेषताएँ निश्चित की जा सकती है :

(१) सामान्य प्रगीत की अपेक्षा, आकार मे सम्बोधन-गीति लम्बे होते है।

(२) 'ओड' का विषय प्राय: इस प्रकार की अनुभूति होती है, जिसमे विकास का अवकाश रहता है।

---

1. A rimed (rarely unrimed) lyric, often, in the form of an address, generally dignified or exalted in subject, feeling and style.

New English Dictionary.

2. In addition to dignity or exaltation of matter and manner and a logical evolution of thought, which may be accepted among its more habitual characteristics, it is generally, though it would seem not necessarily, marked by a certain amount of complexity and elaboration, it has often something of the quality of a poetical oration.

An Introduction to the Study of Literature—W. H. Hudson, page 99.

3. An ode, in practice implies a certain architectonic mastery of rhythmic variations, a structure which, I suppose, has its analogies in music, but which from a strictly poetic point of view, does not differ from the long poem in general.—The ode, that is to say, is not essentially long or short, it might conceivably be a lyric.

Forms in Modern Poetry—Herbert Read, page 63-64

(३) भाषा शैली एवं विषय में भव्यता होती है, और उसका स्वर उदात्त होता है।

(४) सघटना अनियमित एव सहज अलकृत होती है।

(५) ओड का स्वर शुद्ध आत्मपरक, प्रायः सम्बोधनात्मक अथवा अपने मूल के अनुकूल वृन्द-गान का भी हो सकता है।

(६) सम्बोधन गीति का स्वर प्रायः काव्यात्मक वक्तृता (poetical oration) का सा होता है।

ओड, गीति-काव्य का एक भेद है, अत. गीति-काव्य के गुणो—आत्मनिष्ठा, एकसूत्रता या भावान्विति, भावमय कल्पना तथा सगीतात्मकता आदि का सहज समावेश इस काव्य-रूप मे होता है। ओड के वर्तमान रूप मे सगीतात्मकता से हमारा अभिप्राय गेयता से नही है। यह संगीत आरोपित या बाह्य संगीत न होकर भावना का संगीत भी हो सकता है, यद्यपि ओड का आरम्भ ग्रीक साहित्य मे गेय रूप मे ही हुआ था। ओड का मूल ग्रीक साहित्य का शब्द 'ओडे' है जिसका अर्थ ग्रीक भाषा मे गीत होता है। इस काव्यरूप का आरम्भ भी वहाँ गाने के लिए ही हुआ अतः इनकी रचना सगीत के शास्त्रीय-विधान के अनुकूल ही हुआ करती थी, परन्तु आग्ल साहित्य मे रचित ओड काव्य मे सगीत अनिवार्य तत्त्व नही रह गया और हिन्दी मे उक्त शैली मे रचित कविताओं पर ग्रीक का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा अतः गेयता इस विधा का अनिवार्य गुण नही माना जा सकता।

बाह्य छन्दविधान की दृष्टि से ओड के दो प्रमुख प्रकार है—व्यवस्थित (regular) और अव्यवस्थित (Irregular)। पहले मे सम्पूर्ण गीति की रचना व्यवस्थित छन्दो मे, उनका नियमित विभाजन करके की जाती है, और दूसरे मे ऐसा कोई प्रतिबन्ध या नियमित विधान स्वीकार नही किया जाता। विषय-तत्त्व दोनों में लगभग समान ही होता है।

'व्यवस्थित ओड' के पुन. तीन उपभेद किये गए। ग्रीक के प्रसिद्ध गीतिकार 'पिडार' की शैली के आधार पर पिडारिक ओड (Pindaric ode), रोम के कवि होरेस (Horace) की निजी शैली के आधार पर होरेशियन ओड (Horacian ode) तथा इन दोनो से भिन्न अँगरेजी के आधुनिक व्यवस्थित ओड (modern regular ode) जिनमे कवियो ने पूर्वोक्त दोनों शैलियो को आदर्श न मानकर अपनी निजी शैली का विकास किया। वर्डस्वर्थ, शैली और कीट्स इसके निर्माता है, और हिन्दी के आधुनिक 'ओड'-साहित्य पर इसी शैली का सर्वाधिक प्रभाव है।

जैसा हम पहले भी कह चुके है ग्रीक—दूसरे शब्दों मे पिडार के ओड मे सगीत के शास्त्रीय विधान पर नियमित छन्द-प्रणाली का सचेष्ट प्रयोग किया गया। सगीत के वैशिष्ट्य के कारण इन गीतों मे लय, अन्त्यानुप्रास आदि का भी विशेष ध्यान रखा जाता था, तथा कल्पना, अलंकार, और शैली का वैभव इनमे विशेष रूप से प्राप्त होता है।

'होरेशियन ओड' अपेक्षाकृत साधारण, सक्षिप्त परन्तु अधिक व्यवस्थित और ललित होता है। अँगरेजी साहित्य मे इन दोनो शैलियो के उदाहरण विरल परन्तु प्राप्य अवश्य है। इनसे भिन्न व्यवस्थित ओड-रचना की जिस स्वतन्त्र शैली का विकास अंगरेजी के कवियों ने किया, उनमे अग्रिम कवि स्पेन्सर तथा अनुवर्ती—मिल्टन, वर्डस्वर्थ, शैली, कीट्स, जॉनसन,

ड्रेटन आदि थे। इन कवियों ने अव्यवस्थित और व्यवस्थित दोनो प्रकार के 'ओड' की रचना की। वर्डस्वर्थ, कॉलरिज और टेनिसन ने अव्यवस्थित ओड की रचना अधिक की है और स्वीनबर्न और कीट्स ने व्यवस्थित ओड की।

शैली की दृष्टि से भी अँगरेजी मे ओड की रचना दो रूपो मे हुई—वस्तु-विशेष को सम्बोधित कर अपने हृदयगत भावों तथा विचारों की व्यंजना के रूप में, और जिन वस्तुओं को सम्बोधित कर काव्य-रचना की जाय, अपनी भावनाओ को उन्ही की वाणी पर आरोपित कर आत्मकथात्मक शैली मे। इस प्रकार पहली मे वक्ता कवि होता है और सम्बोध्य वस्तु या पात्र-विशेष तथा दूसरी मे जिसके प्रति सम्बोधन मे रूप के ओड की रचना की जाती है, वह विषय आत्मकथात्मक शैली मे कवि की भावनाओ का प्रेषक या माध्यम बन जाता है। इस प्रकार की गीति का विषय स्वय वक्ता होता है। कवि 'टेनिसन' की 'स्काईलार्क' (skylark) और क्लाउड (cloud) क्रमश उक्त दोनो शैलियो के उदाहरण है। हिन्दी साहित्य मे अँगरेजी की ही भाँति दोनो शैलियो मे सम्बोध-गीतियो की रचना हुई, परन्तु पहले प्रकार की गीतियाँ दूसरे की अपेक्षा अधिक लिखी गई।

इस विधा के अकुर—जैसा हम पहले भी सकेत कर चुके है, सस्कृत और हिन्दी के प्राचीन 'सन्देश-काव्यो' एवं 'दूत काव्यो' मे मिलते है, परन्तु आधुनिक युग में इस प्रकार की गीतियों का पल्लवन विदेशी पद्धति के अनुकूल हुआ और इस युग मे इस विधा का चरमोत्कर्ष छायावादी खेवे के कवियो—प्रसाद, पन्त और निराला के काव्य मे विशेष रूप से दिखाई पडा।

सम्बोध-गीतियो का आरम्भ छायावाद से पूर्व हो चुका था। रूपनारायण पाण्डेय ने 'पराग' में एक छोटी-सी कविता 'कल्पवृक्ष के प्रति' सम्बोधन के रूप में लिखी है, परन्तु इस कविता को शब्द के बहुत सही अर्थों मे सम्बोध-गीति नही कहा जा सकता। कवि ने एक चतुष्पदी के बाद ताटक छन्द और तदुपरान्त एक कवित्त मे इस कविता की रचना की है, परन्तु दृष्टिकोण आध्यान्तरिक नही, कुछ अन्योक्ति का-सा है। कल्पवृक्ष की महत्ता का वर्णन करने के उपरान्त कर्त्तव्य का स्मरण कराने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार आत्मेतर आलम्बन के प्रति कवि की रागात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त न होकर, उसके माध्यम से अन्योक्ति-शैली मे उपदेश, अतः विचार व्यक्त हुआ। प्रयुक्त छन्द भी विशेष व्यवस्थित और अनुकूल नही।

सम्बोध-गीतियो का वास्तविक आरम्भ और उत्कर्ष प्रसाद, पन्त और निराला द्वारा रचित गीतियों में ही हुआ। प्रसाद की आरम्भिक रचनाओ मे ही 'किरण', 'वसन्त', 'विषाद', 'दीप', 'रूप' आदि सम्बोध-गीतियाँ प्राप्त होती है। निराला की 'यमुना के प्रति', 'वासन्ती', 'वसन्त समीर', 'जूही की कली', 'शेफालिका', 'प्रपात के प्रति', 'कवि', 'प्रिय के प्रति', 'नयन', 'तरंगों के प्रति', 'जलद के प्रति' आदि सुन्दर सम्बोधगीतियाँ है। इनमे से अधिकांश 'परिमल' में संग्रहित है।

पन्त को भी इस विधा के प्रति विशेष आकर्षण रहा। उनकी अधिकांश सुन्दर कविताएँ सम्बोध-गीतियाँ ही कही जायेंगी। विचारधारा के उत्तरोत्तर विकास के विभिन्न चरणों मे वे इस विधा का प्रयोग निरन्तर करते रहे। 'पल्लव' काल की कविताओं में 'छाया', 'बादल',

'परिवर्तन', 'शिशु', 'वीचि-विलास', 'स्वप्न' आदि उत्कृष्टतम सम्बोध-गीतियों की रचना हुई। 'गुंजन' काल मे 'भावी पत्नी के प्रति', 'विहग के प्रति', तथा 'युगान्त' मे 'बापू के प्रति' एव 'मानव' आदि सम्बोध-गीतियाँ लिखी गई।

इन कवियों के अतिरिक्त मुकुटधर पाण्डेय की 'कुररी के प्रति', मिलिन्द की 'कलाकार से' और 'आषाढस्य प्रथम दिवसे', तथा भगवतीचरण वर्मा की 'नूरजहाँ की कब्र पर' का उल्लेख किया जा सकता है। दिनकर की 'हिमालय के प्रति' भी अत्यन्त उच्चकोटि की सम्बोध-गीति है। तारसप्तक में अज्ञेय की 'जनाह्नान' और भारतभूषण अग्रवाल की 'मसूरी के प्रति' और 'अपने कवि से' रचनाएँ भी इसी विधान्तर्गत आयेंगी।

अब तक जिन रचनाओं का उल्लेख किया गया, वे सब किसी आत्मेतर विषय को सम्बोधन कर कवि की अपनी भावात्मक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के रूप मे लिखी गई है। इनसे भिन्न दूसरी शैली—वर्ण्य वस्तु के द्वारा आत्मविषयक शैली मे लिखी सम्बोध-गीतियो की मिलती है। ऐसे प्रयोग यद्यपि बहुत विरल हुए। पन्त की 'बादल' और सियारामशरण की 'दूर्वादल' मे 'घट' नामक गीति इसी प्रकार की है।

कुछ दूर तक वर्णनात्मकता सभी सम्बोध-गीतियो मे मिलती है। कवि प्रायः सम्बोधन करता हुआ सम्बोध्य के बाह्य रूप-वर्णन से आरम्भ करता है और क्रमश. उत्कृष्ट कल्पना तथा भावों के तार्किक विकास से गहन विचारात्मकता की ओर बढता जाता है। यह बौद्धिकता इन गीतियो मे समय की प्रगति के साथ बढती गई है। आरम्भिक रचनाओ मे वर्णनात्मकता और राग-तत्त्व की प्रधानता है, और परवर्ती गीतियो मे अपेक्षाकृत बौद्धिकता और चिन्तन, तथा सिद्धान्त-व्यजना। यह विशेषता पन्त की उत्तरकालीन गीतियों और प्रयोगवादी कवियों मे अपेक्षाकृत अधिक मिलती है। प्रसाद और निराला की संबोध-गीतियों में भावसवलित वर्णन की प्रधानता है, इनमें बौद्धिकता की अपेक्षा रागात्मकता अधिक है। उत्कृष्ट शैली और भव्य-कल्पनाओ का इन गीतियो में भी अभाव नही। शैली के सभी नवीन आभरण—अमूर्त और सूक्ष्म अप्रस्तुत योजनाएँ, प्रतीकात्मकता, जड़ में चेतना का आरोप, लक्षणा और व्यजना का प्रचुर प्रयोग एवं विरोध-चमत्कार आदि सभी का उपयोग हुआ है। शैली की दृष्टि से भव्यता इन कविताओं का सामान्य गुण है। अतः आरम्भ की गीतियों मे विचार-तत्त्व की न्यूनता का आशय यह नही है कि कला की दृष्टि से इन गीतियों का अवमूल्यन किया जाय, वस्तुतः यह प्रवृत्ति आधुनिक काल की कविता मे सामान्य रूप से लक्षित की जा सकती है। इस युग का कवि क्रमश बीसवी शताब्दी के आरम्भ से अर्ध शताब्दी तक इतिवृत्त से भाव, और भाव से विचार की ओर बढता गया है। कुछ उदाहरण देकर उक्त कथन की पुष्टि का प्रयास करेंगे। 'किरण' आरम्भिक सम्बोध-गीतियो में से है। उसका आरम्भ कवि ने यद्यपि प्रश्नवाचक वाक्य से नाटकीय और रोचक ढग से किया है किन्तु वर्णन की प्रवृत्ति उसमें स्पष्ट है:

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज, रँगी हो तुम किसके अनुराग ?
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु पराग।

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर भी मौन ?
किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना दूती-सी तुम कौन ?[1]

प्रसाद की कुछ अन्य सम्बोध-गीतियाँ भी इसी प्रकार प्रश्नवाचक पक्ति से आरम्भ की गई है। यह शैली प्रसाद की निजी शैली नही। कुछ अन्य कवियो ने यही पद्धति अपनाई है। मुकुटधर पाडेय की 'कुररी के प्रति' की पाँचों षटपदियाँ आद्यन्त इसी कुतूहलमय शैली में लिखी गई है :

बता मुझे ऐ विहग विदेशी ! अपने जी की बात,
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात ?
निद्रा में जा पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द,
अन्य विहग भी निज खोतों में सोते हैं सानन्द।
इस नीरव-घटिका मे उड़ता है तू चिन्तित गात,
पिछड़ा था तू कहाँ हुई क्यों तुझको इतनी रात ॥[2]

सर्वत्र इन सबोध-गीतियो मे यही जिज्ञासा, वर्णन और भावात्मक प्रश्न नही मिलते। इनमे उपदेश व कर्तव्य-निर्देश के रूप मे कुछ विचार प्रतिपादन का समावेश होने लगा था। प्रसाद ने 'नीरद' मे केवल सौन्दर्य व महत्त्व-वर्णन न करके कर्तव्य-निर्देश भी किया। इसी प्रकार 'मिलिन्द' की 'कलाकार से' नामक सम्बोध-गीति मे उपदेश का यह स्वर और भी मुखर हो गया :

तुम प्रकाश के स्रोत नित्य नव,
प्रतिनिधि सस्कृति के, जीवन के,
प्रगति-पथों के मार्ग-प्रदर्शक,
प्रेरक हो जग के यौवन के !
× × ×
युग नायक, प्रतिभा-विभूतिमय,
तुम न कठिन पथ अपना छोड़ो,
सस्ती तृप्ति-प्राप्त करने की
दुर्बलता से तुम मुख मोड़ो !
तोड़ो मोह-शृंखला, छोड़ो
मिथ्या-स्वप्न-सृष्टि का चित्रण;
जग-मन की जागरण-ज्योति में
करो सत्य का उज्ज्वल दर्शन।[3]

कही वर्णन और उपदेश के स्थान पर किसी प्राकृतिक व अन्य उपादान द्वारा उद्दीप्त

---

१. झरना—प्रसाद, पृ० १४
२. कवि भारती—मुकुटधर पांडेय, पृ० २७८
३. कवि भारती—जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृष्ठ ४६७-४६६

कवि की भावनाओ का वर्णन मिलता है। मिलिन्द की 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' में आषाढ़ की प्रथम मेघमाला से उद्दीप्त कवि की भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति है। संबोध-गीति का यह स्वरूप, उसमे भाव, विचार और कल्पना तीनों में से तत्त्व-विशेष की अपेक्षाकृत महत्ता, बहुत कुछ कविता के विषय, उसके आलम्बन के स्वरूप पर निर्भर रहती है। यह आलम्बन जितना स्थूल, मूर्त और वस्तुरूप होता है उतनी ही उसमें वर्णन की प्रवृत्ति अधिक निहित रहती है। विषयो में कवि जैसे मूर्त से अमूर्त और स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढता जाता है, उतनी ही उसकी अभिव्यजना में भी वर्णन से भाव, भाव से कल्पना और कल्पना से विचार की प्रधानता होती जाती है। भाव मे रमणीयता अधिक होती है कल्पना में मोहक आकर्षण और विचार मे उत्तेजना; इसी कारण कवि 'पन्त' की संबोध-गीतियों मे विषयानुरूप भावतन्मयता, कल्पना-विलास और विचारोत्तेजना सभी प्राप्त होती है। इस दृष्टि से उनकी संबोध-गीतियों का स्थान कुछ विशिष्ट है। पन्त प्राकृतिक रूप-रग के सुकुमार कवि तो है ही, अतः प्राकृतिक आलम्बनो के प्रति लिखी गीतियो मे तो उन्होने सुन्दर चित्र आँके है। इन गीतियो मे 'बादल' की रचना आत्मपरिचयात्मक शैली मे होने के कारण उसका स्थान और भी विशिष्ट है। परन्तु जहाँ कवि किसी शाश्वत् प्रश्न, तत्त्व या विचार पर चिन्तन करने लगता है, और उसका सम्बोध्य कोई अमूर्त सिद्धान्त या विचार हो जाता है तो उनकी कविता में विचारोत्तेजना से एक विशेष प्रकार की गरिमा, जीवन्तता और दीप्ति उत्पन्न हो जाती है। इस दृष्टि से उनकी 'परिवर्तन' नामक गीति का स्थान महत्वपूर्ण है। अलक्ष्य रूप से समस्त सृष्टि में व्याप्त इस शाश्वत नियम का वर्णन और विश्लेषण कवि ने अत्यन्त सशक्तता से गरिमामय शैली मे किया है। यद्यपि परिवर्तन की सृष्टि-व्यापी शक्ति और चिरन्तन स्थिति को प्रमाणित करने के प्रयत्न मे वर्णनात्मक स्थल भी इस गीति में आ गए है, किन्तु इसकी निर्बाध गति और आवेगदीप्ति एक क्षण के लिए भी बाधित नही होती। परिवर्तन की निष्ठुरता, उसकी भयंकर ध्वंसात्मकता और इस नश्वरता के भीतर साधनामय जीवन का संकेत करने के प्रयत्न में कवि की दार्शनिक दृष्टि, सभी कुछ अत्यन्त प्राणवान शैली मे उभरकर उत्साह-संचार करते है। इस प्रयत्न मे भाषा की सस्कृतबहुला समस्त प्रकृति ने उसे शक्ति प्रदान की है, किन्तु यह भी कवि की ही सिद्धि कही जायगी। एक समय 'कौन तुम परहृत वसना' की मधुर लालित्यमयी शैली में गाने वाला कवि, अवसर आने पर इतनी विचारोत्तेजना और ओजमय उत्साह के प्रसाधन जुटा सके, यह साधारण सिद्धि नही।

कवि पन्त ने उक्त रचना में विचार का विश्लेषण और वर्णन किया है, सिद्धान्त-प्रतिपादन नही। किसी प्रकार की उपदेशात्मकता इसमें नही आ पाई। उनके बाद नए खेवे के कवियो ने जो सबोध-गीतियाँ लिखी उनमें सामयिक विचारधारा—समाजवाद का प्रतिपादन, कम से कम व्यंग्य अवश्य है। 'तारसप्तक' में भारतभूषण अग्रवाल ने 'मसूरी के प्रति' संबोध-गीति में सौन्दर्य और वैभव के वर्णन से आरम्भ कर शोषित मानव की उदीयमान चेतना के संकेत में गीति का पर्यवसान किया :

आज के मदिर सुख में, रंगीनी में भूली ओ री अलका!
कुछ तुझे ध्यान भी है कल का, शोषित बल के उठते बल का ?[1]

१. तारसप्तक पहला—भारतभूषण अग्रवाल, पृ० ३६

अज्ञेय की 'जनाह्वान' में पददलित वर्ग की विद्रोह-भावना ने ललकार और विद्रोह का रूप धारण कर लिया है। कवि ने आततायी को सम्बोधित कर पराजित वर्ग के अन्तर्मन में जाग्रत चेतना और विद्रोहात्मक शक्ति को वाणी दी है। अतः ओज है, किन्तु वर्णन और विश्लेषण मे नही। 'परिवर्तन' की भाँति यह ओज समर्थ शैली के कारण नही, उसमें व्यक्त कठोर और विषम सत्य तथा ललकार के कारण है। इस प्रकार वर्गसंघर्ष की समस्या इस गीति मे व्यक्त हुई है :

ठहर, ठहर, आततायी! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, वर्षस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले—
मेरे वृद्ध पौरुष की एक चोट सह ले!
नूतन प्रचण्डतर स्वर से।
आततायी आज तुझको पुकार रहा मैं—
रणोद्यत दुर्निवार ललकार रहा मैं—
कौन हूँ मैं?
तेरा दास दु:खी पद-दलित पराजित
आज जो कि क्रुद्ध सर्प-से अतीत को जगा
'मैं' से 'हम' हो गया।[1]

उक्त संबोध-गीति का स्वरूप परम्परा से कुछ भिन्न है। पहली विशेषता शैली की है—वर्णन-विधि की। कवि अपने ओर से सम्बोध्य के प्रति कुछ नहीं कहता और न आलम्बन स्वयं आत्मपरिचयात्मक शैली में अपना वर्णन करता चलता है। कवि ने जिस समस्या की और वस्तुस्थिति की व्यंजना करनी चाही है उसमे दो विरोधी पक्षों की उद्भावना की, और आलम्बन के प्रति अपने उद्गार स्वयं व्यक्त न कर, विरोधी पक्ष के मुख से कहलाए हैं। इसे संवाद-शैली तो नही कहा जा सकता क्योकि इसमें केवल कथन है उपकथन नही, और न ही स्वगत आत्म-परिचयात्मक शैली, क्योंकि वक्ता अपने प्रति या अपने विषय में कुछ नही कहता। इसमे इस प्रकार कवि ने उत्तम और अन्य दोनों से भिन्न मध्यम पुरुष की शैली मे काव्य-रचना की है। दूसरी विशेषता इस गीति मे यही है कि वर्णन का इसमे एकान्त अभाव है। कवि सीधे लक्ष्य पर प्रहार करता है। इसका बहुत कुछ कारण बोधव्य के प्रति सौन्दर्यबोध और आकर्षण की भावना न होकर विद्रोह और आक्रोश की अभिव्यक्ति है। पन्त ने भी 'परिवर्तन' का वर्णन विनाशक दृप्त आततायी के रूप में ही किया है, परंतु उस शाश्वत सत्य की अमूर्त और अलौकिक नियमन शक्ति के कारण मानव-द्वारा उन्मूलन और क्रान्ति का प्रश्न ही नही उठता, अतः वे परिवर्तन के नियम की निर्मम, परन्तु चिरन्तन स्थिति की सक्रियता का वर्णन करके, केवल सत्ता का बोध कराते रहे है, विद्रोह नहीं। कहने का आशय यही है कि इन कविताओं में उत्तरोत्तर विचार की

---

१. तारसप्तक—'अज्ञेय', पृष्ठ ७७

वृद्धि और वर्णन की न्यूनता होती गई है।

'निराला' ने अपनी संबोध-गीतियों में कुछ भिन्न ढंग से वर्णन का आश्रय लिया है। कवि एक ओर यमुना के वर्तमान स्वरूप का चित्रांकन करता है, और दूसरी ओर अपनी जिज्ञासा के रूप मे यमुना-तट पर नट-नागर श्याम की लीलाओं, अतीत की स्मृतियों का वर्णन प्रश्न रूप मे करता है। अतः वर्णन मे भी नाटकीयता और रमणीयता बनी रहती है :

निखिल विश्व की जिज्ञासा-सी
आशा की तू झलक अमन्द
अन्त.पुर की निज शय्या पर
रच-रच मृदु छन्दों के बन्द
किस अतीत के स्नेह-सुहृद को
अर्पण करती तू निज ध्यान—
ताल-ताल के कम्पन से द्रुत
बहते हैं ये किसके गान ?[1]

शैली की भव्यता सभी सम्बोध-गीतियो मे समान रूप से नही मिलती। जैसा पहले भी कहा जा चुका है अँगरेजी समीक्षा-शास्त्र मे भी ओड शब्द का प्रयोग इतनी विविध प्रकार की कविताओं के लिए किया गया कि उनका लक्षण-निरूपण करना दुष्कर हो गया, फिर भी कुछ सामान्य विशेषताएँ निश्चित करने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु हिन्दी काव्य में यह शब्द संबोध-गीतियों के लिए लगभग रूढ हो गया है। विभिन्न आकार व शैलियों मे लिखी गईं वे सभी प्रगीतियाँ जो किसी के प्रति, या किसी को सम्बोधित कर लिखी गई हों ओड कहलाईं। एक प्रकार से ऐसा करना शुभ ही हुआ क्योकि इस स्थिति में उलझन का अवकाश कम हो गया। परन्तु साथ ही सम्बोधन-रूप मे लिखी गई सभी छोटी-बडी कविताएँ जिनकी शैलियाँ भी असमान थी एक ही वर्ग के अन्तर्गत बाँध दी गई। शैली की जिस विशदता, गरिमा, और भव्यता पर समान रूप से सभी पाश्चात्य समीक्षको ने बल दिया, इन सब गीतियो मे नही मिलती। इस दिशा मे कवि 'पन्त' और 'निराला' की ही सिद्धि विशेष महत्त्वपूर्ण कही जायगी। आकार की दृष्टि से एक ही कवि की दो सम्बोध गीतियो में कभी-कभी बहुत अन्तर मिलता है। 'निराला' की दो रचनाओ—'यमुना के प्रति' और 'प्रिया के प्रति' में यह आकार और शैलीगत अन्तर देखा जा सकता है। अतः इन सब रचनाओ का अन्तर्भाव एक शीर्षक के अन्तर्गत केवल सम्बोधन-रूप मे रचित होने के कारण ही किया गया है।

प्रगीत-रचना का दूसरा प्रमुख प्रकार, जिसका सम्बन्ध पाश्चात्य काव्य से जोड़ा जाता है—शोक-गीतियाँ या 'एलेजी' हैं। विशेष रूप-विधा के रूप में इस शैली की स्वीकृति कम से कम पाश्चात्य काव्य के प्रभाव के कारण ही हुई है। अतः इस विषय में भारतीय समीक्षा-शास्त्र (प्राचीन) में विवेचन के अभाव की स्थिति मे तद्विषयक विदेशी मान्यताओं को ही प्रमाण मानना समीचीन होगा।

---

१. परिमल—निराला, पृ० ४७-४८

शोक-गीति (Elegy)

किसी प्रकार के अनिष्ट से शोकाकुल कवि के हृदय की करुण उद्‌गीथि ही शोक-गीति है। शोक-गीति का सम्बन्ध मानव-मन की ऐसी मौलिक प्रवृत्ति—करुणा और वेदना से है, जिसकी अभिव्यजना वह चिरकाल से भिन्न-विभिन्न रूपों मे करता रहा है, अत: इस प्रकार के हृदयोद्‌गारो की अभिव्यक्ति का सम्बन्ध निश्चित रूप से किसी साहित्य-विशेष से नही जोडा जा सकता। इस प्रकार की रचना-प्रवृत्ति सार्वभौमिक और सार्वकालिक होती है, और किसी न किसी रूप मे विश्व के प्रत्येक साहित्य मे विद्यमान रहती है। स्वदेशी साहित्य मे भी प्रयोग की दृष्टि से इन कविताओ का इतिहास आधुनिक काल तक ही सीमित नही, परन्तु पृथक् काव्यरूप मे इनकी स्वीकृति व सैद्धान्तिक विवेचन काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थो में नहीं किया गया। समीक्षा-शास्त्र-विषयक आधुनिक रचनाओं मे जहाँ इस विधा की विशेषताओं की ओर इगित किया गया है, वहाँ उनके विवेचन का आधार अंगरेजी साहित्य मे शोक-गीति की समानान्तर विधा एलेजी की विशेषताएँ ही रही हैं।

आग्ल साहित्य मे 'एलेजी' उस छोटी कविता को कहते है जिसकी रचना किसी प्रिय या समादरणीय व्यक्ति की मृत्यु अथवा नैतिक सताप की सामान्य भावना से प्रेरित होकर शोक-व्यजना या विलाप के रूप मे की जाती है।[1] इस विधा के लिए प्रयुक्त ग्रीक शब्द की व्याख्या प्राय. विलाप या अन्त्येष्टि से सम्बद्ध गीत के अर्थ मे कर दी जाती है, परन्तु इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही कि मृत्युजन्य शोक की भावना का सम्बन्ध इस शब्द के मूल अर्थ से कैसे स्थापित हुआ। अवशिष्ट यूनानी साहित्य मे प्राप्त होने वाली ये शोक-गीतियाँ मृत्यु को नही युद्ध और प्रेम को समर्पित की गई है। आरम्भिक शोक-गीतों की प्रेरणा युद्धादि साहसिक कृत्य और प्रेम ही रहे है। यूनान मे इन गीतियो का समस्त आरम्भिक इतिहास इस बात का साक्षी है।

सोलहवी शती के आरम्भ से अँगरेजी साहित्य मे एलेजी का प्रयोग अन्त्येष्टि-गान अथवा विलाप के अर्थ मे तदुपरान्त निरन्तर होता रहा। आधुनिक परिभाषा के अनुसार एलेजी वह सक्षिप्त कविता है जिसमे विशेष विराम और मोड़ नही होते।

ग्रीक एलेजी की रचना छन्द-विशेष मे की जाती थी। जिसे 'एलिजिआक' (Elegiac)

---

1. ELEGY, a short poem of lamentation or regret, called forth by the death of a beloved or revered person or by a general sense of the pathos of morality. The Greek word...is of doubtful signification, it is usually interpreted as meaning a mournful or funeral song. But there seems to be no proof that this idea of regret for death entered into the original meaning of...The earliest Greek Elegies which have come down to us are not funeral,...when the elegy appears in surviving Greek literature, we find it dedicated, not to death, but to war and love.

   From the beginning of 16th century elegy was used in English as it has been ever since, to describe a funeral song or lament...is an elegy in the strict modern sense. Johnson's definition, "Elegy a short poem without points or turns." —Encyclopedia Britannica—Volume VIII, page 343.

कहते थे।[1] इस छन्द की विशेषता के कारण ही इस विधा का नाम एलेजी पडा। इस छन्द-विशेष में एलेजी की रचना ग्रीक व लैटिन साहित्य की विशेषता रही। बाद मे जर्मन कवियो ने इस छन्द को इस विधा के लिए ग्रहण कर लिया, परन्तु अँगरेजी के कवियो ने इसे नही अपनाया।[2] इस छन्द का निर्माण षट्पदी 'हैक्सामीटर' और पचपदी 'पैन्टामीटर' के योग से, और प्रयोग युग्मक के रूप मे किया जाता था।

'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' मे एलेजी की कुछ विशेषताओं पर निषेधात्मक रूप से प्रकाश डाला गया है। अँगरेजी मे इस शब्द का अशुद्ध प्रयोग प्राय: किया जाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ये शोकगीतियाँ, निश्चित रूप से शोकव्यजक, चिन्तनप्रधान और संक्षिप्त होती है, इनमे भावनाओ का असयमित और आवेशमय प्रकाशन नही होता।[3] इन्ही विशेषताओं के आधार पर अँगरेजी की कुछ कविताओ को अतिविस्तार के कारण तथा कवि वर्डस्वर्थ की 'लूसी' को अति सक्षेप के कारण शोक-गीति नही माना जा सकता। वर्डस्वर्थ की इस कविता मे सक्षेपण के अतिरिक्त भावना का जो विस्फोट मिलता है वह भी एलेजी की शैली के उपयुक्त नही। एलेजी की एक और विशेषता का सकेत आलोचक विद्वान् हडसन की परिभाषा में मिलता है। वे इसे शोक, व्यक्तिगत विछोह व दु:ख की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति स्वीकार करते है। अत: भाव और अभिव्यक्ति की निश्छलता स्पष्ट रूप से एलेजी की अनिवार्य विशेषता है। एलेजी के गम्भीर विषय के लिए अभिव्यक्ति मे कृत्रिमता काम्य नही हो सकती।[4]

अत. निष्कर्ष रूप में—एलेजी के दो रूप विदेशी साहित्य मे प्राप्य है—(१) उसका परम्परागत और प्राचीन रूप जिसके उदाहरण प्राचीनतम ग्रीक व लैटिन साहित्य में उपलब्ध है। ये प्रगीत विषय की दृष्टि से अँगरेजी साहित्य की आधुनिक शोक-गीतियो से व्यापक

1 Elegiac . (of metre) suited to elegies, esp. couplet, (usu. GK. or LAT.) dactylic hexameter & pentameter. Oxford Dictionary, page 385.

2. Elegiac verse has commonly been adopted by German poets for their elegies, but by English poets never.
Encyclopedia Britannica—Volume VIII, page 343.

3. The word 'Elegy' in English, is one which is frequently used very incorrectly, it should be remembered that it must be mournful, meditative and short without being ejaculatory. Thus Jennison's 'In Memorium' is excluded by its length, it may at best be treated as a collection of elegies. Wordsworth's 'Lucy' is a dirge; this is too brief a burst of emotion to be styled an elegy. Ibid, page 343.

4 This is a brief lyric of mourning, or direct utterance of personal bereavement and of emotion and expression, since on the slightest hint of simulation or artifice we are prompted to turn on the poet with the warning words.—
An Introduction to the Study of Literature—W. H. Hudson, page 100

और छन्द की दृष्टि से रूढिबद्ध थे। इनका लक्ष्य केवल मृत व्यक्तियों के प्रति शोकांजलि अर्पण करना नही था बल्कि इनकी रचना युद्धादि से प्रेरित होकर की जाती थी। परन्तु इनका छन्द-रूप निश्चित था।[1]

(२) दूसरे प्रकार के शोक-प्रगीत मध्य व आधुनिक काल के अँगरेजी कवियों ने लिखे। इनका विषय किसी प्रिय या श्रद्धेय व्यक्ति के निधन पर कवि के अन्तर्दाह की अभिव्यक्ति तक सीमित हो गया, परन्तु छन्द की दृष्टि से इन्होने परम्परागत छन्द का प्रयोग कभी नही किया। इस प्रकार इनकी रचनाओ मे विषय-संकोच और छन्द-विस्तार हुआ।[2]

अँगरेजी साहित्य मे रचित शोक-गीतियो मे परस्पर विचित्र आकार-भेद मिलता है। कुछ रचनाएँ लम्बी व अन्य सक्षिप्त है। शैली की दृष्टि से कतिपय रचनाओ की शोक-व्यंजना मे मार्दव, गाम्भीर्य और अभिव्यक्ति मे सयम एव विवेक है, कुछ मे कवि की भावनाओं का विस्फोट मिलता है। कुछ कविताएँ सम्बोधन के रूप मे भी लिखी गई।

यद्यपि सिद्धान्त-रूप मे गम्भीर चिन्तन, एलेजी की अनिवार्य विशेषता स्वीकार नही की जा सकती। वह तो मुख्यत: भौतिक घटनाओं से प्रताड़ित, सवेदनशील कवि के आत्म-प्रकाशन का माध्यम है। फिर भी व्यवहार मे प्राय: इन घटनाओं से प्रेरित गम्भीर चिन्तन इन कविताओं मे व्यक्त हुआ है। बहुधा दार्शनिक और विचारात्मक तत्त्व इनमें इतने प्रधान हो जाते हैं कि व्यक्ति-तत्त्व सर्वथा गौण हो जाता है। कवि अपने विषय पर चिन्तन करता हुआ उससे तत्काल उद्‌भूत प्रश्नो, अथवा जीवन और प्रारब्ध की गहनतम समस्याओं पर मनन करने लगता है।[3]

---

1 Although for us an elegy means a lament for the dead, and that in fact seems to have been its original meaning when it enters Greek literature not later than the seventh century before Christ it had become a form of war poetry. It had a characteristic metre of its own, the 'elegiac-couplet' consisting of a dactylic hexametre followed by a pentametre.

Classical Background of English Literature—J. A K. Thompson, page 83

2 Altogether it is an interesting thing that one elegiac poet after another—Spenser, Milton, Pope, Grey, Shelley, Arnold, Swinburne—has chosen a different metre, none of them corresponding closely to the dactylic hexametres of the Greek and Latin masters of the lament.

Ibid, page 232.

3. Often, too, the philosophic and speculative elements become predominent in it, sometimes even to the total subordination of the purely personal interest, the poet, brooding upon his subject, being

हिन्दी की आधुनिक शोक-गीतियाँ रूप-विधा की दृष्टि से अँगरेजी साहित्य की एलेजी के अधिक निकट हैं। एलेजी की रूप-सम्बन्धी विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) **गाम्भीर्य**—एलेजी का सम्बन्ध कारुणिक प्रसंगों से होने के कारण इसका स्वरूप और विषय प्रायः गम्भीर होता है। कवि किसी मर्मस्पर्शी प्रसग से प्रभावित होकर अपनी वेदना अथवा तत्सम्बन्धी प्रश्नो पर अपने विचार व्यक्त करता है।

(२) **विचारात्मकता**—एलेजी की शैली प्रायः मननात्मक होती है। उसमें किसी के शोकाकुल हृदय का असयत विलाप व प्रलाप नही फूट पड़ता, प्राय कवि का आहत मन जिस घटना से चोट खाता है, उस पर गम्भीरता से विचार करता हुआ, विवेक से संयत अपनी व्यथा व विचारों का वर्णन करता है। इन विचारो मे कभी-कभी दर्शनादि से सम्बद्ध गम्भीर प्रश्न भी होते है।

(३) **करुणात्मकता**—किसी न किसी रूप मे एलेजी मे कवि की पीड़ा, उसकी वेदना, व्यक्त होती है। उस पर विचारो का कितना भी आवरण पडा हो, परन्तु उसके मूल मे प्रगाढ शोकानुभूति निश्चित रूप से वर्तमान रहती है। अत. विचारो की प्रेरक-रूप मे दुःखानुभूति, और तद्जन्य कारुणिक स्वर एलेजी की विशेषता है।

(४) **अकृत्रिमता**—भाव और कला दोनो की दृष्टि से निष्कपट और अकृत्रिम अभिव्यंजना एलेजी की विशेषता है। उसकी कला मे किसी प्रकार की औपचारिकता, कृत्रिमता, अथवा सायास चमत्कृति उसके प्रभाव को नष्ट कर देती है। कृत्रिमता से यहाँ अभिप्राय अनुभूति पर काल्पनिक आवरण (कला या भावगत) द्वारा रूप-परिवर्तन के प्रयत्न से ही है। अन्यथा एलेजी सामान्य प्रगीत की अपेक्षा कम अन्त.स्फूर्त और 'ओड' के समान सहज अलंकृत, उदात्त शैली मे लिखी जाती है।

(५) **संक्षिप्तता**—आकार मे 'एलेजी' बहुत बडी कविता नही होती। इस प्रकार का यद्यपि कोई निश्चित नियम नही, परन्तु अनेक स्थानो पर उसकी परिभाषा छोटी कविता कहकर की गई है।

(६) **छन्द-विधान**—प्राचीन विदेशी साहित्य मे उपलब्ध इस प्रकार की शोक-गीतियो का छन्द भी नियत था, परन्तु यह सभी भाषाओ के साहित्य मे अनिवार्य अनुबध नही माना गया, अँगरेजी के कवियो ने विशेषरूप से इस रूढि की उपेक्षा की।

हिन्दी-साहित्य में स्वतन्त्र विधा के रूप मे शोक-गीतियो को स्वीकृति आधुनिक काल में ही मिली। यद्यपि प्राचीन साहित्य मे भी इस प्रकार के हृदयोद्गारो को शब्दान्तरित करने का प्रयत्न बहुधा कवियों ने किया। ऐसी कविताए प्रबन्धो के बीच अधिकतर पात्रो की मनोव्यथा का अकन करने के लिए तो लिखी गईं, परन्तु निरपेक्ष और स्वतन्त्र शोक-गीतियो का आरम्भ और विकास आधुनिक युग मे ही हुआ। रूप-विधा की दृष्टि से इन प्रगीतो में कोई प्रतिबन्ध

---

moved to meditations over questions immediately raised by it, or over the deepest problems of life and destiny.

An Introduction to the Study of Literature—W. H Hudson, page 10.

स्वीकार नही किया गया। अधिकांश गीतियो की रचना किसी प्रिय या श्रद्धेय व्यक्ति के निधन पर आत्मोद्गार व्यक्त करने के लिए की गई। इनका स्वर भावानुरूप अत्यन्त गम्भीर और चिन्तन-प्रधान है। कही-कही वर्णनात्मक अश दिवगत व्यक्ति की स्मृति, कृत्यो तथा महत्त्व का वर्णन करने के प्रसग मे आ गए है। कभी-कभी वे वर्तमान स्थान और पदार्थ, जिनसे उस व्यक्ति का सम्बन्ध रहा कवि के मन मे पीड़ावर्धन करते है—ऐसे प्रसगो मे वर्तमान का वर्णन भी किया गया है, परन्तु किसी बहुत गम्भीर विषय पर चिन्तन प्राय इन गीतियो मे नही मिलता। दर्शन, अध्यात्म आदि से सम्बद्ध प्रश्न इनके परिनिवेश मे बहुत कम प्रवेश कर पाते है। छन्द की दृष्टि से भी किसी नियत आकार का प्रयोग नही किया गया। सभी गीतियो मे प्रसग और सुविधानुसार कवि ने अपने मनोनुकूल छन्द का चयन कर लिया है।

द्विवेदीजी के समकालीन कवियो मे—नाथूराम शर्मा 'शकर', रूपनारायण पाण्डेय और रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' ने अनेक शोक-व्यजक कविताएँ लिखी। ये सभी कविताएँ किसी प्रिय या श्रद्धेय प्राणी के निधन पर लिखी गई। कवि 'शकर' ने अपने प्रिय मित्रो—प० कुन्दनलाल शाह, अम्बिकादत्त व्यास और गणपति के देहावसान पर क्रमश: 'वियोग वज्रपात', 'वियोग वज्राघात' और 'गणपति प्रयाण' नामक कविताएँ या श्रद्धाजलियाँ कवित्त और सवैयों मे लिखीं। इन कविताओ मे आत्मोद्गार की अपेक्षा इन व्यक्तियो का माहात्म्य-वर्णन अधिक है। इस प्रकार इनका स्वर जितना गीतिमय और भावात्मक है, उतना ही वर्णनात्मक है।

महान व्यक्तियों के निधन पर इस प्रकार की शोकाजलियाँ अर्पण करने की परिपाटी अन्य कवियो ने भी अपनायी। शोकोद्गार अभिव्यक्ति के लिए लिखी गई ये आरम्भिक कविताएँ श्रद्धाजलि के रूप मे रची गई। इसका एक कारण है। वे अधिकांश व्यक्ति जिनके कारण शोक-सतप्त होकर काव्य-रचना की गई देश और समाज की पूजी थे, व्यक्ति की नही। ऐसी स्थिति मे उनका अभाव व्यक्ति की नही समाज की क्षति थी। पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्ति की सीमा से विस्तृत होकर जितने व्यापक और समाजगत होते जाते है, उतनी ही उनमे घनत्व, और अतरंग भाव की न्यूनता होती जाती है। जिस व्यक्ति से निजी सम्पर्क की अपेक्षा समाजगत ससर्ग और सम्बन्ध होता है, उसके प्रति आत्मीय स्नेह के स्थान पर उतनी ही सर्वगत श्रद्धा की भावना उत्पन्न होती जाती है। यही इन कविताओ मे व्यक्तिगत वेदना और गीति-तत्त्व की परिक्षीणता का कारण है। इनमे जो व्यक्ति आत्मीय मित्रो की परिधि मे आते भी थे, उनका सामाजिक महत्त्व असदिग्ध था, अत कवि ने व्यक्तिगत शोक और सताप का विस्तार समाज तक कर लिया है,परिणामत: वह उनके महत्त्वपूर्ण कार्यों का वर्णन कर श्रद्धार्पण करने लगा है।

इनमे एकमात्र अपवाद कवि रूपनारायण पाण्डेय की 'दलित कुसुम' नामक अन्योक्ति है जो किसी अबोध बालक के निधन पर कुसुम को सम्बोधित कर लिखी गई। अन्य रचनाओं की अपेक्षा इस शोक-गीति का स्वर व्यक्तिगत है। आद्यन्त कवि की अपनी कारुण्य-धारा कविता मे प्रवाहित हुई। अबोध बालक की अकाल मृत्यु पर कवि क्षुब्ध है, उसके महत्त्ववर्णन का प्रश्न ही नही उठा, अत: इस रचना मे उसकी निजी वेदना की उद्गीथि है परन्तु विशेष चिन्तन और मनन नही। महत्त्वपूर्ण कवियों के निधन पर कुछ अन्य शोक-गीतियाँ भी लिखी गईं। मैथिली-शरण गुप्त ने कवि 'प्रसाद' के निधन पर सुन्दर गीति की रचना की परन्तु इसकी मूल भावना

भी व्यक्तिगत शोक से विस्तृत है।

कामता प्रसाद गुरु ने कवि 'ग्रे' की एलेजी का अनुवाद 'ग्रामीण-विलाप' नाम से किया। परन्तु हिन्दी-साहित्य मे व्यक्तिगत शोक से प्रेरित गीतियाँ बहुत कम लिखी गईं। निराला की 'सरोज स्मृति', कवि प्रसाद की 'आँसू' और मैथिलीशरण गुप्त की 'अंजलि और अर्घ्य' का उल्लेख ही इस क्षेत्र में विशेष रूप से किया जाता है। इन तीनो कविताओं में से शोक की तत्काल आवेगमय अभिव्यक्ति 'सरोज स्मृति' मे ही मिलती है। वह कवि के प्रियजन के वियोग से सतप्त हृदय की निजी सवेदना और अभिव्यक्ति है, अत. उसमे व्यथा का सहज और मार्मिक, किन्तु सयत उद्रेक मिलता है। प्रसाद के 'आँसू' मे व्यक्त वेदना, तिल-तिल कर एकत्र घनीभूत पीड़ा का सहज प्रवाह है, किसी सहसा होने वाले आघात और शोक का परिणाम नहीं, अत उसमें भावनाओं का निर्बाध आवेग नही आँसुओ की रिमझिम बरसात है। शनैः-शनैः पुजीभूत पीड़ा मस्तिष्क में स्मृति बन जाने के कारण सयत और व्यवस्थित हो गई है। कवि ने स्वय प्रेरणा की व्याख्या आरम्भ मे ही की है.

इस करुणा कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों मे वेदना असीम गरजती ?
मानस-सागर के तट पर क्यों लोल लहर की घातें
कल-कल ध्वनि से हैं कहतीं कुछ विस्मृत बीती बातें ?[1]

कवि स्वयं अपने इस मानस-मन्थन से, विस्मृत पीडा के पुनः आन्दोलन से व्यथित है। उसकी व्यक्तिगत निराशा, दार्शनिक चिन्तन की छाया मे व्यक्त हुई है, फिर भी उसमे भावनाओं का झझावात पर्याप्त है। विगत की स्मृति करके कवि रोता है। ज्यों-ज्यों अभाव की अनुभूति तीव्र होती जाती है त्यों-त्यों उसके रुदन में व्याकुलता और वेदना की मात्रा अधिक होती जाती है। वेदना के इस प्रवाह मे उसने कुछ मधुरतम स्मृतियाँ प्रतिबिम्बित की है और चित्र अकित किये है। स्मृति के इस वेदनामय चित्रण के बीच भी वह इस रोदन मे ही विश्व कल्याण का साक्षात्कार करता है, हमें आशा का सदेश देता है :

सबका निचोड़ लेकर तुम सुख से सूखे जीवन मे
बरसो प्रभात हिमकन-सा आँसू इस विश्व-सदन मे।[2]

इस प्रकार अन्ततः इस गीति का स्वरूप चिन्तनप्रधान हो गया है। दार्शनिकता की हल्की-सी छाया इस पर आद्यन्त वर्तमान है। अतः शोक-गीति की सभी विशेषताएँ—करुण स्वर, व्यक्तिगत अनुभूति, गाम्भीर्य और चिन्तन इस गीति मे प्राप्त होती है। केवल प्रेरणा आकस्मिक और विशिष्ट नही, शनैः-शनैः सचित, अत वेदना संयत है। प्रसाद के अतिरिक्त 'आँसू' पर अनेक कविताएँ इस युग में लिखी गई, परन्तु उनमें 'आँसू' आलम्बन है—कवियों ने प्रायः उसके स्वरूप और महत्ता का गंभीर और सुकुमार वेदना के साथ वर्णन किया है। वे कविताएँ कवि की किसी विशेष स्मृतिजन्य पीड़ा या आकस्मिक सन्ताप से प्रेरित होकर नही लिखी गई। इनसे

---

१. आँसू—प्रसाद, पृ० ३-४
२. वही, पृ० ७५

भिन्न प्रसाद का 'आँसू' स्वय आलम्बन नहीं वाहक और प्रतीक है उस वेदना का—जो कवि के हृदय मे किसी अन्य घटना और स्मृति के परिणामस्वरूप उद्भूत हुई है।

इस विधा की एक उल्लेखनीय रचना राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की मृत्यु से कवि मैथिलीशरण गुप्त के हृदय मे उद्भूत शोक की अभिव्यक्ति—'अजलि और अर्घ्य' है। यद्यपि इस कविता का आलम्बन भी अन्य महापुरुषों की भाँति राष्ट्र की सम्पत्ति रहा, परन्तु वह राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे कुछ इस प्रकार आसनस्थ था कि उसकी मृत्यु का शोक राष्ट्र और व्यक्ति दोनों को समान रूप से हुआ। इसीलिए राष्ट्रीय कवियो ने इस घटना को राष्ट्र के साथ व्यक्तिगत क्षति के रूप में ग्रहण किया। विशेषकर इस लम्बी गीति का आरम्भ और अन्त कवि-हृदय के शोक से हुआ है :

अरे राम! कैसे हम झेलें
अपनी लज्जा उसका शोक?
गया हमारे ही पापों से
अपना राष्ट्रपिता परलोक।
हे भगवान, उदित होते हैं
क्या अब भी तेरे रवि-सोम?
आँखें रहते देख रहे हैं
हम क्यों केवल तम का तोम?[1]

परन्तु इस समग्र कविता मे इसी प्रकार, आध्यान्तरिकता और भाव-दीप्ति नहीं मिलती। बीच बीच में व्यक्तितत्त्व प्रधान हो गया है और अनेक अवतरणों में घटनाओं का विवरणात्मक स्पर्श आ गया है। कहीं-कहीं कविता विचारों से भाराक्रान्त और तर्क-प्रधान है। प्रगीत तत्त्व की इस यत्र-तत्र परिक्षीणता का कारण कविता का दीर्घाकार है। विस्तार से कवि की भावना का आवेग दुर्बल पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त इस प्रगीत की रचना वास्तविक घटना के एक वर्ष बाद हुई, अतः उस समय तक शोक-विह्वलता संयत और शान्त हो चुकी थी।

इस गीति मे कवि की शोक-वृत्ति की व्यंजना अन्य भावनाओं के साथ मिश्रित रूप में हुई है। एक ओर कवि की आत्मग्लानि, दैन्य और पश्चाताप है, दूसरी ओर उसने संक्षेप में बापू के जीवन की मुख्य घटनाओं का निर्देश करते हुए, उनके गुणों और असीम उपकारों तथा स्वदेशवासियों की कृतघ्नता का हृदयद्रावक चित्र खीचा है। बापू की—विश्व-प्रेम और मानवतावाद में विकसित स्वदेश-प्रेम की भावना की भी व्यंजना साथ-साथ हुई है। आलम्बन के गुण-दर्शन की भावना का प्राधान्य होने के कारण इस गीति में श्रद्धांजलि की विशेषता आ गई है। एक ओर शोक स्थायी की आद्यन्त सघन और सप्रभाव व्यंजना, और दूसरी ओर बापू द्वारा उपदिष्ट जीवन-दर्शन का स्तवन, दोनों भावनाओं ने कविता में वस्तु और व्यक्ति दोनों आधारों को सुरक्षित रखा है। इस कविता की केन्द्रवर्ती भावना यद्यपि राष्ट्रपिता के निधन से उद्भूत कवि की मनःपीडा ही है, परन्तु कवि की पीड़ा इस ग्लानि से द्विगुणित हो गई है कि बापू का

---

१. अंजलि और अर्घ्य—मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ ७

हत्यारा हिन्दू था, अतः इस घटना से उसका व्यक्ति ही सतप्त नही, वह इसे जातिगत कलंक मानता है। साथ ही वह आलम्बन के गुण-दर्शन और माहात्म्य-वर्णन में निरन्तर प्रयत्नलीन रहता है। उसके मन मे राष्ट्रपिता के प्रति अपार श्रद्धा है। वस्तुत उसने अपनी हृदयांजलि से बापू को भावनाओ का अर्घ्य दान किया है। "राष्ट्र-पिता के प्रति यह उत्कृष्ट तथा भावपूर्ण श्रद्धांजलि है, जिसमे जीवन-वृत्त का आख्यान नही, आलम्बन का शोक-विदग्ध गौरव गान किया गया है।"

उक्त गीति उसी परम्परा का चरम विकास कही जायगी जिसका आरम्भ द्विवेदी-युग मे ही महान् व्यक्तियो के निधन पर श्रद्धांजलि अर्पण या आत्मोद्गार अभिव्यक्ति के लिए एकाध छन्द-रचना के रूप मे हुआ था; किन्तु कला और शैली की दृष्टि से वे कविताएं अत्यन्त आरम्भिक और अविकसित अवस्था की परिचायक थी और 'अजलि और अर्घ्य' इस दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है, जिसकी उत्कृष्टता का कारण आलम्बन का विश्वव्यापी प्रभाव, प्रसग की कारुणिकता, कवि की प्रतिभा और समवेदना तथा अभिव्यजना शैली की अपेक्षाकृत परिष्कृत एव विकसित स्थिति है।

गांधीजी की मृत्यु पर १९४७ ई० मे अन्य कवियो ने भी अनेक शोक-गीतियाँ लिखी। 'दिनकर' की गीति मे कवि के आहत मन मे ग्लानि से जो आक्रोश उत्पन्न हो गया है उसने उसकी भावनाओं का सतुलन खो दिया है, और इस गीति का स्वर प्रलापात्मक हो गया है। गाधीजी के निधन को इस युग के कवियो ने राष्ट्रीय हानि के साथ व्यक्तिगत क्षति के रूप मे भी ग्रहण किया, इसलिए इन गीतियो मे व्यक्त शोक व्यक्ति का शोक है। शोक-गीतियों मे 'सरोज-स्मृति'—हार्दिकता, अनुभूति की गहराई और कला की दृष्टि से इस विधा की सुन्दरतम रचना है। इसका एक कारण है—वियुक्त पात्र का कवि से निकट सम्बन्ध। अतः इतने प्रिय व्यक्ति के वियोग से कवि के मन पर जो मर्मान्तक पीड़ा हुई उसके कारण इस गीति मे हृदय की अन्तर्तम भावनाओ का उद्रेक मिलता है। इतना सहज और स्वतः प्रेरित आत्मद्रव और किसी शोकगीति मे नही प्राप्त होता। प्रायः अन्य गीतियो के आलम्बन वन्दनीय और श्रद्धेय व्यक्ति रहे है, अतः इनके स्वर में औपचारिकता आ गई है। इनकी अनुभूति मे आलम्बन के प्रति नैकटय की भावना उतनी नही है। महादेवी वर्मा ने भी रवीन्द्रनाथ टैगोर के निधन पर एक सुन्दर शोक-गीति की रचना की। धर्मवीर भारती ने सुभाष की मृत्यु पर और बच्चन ने सरोजिनी नायडू के निधन पर शोक-गीतियाँ लिखी।

हिन्दी काव्य मे रचित इन शोक-गीतियों में गहन चिन्तन, मनन अथवा दार्शनिक विषयों पर विचार और विवेचन नहीं मिलता। इनमे आलम्बन के महत्त्व-वर्णन, अर्थात् प्रशस्ति भावना के साथ वेदना-मिश्रित अनुभूति की अभिव्यक्ति ही प्रधान रूप से मिलती है। इस प्रकार इन गीतियों में पाश्चात्य 'एलेजी' के लक्षणो मे निर्दिष्ट गहन बौद्धिकता को नही अपनाया गया। एलेजी का रूप-निर्माण इनका अपना है।

पत्र-गीति (Epistle)

प्रगीत काव्य का तीसरा प्रकार है पत्र-गीति। हिन्दी के आधुनिक काव्य में उपलब्ध पत्र-गीतियों की विधा विदेशी काव्य की एपिसिल से प्रभावित है। इस युग से पूर्व सिद्धांत

और व्यवहार में इस प्रकार की किसी स्वतन्त्र काव्य-विधा के प्रयोग का कोई उदाहरण व उल्लेख नहीं मिलता। विशेषकर गीति-रूप में इस शैली में स्वतन्त्र रचनाएँ नही की गईं। हिन्दी काव्य में प्रत्यक्ष रूप से यह प्रभाव बँगला मे रचित माइकेल मधुसूदन की 'वीरांगना' से आया।

अँगरेजी मे 'एपिसिल' ऐसे पत्र का पर्याय है जो किसी अनुपस्थित व्यक्ति को लिखा जाता है। इस शब्द का प्रयोग विशेष रूप से उन पत्रो के लिए किया गया था जो प्राचीनकाल में साहित्य के रूप मे लिखे गए। इस प्रकार अपने मूलरूप मे यह शब्द किसी भी ऐसे पत्र का बोधक है जो किसी अनुपस्थित व्यक्ति को सम्बोधित करके लिखा गया हो। परन्तु सामान्य पत्र और पत्र-गीतियो मे एक विशेष अन्तर है। पत्र निश्चित रूप से एक अन्त स्फूर्त, व्यक्तिगत और असाहित्यिक रचना होती है, जिसका प्रयोग प्रत्यक्ष सवाद की असभावना की स्थिति मे किया जाता है। इसके विपरीत पत्र-गीति सार्वजनीन वक्तृता के रूप मे लिखी जाती है, इसकी रचना मानो श्रोताओ की कल्पना करके की जाती है। इसमे पत्र के समान वैयक्तिकता नही होती। इसकी रचना स्थायी साहित्य की दृष्टि से कलात्मक प्रयास के रूप मे की जाती है।[1] काव्य में एपिसिल शब्द का प्रयोग 'हारेस' की उन रचनाओ के लिए किया गया जो नीति सम्बन्धी व दार्शनिक विषयो पर, लगभग निबन्धो के रूप मे लिखी गई थी। अन्य कविताओ से उनका व्यावर्तन मुख्यत· इसी आधार पर किया गया कि वे किसी मित्रादि को सम्बोधित करके लिखी जाती थी।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है, कि एपिसिल उस पद्यबद्ध पत्र-गीति को कहते हैं जिसकी रचना यद्यपि पत्रात्मक शैली में किसी परिचित, इष्टमित्र व अन्य व्यक्ति को सम्बोधित करके की जाती है, परन्तु उसमे पत्र की सी वैयक्तिकता या अतःस्फूर्त भावोद्रेक नही होता। एपिसिल की रचना स्वत प्रवृत्त और भावात्मक होने पर भी उसमे सार्वजनीन विषय का समावेश रहता है। अतः प्रायः पत्र की अपेक्षा उसमें वर्णनात्मकता अधिक होती है तथा कभी-कभी नैतिक उपदेशात्मक दृष्टिकोण को भी प्रश्रय मिलता है। इस प्रकार की रचनाओं का लक्ष्य व्यक्ति नहीं समूह होता है। फिर भी इस काव्य-रूप की वर्णन-भंगिमा मे व्यक्ति-तत्त्व की प्रधानता और आध्यान्तरिकता होती है। सार्वजनिक बात कवि अत्यन्त आत्मीय शैली मे कहता है। इसलिए इस काव्य-रूप की गणना गीतिकाव्य की विविध विधाओं के अन्तर्गत की जाती है।[2]

---

1. Epistle—A communication made to an absent person in writing a letter, chiefly applied to those letters written in ancient times which rank as literature.

   Shorter Oxford English Dictionary, page 624

2. In its primary sense any letter addressed to an absent person—

   Epistle & Letters—A broad distinction exists between the letter and the epistle. The letter is essentially, a spontaneous; non-literary production, personal and private, a substitute for a spoken conversation. The epistle on the other hand, rather takes the place of a public speech, it is written with an audience in view, it is a literary form, a distinctly artistic effort aiming at permanence.

फ्रांस के कवियों मे यह विधा विशेष लोकप्रिय रही। अँगरेजी में भी एपिसिल-रचयिताओं की परम्परा सुनिश्चित है। हिन्दी मे पत्र-गीतियों की रचना बगला कवि माइकेल मधुसूदन की 'वीरांगना' से प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने की। उन्होने 'पत्रावली' में सात पत्र लिखे। इन सभी पत्रगीतियों का विषय ऐतिहासिक है। महाराज पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, औरगजेब, महारानी सिसोदिनी, अहिल्याबाई और रूपवती आदि वे ऐतिहासिक पात्र हैं जिनके हृदयोद्‌गार पत्रो के माध्यम से कवि ने व्यक्त किये हैं। साहित्यिक पत्र दो प्रकार के हो सकते हैं :—(१) कवि की ओर से व्यक्ति-विशेष को लिखा गया पत्र। (२) पात्र की ओर से पात्र को लिखा गया पत्र। पत्रावली के पत्र दूसरे प्रकार के है। इनमें व्यक्ति का राग नहीं, विवेक व्यक्त हुआ है। अन्तिम पत्र के अतिरिक्त जिसमे अबला नारी की त्राण के लिए पुकार है, शेष सभी पत्रो मे—असाधारण शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों को उनके स्खलन पर सत्कर्म की प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया गया है। इस प्रकार इनका स्वरूप बहुत कुछ उपदेशात्मक हो गया है। 'पत्रावली' के पत्र कवि की निजी अनुभूति की अभिव्यक्ति के अभाव मे विषयीगत तो हैं ही नहीं, परन्तु कवि-निबद्ध ऐतिहासिक पात्र भी व्यक्तिगत भावनाओं की व्यंजना नहीं करता, ऐतिहासिक घटनाओ से प्रेरित विवरणात्मक उपदेश सा देता है। इन पत्रों को तत्त्वतः प्रगीत तो कहा ही नही जा सकता, क्योकि इनमे निजी भावनाएँ व्यक्त नहीं की गई हैं। ये सभी पत्र ऐतिहासिक हैं, जिनमें दूसरो का वृत्त आबद्ध है। पत्र मे जो आत्मीयता व निजीपन उसे प्रगीत काव्य का रूप दे देता है, उसके स्थान पर इनमें कथा का विवरण सा है। 'पत्रावली' का कवि पात्रों के माध्यम से कथा का वाचन सा करता प्रतीत होता है—"अतः पत्र की वांछित चमक और उत्फुल्लता नही—प्रकथनात्मक वस्तु-विन्यास की उपलब्धि मिलेगी।" पत्र-गीतियों की शैली मे जो आत्मीय भाव, हृदय का रस, बातचीत की अनौपचारिकता, भावावेग और उल्लास मिलता है, वह इन कविताओं मे कही-कही अंश-रूप मे ही मिलेगा।

प्रेषक के व्यक्तित्व का साक्षात्कार दो ही पत्रो मे कुछ सीमा तक सम्भव हुआ है—चौथे पत्र में औरंगज़ेब के अनुताप-वर्णन के प्रसंग में, तथा अन्तिम पत्र मे संत्रस्त नारी की आत्मपीड़ा और निवेदन के रूप मे। शेष पत्रों के अधिकांश भाग मे प्रेषक उपदेष्टा के रूप में सामने आता है। उपदेश और प्रबोधन के लिए जो तर्क इन ऐतिहासिक पात्रों ने प्रस्तुत किये है, वे भी व्यक्ति-विशेष के तर्क नही, जिनमें आत्मतत्त्व और कल्पना की छाया हो, बल्कि वे ऐतिहासिक तर्क हैं जो प्रख्यात आख्यानों के साथ प्रख्यात हो गए है, तथा इसी रूप में परम्परा से दिये जाते रहे हैं। कवि ने इन ऐतिहासिक पात्रों और प्रसंगो को उनके परम्परासिद्ध रूप में ही अपनाकर केवल उनको पद्य-रूप प्रदान किया है। कवि ने पात्र से तादात्म्य स्थापित कर उसकी स्थिति की कल्पना करने का प्रयत्न नही किया, अतः प्रेष्य के प्रति कवि का अपना भाव नहीं,

---

Epistles in poetry—A branch of poetry bears the name of the Epistle, and is modelled on those pieces of Horace which are almost essays on moral or philosophical subjects and are chiefly distinguished from other poems by being addressed to particular patrons or friends.

Encyclopedia Britannica Vol. VIII, page 660.

वस्तुवर्णन प्रधान है। पत्रों की परिणति उपदेश के रूप में की गई है। इसीलिए कदाचित् कवि स्वयं भी इन्हें पद्यात्मक-पत्र मानता है, पत्रगीति नहीं। विषयीप्रधान दृष्टिकोण के अभाव मे इन पत्रों को आख्यानक पत्र या कथात्मक पत्र कहा जा सकता है।

इन पत्रों से कुछ भिन्न शैली मे 'निराला' ने 'महाराज शिवाजी का पत्र' नामक गीति की रचना की है। प्रसंग यहाँ भी ऐतिहासिक है। शिवाजी का, शत्रु की ओर से युद्ध के लिए सन्नद्ध जाति भाई राजा जयसिंह को प्रबोधन देने का प्रयत्न है। उसी प्रकार कर्तव्यच्युत क्षत्रिय को चेतावनी, पथ-निर्देश तथा सत्कर्म के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया गया है। प्रेषक और प्रेष्य दोनों ही ऐतिहासिक वीर हैं तथा वस्तुस्थिति भी घटना-प्रधान है। पृष्ठभूमि मे घटित होने वाले समस्त प्रसगों का स्पर्श आख्यान-रूप मे कर दिया गया है, परन्तु कवि ने शिवाजी की आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। उसने कल्पना से उन सभी तर्कों, युक्तियों और अनुभूतियों को व्यक्त किया है जो शिवाजी जैसे प्रबुद्ध वीर के मन में घोर अन्तर्द्वन्द्व के रूप मे उदित हो सकती थीं। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व के लिए सहज आक्रोश भी बीच-बीच में कौंध जाता है। इसके साथ इस कविता की रचना में बातचीत की सी स्वाभाविकता, आवेगदीप्ति, तर्क-वितर्क सभी कुछ वर्तमान है। प्रेषक ऐतिहासिक व्यक्ति होने पर भी कवि से तदाकृत उसका आत्म अनेक स्थलों पर उभर आया है। शत्रु होने पर भी जातिगत आत्मीयता प्रेषक ने बराबर बनाए रखी है :

अगर निज नाम से,
बाहुबल से, चढ़कर
तुम आते कहीं दक्षिण में
विजय के लिए वीर,
पत्र-से प्रभात के
इन नयन-पलकों को
राह पर तुम्हारी मैं
सुख से बिछा देता—
सीस भी झुका देता सेवा में,
साथ भी होता वीर,
रक्षक शरीर का, हम रकाब,
साथ लेता सेना निज,
सागराम्बरा भूमि
क्षत्रियों की जीतकर,
विजय-सिंहासन-श्री
सौंपता ला तुम्हें मैं—
स्मृति-सी निज प्रेम की।[1]

---

१. परिमल—निराला, पृष्ठ २१८-२१६

अनेक भाव-परिवर्तन इस गीति मे आद्यन्त हुए हैं। कही-कही वस्तुस्थिति के सत्य से अवगत कराने के लिए कवि ने उसका प्रासगिक वर्णन भी कराया है, परन्तु क्षण-क्षण परिवर्तन-शील प्रेषक की भावधारा, सम्पूर्ण प्रसंग के लिए अत्यधिक उचित और स्वाभाविक है। कही प्रबोधन है, कही अनुनय और कही ताडना और चेतावनी भी है। कुछ समय तक नम्रता से अनुरोध करने के उपरान्त, प्रभाव के अनिश्चय की स्थिति मे स्वाभाविक व्यग और दश भी वक्ता की वाणी मे आ गया है ·

क्या कहता चित्तौर गढ़ ?
मढ़ गये ऐसे तुम तुर्कों पर ?
करते अभिमान भी किन पर ?
विदेशियों-विधर्मियों पर ?
काफ़िर तो कहते न होंगे कभी तुम्हें वे ?
विजित भी न होंगे तुम औ गुलाम भी नहीं ?
कैसा परिणाम भी यह सेवा का--
लोभ भी न होगा तुम्हें मेवा का महाराज।[1]

अत· यथाप्रसग प्रेषक के मन की ग्लानि, आत्मद्रव, आवेगदीप्ति, क्षोभ और आक्रोश कविता मे अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे आत्मीयता के साथ व्यक्त होता है। व्यक्तितत्त्व सर्वथा सुस्पष्ट है। पत्र की सजीवता और सफलता इसी विशेषता मे निहित है, कि पत्र स्वय बोल उठे, अर्थात् वह इस प्रकार लिखा गया हो कि पाठक की कल्पना के सामने स्वय प्रेषक, वक्ता के रूप मे खड़ा प्रतीत हो। इस गीति मे तर्क-वितर्क की प्रश्नोत्तर शैली के प्रयोग से वार्तालाप की सी सजीवता उत्पन्न हो गई है। पत्र का प्रेषक स्वयं कवि नहीं, काल्पनिक पात्र भी नही, परन्तु कवि ने ऐतिहासिक पात्र की आत्मा से पूर्णतः तादात्म्य कर लिया है। उसकी प्रबुद्ध कल्पना, प्रगाढ़ अनुभूति और समर्थ शैली वातावरण की रक्षा मे पूर्णतः सफल हुई। 'निराला' ने एक छोटी सी पत्रगीति 'हिन्दी के सुमनो के नाम पत्र' भी लिखी।

गीत

प्रगीत-रचना की यह विधा, अन्य आधुनिक विधाओं के समान अपने मूल रूप मे अभारतीय नहीं। केवल नवीन शैली और विषयगत चेतना के प्रभाव से इस परम्परागत विधा का पुनस्सृजन और नव रूप-निर्माण किया गया है। गीत, अपने आप मे प्रगीत का कोई विशेष भेद या अन्य विधाओ से सर्वथा भिन्न रचना-प्रकार नहीं, प्रगीत का सगीत-विशिष्ट रूप है। गेय कविता किसी न किसी रूप मे विश्व की समस्त भाषाओं के आदि साहित्य मे वर्तमान रही है। यदि कहा जाय कि अधिकांश कविता का आरम्भ ही गेय रूप में हुआ तो असत्य न होगा। अतः यदि गीत का सामान्य अर्थ 'गेय काव्य' लिया जाय तो इस रूप मे यह विधा उतनी ही प्राचीन है, जितना कविता का इतिहास। परन्तु आज यह शब्द जिस काव्य-रूप के लिए रूढ़ हो गया है, उसका मूल भी उपलब्ध साहित्य मे कम-से-कम 'गीत-गोविन्द' से तो जोड़ा ही जा

---

१. परिमल, पृ० २२६

सकता है।

गीत, लघु आकार की उस प्रगीत-रचना को कहते हैं, जिसमे कवि बाह्य सगीत के प्रति सजग रहकर उसका रूप-निर्माण करता है। भावनाओं का अन्त.प्रेरित आवेग या सहज उच्छलन तो गीति-काव्य का सामान्य गुण है। दूसरे शब्दो मे, द्रवणशील भावनाओ के रूप मे आन्तरिक या भाव-सगीत तो प्रगीत-मात्र में वर्तमान रहता है। इसी अन्तःसंगीतमय कविता की रचना जब इस रूप में की जाती है कि उसमे बाह्य सगीत का विधान सहज सम्भव हो, अथवा कवि जब स्वय बाह्य-सगीत का विधान कर प्रगीत-रचना करता है, तो वह गेय काव्य गीत कहलाता है। लय का सगीत तो छद विधान के रूप में काव्य मात्र मे वर्तमान रहता है। शब्दार्थ की नियतलयता ही उन्हे कविता का रूप देती है। किन्तु सगीत से यहाँ अभिप्राय इस लय और गति के सगीत से भिन्न ऐसी रचना से है जिसे गाने में किसी प्रकार की असुविधा न हो, तथा वह सगीत कला की विधि से गेय हो सके।

प्राचीन काल से चली आती पद-शैली को राग-रागिनियों में, तथा कभी-कभी शास्त्रीय तालों में बाँधकर रचने की प्रवृत्ति भक्तों मे पर्याप्त लोकप्रिय थी। यही प्रथा भारतेन्दु और उनके समकालीन कवियों ने अपना ली। इस प्रकार शास्त्रीय सगीत के मर्मज्ञ ये भक्त कवि काव्य और सगीत के समागम मे विशेष सजग रहे और इस सम्बन्ध मे अपने ज्ञान व कौशल का परिचय देते रहे। अतः बाह्य सगीत को दृष्टि मे रखते हुए काव्य-रचना करना नई बात नहीं, हाँ काव्य-शास्त्र मे इस विधा को महत्त्वपूर्ण स्थान देकर विवेचन का विषय नहीं बनाया गया। यूँ भामह ने गेय काव्य जैसी किसी काव्य-विधा की स्थिति की ओर निश्चित रूप से संकेत अवश्य किया है।[1] संगीत की ओर ध्यान देने के कारण कवि को छन्द-चयन, अन्त्यानुप्रास-निर्वाह, छन्दक, और शब्द-चयन के प्रति विशेष सतर्क रहकर सुरुचि और विवेक से काम लेना पडता है।

आधुनिक काल में गीत शैली का स्वरूप अंगरेजी साहित्य के प्रभाववश कुछ और विशिष्ट हो गया है। प्रगीत का सबसे अधिक अन्तःप्रेरित स्वरूप गीत में ही मिलता है, अतः प्राचीन पद शैली की भाँति ये गीत कथात्मक या लोक-भावना के अभिव्यंजक नही, आध्यान्तरिक और व्यक्ति के कोमल उद्‌गारों के व्यजक होते हैं। इनमें केवल गेयता की ही रक्षा नही की जाती, भावनाओं के संगीत को यथावत् शब्दों द्वारा रूपान्तरित करने का प्रयत्न किया जाता है, अतः इनकी भाषा और शब्दचयन अधिकाधिक नाद-सौन्दर्य-युक्त होता है। गेय कविता में रुक-कर अर्थ-ग्रहण करने का अवकाश नहीं होता, अतः यथासम्भव प्रसाद गुण की रक्षा करने का प्रयत्न किया जाता है। कवि मार्मिक किन्तु सरल भावनाओं की अभिव्यक्ति इन गीतो में करता है, इसलिए मूल भावनाओं के अनुरूप प्रसादमय, श्रवण-सुखद, मधुर शब्दावली तथा प्रायः छोटे और लयात्मक छन्दों का चयन अनिवार्य हो जाता है। छन्द की लयात्मकता से यहाँ तात्पर्य ऐसे छन्द-चयन से है जिसकी लय में थिरकन हो। अन्त्यानुप्रास की योजना नियत रूप से बाह्य संगीत को दृष्टि में रखते हुए की जाती है।

---

१. देखिए—भूमिका, पृष्ठ २१

अँगरेजी मे गीत (सॉङ्ग) की उपलब्ध परिभाषाओ मे भी उपर्युक्त विशेषताओं पर ही बल दिया गया है। गेयता के आधार पर ही गीत का व्यावर्तन अन्य प्रगीत-विधाओ से किया जाता है। अँगरेजी के 'सॉङ्ग' शब्द में ही गेयता का यह भाव निहित है, और इस साहित्यिक विधा का मूल, लोक-गीतो को स्वीकार किया गया है। साहित्यिक गीतों का क्या समस्त सगीत का विकास ही पाश्चात्य चिन्ताधारा मे लोक-गीतों से माना गया।[1] सगीत की दृष्टि से लोक-गीत उस गेय सगीत का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसका विकास बिना किसी सुनिश्चित व्यवस्था तथा सहायक वाद्य-यन्त्र की दृष्टि से होता है। काव्य में जिस प्रगीत-रूप को 'सॉङ्ग' या गीत कहते हैं, उसकी रचना अपेक्षाकृत व्यवस्थित रूप में होती है। काव्य मे गीत उस छन्दोबद्ध गेय रचना को कहा जाता है, जिसकी रचना विशेष रूप से नियमित छन्दो में की गई हो, तथा वास्तव में जो गाया जा सके।[2]

कुछ विद्वानो ने बाह्य सगीत का विधान गीत के लिए अनिवार्य नही माना। इसलिए गीतो में भी उन्हें दो भेद करने पड़े। परन्तु यदि बाह्य सगीत के विधान को गीत-रचना के लिए आवश्यक नही माना जाय, तो ऐसी स्थिति मे प्रगीत और गीत मे अन्तर क्या रह जायगा? आन्तरिक सगीत तो प्रगीत की विशेषता है और गीत व प्रगीत पर्याय शब्द नही (यद्यपि कुछ विद्वानों ने उनका प्रयोग पर्याय रूप में ही किया है)।[3] वस्तुतः काव्य जाति है, प्रगीत प्रजाति और गीत उसका व्यष्टि-भेद। प्रगीत के सामान्य भाव-संगीत के साथ जब बाह्य सगीत की योजना भी की जाती है, तब प्रगीत का यह सगीत-विशिष्ट रूप 'गीत' कहलाता है। 'नार्मन हेपिल' के मतानुसार—"गीत वह छोटी कविता है जो गाने के लिए लिखी जाती है और कभी-कभी तो सचमुच उनका गान होता है, अथवा वह एक ऐसा छन्दमय स्वरूप है जो अपने मे संगीतमय होता है, जो न तो बाहरी संगीत के आधार पर ही बनाया जाता है और न तो उसका गाने के ध्येय से सृजन ही होता है, उसका गान अन्त. प्रदेश मे होता है। कहने का तात्पर्य यह कि गीत एक ओर तो वाद्य-यन्त्रों के सहारे गाये जाते है, दूसरी ओर उनका सगीत बाह्य न होकर आन्तरिक भी हो सकता है। आन्तरिक संगीत एकान्त मे बैठकर पढने वाले पाठकों को आनन्दविभोर कर देता है। इस प्रकार गीत की परिभाषा होती है ऐसी कविता जो सगीतमय, सरल एवं अतिभावात्मक हो और जिसमें लय, स्वर, तुक एवं नाद का ध्यान इस ध्येय से रखा जाय कि उसका संगीत पर्याप्त समय तक कानों में गूंजता रहे, भले ही उसका सगीत आन्तरिक हो

---

1 Song—all song, indeed all music, is based upon folk song,—From the musical stand-point, folk song represents vocal melody evolved with no thought of harmony or an accompanying instrument

Encyclopedia Britannica—Volume XX, page 986

2. A metrical composition adapted for singing, esp one having a regular verse form; such a composition as actually sung

Shorter Oxford English Dictionary, page 1945.

3. काव्य के रूप—गुलाब राय, पृ० १२०

अथवा बाह्य।"[1]

उपर्युक्त मत में शब्द-भेद से बाह्य संगीत की स्वीकृति कर ली गई। जिस रचना में लय, स्वर, तुक और नाद चारों का संगीत वर्तमान होगा, उसमे बाह्य सगीत के अभाव का प्रश्न ही नही उठता। उस रचना को कोई एकान्त मे गा गा कर आत्मविभोर होता रहे, अथवा जन-समागम मे वाद्य-यंत्रों की सहायता से गाए, इससे विशेष अन्तर नहीं पडता। गीत की अनिवार्य रूप से स्वर-साधना की जाय या नही, यह एक भिन्न बात है, किन्तु उसकी रचना में सम्भावनाएँ अवश्य निहित होनी चाहिएँ। कुछ आगे चलकर 'नार्मन हेपिल' के द्वारा किये गए गीत के दो भेदो—गेय (Vocal) और साहित्यिक (Literary) का भी उक्त प्रबन्ध में उल्लेख किया गया है। इन दो भेदो मे विभाजन इस आधार पर किया गया कि पहले, अर्थात् गेय गीतो में दूसरे की अपेक्षा शब्द के सगीत की योजना, तथा कवि की आवेगमयी भाषा में होने के कारण स्निग्धता और माधुर्य की विशेषताएँ अधिक होती हैं। बुद्धि का वैभव भी इन गीतो मे अवांछनीय है। शब्द का सगीत उसका स्वर ही होता है। अत: स्वर और शब्द का संगीत, ध्वनि के अनुपात का ही सगीत है। जहाँ तक भावावेग और भाषा की कोमलता का प्रश्न है वह प्रगीत मे भी उसी रूप मे मिलती है। यद्यपि संगीत मूलत: मधुर और कोमल कला है, अत: प्राय: मधुर और कोमल अनुभूतियों का अकन तदनुकूल भाषा मे किया जाता है, परन्तु गीत के कुछ प्रकारो—राष्ट्रीय गीत, वीर गीत आदि मे परुष और ओजस्वी भावनाओं का प्रवेश निषिद्ध नही और इनकी अभिव्यक्ति भी ओजगुण-व्यंजक तत्त्वों के द्वारा ही की जाती है। अतिशय बौद्धिकता प्रगीत की आत्मा के भी अनुरूप नहीं, अत: बुद्धि के वैभव से युक्त कविता गीति नही विचारात्मक कविता कहलाएगी।

उक्त विभाजन के अनुसार दूसरे भेद—साहित्यिक गीत की रचना—"वाद्य-यन्त्रो के सहारे गाने के ध्येय से नही होती। यह सगीत उनके स्वरूप के भीतर वर्तमान आत्मा (spirit) मे विद्यमान रहता है जो शब्दों की लय एव उनके मोड द्वारा ध्वनित होता है। यह संगीत हृदय के भीतर गूंजता है और उसका गान एकान्त मे बैठा हुआ पाठक ही कर सकता है। दूसरी विशेषता इस प्रकार के गीतकाव्य की यह होती है कि इसमे कवि के गहन भावों की अभिव्यंजना साधारण शैली मे न होकर साहित्यिक शैली में होती है। इसीलिए इन्हे साहित्यिक गीत कहा गया है।"[2]

साहित्यिक गीत का उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर व्यावर्तन गेय गीतों से नही किया जा सकता। कम से कम यह विभाजन आधुनिक हिन्दी काव्य मे उपलब्ध गीतों पर लागू नही होता। 'निराला', महादेवी, और पन्त की रचनाओं से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनकी रचना साहित्यिक शैली में हुई है तथा उनमे वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जिनका उल्लेख साहित्यिक गीत के प्रसंग में किया गया, तथा जो साथ ही गेय भी है। यह बात व्यवहार-सिद्ध है। अत: इस विभाजन में जिन्हें साहित्यिक गीत कहा गया है वे वस्तुत: प्रगीत हैं, तथा

---

१. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दुबे, पृ० ३४४-४५

२. वही, पृ० ३४५-४६

जिन्हें गेय गीत कहा गया वही विशुद्ध गीत हैं। शैली सम्बन्धी अनुबन्ध गीतों मे केवल यही होता है कि विषय और शैली, दोनों दृष्टियो से इनकी रचना इस रूप में की जानी चाहिए कि उनकी स्वर-साधना सहज सम्भव हो सके। गीत का विषय इस प्रकार का होना चाहिए कि वह सहज ही मर्म-स्पर्श कर सके तथा सरलता से ग्राह्य हो। अत्यन्त सूक्ष्म व गहन विषय गीत की सहज प्रेष्यता मे बाधक होते हैं।

शैली की दृष्टि से, विषयानुकूल शब्द-योजना के अतिरिक्त शब्दो के चयन और छन्द-योजना मे कवि को विशेष सतर्क रहना पडता है। गीत की वाहक वही पदावली हो सकती है, जो समस्त न हो, जिसमे उच्चारण-सम्बन्धी कोई कठिनाई न हो, तथा जो प्रसाद गुण-युक्त हो (माधुर्य और ओज गुण का पदावली में समावेश विषय की आवश्यकता के अनुकूल किया जा सकता है), तथा साथ ही जो श्रवण-सुखद हो। उच्चारण और श्रवण में सुखद पदरचना गीत का माध्यम होती है। इसके साथ, कवि शब्दों का चयन प्रायः इस प्रकार सुरुचि और विवेक से करता है कि उनका गायन सरल हो। इसके लिए समस्त व्यजनो की अपेक्षा नादप्रधान स्वरो का प्रयोग गीत-रचना के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। स्वर-वैविध्य मे गति और आरोह-अवरोह का अवकाश अधिक होता है, और व्यजनों में नाद-सौन्दर्य। अतः कवि विषयानुकूल स्वर और व्यजन मैत्री की योजनाएँ इस रूप में प्रस्तुत करता है कि उनमें स्वय उच्चारण-सगीत अथवा ध्वनि-सगीत उत्पन्न हो जाता है।

छन्द-चयन भी गीतो का इस दृष्टि से किया जाता है कि उनमे स्वरो का आरोह-अवरोह (भले ही शास्त्रीय दृष्टि से न हो) सहज रूप मे सम्भव हो सके। अतः प्रायः छोटे आकार के ऐसे छन्दों को गीत-रचना का आधार बनाया जाता है जिनमे गति और प्रवाह तथा लचीलापन हो। गीत-रचना के लिए मात्रिक छन्दों का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त होता है। वर्णिक छन्दो की नियत और एकरस लय मे उस प्रकार स्वरो के यथारुचि सयोजन का अवकाश नही रहता, जैसा मात्रिक छन्दो मे। दीर्घ और लघु मात्राओ के नियत स्थान के अभाव मे सगीत-गुण और नादमयता की दृष्टि से कवि मात्रिक छन्दो में मात्राओ और स्वरों का मनोनुकूल प्रयोग कर सकता है। अधिक मात्राओ वाले बड़े छन्द भी सगीत-रचना की दृष्टि से विशेष अनुकूल नही होते। गीतों मे प्रायः प्रथम पक्ति टेक की होती है जिसकी आवृत्ति प्रत्येक अवतरण के उपरान्त होती है। छन्दक या टेक की योजना सगीत-तत्त्व की वृद्धि मे सहायक होती है।

गीत की भाषा भी, जैसा कहा जा चुका है अत्यधिक अलकृत, समस्त, व बोझिल न होकर प्रसादगुणयुक्त, मधुर और सगीतमय होती है। इसके अतिरिक्त प्रगीत की भाँति अन्तःस्फूर्त अभिव्यक्ति, भावावेग, द्रवणशीलता, भावान्विति आदि विशेषताएँ गीत मे भी वर्तमान होती है। आकार की दृष्टि से प्रगीत भी यद्यपि सक्षिप्त होता है फिर भी यदि कवि की भावधारा कुछ दूर तक प्रगीत के माध्यम से बहती रहे तो रचना-सम्बन्धी कोई बाधा सम्मुख नही आती, परन्तु गीत मे गेयता की रक्षा के कारण आकार का विस्तार सम्भव नही, अत. आकार की सक्षिप्तता प्रगीत का अपेक्षित तथा गीत का अनिवार्य प्रतिबन्ध है।

गीतों के प्रकार—गीतों का विषय-भेद से अनेक भेदों में विभाजन किया गया है, परन्तु रूप और शैली की दृष्टि से गीतों के दो प्रमुख प्रकार है :

(क) लाक गीत और (ख) कला गीत ।

उक्त दोनो प्रकारो के मूल दृष्टिकोण, परिणामत: बाह्य रूप में अन्तर होता है । कला-गीत साहित्यिक प्रगीत का ही पर्याय है, केवल उसकी शैली मे गेय सगीत का प्रयोग होता है, परन्तु इनसे भिन्न, लोक-गीतो मे गेयता उनका प्राण-तत्त्व होता है, परन्तु उनकी शैली सायास अलकृत और साहित्यिक नही होती, अर्थात् इन गीतो मे काव्यगुण (Poetic Art) तो होता है, काव्य-शिल्प (craft) नही । काव्य-गुण से अभिप्राय भावमयता, अन्त.स्फूर्त और सहज अभिव्यक्ति से है, और काव्य-शिल्प से आशय बाह्य अलकरण, सज्जा, और अभिव्यक्ति के जडाव और सौन्दर्य से है । लोकगीतो मे लोक-जीवन की सहज अभिव्यक्ति होती है, अत. इनका मूल भाव व्यक्तिगत न होकर प्राय सामूहिक होता है । अर्थात् इनका सम्बन्ध मानव-मन की किसी ऐसी मौलिक अनुभूति से होता है जो सहज और व्यापक हो, नितान्त व्यक्तिगत और अन्तरंग अनुभूति इन गीतो का विषय नही होती । इनसे भिन्न कला-गीतो के कुछ विशेष प्रकारों को छोडकर (राष्ट्र-गीत, प्रभाती आदि) शेष मे व्यक्ति-तत्त्व का प्राधान्य होता है । इन गीतों का मूल भाव नागर होता है । लोकजीवन मे सामूहिकता को, और नागरिक जीवन मे व्यक्ति-तत्त्व को प्रधानता दी जाती है, अत. लोकगीतों की चेतना सामूहिक और कला-गीतो की व्यक्तिगत होती है । लोकगीतो के मूल मे ग्रामीण या वन्य पृष्ठ-भूमि की प्रधानता रहती है, तथा कलागीतो मे नागरिक पृष्ठभूमि की । लोकगीतो का रचयिता व्यक्ति होने पर भी, वह भाव के सामान्य रूप को ही अभिव्यक्ति देता है, विशेष रूप को नही, अत: इन गीतो में अभिव्यक्त भाव, वर्गगत और 'टाइप' का प्रतीक होता है । कलागीतो की भाँति इनके रचयिता किसी विशिष्ट परिस्थिति या मनोदशा का चित्रण नही करते ।

लोक-गीतो की कला अथवा काव्य-रूप भी प्राय अनगढ तथा निसर्ग सुन्दर होता है । उनका अभिव्यजना-सौन्दर्य आहार्य व प्रयत्न-साध्य नही, सहज होता है, अत: सचेष्ट कलात्मक सस्कार और परिष्कार का इनमे अभाव मिलता है । इनसे भिन्न, कला-गीतों मे सचेष्ट कला का सद्भाव होता है । उनकी कला के बाह्य प्रसाधनो मे एक प्रकार की विदग्धता, नक्काशी, तथा सायास अलकरण, शिल्प, व सज्जा प्राप्त होती है । बाह्य कला की यह उत्कृष्टता, सुकुमारता और सौन्दर्य (शब्द और अर्थ का) गीतकार का साध्य होता है । गीतो की शैली के इसी सौन्दर्य और मसृण कला को दृष्टि मे रखते हुए आग्ल साहित्य मे गीत की अभिव्यजना को प्रगीत काव्य का शृगार माना गया है । गीतो का सुव्यवस्थित निष्पादन कलात्मक सिद्धि का अभिषेक है । उनके सरल और प्रतिभूत विषय एव शैली मे आकृतिगत पूर्णता की सुकुमारता निहित रहती है, तथा प्रमाता के मन मे अनुभूति और आशका व्याप्त रहती है कि उनकी यह निश्चिन्तता विषम अर्थ मे अस्पृश्य है । अत. एक शब्द का परिवर्तन, एक असावधान स्पर्श, उन्हे विरूप कर देगा, फिर भी हमारे मन मे उन्हे आकारगत अनगढता के कारण अधिक स्थूल रूप मे देखने की कामना नही होती ।[1]

---

1 Finally, the formal perfection of the songs is a type of the beauty which is the crown of artistic achievement Their simple secure matter and

आकार की दृष्टि से गीत विशेष बृहद् नहीं होते। पंक्तियाँ भी प्रायः छोटी होती हैं जिससे गाने मे सुगमता रहे। गीत-रचना के लिए वर्णिक छन्दों की अतिनियतलयता की अपेक्षा मात्रिक छन्दो मे लय के परिवर्तन और रुचि के अनुसार सयोजन के लिए अधिक अवकाश रहता है। गुरु-लघु वर्णों का, गीत की भावना और अभीष्ट उच्चारण-संगीत की दृष्टि से कवि स्वयं स्थान-निर्धारण कर लेता है। अतः उसे छन्द की रूढिबद्ध एकरस संगीतात्मकता के अनुरूप अपने गीत नही ढालने पड़ते। मिश्र छन्दों का प्रयोग गीत मे प्रायः किया जाता है। परन्तु यह मिश्र छन्द, अनेक छन्दों या विविध लय-खण्डो के योग से नही बनाए जाते, और इस प्रकार की निर्मित एक कड़ी अथवा एक इकाई की आवृति, पुनः पुनः गीत के विविध भाव-खण्डों या चित्रों में की जाती है।

आधुनिक युग में उपलब्ध गीत काव्य

आधुनिक हिन्दी काव्य मे दोनो प्रकार के गीत लिखे गए। कलागीत संख्या की दृष्टि से इनमें अधिक हैं, तथा कुछ गीत मूलतः साहित्यिक व कलात्मक होने पर भी अशतः लोकगीतों की कला से प्रभावित हैं। कलागीतो मे भी अनेक प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं, किन्तु प्रधानता आध्यान्तरिक गीतों की ही है। गीत-रचना की यह शैली पाश्चात्य सॉङ्ग के बहुत समीप, और उससे प्रभावित है। इससे भिन्न, कलागीतों की एक अन्य शैली हिन्दी-काव्य की वह परम्परागत शैली है, जिसमें पूर्ववर्ती भक्त-कवियो—सूर, तुलसी, मीरा आदि के आत्मनिवेदनात्मक विनय के पद, तथा कृष्ण-भक्तों के लीला-वर्णन के कथाश्रित पद आते है। पहले प्रकार के पदो की अनुभूति एकान्तिक, आन्तरिक है और दूसरे की मूल अनुभूति की प्रेरणा या उद्दीपन, इष्ट की वस्तुगत लीलाओ में निहित रहता है। अतः विवेच्य काव्य में उपलब्ध गीतों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(१) परम्परागत शैली के अनुकरण पर रचित गीत, (२) अन्य भाषाओ के काव्य से प्रभावित गीत-रचना (३) नवीन चेतना और पाश्चात्य गीत-रचना की शैली के प्रभाव स्वरूप विरचित गीत। इन गीतों के, शैली और दृष्टिकोण-भेद से पुनः विविध भेद किये जा सकते हैं।

(१) **गीतों के परम्परागत प्रकार**—पूर्ववर्ती गेय काव्य के लिए 'पद' शब्द का प्रयोग सामान्यतः किया गया है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है—ये पद अधिकतर भक्ति के प्रसग में लिखे गए। अतः इनमे भक्तिमार्ग के विभिन्न पहलुओ—भक्त के दैन्य, ईश्वर की महिमा, गौरव, संसार की असारता, विनयप्रधान आत्मनिवेदन आदि की अभिव्यक्ति हुई है। जहाँ इस भक्ति का आलम्बन ईश्वर का निर्गुण-निराकार रूप रहा तथा जहाँ सगुण रूप की केवल सैद्धान्तिक या भावात्मक स्वीकृति की गई वहाँ इनमें आन्तरिक भावनाएँ, भक्त की रहस्यानुभूतियाँ,

---

manner have that delicacy of perfect shape which seems always fragile, and so makes the beholder feel almost with fear that their certainty is 'securus' in its dangerous sense A change of Word, a careless touch, would spoil them Yet we have no desire that they should seem more robust by less perfect in form. Elizabethan Lyric by Catherine Ing—page 230

आत्मविह्वलता व्यक्त होती है। इन पदों में कभी-कभी ससार की असारता और आराध्य के महत्त्व-वर्णन के प्रसंग में वर्णनात्मक स्थल आ गए है, परन्तु ये भी क्रमशः भक्त हृदय के विराग और राग के ही व्यजक है। दूसरा वर्ग उन पदों का है, जहाँ आलम्बन सगुण-साकार है। कवि, कल्पना के द्वारा मनःचक्षुओ से उसकी लीला का सर्वत्र साक्षात्कार कर आत्मविभोर होता रहा है। उसका आलम्बन सदैव उसकी कल्पना मे स्थित रहकर अपनी लीलाओ द्वारा उसकी भावनाओं को उद्दीप्त करता है। ऐसे पदों मे कवि द्विविध अभिव्यक्ति करता है। एक ओर वह आराध्य के रूप और लीला का वर्णन कर अनुभूति का आधार खडा करता है, दूसरी ओर आलम्बन के प्रति अपनी रागात्मक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति करता है। इनमें पहले प्रकार के पदों का स्वरूप वस्तुनिष्ठ और दूसरे का अन्तर्वृत्ति-निरूपक होता है। इनकी अनुभूति भी अत्यन्त स्पष्ट, सरल और मार्मिक तथा समाजानुमोदित होती है, अत. अभिव्यजना मे स्पष्टता, मार्मिकता और प्रभविष्णुता व्याप्त रहती है। आध्यन्तरिक गीतों की भाँति इन पदों की कला रम्याद्भुत कला नही होती और न ही इनमें लक्षणा-व्यंजना का वैचित्र्य, चमत्कार, दूरारूढ़ अर्थ-विधान मिलता है।

गेय पदो मे लीला-वर्णन भारतेन्दु-युग के उपरान्त अत्यन्त विरल हो गया। इस परम्परा मे केवल रूढि-पालन के लिए कुछ रचनाएँ हुई, परन्तु इनमें वह भाव-तन्मयता और आत्मविभोरता नहीं मिलती, जो कृष्ण-भक्तों की पद-रचना मे प्राप्त होती है। यूँ कवियों ने इन्हे सायास गेय रूप देने का प्रयत्न किया है। कृष्ण-लीला-वर्णन के अनुकरण पर 'पूर्ण' ने राम की धनुर्विद्या-शिक्षण का वर्णन बाह्य संगीत का विधान करके किया। कवि ने एक टेक की पंक्ति का नियोजन किया है जिसकी आवृति रूपमाला छन्द मे रचित युग्मक के उपरान्त होती है। सम्पूर्ण कविता मे राग (देश) और ताल (झूमड़ा) का निर्देश भी कवि ने कर दिया है, परन्तु इस रचना मे गेयता वर्तमान होने पर भी सहज अन्त स्फूर्त अभिव्यक्ति और तन्मयता का अभाव है। दृष्टिकोण में वस्तुपरक वर्णन की प्रवृत्ति अत्यन्त स्पष्ट है :

सुरपुर होत जयजयकार।
शस्त्र विद्या आज सीखत अवध राजकुमार। सुरपुर।
कुल पुरोहित नियत कीन्हीं जो लगन शुभ वार।
ताहि में रघुवर गहे कर चाप सर तरवार। सुरपुर।[1]

उक्त पंक्तियों में तन्मयता के अभाव का एक कारण आलम्बनों के स्वरूप का अन्तर भी है। माखनचोर लीलावतारी कृष्ण की सत्य और वत्सल भाव से भक्ति करने वाले कवि जितने नैकट्य की अनुभूति कर सकते थे, उतनी धनुर्धारी मर्यादा पुरुषोत्तम की दास्य भाव से आराधना करने वाले कवि नही। यह दृष्टिकोण हमारे संस्कारो के साथ कुछ इस रूप में बँध गया है, कि रामलीला के वर्णनों में अनौपचारिकता और वह तन्मयता व आत्मविभोरता आज भी नहीं आ पाती। अन्यथा भी राम के जीवन मे कोमल, लीलामय प्रसगों को आरम्भ से ही प्रचार नही दिया गया, अतः राम के धनुर्विद्या-अर्जन के प्रसंग मे उत्साह तो हो सकता है

---

१. कविता-कलाप—सम्पादक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ० ३

मसृणता, लालित्य, और आत्मविस्मृति नही। राम के आराध्य-रूप के साथ पूज्य भाव का आवरण इतनी दृढ़ता से लिपट गया है कि उनके मर्यादावेष्ठित रूप को इस वृत्त से बाहर लाकर चित्रण का प्रयत्न कवियो ने प्राय: नही किया—विशेषकर प्राचीन परम्पराओं और सस्कारों के प्रति आस्थावान कवियो ने। नई धारा के कवियों ने शैली और काव्य-रूप के साथ काव्य-विषय भी नए ही उठाए अत: लीला-वर्णन की इस पुरातन पद्धति को उन्होने नही अपनाया। प्रासगिक रूप मे जिन कविताओ मे कृष्ण-लीला का उल्लेख हुआ है वहाँ भी वह कविता का प्रमुख विषय नही प्रासगिक विषय है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की रचनाओ मे, प्राचीन पद-शैली को नही अपनाया गया, विशेषकर कृष्ण के वत्सल रूप को।

ला० भगवानदीन ने कुछ राग-रागिनियो मे बँधे गेय पद कृष्ण की फाग-क्रीड़ा के वर्णन के लिए लिखे हैं। ये पद 'रगपचमी' शीर्षक मे 'नवीन बीन' मे सकलित हैं। उक्त पदों मे गेयता है, परन्तु आध्यन्तरिकता की अपेक्षा वर्णनात्मकता की प्रधानता है, अत: इनमे बाह्य सगीत का विधान तो किया गया है, किन्तु आन्तरिक भाव-सगीत का अभाव है। कारण, इनमे कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ, विशुद्ध आत्माभिव्यजन नही, उनका वस्तुगत आधार अत्यन्त स्पष्ट ही नही, प्रमुख हो गया है।

परम्परागत पद-रचना की शैली के अनुकरण पर आध्यन्तरिक दृष्टिकोण विनयपरक आत्मनिवेदनात्मक पदों मे मिलता है। इस प्रकार के पद इस युग मे बहुत कम लिखे गए, परन्तु इनका एकान्त अभाव नही। रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण', कवि 'शकर', रूपनारायण पाण्डेय आदि सभी ने उल्लेखमात्र के योग्य पद-रचना की। इन पदो मे भक्त कवियो की-सी आत्मविभोरता, दैन्य, विनय और आस्था नही मिलती। इनकी सख्या भी बहुत नही है। श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय और वियोगी हरि ने भी भक्तिकालीन पद-परम्परा के अनुकरण पर रचनाएँ की। काव्य मे नवीन शैली और शिल्प के प्रवर्त्तक और उन्नायक कवियो ने इस परम्परागत पद-शैली का कायाकल्प किया है। कवि निराला ने 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीत गुज' मे कुछ ऐसे गीतो की रचना की है, जो वर्ण्य विषय और मूल भावना की दृष्टि से परम्परागत, और शैली की दृष्टि से नवीन है। इन गीतो मे अशरण-शरण, पतितपावन, दीनबन्धु, त्राता, ईश्वर से विपद्ग्रस्त भक्त का विनयपूर्ण आत्मनिवेदन व्यक्त हुआ है। परन्तु इनकी भाषा, छन्द, अभिव्यजना, सभी कुछ नये रूप मे अपनाया गया है। राग और ताल-बन्धो के निर्देश की परम्परागत पद्धति से भी ये गीत मुक्त हैं :

दुरित दूर करो नाथ,
अशरण हूँ, गहो हाथ।
हार गया जीवन रण,
छोड़ गये साथी जन,
एकाकी, नैश-क्षण,
कण्टक-पथ, विगत पाथ।
देखा है, प्रात किरण
फूटी है मनोरमण,

कहा, तुम्हीं को अशरण—
शरण, एक तुम्हीं साथ।[1]

(२) कुछ गीतो की रचना इस युग मे संस्कृत के गीत-गोविन्द और बंगला के वन्दे-मातरम् की शैली से प्रभावित होकर की गई। ऐसी रचनाएँ भी संख्या में बहुत नही थीं, और इनमे प्रायः जननी जन्मभूमि के स्तवनगान और इष्ट के प्रति भावनाओ की हृदयहारी अभिव्यक्ति मिलती है। स्वय द्विवेदीजी ने उपर्युक्त शैलियो से प्रभावित गीत लिखे और उनका अनुसरण अन्य कवियो ने भी किया है

(क) इष्टदेव आधार हमारे, तुम्हीं गले के हार हमारे,
मुक्ति मुक्ति के द्वार हमारे, जै जै जै जै देश।
जै जै सुभग सुवेश।[2]

(ख) वदेभारतम्।
सुजनम्, सुवनम् अतिशयशोभनम्
हर्ष वर्द्धनम् भारतम्।[3]

राष्ट्रीय गीतो पर उर्दू की 'गजल' शैली का भी प्रभाव पड़ा। स्वय द्विवेदीजी तथा अन्य कवियो ने कुछ देशभक्ति की गजले लिखी। इन गजलों की भाषा मे हिन्दी और उर्दू का मिश्रण, और लय पर उर्दू का प्रभाव स्पष्ट है। स्वयं कवियो ने शीर्षकों मे यह स्वीकार किया है। 'गजल-देशभक्ति' शीर्षक मे रायदेवीप्रसाद द्वारा रचित गज़ल की कुछ कड़ियाँ प्रस्तुत है·

कभी हिन्द में भी कमाल था तुम्हें याद हो कि न याद हो,
यही आप अपनी मिसाल था तुम्हें याद हो कि न याद हो
कला विद्या नीति में, पेशों में ये समस्त भूमि के देशों मे।
मानों चक्रवर्ती भुवाल था। तुम्हें……[4]

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी उर्दू की गीत-रचना से प्रभावित राष्ट्र-गान लिखे। इनकी शैली गजलो से भिन्न थी :

मेरे प्यारे हिन्दुस्तान
तू था दुनियां का सरताज
तेरा है हम सबको नाज
तेरे हाथ हमारी लाज
तुझसे ही हम सबका त्राण।[5]

---

१. अर्चना—निराला, पृष्ठ ६
२. द्विवेदी काव्यमाला, पृष्ठ ४५४
३. पराग—रूपनारायण पाण्डेय, पृष्ठ ३६
४. पूर्ण-संग्रह, पृष्ठ २३८
५. द्विवेदी काव्यमाला—पृष्ठ ४५४

इन रचनाओं में परवर्ती राष्ट्रीय गीतों से एक अन्तर है। द्विवेदी-युग तक स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रयत्नों ने क्रांतिकारी रूप धारण नहीं किया था, अतः इनके स्वर में वह आग, ज्वाला, अन्तःस्फूर्त अभिव्यक्ति, और उत्तेजनाजन्य आवेग नहीं है जो दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में व्यक्त हुआ है। भगवतीचरण वर्मा के प्रबुद्ध अहंकार का भी इनमें अभाव है, केवल अत्यन्त सहज रूप में देश के प्रति कवि का प्रशस्ति-भाव वन्दनात्मक स्वरों में व्यक्त हुआ है।

(३) तीसरी प्रकार की गीत-रचना अँगरेजी काव्य के 'सॉंग' के अनुकरण पर की गई। आधुनिक काव्य में गीत शब्द 'सॉंग' के पर्याय-रूप में ही प्रयुक्त होता है, गेय काव्य के अर्थ में नहीं। यद्यपि गीत का प्रयोग उसी रचना के लिए होना चाहिए जो गेय हो, परन्तु 'सॉंग' में गेयता के साथ व्यक्तिगत अनुभूति, कलात्मक परिष्कार आदि की जो विशेषताएँ सहज रूप में स्वयं अन्तर्भूत हो गई है वे पाश्चात्य काव्य के ही प्रभाववश। इस विधा का उल्लेख अन्य भाषाओं से प्रभावित गीत-रचना के अन्तर्गत इसलिए नहीं किया गया, कि इनके मूल दृष्टिकोण और वर्ण्य विषय पर रोमानी दृष्टि का प्रभाव होने पर भी इनका संगीत, छन्द-विधान, अप्रस्तुत-योजना और संस्कार, भारतीय ही रहे। इन कवियों ने जिस प्रकार अन्य प्रगीत-विधाओं को मूल रूप में अँगरेजी साहित्य से ग्रहण करने पर भी, उनका विकास अपनी रुचि और विवेक के आश्रित किया, उसी प्रकार व्यक्तिगत अनुभूतियों के निरूपक गीतों की रम्याद्भुत कला और विषय का प्रभाव ग्रहण करने पर भी उन्हें अपने साँचों में ढाला है। छन्द इनके अपने हैं, उनमें किये गए नवीन प्रयोग भी इनकी मौलिकता के कारण हैं, विदेशी प्रभाववश नहीं। संगीतात्मकता का समावेश भी इन्होंने भारतीय शास्त्रीय अथवा लोक-संगीत की दृष्टि से किया, विदेशी दृष्टि से नहीं। हाँ, इनकी भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति, मूर्त-विधान, अर्थव्यंजक नाद-सौन्दर्य आदि पर अवश्य विदेशी प्रभाव रहा है। परन्तु सामान्यतः आधुनिक काल के काव्य की समग्र अभिव्यंजना-कला इन प्रवृत्तियों से प्रभावित है, और विशेष रूप से प्रगीत-रचना। अतः गीत-रचना के क्षेत्र में यह प्रभाव विलक्षण अथवा एकाकी नहीं। गीत-रचना में प्रायः अन्त्यानुप्रास का निर्वाह, मुक्त छन्द का अभाव, छन्दक आदि का प्रयोग और संगीत-साधना की दृष्टि से छंद-चयन, परम्परागत संगीत और काव्य के कलागत मूल्यों में इन कवियों की आस्था के प्रमाण है। इस युग की गीत-रचना भारतीय लोक-संगीत की कला से तो प्रभावित है, विदेशी संगीत से नहीं।

इन गीतों में मुख्य रूप से तीन प्रकार की रचनाएँ की गई। (१) आत्मानुभूति के व्यंजक स्वानुभूतिपरक गीत (२) प्रकृति आदि के वर्णन के लिए लिखे गए गीत और (३) राष्ट्रीय गीत एवं वन्दनाएँ। सर्वाधिक संख्या और महत्त्व इनमें पहले प्रकार के ही गीतों का है। इनमें मर्मस्पर्शिता और अनुभूति की गहनता, वर्णनात्मक गीतों में उल्लास, और राष्ट्रीय गीतों में ओज और स्फूर्ति मिलती है। पहले प्रकार के गीतों में तन्मयता, दूसरे में आह्लाद, और तीसरे में उत्तेजना प्रदान करने का गुण होता है।

प्रथम प्रकार के गीतकारों में महादेवी वर्मा, पन्त, निराला, प्रसाद, बच्चन और रामकुमार वर्मा का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। प्रसाद की अधिकांश गीत-रचना उनके

नाटकों में ही प्रसंगवश की गई। इनमें कुछ गीत राष्ट्रगान के रूप में लिखे गए, शेष की रचना विशिष्ट पात्रों की आत्माभिव्यक्ति के रूप मे हुई। पात्र जिस भावातिशयता को सामान्य बोल-चाल की भाषा में व्यक्त नहीं कर पाता, उसके लिए प्राय गीत का आश्रय लेता है। इन गीतों मे भावावेग, सुन्दर कल्पना और उत्कृष्ट कला प्रचुर है। सगीत की शास्त्रीय परिपाटी के अनुसार ही विभिन्न राग-रागिनियों मे इनका बन्धन किया गया है। इस शैली के कुछ गीत 'झरना' और 'लहर' मे भी संकलित है। पन्त के गीतों में सौन्दर्योन्मेष, कोमल भावनाएँ और सरल, निश्छल जिज्ञासा अधिक मिलती है। कवि के हृदय की कोमलतम अनुभूतियाँ, उतनी ही कोमल और संगीतमय भाषा में रूपान्तरित हुई हैं। स्वर-साधना की दृष्टि से उनके गीत कितने सफल हो सकते हैं ? इसका प्रमाण उनकी प्रसिद्ध गीत रचना—"बाँध दिये क्यों प्राण प्राणों से" है। प्रसादमयता, भाव-सगीत, सौन्दर्यव्यजना और सारल्य, पन्त के गीतो का प्राण है। 'निराला' के गीतों में ओज की प्रधानता स्वीकार की गई है, परन्तु उनके गीतों में कोमल भावनाओं का बहिष्कार नहीं। गाने की दृष्टि से उन्होने जिन गीतों की रचना की, उनमे तो विशेष रूप से कोमल भावनाओं और सौन्दर्य-व्यंजक वर्णनों को स्थान दिया। कोमलता का यह आग्रह उनके मन में इतना प्रबल रहा है कि उन्होने कही-कहीं नारी-भावना के अनुकूल 'अलि' को सम्बोधन कर गीत रचना की :

अलि, घिर आए घन पावस के।
छोड़ गए गृह जब से प्रियतम
बीते अपलक दृश्य मनोरम,
क्या मैं हूँ ऐसी ही अक्षम,
क्यों न रहे बसके
अलि, घिर आए घन पावस के।[1]

कैवल्य 'निराला' के गीतों मे न मधुर-मंजुल भावनाओं का है और न परुष भावनाओ का। प्रेम और सौन्दर्य-व्यंजक गीतों में लोक-गीतों की-सी भावतीव्रता और कोमलता का विरोध-वैचित्र्य मिलता है, तथा अन्य गीतों में उनका पौरुष ओजस्वी शब्दो मे मुखरित होता है। 'निराला' के गीतों मे पन्त की-सी कोमल भावोच्छलता और सौन्दर्योन्मेष तथा महादेवी के गीतों की-सी लालित्यमयी बिछलन के स्थान पर शक्ति और ओज का स्फुरण ही अधिक व्याप्त है।

गीतों की कला का जहाँ तक प्रश्न है, इनमें संगीत की रक्षा प्राथमिक होती है। इसके साथ यदि रागात्मक अनुभूति, संयत कल्पना, संतुलित अभिव्यंजना की रक्षा भी हो सके तो यह सिद्धि अनुपम होगी। 'निराला' की उपलब्धि यही है। उनके गीतों में शास्त्रीय-सगीत की नियमबद्धता नहीं, परन्तु मुक्त छन्द की भाँति, रीतिमुक्त मंजुल-मधुर संगीत का समावेश हुआ है। उनके गीतों में उच्चकोटि की रागात्मकता, जीवन्तता, सुखद कल्पना और समर्थ शैली के साथ, स्वतः स्फुरित लयात्मक संगीत वर्तमान रहता है।

---

१. परिमल—निराला, पृ० १०३

'निराला' के गीतों में एक अतिरिक्त विशेषता है। शब्दो के संगीत पर, उनकी नाद-मयता और शब्द-झकार पर, जितना उन्होंने ध्यान दिया उतना अन्य कवियों ने नहीं। पन्त, प्रसाद, महादेवी आदि के गीतों में भाव-व्यंजना है, परन्तु ध्वन्यार्थ-व्यंजक शब्दावली का प्रयोग निराला के समान नही। कवि ने "अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है।"

'गीतिका' के गीतों से इस क्षेत्र में 'निराला' ने एक युगान्तर प्रस्तुत किया। प्रेम और सौन्दर्य इन गीतों का विषय है। इनमे सवेदना का प्रकृत और तीव्र रूप लोकगीतों का समकक्षी कहा जा सकता है, किन्तु अभिव्यक्ति मे लोक-गीतों की अनगढ शैली नही, कला के ललित उपकरणों से अलंकृत साहित्यिक शैली का प्रयोग हुआ है। इन गीतो मे केवल भावनाओं की, सवेदनो की अभिव्यक्ति नहीं, प्रकृति के भावाक्षिप्त वर्णन है, जिनमे चित्रमयता है और चित्रो मे गति है। इन चित्रों में रूप की स्थिरता, मुद्राओ की गति और भावों की तीव्रता सभी कुछ प्राप्य है। 'गीतिका' के आरम्भिक गीतों मे से 'प्रिय यामिनी जागी' इसी प्रकार का भावाक्षिप्त चित्रण-प्रधान गीत है। इन गीतों में कवि ने नारी-भावना को ही प्रमुखता दी है। 'गीतिका' के पाँचवे गीत में नायिका का आत्मसमर्पण, उसकी आशा-अभिलाषाएँ, तृष्णातृप्ति सभी कुछ अकित है। प्रिय को 'पत्र-लेखन' की पुरानी परिपाटी का अनुसरण भी 'लिखती सब कहते' गीत मे हुआ है। 'तुम छोड गए द्वार' मे विरहिणी का चित्र है।

इन गीतों की एक विशेषता है—दार्शनिक संयम। उच्छृखल आवेग तथा प्रेम-विभोर स्थितियों को कवि ने प्राय: प्रज्ञा के सयम के धागों में बाँधा है। इस कारण गीतो मे भाव-व्यंजना कही प्रत्यक्ष रूप से रहस्यात्मक हो गई है, और कही रहस्यात्मकता का आभास होता है।

कुछ गीतों में अंतर्निहित आध्यात्मिक स्वर में परोक्ष सत्ता की व्यजना और दिव्य के प्रति जिज्ञासा परिव्यक्त है। विनय और भक्ति के साथ 'गीतिका' के अनेक गीत अद्वैतवाद के प्रतिपादक दार्शनिक गीत है। इन गीतों के परिवेश मे अद्वैत-दर्शन कवि का प्रतिपाद्य है, परन्तु उनकी रहस्यानुभूति और अलौकिक के प्रति जिज्ञासा, लौकिक आधार लेकर व्यक्त हुई है। चिन्तन और दर्शन इस प्रकार गीत-रचना के कलेवर मे समाहित है।

महादेवी की समस्त गीतियाँ गीत नही। उनके सभी प्रगीतों की आत्मा गीतिमय है, परन्तु पारिभाषिक अर्थ में गीत का प्रयोग उन्होंने सभी में नही किया। फिर भी उनके अधिकाश गीतों में स्वर और शब्द-योजना का सगीत वर्तमान है। स्वर-संगीत, लोक-गीतों के लय-विधान, और शब्द-संगीत, स्वर और व्यंजन मैत्री से युक्त कलात्मक वर्णविन्यास द्वारा उत्पन्न किया गया है। महादेवी के अधिकाश गीत व्यक्ति की परिधि से बाहर नही जाते। उन्होंने व्यक्ति-संवेद्य कोमल भावनाओं, भावमिश्रित कल्पनाओं तथा कही कल्पना और विचार के माधुर्य को गेय बनाया है। इन गीतों की एक विशेषता है—इनकी कवयित्री ने आधुनिक गीत काव्य को एक नवीन शिल्प प्रदान किया। उन्होंने लोक-गीतों की वन्य गति-लयों के भीतर परिष्कृत और विदग्ध भाव, विचार एव कल्पना का संसार बसा दिया। नारी होने के नाते लोक-गीतो का शिल्प उनके अन्तर्मन मे संस्कार-रूप में बसा था, जिसमें साहित्यिक विषय भरकर उन्होंने इस क्षेत्र में

एक नये काव्य-रूप को जन्म दिया। लोक-गीतों के लय-विधान को ग्रहण करने पर भी उनके गीत, कला-गीतों की कोटि मे ही आते है। इन गीतों की कला न लोक-गीतों के समान निरावरण है, और न साहित्यिक प्रगीतों की भाँति सयत्नज अलंकार-वक्रताओं से युक्त। अतः इनके गीत मीरा, कबीर आदि की अपेक्षा अधिक समृद्ध हैं, और पन्त आदि की अपेक्षा अधिक सहज। लोक-गीतो का आधार महादेवी ने एक ओर लय के ढाँचो को अपनाकर ग्रहण किया है, और दूसरे इस कला का सस्पर्श अनेक ऐसे देशज शब्दों के प्रयोग से दिया है जो आज की प्रचलित खड़ीबोली मे प्रयुक्त नहीं होते। इन प्रयोगों से गीतोचित कोमलता और मसृणता की रक्षा हो सकी है। महादेवी ने जीवन के विराट और कठोर पक्ष को छोड़कर सीमित फलक पर करुण-मधुर वेदना-मिश्रित गीत गाए है। इसी कारण इन गीतो मे मार्मिकता, सरलता और द्रवण है :

प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली!
मेरे ही मृदु उर मे हंस बस,
श्वासों में भर मादक मधु-रस,
लघु कलिका के चल परिमल से
वे नभ छाये री मैं बन फूली!
प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली।[1]

लोक-गीतो की लय, शब्दावली और सगीत का प्रभाव 'नीरजा' मे उनके 'मुखर पिक होले होले बोल' मे सुस्पष्ट है।

महादेवी की अनेक कविताओ में दार्शनिक सिद्धान्तो को अनुभूति का विषय बनाकर प्रेष्य बनाया गया है, परन्तु ऐसा गीतो मे नही हुआ। गीतों मे राग-तत्त्व अधिक प्रबल रहा है। महादेवी के गीत कला की दृष्टि से पाश्चात्य गीत-शैली अथवा किसी अन्य भाषा की गीत-रचना से प्रभावित नहीं। कला के भारतीय संस्कार सर्वाधिक उन्ही की गीत-रचना मे रक्षित हैं।

व्यक्तिगत प्रेम के व्यंजक गीतों की रचना के क्षेत्र मे 'बच्चन' और रामकुमार वर्मा का नाम और उल्लेखनीय है। 'बच्चन' के गीतों मे हृदय की आकुलता बिना किसी कृत्रिमता, प्रतीक-व्यंजना, दुराव, उन्नयन आदि के प्रयत्नों के, सहज रूप से सगीतमय स्वरों में फूट पडती है। उनके गीतों का प्रेष्य कवि की अपनी अनुभूति है, और उसके प्रेषण में कवि अपने पाठक के प्रति पूर्णतः ईमानदार रहा है। 'बच्चन' के गीतों में इसलिए भावों की आकुलता, अनुभूति की सचाई और सघनता से सहज प्रभावित हुई है। कवि अपनी अनुभूति को उसके स्वस्थ, प्रकृत रूप में पाठक तक प्रेषित कर देने को ही लक्ष्य मानता हुआ, उस ओर बढता है। सगीतात्मकता उसमें सहज रूप से वशवर्तिनी होकर आ जाती है। सरलता और अनुभूति की मार्मिकता एव स्पष्टता के कारण, उनके गीतो में अपूर्व प्रभावात्मकता उत्पन्न हो गई है। उनके लय-बन्धन और शब्द-चयन पर इसी कारण प्रायः उर्दू का प्रभाव लक्षित होता है :

---

१. यामा—महादेवी वर्मा, पृष्ठ १६३

क्या भूलूं, क्या याद करूँ मैं।
अगणित उन्मादों के क्षण हैं,
अगणित अवसादों के क्षण हैं,
रजनी की सूनी घड़ियों को किन-किन से आबाद करूँ मैं!
क्या भूलूं, क्या याद करूँ मैं!
याद सुखों की आँसू लाती,
दुख की, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूँ जब अपने से अपने दिन बर्बाद करूं मैं!
क्या भूलूं क्या याद करूं मैं![1]

रामकुमार वर्मा ने महादेवी की रहस्यात्मकता, आत्मबोध, और पन्त की सौन्दर्यचेतना व सुकुमारता से अपनी गीत-निधि का निर्माण किया है। सगीतमयता उनके गीतो में अत्यन्त निखरे रूप में मिलती है। कवि की छन्द-योजनाएं विशेष सुरुचिपूर्ण होने के कारण इस दिशा मे साधक रही हैं। प्रसादगुण, माधुर्य और संगीतगुण-युक्त शब्द-योजना ने इन गीतों को गायकों का कण्ठहार बना दिया है। रामकुमार वर्मा के गीतों की सगीत-साधना इस युग मे सर्वाधिक हुई। कोमलता और माधुर्य-सृष्टि के लिए उन्होने अपनी भावनाओ को नारीत्व का स्वर नहीं दिया फिर भी उनके गीत ललित-मंजुल सुरो में ही मुखरित हुए हैं। एक कड़ी प्रस्तुत है:

मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ!
जानता हूँ, इस जगत में
फूल की है आयु कितनी,
और यौवन की उभरती,
साँस मे है वायु कितनी।
इसलिए आकाश का विस्तार सारा चाहता हूँ।
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूँ![2]

दूसरे प्रकार के गीत प्रकृति के रूप-सौन्दर्य को विषय बनाकर लिखे गए। इन गीतो में भावात्मकता की अपेक्षा चित्रात्मकता अधिक है। कवि-व्यक्तित्व के आत्म-केन्द्रीकरण की अपेक्षा, इन गीतों में आत्म-विस्तार होता है। कहीं वह आलम्बन-रूप में प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन करता हुआ प्रकृति के रूप और गतिविधि को रेखाओं और रंगों में बाँधता है। कुछ गीत प्रकृति के भावाक्षिप्त वर्णनों के रूप में लिखे गए—इनमें कवि प्रकृति पर चेतना का आरोप कर, मानव-रूप, मुद्राओं और क्रियाओं का साक्षात्कार प्रकृति की गतिविधि और रूप-सौन्दर्य में करता है। वह इन वर्णनों मे रूप और भावनाओ, दोनों का आक्षेप यथाप्रसग करता है। इस प्रकार के गीतों में प्रकृति के अनेकानेक स्थिर और गत्यात्मक चित्र आँके गए है। मानवीकरण के द्वारा जड़ प्रकृति को चेतना प्रदान करना, और ध्वन्यार्थव्यजक शब्दों में उसकी गतिविधि को बन्दी कर

---

१. निशा निमन्त्रण—बच्चन, पृष्ठ ९२
२. कवि-भारती—रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ४६५

लेना, इन गीतों की विशेषता है। प्रकृति-वर्णन के गीत अधिकतर 'निराला' और महादेवी ने लिखे। विशेषकर 'गीतिका' और 'परिमल' के गीतों में प्रकृति के कुछ अत्यन्त सुन्दर वर्णन उपलब्ध हैं। 'गीतिका' मे 'सखि वसन्त आया'[1] तथा 'बह चली अब अलि शिशिर समीर'[2] आदि गीतों मे प्रकृति का सुन्दर उल्लासमय वर्णन और रेखाओं में चित्र-व्यंजना है। 'परिमल' के गीतों में भी प्रकृति के सुन्दर वर्णन है। इन गीतों मे कवि ने छोटे छन्दों मे प्राकृतिक व्यापारों और वातावरण को साकार किया है :

दूत, अलि, ऋतुपति के आए।
फूट हरित पत्रों के उर से
स्वर सप्तक छाए।
दूत, अलि, ऋतुपति के आए।
काँप उठी विटपी, यौवन के
प्रथम कम्प मिस, मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज-चितवन के
भाव-सुमन छाए।[3]

इनमें प्रयुक्त लय भी वर्णनात्मक स्वरूप के कारण ऋजु-सरल और प्रचलित है। महादेवी का 'री कुंज की शेफालिके' भी इसी प्रकार का प्रकृति चित्रात्मक गीत है। प्रकृति के भावाक्षिप्त वर्णन इन कवियों ने अधिक सुन्दर किये हैं। मानव-चेतना का प्रकृति पर आरोप, इस काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति थी। प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोपण और दर्शन, इनकी मनोवृत्ति के अधिक अनुकूल पड़ा। इस प्रकार की रचना मे आत्माभिव्यक्ति और आत्मेतर सौन्दर्य-व्यंजना दोनों प्रयोजन सहज सिद्ध होते हैं। कवि की आत्मपरक सौन्दर्य-चेतना के कारण, भावों की गहनता के साथ व्यक्तित्व का बहिरंग प्रसार—इस प्रकार की गीत-रचना की द्विविध उपलब्धि होती है। 'निराला' ने इस शैली में कुछ अत्यन्त सुन्दर गीत-रचनाएँ की हैं। 'गीतिका' के आरम्भिक गीतों मे उनका प्रसिद्ध गीत '(प्रिय) यामिनी जागी' इसी प्रकार के अतीन्द्रिय शृंगार का प्राकृतिक चित्र है जिसमें सद्यः जाग्रत नायिका की प्रत्येक भंगिमा और मुद्रा को कवि ने बाँधा है :

(प्रिय) यामिनी जागी,
अलस पंकज-दृग अरुण मुख
तरुण अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,

---

१. गीतिका—निराला, पृ० ५
२. वही, पृ० १०
३. परिमल—निराला, पृ० ४३

ज्योति की तन्वी, तड़ित–
द्युति ने क्षमा माँगी ।[1]

इसी प्रकार 'सखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी'[2] मे पार्वती के रूप-वर्णन का पूरा रूपक घटित किया जा सकता है। 'मेघ के घन केश'[3] मे भी प्रकृति का मानवीकृत वर्णन है। महादेवी के 'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी ।'[4] तथा 'अपसरि तेरा नर्त्तन सुन्दर'[5] में भी प्रकृति में क्रमशः नारी के कोमल और कठोर रूप का अध्याहार किया गया है । महादेवी के वर्णन 'निराला' की अपेक्षा अधिक अलकृत है। 'निराला' के गीतो मे स्वाभाविक व्यापार का अंकन प्रमुख है। महादेवी ने अपने चित्रों मे रूप-व्यंजना अधिक की है, और 'निराला' ने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करके, उसके व्यापक और सूक्ष्म व्यापारो को कल्पना के प्रसार और सूक्ष्म दृष्टि से बाँधकर, उनकी मानवीय क्रिया-व्यापारों से निकटता व्यजित की है। अतः महादेवी के गीतों में मन्थर गति और लय मे लास्य की थिरकन मिलती है, 'निराला' के गीतों में द्रुत गति और अबाध प्रवाह है।

प्रकृति के इन स्वतन्त्र और भावाक्षिप्त वर्णनों के अतिरिक्त प्रभातियों के रूप मे कुछ उद्‌बोधनात्मक वर्णन भी किये गए। इनका स्वर प्रबोधनात्मक होने के कारण स्वभावतः इनमें जागृति की प्रेरणा, अतः उल्लास है। प्रकृति से उद्‌बोधन की प्रेरणा लेना इस युग की कविता के प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषता रही है। 'निराला' ने ये जागरण-गीत 'गीतिका', 'परिमल', 'अर्चना' और 'आराधना' सभी मे लिखे है। प्रसाद की 'बीती विभावरी जाग री'[6] भी इसी प्रकार का जागरण-गीत है। महादेवी ने भी सान्ध्यगीत मे––'जाग-जाग सुकेशिनी री'[7] प्रभाती की रचना की। प्रसाद और महादेवी के गीतो में 'निराला' के जागरण गानों की अपेक्षा मधुरता और कोमलता है। निराला के गीतो में प्रबोधन का उत्साह, जागृति का उल्लास और प्रेरणा है :

प्रिय, मुद्रित दृग खोलो !
गत स्वप्न-निशा का तिमिर-जाल
नव किरणों से धो लो—
मुद्रित दृग खोलो !
जीवन-प्रसून वह वृंतहीन
खुल गया उषा-नभ में नवीन,
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर

---

१. गीतिका—निराला, पृ० ४
२. वही, पृ० १६
३. वही, पृ० ५०
४. यामा—महादेवी, पृ० १३०
५. वही, पृ० १४५
६. लहर—प्रसाद, पृ० १६
७. यामा—महादेवी, पृ० २४४

बह चलीं चतुर्दिक कर्म-लीन
तुम भी निज तरुण-तरंग खोल
नव-अरुण-संग हो लो—
मुद्रित दृग खोलो ! [1]

'निराला' के 'घन, गर्जन से भर दो बन'[2] मे उद्बोधन की यह आकांक्षा कुछ अधिक गम्भीर और उग्र रूप मे गर्जन-तर्जन के स्वरो में व्यक्त हुई है। इस जीवन को प्रेम की मधुचर्या के बाद वज्र-स्वरो से भूधर प्रकम्पित कर, इसमे नई प्रगति देखने की कवि की वाँछा है। कवि का शब्द-चयन गीत की मूल भावना के अनुकूल है। भाव और भाषा का यह पारस्परिक अनुकूलत्व ही 'निराला' के काव्य की चरम सिद्धि है।

राष्ट्रीय गीत

बंगला के राष्ट्रीय-गीतों और उर्दू की गजलो से भिन्न, हिन्दी में राष्ट्रीय गीतो की एक स्वतन्त्र शैली का विकास हुआ। राष्ट्रीय गीतों की रचना में परम्परागत तत्त्व इतना ही होता है कि उनकी मूल अनुभूति व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होती है और भाव व्यक्ति-संवेद्य न होकर जन-सवेद्य होता है। इस मूल भावना का स्वरूप प्रत्येक युग की तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियो के साथ बदलता जाता है। यथाप्रसग इनमे देश का स्तवन, क्रांति के लिए उत्तेजना या प्रेरणा-दान, तथा देशोद्धार और जागृति के लिए अलौकिक शक्तियों का स्तवन-वन्दन हो सकता है। इन गीतो का उत्स कवि के ओज स्थायी भाव से फूटा करता है, अतः इनमे एक बात समान रूप से पायी जाती है—इनकी अभिव्यक्ति स्वतः प्रेरित और आवेग-दीप्त होती है, परिणामत. इनमे विशेष कलात्मक छटा या अभिव्यंजनागत चमत्कार का अवकाश नहीं रहता। भाव का आवेश उसकी तत्काल अभिव्यक्ति मे जितना रक्षित रहता है, जितने जीवन्त और प्रकृत रूप में अभिव्यक्त हो पाता है, उतना कलात्मक परिष्कार और सायास अभिव्यंजन मे नही। देश-स्तवन के गीतों मे अभिमान और गौरव की भावना, उद्बोधनात्मक गीतों मे उत्साह और ओज तथा वन्दनाओ में सजल करुणा और मार्मिकता व्याप्त रहती है। उपर्युक्त सभी रूपों में राष्ट्रीय गीतों की अखड परम्परा द्विवेदी-युग से अधुनातन काव्य-धारा तक चली आई है। उससे पूर्व भारतेन्दु-युग में राष्ट्रीय गीतों का अभाव नहीं, परन्तु व्यापक राष्ट्रीय भावना का उन्मेष द्विवेदी-युग के गीतों में ही मिलता है।

भारतेन्दु-युग से होती हुई द्विवेदी-युग तक राष्ट्रीय गीतों की जो परम्परा चली आई उसमें मुख्यतः देशभक्ति, अर्थात् देश के प्रशस्तिमूलक गीत-रचना की प्रवृत्ति प्रधान थी। भारतेन्दु-युग में विरचित गीतों में तो भारत की दुःख-दारिद्रयपूर्ण शोचनीय अवस्था पर क्रन्दन ही भरा गया, परन्तु द्विवेदी-युग में इन गीतो में देश के गौरव-गान की चेतना प्रधान हो गई। अतः इस युग मे रचित राष्ट्रीय गीतों में राष्ट्र के प्रति वन्दनात्मक और प्रशस्तिप्रधान भाव मिलता है। वह आक्रोश और हुँकार इनमें नही मिलती जो बाद के राष्ट्रीय गीतों की विशेषता

---

१. परिमल—निराला, पृ० ३८
२. गीतिका—निराला, पृ० ५१

हो गई। सख्या मे भी ये गीत बहुत नही थे। स्वय द्विवेदीजी, श्रीधर पाठक, रूपनारायण पाण्डेय आदि ने कुछ राष्ट्रगान देश के स्तवन के रूप मे लिखे। रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' ने लोक-साहित्य से प्रभावित होकर, बारहमासों की शैली पर 'स्वदेशी बारामासी' की रचना कर डाली। सन् १९२० तक राष्ट्रीय गीतों मे देश के वन्दन और गौरव-गान का स्वर ही प्रमुख रहा। १९२० के उपरान्त राजनैतिक क्षेत्र मे महात्मा गांधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह-आन्दोलन ने जैसे-जैसे प्रबल रूप धारण किया, उसके समानान्तर काव्य के क्षेत्र मे राष्ट्रीय गीतो मे भी क्रान्ति का स्वर प्रबुद्ध होने लगा। परन्तु छायावादी कविता, कला की दृष्टि से हिन्दी काव्य मे वह सर्वांगीण परिष्कार और आदर्श प्रस्तुत कर चुकी थी कि राष्ट्रीय गीतो की परम्परा को पुनरुज्जीवन मिलने पर भी शैली की दृष्टि से वे पुन: उसी इतिवृत्तात्मकता की ओर नहीं लौटे, जो द्विवेदी-युग मे काव्य-मात्र की शैली बन गई थी। परिणामत: इन गीतों मे अनुभूति का सौन्दर्य और सच्चे अर्थों मे गीतात्मकता उपलब्ध हुई। छायावाद काव्य-धारा के कवियो में प्रसाद और 'निराला' की कविताओं मे यह स्वर अनेक स्थलों पर सुनाई देता रहा। प्रसाद के नाटकों के अनेक वन्दनात्मक और प्रयाण-गीत सुन्दर राष्ट्रीय गीत हैं। 'निराला' की 'गीतिका' के अनेक गीतों का स्वर कोमल और मधुर होने पर भी, ओज और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना इन गीतो मे विरल नहीं। समस्त पुरातन जीर्ण-शीर्ण को ध्वस्त कर नूतन आलोक फैलाने की प्रार्थना[1] उनकी राष्ट्रीय भावना की ही अभिव्यक्ति है। यदि ध्यान से देखा जाय तो उनकी यह भावना देश की सीमाओ से भी अधिक व्यापक, विश्व-राष्ट्र की कल्पना पर आधृत है। वस्तुत: उनके व्यक्तित्व मे व्याप्त विराट और महान को अपनाने का आग्रह ही, इस प्रकार की अभिव्यक्ति का प्रेरक है। इसी प्रकार 'भारति जय विजय करे, कनक शस्य कमल धरे'[2] तथा 'बन्दूँ पद सुन्दर तव'[3] जन्मभूमि-वन्दना के सुन्दर उदाहरण है।

छायावाद के अवरोह से पूर्व राष्ट्र-गीतों मे विद्रोह और क्रान्ति का स्वर नही है, परन्तु स्वतन्त्रता संग्राम के बल पकड़ने के साथ-साथ इन गीतो ने भी एक नयी दिशा ग्रहण की। माखन-लाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिह 'दिनकर' और सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवियो ने इन गीतो के प्रवाह को एक नया मोड प्रदान किया। इन गीतों में अहिंसात्मक क्रान्ति, या दूसरे शब्दों में आत्मबलिदान का स्वर गूँज उठा। देशभक्ति की भावना अधिक व्यापक और उत्तेजनामय रूप में व्यक्त हुई, परन्तु इनमे ध्वस की अपेक्षा आत्मबलिदान का उत्साह अधिक था। 'नवीन' का 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ', माखन लाल चतुर्वेदी का 'एक फूल की चाह', तथा सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी' के अनेक प्रयाण गीत इसी नये स्वर के व्यंजक हैं।

क्रमश: समाजवाद के सिद्धान्तों के प्रचार के साथ, क्रान्ति की वह भावना जिसका बीजा-रोपण उपर्युक्त कवियों की रचनाओं में हो चुका था विकसित होती गई। राष्ट्रीय गीतों मे एक

---

१. गीतिका—निराला, पृ० ३९
२. वही, पृ० ७३
३. वही, पृ० ८३

तो यूँ ही कवि की चेतना नितान्त व्यक्तिवादी नहीं होती, परन्तु काव्य की आत्मपरक चेतना का समष्टिगत और सामूहिक चेतना मे स्पष्ट रूप से परिवर्तन मार्क्स के सिद्धान्तों के अधिकाधिक प्रचार के साथ काव्य मे १९३७ के उपरान्त लक्षित होने लगा। पन्त के 'युगान्त' के साथ काव्य मे वास्तव मे व्यक्तिवादी मूल्यो के युग का अन्त होकर समाजवादी मनोवृत्ति का प्रचार-प्रसार आरम्भ हो गया। पन्तजी ने अपनी इस परिवर्तित प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप मे स्वीकार भी किया। कवि मानने लगे थे, कि कविता की जडो को अपनी पोषक सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय चाहिए, वह स्वप्नों मे नही पल सकती। अब तक गाधीजी की अहिंसावादी सर्वसहा नीति ने देश के कवियों को केवल देशभक्ति के, उसके गौरव और महिमा के गीत गाने की ओर प्रेरित किया था। किन्तु दीर्घ संघर्ष के उपरान्त, विश्व को गांधी-नीति की सफलता मे सदेह उत्पन्न हो रहा था, और क्रमशः कवियों की चिन्ताधारा मार्क्सवाद का आश्रय ले रही थी, अतः देशभक्ति के गीतो का स्थान क्रान्ति के शखनाद ने ले लिया। पन्त ने यद्यपि इस ओर दिशा-निर्देश किया किन्तु उनके विद्रोह का स्वर उग्र नही था। उनका अनुसरण करते हुए इस क्षेत्र में उतरने वाले अन्य कवियों—'दिनकर', 'अंचल', नरेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, उदयशकर भट्ट, केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविताओं मे विद्रोह के क्रान्तिमूलक रूप को स्थान दिया। भावो के आवेश में इनके विचारों का बाँध छन्दो के बन्धन तोडकर बहने लगा। इस सिद्धान्तवादिता का गीत-रचना पर त्रिविध प्रभाव हुआ—(१) ये कवि ठोस यथार्थ के, भूमि के धरातल पर उतरकर जीवन के वस्तुगत वैषम्य का अकन करने लगे, अतः इनकी कविता मे वर्णनात्मकता आ गई। (२) इस कविता मे सिद्धान्त-प्रतिपादन और क्रान्ति की उत्तेजना प्रधान होने के कारण बौद्धिकता के दर्शन अधिक होने लगे। (३) इनका लक्ष्य यथार्थ जीवन को उसके यथावत् रूप मे अकित कर देना था, अत इन्होने शैली की दुरूहता—दूसरे शब्दों में लक्षणा-व्यजना के चमत्कार को बचाया तथा अलकरण को भी गौण स्थान दिया। सर्वसाधारण तक अपनी बात को सरल और बोधगम्य शैली मे पहुँचा देना इन कवियों का लक्ष्य था, अतः अनेक स्थलो पर इनकी अभिव्यक्ति गद्यात्मक हो गई। यद्यपि 'अंचल', नरेन्द्र, 'नेपाली' आदि ने कुछ सुन्दर गीतों की रचना की, परन्तु राष्ट्र-गान के कवि सुन्दर सगीतात्मक शैली में लिखने में सफल न हो सके। कारण, ऊपर जिन विशेषताओ का उल्लेख किया गया—वर्णनात्मकता, बौद्धिकता, असज्जित अभिव्यक्ति और गद्यात्मक भाषा, सभी—गीत की आत्मा, उसकी सगीतात्मकता के विरुद्ध है। अतः प्रगतिवाद की क्रोड़ में राष्ट्र-गीतों का पल्लवन सम्भव नही हो सका। कुछ सुन्दर प्रगीत अवश्य इस विचारधारा के अन्तर्गत लिखे गए। इन कवियों ने जब गांधीवाद के सस्कारो से प्रभावित देशभक्तिपरक वन्दनाएँ लिखी तो उनका स्वरूप अपेक्षाकृत सुन्दर रहा—

कोटि कोटि कण्ठों से निकली
आज यही स्वर-धारा है,
भारतवर्ष हमारा है, यह
हिन्दुस्तान हमारा है।
जिस दिन सबसे पहले जागे,
नव-सिरजन के स्वप्न घने,

जिस दिन देश-काल के दो-दो
विस्तृत विमल वितान तने,
जिस छिन नभ मे तारे छिटके,
जिस दिन सूरज-चांद बने,
तब से है यह देश हमारा,
यह अभिमान हमारा है।[1]

प्रयोगवाद का आरम्भ और स्वतन्त्रता-प्राप्ति लगभग समानान्तर घटनाएँ हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उल्लास के साथ देश के विभाजन और तदुपरान्त बापू के वध की घटनाएँ भारतीय जनता पर अभिशाप के रूप मे आई। अतः ऐसी स्थिति मे राष्ट्रीय भावना का उल्लास, गीतो के रूप मे फूटना सहज स्वाभाविक नहीं था। इस उल्लास के साथ ग्लानि और विषाद की भावना मिश्रित थी, और क्रान्ति का प्रश्न नही उठता था। इसके अतिरिक्त प्रयोगवादी कवियों की कला-सम्बन्धी मान्यताएँ, विचारधारा और दृष्टिकोण गीतकाव्य के अनुकूल नहीं थे, अतः इस प्रकार की काव्य-रचना का प्रश्न नही उठा। राष्ट्रीय गीतो के अतिरिक्त कुछ गीत देवी-देवताओ की वन्दना के रूप मे भी लिखे गए। इनमे सर्वाधिक वन्दनाएँ सरस्वती को लक्ष्य करके लिखी गई।

लोक-गीत

लोक-गीतो की शैली का प्रभाव साहित्यिक रचनाओ पर दो रूपों मे पडा। एक ओर लोक-साहित्य मे प्रचलित गेय काव्य की विभिन्न शैलियों को आधार बनाकर किंचित् परिष्कृत शैली में गाने की चीजे लिखी गईं। इस प्रकार की गेय-रचनाओ की शैली, शिल्प, संगीत और लय का मुख्य आधार लोक-काव्य मे प्रचलित रूप-विधाएँ ही रहती हैं, केवल इनकी रचना लिखित रूप मे की जाती है, और इनमे उतनी अनौपचारिकता और अनगढ़ता नही रहती जितनी जनता के कण्ठो मे रक्षित लोक-गीतो मे। इस प्रकार लोक-गीतो के अनुकरण पर काव्य-रचना की परम्परा नवीन नही। सत-परम्परा मे बहुत पहले से लोक-गीतों के विविध रूपों के आधार पर काव्य-रचना की जाती रही है। लोक-गीतो की इस निसर्ग सुन्दर कला के आकर्षण से सूर और तुलसी जैसे सिद्ध कवि भी नही बच सके और उन्होने इस साहित्य के—सोहर, चाँचरी, फाग आदि विविध रूपों को अपने काव्य मे स्थान दिया। यह परम्परा अधुनातन काव्य तक यथावत् चली आई और विविध लोक-प्रचलित काव्य-रूपों के आधार पर अनेक रचनाएँ की गईं। लोक-गीतों का दूसरा प्रभाव परोक्ष रूप मे कला-गीतों की शैली पर पडा। अर्थात् कला-गीतों के विषय, अलंकार-योजना, छन्द-विधान आदि साहित्यिक या सायास अलकृत शैली मे ही अपनाते हुए केवल लोक-गीतो की लय, तथा कही-कही शब्दावली या कथन-भगिमा अपना ली गई। ऐसा अधिकतर महादेवी की गीत-रचना मे, और उल्लेख मात्र के लिए 'निराला' के गीतो मे हुआ है, जिसका सकेत यथाप्रसंग किया जा चुका है, अतः प्रस्तुत प्रसग मे उन्ही विधाओं का विवेचन किया जायगा जिनकी कला प्रत्यक्ष रूप से लोक-गीतों से प्रभावित है, अथवा जिनका मूलाधार ये लोक-गीत है।

---

१. कवि-भारती—बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ० २८१

लोक-गीतों की अधिक प्रचलित शैलियों में—होली, सोहर, चाँचर, कजली और लावनी तथा झूलना की प्रमुखता रही। इनमे सोहर आदि का सम्बन्ध विशेष अवसरों से था, अतः समाज की रीति-प्रथाओं में वैज्ञानिक परिवर्तनों के साथ इन अपेक्षाकृत गौण उत्सवों का उल्लास क्षीण होता गया। परन्तु होली आदि अधिक सार्वजनिक और महत्त्वपूर्ण पर्वों के प्रति कवियों की उल्लासमय अनुभूति और अभिव्यक्ति का क्रम बना रहा। इसीलिए होली लिखने की परम्परा निर्बाध रूप से आधुनिक काव्य मे चली आई। सर्वाधिक सख्या इस युग की लोक-गीतात्मक रचनाओं मे होलियो की ही है। द्विवेदी-युग के कवियों मे रायदेवीप्रसाद और रूपनारायण पाण्डेय ने कुछ होलियों की रचना की। इनमे कहीं-कहीं स्वर उपदेशात्मक हो गया है। लय, टेक, भाषा आदि सब लोक-गीतो से प्रभावित है, परन्तु इस प्रकार की आलोचनात्मक होलियो मे पर्व का उल्लास नही मिलता :

ऐसी होली को आगी लगाओ, अरे मत जिय को जराओ।
जा बिन विष्णु धर्‌यो नरहरि बपु, शिशु प्रहलाद बचाओ
ऐसे बिन मेरे बच्छन को रच्छन तुम बिसराओ,
जाति का नाम धराओ—ऐसी होरी[1]

होली का अधिक परिष्कृत रूप 'निराला' आदि की रचनाओं में मिलता है। इन कवियों ने लोक-गीतो की अनगढ कला को यथावत् अपनाने के स्थान पर अधिक परिष्कृत शैली में, परन्तु इन्ही गीतो के आवेग, लय और रग से रगी गीति-रचना की। 'गीतिका' में—'नयनो के डोरे लाल गुलाल, भरे खेलो होली'[2] लोक-भाव पर आधारित गीति मे प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होली के रूपक से चित्रित हुआ है। इस होली में लोक-गीतो का ही रग और भावावेग मिला है।

लोक-गीतों की लय पर होलियो के अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाएँ भी की गईं :

हाँ हाँ देखो कैसी बनी फुलवारी।
सोभा अपार छा रही। हाँ हाँ देखो।
हरित मनोहर तुग अति तरुवर अलबेली नवबेली मनरमन सघन छबिवारी।
हाँ हाँ देखो।[3]

इससे कुछ भिन्न लय पर—

कान्ह तुम्हारी गैयाँ कहाँ गई
कहाँ गई कान्ह! तुम्हारी गैयाँ? हाय माधव हाय।
हाय! कहाँ जमुना की कूलें, कुजन की छम छैयाँ। कहाँ गई।[4]

'निराला' ने भी ग्राम-गीतों की लय पर कुछ प्रयोग किये, परन्तु कवि इस प्रयास में विशेष सफल न हो सका। ग्राम-गीतों की-सी भावनाओं की सरलता, भाषा का प्रवाह, शैली

---

१. पूर्ण-सग्रह—रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण', पृष्ठ २७९
२. गीतिका—निराला, पृष्ठ ४६
३. पूर्ण-संग्रह—रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण', पृष्ठ १२०
४. वही—पृष्ठ २८१

की ऋजुता, अनुभूतियों की सहजता और अभिव्यजना मे मस्ती इन रचनाओं में नहीं आ पाई। फिर भी इनकी लय पर लोक-गीतो की विशिष्ट विधाओ का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कजली की लय पर लिखी निम्नलिखित कविता उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है :

काले काले बादल आये, न आये वीर जवाहर लाल
कैसे कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहर लाल
बिजली फनके मन की कोंधी,
कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सर सर करते धाये न आये वीर जवाहर लाल।

उपर्युक्त कजली में चौथी पंक्ति उसके प्रवाह और आत्मा के लिए सर्वथा घातक है।

लावनी की लय पर पं० श्रीधर पाठक अपने 'एकान्तवासी योगी' की रचना बहुत पहले ही कर चुके थे। उनसे पूर्व भारतेन्दु-युग मे लावनी और झूलना विशेष लोकप्रिय थे, परन्तु बाद में इनका विशेष प्रयोग नही हुआ। उल्लेख करने के लिए विरहात्मक बारहमासों की शैली पर रायदेवीप्रसाद ने 'विरह-बारहमासी' की रचना की है, परन्तु उसका छन्द साहित्यिक (विष्णु-पद) है और स्वर-बन्धन राग सोरठ में किया गया है।

लोक-काव्य की लय पर एक अन्य उल्लेख योग्य कृति—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की—'सरगौ नरक ठेकाना नाहि', नागरिक जीवन पर आलोचनात्मक कविता है, जिसकी रचना आल्हा की लय पर की गई है।

उपर्युक्त कविताओं मे से उन गिनी-चुनी रचनाओं को छोड़कर जिनका उल्लेख आरम्भ में किया गया शेष सभी मे एक सामान्य विशेषता है। इन काव्य-रूपों के लिए लोक-साहित्य से इनके रचयिता कवियों ने केवल लय का ग्रहण किया है, अतः टेक, पक्तियों का आकार और अन्त्यक्रम भी वही रहा है, परन्तु इनका विषय, अभिव्यंजना-शैली, और दृष्टिकोण तथा कही-कही भाषा-शैली भी कलात्मक हो गई है, और अधिकांश मे लोक-गीतो की आत्मा का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

लोक-गीतों की लय, छन्दाकार और शब्दावली का सुन्दर प्रयोग महादेवी के गीतो में प्राप्य है। विशुद्ध लोक-गीतों की रचना उन्होंने नहीं की, परन्तु उनके गीतों में लोक-गीतों की कला के संस्पर्श से माधुर्य और प्रकृत सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है। प्रगतिवादी कवियों ने भी इस प्रकार की रचनाएँ कीं। यद्यपि इन कवियों की दृष्टि लोक-जीवन के उल्लास की अपेक्षा समस्याओं का संचयन करती रही, परन्तु मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण जन-वादी साहित्य को पर्याप्त महत्ता और लोकप्रियता मिलने लगी, अतः जब इन्होने लोक-जीवन के उल्लास और वातावरण को शब्दबद्ध किया तो शैली भी वही से अपना ली। नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ, रामविलास शर्मा, तथा 'निराला' और पन्त की उत्तरकालीन गीत-रचनाओं पर लोक-गीतों का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। पन्त की रचनाओं में अपेक्षाकृत नागर भाव, माधुर्य, और अनगढ़ एव प्रकृत की अपेक्षा संयत व मसृण सौन्दर्य का उन्मेष मिलता है। 'लाल निशान' में संग्रहीत नरेन्द्र शर्मा की कविताएँ लोक-गीतों का सुन्दर उदाहरण हैं। नयी कविता में भी लोक-प्रचलित लयों पर आधृत गीत-रचना पर्याप्त की गई।

लोक-साहित्य के प्रचार और लोकप्रियता के साथ साहित्यिक रचनाएँ भी उसकी कला से प्रभावित हुई हैं। नरेश मेहता की कविताओं पर लोक-गीतो मे प्रयुक्त शब्दावली व प्रकृति-चित्रण में ग्राम्य वातावरण का प्रचुर प्रभाव लक्षित होता है। परन्तु गीतों की रचना उन्होंने इस शैली मे नहीं की। धर्मवीर भारती ने लोक-गीत के छन्दाकार को ही नही शैली को भी अपनाकर सुन्दर 'बोआई के गीत' की रचना की :

गोरी गोरी सोंधी धरती—कोर कोर बीज
बदरा पानी दे !
क्यारी-क्यारी गूंज उठा संगीत
बोने वालो ! नई फसल में बोओगे क्या चीज।
बदरा पानी दे।
मैं बोऊँगा वीर बहूटी, इन्द्रधनुष सतरंग
नये सितारे, नई पीढ़ियाँ, नये धान का रंग
हम बोयेगी हरी चुनरियाँ, कजरी, मेहदी—
राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज !
बदरा पानी दे।[1]

उपर्युक्त गीत की रचना कवि ने 'कोरस नृत्य' के लिए की है, स्वभावत: छन्दाकार मे लय की थिरकन और सगीतमय निबन्धन व्याप्त है, परन्तु गीत की तर्ज पर आधुनिक सिने-सगीत का प्रभाव लक्षित होता है, विशेषकर टेक की बदिश पर। 'अज्ञेय' के कुछ गीतो मे लोक-गीतो की लय का आभास मिलता है, वास्तविक प्रभाव नहीं।

सॉनेट (Sonnet)

आधुनिक काव्य मे रूप-विधा की दृष्टि से यदि कोई प्रयोग पूर्णत. विदेशी प्रभाव से ग्रहण किया गया तो वह सॉनेट या चतुर्दशपदी ही है। इस विधा का मूल विदेशी ही था, यद्यपि हिन्दी कवियो ने स्वेच्छया इसमे अनेक परिवर्तन और प्रयोग की दृष्टि से नवीन एव सुरुचिपूर्ण योजनाएँ की।

हिन्दी-साहित्य मे यह विधा अँगरेजी-साहित्य के प्रभाव से, और आंग्ल साहित्य मे इटली-काव्य से प्रविष्ट हुई। आंग्ल साहित्य मे सॉनेट की रचना इटेलियन सॉनेट के अनुकरण पर सोलहवी शताब्दी के तृतीय दशाब्द में सर्वप्रथम 'टॉमस वाट' तथा 'अर्ल ऑफ सरे' द्वारा की गई। तदुपरान्त, सॉनेट-रचना करना इतनी व्यापक प्रवृत्ति हो गई, कि १५९०-१६०० तक किसी भी उत्साही कवि ने इस विधा-विशेष का प्रयोग किये बिना नही छोड़ा। इस क्षेत्र मे कार्य करने वालों में—सिडनी, स्पेन्सर और शेक्सपियर भी थे। और शेक्सपियर ने तो सॉनेट मे एक ऐसे प्रगीतात्मक माधुर्य तथा चिन्तन-शक्ति का समावेश किया जिसका अतिक्रमण कोई देशी-विदेशी कवि न कर सका।[2]

---

१. ठण्डा लोहा—धर्मवीर भारती, पृ० ३६

2. The sonnet, which, for practical purposes, may be regarded as an in-

अन्य रूप-विधाओं की अपेक्षा सॉनेट के रचना-विधान सम्बन्धी नियम पर्याप्त व्यवस्थित और नियत हैं। अतः सॉनेट मे दुर्बोधता, आडम्बर अथवा अव्यवस्था का अवकाश अपेक्षाकृत बहुत कम रहता है। उसका संक्षिप्ताकार और विधिवत् रचना-विधान कवि को उसमें घनत्व, संकोचन तथा सोद्देश्य रचना के लिए बाध्य कर देता है, क्योकि अशक्त सॉनेट एक दृष्टि-निक्षेप में अपनी निर्बलता प्रकाशित कर देता है। सन्दिग्ध विचारों, शिथिल अभिव्यजना तथा अनियमित छन्द-रचना का इससे उत्तम शोधक और नही हो सकता था।[1]

रूप-निर्माण की दृष्टि से अँगरेजी मे सॉनेट के एकाधिक प्रकार हो गए। इन विभिन्न प्रकारो का नामकरण इनके निर्माता कवियो के नाम के आधार पर किया गया। अँगरेजी मे सॉनेट के तीन प्रमुख प्रकार—'पैट्राक', 'स्पेन्सर' और 'शेक्सपियर' के नाम पर प्रचलित हुए। प्रथम प्रकार के सॉनेट अपने इटेलियन रूप और प्रसिद्ध इटेलियन कवि 'पैट्राक' के नाम पर 'इटेलियन सॉनेट' अथवा 'पैट्राकियन सॉनेट' कहलाए। इस सॉनेट में—जिस रूप मे पैट्रार्क ने उसका प्रयोग किया ग्यारह 'सिलेबल' (Syllables) की चौदह पक्तियाँ होती हैं। पहली अष्टपदी (Octave) का अन्त्यक्रम दो उच्चारण-ध्वनियो पर आश्रित व दो चौपदियो (quatrains) मे नियोजित रहता है। शेष षट्पदी (Sestet) मे कभी दो और कभी तीन नवीन अन्त्यक्रम-योजनाओ का प्रयोग किया जाता है। इनकी योजनाएँ विभिन्न हुआ करती है परन्तु सामान्यतः अन्त मे दो ऐसी त्रिपदियो (Tercets) का प्रयोग किया जाता है जिनका

---

vention of thirteenth century Italy, slowly won the favour of English poets. Neither the word, nor the thing reached England till the third decade of the sixteenth century, when English sonnets were first written in imitation of the Italian, by Sir Thomas Wyatt, and the Earl of Surrey .....Then, Sonneteering became and imperious an universal habit, ...No poetic aspirant between 1590 and 1600 failed to try his skill on this poetic instrument.

...The workers in the field included Sidney, Spenser and Shakespeare—Shakespeare above all, breathed into the Sonnet a lyric melody and a meditative energy which no writer of any country has surpassed.

Cambridge History of English Literature, Volume III, page 247.

1. Of all forms, the sonnet is that in which it is most difficult to be obscure, turgid, or irregular. Its small size and precise structure forces on the writer compression, point and intensity, for a feeble sonnet proclaims itself feeble at a glance. No better corrective could have been found for vague thoughts, loose expression and irregular metre.

Ibid, page 168.

अन्त्यक्रम समानान्तर परन्तु पहली दो चौपदियों से भिन्न होता है। इस प्रकार इटेलियन या 'पैट्रार्कियन सॉनेट' का अन्त्यक्रम प्रायः अ, ब, ब, अ, अ, ब, ब, अ, स, ड, ई, स, ड, ई[1] होता है। श्रेष्ठ इटेलियन कवियों ने, सॉनेट मे सामान्य मत से ऐसी अन्त्यक्रम योजना को बचाया जिसका अन्त युग्मक से होता है।[2]

स्पेन्सर ने अपने सॉनेट को—जो स्पेन्सेरियन सॉनेट (Spenserian Sonnet) के नाम से प्रसिद्ध हुए—चार पक्तियो की तीन चौपदियों में विभाजित कर उनका अंत एक युग्मक अथवा द्विपदी से किया। इन विभिन्न अशो का अन्त्यक्रम क्रमशः अ, ब, अ, ब, ब, स, ब, स, स, ड, स, ड, इ, इ (a b a b, b c b c, c d c d, e e) होता है।[3] स्पेन्सर के इस नवीन प्रयोग का विशेष प्रचार परवर्ती कवियों मे नहीं हुआ।

तीसरे प्रकार की सॉनेट-रचना का सूत्रपात शेक्सपियर के द्वारा किया गया। 'शेक्सपियरियन सॉनेट 'इटेलियन सॉनेट' के समान होते है। इनका बाह्याकार-विभाजन तीन चौपदियो और एक युग्मक मे होता है, किन्तु इनमे अन्त्यानुप्रास-क्रम स्पेन्सर के सॉनेट की भाँति शृखलाबद्ध नही होता। इस प्रकार शेक्सपियर के काव्य मे कुछ दूर तक सॉनेट को उसके परम्परागत रूढिबद्ध प्रतिबन्धो से निवृत्ति मिली। सोलहवी शताब्दी मे रचित अँगरेजी के सॉनेट काव्य का रूप-विधान सामान्यतः इसी ढंग पर हुआ। इनका विभाजन इटेलियन सॉनेट की

---

1. Octave—abba, abba; Sestet—cde, cde.

2. The Italian sonnet, as Petrarch used it, consisted of fourteen hendecasyllabic lines, the first eight, called the octave, rhymed on two sounds always, and nearly always arranged in two enclosed quatrins, abba—abba. In the remaining, six lines, called the sestet, two or sometimes three new rhymes were introduced, and were variously arranged, but most commonly so as to produce two symmetrical tersets, ccd, ccd, or cde, cde By general consent, arrangements which closed the poem with a rhymed couplet were avoided by the best Italian writers

   The Metres of English Poetry by Enid Hamer, page 186-187

3. (a) Spenser's 'Amoretti' are eighty nine in number...The rest are composed of three cunningly linked quatrains and a final couplet, abab bc bc cd cd ee.

   Ibid, page 187.

   (b) In his metre alone, did Spenser follow a line of his own devising; his prosody diverged alike from the ordinary English, and the ordinary foreign model. Most of his sonnets consisted of three quatrains each alternately rimed, with a riming couplet.

   Cambridge History of English Literature, Volume III, page 257

भाँति अष्टपदी (Octave) और षट्पदी (Sestet) में न करके अधिकतर स्पेन्सर और शेक्सपियर के ढंग पर तीन चौपदी और एक द्विपदी मे किया गया।[1]

परन्तु सोलहवी शताब्दी के उपरान्त मिल्टन की रचनाओ मे एक बार फिर रूप-विधान की दृष्टि से मूल की ओर प्रत्यावर्तन मिलता है। सोलहवी शताब्दी के कवियों से भिन्न इन कवियों ने एक बार फिर सॉनेट के इटेलियन रूप का अनुसरण किया।[2] ये सॉनेट एलिजाबेथ-काल के प्रयोगों से पूर्णत: भिन्न थे। सॉनेट की स्थायी लोकप्रियता, तथा शेक्सपियर की सॉनेट शैली के पुनरुज्जीवन का श्रेय वर्डस्वर्थ को दिया जा सकता है। वर्डस्वर्थ के उपरान्त अनेक सॉनेटकार हुए जिनमे से कुछ की रचनाएँ विशेष उत्तम है।[3] इन कवियो में विशेष लोकप्रियता वर्डस्वर्थ के अतिरिक्त कीट्स और मिसेज ब्राउनिग की रचनाओं को मिली।

अँगरेजी साहित्य मे सॉनेट के जिन प्रचलित और प्रमुख प्रकारो का उल्लेख पिछले पृष्ठो में किया गया, उनके अतिरिक्त भी कतिपय मौलिक अन्त्यानुप्रास योजनाएँ अन्य कवियो ने प्रस्तुत की।[4] परन्तु चौदह पक्तियो का खण्ड-विभाजन प्राय: कथित आधारो मे से किसी एक अथवा दूसरे के अनुसार हुआ; कभी-कभी बारह पक्तियो मे भी सॉनेट-रचना का प्रयत्न कवियो

---

1 George Gascoigne, in his treatise on poetic composition, which appeared as early as 1575, accurately described the normal construction of the sonnet in sixteenth century England when he wrote—

"Sonnets are of fourteen lines, every line containing ten syllables The first twelve do ryme in staves of four lines by cross metre, and the last two ryming together do conclude the whole"

Ibid, page 248.

2. ...the 23 English and Italian sonnets of Milton show, as might be expected, a reversion to a stricter model, , yet in other respects he confirms in the main to the 'Petrarchan system . Apart from questions of relative merit, the tone of these sonnets, is thus altogether, different from the Elizabethan.

Encyclopedia Britannica, Volume XX, page 997.

3. It is to Wordsworth that we owe the great and enduring popularity of the form, and possibly even the revived appreciation of Shakespeare's sonnets.—Since Wordsworth there have never been lacking sonneteers, and at least some of their work has been of great excellence.

Ibid, page 997

4. Sir Philip Sidney's sonnets,....., show many interesting varieties of rhyme scheme, and some advance in technique generally,.....

The Metres of English Poetry—Enid Hamer, page 191.

ने किया परन्तु ये प्रयोग सर्वमान्य नहीं हुए।

सॉनेट की पक्तियो के विषय मे एक विशेषता प्राय: अनेक कवियों की, और विशेष कर मिल्टन की रचना-शैली में दृष्टिगत होती है। इन कवियो ने पक्ति के अन्त के साथ अनिवार्य रूप से वाक्यान्त नही किया, मिल्टन ने सॉनेट की रचना अनुकान्त पद्यानुच्छेदों के ढग पर अत:-प्रवेशी पक्तियों अथवा एक पक्ति मे एकाधिक वाक्य-खण्डो के विधान द्वारा की।[1] इनमें अन्त्यानुप्रास का निर्वाह अवश्य किया गया।

अधिकाश कवियो न सॉनेट की स्वतन्त्र या स्फुट रचना के साथ परस्पर न्यूनाधिक सम्बद्ध अनेक सॉनेटों की क्रमबद्ध रचना की।[2] ये निबद्ध सॉनेट (Sonnet sequences) प्राय: किसी एक शीर्षक अथवा नाम से आबद्ध रहते थे।

सॉनेट के रूप-विधान के विषय में एक बात और स्पष्ट कर देनी कदाचित् अप्रासंगिक न होगी। यद्यपि सॉनेट का बाह्य, भिन्न लय खण्डो मे विभाजित होता है, किन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि सॉनेट मे तीन या चार भिन्न भाव-खण्डो का प्रकाशन होता है। सॉनेट के भिन्न-भिन्न लय-खण्डों मे वस्तुत: एक ही विचार अनुस्यूत होता है, अत: यह भावान्विति जो किसी भी प्रगीत काव्य की विशेषता होती है सॉनेट मे भी अनिवार्य रूप से वर्तमान रहनी चाहिए। सम्पूर्ण सॉनेट किसी विशिष्ट भाव या विचार की शृंखला से आबद्ध होता है, केवल उसकी चौदह पक्तियो का गठन इस रूप मे किया जाता है कि उसका बाह्य खण्डो मे बंटा प्रतीत होता है, परन्तु इन विभिन्न खण्डो की केन्द्रवर्ती भावनाएँ भिन्न-भिन्न नही होती। सक्षिप्त आकार और भावान्विति के कारण सॉनेट मे प्रभाव की दृष्टि से एक विशेष घनत्व और तीव्रता उत्पन्न हो जाती है। सॉनेट मे व्यक्त भाव उसके सक्षिप्त आकार मे इस प्रकार घनीभूत हो जाते है कि उसमे हार्दिक पुकार, प्रखरता, चोट और मार्मिकता उत्पन्न हो जाती है। सॉनेट का स्वर—जिस रूप मे उसका प्रयोग वर्डस्वर्थ, शेक्सपियर तथा पैट्रार्क ने किया, नितान्त आत्मगत व अंत:-स्फूर्त था। जहाँ तक सगीतात्मकता का प्रश्न है, यद्यपि इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है कि किसी सॉनेट मे कभी गेय सगीत का सफलतापूर्वक विधान किया गया हो, परन्तु सॉनेट

---

1. The most striking feature of Milton's sonnet technique, apart from his disregard of Petrarcan divisions, is the rarity of end stopped lines. Except for the presence of rhyme, Milton constructs a sonnet as he does a blank-verse paragraph, a woven harmony of long and short phrases, crossing the line limit designedly, with a few intermediate or secondary pauses, with ample modulation, and the final resolution to the normal movement for the close.

Ibid, page 203.

2. (a).....Most of the sonneteers tried 'sequences' series of more or less connected sonnets.

Encyclopedia Britannica, Volume XX, page 997.

की आकारगत विशेषताओं को आघात पहुँचाए बिना उसकी स्वर-साधना नहीं की जा सके इसका भी कोई कारण नहीं।[1] सॉनेट की विशेषताएँ अतः संक्षेप मे इस प्रकार हैं :

(१) सॉनेट निश्चित आकार की (चौदह पंक्तियाँ) मुक्तक रचना होती है।

(२) सिद्धान्ततः उसके बाह्य रचना सम्बन्धी नियम महत् कवियो ने प्रयोग द्वारा निश्चित कर दिए किन्तु व्यवहार मे इन नियमो का व्यतिक्रम और इनमे परिवर्तन बहुधा होता रहा।

(३) सॉनेट की आकारगत विशेषता का मुख्य आधार उसका अन्त्यानुप्रास-क्रम या अन्तिम लय-निपात होता है। इसी अन्त्यक्रम की योजना मे अन्तर से उसमे रूप-विधान सबन्धी अन्तर प्रस्तुत होता जाता है।

(४) रचना-विधान की दृष्टि मे सॉनेट की चौदह पंक्तियो का विभाजन विभिन्न लय-खण्डों मे होता है, परन्तु वे सभी एक भाव, विचार, या विषय से परस्पर सम्बद्ध या अन्वित रहती है।

(५) गेयता सॉनेट की अनिवार्य विशेषता नहीं, परन्तु बाह्य संगीत-विधान से सॉनेट रचना का किसी प्रकार का विरोध भी नही।

(६) सामान्यतः सॉनेट का स्वर आत्मकेन्द्रित या विषयीप्रधान होता है, वस्तुगत नही।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में सर्वप्रथम सॉनेट-रचना का श्रेय यद्यपि प्रायः कवि प्रसाद को दिया जाता है[2], किन्तु वस्तुतः चतुर्दशपदियो की रचना उनसे पूर्व द्विवेदी-युग के कवियो द्वारा की जा चुकी थी। जिस प्रकार सम्बोध गीति की रचना छायावाद के कवियो से पूर्व पं० रूपनारायण पाण्डेय कर चुके थे, इसी प्रकार चतुर्दशपदियो की रचना का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त होता है। उनके कविता-सकलन 'पराग' मे चार चतुर्दशपदियाँ सकलित है। जहाँ तक इन रचनाओं में सॉनेट के आकार-सम्बन्धी नियत नियमों के पालन, और उनके अनुसार रचना का प्रश्न है, कवि ने एक भी सॉनेट, पाश्चात्य साहित्य मे विहित किसी भी सॉनेट-प्रकार के अनुकरण पर नही लिखा। परन्तु वैसा परवर्ती कवियो ने भी नही किया। जिस प्रकार पाश्चात्य कवि निरन्तर नियमो मे परिवर्तन करके अपनी आवश्यकतानुसार नवीन अन्त्यक्रम-योजनाओं का विधान करते रहे, उसी प्रकार हिन्दी के कवियो ने इस विषय मे मौलिकता का परिचय दिया। अन्तर केवल एक है—पाश्चात्य काव्य में विशेष प्रसिद्ध और महत् कवियों की रचना

---

1. But the sonnet as Shakespeare, Wordsworth, and even Petrarch used it was a cry from the heart, a subjective confession, and although there is perhaps no evidence that a sonnet was ever set to music with success, yet there is no reason why that might not be done without destroying its sonnet-character.

Encyclopedia Britannica, Volume XX, page 997.

२. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दुबे, पृ० ३३०

के आधार पर, जिस प्रकार कुछ नियत प्रकार और रूप इस दिशा में निश्चित हो गये, हिन्दी-काव्य मे वैसा भी नही हो सका। सभी सॉनेटकार अपनी-अपनी मौलिक प्रतिभा के अनुसार इस विधा मे परिवर्तन और प्रयोग करते रहे। इस प्रकार किसी विशेष आकार या रूप-सम्बन्धी नियम को उन्होने आदर्श नही माना। यह प्रवृत्ति इस विधा के रचयिता अधुनातन कवियों तक यथावत् चली आई। विषय, शैली, अन्त्यक्रम-निपात, सभी दृष्टियों से हिन्दी के उपलब्ध सॉनेट काव्य मे वैविध्य प्राप्त होता है। केवल एक नियम सभी कविताओ में परिपालित है, सभी सॉनेट चौदह पक्तियो मे लिखे गए है तथा इन पक्तियो मे परस्पर सम्बद्धता अर्थात् एक ही भाव या विचार अनुस्यूत है, अथवा एक ही विषय का वर्णन किया गया है। विषयान्विति इनकी प्रमुख विशेषता है।

सॉनेट की रूपगत विशेषता उसकी अन्त्यक्रम-योजना पर निर्भर रहती है। इस दृष्टि से हिन्दी मे उपलब्ध सॉनेट काव्य को तीन वर्गो मे रखा जा सकता है—(क) वे सॉनेट जिनमे कवि ने किसी निश्चित तथा विधिवत् अन्त्यानुप्रास योजना का पालन किया है तथा ऐसा करते समय उसका आदर्श, सॉनेट का कोई पाश्चात्य प्रकार अथवा उससे पूर्व किसी हिन्दी-कवि का प्रयोग रहा है।

(ख) वे सॉनेट जिनमे कवि ने अपनी प्रतिभा से किसी मौलिक अन्त्यक्रम-निपात का प्रयोग किया है।

(ग) वे सॉनेट जिनमे अन्त्यानुप्रास के निर्वाह का निषेध कर उनकी रचना अतुकान्त अथवा अन्त प्रवेशी पक्तियो मे की गई है। ऐसी कविताओ को सॉनेट केवल इस शब्द के किंचित् व्यापक अर्थ मे ही कहा जा सकता है। क्योकि केवल चौदह पक्तियो की कविता को सॉनेट नहीं माना जाता। इन पंक्तियों का निश्चित योजनानुसार विधिवत क्रम-बन्धन ही सॉनेट की विशेषता है, और इस नियत क्रम का आधार इनका अन्त्यानुप्रास-विधान होता है। यदि उसकी ही अवहेलना कर दी जाय तो सॉनेट का रूपात्मक आधार ही खडित हो जाता है और केवल संख्या मे चौदह पक्तियो के आधार पर इसे विशेष काव्य-रूप मानना बहुत कुछ प्राचीन संस्कृत-आचार्यों के द्वारा छन्द-सख्या के आधार पर किये गए भेदो—युग्मक, सदानितक, कलापक आदि के समान होगा। केवल छन्दों की सख्या, या पक्तियो की सख्या के आधार पर किये गए इस प्रकार के रूपात्मक भेदो को विशेष तर्कसम्मत और आत्यन्तिक नही माना जा सकता, क्योकि इनका आधार अत्यन्त स्थूल और बाह्य होता है।

(क) पहले प्रकार की रचनाओ मे सर्वाधिक सख्या युग्मकों मे रचित सॉनेट की है। इस शैली के सॉनेट की रचना रूपनारायण पाण्डेय ने की। उन्होने 'चाँदनी रात'[1] और 'सर्प और खल'[2] नामक दो चतुर्दशपदियो की रचना की। इन्ही के समानान्तर एक अन्य अन्त्यक्रम-विधान कवि ने 'आँसू' मे किया है। इस सॉनेट मे पाँच युग्मको के उपरान्त एक चतुष्पदी लिखी गई है। इन चतुर्दशपदियो की शैली उस युग की प्रवृत्ति के अनुकूल वर्णनात्मक, मूल्य वस्तुपरक

---

१. पराग—रूपनारायण पाण्डेय, पृ० ८६
२. पराग—रूपनारायण पाण्डेय, पृ० ६२

तथा कला अत्यन्त साधारण है। भावव्यंजना तथा सगीतात्मकता इनमे नहीं मिलती। कुछ पंक्तियाँ उदाहरण-रूप में प्रस्तुत हैं :

चटकीली चाँदनी पड़ी चादर-सी चन्द्र-वदन पर है,
तारे हैं, या चाँदी के तारों का काम मनोहर है।
चटकीली चाँदनी मदन-आसव की उपमा पाती है,
जरा नजर पड़ने से ही मुनि को भी मस्त बनाती है।[1]

तदुपरान्त कवि प्रसाद ने अनेक चतुर्दशपदियो की रचना की। ये कविताएँ समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती रही और बाद मे 'प्रसाद-संगीत' मे संकलित कर इनका प्रकाशन किया गया। पुस्तक के नामकरण से ऐसी प्रतीति होती है कि सम्भवतः इनकी रचना गेय-रूप में की गई है, परन्तु वास्तव में ऐसा नही है। हाँ, दृष्टिकोण मे अपेक्षाकृत भाव-मयता और आभ्यान्तरिकता आ गई है। प्रसाद-संगीत मे संकलित चतुर्दशपदियों में से अनेक युग्मकों में लिखी गई। 'रमणी हृदय'[2] मे नारी के हृदय की प्रशस्ति, 'प्रियतम'[3] मे उपालम्भ और आत्मनिवेदन, 'दीप'[4] में प्रकृति-वर्णन, 'महाकवि तुलसीदास'[5] मे तुलसीदास का माहात्म्य-वर्णन किया है। 'पाईबाग'[6] का प्रकृति-वर्णन प्रतीकात्मक है। कवि ने प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति की है। 'मनुहार'[7] आत्मनिवेदनात्मक दृष्टि से विशिष्ट है। अन्तिम युग्मक मे कवि ने पूर्ववर्ती बारह पक्तियों का सार देने का प्रयत्न किया है। प्रसाद ने एक गेय सॉनेट[8] भी युग्मकों मे जागरण-गीत के रूप मे लिखा है।

युग्मको मे सॉनेट-रचना, हिन्दी कवियो की अपनी शैली बन गई और बाद में शैली और शिल्पगत रूढ़िबद्ध कला का परित्याग एवं निषेध करने वाले—प्रगति-प्रयोगवाद के कवि भी युग्मकों में सॉनेट-रचना करते रहे। प्रभाकर माचवे, नरेन्द्र शर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और पन्त, सभी ने चतुर्दशपदियो की रचना की। युग्मको का अन्त्यक्रम मुख्य रूप से प्रभाकर माचवे ने अपनाया। प्रभाकर माचवे के अनेक सॉनेट 'अनुक्षण' मे संकलित है। कवि ने कुछ को निश्चित विषयव्यंजक शीर्षक के अभाव मे 'सॉनेट' ही कहा है और अन्य की रचना इसी विधा में करने पर भी उन्हें शीर्षक दिये हैं। युग्मकों मे लिखी कविताएँ—'एक सॉनेट',[9] 'दो सॉनेट' (पन्द्रह का पहाड़ा)[10] और 'विजया-दशमी'[11] है। इन कविताओं में समाजवादी सिद्धान्तों की

---

१. पराग, पृ० ८९
२. प्रसाद-संगीत—प्रसाद, पृ० १२५
३. वही, पृ० १२६
४. वही, पृ० १३६
५. वही, पृ० १४१
६. वही, पृ० १४०
७. वही, पृ० १३८
८. वही, पृ० १३७
९. अनुक्षण—प्रभाकर माचवे, पृ० १०४
१०. वही, पृ० ८५
११. वही, पृ० ७६

अन्तर्धारा प्रवहमान है। 'पन्द्रह का पहाड़ा' में कवि ने दाएँ-बाएं, निम्न मध्यवर्गीय जीवन के आर्थिक और सांस्कृतिक पक्ष की वस्तुगत विषमताओं का वर्णन किया है। आर्थिक संघर्षों के परिणामस्वरूप वर्तमान जन-जीवन के कलागत और सांस्कृतिक ह्रास की ओर संकेत करना इस सानेट का लक्ष्य है। अभिव्यक्ति में यथार्थ, समस्यात्मक और वस्तुरूप जीवन को यथावत् उतारने का प्रयत्न है, जिससे शैली में कहीं-कहीं अनगढता आ गई है।

अँगरेज़ी सॉनेट के रूप-विधान का सबसे अधिक प्रभाव नरेन्द्र शर्मा की सॉनेट-रचना पर रहा। उन्होने यद्यपि किसी सॉनेट की रचना अंगरेज़ी सॉनेट के किसी भी प्रकार-विशेष को यथावत् अपनाकर नही की, परन्तु उनके सॉनेट 'निदान' मे 'पेट्रारकियन' और 'स्पेन्सेरियन' सॉनेट का मिश्रित रूप मिलता है। कवि ने पहली दो चौपदियाँ अ ब ब अ, अ ब ब अ, क्रम मे पेट्रार्कियन सॉनेट के समान लिखीं और अन्त मे दो त्रिपदियों के स्थान पर स्पेन्सेरियन सॉनेट की भाँति एक चौपदी और एक युग्मक से अन्त किया। अनुप्रास का क्रम—स ड स ड, इ इ रहा—

—अंकुर।
—परिभाषा।
—आशा;
—क्षणभंगुर!
—सुर।
—पवनश्वासा,
—अभिलाषा;
—मिलनातुर।
—असमय?
—मन?
—हृदय—
—यौवन?
—छाया?
—अपनाया![1]

शेष चतुर्दशपदियों में, स्पेन्सर की सॉनेट-रचना का प्रभाव इस रूप में लक्षित किया जा सकता है, कि उनका विभाजन तीन चौपदियों और एक युग्मक में हुआ है। पेट्रार्कियन सॉनेटकार युग्मक से सॉनेट का अन्त करने की पद्धति को बचाते रहे। कवि ने सॉनेट का विभाजन स्पेन्सर के ढग पर किया, परन्तु उनकी अन्त्यानुप्रास-योजनाएँ विविध और मौलिक हैं। जिन पर किसी पूर्ववर्ती हिन्दी अथवा अंगरेज़ी कवि का प्रत्यक्ष प्रभाव नही दिखाई पडता, परन्तु किसी-न-किसी रूप में अन्त्यानुप्रास का निर्वाह कवि ने किया अवश्य है।[2] इन कविताओं के विषय विविध हैं—

---

१. मिट्टी और फूल—नरेन्द्र शर्मा, पृ० ७१
२. वही, पृ० ७१-७७

वर्णन, भाव, विचार सभी इनकी परिधि में आ गया है। वस्तुगत और आत्मगत दोनों ही क्षेत्र कवि ने घेर लिये है।

प्रभाकर माचवे ने भी तीन चौपदी और एक युग्मक मे अपनी कुछ चतुर्दशपदियों का विभाजन किया है। नरेन्द्र की ही भाँति इनकी अन्त्यानुप्रास योजनाएँ सर्वथा मौलिक और विविध हैं। पन्त के सॉनेट अपेक्षाकृत सरल अन्त्यानुप्रास क्रम से आबद्ध हैं। 'ताज' पर उनका प्रसिद्ध सॉनेट युग्मकों में लिखा गया है।

(ख) **दूसरे प्रकार** की चतुर्दशपदियाँ—जिनमे कवि ने किसी मौलिक अन्त्यानुप्रास-क्रम का विधान किया है, कवि प्रसाद की रचनाओ से आरम्भ होती हैं। प्रसादजी ने दो प्रकार की अन्त्यक्रम योजनाएँ कीं। 'सरोज'[1] और 'स्वर्ण ससार'[2] में आरम्भ में एक युग्मक की रचना करके सम चरणों मे कवि ने अनुप्रास-योजना की है, तथा विषम चरणों मे भिन्न तुकान्त रचना की है—अर्थात् इनका अन्त्यक्रम क, क, ख, क, ग, क, घ, क, च, क, ख, क है। इन चतुर्दशपदियों में प्रसाद की प्रौढ नही, आरम्भिक काल की वर्णनात्मक, उपदेशात्मक, परम्परागत शैली मे भावव्यंजक कला के उदाहरण मिलते है। दूसरी अन्त्यक्रम-योजना उनकी 'खोलो द्वार'[3] शीर्षक चतुर्दशपदी मे प्राप्त होती है। इसमे कवि ने एक अष्टपदी, एक युग्मक और एक चतुष्पदी की रचना की। अन्त्यनिपात का क्रम ८ क, ख, ख और ४ क है। छन्द की दृष्टि से विभिन्न मात्रिक छन्दो का प्रयोग इनमें किया गया है। सम्पूर्ण सॉनेट एक ही छन्द के चौदह चरणो मे रचित है।

इसी प्रकार नरेन्द्र और प्रभाकर माचवे, राव, नवीन आदि ने अनेक नवीन अन्त्यक्रम योजनाएँ प्रस्तुत की। कुछ सॉनेट तीन चतुष्पदियो और एक युग्मक मे विभाजित कर लिखे गये, परन्तु इनका अन्त्यक्रम सर्वथा नवीन और मौलिक था। कुछ सॉनेट बिना किसी विभाजन के, केवल वैचित्र्यपूर्ण अन्त्यानुप्रास-योजना के सहारे लिखे गए, प्रभाकर माचवे के अनेक सॉनेट इस प्रकार के है। इनकी अन्त्यक्रम-योजना अत्यन्त वैचित्र्यपूर्ण और संश्लिष्ट है। पन्त ने वर्ष १९४० के नववर्ष-शुभागमन के अभिनन्दन-रूप मे जो 'सॉनेट' लिखा, उसका विभाजन भी तीन चतुष्पदियो और एक युग्मक मे किया, परन्तु उनकी अन्त्यक्रम-योजना अत्यन्त सरल है—अ, अ, अ, अ, ब, स, स, ब, अ, अ, अ, अ, ब, ब।[4] नरेन्द्र शर्मा ने 'साँझ का सदेश' नामक चतुर्दशपदी का विभाजन भी नए ढंग से किया है—एक चतुष्पदी, एक छ पदी और उसके उपरान्त दो युग्मक। अन्त्यानुप्रास भी वैचित्र्यपूर्ण और नवीन है।

प्रभाकर माचवे ने एक सॉनेट की रचना सर्वथा मौलिक ढंग से की है, जिसे न भिन्न तुकान्त कहा जा सकता है, और न जिसमें अन्य कविताओ की भाँति कोई निश्चित क्रम-बन्धन है। सॉनेट की विषम पक्तियों मे कवि ने दूरान्तर-प्रवाही वाक्य का प्रयोग किया है। इस प्रकार

---

१. प्रसाद-संगीत, पृष्ठ १२३
२. वही, पृष्ठ १३५
३. वही, पृष्ठ १२४
४. आधुनिक कवि—पन्त, पृष्ठ १००

विषम पंक्तियो के भाव की अन्विति सम पक्ति में जाकर पूर्ण होती हैं और अन्त्यानुप्रास का निर्वाह इन पक्तियों में ही किया गया है। इस प्रकार सॉनेट की विषम पक्तियाँ अतुकान्त और सम पक्तियाँ अन्त्यानुप्रासयुक्त हैं·

जब गलत समझा मुझे दुनिया ने तब
तुमने ही मुझसे कहा था--'तुम सही।
कौन समझेगा तुम्हें, (सब अन्ध हैं),
राह दुनिया से अलग तुमने गही।'
आज कितने दिनों बाद मिलीं मुझे
कह चलो जो रह गई थी अनकही।
यह कि हम तुम ही नहीं वैसे रहे,
है वही धरती, हवा, छाया, जुही।
है ज़रा शिकवा मुझे इस बात का
हो रही थी बात वह आधी रही।
और उसने भेद ऐसा कर दिया
आसमां वैसा न ही वैसी मही।
बह रही नदिया किनारे लांघकर,
याद तेरी आज आँसू बन बही।[1]

(ग) तीसरे प्रकार—अर्थात् भिन्न तुकान्त सॉनेट-रचना का आरम्भ भी रूपनारायण पाण्डेय ने कर दिया था—

छोड़ पुराने पत्र, नई पोशाक से—
फूल-फलों की लिए डालियाँ हाथ मे,
सफल, जानकर जन्म, अदब से सब झुके,
अगवानी के लिए वृक्ष तैयार हैं।[2]
....

उक्त पद्धति का पालन प्रसाद ने भी अपनी अनेक चतुर्दशपदियो में किया। 'मेरी कचाई', 'हमारा-हृदय', 'प्रत्याशा', 'अर्चना', 'वसन्त राका', 'सुखभरी नींद'[3] आदि चतुर्दशपदियाँ भिन्न तुकान्त रूप में लिखी गईं। संकेत करना अप्रासंगिक न होगा कि विदेश के कवि इस सम्बन्ध में विशेष सावधान रहे। मिल्टन ने अपनी सॉनेट-रचना में दूरान्तरप्रवाही वाक्यों का प्रयोग करने पर भी, अन्त्यानुप्रास का निर्वाह करते हुए, इस विधा की रूपात्मक विशेषता का विघात न होने दिया। जैसा पहले भी कहा जा चुका है कि अतुकान्त सॉनेट को सॉनेट केवल इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि वह चौदह पक्तियों मे निबद्ध होता है, अन्यथा वह किसी भी सामान्य अतुकान्त संयुक्त

---

१. अनुक्षण—प्रभाकर माचवे, पृष्ठ ९१
२. पराग—रूपनारायण पाण्डेय, पृष्ठ ९२
३. प्रसाद-संगीत—प्रसाद, पृष्ठ १२७-१३४

मुक्तक के समान होता है।

अतुकान्त सॉनेट-रचना की परम्परा परवर्ती कवियो मे (आशय नए खेवे के कवियो से है) विशेष लोकप्रिय नही हुई। सामान्यत हर प्रकार के बन्धनो के विरोधी ये कवि, किसी-न-किसी रूप मे, सॉनेट की इस विशेषता की रक्षा करते रहे। यद्यपि, इस अर्थ मे उन्होने यहाँ भी परम्परा का विरोध किया कि इस विधा के लिए पाश्चात्य अथवा भारतीय किसी भी कवि की रचना को पूर्णत. आदर्श नही माना, और रूप-सम्बन्धी नए छन्द और तुक स्वय निर्माण कर खडे किये—परन्तु इस तथ्य के प्रति सचेत रहकर, कि सॉनेट की आकार-सम्बन्धी व्यावर्त्तक विशेषता उसके अन्त्यानुप्रास-निबन्धन की विशेष पद्धति है। वे इस दिशा मे नवीन राहों का अन्वेषण करते रहे, परन्तु दिशा-परिवर्तन का उपक्रम उन्होंने नही किया।

निबद्ध-सॉनेट (Sonnet-Sequences) रचना आधुनिक युग के कवियो ने नही की। केवल प्रभाकर माचवे ने शृखलाबद्ध सॉनेट-रचना का एक प्रयास 'मै और खाली चा की प्याली'[1] शीर्षक मे किया, परन्तु यह विधा विशेष लोकप्रिय नही हो सकी।

बौद्धिक कविताएँ

आधुनिक युग की छायावादोत्तर कविता का इतिहास वस्तुत: बौद्धिक कविता का ही इतिहास है। विचारप्रधान कविता का आरम्भ आधुनिक युग मे द्विवेदी-युग से ही नीति और उपदेशप्रधान रचनाओं के रूप मे हो गया था। परन्तु यह नैतिक कविता समाज के बाह्य आचार-व्यवहार तथा व्यापक एव स्थूल समस्याओ को लेकर लिखी गई। छायावाद मे व्यक्ति की प्रधानता के उपरान्त भी उसकी नितान्त व्यक्तिगत समस्याओ के विश्लेषण और अभिव्यंजना को काव्य में स्थान नही मिला। इस युग के कवि व्यापक धरातल पर अध्यात्म और दर्शन से सम्बद्ध विषयो से भावसम्बन्ध स्थापित कर, रहस्यात्मक विवेचन-विश्लेषण करते रहे। इनकी कविता में विचार की दृष्टि से व्यक्ति और अध्यात्म, तथा उनके बीच पारस्परिक सम्बन्धो की अभिव्यक्ति प्रधान रही। इस प्रकार इस कविता मे दार्शनिक चिन्तन की प्रधानता है। भाषा, सामाजिक रीति-नीति, उसकी आलोचना, विभिन्न क्षेत्रो मे समाज के प्रति व्यक्ति के उत्तरदायित्व तथा उसके कर्तव्य-कर्म आदि विषयो पर उपदेश इस युग मे नहीं दिये गए।

प्रगतिवाद के सैद्धान्तिक रूप समाजवाद के प्रचार, और मार्क्सवादी दृष्टिकोण के प्रभुत्व और प्रसार के साथ एक बार फिर विचार का क्षेत्र—जन-जीवन और उससे सम्बन्धित मूर्त, वस्तुगत, आर्थिक समस्याएँ हो गईं, परन्तु इस कविता का स्वर और स्वरूप द्विवेदी-युग की कविता से बहुत भिन्न रहा। एक तो इस कविता के मूल मे निश्चित विचारधारा और जीवन-दर्शन की ठोस मान्यताएँ एव सिद्धान्त थे, अत: इसका स्वरूप यथार्थवादी एव वस्तुगत होने पर भी शिष्ट और गम्भीर रहा। दूसरे—कला के क्षेत्र मे छायावाद के उत्कर्ष और अभिव्यंजना की शक्ति और सामर्थ्य के चरम विकास के उपरान्त इस धारा के कवि उससे सर्वथा अप्रभावित न रह सके। इन्होने यद्यपि वस्तुगत, यथार्थ और भौतिक विषय अपनाए, परन्तु

१. तारसप्तक, पृष्ठ ५९

इनका विचार-क्षेत्र ऊपरी नैतिक कर्तव्य-कर्मों तक सीमित न रहकर, समाज की आर्थिक और व्यापक भौतिक जीवन की समस्याओं तक विस्तृत हो गया। इन विषयों का वर्णन, विश्लेषण, आलोचना और उपदेश सभी निश्चित जीवन-दर्शन के आलोक में प्रसादमय परन्तु अधिक कलात्मक शैली में व्यक्त हुए।

प्रयोगवाद का आरम्भ—काव्य-रचना के दृष्टिकोण, शैली, शिल्प, सभी में अतिशय बौद्धिकता का आरम्भ था। इस धारा की कविता में एक विशेषता थी। इन कवियों ने किसी दर्शन या चिन्ताधारा की बौद्धिक दासता स्वीकार नहीं की। अंशतः इनकी कविता मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित हुई, परन्तु सभी नहीं। एक समानता इनमें और प्रगतिवाद के समर्थक कवियों में यह थी कि इन दोनों ने जीवन में यथार्थ, मूर्त, प्रकृत और सार्वजनीन को अधिक महत्त्व दिया, काल्पनिक, सूक्ष्म, व्यक्तिगत और अलकृत का उतना नहीं। परन्तु इन कवियों की बौद्धिकता विशेष जीवन-दर्शन और उसके सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार में नहीं, शैली और शिल्प-सम्बन्धी नूतन प्रयोग करने में अधिक रमी, अतः इन्होंने अभिव्यक्ति के क्षेत्र में अनेक नवीन राहों का अन्वेषण किया। जहाँ इनका काव्य समाजवाद के सिद्धान्तों से प्रभावित है वहाँ तो स्पष्ट रूप से तत्सम्बन्धी विचारों को मान्यता मिली है। जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ भी ये कवि व्यक्तिगत कल्पना, अनुभूति और विचार को वस्तुगत शैली में अभिव्यक्त करने के लिए नए-नए मार्गों का अन्वेषण करते रहे। इस प्रयत्न को कला के क्षेत्र में शिल्प-सम्बन्धी व्यक्ति-वैचित्र्यवाद कहा जा सकता है। इस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच की सृजन-प्रक्रिया अन्वेषण-प्रधान और बौद्धिक रही। परिणामतः राग के स्थान पर विचार की सहज व्याप्ति इनकी कविता में दिखाई पड़ती है। यही इस काव्य की बौद्धिकता है।

निष्कर्ष रूप में—आधुनिक युग की बौद्धिक कविता में सर्वत्र विचार-तत्त्व की प्रधानता होते हुए भी प्रत्येक परिवर्तन के साथ एक नया मोड़ दिखाई पड़ता है। यह अन्तर इस कविता के विचार के स्वरूप और उसकी अभिव्यक्ति से सम्बद्ध है। इसका कारण युग की चिर-परिवर्तनशील चिन्ताधारा है, तथा परिणाम काव्य-रूपों में वैविध्य है। व्यक्ति की भावनाओं, अनुभूति और उनके मूल में निहित राग तत्त्व का सम्बन्ध उसकी मूल प्रवृत्तियों से होता है, अतः उनमें उल्लेखनीय अथवा आमूल परिवर्तन इतनी सरलता और शीघ्रता से घटित नहीं होता। विचारों को हर प्रकार की समसामयिक परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत शीघ्रता से प्रभावित करती हैं, अतः बौद्धिक कविता के रूप-विधान और प्रकारों का विवेचन कालक्रमानुसार करने का प्रयत्न करेंगे।

द्विवेदी-युग की बौद्धिक कविता में वस्तुपरक दृष्टिकोण की प्रधानता है। इस युग के कवियों ने विचार किया, परन्तु समाज-सम्बन्धी विषयों पर, उसके भौतिक-नैतिक आचार-व्यवहार से सम्बद्ध प्रश्नों पर। इन कविताओं का सम्बन्ध अतः व्यक्तिगत नहीं, सार्वजनीन समस्याओं से है। इनका क्षेत्र दर्शन, अध्यात्म, जैसा कोई गम्भीर और आत्मा-सम्बन्धी विषय नहीं, ऐहिक व वस्तुरूप बाह्य जीवन की आवश्यकताएँ और रीति-नीति है। स्फुट मुक्तकों की भाँति इन विचारात्मक निबद्ध मुक्तकों की रचना चार रूपों में हुई—उपदेशात्मक, आलोचनात्मक, उद्‌बोधनात्मक और व्यंगप्रधान। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इनमें से उद्‌बोधनात्मक कविता का अन्तर्भाव उपदेशात्मक में, और व्यंगप्रधान कविता का समावेश आलोचनात्मक कविता

के अन्तर्गत किया जा सकता है। द्विवेदी-युग मे निबद्ध कविता इन्ही दो प्रधान रूपो मे लिखी गई। दोनों ही स्थितियों में विषय स्थूल, और सामाजिक जीवन की विविध समस्याओ से सम्बद्ध रहे।

उपदेशात्मक कविताएँ—भाषा के उद्धार, विभिन्न पर्व-त्यौहारों के विकृत रूप, सामाजिक रीतियो और प्रथाओ के सम्बन्ध मे लिखी गई। द्विवेदी युग के काव्य का बृहद् अश इसी प्रकार का है। ये कवि सीधे-सादे ढग से समाज-सुधारकों, चिन्तको के समान विषय-विशेष के सम्बन्ध मे अपने विचारो की अभिव्यक्ति अत्यन्त स्पष्ट रूप मे करते थे। कुछ कवि जिन्होने काव्य-रचना का आरम्भ इस युग मे किया, परन्तु बाद तक जिनका रचना-क्रम अन्य नवीन काव्य धाराओ के समानान्तर चलता रहा, रचना-प्रवृत्ति की दृष्टि से इसी विशेषता से प्रभावित रहे। 'हरिऔध' का नाम इस दिशा मे प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। उनकी कविताओ मे कर्तव्य का निर्देश अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे, मच से व्याख्यान की शैली मे किया गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'ग्रन्थकारो से विनय' का एक उदाहरण लीजिये :

इग्लिश का ग्रन्थ समूह बहुत भारी है,
अति, विस्तृत-जलधि समान वेहधारी है।
सस्कृत भी सबके लिए सौख्यकारी है,
उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है।
इन दोनों में से अर्थ-रत्न ले लीजे,
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजे।
वह माता-सम सब भाँति स्नेह-अधिकारी,
इतनी ही विनती आज विनम्र हमारी।

इसी प्रकार द्विवेदीजी ने 'मासाहारी को हटर' मे एक युवा-विशेष को उपदेश के रूप मे मांस-भक्षण का विरोध किया। हिन्दी भाषा के उद्धार के लिए प्रेरणा और प्रबोधन का प्रयत्न द्विवेदी-युग की कविता का प्रिय विषय रहा। इन कवियो के उपदेश की दिशाएँ भिन्न थी, स्वर और रूप-विधान एक था। इस प्रकार की कविताएँ 'पूर्ण', रूपनारायण पाण्डेय, नाथूराम 'शकर', श्रीधर पाठक और 'हरिऔध' सभी ने की। 'हरिऔध' मे तो यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से उनकी अन्तिम रचना 'मर्मस्पर्श' तक मिलती है। समय के साथ-साथ उनकी कविता मे रसात्मकता, आनन्दानुभूति का ह्रास होता गया और आलोचना व उपदेश के स्वर प्रखर होते गए। उत्तर-कालीन रचनाओ मे तो कलागत और उक्तिगत चमत्कार का आग्रह भी न्यून हो गया, केवल उपदेश और शिक्षा बच रही है, और अभिव्यक्ति के लिए सीधी प्रसादमय व्यावहारिक भाषा। हाँ, कही-कही उर्दू की मुहावरेदानी और प्रखरता अवश्य दिखाई पड़ती है।

विशेष अवसरो पर लिखी जाने के कारण इन कविताओ मे बोलचाल और प्रत्यक्ष उपदेशात्मक शैली की प्रधानता हो गई है। कवि जब मच से व्याख्यान देने के लिए काव्य-रचना करता है, और जब एकान्त में बैठकर पठन-पाठन के लिए लिखता है तो उसकी अभिव्यंजना मे अन्तर होता है। पहली मे दूसरी की अपेक्षा भावतन्मयता कम, आवेग, विवेक और उत्तेजना तथा सरलता अधिक होती है—विशेषकर जब वह कविता किसी विषय का समर्थन या विरोध करने के लिए सुना रहा हो। अपनी बात श्रोता तक पहुँचा देना, और इस रूप मे कि वह उसके

हृदय और बुद्धि पर स्थायी प्रभाव डाले, उसे विचारोत्तेजना प्रदान करे, और वह व्यंजना-शैली पर मुग्ध भले ही न हो प्रेषित विचारो से प्रभावित हो जाय—प्रचारक कवि का लक्ष्य होता है। सिद्धान्त-प्रचार की यह विचार-भूमि, यह लक्ष्य, द्विवेदीजी और उनके समकालीन सभी कवियो की उपदेशात्मक कविता मे वर्तमान है। द्वितीय प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन फिरोजाबाद के लिए लिखित ला० भगवानदीन की "हिन्दी की हिमायत' की कुछ पंक्तियाँ देखिये.

उठो हिन्दुओ अपने बल को सँभालो।
दशा हिन्दी भाषा की कुछ देखो भालो॥
जमाने के धक्कों से इसको बचा लो।
सपूती दिखा दो झपटकर उठा लो॥
सहित प्रेम छाती से इसको लगा लो।
हृदय के सिंहासन पै इसको बिठा लो॥[1]

यह उपदेश सर्वत्र प्रत्यक्ष शिक्षा के रूप मे नही, कभी-कभी वर्ण्य समस्या के प्रति खेद-प्रकाशन के रूप मे व्यग्य है। इस प्रकार की कविताएँ प्रथम दो दशाब्दो मे प्राय. 'सरस्वती' के विविध अंकों मे प्रकाशित होती रही।

आलोचनात्मक कविताएँ भी इस युग मे कम नही लिखी गई। तत्कालीन सामाजिक प्रथाओ और जीवन से सम्बद्ध अनेक विषयो की कवियो ने समीक्षा की। यह आलोचना कही स्पष्ट शब्दो मे की गई, और जहाँ कवि ने इसे व्यग्य और वक्रोक्ति के आवरण मे लपेटकर मधु-वेष्ठित तिक्त औषध के रूप मे प्रस्तुत करना चाहा वहाँ अन्योक्ति का आश्रय लिया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने वरपक्ष-द्वारा दहेज ठहराने की प्रथा की आलोचना 'ठहरौनी' मे की। पूर्वजो के सम्मान्य कृत्यो का स्मरण दिलाकर, दृष्टान्त देकर, कवि मानो आलोचना को सोदाहरण तर्क-पुष्ट रूप देने का प्रयत्न करता है। अपेक्षाकृत कवि 'शंकर' और 'हरिऔध' की आलोचना मे प्रखरता और धार है। 'हरिऔध' जी की शैली मे तो अनेक स्थलो पर अभद्र कटुता आ गई है। 'चेतावनी' शीर्षक मे होली पर लिखी कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है:

रंग बिगड़े न रंग के खेले
पी न लेवे प्रमाद का प्याला।
गौरवित को लताड़ गाली लिख,
लेखनी का करें न मुँह काला।
हैं अधम-से, अधम पतितम हैं,
हैं कुटिल मति कपट विटप थाले।
आड़ में बैठ पूत पर्वों की,
पेट का मल निकालने वाले।[2]

---

१. नवीन-बीन—ला० भगवानदीन, पृष्ठ १२०
२. मर्म-स्पर्श—हरिऔध, पृष्ठ ६७

अन्य व्यक्तियों के दुष्कृत्यों की आलोचना करते-करते कवि स्वयं अनेक स्थलों पर अप-शब्दों का प्रयोग कर गया है। 'हरिऔध' की इस प्रकार की अनेक रचनाएँ जिनके विषय समाज, शिक्षा, वेषभूषा, कर्तव्य से लेकर पर्व-त्यौहार, आदि व्यापक पक्ष हैं—'मर्मस्पर्श' मे संग्रहीत हैं। इन कविताओ मे उद्देश्य की स्पष्टता, विचारोत्तेजना आदि के साथ अनेक स्थलो पर उसी प्रकार का उक्ति-चमत्कार शैली मे आ गया है, जिस प्रकार उनके चौपदो मे उपलब्ध होता है। अनेक प्रसंगों में उर्दू का स्पष्ट प्रभाव भी लक्षित होता है, परन्तु छन्द, भाषा और शैली मे सफाई सर्वत्र मिलती है। कुछ कविताओं मे आलोचना की शैली भिन्न है। कविता में आद्यन्त विचार अनुस्यूत रहता है, परन्तु वह दृष्टान्त-वर्णन के रूप मे व्यग्य होता है, उपसहार करते समय कभी-कभी यह व्यग्य वाच्य मे परिवर्तित हो जाता है। 'हरिऔध' की 'फूल और काँटा' इसी प्रकार की रचना है। कविता का मूल विचार—व्यक्ति जन्म से नही कर्म से महान होता है, फूल और काँटे मे व्यवहार-सम्बन्धी अन्तर के वर्णन मे व्यंग्य है, अन्त मे कवि स्पष्ट शब्दो में अपना आशय सार-रूप मे प्रकट कर देता है :

है खटकता एक सबकी आँख में,
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर।
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे,
जो किसी मे हो बडप्पन की कसर।[1]

विचारप्रधान अन्योक्तियाँ इस युग मे अपेक्षाकृत कम लिखी गईं। स्फुट मुक्तकों में तो इस विधा का प्रयोग पर्याप्त हुआ, परन्तु निबद्ध मुक्तको मे कुछ इनी-गिनी रचनाएँ ही इस शैली मे की गई। कवि 'शंकर' ने वर्तमान समाज की अवस्था पर 'एरण्ड-वन-विडाल-व्याघ्र' शीर्षक मे एक लम्बी अन्योक्ति की रचना की। जो इतिवृत्तात्मकता द्विवेदी-युग की वर्णन-प्रधान कविता मे सहज व्याप्त है, उस शैलीगत विशेषता से इस युग की बौद्धिक कविता भी मुक्त नहीं। ये कवि चेतन-अचेतन के विचार-खण्डो का विश्लेषण नही करते, व्यापक दार्शनिक सत्यो पर तर्क-वितर्क और विचार-विवेचन भी नही करते, केवल समाज की विविध नीति-व्यवहार-सम्बन्धी व्यापक वस्तुरूप समस्याओ के विषय मे उपदेश, उद्‌बोधन, आलोचना और व्यग्य के माध्यम से, व्यक्ति और समाज के सुधार का प्रयत्न करते है। इनके मूल्य वस्तुगत है, उनका क्षेत्र बाह्य सामाजिक जीवन है, और शैली इतिवृत्तात्मक। इनकी विचार-प्रणाली के मूल मे दर्शन, मनोविज्ञान व मनोविश्लेषण-शास्त्र के सूक्ष्म और शाश्वत आधार, तथा विवेचन-विश्लेषण की गहन पद्धति नही। सामयिक कारणों पर आधृत आचार-व्यवहार सम्बन्धी नीति-शास्त्र के उपदेश-कथन की शैली है। अत इन कविताओ मे—अस्पष्ट और अव्यक्त क्षेत्रो मे बुद्धि की गहन और अन्त प्रवेशी पैठ, अन्वेषण और उद्‌घाटन नही मिलता। बाह्य, व्यक्त और व्यापक प्रश्नों की परख, परीक्षण और विधि-निषेध मिलता है। इनमे बुद्धि तत्त्व का व्यापक समतल प्रसार है, सूक्ष्म और गहन अन्तःप्रवेश नहीं। यह कविता प्रचार और प्रसार से सम्बद्ध थी, विश्लेषण और तत्त्वान्वेषण से नही।

---

१. कवि-भारती— हरिऔध, पृष्ठ ५६

विषय के अनुकल इन निबद्ध-मुक्तकों की शैली भी स्पष्ट, सुबोध, व्यस्त और स्फीत है। छन्दों में भी नवीन प्रयोग, या रूप-वैचित्र्य का परिचय इन कवियों ने नही दिया।

छायावाद काव्यधारा का कवि बाह्य जीवन की विषमताओ, नैतिक और सामाजिक समस्याओ और वस्तुगत मूल्यों से विमुख होकर आत्मनिष्ठ हो गया, अतः उस प्रकार की बौद्धिकता या विचारात्मकता का उसकी कविता में अभाव है जिसका निर्देश द्विवेदीयुगीन काव्य के प्रसग मे किया गया है। छायावाद के कवि की बौद्धिकता व्यक्तिगत समस्याओ, प्रश्नो और विचारों को लेकर व्यक्त हुई। वह बात दूसरी है कि इन कवियो ने व्यक्ति के धरातल पर कुछ ऐसे प्रश्नो का विश्लेषण, तथा ऐसे सम्बन्धों का व्याख्यान किया जो अपने व्यापक रूप मे शाश्वत और समष्टिगत है। हमारा सकेत दर्शन और आध्यात्मिक चिन्तन से सम्बद्ध विषयो की ओर है। परन्तु इनका सम्बन्ध भी व्यक्ति के अन्तर्मन और अमूर्त जगत से है, बाह्य और वस्तु रूप से नही अतः वस्तुगत समस्याओ और उनसे सम्बन्धित विचार का आधार इस काव्य मे गौण अवश्य हो गया। इन्होने अपनी अनुभूति से प्रेरित चिन्तन और विचार-सूत्रो का विश्लेषण किया है, उपदेश नही दिया, आलोचना भी नही की। किसी प्रकार के सार्वजनीन हित-चिन्तन, मार्ग-निर्देश व विधि-निषेध आदि से ये कवि दूर थे। इनकी काव्य-रचना की प्रेरणा या मूल दृष्टि-कोण विषयीप्रधान था, अतः इनका चिन्तन व्यक्तिगत अनुभूतियो के उन्नयन मे साधक हुआ है। इन्होने ज्ञान से जो कुछ अर्जन किया उसके अनुरूप अनुभूति को ढालने का प्रयत्न किया, अथवा अनुभूति ने इनके विचार को प्रेरित किया, और इन्होने किसी अनुभूत सत्य का बौद्धिक विश्लेषण किया। इन कवियो की विचार-पद्धति मे गहन बौद्धिकता है, नीति के व्यापक उपदेश नही। एक विशेषता इन कवियो की बौद्धिक कविता मे और है। इनकी अधिकाश कविता व्यक्ति की सवेदना का परिणाम है नितान्त बुद्धिप्रधान नही अत इनके विचार या तो इनकी अनुभूति के अनुगामी है, अथवा विचारो की काल्पनिक अनुभूति को इन्होने विषय बनाया है, परिणामस्वरूप राग तत्त्व इनकी विचारात्मक कविता मे भी कभी क्षीण नही होता। दर्शन और अध्यात्म के विषय इस कविता मे अधिक सरस और सहज ग्राह्य रूप मे प्रस्तुत होते है। और उनका प्रभाव तत्त्वग्राहिणी बुद्धि के प्रति न होकर सवेदनग्राहिणी रागात्मिका वृत्ति के प्रति होता है। विचार की एकान्त स्थिति इस काव्य मे नही मिलती।

इन कविताओ के रूप-विधान, अभिव्यजना-शैली, सभी मे छायावाद की वे समस्त कलागत विशेषताएँ प्राप्त होती है, जिनके कारण समीक्षको ने भ्रमवश इस वाद को केवल शैली-गत आन्दोलन का रूप दे दिया था। लाक्षणिक अभिव्यक्ति, प्रतीक-योजनाएँ, नवीन अलकरण शैली, सगीतात्मकता, नूतन छन्द-विधान आदि सभी इस अधिकाश बौद्धिक कविता मे उसी प्रकार प्राप्य है जिस प्रकार इन कवियों की अन्य प्रगीत रचनाओ मे। इन्होने विचारो को इस प्रकार अनुभूति का विषय बनाकर हार्दिकता और सवेदना-सहित व्यक्त किया है कि ये बौद्धिक कविताएँ विचारात्मक प्रगीत ही प्रतीत होती है। सामान्यत. अतिशय चिन्तन प्रगीत की आत्मा के विरुद्ध है और जहाँ विचार सहज अन्तःस्फूर्त रागात्मक शैली में अभिव्यक्त नही होता, इसकी स्थिति एकान्तिक होती है, वह कविता प्रगीत नही कही जा सकती। भक्त कवियो के दार्शनिक विनय-पदो की रचना के एक दीर्घ अन्तराल के उपरान्त छायावाद की विचारात्मक कविताओं

में प्रगीत के तत्त्व दिखाई पड़े।

इन कविताओ के विषय विविध थे, परन्तु प्राय. अमूर्त, सघन और आत्मप्रधान; अत: उपदेश और आलोचना का इस कविता मे अभाव है। इनकी बौद्धिकता—जिज्ञासा, गहन चिन्तन, विश्लेषण और व्याख्या के रूप मे अभिव्यक्त हुई है। व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्धो को व्यापक रहस्यात्मक रूप देना इस काव्य की विशेषता रही है और प्रेम इनका प्रधान विषय। अत: सर्वाधिक सख्या ऐसी रचनाओं की ही है, जिनमे दार्शनिक धरातल पर प्रेमी और प्रिय (या इष्ट) के स्वरूप और सम्बन्ध की व्याख्या और विश्लेषण किया गया। इस प्रकार की रचनाओं को साहित्यिक शब्दावली मे रहस्यवाद कहा जाता है। महादेवी और 'निराला' की कविताओं मे रूप-भेद से यह भावना प्रसाद और पन्त की रचनाओ से अधिक मिलती है। 'निराला' के काव्य मे विराट तत्त्व और महाप्राणता है, और महादेवी की कविता मे नारी की कोमल-मधुर भावना। प्रसाद की मुक्तक-रचनाओ मे प्रेम-भाव प्रधान है, और पन्त मे सौन्दर्य-चेतना। उनकी रहस्य-भावना मे जिज्ञासा अधिक है, विवेचन-विश्लेषण उससे कम। उन्होने अपनी पिछली कविताओ मे जिस बौद्धिक चेतना का परिचय दिया है, उसका धरातल वस्तु और समाजगत है, व्यक्तिगत नही। ये कविताएँ समाजवाद से प्रभावित होकर लिखी गई। छायावाद की बौद्धिक कविता नारी की लेखनी से इस प्रकार निस्सृत हुई :

ओ चिर नीरव !
मैं सरित विकल,
तेरी समाधि की सिद्धि अकल,
चिर निद्रा में सपने का पल,
ले चली लास में लय-गौरव।
....
मैं उर्म्मि विरल
तू तुग अचल, वह सिन्धु अतल,
बाँधे दोनों को मैं चल चल,
धो रही द्वैत के सौ कैतव ![1]

इस सम्बन्ध मे कवयित्री की निश्चित धारणा थी :

"आज हम ऐसे बौद्धिक युग मे से जा रहे है जो हृदय को मांसल यन्त्र और उसकी कथा को वैज्ञानिक आविष्कारो की पद्धति मात्र समझता है, फलत: गीति की स्थिति कठिन से कठिनतर होती जा रही है।

गेयता मे ज्ञान का क्या स्थान है यह भी प्रश्न है। बुद्धि के तर्कक्रम से जिस ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है उसका भार, गीत नही सभाल सकता; पर तर्क से परे इन्द्रियों की सहायता के बिना भी हमारी आत्मा अनायास ही जिस सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेती है उसकी

---

१. दीपशिखा—महादेवी वर्मा, पृ० ७१-७२

अभिव्यक्ति में गेय स्वर सामंजस्य का विशेष महत्त्व रहा है।.....

रहस्य-गीतो का मूलाधार भी आत्मानुभूत अखण्ड चेतन है पर वह, साधक की मिलन-विरह की मार्मिक अनुभूतियो मे इस प्रकार घुलमिल सका कि उसकी अलौकिक स्थिति भी लोक-सामान्य हो गई।"[1]

उक्त अभिमत के प्रकाश मे महादेवी के रहस्यात्मक गीतो मे अन्तर्भूत बौद्धिकता के स्वरूप की व्याख्या हो जाती है, अत किसी प्रकार के स्पष्टीकरण की आवश्यकता नही। 'निराला' की अन्तश्चेतना पर जब तक छायावाद के रोमानी दृष्टिकोण और दर्शन मे अद्वैत का प्रभाव रहा, उनकी कविता मे भी इसी प्रकार दर्शन को आत्मानुभूति का विषय बनाकर अभिव्यक्ति मिली। 'तुम और मैं' कविता मे उन्होने आत्मा और परमात्मा के स्वरूप और सम्बन्ध की व्याख्या की है। अद्वैत-परम्परा के अनुसार उन्होने आत्मा को आदि-अन्त-रहित और तत्त्वत: अविनाशी, तथा आत्मा और परमात्मा मे अद्वैत-सम्बन्ध स्वीकार किया, परन्तु दर्शन की यह मान्यता कविता मे आत्मानुभूत सत्य के रूप मे ही व्यक्त हुई है।

प्रसाद और पन्त की कविताओ मे इस प्रकार दर्शन के तात्त्विक विषयो का विश्लेषण नही मिलता। जीवन और जगत् से सम्बन्धित कुछ शाश्वत प्रश्नो का विश्लेषण उन्होने अवश्य किया है। इन समस्याओ का सम्बन्ध वस्तु-तथ्यों व बाह्य-जीवन की ऐहिक विषमताओ से नही है, और न ही इनमे नीति-आचार सम्बन्धी उपदेश और दिशा-निर्देश है। इनमे अनुभूति के बल पर कुछ विचार-सत्यो का विश्लेषण किया गया है। उदाहरण देकर बात स्पष्ट करे—कवि जीवन मे सुख और दु ख दोनो प्रकार के विरोधी भावो की यथावसर अनुभूति करके अन्त मे विचार के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि जीवन की सार्थकता, उसका चरम विकास, इनमे से किसी एक की एकाकी स्थिति या अतिशयता से सम्भव नही हो सकता, उसके लिए दोनो की सतुलित स्थिति आवश्यक है। इसी अनुभूतिजन्य विचार को वह इस प्रकार कविता मे रूपान्तरित करता है :

लालसा निराशा में ढलमल
वेदना और सुख मे विह्वल
यह क्या है रे! मानव जीवन?
कितना है रहा निखर।[2]

अथवा :

सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।
जग पीड़ित है अति-दुख से

---

१. दीपशिखा, पृ० ५८

२. लहर—जयशंकरप्रसाद, पृष्ठ ३०

जग पीड़ित रे अति-सुख से,
मानव-जग में बंट जावें,
दुख सुख से औ' सुख दुख से।[1]

इसी प्रकार कवि पन्त ने जग की नित्यता, अनित्यता, परिवर्तन आदि विषयों को लेकर अनेक कविताओं की रचना की। इस प्रकार की कविताओ मे विवेचन-विश्लेषण की प्रधानता होती है। कही यदि उपदेश का क्षीण-सा स्वर सुनाई भी पडता है, तो वह इतने रससिक्त और व्यंग्य रूप में, कि उसकी मूलवर्ती शुष्कता पाठक तक नही पहुँच पाती।

निष्कर्ष रूप में छायावाद की बौद्धिक कविता मूलतः विश्लेषण और विवेचन-व्याख्या प्रधान है। उसमें जगत् और दर्शन के गहन विषयो का अनुभूतिपरक वर्णन किया गया है। इनमे इतिवृत्त-वर्णन, उपदेश और कटु आलोचना को स्थान नही मिला। कुछ कविताओ में पन्त और 'निराला' ने उद्‌बोधन का प्रयत्न अवश्य किया है। इनमें रूढि-विद्रोह और जीवन के नव निर्माण की लालसा प्रमुख रूप से व्यक्त हुई है :

खोलो जीर्ण विश्वासो, सस्कारों के शीर्ण वसन,
रूढ़ियों रीतियों, आचारों के अवगुण्ठन,
छिन्न करो पुराचीन सस्कृतियों के जड़ बन्धन,—
जाति वर्ण, श्रेणी वर्ग से विमुक्त जन नूतन
विश्व सभ्यता का शिलान्यास करे भव-शोभन।[2]

छायावादोत्तर बौद्धिक कविता—छायावाद के उपरान्त मुख्य रूप से साहित्यिक 'वादों' मे प्रगति और प्रयोग का उल्लेख किया जाता है। परन्तु इन दोनो वादो के अन्दर और बाहर कुछ ऐसे कवि वर्तमान रहे जिन्होने किसी सिद्धान्त-विशेष की बौद्धिक दासता स्वीकार नही की, परन्तु उदार हृदय से जिन्होने सभी काव्य-धाराओं का मनोनुकूल प्रभाव-ग्रहण किया। इनमे कुछ कवि छायावाद के ही कवि थे, जिन्होंने राजनैतिक और सामाजिक जीवन में विचारधाराओं के परिवर्तन के समानान्तर काव्य-रचना मे भी ये प्रभाव स्वीकार कर लिये। कुछ अन्य कवि ऐसे थे जिन्होने एक ओर व्यक्तिगत स्वच्छन्द प्रेम की व्यंजक गीतियाँ लिखी, दूसरी ओर समाजवाद के आधारभूत दर्शन—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित होकर समाज की अर्थ सम्बन्धी समस्याओ पर विचार किया, क्रान्ति के लिए प्रेरणा दी और वर्तमान दुरवस्था के प्रति खेद और क्षाभ प्रकट कर परिवर्तन की कामना की। इनमें से छायावाद और प्रगतिवाद दोनों धाराओं से प्रभावित कवियो की रचना-शैली मे एक सुन्दर सयोग घटित हुआ। समष्टिगत विचार इन कवियों के द्वारा छायावादी शैली मे व्यक्त किये गए। इनकी रचनाओ मे शुष्क उपदेश और नीति-आचार का आदेश नही, सदेश निहित है। द्विवेदी-युग के कवियों की भाँति इनकी उपदेशात्मक कविताओं मे कटुता और ताड़न की प्रवृत्ति नही मिलती। इनका उद्‌बोधन, उपदेश, कान्ता-सम्मत रूप मे व्यक्त हुआ है। आलोचना का कटुतम रूप इस युग मे रचित व्यग्य गीतियों में

---

१. आधुनिक कवि—पन्त, पृष्ठ ५०
२. ग्राम्या—पन्त, पृष्ठ ६६

मिलता है। कही-कहीं इनमे तीखापन और प्रत्यक्षता आ गई है, परन्तु सामान्यतः इनका व्यंग्य शिष्ट और वक्र है। इसका सबसे बड़ा कारण यही था कि इस कविता के रचयिता कवियो मे, कुछ को छोडकर, शेष छायावाद के, उसके ह्रास काल के, अथवा उस कला से प्रभावित कवि थे। इन कवियो ने व्यक्तिनिष्ठ, रोमानी—वायवी दृष्टि और चमत्कारमूलक कला को प्रश्रय देने वाली कविता का दिशा-परिवर्तन कर, समाजनिष्ठ, यथार्थ, वस्तुगत और बाह्य जीवन से सम्बद्ध विषयो को अपनाने पर भी कला मे विषयानुकूल परिवर्तन तो किया, परन्तु पुनः उसी स्तर पर नहीं लौटे जहाँ से प्रतिक्रिया-स्वरूप छायावादी आन्दोलन का आरम्भ हुआ था। इनमे विश्लेषण, उपदेश, आलोचना सभी उपलब्ध है, परन्तु परिवर्तित रूप मे। छायावाद के कवियों मे से पन्त और 'निराला' ने इस ओर मुँह मोडा। उन कवियों में जिनका सम्बन्ध नई कविता से है—प्रगतिवाद के कवि 'दिनकर', नरेन्द्र शर्मा, 'अंचल' आदि तथा प्रयोगवाद के कवियों में विभिन्न 'सप्तको' के, तथा कुछ अन्य नए कवियो की कविता आती है। जिन शैलीगत विशेषताओं के कारण इन कवियों को वर्गबद्ध किया गया उनका आरम्भ 'निराला' के ही काव्य मे हो जाता है तथा 'बच्चन', 'दिनकर' आदि द्वारा कुछ प्रयोग भी इसी दिशा मे किये गए हैं। एक वर्ग उन कवियों का है जिनको उपर्युक्त वर्गों मे से किसी एक के अतर्गत नही रखा जा सकता, परन्तु जो निरन्तर विविध प्रकार से काव्य-सृजन कर अपना योगदान देते रहे। इनमे—'नवीन', सियारामशरण गुप्त, भगवतीचरण वर्मा और उदयशकर भट्ट का उल्लेख किया जा सकता है। इन सभी कवियों ने बौद्धिक कविता मे अपना-अपना अशदान दिया है।

इस युग की बौद्धिक कविता की एक नई और सशक्त शैली, व्यग्य गीतियों की शैली है। इस रूप में कविता की यह विधा आधुनिक युग से पूर्व अप्राप्य है। यो व्यंग्य प्रधान कविता का सम्बन्ध परम्परा की दृष्टि से अमीर खुसरो से जोडा जा सकता है, परन्तु एक दीर्घकाल से हिन्दी कविता मे शिष्ट और साहित्यिक व्यग्य का अभाव मिलता है। द्विवेदी-युग के कवियों ने इस दिशा में जो इने-गिने प्रयत्न किये उनमें कटुता और भदेसपन आ गया है। व्यंग्यात्मक कविता वास्तव मे आलोचना का वक्रोक्ति-रूप है। जो अन्तर, चमत्कारशून्य वाच्यार्थ और वक्रोक्ति मे होता है, वही द्विवेदी-युग की आलोचनात्मक कविताओ और इस युग की व्यग्य गीतियों मे है। इन कविताओं का युग 'निराला' की रचनाओं—'कुकुरमुत्ता', और 'नये पत्ते' से आरम्भ होता है। 'निराला' की दृष्टि इन कविताओ मे समाजनिष्ठ और यथार्थवादी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने विषय से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लिया है, अतः उनका व्यंग्य शिष्ट, परन्तु सच्ची अन्तर्व्यथा से उद्भूत प्रतीत होता है। 'निराला' ने 'कुकुरमुत्ता' में एक छोटी-सी प्रतीक कथा का विधान करके समाज के विविध पक्षो पर बहुमुखी व्यग्य किया है। सीधा और स्पष्ट व्यंग्य उस समाज पर है जहाँ उच्च वर्ग की सत्ता होती है, और निम्न वर्ग उपेक्षित रहता है। कवि ने दो भिन्न वर्गों मे मेल-मिलाप के द्वारा वर्ग-सामंजस्य का भावी आदर्श खडा किया है। 'कुकुरमुत्ता' के प्रत्येक प्रसंग और संवाद का प्रतीकार्थ बताया जा सकता है। कवि ने काव्य के क्षेत्र में प्रगति और नयेपन के नाम पर जो अराजकता फैली है उस पर भी व्यंग्य किया है:

जैसे प्रोग्रेसिव का लेखनी लेते
नहीं रोका जा सकता जोश का पारा

यहीं से यह सब हुआ
जैसे अम्मा से बुआ।[1]

इसी प्रकार कवि टी० एस० इलियट के अन्धानुकरण पर व्यग्य करता है :

कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,
टी० एस० एलीयट ने जैसे दे मारा,
कहा, 'कैसा लिख दिया संसार सारा।'[2]

कुछ आगे चलकर कवि ने 'आधुनिक पोएट' को भी नही छोडा। वे नएपन के नाम पर फैली अव्यवस्था, परम्परा-विच्छेद और असम्बद्धता के समर्थक नही। इस प्रकार 'कुकुरमुत्ता' मे कवि ने बहुविध व्यग्य का उपयोग किया है। शैली मे एकाध स्थल पर कटुता उत्पन्न हो गई है—एक स्थल पर आधुनिक कवि की उपमा दुम हिलाते टेरियर से दी गई है।

'नए पत्ते' मे इसी शैली की छोटी कविताएँ सकलित है। जीवन की यथार्थ भूमि और जनवादी मूल्य इन कविताओ की आधार-भूमि है। मध्य और निम्न वर्ग के वास्तविक जीवन-चित्रो और सघर्षो के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि होने के कारण इन कविताओ मे व्यग्य के साथ कारुणिकता भी उत्पन्न हो गई है। कवि ने यथार्थ जीवन की विषण्ण विद्रूपता को तीव्रता से अकित किया है। उसके विभिन्न पहलुओ का अकन कवि के निकट परिचय और पैनी निरीक्षण-दृष्टि का परिचायक है। कही यह व्यग्य अत्यन्त मर्मस्पर्शी है, और अपनी यथार्थता मे कारुणिक। सकलन की पहली कविता 'रानी और कानी' इस प्रकार की है। कही इनमे हलका हास्य है तथा कही अति यथार्थवादी अनगढता—यथा 'खजोहरा' मे। परन्तु अधिकाश कविताओ मे सम-सामयिक सामाजिक और राजनैतिक दुरवस्था पर तीखे पैने व्यग्य है। कवि ने अपने दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे के विविध क्षेत्र इस कृति मे व्यग्य का आलम्बन बनाए है। 'मास्को डायलाग्स', 'थोड़े के पेट मे बहुत को आना पडा', 'गर्म पकौडी', 'कुत्ता भौकने लगा', 'झीगुर डटकर बोला' मे क्रमश: समाजवादी नेता, पूंजीवाद के प्रभाव, नये विचारों और शासन के अत्याचार व किसान की दयनीय अवस्था पर व्यग्य किया गया है। इसी प्रकार 'मँहगू मँहगा रहा' मे राष्ट्रीय नेताओं और गाधीवादी नीति पर तीव्र व्यग की बौछार है। इन अधिकाश कविताओ मे निम्न-वर्ग के जीवन में व्याप्त सुख-दुख (दुख का ही अधिक) का निकट परिचय मिलता है और वे अपनी यथार्थता में अत्यन्त करुण और मर्मस्पर्शी हैं। प्राय: इन कविताओ मे व्यग्य तो ध्वनित है ही परन्तु वाच्य सर्वथा अनावृत और विकर्षक होने के कारण कही-कही कुत्सित हो गया है। उनके अन्तस् का विद्रोही, कलाकार की अपेक्षा अधिक सजग है। अत: वह तीखी चोट और सीधा अनावृत आक्षेप करता है, उसे कला के आवरण मे लपेटकर परिष्कृत रूप मे प्रस्तुत नही करता। इनमे भर्त्सना और तिरस्कार की कड़वाहट और तिलमिला देने वाले प्रहार की प्रखरता आ ही गई है।

'निराला' के अतिरिक्त पंत, 'अचल' और भगवतीचरण वर्मा की कविताओं में भी व्यंग्य के छींटे मिलते है। परन्तु इतना तीखा, तिलमिलाने वाला और कारुणिक व्यंग इनकी

---

१. कुकुरमुत्ता—निराला, पृ० १०
२. वही, पृ० १०

कविताओं में नहीं मिलता। व्यग इन सभी कवियों ने समाज मे वर्ग-भेद की समस्या को लेकर किये हैं, अतः वस्तुरूप आधार-भूमि पर्याप्त स्पष्ट रही है। पन्त की व्यग्य-गीतियों का स्तर अत्यन्त साधारण है। वस्तुतः इनके कवि की दृष्टि मे उस समाज से पूर्ण तादात्म्य नही मिलता, जो उसके व्यग का प्रेरक या लक्ष्य है। कवि ने समय की बदलती हवा को समझा है और विवेक-शील मन से इस परिवर्तनशील विचारधारा का प्रभाव-ग्रहण कर एक वर्ग से सहानुभूति और दूसरे के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। परन्तु यह सहानुभूति बौद्धिक है आत्मानुभूत नहीं। 'निराला' के संघर्षरत जीवन मे अनेक समानान्तर कष्ट उनकी आत्मानुभूति का विषय रहे हैं, अतः बाह्य जीवन से चोट खाया कवि का मन सघर्षरत वर्ग के प्रति सवेदना प्रकट करता है। उसके कष्टो में अपने कष्टो का साक्षात्कार कर, उसकी करुणा और आक्रोश उदबुद्ध हो जाते हैं, अतः उनकी व्यग्य-प्रधान कविताओ मे हार्दिकता है, और पन्त की रचनाओं में बौद्धिक सहानुभूति। कवि ने इस भावतादात्म्य के अभाव को स्वय स्वीकार किया है—"इनमे पाठको को ग्रामीणो के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम जीवन मे मिलकर, उसके भीतर से, ये अवश्य नही लिखी गई है। ग्रामो की वर्तमान दशा मे वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।"[1] सहानुभूति के बौद्धिक होने के कारण उनकी कला भी विवेक-संयत है। अतियथार्थवादी दृष्टि और अनावृत व्यंग पन्त की कविता में नही :

राम राम,
हे ग्राम देवता रूढ़िधाम !
तुम स्थिर, परिवर्तन रहित, कल्पवत् एक याम,
जीवन सघर्षण विरत, प्रगति पथ के विराम,
शिक्षक तुम, दस वर्षों से मैं सेवक, प्रणाम।
....

तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूर्ण काम,
जड़वत्, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम,
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें शत शत प्रणाम।[2]

इन व्यंग्य गीतियो की शैली में भी उस ढग का नयापन और अनगढ़ता नहीं है जैसी 'निराला' की व्यंग्य रचनाओं मे। भगवतीचरण वर्मा और 'अचल' ने भी कुछ व्यग्य गीतियाँ लिखी है। उनकी शैली पन्त और 'निराला' की मध्यवर्तिनी है। न इनमे उतना सस्कार, भाषा का अलकरण और वैभव है जितना पन्त की कविता मे, और न 'निराला' का सा अनावृत यथार्थवादी दृष्टिकोण। पन्त की अपेक्षा उनमे प्रखरता है, और 'निराला' की अपेक्षा शैली-सज्जा।

कुछ सुन्दर व्यग्य गीतियाँ नए कवियो ने भी लिखी है। इनकी सख्या बहुत नहीं, परन्तु जो हैं वे ऊँचे स्तर की है। न इनमें यथार्थ जनपदीय वातावरण व समस्याओं के चित्र है, और न

---

१. ग्राम्या—पन्त—निवेदन, पृष्ठ ३
२. वही, पृष्ठ ५७-६२

आक्रोश व तीव्रता। कवि के विचार और वास्तविकता, अर्थात् सिद्धान्त और व्यवहार मे टक्कर और परिणामस्वरूप व्यवहार से सर्वथा असम्पृक्त, निरपेक्ष सिद्धान्त की व्यर्थता पर निखरा हुआ व्यंग, जिसमे हल्का-सा हास्य मिला रहता है, इस प्रकार की व्यग्य गीति की रूपरेखा बनाता है—

खाना खाकर कमरे मे बिस्तर पर लेटा
सोच रहा था मैं मन ही मन : 'हिटलर बेटा
बड़ा मूर्ख है, जो लड़ता है तुच्छ-क्षुद्र मिट्टी के कारण
क्षण भंगुर ही तो है रे ! यह सब वैभव-धन।
अन्त लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला।
लिखूं एक खत, हो जा गांधी जी का चेला
वे तुमको बतलाएँगे आत्मा की सत्ता
होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता।
कुछ भी तो है नहीं धरा दुनिया के अन्दर।
× × ×
छत पर से पत्नी चिल्लाई . 'दौड़ो बन्दर'।[1]

स्वतन्त्रता के उपरान्त—क्रान्ति के लिए उत्तेजना अथवा वर्ग-वैषम्य की भावना, पूजीवाद आदि का विरोध उतना प्रखर नही रहा, अतः समाज के प्रति व्यग्यात्मक कविता नही लिखी गई।

बौद्धिक कविता का दूसरा रूप विवेचन-विश्लेषण प्रधान है। इस कविता का अधिकाश इसी रूप मे लिखा गया और इस प्रकार की रचना सभी काव्य-धाराओ के कवियों ने की। विवेचन इन्होंने आत्म और इदम—दोनों का किया है। जहाँ इदम की प्रधानता है वहाँ आंशिक रूप से वर्णनात्मकता भी आ गई है। जहाँ आत्म प्रधान है, वहाँ भाव और विचार दोनों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। नई कविता का वृहदाश इसी प्रकार का है। अन्य कवियों में भगवती चरण वर्मा, उदयशकर भट्ट, 'दिनकर', सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण राव आदि ने भी इसी प्रकार की सुन्दर कविताएँ लिखी। इनमे से अधिकाश का सम्बन्ध कवि के अहम् से है। द्विवेदी-युग की कविता की भाँति इदम का, अर्थात् नैतिक आचार-व्यवहार से सम्बन्धित प्रश्नों का विवेचन और समाधान इनमें नहीं मिलता।

कहा जाता है कि छायावाद की अतिशय अन्तर्मुखी, सूक्ष्म और वायवी तथा मसृण कला की प्रतिक्रिया के रूप मे नई कविता मे जीवन के वस्तुगत, अनगढ मूर्त और यथार्थ रूप को महत्व दिया गया। परन्तु ये कवि आत्म की उपेक्षा करके भी नही चल सके, यही इनकी और द्विवेदी-युग की कविता के वस्तुपरक दृष्टिकोण मे मूल अन्तर है। इन्होने अपनी सभी कविताओ मे वस्तु पर भावना का रग नही चढाया, परन्तु वस्तु का अकन आत्मानुभूति के आधार पर किया और यह दृष्टि किसी प्रकार के आदर्श, नैतिक दृष्टिकोण या अन्य पूर्वाग्रह से आक्रान्त नही रही। इन्होने वस्तु के प्रति आत्मानुभूति को यथावत् मूर्त और वस्तुगत उपादानो के माध्यम

---

१. तारसप्तक—भारतभूषण अग्रवाल, पृष्ठ ३६

से कविता मे अनूदित करने का प्रयत्न किया है। अत वस्तुगत मूल्यो की जितनी स्वीकृति ये कला और शिल्प के क्षेत्र मे करते रहे, जितनी इनकी अप्रस्तुत-योजना, बिम्ब-विधान और अभिव्यक्ति इस मान्यता से प्रभावित रही, उतना इनका मूल दृष्टिकोण नही। इनमें और छायावाद के कवियो मे अन्तर केवल इतना है कि इन्होने एक ओर जीवन के अनगढ और विकर्षक, कठोर परन्तु यथार्थ रूप की ओर से आँखे बन्द नही की। दूसरे इन्होंने अपनी कविता के विषयों पर अपनी भावना का आरोपण नहीं किया। अन्यथा यह कहना कि इनका दृष्टिकोण बहिर्मुखी था, उचित नहीं होगा।

"नई कविता सबसे पहले एक नई मन स्थिति का प्रतिबिम्ब है, एक नये 'मूड' का, एक नये राग-सम्बन्ध का।.....

.....नई कविता की मूल विशेषता है मानव और मानव-जाति का नया सम्बन्ध, और वह मानव-जाति और सृष्टि मात्र के सम्बन्ध के परिपार्श्व मे।"[1]

स्पष्ट है, इस कविता मे द्विवेदीयुगीन कविता की भाँति न केवल मानव-जाति प्रधान है, और न छायावाद के समान मानव, बल्कि इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध यह कविता अन्तर्मुखी दृष्टिकोण का बहिरग प्रसार कही जा सकती है, छायावाद की भाँति आत्मकेन्द्रीकरण नही। इस रूप मे यह कविता छायावाद का विकास और प्रसार कही जायगी—प्रतिक्रिया और विरोध नही। इनकी नवीनता शिल्प और कलागत अधिक है, जिसका विवेचन यथाप्रसग किया जायगा।

विश्लेषण आत्म और इदम दोनों का हो सकता है। कवि जब इदम का विश्लेषण करता है तो विषय प्राय. भौतिक समस्या होती है, और आत्मा का विश्लेषण करता है तो भावना। विचारों का विश्लेषण जब होता है तो उनमें प्रतिपादन का स्वर आ जाता है। कभी-कभी कवि अनुभूति का विश्लेषण और विचार की व्यजना करता है :

मैं चलता मेरे साथ नया जीवन चलता है,
मैं चलता मेरे साथ नित्य ही दिन चलता है।
मैं श्वास छोड़ता चलता नव आशा स्वप्न संजोकर
विश्वास जोड़ता चलता जीवन में हास भिगोकर,
प्रत्येक चरण की गति में मेरा अस्तित्व सिमटता,
प्रत्येक चरण चलता है सुख दुख में प्राण पिरोकर।
मैं चलता मेरे साथ साथ मधुवन चलता है।[2]

उपर्युक्त कविता के मूल मे विचार है। कवि जीवन मे चलने को प्रगति मानता है। अनेक सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों, स्वप्नों और वास्तविकताओं और संघर्षों में भी जीवन की सार्थकता कर्मलीन रहने मे ही है। कर्म ही, चिरप्रगतिशील जीवन में मधुवन की सृष्टि है। उक्त विचार को कवि ने अपनी अनुभूति की व्याख्या के द्वारा व्यग्य बनाया है। इसी प्रकार

---

१. नये पत्ते --अक जनवरी-फरवरी १९५३, अज्ञेय, पृ० १९-२१
२. कवि भारती—उदयशकर भट्ट, पृ० ४८०

'दिनकर' की प्रसिद्ध कविता 'गीत अगीत कौन सुन्दर है' में तीन चित्रों का अंकन करके कवि ने प्रश्न उठाया है कि गीत और अगीत मे से कौन अधिक सुन्दर है ? विचार वहाँ भी व्यंग्य है।

उपदेश की प्रवृत्ति का एकान्त अभाव इस युग की कविता मे भी नही है। परन्तु इन कवियों का अधिकांश उपदेश, आदेश के रूप मे वाच्य नही, सन्देश और प्रेरणा के रूप मे व्यग्य है। ये कवि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का स्पष्ट निर्देश नही करते, वस्तुस्थिति का विवेचन करके उसमे अभीष्ट परिवर्तन की कामना और आवश्यकता की व्यजना-मात्र करते है। कही-कही वर्तमान असन्तोषजनक स्थिति के प्रति आक्रोश के कारण आलोचनात्मकता का भी सहज समावेश हो गया है। मार्क्सवाद से प्रभावित—'दिनकर', नरेन्द्र, 'अचल' आदि कवियो की अनेक कविताएँ इसी प्रकार की है। राष्ट्रीय सास्कृतिक चेतना और गाधीवाद की वाहक कविता मे उद्‌बोधन तो है परन्तु आक्रोश, आलोचना, और उत्तेजना नही, बलिदान और उत्सर्ग की त्यागमय शान्ति व्याप्त है। ये कवि जागृति के समर्थक हैं, परन्तु अपने पाठक को क्रान्ति के लिए उत्तेजना नहीं प्रदान करते, बलिदान की स्फूर्ति और उत्साह का आलोक विकीर्ण करते हैं। इनमे सोहनलाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, नरेन्द्र और 'नवीन' की कुछ इनी-गिनी कविताएँ आती हैं। भगवती-चरण वर्मा और उदयशकर भट्ट ने भी कुछ सुन्दर रचनाएँ की। इन कवियो ने किसी वाद के पक्ष-विपक्ष मे समर्थन और खडन की प्रवृत्ति न अपनाकर, कुछ सामान्य जीवनगत मानवीय सत्यों का प्रतिपादन किया है। दया और भावना मानव मात्र का गुण है। इसके समर्थन मे कवि ने अपना मत व्यक्त किया

मिली तुम्हें न यदि दया, मिली तुम्हें न भावना,
विनाश है मनुष्य तब समस्त ज्ञान-साधना !
विनाश तर्क-बुद्धि सब,
विनाश अध्ययन मनन।
विनाश सृष्टि पर विलाप,
विनाश तत्त्व का दमन,
अबाध बल अधीर गति,
अलक्ष निज समर्थता,
लिये मनुष्य कर रहा
विनाश का सृजन महा।[1]

उदयशंकर भट्ट की सदेश-प्रधान कविताएँ आत्मरस मे अधिक भीगी हैं। उनमे आलोचना की धार तो है ही नही, कवि के आत्मरस मे भीगी होने के कारण प्रगाढ़ अनुभूति है। अतः भावावेग की दीप्ति और ओज इनमें उत्पन्न हो गया है। आत्मानुभूत संदेश इन रचनाओं का प्राण है :

जीवन बिखर रहा पल-पल में, प्राण प्राण में, रोम रोम में,
जीवन निखर रहा पृथ्वी पर, जल में, थल में, व्योम व्योम में,

---

१. कवि-भारती—भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४३५

उसे प्राण दो, उसे त्राण दो, रक्त पिपासा युद्ध विकृति है,
इसे मान दो, शुद्ध ज्ञान दो, जीवन ही नि:शेष प्रकृति है,
जीने को यह लोक बना है, मरने को परलोक बना है,
तिमिर-हरण के लिए धरा पर रवि-शशि का आलोक बना है,
कलुषित है इतिहास तुम्हारा, कितना और प्रमाण चाहिए,
रक्त-लिप्त, विष दग्ध, धरा को नव-जीवन, नव-प्राण चाहिए ?[1]

नई कविता के अनेक कवियो पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव और कला की दृष्टि से नवीनता का आग्रह था। अत: समाज मे व्याप्त वैषम्य, अव्यवस्था और विभिन्न विभीषिकाओ के प्रति इनके मन का क्षोभ और परिवर्तन की कामना—कही आलोचना और कही निर्देश के रूप मे अभिव्यक्त होती है। वे एक ओर वर्तमान वस्तुस्थिति से असन्तुष्ट है :

बीसवीं सदी ने हमें क्या दिया ?
मोटर, रेल, विमान, क्रान्तियां ··
यह बेतार, सवाक् चित्रपट
कागज-मुद्रा आर्थिक सकट
गति अतिशयता, वेगातुरता·····
कहीं प्रपीड़न, कहीं प्रचुरता।[2]

इस प्रकार कवि का विचार-क्रम बहुत दूर तक चलता गया है। एक पक्ति मे वह इस वैज्ञानिक युग और सभ्यता की उपलब्धियो और प्राप्त सुविधाओ का वर्णन करता है और दूसरी पक्ति मे तद्जन्य महत्तर विषमताओं और कष्टों की ओर संकेत करता है। इस संघर्षलीन मानव-जाति के प्रति कलाकार के उत्तरदायित्व का भी उसे ज्ञान है, परन्तु उसका कर्त्तव्यादेश अधिक कलात्मक ढग से व्यंजित है, वाच्य नही। कवि स्वय कलाकार है, अत. वह अपने बोध-विश्लेषण के रूप में वर्ग के कर्त्तव्य का सकेत करता है :

कवि गाता है—
संक्रांति काल का कलाकार कवि गाता है,
.....
व्याकुल मानवता की संस्कृति की रक्षा का
उसके ऊपर आज भार है
भूत-भविष्यत्-वर्तमान को देख रहा वह आर-पार है :
वह ईश्वर है,
वह ज्ञाता है
दानवता से रौंदे जाते मनुष्यत्व का प्रतिनिधि है
वह कलाकार जो गाता है,

---

१. कवि भारती—उदयशकर भट्ट, पृष्ठ ४८०
२. तार-सप्तक—प्रभाकर माचवे, पृष्ठ ५९

जो केवल गाता है—।[1]

भारतभूषण अग्रवाल की 'अपने कवि से' कविता भी इस प्रकार की है। नई कविता मे विचार-विश्लेषण कहीं-कहीं अतिशय बौद्धिकता के कारण बोझिल हो गया है। इस प्रकार की रचनाओं का प्रभाव रागात्मक नहीं होता, उन्हे पढकर किसी प्रकार की अनुभूति, हार्दिक प्रतिक्रिया नही होती, बौद्धिक प्रभाव पड़ता है। कहीं विचार-क्रम में तारतम्य और ऋजु गति नहीं, अतः ऐसी स्थिति मे पाठक को अपने विवेक की सहायता से अर्थ-ग्रहण कर उसके मूल मे निहित अभिप्राय को समझना पडता है। तत्काल सवेदना जाग्रत करने का गुण इन कविताओ मे नही है। कही-कही इनके बिम्ब-विधान मे प्रस्तुत-अप्रस्तुत का पारस्परिक सम्बन्ध, और प्रयोग का औचित्य स्पष्ट नही हो पाता। गजानन मुक्तिबोध की 'सृजन-क्षण' की व्याख्या देखिए :

मैं हूँ नन्ह धूलि के कण-सा,
मैं अजस्र पृथ्वी के मन-सा,
घन मृत्कण में सृजन-क्षण में,
मलिनों में रह असि बिन्दु हूँ,
जीवन की सौन्दर्य शान्ति में
नभोविहारी शरद-इन्दु हूँ।
शुभ्रारुण किरणों से बिम्बित
रजत-नील सर उत्कट उज्ज्वल।
जिसमें अनलोर्मिल अनिलोर्मिल
कमल खिल रहे हैं वे रक्तोत्पल।
मनोर्मूत्ति यह चिर प्रतीक है
ध्येय धृष्ट उर की ज्वालामय।
मेरी प्रज्ञा का सृजन-क्षण
ऐसा ऊष्ण शुभंकर तन्मय।[2]

मुक्तिबोध के अधिकांश आत्मविश्लेषण इसी शैली में किये गए हैं।

पद्य-संवाद

निबद्ध मुक्तकों की एक शैली जिसका अन्तर्भाव पूर्व कथित किसी भेद के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता, संवाद-रूप में काव्य-रचना की शैली है। प्रश्न हो सकता है कि इस प्रकार की रचनाओं का उल्लेख और विवेचन चतुर्थ अध्याय मे अन्य नाटक-विधाओं के साथ क्यों नही किया गया? उत्तर होगा कि इन कविताओं मे नाट्य-तत्त्व नहीं, काव्य-तत्त्व प्रधान है। जहाँ इनका मूल रूप काव्यात्मक और संवाद इनकी शैली है, वहाँ अन्य नाट्य-विधाओ में नाट्य-तत्त्व उनका प्राण और पद्य उनका माध्यम है। प्राण-रूप में वर्तमान नाट्य-तत्त्व से यहां अभि-

---

१. तारसप्तक, पहला—नेमिचन्द जैन, पृष्ठ २५
२. वही—गजानन मुक्तिबोध, पृष्ठ १८

प्राय संघर्ष-विधान से है। किसी प्रकार की द्वन्द्वात्मक परिस्थिति नाटक का अनिवार्य अनुबन्ध है। यह द्वन्द्व स्थूल घटनाओं का, सूक्ष्म भावनाओं का अथवा विचारों का हो सकता है, परन्तु क्षेत्र चाहे जो हो संघर्ष का विधान नाटच-विधाओं के लिए अनिवार्य है। इस सघर्षमय स्थिति की शैलीगत विशेषता, समाख्यान के स्थान पर कथोपकथन-शैली मे प्रत्यक्ष चित्रण है। अत: नाटक की आत्मा है—संघर्षमय स्थिति का विधान और संवाद-शैली उसका बाह्य है। सामान्यत: नाटक का माध्यम गद्य होता है, परन्तु पद्य मे नाटक-रचना निषिद्ध नही। इन पद्य-संवादो मे नाटच-विधाओ से अन्तर यह है कि इनका प्राण-तत्त्व रूपकात्मक नही है। इनमे किसी प्रकार की द्वन्द्वमय परिस्थिति का विधान नही किया गया, केवल इनकी शैली मे सवाद-योजना के रूप में नाटच-तत्त्व का उपयोग मिलता है। इनकी आत्मा किसी भी ऐसी निबद्ध कविता के सदृश है, जिसमें कोई भाव या विचार प्रेष्य है, केवल अधिक प्रभावात्मकता अथवा रोचकता उत्पन्न करने के लिए कवि संवाद-शैली का अवलम्बन लेता है।

अपने मूल रूप मे इस विधा का सम्बन्ध उपलब्ध प्राचीनतम भारतीय साहित्य से जोडा जा सकता है। प्रबन्ध के बीच मे तो दो पात्रो के मध्य कथा कहने-सुनने की पद्धति समग्र भारतीय साहित्य मे प्रचलित रही, परन्तु घटना-विहीन विचार-प्रतिपादन के लिए भी सवाद-शैली का प्रयोग पुराण और उपनिषदों में प्राप्य है। परन्तु आधुनिक कविता मे लिखे गए सवादो का स्वरूप इनसे बहुत भिन्न है।

द्विवेदी-युग की कविता मे जो कुछ सवाद लिखे गए उनमे शैलीगत नवीनता नहीं है। इनका प्रणयन सस्कृत-साहित्य मे विचार-विमर्श के लिए रचित विभिन्न सवादो के ढग पर किया गया है। रम्भा-शुक-सवाद विशेष रूप से इन कवियो को प्रिय रहा। किन्तु इन सवादो मे नाटच-तत्त्व सहज उद्‌भूत नहीं, आरोपित है। भ्रमरगीत-प्रसंग की भाँति इनमे कथा का विन्यास अथवा वाग्वैदग्ध्य भी नही। केवल किसी साधारण विचार का प्रतिपादन समाख्यान शैली मे न करके कवि दो व्यक्तियो के बीच सवाद-योजना के द्वारा करता है। यही इनमे शैली सम्बन्धी विशेषता है। इसके अतिरिक्त नाटच-तत्त्व इनकी आत्मा से उद्‌भूत नही होता।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने स्पष्ट रूप से कहा कि वे 'शुक-रम्भा' के 'विदित शब्द-सग्राम' की 'बानगी' सुना रहे है, और तदुपरान्त विविध वर्णिक छन्दो मे कवि यह बानगी कुछ दूर तक सुनाता गया। लाला भगवानदीन ने भी 'शुक-रम्भा' सवाद की रचना की। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसी शैली मे तत्कालीन विविध समस्याओ को इन सवादो मे स्थान दिया। इन सवादों के मूल मे कोई विचार या उपदेश निहित रहता है। द्विवेदीजी ने 'शहर और गाँव' के अन्तर को दोनो के बीच संवाद-रूप मे प्रस्तुत किया

शहर गाँव से बोला भाई।
मुझको तुझ पर मिली बड़ाई।
मुझसे सबको बहुत नफा है।
तुझसे तो हर शख्स खफा है।[1]

---

१ द्विवेदी काव्यमाला—सं० देवीदत्त शुक्ल, पृ० ४०९

इसी प्रकार स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए बलिदान की आवश्यकता का प्रतिपादन भी कवि और स्वतन्त्रता के बीच संवाद मे व्यग्य है प्रत्यक्ष उपदिष्ट नही। इस प्रकार संवाद-विधान से इन कविताओ मे रोचकता उत्पन्न हो गई है :

कवि—हे स्वतन्त्रते ! जन्म तुम्हारा
कहाँ ? बता यह प्रश्न हमारा।
स्वतन्त्रता—शूर वेश-हित तजते जहाँ
प्राण, जन्म मेरा है वहाँ।[1]

संवाद-योजना के लिए कवि ने जड मे चेतना का आरोप और अमूर्त का मूर्तिकरण किया है। इन संवादो की शैली अत्यन्त सामान्य, इतिवृत्तात्मक और सहज बोधगम्य है। सवादों मे विशेष प्रखरता, तर्क, युक्ति व नाटकीय सजीवता नही मिलती।

द्विवेदी-युग के उपरान्त स्वतन्त्र रूप मे संवाद-शैली मे काव्य-रचना बहुत समय तक नही हुई। सवादो का प्रयोग या तो नाट्य-विधाओ के अन्तर्गत किया गया, अथवा प्रबन्धो की समाख्यान शैली मे अग-रूप से। छायावादी काव्य का आधार वायवी, अमूर्त, सूक्ष्म और रम्य है, तथा नाट्य शैली की प्रत्यक्षता, द्वन्द्वात्मक वस्तु-योजना तथा सवादों की तीव्रता इस काव्य-धारा की एकान्त गीतिमय चेतना के अनुकूल नही बैठती, अत: इस काव्य-धारा में लिखी गई कविताओ मे नाट्य-शैली का प्रयोग नही हुआ। छायावादोत्तर काव्य या नई कविता मे एक बार मूर्त्त, वस्तुगत मूल्यो के महत्त्व-वर्द्धन और प्रतिष्ठा के साथ, कविता मे नाट्य-शैली का प्रयोग बढ चला, और अधिक कलात्मक ढग से। ये नए कवि विषय को अधिक रोचक बनाने के लिए केवल साधन-रूप मे सवाद का प्रयोग नही करते, अभिव्यजना-सम्बन्धी नवीनता के आग्रह के कारण नाट्य-शैली मे अपनी विषयवस्तु को ढालते है। इस प्रकार यह शैलीगत नवीनता इनका साधन नही साध्य है। विषयो मे वैविध्य के साथ अभिव्यजना मे भी वैविध्य की ये कवि आवश्यकता समझते है। गजानन मुक्तिबोध ने अपने नाट्यगुण-समन्वित प्रयोगो के लिए ऐसा स्वीकार भी किया है—"जीवन के इस वैविध्यमय विकास-स्रोत को देखने के लिए इन भिन्न-भिन्न काव्य-रूपों को, यहाँ तक कि नाट्य तत्त्व को, कविता में स्थान देने की आवश्यकता है। मै चाहता हूँ कि इसी दिशा मे मेरे प्रयोग हो।"[2]

उपर्युक्त वक्तव्य के अनुकूल मुक्तिबोध ने कुछ प्रयोग किये। परन्तु इन सवादो का स्वरूप पूर्ववर्ती प्रयोगो से सर्वथा भिन्न है। यदि कहा जाय कि दोनो मे कोई समानता ही नही है, तो अधिक उचित होगा। कवि अन्तर्मन के अमूर्त विषयो को लेकर एकाधिक पक्ष की उक्तियों के रूप मे उनका चित्रण करता है। इनमे सदैव दो मूर्त पात्र नही होते, इस प्रयोजन के लिए अमूर्त के मानवीकरण का प्रयत्न भी नहीं किया जाता। वास्तव मे कभी-कभी इन दो पक्षो के बीच सवाद मे प्रश्न और उत्तर अथवा तर्क-वितर्क या वक्ता-श्रोता का सम्बन्ध ही नही होता। कभी अन्त: के दो भागो का—चेतन और अवचेतन, अनुभूति और विचार या भाव और विवेक

१. द्विवेदी-काव्यमाला, पृष्ठ ४२०
२. तारसप्तक—गजानन मुक्तिबोध, पृष्ठ ११

का एक-दूसरे के संदर्भ में चित्रण या अन्तर प्रस्तुत किया जाता है। अतएव सदा द्वन्द्वमय स्थिति की उद्भावना यहाँ भी नही की जाती। अपने विषय के रूप मे इन्होने अन्तर्मन के सूक्ष्म स्तरो का चयन किया है, भौतिक जीवन के स्थूल वस्तुगत क्षेत्र का नही। इस प्रकार इन्होने अन्त. का विश्लेषण नाट्य-शैली मे प्रस्तुत किया। गजानन मुक्तिबोध द्वारा रचित इस प्रकार के एक 'आत्म सवाद' की कुछ पक्तियाँ है :

आज छन्दों में उमड़ती आ रही है बात
जो कि सादे गद्य मे खुलती रही
जो कि साधारण सड़क चलती रही
आज छाती मे घुमड़ती आ रही है बात
रास्ता है, पैर है, और धैर्य चलता जा रहा है
(किन्तु उर में क्यो उदासी शापसी
प्रत्येक चेहरे पर लिपी जो राख सी)[1]

उक्त कविता की नाट्यता या सवादमयता मे पाठक को शका न हो इसलिए कवि ने पहले ही स्पष्टीकरण मे कुछ पक्तियाँ लिखी है—"यह एक नाटकीय आत्म सवाद है जिसमे प्रकाश मे बोलने के वाक्य ब्रेकेट मे नही है। जो ब्रेकेट मे है वे यथार्थ आत्मस्वीकृतियाँ है और जो उसके बाहर है वे उसके यथार्थ (rationalizations) है।"[2]

'अज्ञेय' ने भी अपनी अन्तरात्मा का तर्क-वितर्क 'प्रश्नोत्तर' शीर्षक मे व्यक्त किया है।[3] धर्मवीर भारती ने 'देह की आवाज़' मे मन और शरीर के बीच सवाद-योजना की है। इस सवाद मे पात्र प्रत्यक्ष है, कवि ने देह और मन पर चेतना का आरोप करके, पात्रो के रूप मे कथोपकथन का विधान किया है। यह शैली द्विवेदी-युग के सवादो के समान है, परन्तु अभिव्यजना कही अधिक कलात्मक है :

मन ने शरीर से पूछा
क्यों है इतना आकर्षण
रसमय चुबकमय कसी देह का
चिकने मांसल तन का
उस नोकीली रंगीन नज़र का
. .. .
अब तक जो चुप थी देह,
ज़रा मुसकाई
अनगिन वसन्त की
रंग-गंध उठ आई

---

१. तारसप्तक, पृष्ठ १९
२. वही—गजानन मुक्तिबोध, पृष्ठ १९
३. इत्यलम—अज्ञेय, पृ० २९

ऐसी मुसकान कि जैसे
चाँदनी छाई[1]

अन्य नाट्य-विधाओं की भाँति संख्या मे ये पद्य-संवाद भी बहुत कम लिखे गए। जैसा पहले भी कहा जा चुका है, इनमे किसी सघन द्वन्द्वात्मक परिस्थिति का विधान नही किया गया, इनमे प्रयुक्त नाट्य-तत्त्व, केवल उत्तर-प्रत्युत्तर-क्रम, व कथोपकथन तक ही सीमित है।

अभिव्यंजना-शैली

आधुनिक युग की निबद्ध-मुक्तक रचनाओं और अनिबद्ध मुक्तकों मे शैलीगत अन्तर उन्ही विधाओ में मिलता है, जो किसी कारणवश स्फुट मुक्तको मे नही प्राप्त होती, अन्यथा कुछ विधाएँ जिनमे अन्तर केवल एक छन्दोबद्ध और एकाधिक छन्दोबद्ध होने के कारण है, लगभग समान शैली मे लिखी गई। उनकी अप्रस्तुत-योजना, अलकार-विधान, भाषा, चित्रात्मकता, गुण, शब्द-शक्ति, सभी मे समानता है। अत· जो निबद्ध कविताएँ शैली की दृष्टि से समानान्तर मुक्तक विधाओं के समान हैं, उनकी शैलीगत विशेषताओं की ओर संक्षेप में सकेत करते हुए, विस्तार केवल उन्ही विधाओं की अभिव्यंजनागत विशेषताओ का किया जायगा जो प्रयोग की दष्टि से नवीन हैं, और जिनकी समानान्तर रचनाएँ अनिबद्ध मुक्तक रचनाओं में नही मिलतीं।

विवेच्य साहित्य का आरम्भ द्विवेदीयुगीन काव्य से होता है। इस युग के आरम्भ में एक धारा तो उन कविताओं की थी जिनमें विषय और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियो से प्राचीन परम्परा का पालन मिलता है, तथा दूसरी धारा उन निबद्ध मुक्तकों की है जिनमे नवीन चेतना, वस्तुगत व नैतिक आचार-व्यवहार सम्बन्धी मूल्यों की स्वीकृति के साथ नई भाषा मे, नए ढंग की इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया गया। विवेच्य काव्य मे, प्रयोग की दृष्टि से उपलब्ध शैलियों में कालक्रमानुसार पहला स्थान इसी शैली का है। अतः इसी के विवेचन से विषयारम्भ करते हैं।

इतिवृत्तात्मक-शैली—का विवेचन अनिबद्ध मुक्तक रचना के प्रसग मे पिछले अध्याय मे किया जा चुका है। द्विवेदी-युग की आरम्भिक निबद्ध कविताएँ, वस्तुत अधिकांश काव्य, इसी शैली मे लिखा गया। इस शैली की प्रमुख विशेषता है—अर्थ की अति प्रकाशित स्थिति और प्रसादमयता। कही-कही व्यग, आलोचना, और फटकार के लिए चमत्कारकारिणी कवि-कल्पनाओं का प्रयोग किया भी गया है, परन्तु प्रसादमयता वहां भी व्याप्त है। इस युग की अधिकांश आरम्भिक कविता मे इसी शैली का प्रयोग हुआ जिसका सबल कारण, परम्परागत काव्य-भाषाओं—ब्रज और अवधी से सम्बन्ध-विच्छेद कर नए माध्यम-निर्माण की साधना थी। खडीबोली अपनी शैशवावस्था में अशक्त माध्यम सिद्ध हुई और कलात्मक-सौन्दर्य की साधक न बन सकी। फिर भी स्फुट मुक्तको मे इस अपरिपक्व माध्यम से गागर मे सागर भरने का कार्य जितना दुष्कर था, उतना निबद्ध कविताओं मे विस्तृत इतिवृत्त-वर्णन का नही। अतः कहीं-कहीं इन निबद्ध मुक्तको में आंशिक रूप से भाव-सौन्दर्य और रमणीयता आ गई है, परन्तु

१· धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १०३-१०४

ऐसे स्थल बहुत कम हैं। स्पष्टता तथा अर्थप्रकाशजन्य प्रसन्नता इस शैली मे सर्वत्र व्याप्त है। शैली मे प्रसन्नता की यह अतिशयता अनेक स्थलो पर नीरसता का कारण बन गई है। यह विशेषता द्विवेदी-युग की आरम्भिक कविताओं में विशेष रूप से मिलती है। इस कविता के वर्णन, उपदेश, आलोचना, व्यग सभी इसी शैली में रचित हैं।

सर्वत्र इतिवृत्त शैली की वाच्यप्रधान कविता नीरस और अनाकर्षक नही। जहाँ ये कवि अपने विषयों के प्रति दृश्य-दर्शक सम्बन्ध की रक्षा करते हुए तटस्थ द्रष्टा के समान वर्णन करते रहे है, वहाँ राग-तत्त्व क्षीण, और केवल निरीक्षण के आधार पर काव्य-रचना होने के कारण उसमें मधुरिमा नही आ सकी। परन्तु जहाँ इन्होने विषय से तादात्म्य स्थापित करके, भले ही स्पष्ट और प्रसन्न शैली मे भावाभिव्यक्ति की है, वहाँ इनकी शैली मे रम्यता और सरसता आ गई है। इस प्रकार के उदाहरण रामचन्द्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक तथा नाथूराम शकर आदि कवियो की कविताओ मे मिल जायँगे। इतिवृत्तात्मक शैली और सरसता व माधुर्य मे परस्पर कोई विरोध नही है, परन्तु इस शैली मे कलागत चमत्कार नही मिलता।

द्विवेदी-युग के द्वितीय दशाब्द से ही काव्य में भाषा के विकास के साथ-साथ शैली मे भी परिवर्तन और विकास लक्षित होने लगा था। इस काल मे लिखी गई 'निराला', पन्त आदि कवियो की रचनाएँ अपनी नवीनता के कारण ही आलोचना का विषय बनती रही, और फिर छायावाद के उन्मेष के उपरान्त तो इतिवृत्त शैली का काव्य-रचना के क्षेत्र से बहिष्कार ही हो गया। इस शैली का पुनरुद्धार एक बार फिर छायावाद की प्रतिक्रिया-स्वरूप उदित होने वाली कविता की नवीन धाराओ मे मिलता है। इनमे भी समाजवादी चिन्ताधारा की पोषक एवं राष्ट्रीय भावनाओ की व्यजक कविता मे विशेष रूप से इस शैली को स्थान मिला। परन्तु इस बार इसका रूप सर्वथा भिन्न था। इन कवियो ने यथार्थवादी दृष्टिकोण से इतिवृत्त वर्णन इसलिये किये क्योकि तत्कालीन सामाजिक विकृतियो का यथातथ्य चित्रण कर पाठक के सामने लाना समय की आवश्यकता थी। इसी प्रकार राजनैतिक अव्यवस्था और अत्याचार का चित्रण कर भारतवासियो को विद्रोह के लिए प्रेरित करना उस युग की माँग थी। अतः इन कविताओ मे इतिवृत्त-वर्णन इसलिए नही किया जाता कि इन कवियो के पास समर्थ भाषा और शैली का अभाव है, अथवा इनके पास सवेदनशील और विषय से तादात्म्य स्थापित करने मे समर्थ मनोवृत्तियाँ नही, बल्कि इसलिए किया जाता है कि ये कवि आत्मा की अपेक्षा समाज और जाति को महत्ता देते है। समाज और देश के दु.ख-सुख से पीड़ित और प्रसन्न होते है, और अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियो का आत्म के वृत्त से बाहर विस्तार कर, जगत् से बाँटकर भोगना चाहते है। इसलिये इनके इतिवृत्त-वर्णन का स्वरूप द्विवेदी-युग की कविता से सर्वथा भिन्न है। इनमे विषय से तादात्म्य स्थापित कर, अथवा आन्तरिक प्रेरणा से यथार्थ वर्णन किये गए है। इन वर्णनों के मूल मे निश्चित विचारधारा और जीवन-दर्शन का आधार विद्यमान है। परिणामतः यह कविता अपनी यथार्थता, वर्णनात्मकता, और इतिवृत्तात्मकता मे भी मर्मस्पर्शी और कलात्मक है।

प्रगतिवादी काव्य की एक विशेषता भाषा का व्यवहारसम्मत प्रयोग है। ये कवि सायास

भाषा का अलंकरण नही करते, उसमें लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता, प्रतीकात्मकता, सन्धि-समास-युक्त बोझिल शब्दावली और अत्यधिक तत्सम-प्रधानता से बरबस उसे व्यवहार से दूर और अपरिचित नही बनाते, अतः भाषा की सहज व्यावहारिकता से इनकी कविता मे एक सहज आकर्षण उत्पन्न हो गया है। एक विशेषता जो इनकी भाषा मे द्विवेदीयुगीन भाषा से अन्तर प्रस्तुत करती है—भाषा मे लय के संगीत का समावेश है। द्विवेदी-युग की आरम्भिक रचनाओ तक ब्रजभाषा का माधुर्य तो सर्वसम्मति से स्वीकृत था, परन्तु खडीबोली के काव्यात्मक प्रयोग की समस्त सम्भावनाएँ सामने नही आई थी। इस युग का कवि-समुदाय, इस क्षेत्र में लेखनी आजमा रहा था, उसकी अवस्था साधक की थी, साधना पूर्ण होनी बाकी थी। इसके अतिरिक्त द्विवेदीजी के भाषा-शुद्धि के प्रयत्नो के कारण ये कवि भाषा का स्वच्छन्दतापूर्वक मन-चाहा प्रयोग भी नही कर सके, केवल कुछ दूर तक उर्दू का प्रभाव इनके काव्य पर पड़ा। परन्तु प्रगतिवादी कवि की शब्दावली का चयन अधिक उदारतापूर्वक दूर-दूर से किया गया है। उन्होने व्यवहार की भाषा से, विदेशी भाषाओं से, लोक-जीवन से और विशेष विचारधाराओ की पारिभाषिक शब्दावली से, अपने शब्द-कोष का निर्माण किया है। इस दिशा मे किसी प्रकार का बाधा-बन्धन उनके सामने नही रहा। इन कवियो ने सस्कृतज्ञता का मोह नही दिखाया, अतः इनकी शैली मे व्यावहारिक भाषा का सहज सौन्दर्य और शक्ति दोनो ही वर्तमान है।

उपर्युक्त शैली का परवर्ती काव्य मे प्रयोग 'निराला' की पिछली रचनाओ मे, तथा पन्त की 'ग्राम्या' के कुछ वर्णनों मे मिलता है। 'दिनकर', नरेन्द्र शर्मा, 'अचल', माखनलाल चतुर्वेदी, 'नवीन' आदि के अनेक वर्णन इसी शैली मे किये गए है। परन्तु इन सभी कवियो ने भाषा की व्यावहारिकता, उसकी सगीतात्मकता (लय और स्वर) गति, और विषयानुकूलता का विशेष स्मरण रखा है। कही-कही इनके वर्णनो मे अत्यधिक स्थूलता आ गई है, परन्तु इसका कारण असमर्थ शैली नही है, बल्कि जीवन की यथार्थता और अनगढता को यथावत् शब्दान्तरित करने का आग्रह है। सौन्दर्य के चितेरे कवि 'पन्त' की तूलिका से इस शैली का चित्र भी देखिये :

जाती ग्राम वधू पति के घर !
माँ से मिल, गोदी पर सिर धर,
गा गा बिटिया रोती जी भर,
जन-जन का मन करुणा आतुर,
जाती ग्राम वधू पति के घर[1]

इस प्रकार के वर्णन पन्त की लेखनी से कम हुए है। उनकी सौन्दर्य-प्रेमी नागर दृष्टि अनगढ सौन्दर्य मे भी अप्रस्तुत-चयन के रूप मे मरकत और मखमल का अनुसन्धान कर लेती है, तथा गति को शब्दबद्ध कर कविता मे नादगुण की शत-शत झकारे उत्पन्न करती है। 'दिनकर' आदि की इस प्रकार की कविता के मूल मे व्यक्त ओजमय भावना से दीप्ति और प्रभावात्मकता उत्पन्न हो जाती है। कहीं-कही आद्यन्त निरलकार वर्णन करने पर भी उसमे व्यक्त अनुभूति की सत्यता, उसकी निरावरण अभिव्यक्ति, और लय के सगीत का निर्वाह कविता मे आकर्षण

१. ग्राम्या—पन्त, पृ० ३३

उत्पन्न कर देता है :

श्वानों को मिलते दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण।[1]

नरेन्द्र शर्मा ने अवश्य कुछ इतिवृत्त-वर्णन और उपदेश-दान द्विवेदी-युग की ही शैली में किया है, परन्तु ऐसे वर्णनो की सख्या उनके काव्य मे भी कम है। समाजवाद के प्रभाव और गांधीजी के निधन से प्रेरित उनकी कुछ रचनाओं मे यह विशेषता आ गई है। सामान्यतः उनकी शैली प्रगीत तथा गीत-रचना की भाव-समृद्ध आत्मनिरूपिणी शैली है, जिसमे इस प्रकार की तटस्थ वर्णनात्मकता का स्थान नही होता।

'निराला' ने जो यथार्थ-वर्णन अपनी 'नए-पत्ते' मे सकलित कविताओ मे किये, उनकी इतिवृत्तात्मकता के मध्य या अन्त मे कही-न-कही बर्रे के डक के समान व्यग का दश विद्यमान है जो सम्पूर्ण कविता को उसकी इतिवृत्तात्मकता मे भी वक्रता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त उनकी शैली में इतिवृत्त-वर्णन नाटकीय शैली में किया गया है। मुक्त छन्द की भाव-लय के आधार पर नियमित गति इन कविताओं को और भी गति-वैचित्र्य प्रदान करती रही है। 'निराला' की प्रसिद्ध कविताएँ 'गर्म पकौड़ी' और 'रानी और कानी' आदि इसी शैली मे लिखी गई हैं।

चमत्कारप्रधान वर्णन-शैली—इतिवृत्त वर्णन-शैली के साथ ही द्विवेदी-युग से ही जिस दूसरी शैली का प्रचार और व्यापक प्रयोग हुआ वह शैली भी वर्णनात्मक थी, परन्तु उसमे इतिवृत्त-वर्णन के स्थान पर सौन्दर्य-चेतना और अलकरण व अन्य कल्पनाजन्य साधनो द्वारा चमत्कृत वर्णनो का आग्रह बढा। इस शैली के मूल, रीतिकालीन वर्णन-पद्धति मे पहले से वर्तमान थे, अतः कुछ वर्णन तो इसी परम्परासिद्ध चमत्कारप्रधान शैली मे किये गए, परन्तु बाद मे पन्त और 'निराला' के हाथो इसका रूप-परिवर्तन हुआ। यह बात द्विवेदी-युग की ही है। क्योकि ये दोनों कवि इसी युग में क्रमशः प्रबन्ध काव्य 'ग्रन्थि' और निबद्ध कविता 'जुही की कली' की रचना कर चुके थे।

रीतिबद्ध चमत्कारप्रधान शैली की परम्परा मे रचना करने वाले कवियो मे नाथूराम शर्मा 'शकर' के नखशिख-वर्णन, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की कुछ कविताएँ तथा प्रसाद की रचनाएँ आती हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी इस दिशा मे बीसवी शताब्दी के पहले ही लेखनी चलाकर उसके गुण-दोषों से परिचित हो चुके थे, और नवीन शती के आरम्भ के साथ उन्होने अपना मत नई भाषा, नए छन्द और नई शैली के पक्ष मे देना आरम्भ कर दिया था। इस युग के अन्य कवियों मे कुछ तो परम्परा-विच्छेद कर नवीन काव्य-चेतना और शैली का आह्वान कर रहे थे यथा श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल, प्रसाद आदि, और

---

१. हुंकार—दिनकर, पृ० ७३

कुछ ने काव्यरचनारम्भ ही नवीन शैली के अग्रदूतों के रूप मे किया यथा 'निराला' और पन्त। कुछ कवि प्राचीन रीति शैली से तो सम्बन्ध-विच्छेद कर चुके थे परन्तु शैलीगत नवीनता के नाम पर नीति-उपदेश और वर्णनों के लिए इतिवृत्त-वर्णन की पद्धति को अगीकार कर चुके थे। इन कवियों मे रूपनारायण पाण्डेय, स्वयं द्विवेदीजी, मैथिलीशरण गुप्त की कुछ कविताओं, 'सनेही', नाथूराम 'शंकर', 'पूर्ण' आदि की कुछ रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

वर्णन मे चमत्कार का आश्रय दो रूपो मे लिया जा सकता है—केवल अलकार-योजना, वर्णन-शैली आदि पर आधृत उक्ति-चमत्कार तथा भाव-चमत्कार से स्वत. उद्भूत अभिव्यंजना-चमत्कार। यहाँ हमारा अभिप्राय भाव-प्रेरित उक्ति-वैचित्र्य से है। इस प्रकार शैली की विशिष्ट भंगिमा भाव की नवीनता और वक्रता से उत्पन्न होती है। भावप्रेरित वर्णन की नवीन शैली का इस युग में बहुविध विकास हुआ। इसका एक कारण पाश्चात्य काव्य से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सम्बन्ध, अतएव उसकी अभिव्यजना-शैली का प्रभाव भी था। इन वर्णनो मे यह शैलीगत नवीनता विविध रूपो मे दिखाई दी। वर्णन-शैली की ये प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है.

(१) **चित्र-व्यंजना**—इस शैली की प्रधान विशेषता है। इस प्रयत्न में द्विवेदी-युग से लेकर नवीनतम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि संलग्न रहे। काव्य के क्षेत्र मे चित्रकला का यह प्रयोग शुभ ही हुआ। इस युग की कविता नियत विषयों का वर्णन करके केवल अर्थ नही, बिम्ब-ग्रहण कराने मे अधिक सफल और समर्थ हो सकी है। शैली की दृष्टि से यह प्रवृत्ति सर्वथा नूतन तो नही कही जा सकती। प्राचीनतम साहित्य मे—रूप, नख-शिख और प्रकृति के वर्णनो मे चित्रांकन के प्रयत्न सहज ही ढूंढे जा सकते है, परन्तु इस काल की कविता मे चित्रात्मक वर्णन की शैली का पुनर्निर्माण निश्चित रूप से हुआ है। प्राचीन काव्य और उसके अनुकरण पर रचित मध्ययुगीन साहित्य में चित्रों का आधार रूपगत विशेषताएँ होती थीं। रीतिकालीन कवियों के नख-शिख वर्णनो मे पात्र के बाह्य रूप की प्रधानता रहती थी। कवि चित्र-विचित्र अप्रस्तुत-योजना के द्वारा आलम्बन के बाह्य रूप को पृष्ठो पर उतारता था। अधिक-से-अधिक, पात्रों की कुछ मुद्राएँ इन चित्रों मे बन्दिनी है, परन्तु आधुनिक युग के कवि ने चित्राकन मे केवल रूपगत स्थूल रेखाओं को, सौन्दर्य को, शब्दो मे नही उतारा, उससे अधिक वर्ण्य के रूपगत समवेत प्रभाव, उसकी गति, क्रिया-कलापों और सूक्ष्म डिटेल को महत्त्व दिया है। अतः इनके अप्रस्तुत-चयन का आधार भी रूप-साम्य न होकर प्रभाव-साम्य हो गया। परिणामतः इन चित्रों मे वर्ण्य के प्राणों का स्पन्दन मिलता है, इनके चित्र फ्रेम मे बँधे जड चित्र नही, चलते-फिरते जीते-जागते चित्र प्रतीत होते है। इनमें और पूर्ववर्ती साहित्य की चित्रण कला में वही अंतर है जो 'फोटोग्राफी (photography) और 'सिनेमेटोग्राफी' (Cinematography) मे होता है। यह विशेषता मानव जैसे सीमित विषय के ही नही, प्रकृति जैसे व्यापक और भाव एवं विचार जैसे अमूर्त और सूक्ष्म विषयों के सम्बन्ध मे भी सत्य है। शैली के सम्बन्ध मे इस मूलभूत दृष्टिकोण के अन्तर से, इनकी अभिव्यंजना मे अनेक प्रासगिक अन्तर प्रस्तुत हुए व अन्य विशेषताएँ उत्पन्न हुईं।

(२) **अर्थव्यंजक शब्द-योजना**—यथासभव वर्ण्य की रूप-सम्बन्धी विशेषताओ को ही नही, उसके नाद और ध्वनि को भी शब्दों मे अनूदित करने के प्रयास में ये कवि ऐसी ध्वन्यार्थ-व्यजक शैली का प्रयोग करते थे कि उससे नाद-गुण की व्यंजना होती थी। यह ध्वनि का संगीत

छन्द की लय और गेयता के लिए स्वर-सगीत, एव गति सगीत—दोनों से भिन्न शब्दों का अपना सगीत होता था जिसमे कवि वर्ण्य के रूप के साथ उसकी नादमयता को भी प्रेषित करता है। पंत की 'बाँसो का झुरमुट' कविता की आरम्भिक पक्तियो मे चिड़ियो की चहचहाट इसी प्रकार बधी है :

बांसों का झुरमुट—
सध्या का झुटपुट—
हैं चहक रहीं चिड़ियां
टी-वी-टी-टुट-टुट।[1]

इसी प्रकार निराला ने 'बादल-राग' मे प्राकृतिक उपादानो की गति और ध्वन्यात्मक सौन्दर्य को शब्दो में बाँधा है :

चल रे चल,—
मेरे पागल बादल !
घंसता दलदल,
हँसता है नद खल-खल
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल ![2]

इन पक्तियो मे नद का बाह्य रूप और प्रवाह नही प्रवाह-ध्वनि भी व्यजित है। इस प्रकार के अनेकानेक उदाहरण, आधुनिक कविता से दिये जा सकते है। इस शैली का प्रयोग किसी वाद-विशेष से सम्बद्ध नही, प्रत्येक काव्यधारा के कवि ने न्यूनाधिक मात्रा मे इसका प्रयोग किया अवश्य और छायावाद से प्रचलित होकर यह प्रवृत्ति अबाधित रूप से प्रगति-प्रयोगवाद तक चली आयी है। विचारधारा की दृष्टि से समाजवादी, और काव्य-शैली की दृष्टि से प्रयोग-वादी कवि रामविलास शर्मा ने भी इस अभिव्यजना के प्रति मोह दिखाया है। समुद्र के किनारे बैठा कवि केवल लहरो के रूप का ही अकन नही करता, उनमे निनादित स्वर-लहरी को भी सुनकर शब्दान्तरित करता है :

सागर लम्बी साँसें भरता है,
सिर धुनती है लहर-लहर;
बूदी-बादर में एक वही स्वर
गूंज रहा है हहर-हहर।[3]

(३) **गत्यात्मकता**—इन वर्णनो की तीसरी विशेषता इनमे गति और प्रवाह है। इस युग की चित्रात्मक कविता मे अधिकाश चित्र गत्यात्मक होते है। कुछ विशेष विषयो को छोडकर, जिनमे कवि कुछ देर तक आलम्बन पर अपनी दृष्टि टिकाए रखता है और उसके स्थिर रूपाकार का वर्णन करता है, अधिकतर वर्णनो मे वर्ण्य की गति के साथ चित्रपट पर भी स्थाना-न्तरण हो जाता है। जहाँ प्रसग स्वय गत्यात्मक है वहाँ तो कवि उसके साथ स्वय भी बढ़ता

---

१. युगपथ—पन्त, पृ० २७
२. परिमल—निराला, पृ० १७६
३. तारसप्तक—रामविलास शर्मा, पृ० ७१

जाता है और उसके क्षण-क्षण परिवर्तित रूप को शब्द-चित्रों में बाँध लेता है। जहाँ प्रकृति के विशेष दृश्य आदि का वर्णन अभीष्ट होता है, वहाँ कहीं कवि उनके भावाक्षिप्त वर्णन करता है, उनमे चेतना का आरोप कर गति के दर्शन करता है, अथवा उसकी दृष्टि वातावरण के अंग-प्रत्यग पर भ्रमण करती, प्रत्येक सूक्ष्म रूप, क्रिया तथा नादगत विशेषता को उतार लेती है। इस प्रकार एक ही विषय का अनेकरूपात्मक वर्णन होने से उसमें गति उत्पन्न हो जाती है। इन सबसे भिन्न, वर्णन की एक वह शैली है जिसमे कवि स्थल-परिवर्तन नही करता परन्तु इस प्रकार की शब्द-योजना करता है कि उससे उसके विषय की गति स्वय व्यंजित होती है। उक्त विभिन्न अभिव्यंजना शैलियो का यह सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट करने के लिए साक्षी में कुछ उदाहरणो का उल्लेख करेंगे। गत्यात्मक प्रसंगो का यथावत् अकन कविवर पत ने अनेक कविताओ मे किया है। उनकी 'नौका-विहार' कविता इस प्रकार की गत्यात्मक चित्र-शृखला का सुन्दर उदाहरण है। 'ग्राम्या' मे ग्राम-जीवन के विविध पक्षों और प्रसगो के सुन्दर चित्र बिखरे है। ग्रामीणों के नृत्य का वर्णन करते समय कवि ने नृत्य की गति, वाद्यो के नाद, और वातावरण के उल्लास को शब्दो मे सफलतापूर्वक उतार लिया है। भावाक्षिप्त वर्णनो के वे उदाहरण जिनमें कवि चेतना का आरोप कर गति के दर्शन और वर्णन करता है इस युग की कविता मे प्रचुर है। 'निराला' और पन्त की संध्या पर सुन्दरी-रूप का भावाक्षेप कर लिखी गई कविताएँ, महादेवी की 'वसन्त रजनी', पन्त की 'परिवर्तन' आदि, तथा वे अन्य रचनाएँ जिनमे जड अथवा अमूर्त का मानवीकरण कर, उन पर गति व चेतना का आरोप कर वर्णन किया गया है, इसी प्रकार के वर्णनो मे आयेंगी। कुछ चित्र नए कवियों की नयी शैली मे लिखी कविताओ मे मिलते है। ये चित्र छायावाद की कला से कुछ भिन्न और विशिष्ट है। गिरिजाकुमार माथुर का 'रुककर जाती हुई रात' का वर्णन देखिये :

रुक कर जाती हुई रात का
अंतिम छाहों-भरा प्रहर है
श्वेत धुएँ से पतले नभ मे
दूर झाँवरे पड़े हुए सोने-से तारे
जगी हुई भारी पलकों से पहरा देते
नींद-भरी मंदी बयार चलती है
बर्षा-भीगा नगर
भोर के सपने देख रहा है अब भी
लबे-लंबे धुंधले राजपथों में
निशिभर जली रोशनी की
कुछ थकी उदासी मंडराती है।
पानी रंगे हुए बंगलों के वातायन से
थकी हुई रंगीनी मे डूब प्रकाश अब भी दिख जाता
रेशम-पर्दों, सेजों, निद्राभरे बंधनों की छाया-सा।
बुझी रात का अभी आखीरी पहर नहीं उतरा है

दूरी के रेखा-छांहों से पेड़ों ऊपर
ठंडा-ठंडा चाँद ठिठककर मंदा होता
नभ की लंबी साया दूरी तक पड़ती है।[1]

उक्त चित्र मे कवि की दृष्टि नभ मे बयार, बयार से नगर, नगर के राजपथों से बँगलो के वातायनो, वातायनो से रेशमी पर्दों और सेजो से होती हुई पुनः चाँद और नभ तक पहुँच गई है। चित्र की रेखाओ मे कोई तारतम्य और सुविश्चित क्रम नही। छोटी-सी कविता मे डिटेल का अवकाश भी नही रहा, इसमे केवल कुछ तारतम्यहीन प्रभाव (impressions) है, जो उसी प्रकार बिखरी रेखाओ मे अकित किये गए है। चित्र-व्यजना की यह शैली, चित्रकला की अधुनातन प्रवृत्ति टेढी-सीधी, मोटी-पतली रेखाओ के द्वारा प्रभाव-व्यजना की शैली के समान है। उलझे भाव और विचार-खण्डो, तथा कला के सम्बन्ध मे अनिश्चित मूल्यों की मानसिक स्वीकृति ऐसे अनेक वर्णनो मे प्रतिफलित हुई है। कभी-कभी ये कवि एक ही कविता मे एकाधिक विषम और तारतम्यहीन चित्रो का अकन करते है, जिनमे एक से दूसरे चित्र पर जाकर केवल विषय और स्थल-परिवर्तन ही नही होता, इनकी सौन्दर्यचेतना और उसके मानदण्ड भी बदल जाया करते है। कही-कही चित्र भदेस भी हो गए है। 'अज्ञेय' का 'शिशिर की राका निशा' का वर्णन इसी प्रकार का है।

कुछ चित्र स्कैच (sketch) की शैली पर भी खीचे गए है। इन चित्रों मे रेखाचित्र की भाँति केवल रेखाओ के माध्यम से रूप अकित होता है। जिस प्रकार 'स्कैच' मे चित्रकार कम-से-कम मूर्त उपकरणो के आधार पर विषय का स्वरूप अकित करने का प्रयत्न करता है, इसी प्रकार कविता मे रेखाचित्र शब्द-रेखाओ के द्वारा अकित किये जाते है। कम-से-कम शब्दों मे विषय का रूपाकन इनकी विशेषता होती है, अतः चित्र मे गठन नही होती, ध्वनि और रंगों का प्रयोग नही किया जाता, केवल एक खाका मात्र होता है, जिसमे सूक्ष्म विवरण का अभाव होता है। इन रेखाचित्रो मे प्रत्येक अवयव के लिए एक ही रेखा का प्रयोग होता है। पन्त की निम्नाकित पक्तियाँ, रेखाचित्र की कला का सुन्दर उदाहरण हैं :

चाँदी की चौड़ी रेती,
फिर स्वर्णिम गंगा धारा
जिसके निश्चल उर पर विजड़ित
रत्न छाया नभ सारा।
फिर बालू का नासा
लंबा ग्राह तुंड सा फैला,
छितरी जल रेखा—
कछार फिर गया दूर तक मैला।[2]

गिरिजाकुमार माथुर को रगो के प्रयोग का विशेष आग्रह रहा है। उन्होने कुछ ऐसे

---

१. तारसप्तक—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ४२
२. ग्राम्या—पन्त, पृष्ठ ७१

चित्र अंकित किये हैं जिनमें चित्रकला के सभी उपकरण—रूप, रेखा, रंग वर्तमान हैं। ये चित्र उसी शैली के अन्तर्गत आते है जिनमे विषय स्वय स्थिर होता है, परन्तु कवि का निरीक्षण गत्यात्मक, वह विषय की सभी सूक्ष्म स्थूल विशेषताओं को घूम-घूमकर देखता है, और अंकित कर देता है। कवि ने स्वय इन चित्रों को 'लैंडस्केप' कहा है और इनमें लैंडस्केप की सभी विशेषताएँ वर्तमान है :

ये धूसर, साँवर, मटयाली, काली धरती
फैली है कोसों आसमान के घेरे में
रूखो छाये नालों के हैं तिरछे ढलान
फिर हरे भरे लम्बे चढाव
झरबेरी, ढाक, कास से पूरित टीलों तक
जिनके पीछे छिप जाती है
गढघाटो की रेखा गहरी।[1]

उपर्युक्त उद्धरण मे कवि ने केवल रेखाएँ खीचकर उनमे रग ही नही भरे, दूर-दूर तक उनकी गहराई, लम्बाई, उठान और फैलाव को भी शब्दो मे नाप लिया है, यही चित्रकला की विशेषता है।

गत्यात्मक चित्र-व्यंजना की अतिम शैली शब्दावली के विशिष्ट प्रयोग से वर्ण्य-विषय की गतिव्यजना की शैली है। इसके सफल प्रयोग की अथ और इति 'निराला' के काव्य मे ही हो जाती है। बहुत ढूँढने से कदाचित् अपवाद-स्वरूप कुछ उदाहरण मिल सके, परन्तु 'निराला के गत्यात्मक चित्रों की सहज विशेषता के समान इस कौशल का प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलता। उनकी कविताओं में केवल गति ही नही, उसका अनुपात और प्रकार, विशिष्ट वर्ण-योजना के सहारे व्यजित होता है। 'खेवा' मे प्रबल तरगों मे घिरी नाव की गति का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :

डोलती नाव, प्रखर हैं धार,
सँभालो जीवन-खेवनहार।
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है,[2]

तीसरी पंक्ति में व्यंजित गति की क्षिप्रता अनुप्रास के कारण नहीं, ह्रस्व ध्वनियों के प्रयोग से व्यजित होती है। इसी प्रकार 'जुही की कली' मे प्रखर गति के साथ कान्ता-मिलन के आकांक्षी पवन की क्षिप्रता कवि ने ह्रस्व वर्णों के प्रयोग से व्यंजित की हैं :

फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन

---

१. धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ ४
२. परिमल—निराला, पृ० ३०

कुज-लता पुजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि[1]

दूसरे चरण मे तीव्र गति से सरसराती आती पवन तीसरे चरण मे लता-कुंजो मे उलझकर मन्द होने लगती है, और उसकी मन्थरता की व्यजना के लिए ह्रस्व वर्ण, दीर्घ और सयुक्त वर्णों में परिवर्तित हो जाते है और चरण की गति मन्द हो जाती है। इस कला मे 'निराला' अपने ढग के अकेले कलाकार हैं।

(४) **रंगमयता**—वर्णन-शैली की चौथी विशेषता है। ठीक उसी प्रकार जैसे इन कवियों ने चित्रकला की अन्य विशेषताओ का प्रयोग किया—शब्द रेखाओ से घनत्व, विस्तार, सकोच आदि की व्यजना की, उसी प्रकार इन कवियो ने अपने चित्रों मे रंग भरे है। यह विशेषता इस युग की मौलिक देन अथवा अभूतपूर्व वर्णन-शैली नहीं कही जा सकती, क्योकि प्राचीनतम प्राकृतिक वर्णनो में रूप के साथ रग का प्रयोग मिलता है, परन्तु उस काव्य मे रग भरे गए, वर्णन को रंगीनी देने के लिए, अतः जहाँ जैसे रंगों की स्थिति थी, वास्तविकता का ध्यान रखते हुए वैसे ही रग वर्णनो मे भर दिये गए। इस विषय मे कवि सावधान नही रहे कि ये रग परस्पर एक-दूसरे के पार्श्व मे, और समवेत रूप में कैसा प्रभाव डालेगे, अतः चित्रकार की भाति सचेष्ट सावधान रूप से रगो में पारस्परिक अनुपात, एक की पृष्ठभूमि अथवा सगति मे दूसरे का प्रभाव आदि विशेषताओं का निर्णय नही किया गया। प्राचीन क्लासिकल शैली में गहरे, एव भास्वर रंगों का प्रयोग अधिक होता रहा। ये कवि वातावरण को रंगीन बनाने के लिए उसमें रग भरते थे, केवल रंग-स्पर्श देने के लिए नही। आधुनिक कविता मे इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया कि ये रंग वातावरण का चित्रण कर दें, परन्तु पाठक के मन पर इनका प्रभाव अरुचिकर व विकर्षक न हो। इस प्रकार वर्णनों में रंग-प्रयोग की इस कला के पीछे चित्रकला की सावधान दृष्टि और विवेक का परिचय मिलता है।

छायावाद से पूर्व भी आधुनिक कवियों ने रंगों का प्रयोग किया, परन्तु इनके रंग समग्र वातावरण मे भरे जाने वाले रग नहीं होते। प्रायः किसी चित्र के कुछ विशिष्ट अगो में ये कवि रग की विशेषता का उल्लेख करते है। अतः इनके चित्रों में समग्र वातावरण रगीन नही मिलता, प्रायः ये चित्र अधरंगे होते है। किसी-किसी अंश में कवि रंग का ब्रुश मारकर छोड देता है :

सघन-गगन-नीलिमा अचल काली घटा,
यान रंगीले इंद्रचाप-जंगम छटा।
सहचर हंसावली, बलाकावली, पास ही त्यो लसी,
बरसा अद्भुत रंग, अनूठे अंग सुहाए पावसी।[2]

इस वर्णन की प्रथम दो पंक्तियों में रंग-निर्देश किया गया है; तीसरी पंक्ति में रंगों का नितान्त अभाव और चौथी मे अनिश्चित संकेत मात्र है। छायावाद-पूर्व कविता में रूप-वर्णन की प्रधानता रही, और छायावाद व उससे प्रभावित कविता में रेखा और रंगों की। रंगों का

---

१. परिमल—निराला, पृ० १९२
२. पूर्ण-संग्रह—रायदेवीप्रसाद पूर्ण, पृ० १३६

प्रयोग सर्वाधिक छायावाद के कवियों ने किया है, उनमे भी महादेवी और पत ने अधिक। महादेवी के काव्य-चित्र हल्की और तरल रेखाओ से निर्मित है, जिनमे वे घुले-मिले रगो का प्रयोग करती है। पन्त के समान न उनकी रेखाएँ तीखी होती है और न उनके रग गहरे और भास्वर। उनके चित्रो मे अपने विषयानुकूल मोहक तारल्य और कारुणीयता मिलती है। इन चित्रो में एक प्रकार की कमनीयता है जो तत्काल आकर्षित नही करती एक स्निग्ध प्रभाव छोड़ती है :

तू भू के प्राणो का शतदल।
सित क्षीर-फेन, हीरक-रज से
जो हुए चाँदनी में निर्मित
पारद की रेखाओं में चिर
चांदी के रंगों से चित्रित,
खुल रहे दलों पर दल झलमल।[1]

महादेवी के अधिकाश चित्रो मे इसी प्रकार के स्निग्ध, तरल, झलमलाते रगो का प्रयोग हुआ है। छाया और प्रकाश, चित्र के दोनो रूपो मे हलकापन मिलता है। उनकी छाया वासन्ती रजनी की कोमल छाया और प्रकाश दीपक का हलका प्रकाश है।

पन्त के चित्रो के वर्ण तीखे, भास्वर और रेखाएँ गहरी है। उनके रग न पारद के समान झलमल करते हैं, न क्षीर-फेन के समान स्निग्ध तरल है, उनमे चमक और चकाचौध है, चादी की शीतल नही, स्वर्ण की तप्त छाया है.

आज लोहित मधु प्रात
व्योम-लतिका में छायाकार
खिल रही नव पल्लव सी लाल,
तुम्हारे मधुर कपोलों पर सुकुमार
लाज का ज्यों मृदु किसलय जाल।
आज उन्मद मधु-प्रात
गगन के इंदीवर से नील
झर रही स्वर्ण-मरद समान,
तुम्हारे शयन शिथिल सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मदिरालय, प्राण![2]

छायावादोत्तर कवियो की समाजवाद के सिद्धान्तो से प्रेरित कविता में रूप-रंग का उपर्युक्त वैभव बिखर गया। ये कवि कला मे जड़ाव-कढ़ाव, रूप-रग, सुन्दर-मधुर को छोड़कर मिट्टी-पत्थर, कुत्सित-कुरूप, से जूझने लगे। परन्तु कवियो के उस वर्ग ने जो अपनी कविता को 'नयी कविता' कहता है पुनः इसी शैली की ओर प्रत्यावर्तन किया। विशेष रूप से गिरिजाकुमार माथुर

---

१. दीपशिखा—महादेवी वर्मा, पृष्ठ १३६
२. गुंजन—सुमित्रानन्दन पन्त, पृष्ठ ५४

की कविता मे इस शैली का सुरुचिपूर्ण प्रयोग और साग्रह स्वीकृति मिलती है। 'तारसप्तक' मे प्रकाशित वक्तव्य मे कवि ने रगो के प्रयोग के विषय मे अपनी रुचि-अरुचि और चयन-पद्धति का परिचय दिया है—"इसी कारण चित्र को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं वातावरण के रग उसमे भरता रहा हूँ। ·· वातावरण चित्रण के 'डिटेल' मे रगो का आधार विशेष रूप से रखा है, किन्तु मैं चित्र को सदा हलके रगो की छाहो के आवरण मे लिपटा पसन्द करता हूँ। क्योकि यथार्थ चित्र के सभी डिटेल मैं कला की दूरी से देखता रहा हूँ। मेरा यह विश्वास है कि अत्यधिक गहरे रगो का प्रयोग कला मे प्राचीनता का द्योतक है। क्लासिकल विषयों पर गम्भीर शैली मे लिखी कविताओ में मैंने गहरे रग प्राचीनता लाने के लिए ही रक्खे है।"[1] इस शैली मे कवि ने अनेक लघु कविताएँ लिखी है :

सेमल की गरमीली हल्की रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले असमान में
झाड़ी झुरमुटों के उठे लम्बे मैदान में।
रूखे पतझार-भरे जगल के टीलों पर
काँपकर चलती समीर हेमन्त की
लम्बी लहर-सी।
दूरी के ठिठुरे-से भूरे-भूरे पेड़ों पर
ठण्डे बबूले बना धूल छा जाती थी—(कुतुब के खण्डहर)[2]

इस धारा के अन्य कवि भी रगों का प्रयोग अपने चित्रो मे करते रहे; विशेष रूप से रामविलास शर्मा ने पर्याप्त तीखे रंगो का प्रयोग किया है। कहीं-कही नवीनता के आग्रहवश इन कवियों ने जहाँ सौन्दर्य के मानदण्ड बदले, परम्परागत परिभाषाएँ बदली, वहाँ रगों के मानदण्ड भी बदलने का प्रयत्न किया। परन्तु जो वस्तु अमूर्त भाव और विचार का विषय है, उसमे हम बदली रुचि का दावा कर सकते है, क्योकि अमूर्त अनुभूतियों का स्थान व्यक्ति का मन है, वे एक-दूसरे से भिन्न और विचित्र हो सकती है। परन्तु जो रूप चाक्षुष्-ज्ञान का विषय है, जिसके सम्बन्ध मे सर्वगत प्रतिक्रियाएं और मान्यताएँ समान और सर्वसम्मत है, उन्हे बदल कर सृष्टि भर की आँखों को धोखा नहीं दिया जा सकता। अतः जब आज का कवि कहता है :

वह सोनजुही-सी चाँदनी !
नव नीलम पंख कुहर खोंसे
मोरपंखिया चाँदनी।
नीले अकास में अमलतास
झर झर गोरी छवि की कपास [3]

तो प्रतीत होता है कि चाँदनी की तुलना सोनजुही से करके कवि या तो अपने वर्ण-

---

१. तारसप्तक, पृष्ठ ४०
२. वही, पृष्ठ ४३
३. बनपाखी सुनो—नरेश मेहता, पृष्ठ २२

साम्य के नयेपन से पाठक के मन में दृष्टिभ्रम उत्पन्न करना चाहता है अथवा उसकी दृष्टि स्वय भ्रमित है । दोनो मे बरबस, समानता का प्रचार करने से उनकी बाह्य नयन-गोचर असमानता को आवृत नही किया जा सकता ।

(५) **भावाक्षिप्तता**—इन वर्णनो की वह विशेषता है, जो इन्हें पूर्ववर्ती इतिवृत्त वर्णन-शैली से सर्वथा भिन्न स्वरूप प्रदान करती है । आधुनिक—विशेषरूप से छायावाद और छायावादोत्तर युग के कवि जहाँ आत्म को विषय बनाते है वहाँ तो उनकी व्यक्तिगत अनुभूतियाँ काव्य का प्रेष्य होती ही है, परन्तु अधिकाश कविताओ मे इदम का वर्णन भी उन्होने अपनी भावनाओ के रंग मे रग कर किया है । यह बात आधुनिक युग की अधिकांश वर्णनात्मक कविता के विषय मे सत्य है । जहाँ ऐसा नही होता वहाँ या तो कवि की सौन्दर्य-चेतना केवल आलम्बन-रूप में विषय का साक्षात्कार करती है, अथवा वह किसी समस्या की व्यजना के लिए यथार्थ-वर्णन की शैली अपनाता है । अन्यथा आधुनिक काल मे इस प्रकार की कविता प्रचुर है जिसमे वर्णन किया गया है परन्तु अपनी भावना का आरोप कर । ऐसा प्राय: दो कारणो से किया जाता है । ऐसा करके कवि अपने वर्ण्य के साथ अधिक आत्मीयता और घनिष्ठता का निकटतर सम्बन्ध स्थापित कर लेता है । वह चेतन और जड दोनो प्रकार के विषयो को अपने सुख-दु:ख के भोक्ता रूप मे देखता है । अत: व्यापक रूप से समवेदना के इस काव्यगत अवेक्षण का प्रभाव पाठक पर भी अधिक गहन और रागात्मक होता है । दूसरी ओर अनेक ऐसी अनुभूतियो का वर्णन जिनकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के पक्ष मे वह नही होता, इन आत्मेतर वर्णनों के माध्यम से परोक्ष रूप मे सम्भव होता है । इस प्रकार की परोक्ष अभिव्यंजना कलात्मक दृष्टि से भी अधिक वैभव-सम्पन्न होती है । क्योकि इस अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के लिए वह भाषा में लक्षणा-व्यजना, अलकार-योजना में प्रतीक, मानवीकरण आदि अनेक वक्रोक्ति-सम्पन्न साधनों का आश्रय लेता है ।

छायावादी काव्य तो इस प्रवृत्ति की अतिशयता के कारण, प्रशंसित भी हुआ और लांछित भी, परन्तु बाद में इस शैली और दृष्टिकोण के प्रति विद्रोह करने वाले कवियों मे भी भावनाओ के आरोप की प्रवृत्ति का यथावत् परम्परागत शैली मे निर्वाह होता रहा । 'अज्ञेय' की आरम्भिक कृतियों—'चिन्ता' और 'इत्यलम्' आदि मे तो इस शैली के अनेक उदाहरण मिलते ही हैं, परन्तु आत्म की अवहेला कर समाज की, और वह भी उसके अनगढ रूप की काव्य में प्रतिष्ठा करने वाला कवि भी इस प्रवृत्ति के सम्मोहन से नहीं बचा है । सामाजिक जीवन के यथातथ्य वर्णन करने वाले ये कवि भी प्राकृतिक सौन्दर्य से विचलित होकर उसमें मानव अनुभूतियों की छाया देखते हैं :

साँझ ढली, नभ के कोने में
कारे मेघा छाए
ये विरहिन के ताप, काम के शाप
गरज, इतराए,
दीप छिपाए चली समेट निशा दिशा का आँचल

आज रात-भर बरसे बादल ।[1]

अपेक्षाकृत और भी नई कविता मे, अर्थात् कालक्रम की दृष्टि से नही, शैलीगत नवीनता का आह्वान करने वाले कवियो मे, वर्ण्य पर कवि की भावना के साथ विचारों का आरोपण मिलता है; यद्यपि प्रयोगवाद की छायावाद के विरुद्ध बहुमुखी प्रतिक्रिया में एक प्रयत्न व्यक्ति की भावना के आरोप के स्थान पर वस्तु की आन्तरिक अर्थ-व्यजना को अनूदित करने का भी था। वस्तु की आत्मा को शब्दो द्वारा उद्घाटित करना ये कवि अधिक सामर्थ्यवान कविता का गुण मानते है। परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो यह केवल शब्द-छल है। प्रत्येक कवि वस्तु की आत्मा का शब्द द्वारा उद्घाटन अपने हृदय पर पडे प्रभाव के आधार पर ही करेगा। वस्तु की आत्मा का शब्दानुवाद करने से पहले उसका आत्मसाक्षात्कार करना अनिवार्य है, और यह आत्मसाक्षात् प्रत्येक कवि की अपनी-अपनी दृष्टि के अनुरूप होगा, अतः विशिष्ट सस्कारों, परिस्थितियो और वातावरण से निर्मित कवि के व्यक्तित्व का प्रभाव उसमे अनिवार्य रूप से आ जायगा। वस्तु कैसी है ? इसका वर्णन हम केवल इसी आधार पर कर सकते है कि वह हमे कैसी प्रतीत होती है। उसके बाह्य स्थूल रूप का वर्णन तो फिर भी तटस्थ रूप से सम्भव है, परन्तु आत्मा का अनुवाद करने के लिए अन्तःप्रवेशी तत्त्वग्राहिणी दृष्टि की आवश्यकता है, और यह दृष्टि प्रत्येक कवि की अपनी होती है। अन्तर केवल इन कवियों की वर्णन-शैली में है। इनके काव्य मे स्वभाव से व्यक्तिगत दृष्टिकोण और लक्ष्य के रूप मे वस्तु-सत्य के उद्घाटन का प्रयत्न होने के कारण इनकी अभिव्यजना मे सर्वत्र भावना का आरोप तो सम्भव था ही नहीं, क्योकि वस्तु के प्रति आत्मानुभूति को झुठला कर, उसका दमन कर, बुद्धि से वे उसके अन्तर में बैठने का प्रयत्न करते है, अतः इनके वर्णनों मे विचाराक्षेप मिलता है। रागात्मक तत्त्व को बौद्धिक तत्त्व के द्वारा व्यक्त करने के प्रयत्न मे इनकी अप्रस्तुत योजना, शब्दावली, प्रतीक, सभी कही अर्ध व्यक्त और कहीं वैज्ञानिक हो गए है। इस कविता मे विचार और काव्यानुभूति के बीच रागात्मक सम्बन्ध न होकर, बौद्धिक सम्बन्ध है, अत. इनकी शैली मे अनुभूति बुद्धि से आक्रान्त है। वर्णन भावाक्षिप्त न होकर विचाराक्षिप्त हैं·

चीन के मन्दे पीले लालटेन—उत्सव की तरह
जर्द रेशम की गरम बाँह में लिपटी
समुद्रि साँऽऽझ बेहोश
अपने बीमार विचारों मे सुना करती है—
तम की,
साबुन की झाग सी नरम
किन् किन् किन्
झिम् झिम झाँझे
टेशोकोटो के सुरों सी हल्की
जापान के किसी गीत को टाइप करती लहरें

---

१. पर आखें नही भरी—शिवमंगलसिंह सुमन, पृष्ठ २५

मद्धिम लहरें—
कांच की चूड़ी की तरह गोडल गोडल
आड रहीं आड रहीं—
झाग क्लिप खोंसे
सांझ की बीमार छांहों के तले।[1]

उक्त वर्णन मे साँझ की बेहोशी, बीमारी और मलीनता कवि की अपनी भावना का आरोप है, निश्चय ही किसी भी अन्य कवि की (इसी वाद के) लेखनी से उपर्युक्त विषय का वर्णन सर्वथा भिन्न होगा। यदि इन वर्णनों मे अपनी भावना का आरोप नही केवल वर्ण्य की आत्मानुवाद का प्रयत्न हो तो कुछ दूर तक इनमें समानता होनी ही चाहिये। कवि अपनी भावानुभूति को पीछे छोडकर जब बुद्धि द्वारा वर्ण्य का चित्र खडा करता है तो उसके विचारों के साथ शैली के उपादान भी तारतम्यहीन, अर्ध-व्यक्त शृखला में बँधे रहते है। कवि अप्रस्तुत-चयन के लिए बाथरूम से टाइप-राइटर और फिर चूडी और क्लिप तक घूम आया है। इन उपमानो मे परस्पर आधार, रूप, गुण सम्बन्धी कोई साम्य, सम्बन्ध तथा तारतम्य नही है। कवि ने बुद्धि के सहारे वर्ण्य के रूप और आत्मा का चित्रण किया है। वर्णन के इन उपादानों के पीछे मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण आदि शास्त्रों का आधार होता है। वस्तुत: इन विज्ञानों का सम्बन्ध मानव-मन से है। अत: वस्तु को देखकर कवि के मन मे जो विचित्र उपमान, प्रतीक-योजना आदि के चयन की प्रेरणा होती है, उसका सम्बन्ध व्यक्ति से अधिक है। अन्तर केवल इतना है कि ये कवि अपनी रागात्मक प्रतिक्रिया की सहज अन्त:स्फूर्त अभिव्यक्ति न करके उसकी चीर-फाड़, विश्लेषण करते हैं। इसी कारण इन वर्णनों में विचाराक्षेप मिलता है।

(६) **प्रतीकात्मकता**—आधुनिक कविता की वर्णन-शैली की एक अन्य विशेषता है प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति। इस शैली का प्रयोग रूपक और अन्योक्ति अलकारों के रूप मे प्राचीन और मध्ययुगीन काव्य मे प्रचुर हुआ है परन्तु वहाँ इस शैली का प्रयोग अलकार के रूप मे ही मिलता है। अन्योक्ति अवश्य केवल सौन्दर्य-वर्द्धन के लिए ही नही, कभी-कभी गूढार्थ-व्यंजना के लिए शैली मे प्रयुक्त होती रही। प्राय अपनी बात को किसी कारणवश प्रत्यक्ष न कह सकने के कारण मध्ययुग का कवि अन्योक्ति का आलम्बन लेता था, कभी अमूर्त सिद्धान्त को मूर्त के द्वारा अधिक ग्राह्य और बोधगम्य बनाने के लिए, और कभी नीरस उपदेशात्मक विचारों को सौन्दर्य-बोधक शैली मे व्यक्त करने के लिए। इसी प्रकार रूपक का विशद प्रयोग 'एलीगरी' (allegory) के रूप मे किया गया। परन्तु आधुनिक काव्य मे प्रतीकात्मक अभि-व्यक्ति वर्णन-शैली का एक सामान्य अंग बन गया। केवल अलंकार-प्रयोग के लिए नही, केवल सौन्दर्य-वर्द्धन के लिए नही, शैली मे वक्रता-व्यंजना के लिए, कथन में एक विशेष सौन्दर्यमयी भंगिमा के लिए, इस शैली का प्रचुर प्रयोग इस काल की कविता में किया गया।

प्रतीको के माध्यम से अभिव्यक्ति छायावाद की कविता मे शृंगार-भाव की परोक्ष अभिव्यंजना के निमित्त आरम्भ हुई। कारण, स्वच्छन्द प्रेम तथा शृगारिक वर्णनो पर सामाजिक

---

१. बनपाखी सुनो—नरेश मेहता, पृष्ठ १७

प्रतिबन्ध और तत्कालीन नैतिक दृष्टिकोण था। साथ ही व्यक्ति के मन की अमूर्त अनुभूतियाँ काव्य-विषय थी, अतः इन्हे मूर्त प्रतीको के द्वारा सचित्र रूप मे व्यक्त करना छायावाद की विशेषता बन गई, जिस पर आंशिक रूप मे पाश्चात्य काव्य-शैली का प्रभाव भी पड़ा। इस शैली का स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रयोग 'निराला' की कविता 'जुही की कली' से आरम्भ होता है। प्रसाद की आरम्भिक रचनाओ—'झरना', 'लहर' आदि मे भी इस शैली मे अनेक वर्णन है, और क्रमशः प्रतीकात्मकता आधुनिक कवियो की वर्णन-शैली की एक सामान्य विशेषता बन गई। वस्तु-जगत् और भाव-जगत् से अनेक प्रतीको का चयन किया गया। जीवन के कोमल-मधुर और विराट-ओजस्वी, प्रायः सभी पक्ष इन प्रतीको का क्षेत्र बन गए। पहले के अधिकाश प्रयत्न, प्रतीक-योजनाएँ अमूर्त को मूर्त के द्वारा व्यक्त करने के लिए की जाती थी। इन कवियो ने इस क्रम में भी विपर्यय प्रस्तुत किया। मूर्त के लिए इन्होने अमूर्त, अमूर्त के लिए अमूर्त और मूर्त के लिए मूर्त प्रतीक अपनाए। इस प्रकार इनका रूप और क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और वैविध्य पूर्ण बन गया तथा प्रतीकात्मक अभिव्यजना, कलात्मक शैली का एक अनिवार्य गुण स्वीकार की जाने लगी। छायावाद मे ही प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की यह प्रवृत्ति 'निराला' के काव्य मे कुछ ऐसे अतिचार को प्राप्त हो चुकी थी कि उसने कविता की सहजता और प्रसाद गुण को आघात पहुँचाया, अतः स्वच्छन्द-प्रेम की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के समर्थक परवर्ती कवियों—'बच्चन' आदि ने प्रतीक-योजना के प्रति विशेष मोह नही दिखाया।

प्रगतिवाद की कविता भी शैली की दृष्टि से इस प्रवृत्ति से मुक्त ही रही। ये कवि जीवन की विभीषिकाओ को, उसकी यथार्थता को, समस्याओ को, उनके अनावृत नग्न रूप मे प्रस्तुत करने के पक्ष मे थे, अतः प्रतीक-शैली इनके उद्देश्य के अनुकूल नही पडी। जीवन का उसके जितने यथार्थ वस्तुगत रूप मे पाठक से परिचय कराकर ये कवि उसमें उत्तेजना उत्पन्न कर सकते, उसकी सहानुभूति आकर्षित कर सकते, उतने ही अपनी लक्ष्य-सिद्धि मे सफल होते, अतः प्रतीकात्मक वर्णनो का प्रश्न इस वर्ग की कविता मे नही उठा। छायावाद और उसकी काव्य-शैली से प्रभावित कवियो—गुप्त बन्धु, 'अज्ञेय', रामकुमार वर्मा आदि पर ही यह प्रभाव विशेष रूप से लक्षित किया जा सकता है।

इस शैली का पुनरुद्धार इधर नए कवियों की कविता मे हुआ, और विचित्र रूप से। इस कविता का शैलीगत दृष्टिकोण नितान्त बौद्धिक था, परन्तु उसमे उलझन थी, और ये कवि चेतन के साथ अवचेतन मन के अनुभव-खण्डो को भी उनके यथावत् रूप मे कविता के क्षेत्र मे घसीटने के चक्कर मे रहा करते थे। जीवन के परम्परागत मूल्यो, मानदण्डों मे इन्होंने अनास्था व्यक्त कर उनको परिवर्तित और एकान्त वैयक्तिक रूप मे समझा और ग्रहण किया। अतः उलझी-सी चेतना, अस्पष्ट भाव और विचार-खण्ड, उसी प्रकार के अर्धव्यक्त, अधूरे, खण्डित और अप्रचलित प्रतीको के माध्यम से व्यक्त हुए हैं। छायावादी कविता से इस प्रकार इनकी प्रतीक-योजना भिन्न है। अपने विषय के प्रति इनके मन के चेतन-अवचेतन स्तरो में होने वाली व्यक्तिगत प्रतिक्रिया सूक्ष्म, खडित, अर्धस्पष्ट, जिस रूप में भी इनकी प्रज्ञा का विषय बन सकी इन्होने उसे यथावत् प्रतीको के द्वारा व्यक्त किया। अपने विवेक के द्वारा वे उसे मूर्त, अखण्ड और स्पष्ट रूप प्रदान करने का प्रयत्न नही करते। साथ ही इन्होने परम्परागत आधारों को

प्रतीक-चयन करते समय ग्रहण नही किया। कुछ विशिष्ट अनुभूतियो या पदार्थों का सम्बन्ध व्यवहार मे जिन आधारो पर कुछ विशिष्ट प्रतीको से जुड गया था, ये कवि उन परम्परागत प्रतीकों को उसी रूप मे ग्रहण नहीं करते। इन परम्परागत प्रयोगों के प्रति अनास्था के कारण इनकी प्रतीक-योजना में कुछ विशेषताएँ उत्पन्न हो गई है। पूर्ववर्ती काव्य की शैली से इनकी प्रतीक-विधान-पद्धति निम्नलिखित रूपो मे भिन्न है और उसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(क) प्रतीको के परम्परागत आधारो के प्रति अनास्था, अतः प्रचलित प्रतीकों का सर्वथा नवीन अर्थों मे प्रयोग।

(ख) प्रचलित प्रतीकों के स्थान पर विशिष्ट विषयो के लिए सर्वथा नवीन प्रतीकों का एकान्त वैयक्तिक अर्थ मे प्रयोग।

(ग) भाव या विचार की खण्डित, उलझी और अर्धव्यक्त अन्तर्दशाओं का, उसी प्रकार के प्रतीको द्वारा अभिव्यक्ति का प्रयत्न।

(घ) इन प्रतीको के अर्थ की दृष्टि से सार्वजनिक स्वीकृति के अभाव मे अर्थगत दुरूहता।

(ङ) मूलतः व्यक्तिगत दृष्टिकोण की सिद्धान्ततः वस्तुगत किन्तु बौद्धिक अभिव्यक्ति के कारण नानारूपात्मक मूर्त्त जगत् से प्रतीकों का ग्रहण, अतः इस क्षेत्र-विशेष से प्रतीको का वैविध्यपूर्ण अनेकरूपात्मक प्रयोग।

गीति-शैली से हमारा सकेत प्रगीत-रचना की उस शैली की ओर है जिसमें अनुभूति की सहज, उच्छ्वासपूर्ण अभिव्यक्ति को महत्ता दी जाती है। इस शैली की कुछ रचनाओ का भावाक्षिप्त वर्णन-शैली के प्रसग मे पीछे उल्लेख किया जा चुका है। अतः इस प्रसग मे हम उन कविताओं की शैली का अध्ययन करेगे, जिसमे भावना को और उसकी सहज निश्छल अभिव्यक्ति को प्राथमिकता दी गई है। भावना के अतिरिक्त रहस्यानुभूति के रूप मे दर्शन या विचार जो कुछ इन प्रगीतो के क्षेत्र मे प्रवेश कर सका है, वह कवि की अनुभूति का विषय बने बिना नही।

विवेच्य काव्य में यह गीति-शैली अनेक रूपो मे उपलब्ध है—जिसमे हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य की परम्परा का पालन, अँगरेजी साहित्य के प्रभाव से की जाने वाली रोमानी प्रगीतात्मक रचनाएँ, लोक-गीतो की कला का प्रभाव और उर्दू साहित्य की गेय विधाओ से प्रभावित रचनाएं सभी कुछ आ जाता है।

गीति-शैली का सर्वप्रथम उपलब्ध रूप परम्परागत ही है। परम्परागत गीति-शैली १९०० ई० के उपरान्त के काव्य में भक्तो की पद-रचना के अनुकरण पर प्रयोग मे लायी गई। कहीं इन कविताओं में दैन्य भावना अधिक है और कहीं ये पद केवल भक्तिभाव, आत्मनिवेदन और उद्धार की प्रार्थना के लिए लिखे गए। इनकी शैली, मूल भावना, छन्द आदि सभी कुछ परम्परागत भक्तो की पद-परम्परा के अन्तर्गत आता है, कही-कही आराध्य का विरद-वर्णन भी है, परन्तु नवीनता इस शैली मे अलभ्य है, बल्कि इनमे भक्त कवियों की सी आत्मविभोरता और तन्मयता भी नही मिलती। इस शैली में पद-रचना द्विवेदी-युग के कवियो मे राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', नाथूराम 'शंकर', तथा वियोगीहरि और प्रसाद की आरम्भिक रचनाओं 'चित्राधार'

आदि में मिलती है। इधर प्रौढि प्राप्त कवि 'निराला' ने 'अर्चना', 'आराधना' आदि मे कुछ इस ढग की रचनाएँ की है। प्रसाद ने तो कुछ पद भ्रमरगीत-प्रसग को विषय बनाकर भी लिखे है। इन पदो मे कवि प्रायः सगीतात्मक शैली मे इष्ट के विरद और अपने दैन्य व अनुभूतियों का वर्णन करता है। कही बाह्य सगीत का विधान और निर्देश भी निश्चयात्मक ढग से कर दिया जाता है, अर्थात् ये पद राग और ताल मे बँधे होते है, अन्यत्र नही। परन्तु जो भावतन्मयता और आत्मविभोरता—परिणामस्वरूप अभिव्यक्ति मे सहज उच्छ्वास भक्त कवियो की पद-रचना मे मिलता है वह आधुनिक काल के कवियो की रचनाओ मे नही। कारण, ये कवि स्वय भक्त नही थे, अत. इन पदो का स्थायी भाव कवि का उतनी ही ईमानदारी से आत्मानुभूत भाव नही था जितना भक्त कवियो का। इनकी अनुभूति बौद्धिक ज्ञान के बल पर अर्जित अनुभूति थी। आज के वैज्ञानिक युग में परासत्ता के सगुण या निर्गुण रूप के प्रति उतना अगाध अन्ध-विश्वास सम्भव भी नही। इस बौद्धिक युग का ईश्वर बुद्धिगम्य है, तर्क और ज्ञान का विषय है, अनुभवगम्य अर्थात् भावना का विषय नही। इसी कारण इस शैली का विशेष प्रचलन नही हुआ।

अध्यात्म और दर्शन के विषयो की अभिव्यक्ति के लिए इस युग के कवियो ने नवीन मार्गों का शोध किया। वे परमसत्ता के स्वरूप को जानने और समझने का प्रयास अधिक करते है, केवल विश्वास के आधार पर भावार्पण नही करते। अत. उनकी अभिव्यक्ति की पद्धति भी परिवर्तित हो गई। इन विषयो के प्रति या तो कवि की जिज्ञासा व्यक्त होती है, अथवा कुछ आगे बढकर वह उस परम सत्ता और मानव के स्वरूप और पारस्परिक सम्बन्धो की व्याख्या करने लगता है। परिणामत उसकी अभिव्यक्ति मे अनुभूति के स्थान पर बौद्धिकता आ जाती है, भावोद्रेक नही। युक्तियुक्त या जिज्ञासामूलक ज्ञान इन गीतियो का प्राण बन जाता है। कभी-कभी चिन्तन-मनन के आधार पर अर्जित ज्ञान के द्वारा कवि रागात्मक सम्बन्धो की सृष्टि कर उसकी अनुभूति का भी प्रयत्न करता है। ऐसी प्रगीतियो मे आत्मद्रव कुछ अधिक मिलता है। इस शैली का अथ और इति इस युग मे छायावाद के साथ सम्पन्न हुआ। रहस्यात्मक अनुभूतियो और वर्णनो के रूप मे स्वरूप-भेद से यह भावना छायावाद और इस काव्यधारा से प्रभावित अन्य कवियो के काव्य मे मिलती है। बाद में वामपक्षीय चिन्ताधाराओ के उदय के साथ वस्तुजगत् और भौतिक सत्य की महत्ता-स्थापन और अलौकिक विश्वासो व मान्यताओ के प्रति अनास्था उत्पन्न हुई, परिणामत इस प्रकार के रहस्य-सकेतो और अनुभूतियो के लिए काव्य मे अवकाश नही रहा। प्रतिदिन भौतिक सृष्टि के वस्तु-सत्यो की व्याख्या-विश्लेषण की माँग बढती गई। नए कवियो ने तो सगीत कला की आधीनता को भी काव्यकला के ऊपर आरोपित और अनावश्यक माना, अतः भाव और शैली के सगीत, दोनों का काव्य-क्षेत्र से बहिष्कार हो गया। इन कवियो ने उर्दू की गजल और लोक-गीतो की शैली से प्रभावित कुछ गेय रचनाएँ की, परन्तु वह विशेष प्रयोगो के रूप मे। काव्य-मात्र के लिए सगीत को ये अनिवार्य नही मानते थे।

गीति-शैली का दूसरा रूप उन कविताओ मे मिलता है, जिनमे कवि अपनी किसी व्यक्तिगत अनुभूति का वर्णन करता है। सर्वाधिक सख्या इस युग की कविताओ में इन्हीं गीतियों

की रही। इनका आरम्भ भी छायावाद के साथ हुआ। वस्तु-जगत् से सम्बद्ध इतिवृत्त-प्रधान कविता के विरोध मे आत्म से सम्बद्ध भावप्रवण काव्य के आरम्भ के साथ इन रोमानी कविताओ की शैली भी परिवर्तित हो गई। इन कविताओ मे इतिवृत्त और वर्णन का निषेध कर अनुभूतियों की व्यजना को प्रामुख्य मिला, परिणामत· इनकी शैली मे बहिरग प्रसार, सरलता और स्पष्टता के स्थान पर भावों की गहनता, भावप्रेरित वक्रता, व्यजना, द्रवणशीलता और उद्रेक मिलता है। इन गीतियो मे बाह्य वस्तु पर केन्द्रित स्थिर दृष्टि नही, आत्मा का बहाव मिलता है। जहाँ इनमे वर्णन को स्थान भी मिला है वहाँ भावनाओ के रग मे रगकर, भावावृत रूप मे।

इन गीतियो के विषय मानव-मन की अनुभूतियो की भाँति विविध रहे। जीवन की सुखद अनुभूतियो हर्ष, उल्लास, प्रेम, उत्साह आदि के साथ करुणा, निराशा, पीड़ा, दु.ख आदि दु.खद अनुभूतियों का एक विशाल संसार इन कविताओ मे बसा है। इन भावनाओ को भी कवियो ने अनेक रूपो मे व्यक्त किया है – सर्वाधिक प्रचलित शैली. प्रत्यक्ष आत्मनिवेदनात्मक शैली है। इसमे कवि अपने हृदय की अनुभूति को स्वय वक्ता के रूप मे उच्छ्वासपूर्ण शब्दावली मे व्यक्त करता है। एक शब्द मे—इन गीतियो मे कवि की आभ्यान्तरिक भावनाओ की अभिव्यक्ति होती है। ये गीतियाँ कवि की अन्त·प्रवृति और चित्तवृत्ति का काव्य है, वह अपनी बात स्वय कहता है। इस प्रकार की अनेक सुखदु खात्मक गीतियाँ—प्रसाद, प्रन्त, महादेवी, 'निराला', 'बच्चन', सियारामशरण गुप्त, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, उदयशकर भट्ट, सुभद्राकुमारी चौहान, तथा 'अज्ञेय', धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त आदि कवियो ने लिखी है।

इन गीतियो का सम्बन्ध मन की सूक्ष्म और प्राय कोमल अनुभूतियो से होता है, अतः इनकी अभिव्यजना मे कोमल ललित उपादानो का प्रयोग मिलता है। समग्र रूप मे इनकी शैली तरल भावोदीप्त शैली होती है जिसमे भावनाओ के स्वरूप के अनुकूल, कवि अभिव्यक्ति के अनेक मार्ग ढूँढ लेता है। अनुभूतियाँ स्वय अमूर्त होती है, अत मूर्त उपादानो की अपेक्षा इन सूक्ष्म अमूर्त भावनाओ को रूप देना अधिक दुष्कर होता है। परिणामस्वरूप कवि अभिव्यक्ति के लिए अनेक नवीन मार्गों का अन्वेषण करता है। उसकी अप्रस्तुत-योजना, बिम्ब-विधान, भाषा, शैली सभी इस उपक्रम से प्रभावित होती है। सबमे एक नवीनता और चमत्कार आ जाता है। स्थूल वस्तुरूप विषय के बाह्य स्वरूप का आकारगत वर्णन जितना स्पष्ट और सरल हो सकता है, उतनी ही भाव-प्रेरित वक्रता अमूर्त भावनाओ की प्रेषणा के प्रयत्न मे आ जाती है, क्योकि यह व्यक्तिगत अनुभूति को सहृदय-सवेद्य बनाकर प्रेषित करने का, अमूर्त को मूर्त रूप देने का, अथवा प्रभाव-व्यजना का प्रयत्न होता है। वाच्य तो यह काव्य प्राय. होता नही, अत. इनमे लक्षणा और व्यजना पर आश्रित अभिव्यजना को मुख्य रूप से अपनाया जाता है।

गीति-शैली के अनेक प्रकार रूप-विधा के भेद से हो जाते है। सबोध गीतियो में किसी अन्य को सबोधित कर कवि अपनी भावना व्यक्त करता है। पत्र गीतियों मे भी दूसरे के प्रति आत्माभिव्यक्ति की जाती है। शोक-गीतियाँ अपनी करुणा मे अधिक आर्द्र होती है और मार्मिक शैली मे लिखी जाती है, जिनमे शैली की सज्जा की अपेक्षा आत्मद्रव, भाव की निश्छल अभिव्यक्ति और चिन्तन प्रधान होता है। राष्ट्रगीतियो मे ओज, उत्साह और स्फूर्तिजन्य प्रवाह शैली मे दृष्टिगत होता है। इन राष्ट्रीय भावनाओ की अभिव्यजना में कवि मन के उत्साह की

ओजमयी शैली मे अभिव्यक्ति को सर्वोपरि महत्त्व देता है। शैली के अन्य सज्जात्मक उपादान ऐसी स्थिति मे गौण हो जाते है, अत. इन गीतियो मे अलकरण, सौन्दर्य-बोध, कलात्मक भाषा-प्रयोग की चकाचौध नही, भावनाओ का ओजमय आलोक मिलता है।

इन सब शैलियों से भिन्न गीतियो की एक शैली वह है जिनमे स्वय अपने हृदय की बात न कहकर अपने को किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु मे रखकर कवि उसके द्वारा अपने हृदय की बात कहलाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार इन गीतियो मे नाटकीय प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। इस शैली का प्रयोग मुख्य रूप से माखनलाल चतुर्वेदी ने अपनी 'पुष्प की अभिलाषा', 'कैदी और कोकिला' आदि कविताओ मे किया है। सियारामशरण गुप्त और सुभद्राकुमारी चौहान ने भी कुछ कविताओ की रचना इसी शैली मे की।

उपर्युक्त शैलियो मे बाह्य दृष्टि से अन्तर होने पर भी कुछ विशेषताएँ समान रूप से सभी गीतियो मे प्राप्त होती है, भावोद्गारो की स्वत प्रेरित सहज अभिव्यक्ति, द्रवणशीलता, सक्षिप्त आकार, भाव-सगीत, भाव-सहिति तथा अनेक कलात्मक आभरणो से अलकृत भाषा-शैली।

गीति-शैली के साथ बाह्य सगीत की योजना और सचेष्ट निर्वाह जिन कविताओ मे हुआ उनकी शैली का प्रमुख गुण सगीतात्मकता है। जिस समय इस काव्य की रचना हो रही थी, उस समय सगीत की भी अनेक शैलियाँ प्रचलित थी। इन कवियो की काव्य-रचना पर सगीत की दो प्रधान शैलियो—शास्त्रीय सगीत और सुगम सगीत का प्रभाव पडा। सुगम सगीत मे भी उस समय तीन प्रमुख शैलियाँ प्रचलित थी। अशत. पश्चिम साहित्य के 'सॉङ्ग' से प्रभावित हिन्दी कविता की गीत-शैली, लोकगीतो से प्रभावित हिन्दी कविता की गीत-शैली, लोकगीतो से प्रभावित लावनी, कजरी, दादरे, रसिये और होली आदि की विविध गेय शैलियाँ तथा उर्दू की गजल की शैली। इनके अतिरिक्त गेय कविता की एक शैली जिसका प्रयोग सामयिक परिस्थितियो के अनुरोध से सहज रूप मे स्वत. हो गया, जिस पर किसी पूर्व प्रचलित भारतीय परम्परा या विदेशी परम्परा का प्रभाव ढूंढने की अपेक्षा नही—राष्ट्रीय गीतो की शैली है। इस प्रकार गीतो की इस काल मे अनेक शैलियाँ प्रचलित हुई। शास्त्रीय संगीत, अर्थात् स्वर और लय के नियत विधानो, दूसरे शब्दो मे राग और ताल के बन्धन मे जकडे गीतो मे स्वभावत: छन्द-चयन अधिक सावधानी से किया गया। उनकी मूल भावना भी रागानुकूल है, शब्दावली मे भी उच्चारण-सगीत, गति, लय, तथा पक्तियो मे मात्रा, वर्ण-सख्या आदि के सम्बन्ध मे कवि सतर्क रहा है। इन गीतो मे टेक की पक्ति, अन्त्यानुप्रास-क्रम, लय-निपात आदि का विधान, राग-रागिनियो की गेय पद्धति के अनुकूल किया जाता है। पुरानी परम्परा के अनुकरण पर लिखे पद और आधुनिक कवियो की वन्दनाएँ—जिनमे प्राय: देवी-देवताओ और जननी जन्मभूमि का स्तवन किया गया है, इसी शैली मे लिखी गई है। इनमे से कुछ पदो मे कवियो ने राग-निर्देश भी कर किया है। 'निराला' और प्रसाद तथा 'बच्चन' के कुछ गीतो मे शास्त्रीय सगीत की स्वीकृति की गई है। 'निराला' की अनेक वन्दनाएँ गायको का कण्ठहार है, उनकी स्वर-साधना विभिन्न राग-रागिनियो मे की जाती रही है। प्रसाद के नाटको में रचित गीतों की तो स्वर-लिपियाँ प्राय: अन्त मे दे दी गई हैं। कवि 'बच्चन' अपने

अनेक गीतो का पाठ स्वय असावरी के स्वरो मे किया करते है। इन गीतो की भाषा भी इसी कारण सहज अलकृत स्फीत भाषा है। कवि इन रचनाओ मे ऐसी समस्त या कर्ण-कटु भाषा का प्रयोग बचाता है जिसका श्रवण या उच्चारण सुखद न हो। इन गीतो मे देशज तथा ग्राम्य शब्दावली का प्रयोग भी नही किया जाता। इनकी भाषा अन्य गीत-शैलियों की अपेक्षा अधिक गढी हुई, कलात्मक और गति मन्थर व गम्भीर होती है।

उपर्युक्त बन्धनो की तनिक शिथिलता से उस विपुल रोमानी कला-गीतो की रचना होती है जो शास्त्रीय नही सुगम सगीत की स्वर-साधना के उपयुक्त होते है। इनमे शास्त्रीय गीतो से अन्तर यही है कि कवि स्वर और लय के सगीत के विषय मे स्वच्छन्द होता है। भले ही इनका सगीत-विधान शास्त्रीय नियमों के अनुकूल भी सभव बन पड़े, परन्तु गीत-रचना करते समय कवि को इस विषय मे सतर्क नही रहना पड़ता कि उसकी पंक्ति की एक आवृति ताल की एक आवृति मे ठीक बैठेगी या नही, तथा उसके छन्द की मात्राएँ, आकार आदि किसी राग विशेष के स्वरो के अनुकूल पडेगा या नही। उसके गीत की स्वर-साधना किसी श्रुति-सुखद स्वर-रचना के अनुकूल हो जाय यही पर्याप्त है। अत इस प्रकार की गीत-रचना के अन्त्यक्रम, लय-निपात, छन्दक आदि का क्रम-बन्धन कवि की अन्त. प्रेरित लय के अनुकूल होता है, परन्तु इन गीतो की रचना भी सायास अलकृत भाषा-शैली मे की जाती है, तथा इनकी प्रेरक अनुभूति व्यक्तिगत होती है। कवि इन गीतो की भाषा-शैली मे साहित्यिकता के गुण का यथासभव निर्वाह करता है। कभी-कभी इन गीतो पर सहज रूप मे लोक-गीतो की शैली का आशिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है यथा महादेवी के काव्य मे। पन्त, 'निराला', 'बच्चन', रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र, 'अज्ञेय', जगदीशगुप्त, नरेश मेहता आदि ने इस प्रकार के गीतो की रचना की।

इधर उर्दू-साहित्य के अधिकाधिक सम्पर्क और पठन-पाठन के परिणामस्वरूप हिन्दी काव्य मे गेय रचनाओ के लिए उर्दू की गजल-शैली का प्रयोग बहुत बढ चला है। यह प्रभाव भारतेन्दु-युग से ही हिन्दी कविता पर लक्षित किया जा सकता है, परन्तु द्विवेदी-युग के कवियो—'पूर्ण', 'शकर' आदि से इस शैली का विशेष सफल प्रयोग सम्भव न हुआ। गजल की लय का नियमन नियत मात्राओ व वर्ण सख्या के आधार पर नही किया जाता। उसकी लय भी शब्दों के उच्चारण (accent) पर निर्भर रहती है। इस प्रकार भाव-लय के अनुकूल शब्दो में जो उच्चारण-संगीत होता है वही गजल की लय का नियमन करता है। इनका आधार फारसी-छन्द शास्त्र होता है और फारसी के छन्द हिन्दी व सस्कृत के छन्दो की भाँति मात्राओ व वर्णों मे बधे नही रहते। उनका आधार वे बहर अर्थात् खास अल्फाज होते है जिन पर शेर को तोला और जाँचा जाता है। गजलो मे एक ही भाव पर अनेक प्रकार की उक्तियाँ कही जाती है। भाव की मार्मिकता, नजाकत, थोडे मे बडी बात करने का प्रयत्न, कल्पना की उडान, और सौन्दर्य-कल्पना के साथ भाषा की मुहावरेदानी गजल की विशेषता होती है। इस शैली के इने-गिने प्रयोग द्विवेदी-युग के कवियों ने किये। छायावाद के भी सभी कवियो ने इस ओर रुचि नही दिखायी। प्रमुख कवियो मे इस शैली का शौक केवल 'निराला' को हुआ। उन्होने अनेक गज़ले 'बेला' मे लिखी। यद्यपि इन प्रयोगो की सफलता छन्द, भाषा, आदि की दृष्टि से प्रश्नातीत नही है, परन्तु इस शैली का प्रयोग तो है ही। इधर कुछ नये कवियो ने भी इस शैली में रचना की प्रवृत्ति

दिखायी है। हिन्दी में लिखी जाने वाली इन गजलों मे प्राय गजल का अन्त्यक्रम ही अपना लिया जाता है, भावना भी कभी गजल की शैली के अनुकूल होती है, परन्तु भाषा की वह मुहावरेदानी और जिन्दादिली जो इन गजलो का प्राण होती है प्राय नही मिलती। इसका उत्तरदायित्व कवि पर नही, कदाचित् काव्य-भाषा पर अधिक है।]

लोक-गीतो की निसर्ग सुन्दर शैली से प्रभावित गीत भी इस युग की कविता मे पर्याप्त लिखे गए। इनमे प्राय. दो प्रकार की रचनाएँ हुई। किसी पर्व या उत्सव से सम्बन्धित सामूहिक अवसरों पर रचित उल्लासमय लोक-गीत—जिनमे सर्वाधिक रचना होली या फाग की हुई। दूसरे प्रकार की रचनाएँ किसी व्यापक और सामूहिक अनुभूति के व्यक्तिगत रूप को विषय बनाकर लिखी गईं। इनकी प्रेरक अनुभूति वैयक्तिक तो होती है परन्तु एकान्तिक नही। इन रचनाओ मे मुख्यत—कजली, दादरा, रसिया, बिरहा और लावनियाँ लिखी गई। भारतेन्दु-युग की कविता मे कुछ हिडोले, झूलने आदि भी लिखे गए, परन्तु बाद मे ये शैलियाँ विशेष प्रचलित नही हुईं। पहले प्रकार के लोक गीतो मे पर्व-विशेष से सम्बद्ध उल्लासमय भावनाओ की अभिव्यक्ति की प्रधानता रहती है। इनकी लय मे प्रखर गति, उल्लासजन्य स्फूर्ति और उत्साह वर्तमान रहता है। इन पर्वों के साथ नृत्य गान का सम्बन्ध परम्परा से स्थापित होने के कारण इनमे स्वर और ताल का संगीत सहज रूप मे सन्निविष्ट रहता है। इनके प्रकृत लोक-प्रचलित रूप मे जो अतिशय उन्मद भाव और अश्लीलता अनेक स्थलो पर आ जाती है, स्वभावत. इनके साहित्यिक प्रयोग उनसे मुक्त है। इन लोक-गीतो का सम्बन्ध भारत के विविध प्रदेशो से है अत. इनका लोक-प्रचलित रूप प्रादेशिक भाषाओ मे ही निबद्ध मिलता है। साहित्य मे इनकी रचना प्रचलित काव्य-भाषा मे ही हुई, जिनमे देशज शब्दो का प्रयोग यत्र-तत्र किया गया। लोक-गीतो के प्रकृत उल्लास, अनौपचारिक अभिव्यक्ति और अनगढ कला से प्रभावित होने पर भी इन कवियो ने अपना साहित्यिक सस्कार और व्यक्तित्व बनाये रखा। सर्वाधिक प्रभाव-ग्रहण, इन गीतो की लय और अकृत्रिम व उल्लासमय अभिव्यक्ति का किया गया। होली रचना की शैली द्विवेदी-युग के कवियो से 'निराला' तक ही आई। उनके उपरान्त यह शैली अधिक प्रचलित नही हुई। 'निराला' द्वारा रचित होलियो की अभिव्यजना मे साहित्यिक सस्कार अधिक है।

लावनी, कजली, बिरहा, दादरा, आल्हा आदि का सम्बन्ध किसी विशेष उत्सव या पर्व से नही है, परन्तु लोक-गीतो की अभिव्यक्ति प्राय. सामूहिक अवसरो पर ही होती है। इन विभिन्न लोक-गीतो के प्रकारो मे परस्पर रचना-विधि का, अर्थात् गीत की रूपगत विशेषता का नही, गाने की लय का अन्तर होता है। कुछ विशेष प्रकार के गीतो के लिए गाने का एक विशेष ढग, विशेष प्रकार की धुने. प्रयोग और परम्परा से निश्चित हो गई है और उन्हे विभिन्न नाम दे दिये गए है। भारत के विविध प्रदेशो मे ये गीत अनेक भाषाओं और रूपो मे लोक-जीवन मे बिखरे हैं। कवि इन्हे वही से ग्रहण करता है अत परम्परा से निश्चित इनकी लय को भी वही से उठा लेता है, उसके पीछे शास्त्रीय नियम तथा विशेष रचना सम्बन्धी बन्धन नही होते। सहज रूप मे लोक-जीवन की निसर्ग सुन्दर मार्मिक भावानुभूतियो के साथ उनकी कला से भी हमारी काव्य-विधाएँ प्रभावित होती आई हैं। इसलिए कवि जब कविता करते समय लोक-गीत के विशिष्ट प्रकार को अपनाता है, तो उसके प्रचलित गेय रूप से वह अवगत होता है, अतः वह

उसी ढग पर अपनी गीत-रचना में लय के विधान, मूलवर्ती भावना और रचना-सम्बन्धी बदिशों को स्वीकार कर लेता है। ये लोकगीत परम्परा की दृष्टि से अपने विशिष्ट रूपों मे रूढ हो गए है, अन्यथा एक ही गीत को लय की दृष्टि से एकाधिक प्रकार से गाने मे कोई बाधा नही होती। इस रूढि बन्धन का एक निश्चित कारण है। इन विविध प्रकार के लोक-गीतो का सम्बन्ध विशिष्ट भावनाओ से होता है और किसी भी गीत की स्वर-साधना उसकी मूलवर्ती भावना पर निर्भर रहती है। एक विशेष प्रकार के भाव को निश्चित स्वर-लहरी से गाने पर ही वह श्रोता पर अभीष्ट प्रभाव डालता है, अतः इन लोक-गीतो की विशिष्ट लयो का आरम्भिक रूप इसी प्रकार निश्चित हुआ होगा। वाद मे प्रयोग से यह रूप रूढ हो गए और साहित्यिक रचनाओ मे भी परम्परा का अनुसरण करते हुए उस पर आधृत गीत लिखे जाने लगे।

इन गीतो का विषय मानव-मन की कोई अत्यन्त मार्मिक (प्रायः विरह) अनुभूति होती है जिसकी अभिव्यक्ति उसके प्रकृत और हृदयस्पर्शी रूप मे, बिना सस्कार का प्रयत्न किये, कला का आवरण चढ़ाए, कवि करता है। इन गीतो मे प्रभावात्मकता का गुण विशेष होता है, और यह आकर्षण इनकी बाह्य शैली का नही, व्यक्त अनुभूति की तीव्रता और सचाई का होता है। इनकी शैली मे आत्मद्रव होता है, मार्मिकता होती है एव प्रभावित करने का गुण होता है। विरह-व्यजक गीतो मे करुणा की अन्तर्धारा प्रवाहित रहती है, परन्तु इनकी शैली अकृत्रिम, अनगढ और निसर्ग-सुन्दर होती है। उसमे अलकारो के प्रयोग और कलागत चमत्कार की साधना नही की जाती। जो कवि सिद्धान्त-रूप मे जन-जीवन को जितने समीप से देखता रहा, उसके महत्त्व की स्वीकृति करता रहा, उसके काव्य मे इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप इस जीवन की कला का उतना ही अधिक प्रभाव पडा। इसी कारण प्रसाद और पन्त की कविता मे लोक-गीतो की शैली का सस्पर्श नही मिलता। महादेवी ने अपने गीतो में नारी के सस्कारवश इन गीतों की लय और शब्दावली का प्रयोग किया। 'निराला' ने भी अनेक रचनाएँ कजरी, होली आदि के अनुसरण पर की। नई कविता मे जन-जीवन को अधिकाधिक महत्त्व देने के कारण लोक-जीवन से काव्य-शिल्प का भी ग्रहण किया गया। सामान्यत काव्य मे सगीत की अवहेलना करने वाले ये कवि सगीत के इस रूप का दासत्व स्वीकार कर गए। कदाचित् इसीलिए कि इस सगीत मे भी जीवन की अकृत्रिम, अनगढ, प्रकृत सुन्दर अभिव्यक्ति मिलती है, और ये विशेषताएँ इनकी काव्य-रचना के सिद्धान्तो के अनुकूल पडती थी। अतएव 'अज्ञेय' से नरेश मेहता, जगदीश गुप्त और शम्भूनाथसिह तक नई कविता के रचयिता अनेकानेक कवियो ने लोक-गीतो के विविध रूपो—आल्हा, बिरहा, कजली आदि का प्रयोग किया। इन्होने इन गीतो की मार्मिक अनुभूति और स्वाभाविक अभिव्यजना-शैली को तो रक्षा की ही है, साथ ही प्रादेशिक भाषाओ के शब्दो का भी खुलकर प्रयोग किया। इस दिशा मे ये किसी प्रकार के संस्कार, कलात्मक चमत्कार अथवा साहित्यिकता के पक्ष मे न थे, परन्तु इनका मूलतः बौद्धिक दृष्टिकोण, कही-कही इस शैली के सफल प्रयोग मे बाधक हुआ है। इन लोक-गीतो से इनका हार्दिक नही, बौद्धिक सम्पर्क है। इनमे से अधिकाश कवि अपनी काव्य-रचना का अधिकाश समय भारत या विदेश के नगरो मे व्यतीत करते रहे, अत. अनेक गीतों मे लोक-गीतों की शैली के प्रयोग का झूठा भ्रम, या आभास मात्र मिलता है। प्रायः हिन्दी-कविता मे उत्तर भारत में प्रचलित लोक-गीतों का

ही अपनाया जाता रहा है। इन नए कवियो ने इस शैली की सीमाओ का विस्तार किया। धर्मवीर भारती ने गुजराती लोक-गीत 'गरबा' की लय पर 'धूप के धान' मे गीत-रचना की। 'अज्ञेय' ने कागडे के लोक-गीत का आभास देते हुए एक लघु गीत लिखा। नरेश मेहता आदि की रचनाओ पर अशो मे विविध लोक-गीतो का प्रभाव दृष्टिगत होता है। लोक-गीतो का कोष असीम है, यदि उस क्षेत्र से सामग्री-संचयन कर साहित्य के भण्डार मे विवेक से निरन्तर वृद्धि की गई तो सम्भावनाएँ शुभ हो सकती हैं। हिन्दी-कविता की इस शैली का भविष्य उज्ज्वल है, यदि इसमे प्रादेशिक रगो को गहरा कर हमारा कवि-वर्ग इसे अबोधगम्य न बना दे।

बौद्धिक-शैली—हिन्दी-कविता की अधुनातन शैली यही चिन्तनप्रधान शैली है। इस शैली का प्रयोग प्रधान रूप से तीन प्रकार की कविताओ मे हुआ—नैतिक-उपदेशात्मक, विचार-विश्लेषणात्मक और विचार-प्रतिपादनात्मक। इनमे से पहली और तीसरे प्रकार की कविता इतिवृत्त शैली मे लिखी गई, और इस कविता का प्रणयन द्विवेदी-युग और प्रगतिवाद के कवियो द्वारा हुआ, अत. यहाँ हमारा सकेत दूसरी अर्थात् विश्लेषण के लिए प्रयुक्त शैली की ओर है।

इस शैली का आरम्भ छायावादी काव्य मे ही हो गया था। अध्यात्म और जीवन-दर्शन के अनेक विचार सत्यो का विवेचन और विश्लेषण इसी शैली मे किया गया, परन्तु वहाँ विचार के द्वारा भावना आवृत नही होती। ये कवि विचारो को अनुभूति का विषय बनाकर व्यक्त करते रहे, अत. इनकी कविता मे गीति शैली का प्रयोग अधिक हुआ है। एकान्त बौद्धिक कविता का आरम्भ नई कविता से ही होता है। ये कवि विचार पर भाव का रग चढाने के पक्ष मे नही और विषय के प्रति भी इनका दृष्टिकोण रागात्मक की अपेक्षा बौद्धिक है, अतः अपने विचारो को यथावत् रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न सर्वप्रथम इन्ही कवियो ने बौद्धिक शैली मे किया। इनकी इस विषयगत विशेषता से शैली का बाह्य रूप प्रभावित हुआ, उसमे अनेक अभिव्यजना सम्बन्धी विशेषताएँ उत्पन्न हो गई। इस शैली की प्रथम विशेषता है—परम्परागत अभिव्यजना शैली का त्याग। ये कवि कला के रम्याद्भुत प्रसाधनो से मुक्त अभिव्यजना के प्रयोग मे विश्वास करते थे। जो विचार इनकी कविता का प्रेष्य होता है, उसे मूर्ति-विधायिनी कल्पना के द्वारा मूर्तरूप देने, सौन्दर्य-चेतना के सहारे सौन्दर्य-व्यजक अप्रस्तुतो के माध्यम से व्यक्त करने, यथासम्भव सुन्दर और रमणीय बनाने की अपेक्षा, ये कवि उसे यथावत् रूप मे पाठक तक पहुँचाने का प्रयत्न करते थे, अतः इनमे चित्र-विचित्र बिम्ब-विधान, भाषा-सज्जा, अलकारो का प्रयत्न-साध्य प्रयोग नही मिलता। इन उपादानो का प्रयोग इन कवियो ने वही तक किया है जहाँ तक ये उपकरण इनकी विचाराभिव्यक्ति मे सहायक हुए, विचारो के शृगार के लिए नही, इसलिए कही-कही इनकी अप्रस्तुत-योजना और अभिव्यजना विचित्र मौलिकता लिये हुए है, और कही नितान्त अनगढ़ रूप मे प्रस्तुत हुई है। कारण है कि यदि इनके विचारो मे अस्पष्टता या कुरूपता है तो ये उसे अभिव्यजना मे आवृत करके नही, यथातथ्य रूप मे प्रेष्य बनाते है। अभिव्यक्ति मे उत्पन्न होने वाली अवाछित दुरूहता का कारण भी यही अतिशय बौद्धिकता है। इस बौद्धिक शैली मे अभिव्यजना-सम्बन्धी विशेषताएँ मौलिक अप्रस्तुत-योजना, दुरूहता तथा कही-कहीं अनगढ़ता है। उपर्युक्त विशेषताओ का कारण-रूप मे एक ही विशेषता से सम्बन्ध है—मौलिक, परम्परा-विरोधी अप्रस्तुत-विधान, अतः इनका परिगणन एक ही शीर्षकान्तर्गत किया गया है।

विचार-प्रतिपादन के लिए कभी-कभी ये कवि अलंकारो का प्रयोग करते ही नही, अतः सर्वथा अनलकृत अभिव्यंजना इस शैली की दूसरी विशेषता है। पूरी की पूरी कविता पढ जाइये पंक्तियो के बाद पक्तियाँ चलती जायँगी, परन्तु अलकार और प्रयत्नसाध्य सज्जा ढूंढने से भी नही मिलेगी। ऐसी कविताओ मे हृदय नही, बुद्धि रमण करती है, और इनका आकर्षण भावगत रमणीयता और शैलीगत सौन्दर्य नही, विचारो की गहनता होती है। इनमे प्रायः विचारो की गम्भीर व्यजना मिलती है। ऐसे कुछ प्रयोग अपनी गहन बौद्धिकता मे भी बोधगम्य होने के कारण ग्राह्य हैं। उनका अपना आकर्षण है। आज के मानव की अनिश्चित मन.स्थिति और गन्तव्य का विश्लेषण नया कवि इस प्रकार करता है :

कौन-सा पथ है ?
मार्ग में आकुल-अधीरातुर बटोही यों पुकारा—
कौन-सा पथ है ?
"महाजन जिस ओर जाएँ"—शास्त्र हुंकारा
"अन्तरात्मा ले चले जिस ओर"—बोला न्याय-पण्डित
"साथ आओ सर्व साधारण जनों के"—क्रान्ति वाणी
पर महाजन-मार्ग गमनोचित, न सम्बल है, न रथ है,
अन्तरात्मा अनिश्चय-सशय-ग्रसित,
क्रांति-गीत-अनुसरण योग्या है न पद सामर्थ्य[1]

नए कवियो मे इस शैली का प्रयोग गजानन मुक्तिबोध ने, कुछ कविताओ मे भारत-भूषण अग्रवाल ने तथा प्रभाकर माचवे और 'अज्ञेय' ने किया है। गजानन मुक्तिबोध की कविता मे विचार खण्डित एव अस्पष्ट रूप मे मिलते है, इसीलिए उनकी कविता मे विचार-सम्बन्धी एक उलझन व्याप्त है। भारतभूषण अग्रवाल की कविताओ मे विचार-व्यजना प्रायः निर्भ्रान्त और स्पष्ट रूप में हुई है, परन्तु उनकी अनेक कविताओ में कविता के संगीत का सर्वथा परित्याग कर देने के कारण गद्यवत् जड़ता आ गई है। माचवे और 'अज्ञेय' की रचनाओं मे इन तत्त्वों का संतुलित प्रयोग है।

इस शैली की तीसरी विशेषता है सगीत का सर्वथा परित्याग। एक तो ये कवि सिद्धान्त रूप में काव्य के लिए संगीत की आधीनता को काम्य नही मानते। इन्होने कविता को सगीत की सदियों पुरानी दासता से मुक्त करने के चक्कर मे काव्य के एक प्रकृत गुण पर कुठाराघात किया। मुक्त छन्द का मात्रा, वर्ण, यति, विराम आदि से ही नही लय से भी मुक्त प्रयोग इनके इस प्रयत्न मे साधक हुआ। विचार के विश्लेषण, निरूपण तथा तर्क और युक्ति द्वारा प्रतिपादन का अधिक उचित माध्यम गद्य होता है। यदि यह विचार व्यंजना कविता के रम्य और अलंकृत तत्त्वों से मुक्त भाषा मे की जाय तो वह गद्य के और भी निकट आ जाती है। ऐसी स्थिति मे गद्य और कविता के बीच एकमात्र व्यावर्तक तत्त्व छन्दोबद्धता रह जाती है, और यदि छन्द के लयात्मक संगीत का भी परित्याग कर दिया जाय तो ऐसी कविता शब्दों के हेर-फेर से लग-

---

१. तारसप्तक—भारतभूषण अग्रवाल, पृष्ठ ३८

भग गद्य-रचना के समान ही हो जायगी। यही दोष नई कविता के कुछ प्रयोगो मे मिलता है। ऐसी स्थिति मे ये कविताएँ प्राय. वाक्यविन्यास-दोष-युक्त गद्यानुच्छेद प्रतीत होती है, क्योकि इनमे यति और विराम का प्रयोग भी सुविधानुसार पक्ति के आरम्भ, मध्य या अन्त मे, कही भी कर लिया गया है और इनकी पक्तियाँ भी दूरान्तरप्रवाही होती है। इन कविताओ का शब्दो के हेर-फेर से यथावत् गद्य रूपान्तर किया जा सकता है। एक उदाहरण लीजिये :

अपने कवि से ··

. . ..

इस भाँति आज कवि के अतिशय उत्कट विचार, सुख दुख प्रतीति
रह जाते है कल्पना मात्र। सब बन्धन से दुष्कर बन्धन
है शब्दों का, जो नहीं निकट आने देता कवि एवं उसकी आत्मपूर्ति
को जग के भौतिक सत्यों के; छाया के सदृश अर्थहीना
करता है उसकी वाणी को ! कैसी विडम्बना ! स्थिर साधन
यद्यपि चिर-गति-मय साध्य। देवता बदल गये, बदली न मूर्ति।[1]

उपर्युक्त पक्तियो का बिना शब्दो में कुछ जोडे-तोडे, थोडे से स्थल-परिवर्तन से गद्य-रूपान्तर प्रस्तुत करते है :

इस भाँति आज कवि के अतिशय उत्कट विचार, सुख-दु.ख प्रतीति कल्पना मात्र रह जाते है। सब बन्धन से दुष्कर बन्धन शब्दो का है, जो कवि एव उसकी आत्मपूर्ति को जग के भौतिक सत्यो के निकट नही आने देता, उसकी वाणी को छाया के सदृश अर्थहीना करता है। कैसी विडम्बना ! चिर-गति-मय साध्य, स्थिर साधन। देवता बदल गये, मूर्ति न बदली।

उपर्युक्त रूपान्तरण मे पूरक क्रियाओ एवं विभक्तियो का प्रयोग करने की आवश्यकता भी नही पडी है। केवल अन्वय-भेद से पद्य की पक्तियाँ विराम चिह्नों के परिवर्तन से गद्य में बदली जा सकती है। प्रश्न है इन कविताओ को कविता कैसे माना जाय ? कुछ रचनाओ मे तो विचार और विषय गद्य माध्यम के उपयुक्त है, परन्तु अभिव्यजना पद्यात्मक है। ऐसी कविताओं को पढकर प्रतीत होता है कि पद्य की कारा मे गद्य की आत्मा बन्दिनी है। तर्क दिया जा सकता है कि आज के सघर्ष और समस्याओ की धूल और मिट्टी से भरे जीवन मे मोहक वायवी कल्पनाओ और रगीन स्वप्नो के लिए अवकाश नही है। अधिक से अधिक भौतिक आदर्शों की कल्पना काम्य हो सकती है, रोमानी नही। यदि देखा जाय तो हर प्रकार की कल्पना को कठोर यथार्थ और तीव्र गति से परिवर्तित जीवन की वास्तविकताओ ने व्यर्थ सिद्ध कर दिया है, अत आज का कलाकार मिट्टी से जूझना है आकाशचारी नही बन पाता। परन्तु ऐसी स्थिति में यदि कविता के आदर्श बदल गए तो माध्यम बदलने मे क्या बाधा है ? गद्य को छोटी-बडी पक्तियो मे तोडकर, शब्दो के क्रम मे किचित् हेर-फेर से प्रस्तुत करने के प्रपच को कविता कैसे माना जा सकता है ? ऐसी कविता उसी व्यक्ति के समान प्रतीत होती है, जिसकी आत्मा बन्दिनी है, परन्तु स्वयनिर्मित मिथ्या बन्धनो मे।

---

१. तारसप्तक—भारतभूषण अग्रवाल, पृष्ठ ३३

केवल हठधर्मी के कारण काव्येतर ललित कलाओ के काव्य-क्षेत्र मे प्रवेश का यह निषेध काव्य-सौन्दर्य को क्षति पहुँचाता है। यह ठीक ही है कि काव्य कला अन्य कलाओ की मुखापेक्षी नही, उसे अपनी सत्ता के लिए किसी अन्य कला की दासता स्वीकार करने की आवश्यकता नही। परन्तु यदि अपनी स्वतन्त्र स्थिति, आत्मनिर्भरता बनाए रखकर सौन्दर्य-वर्द्धन के लिए अन्य कलाओ से आदान-प्रदान सम्भव हो, तो उसका दुराग्रहपूर्ण निषेध करने की क्या सार्थकता होगी ? काव्य का सम्बन्ध ललित कलाओ मे चित्र और सगीत से विशेष रहा है। यह सम्बन्ध दासत्व का नही अग-अगी है। छन्द, काव्य मे सगीत के एक विशेष प्रकार — लय के सगीत का विधायक है। वह शास्त्रीय नियमो से मुक्त हो सकता है परन्तु लय का सर्वथा निषेध छन्द की गति के लिए काम्य नही हो सकता। मुक्त छन्द की मुक्ति पिगल शास्त्र के नियमो से ही स्वीकार्य हो सकती है, परन्तु भाव-लय के आधार पर उसमे एक अन्त प्रेरित लय या सगीतात्मकता होनी अनिवार्य है। मुक्त छन्द की इन रूढ नियमो से स्वच्छन्द लय ही उसका प्राण तत्त्व है, लय-मुक्ति या गद्यात्मक अभिव्यक्ति नही। नई कविता मे केवल नियमो से परिबद्ध लय का ही नही, लय मात्र का सर्वथा त्याग कर दिया गया है। इसीलिए ऐसे अनेक उदाहरण इन कविताओ से दिये जा सकते है जो केवल बाह्याकार से और वाक्य-रचना के वैशिष्ट्य से पद्य प्रतीत होते है, अन्यथा उनकी आत्मा और शैली दोनो मे ही कविता की धाराप्रवाह गति नही, गद्य की जडता व्याप्त है। बौद्धिक शैली मे कविता क्रमश. गद्य की ओर बढती जा रही है, कम से कम इस कविता मे गद्य और पद्य शैलियों की सीमा रेखाएँ मिली अवश्य है।

इस शैली की अन्तिम विशेषता है घनत्व। इसमे वर्णन का सरल स्फीत, विस्तार और विकास नही होता, भावनाओ की उच्छ्वसित, अन्तर्धारा से उद्भूत द्रवित प्रवाह भी नही मिलता। इनमे बौद्धिक-जडता, सघनता और स्थिर गति मिलती है। जहाँ ये कवि क्रान्ति के लिए ललकारते है (इनकी शैली मे प्राय स्फूर्ति और उत्तेजना के गुण भी नही है) वहाँ तो क्षणिक बौद्धिक उत्तेजना इनकी शैली मे आ जाती है, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। यह कविता रुक-रुककर बुद्धि से चिन्तन मनन के द्वारा विश्लेषण और ग्रहण करने की कविता है, सौन्दर्य-बोध जगाने, आत्मविभोर और मुग्ध करने का काव्य नही। विचार की जीवन मे अपनी उपयोगिता और महत्त्व है। उसे काव्य के क्षेत्र से बहिष्कृत नही किया जा सकता, परन्तु उसका अतिचार भी काव्य की आत्मा के लिए हितकर नही हो सकता। इस कविता ने निश्चय ही हमे नवीन दिशाएँ और व्यापक दृष्टिकोण दिया। जो क्षेत्र, जो राहे अब तक काव्य के लिए अवरुद्ध थे, उनका अन्वेषण और उन्मीलन किया, अत. रूपविधा और शैली के नाम पर भी बहुत कुछ नवीनता इस काव्य मे उपलब्ध है, परन्तु साथ ही नवीनता के नाम पर जो कुछ दुराग्रह इन कवियो के प्रयत्नो मे मिलता है, उसको दृष्टि मे रखते हुए इस काव्य का भविष्य अनिश्चित ही प्रतीत होता है।

नवीन प्रयोग-प्रधान अभिव्यजना-शैली— इस विशेषता का सम्बन्ध आधुनिक युग मे पिछले खेवे के कवियों से ही अधिक है। इस प्रसग मे हमारा अभिप्राय केवल उस चमत्कार से है जिसकी सायास साधना की जाती है। चमत्कारप्रधान अभिव्यजना का अभाव यो छायावादी काव्य मे भी नही, परन्तु वह चमत्कार भावप्रेरित है। शैली वहाँ भाव की अनुवर्त्तनी है। रीतिकाल के कवियो ने काव्य मे जिस चमत्कारप्रियता का परिचय दिया वह शास्त्रीय, लक्षण-

बद्ध, सधी-बँधी चमत्कार शैली थी, परन्तु आधुनिक साहित्य मे छायावाद के विरोध मे उदित शिल्पगत आन्दोलन का स्वरूप बिल्कुल भिन्न था। इन कवियो से पूर्व अभिव्यजना-साधना के नाम पर हिन्दी-साहित्य मे जो कुछ उपलब्ध है, उसमे प्राचीनता-मोह, लक्षणबद्धता, अथवा सस्कार या भावप्रेरित चमत्कार ही प्रधान है। परम्परा और सस्कार के नाम पर जितनी भी अनास्था सम्भव हो सकती थी वह सब इस नई कविता मे है और इनका शैली-चमत्कार बुद्धिप्रेरित अत साध्य है भावप्रेरित व सहज नही। ये चमत्कार और नवीनता का सन्निवेश केवल इसलिए नही करते कि शैली मे नयापन, दूर की सूझ-बूझ, अलकार और भाषा के नवीन प्रयोग इनके व्यापक कलाधिकार की सूचना दे, कुतूहल और वैचित्र्य की सृष्टि करे। इस अभिव्यजना-सम्बन्धी मौलिकता और नवीनता के दुराग्रह के मूल मे निश्चित धारणाएँ, तर्क और कारण है। जिनसे इन कवियों ने सदैव आरोपो से स्वरक्षा का प्रयत्न किया है।

इनकी धारणा है कि पुरानी भाषा के उपमानो, प्रतीको, मुहावरो आदि का इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि घिसकर उनका मुलम्मा छूट गया है, अत. इन्होने भाषा का वैयक्तिक प्रयोग किया। इनके अनुसार प्रत्येक शब्द प्रत्येक कवि के मन मे वैयक्तिक अर्थ की प्रतीति कराता है। इनका दावा यही है कि ये इस व्यक्तिगत अर्थ-प्रतीति के अनुसार शब्दो मे नया और सारगर्भित अर्थ भरते है और शब्दावली को व्यापक बनाते है।

भाषा की शक्तियो के साथ इन कवियो ने अतिचार किया। उसके लक्ष्यार्थ और व्यग्यार्थ का सम्बन्ध वाच्यार्थ से सर्वथा तोड दिया। सूक्ष्म और गूढ भावो को अभिव्यक्ति के लिए भाषा को अपर्याप्त और असमर्थ माध्यम मानकर अनेक विराम-चिह्न, गणित-चिह्न, तिरछी-सीधी लकीरो आदि का प्रयोग किया। जाने-अनजाने, विदेश की मूर्तिवादी, प्रतीकवादी और प्रभाववादी, अनेक प्रवृत्तियो का ये कवि अनुकरण करते रहे। नवीन सौन्दर्य-बोध की निरन्तर पुकार से नए मूल्य सामने आए। क्रमशः शैलीगत नवीनता की इस पुकार ने नारे का रूप धारण कर लिया। इस अतिशय नवीनता क कारण इनकी शैली अनेक स्थलो पर दुरूह हो गई है। ये कवि सिद्धान्त-रूप मे मानकर चलते थे कि कविता अनिवार्यत दुरूह होगी, अत. इनकी दुरूहता केवल अभिव्यक्तिगत नही—

"जब कवि के विचार-जगत् मे यह गम्भीर उलझाव और कुहासा है तो उसकी अभिव्यजना के जो उपकरण है अर्थात् भाषा, प्रतीक, उपमान, छन्द अपने आप अस्वाभाविक, अधूरे, खडित और रूप-व्यक्तित्व-विहीन होगे। भाषा जानबूझकर बिगाडी या गढी हुई होगी जिसका व्यावहारिक जीवन से कोई सम्बन्ध न होगा, चेष्टापूर्ण लाये हुए निरर्थक, बोधशून्य प्रतीक होगे, उपमानो मे कोई तारतम्य नही होगा और छन्द के नाम पर भ्रष्ट गद्य भी न मिलेगा। चमत्कार पैदा करने के लिए, कविता को साधारण से अलग दिखाने के लिए शोमैनशिप के नये-नये तरीके अपनाये जायँगे, दूर की कौडी लाने का अथक प्रयत्न किया जायगा ताकि लोग चौक पडे और कहे कि हाँ, यह नई बात है।"[1]

अतः इनकी शैली की प्रमुख विशेषता शोमैनशिप और चौका देने वाली शैली-शिल्प का

१. धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ ११-१२

ग्रहण है। यह शोमैनशिप ये अनेक रूपो मे लाते है, इस बात को स्वयं इन्होंने स्वीकार किया है। भाषा का केवल दुरूह नवीन अर्थव्यजक ही नही चित्र-विचित्र प्रयोग भी ये कवि कर डालते हैं—"तद्भव और तत्सम की गडबड की बात तो जाने ही दीजिए, अँगरेजी, बँगला, अरबी, फारसी, रूसी, चीनी, जापानी के अनेक शब्द अपने रूप मे आपको एक साथ एक ही पक्ति मे मिल जायेंगे। फिर कॉमा, फुलस्टाप, कोलन, डैश, ब्रैकिट आदि अनेक विरामचिह्नो से पाठक को जूझना पडता है।"[1] इस प्रकार इनकी यह शोमैनशिप भी नानारूपिणी है—भाषागत, छन्द और अलकार सम्बन्धी विरामचिह्न और समवेत रूप मे शैली-सम्बन्धी।

ये कवि अपने पक्ष मे प्राय. साम्प्रतिक जीवन के सन्दर्भ मे पुरानी मान्यताओ की व्यर्थता और अनास्था तथा उससे उत्पन्न आन्तरिक हलचल, सामाजिक सघर्ष से आक्रात मन की स्थिति का तर्क देते है, "नये कवि के मन का यह दूसरा सत्य ही उसके नए प्रतीको और उपमानो मे छिपा पडा है। उसका मन खण्डित है क्योकि उसके सामने समाज खंडित होता जा रहा है, उसका मन अंधकार से भरा है क्योंकि सामाजिक प्रगति का मार्ग स्थूल दृष्टि से तो कही भी दिखाई नही देता और वह कल्पना-लोक मे पलायन कर नही पाता क्योकि उसे अपने दायित्व का भी ध्यान है।"[2]

अतः इन कवियो का प्रयास अपने चेतन-अवचेतन मन के अनुभव-खडों को यथावत अकित करने का है। इनकी अनुभूति जिस निविड, गूढ, अस्पृष्ट रूप में होती है, वैसी ही अर्ध-व्यक्त इनकी अभिव्यक्ति होती है। इनके अनुसार आज के उलझे जीवन मे भावों के इतने शेड्स है, इतनी भिन्न-भिन्न उलझी छायाएँ हैं—जिन्हे स्थायी, सचारी आदि पारिभाषिक शब्दो में न बाँधा जा सकता है, न इनकी निश्चित अभिव्यक्ति सम्भव है, अतः इन अस्पष्ट भाव-खंडों को व्यक्त करने का प्रयास अपने-आप मे असाधारण है। इस दुष्कर प्रयास का अर्थ यही है कि इनकी अनुभूति मे इन अस्पष्ट, बिखरे अनुभव-खण्डो को सूत्र में बाँधकर आकार देने की सामर्थ्य नहीं है। परिणाम हुआ है शैली के उपकरणों का एकान्त वैयक्तिक और चमत्कार-मूलक प्रयोग। भाषा सामाजिक आदान-प्रदान का साधन है, अतः उसका एकान्त वैयक्तिक प्रयोग दुष्प्रयास है। इस वैचित्र्य मे भी एक प्रकार का सामान्य गुण, परम्परा से सम्बन्ध होना चाहिये, कम-से-कम इतना कि उसकी प्रेषणीयता बाधित न हो। अत. जहाँ इनकी शैली मे नवीनता है पर एकान्त वैयक्तिकता नही, दुरूहता है परन्तु प्रेषणीयता असम्भव नहीं, वहाँ इनकी कविता, शैली की दृष्टि से, जीवन की माँग एव चिर परिवर्तनशील और गत्यात्मक जगत की आवश्यकता के साथ आगे बढी है।

जिस चित्र-विचित्र नवीनता का सकेत किया गया, वह सभी नए कवियो की सभी कविताओ मे नही। यह केवल कुछ कवियो की कुछ कविताओ की बात है। विवेक के अकुश मे रहकर जहाँ इन कवियों ने हमे व्यापक एव नया सौन्दर्य-बोध दिया है, अभिव्यजना के क्षेत्र मे रूढिग्रस्त मानदण्डों मे परिवर्तन उपस्थित कर शत-शत नवीन अभिव्यंजनागत मार्ग उन्मुक्त किए है, वहाँ

---

१. नये-पत्ते—अंक ४ (मार्च) नयी कविता में रूप-विधान और वस्तु-तत्त्व—भारतभूषण अग्रवाल
२. वही, पृ० २५

इनका योगदान प्रशसनीय है। समीक्षक वर्ग मे इन कविताओ का विशेष स्वागत नही होने का एक कारण इनके द्वारा अपनी सैद्धातिक दुरूहता का प्रचार है। इस कविता के समग्र का अध्ययन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने मे विलम्ब नही होगा कि इस समग्र साहित्य मे सर्वथा अनर्गल कविता अनुपात की दृष्टि से बहुत कम है। अधिकाश रचनाओ के पीछे किसी-न-किसी स्वदेशी या विदेशी काव्यधारा का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव मिल जायगा। शैली के अन्य रूपो का विवेचन करते हुए सिद्ध किया जा चुका है कि किस प्रकार इन कवियो ने लोक-साहित्य मे और स्वदेशी-विदेशी काव्य मे प्रचलित विधाओ को ही एक पग आगे विकास की दिशा मे बढाया है। परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न, सर्वथा अनर्गल और सर्वथा नूतन प्रयोग इस काव्य मे कम है (जो है वे कविता नही) नवीन कहलाने का आग्रह अधिक। जो कुछ नवीन इनमें है उसमे से अधिकाश का प्रकट आभास छायावाद के ह्रासकाल के कवि दे चुके थे। इनका विद्रोह शैलीगत अधिक है :

"चांदनी चन्दन सदृश"
हम क्यो लिखे ?
मुख हमे कमलों सरीखे क्यों दिखे ?
हम लिखेंगे ·
चांदनी उस रुपये सी है कि जिसमें
चमक है पर खनक गायब है।
हम कहेंगे जोर से
मुँह घर-अजायब है
(जहाँ पर बेतुके अनमोल, जिन्दा और मुर्दा
भाव रहते है।)[1] —(कवियो का विद्रोह)

परन्तु इस तरह की बात निराला बहुत पूर्व 'नये पत्ते' मे कह चुके थे—

फिर भी यह बस्ती है मोद पर
नातिन जैसे नानी की गोद पर,
नाम है दिलगी, बनी है मूचुम्बी
जैसी लौकी की लम्बी तुम्बी।[2] (खजोहरा)

अलकार-योजना—काव्य और शैली का पारस्परिक सम्बन्ध अविभाज्य है। शैली प्रायः कविता के विषय और कवि के कला-सम्बन्धी दृष्टिकोण पर निर्भर रहती है। जिस काव्य मे विषय, चेतना, रूप-विधान, भाषा सभी दृष्टियो मे परम्परा-मुक्ति का प्रयत्न मिलता है, उसकी अलंकार-योजना मे भी निश्चय ही नवीनता और परम्परा-मुक्ति मिलती है। यह इस कविता की अलकरण-विधि का एक पक्ष है। दूसरी ओर ये कवि परम्परा से सर्वथा मुक्त भी न हो सके, विशेष रूप से आरम्भिक कविता मे इनका प्रयत्न परम्परा विद्रोह का नही है। किसी बन्धन से मुक्ति की कामना करने तथा विद्रोह करने मे प्रमुख अन्तर यही है, कि मुक्ति की कामना

---

१. नई कविता—१९५४, अक १, पृ० २१
२. नए पत्ते—निराला, पृ० ११

सृजनात्मक होती है और वही तक की जाती है जहाँ तक वह अपने लिए शुभ हो। विद्रोह मे क्रातिमूलक ध्वंस की प्रवृत्ति का प्राधान्य रहता है और बन्धन से सम्बन्ध-विच्छेद कर उसे नष्ट-भ्रष्ट करके आमूल परिवर्तन की लालसा प्रधान होती है। मुक्ति के प्रयत्न मे प्रायः विवेक रक्षित रहता है और विद्रोह की उत्तेजना मे वह नष्ट हो जाया करता है। यही अन्तर इस युग की आरम्भिक और अन्तिम कविता मे है।

द्विवेदी-युग मे काव्य-रचना का आरम्भ जब हुआ तो उस कविता मे जो रीतिकालीन परम्परा के अनुसरण पर लिखी गई, अलकार-योजना भी उसी प्रकार परम्पराभुक्त थी, परन्तु शनैः-शनैः इस परम्परा से मुक्ति का प्रयत्न आरम्भ हो गया था। यह प्रयत्न सीमा-विस्तार के रूप मे छायावादी कविता मे पूर्ण हुआ, अत अलकार-प्रयोग मे भी विविध प्रवृत्तियाँ इस युग की कविता मे दृष्टिगत होती है, जो सक्षेप मे इस प्रकार है

(१) परम्परागत अलकारो का परम्पराभुक्त प्रयोग—परम्परागत अलकारो से हमारा अभिप्राय उन अलकारो से है जिनका विवेचन अलकार-शास्त्र मे, और प्रयोग पूर्ववर्ती काव्य मे बहुलता से हुआ। इन अलकारो मे शब्द-चमत्काराश्रित अलकार—अनुप्रास, यमक आदि, और अर्थालकारों के विभिन्न रूपो—सादृश्यमूलक, वैषम्यमूलक, विरोध-चमत्काराश्रित आदि का परिगणन किया जा सकता है। परम्पराभुक्त प्रयोग से अभिप्राय उस रूप में प्रयोग से है जिसमे उनका प्रयोग व्यवहार मे कवि-परम्परा मे प्रचलित और प्रसिद्ध था। इनकी अप्रस्तुत-योजना, बिम्ब-विधान, प्रयुक्त उपमेय-उपमान और उनका प्रयोग सभी प्रचलित परिपाटी के आधार पर हुआ है। अर्थात् जिन वर्ण्य विषयो के लिए जिन अलकारों का जिस रूप मे, और जिन आधारो पर प्रयोग कवि-परम्परा मे प्रचलित था, उसी रूप मे आधुनिक कविता मे इनका प्रयोग होता रहा। इस ढंग की सर्वथा परम्पराभुक्त अलकार-योजना, द्विवेदी-युग की उस कविता मे मिलती है जो रीतिकालीन काव्य के अनुकरण पर लिखी गई। छायावाद की आरम्भिक कविता मे, तथा परवर्ती काव्य मे भी यत्र-तत्र इस प्रकार की अलकार-योजना प्राप्त हो जाती है। इन परम्परासिद्ध अलकारो मे सर्वाधिक प्रयोग सादृश्यमूलक अर्थालकारो और अनुप्रासाश्रित शब्दालंकारो का हुआ। विरोध-चमत्कार पर आश्रित अलकार भी अन्य अलकारो की अपेक्षा अधिक प्रयोग मे लाये गए। नई कविता मे भी इस प्रकार के प्रयोगों का एकान्त अभाव नही है।

(२) शास्त्रीय अलंकारो का मौलिक विधि से प्रयोग—आधुनिक काव्य की अधिकाश अलकार-योजना इसी वर्ग के अन्तर्गत आती है। इस वर्ग मे वे अलकार आते है जिनकी परिभाषाएँ तो नही बदली, उनका रूप शास्त्रसम्मत रहा, किन्तु प्रयोग-सम्बन्धी मानदण्ड बदल गए। अर्थात् उनका प्रयोग उन्ही आधारो पर, उसी रूप मे नही किया गया जिस रूप मे वे कविपरम्परा मे व्यवहार के द्वारा रूढ और सिद्ध हो चुके थे। इन अलकारो मे से कुछ मे प्रयोग की दृष्टि से परम्परा का विकास व अन्य मे परम्परा का विरोध मिलता है। सर्वाधिक चित्र-विचित्र प्रयोग उपमा और उसके सजातीय अलकारो उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का हुआ। इनके परम्परागत रूप मे अन्तर इस अर्थ मे हो गया कि इनके प्रयोग के परम्परागत मानदण्ड बदल गए। उपमेय

और उपमान के चयन के आधारो मे परिवर्तन हो गया। विषय के साथ सज्जा के प्रसाधन बदले। इस परिवर्तन का एक कारण वर्ण्य मे परिवर्तन था और दूसरा विदेशी साहित्य का प्रभाव। अलकारो मे प्रयोग-सम्बन्धी यह नवीनता सर्वप्रथम पन्त, प्रसाद, 'निराला' आदि की कविताओ मे दृष्टिगत हुई। मूर्त विषयो के साथ अमूर्त का महत्त्व बढने के कारण उपमानो के आधार भी बदले। पूर्ववर्ती काव्य मे उपमान का चयन—रूप, गुण और क्रिया के साम्य के आधार पर किया जाता था। इस युग मे सबसे अधिक अवहेलना रूपगत आधार की की गई। इसीलिए मूर्त के लिए अमूर्त, अमूर्त के लिए मूर्त और अमूर्त के लिए अमूर्त उपमानो का प्रयोग किया जाने लगा। इनके प्रयोग का आधार कभी गुण और क्रिया से सम्बन्धित रहता और कभी प्रभावसाम्य के आधार पर यह अप्रस्तुत-योजना की जाती। सर्वाधिक बल इस अलकार-योजना मे प्रभाव-साम्य को दिया गया। बाह्य रूप और आकार-सम्बन्धी समानताएँ और विषमताएँ इन कवियो की दृष्टि मे गौण हो गई। इनका बिम्ब-विधान भी नए ढग पर हुआ। केवल दृश्य नही श्रावणिक बिम्ब-योजना भी इस कविता मे की गई। ये सभी विशेषताएँ 'ग्रन्थि' और 'जुही की कली', तथा प्रसाद की 'आँसू' और 'झरना' आदि के प्रकाशन से आरम्भ हो जाती है और अधुनातन कविता मे प्राप्त होती है। इस प्रवृत्ति का एक अत्यन्त शुभ परिणाम—प्राचीन और रूढ अलकार-शैली की सीमाओ और क्षेत्र का अपरिमित विस्तार है। इन कवियो ने अभिव्यजना के अनेकानेक नवीन मार्ग उन्मुक्त किये, नवीन प्रयोगो की विविध, नानारूपिणी सभावनाएँ उत्पन्न की, और प्राचीन नियत परिसीमाओ से बाहर निकलकर आगे के कवियो के लिए अनन्त विस्तार-विकास और नवीन प्रयोगो की ओर दिशा-निर्देश किया।

इन प्रयोगो मे दूसरा परिवर्तन तब दृष्टिगत होता है जब उस नई कविता का, जिसमे शैली सम्बन्धी नवीनतम प्रयोगो का आग्रह था, युगारम्भ होता है। ये कवि सिद्धान्त-रूप मे प्रयोग और परपरा के विरुद्ध प्रयोगो को अपना साध्य स्वीकार करते थे, अत: इनकी अलकार-योजना मे परपरा के विकास की अपेक्षा उन्मूलन का प्रयत्न अधिक हुआ। यद्यपि ये कवि केवल नई राहो के अन्वेषण का दावा करते थे, परन्तु इनका यह प्रयत्न ऐसी दिशा मे होता था जिसका सम्बन्ध पुरानी राह से कम से कम हो। यो परम्परा अपनी है, उसे सर्वथा छोडा भी नही जा सकता, ऐसा इनमे से अधिकाश कवियो ने स्वीकार किया है और बहुत-सी कविताएँ परम्परा-सिद्ध अलकार-योजना को अपनाकर लिखी भी गई है, परन्तु जहाँ ये कवि नवीनता के नारे को क्रियात्मक रूप देने का प्रयास करते है, वहाँ इनके प्रयत्न परम्परा-मुक्ति के स्थान पर परम्परा-विरोध के उदाहरण बन जाते है। इसका प्रमुख कारण है—जीवन के स्थायी मूल्यो को चिर गतिशील, गत्या मक सत्य मानकर, उनकी निश्चित परिभाषाओ मे परिवर्तन का प्रयत्न। इन कवियो ने सौन्दर्य के परम्परागत मूल्यो और मानदण्डो को स्वीकार नही करके उनकी अधिक वैज्ञानिक, यथार्थपरक, गूर्न और व्यावहारिक परिभाषा बनाने का प्रयत्न किया। सौन्दर्य की कसौटी और उसके प्रति दृष्टिकोण-परिवर्तन से इस कविता की अप्रस्तुत-योजना और बिम्ब-विधान प्रभावित हुआ। इन्होने परम्परागत उपमानो का सर्वथा नवीन अर्थ मे प्रयोग किया और परम्परा-विरुद्ध मौलिक अप्रस्तुत-योजना के द्वारा सौन्दर्य के चिर-प्रचलित मूल्यो मे विप्लव उत्पन्न कर दिया। जहाँ इनकी यह नूतन पद्धति तर्कसम्मत है वहाँ तो समझ मे आ जाती है,

परन्तु जहाँ केवल नवीनता के दुराग्रहवश अनर्गल प्रयोग किये गए है, जिनकी मौलिकता को तर्क से समझाया नही जा सकता, वहाँ वह कविता सौन्दर्य-बोध नही जगाती, क्षुब्ध करती है। जहाँ जीवन की अनगढता और कुरूपता को उसी प्रकार की अप्रस्तुत-योजना द्वारा व्यक्त किया जाय वहाँ प्रयोग के पीछे तर्क का पुष्ट आधार हो सकता है, परन्तु जहाँ जीवन के सौन्दर्य की, कुरूप और परुष के द्वारा यह कहकर समता की जाय कि कवि की दृष्टि मे वही सुन्दर है, अथवा सौन्दर्य के मानदण्ड परिवर्तित हो गए है, तो व्यवहार से असिद्ध इन नवीनताओ को स्वीकार कैसे किया जा सकता है? परन्तु ऐसा बहुत कम हो सका है। इस धारा के अनेक प्रमुख कवि प्रत्यावर्त्तन कर रहे है। उदार दृष्टि से स्वदेशी-विदेशी परपराओ का प्रभाव-ग्रहण कर विवेक से अपनी दिशा नियत कर रहे है। नवीनता का अनुसंधान अब भी जारी है। कला की दृष्टि से यह परिवर्तन अत्यन्त शुभ है।

नवीनता का आह्वान कर, अपनी रचनाओ को छायावाद के विरुद्ध अधिक व्यावहारिक, अधिक वैज्ञानिक और अधिक नयी सिद्ध करने के प्रयत्न मे, इन कवियो ने 'प्रयोग' का नारा लगाया, परन्तु यह अस्त्र इन्हे कुछ महँगा पड़ गया, क्योकि इस सिद्धान्त वाक्य के सहारे इनकी कविता का प्रचार तो हो गया, उसकी नवीनता ने विद्वानो का ध्यान तो आकर्षित कर लिया, परन्तु इस मोहर के नीचे खोटी धातु के कुछ ऐसे सिक्के चल निकले कि इस अतिवाद का विरोध करने के लिए इस आन्दोलन के प्रवर्तक कवियो को स्वय सन्नद्ध होना पड़ा। 'अज्ञेय' ने इस अतिवाद के विषय मे कहा—'नयी कविता मे कोई भी असफल कविता ले लीजिये, आप पायेगे कि उसकी असफलता का मूल यही है कि कवि ने प्रयोग को इष्ट मान लिया, जब कि काव्य केवल सफल प्रयोग का नाम है। कोई कितनी, या कितनी गहरी डुबकी लगाता है या डुबकी लगाकर मर भी जाता है, इसका मोती पारखी के लिए कोई मूल्य नही है, मूल्य मोती का है।'[1] यह अतिचार देखकर ये कवि फिर सस्कार और परम्परा-सम्बन्ध का दावा करने लगे है, वास्तव मे यह सच भी है। सर्वथा परम्परा-विरोधी प्रयोग इनमे कम है, बहुत कम, उँगलियो पर गिनाए जाने योग्य। इनकी अधिकाश कविता परम्परा का सहज विकास है जिसमे कवि ने पूर्व परम्परा से ही नही, अपने चारो ओर की, देश-विदेश की साहित्यिक परम्पराओ से उदारता-पूर्वक ग्रहण किया है और मौलिक दृष्टि से उसका सयोजन किया है।

(३) विदेशी काव्य से कुछ विशिष्ट अलकारो का ग्रहण और प्रयोग आधुनिक कविता की तीसरी विशेषता है। विदेशी काव्य से गृहीत अलकारो मे मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, और ध्वन्यार्थ व्यजना का प्रयोग ही विशेष रूप से किया गया। मुक्तको में भी इन अलकारों का प्रयोग उसी रूप मे हुआ जिस प्रकार प्रबन्धादि अन्य विधाओ मे। ये अलंकार भी छायावाद से लेकर अधुनातन काव्य तक बहुधा प्रयोग मे लाये गए। छायावाद मे विशेष रूप से इनका प्रयोग हुआ। निश्चय ही इन अलकारो के विधान से काव्य मे अभिव्यजना-सम्बन्धी सौन्दर्य और वक्रता उत्पन्न हो जाती है, परन्तु इनमे प्रयोग-सम्बन्धी कोई विशेष वैचित्र्य और नवीनता नही है, अन्तर केवल इतना ही है कि इनमे स्वदेशी नही विदेशी परम्परा का पालन है।

---

१. नये पत्ते—अक १, १९५३, नयी कविता (ध्वनि वार्ता) पृ० २३

जहाँ तक मौलिक अलंकृति का प्रश्न है, अलंकार-शास्त्र से पृथक् किसी नितान्त नवीन अलकार का विधान और उद्भावना तो नही की गई, परन्तु प्राचीन अलकारो का नए ढग से प्रयोग करने मे मौलिकता का परिचय इस कविता मे पग-पग पर मिलता है। इस प्रकार इस कविता की नवीनता किसी अभूतपूर्व नव्य सृजन में नही, प्राचीन के आधुनीकरण, पुनःसृजन और नव्य रूप-निर्माण में है। इन कवियों ने अविद्यमान की सृष्टि न करके विद्यमान का संशोधन और परिष्करण ही किया है। भाषा की अभिव्यंजनात्मक शक्ति मे वर्द्धन के लिए वातावरण के रूप-भाव के अनुकूल नए ढंग के अभिव्यंजनात्मक शब्दविन्यास-निर्माण का प्रयत्न गिरिजाकुमार माथुर ने किया है। वे पतला-नभ, सिमटी किरन, आदिम छाहें, घूमते-स्वर आदि अभिव्यजनात्मक शब्दों का प्रयोग भाषा में बहुधा करते हैं।

छन्द-विधान

छन्द-विधान की दृष्टि से आधुनिक कविता का स्वतन्त्र महत्त्व है। इस क्षेत्र में इस युग के सभी प्रमुख कवियों का व्यक्तिगत योगदान इतना महत्त्वपूर्ण रहा है कि सम्पूर्ण काव्य की छन्द-रचना तो क्या हर कवि की छन्द-योजना स्वतन्त्र अध्ययन का विषय हो सकती है। विस्तारपूर्वक प्रत्येक कवि अथवा काव्य-धारा के छन्द-विधान का विवेचन प्रस्तुत करना न सम्भव है और न प्रासगिक, अत हम सक्षेप मे इस युग की छन्द-प्रयोग सम्बन्धी प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेगे। एक बात इस प्रसग में स्पष्ट कर देनी अभीष्ट होगी। जितना वैविध्य और प्रयोग-वैचित्र्य छन्द के क्षेत्र मे इन निबद्ध मुक्तको मे उपलब्ध होता है, उतना न प्रबन्ध रचनाओ मे सम्भव हो सका और न मुक्तकों मे। प्रबन्ध मे प्रवाह-रक्षा की दृष्टि से छन्दों के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग कर, उन्हे प्रदर्शनी बनाना सम्भव व काम्य न था, और मुक्तक मे सीमित आकार के कारण विशेष मौलिक योजनाएँ इन कवियो ने प्रस्तुत नही की। सबसे अधिक अवकाश निबद्ध मुक्तको मे प्राप्त होने के कारण इसी विधा मे इनकी प्रतिभा खुलकर खेली है। अपने छन्द-प्रयोग मे इन कवियों ने परम्परा का पालन भी किया, उसमे परिवर्द्धन और परिवर्तन भी किया, उससे मुक्ति का प्रयास भी किया और अन्य स्वदेशी एव विदेशी भाषाओ की छन्द-रचना का प्रभाव भी ग्रहण किया, अत इनके छन्द-विधान को प्रयोग-भेद से निम्नाकित प्रकारों मे रखा जा सकता है

(१) शास्त्रीय छन्द-प्रयोग—आधुनिक कविता के निर्माताओं को जहाँ हिन्दी-इतर साहित्य से विविध छन्दाकारो को अपनाने और मौलिक छन्द-योजनाएँ प्रस्तुत करने का श्रेय दिया जा सकता है, उसी प्रकार हिन्दी के प्राचीन छन्द-प्रकारो के वैविध्यपूर्ण प्रयोग का श्रेय भी इसी युग के कवियों को प्राप्त है। द्विवेदी-युग के आरम्भ के साथ सबसे पहला परिवर्तन—दीर्घकाल से चले आते छन्दो का विरोध और अनेक विविधतापूर्ण छन्दों का प्रचलन था। ब्रज-भाषा की कविता मे छन्द-विधान कुछ विशेष छन्दो—दोहा, कवित्त, सवैया, रोला आदि तक सीमित हो गया था। इन सीमाओ के बाहर कवि बहुत कम पदार्पण करते थे। यद्यपि इस सकुचित क्षेत्र और दृष्टिकोण मे विस्तार का प्रयत्न भारतेन्दु-युग से ही आरम्भ हो गया था, परन्तु व्यापक रूप से इस दिशा मे सक्रिय आन्दोलन द्विवेदी-युग से ही आरम्भ हुआ और धारा-

प्रवाह रूप से अधुनातन कविता तक चला आया। इन छन्दो में केवल मात्रिक ही नही, सवैया के अतिरिक्त भी अनेक वर्णिक छन्दों का प्रयोग आरम्भ हो गया। इन छन्दों के विविध भेद प्रयोग मे लाये गए। सम, अर्धसम और विषम छन्दों के सभी प्रमुख प्रकारो और मिश्र छन्द का भी प्रयोग काव्य मे हुआ।

मात्रिक छन्दो का तो परम्परागत सान्त्यानुप्रास प्रयोग उनके प्रचलित रूप में हुआ ही है, वर्णिक छन्दो मे इन कवियो ने सस्कृत साहित्य की अतुकान्त और तुकान्त दोनों रचना-सरणियो को ग्रहण किया। परिमाण की दृष्टि से अधिक सख्या मात्रिक छन्दो की थी। ये छन्द हिन्दी भाषा की प्रकृति के अधिक अनुकूल होते है, और सरलता से सध जाते है। इनमे पूर्व-प्रचलित और अप्रचलित सब प्रकार के प्रयोग इन कवियो ने किये। दोहे जैसे प्रचलित छन्द से लेकर रास और शृगार-गोपी जैसे अप्रचलित छन्दो का प्रयोग भी इस युग की कविता में हुआ। नयी कविता का अधिकाश मुक्त छन्द मे लिखा गया। ठीक उसी प्रकार, जैसे अपभ्रंश से लेकर खडी बोली तक हर भाषा के छन्द विशिष्ट हो गए है, उसी प्रकार नयी कविता और मुक्त छन्द का गठबन्धन हो गया है, परन्तु मुक्त छन्द के कवियों पर भी परम्परा की मोहिनी अपना आकर्षण बनाए रही और नए प्रयोगो के साथ वे परम्परागत छन्दो को भी उनके आभिजात्य सौन्दर्य सहित ग्रहण करते रहे। 'अज्ञेय' ने इस आकर्षण को स्वय स्वीकार किया है :

"रोला और वीर तो हिन्दी के अतिपरिचित छन्द है, जिनसे कौन हिन्दी कवि बचा होगा, और गुप्तजी की कृपा से हरिगीतिका और गीतिका पर भी हाथ साफ करने का साहस हुआ। लेकिन कुछ सस्कृत छन्दों ने भी आकृष्ट किया। 'हरिऔध' की यशोदा का विलाप पढकर मैने मालिनी छन्द मे कई एक विलाप लिखे थे। मन्दाक्रान्ता तब इतना अच्छा नही लगा था जितना बाद मे लगने लगा, पर शिखरिणी पर मै मुग्ध था—विशेष···। लेकिन यह छन्द कभी मुझसे सधे नही, और पीछे बरवै के आकर्षण मे अपनी असफलता का दु ख भी भूल गया।"[1] अन्य कवियों ने भी पुराने छन्दो का प्रयोग किया। मुक्त छन्द के विकास का आधार तो अनेक कवियो ने परम्परागत छन्दो को ही बनाया है। 'अज्ञेय' के उपर्युक्त वक्तव्य से एक बात और स्पष्ट हो जाती है। प्राचीन छन्दो की साधना की कठिनाई भी इन कवियो की इस ओर से विरक्ति का कारण थी। इस प्रकार इनकी उपेक्षा ही नही, असमर्थता भी परम्परा-त्याग के लिए अशत. उत्तरदायी है। परन्तु यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि शास्त्र-विहित छन्दो का प्रयोग द्विवेदी-युग से अधुनातन कविता तक निरन्तर होता रहा। इस युग की कविता मे विशेषता यही है कि छन्दो का अपूर्व वैविध्य प्राप्त होता है। सस्कृत के विविध गणात्मक छन्दो का उदारतापूर्वक प्रयोग, जो दीर्घ काल से अप्राप्य था, इस युग मे पुन होने लगा। इस आन्दोलन का श्रेय द्विवेदीजी को ही दिया जा सकता है।

(२) शास्त्रीय छन्दो का नूतन प्रयोग इस युग के छन्द-विधान की दूसरी विशेषता है। आधुनिक कविता में अनेक शास्त्रीय छन्दो का, उनके अनिवार्य वर्ण तथा मात्रा सम्बन्धी नियमो की रक्षा करते हुए, किंचित् मौलिक ढग से प्रयोग किया गया। यह नवीनता इनकी छन्द-योजना

---

१. आत्मनेपद—अज्ञेय, पृष्ठ २३-२४

में अनेक रूपो मे प्राप्त होती है जो इस प्रकार है :

(क) चरण-संख्या मे वृद्धि—चार चरणो के उपरान्त (सम अथवा विषम) छन्द का अन्त सर्वदा अनिवार्य नही माना गया। अनेक कविताओ मे किसी विशेष छन्द के चरणो को अपनाकर उनका विन्यास षट्पदी, या अधिक पक्तियो में किया गया। इस प्रकार चरण के मात्रा और वर्ण-सम्बन्धी नियम की स्वीकृति की गयी चरण-सख्या की नही।

(ख) यति का स्वच्छन्दतापूर्वक प्रयोग आधुनिक युग की छन्द-रचना की दूसरी विशेषता है—जो निरपवाद रूप से द्विवेदी-युग की कविता से लेकर अधुनातन काव्य-रचनाओ मे पाई जाती है। इस युग मे शास्त्रीय छन्दो मे भी यति का प्रयोग पिगल-शास्त्र मे निर्दिष्ट नियमो के अनुसार निश्चित मात्राओ व वर्णों के उपरान्त नही किया गया, भाव-प्रवाह की गति का नियमन करने के लिए, यथावश्यकता मध्य या अन्त में कर लिया गया। कभी-कभी ये कवि पक्ति के अन्त मे भी विराम का प्रयोग नही करते और वाक्य का प्रवाह दूसरी पक्ति तक चलता रहता है। अत. यति आदि विरामचिह्नो का स्वच्छन्द प्रयोग और दूरान्तरप्रवाही वाक्य-रचना इन छन्दो की दूसरी विशेषता है। इस प्रवृत्ति का आरम्भ भी मुक्त छन्दो मे नही, परम्परागत छन्दाकारो मे ही हुआ और परम्परागत छन्दो मे प्रसाद और पन्त की कविताओ मे सर्वप्रथम यति-मुक्त अन्त प्रवेशी वाक्य-रचना का प्रयोग मिलता है, तदुपरान्त इस शैली का पालन निरन्तर होता रहा।

(ग) नवीन अन्त्यक्रम-योजनाएँ—इन पुराने छन्दो की एक अन्य नवीन विशेषता है। छन्द के चारो चरणो मे, अथवा विषम और सम चरणो मे अन्त्यानुप्रास का निर्वाह भी आवश्यक नही माना गया। लावनी और गजल का अन्त्यक्रम पहले ही प्रचलित हो चुका था, उसके अतिरिक्त अनेकानेक नवीन अन्त्यक्रम-योजनाओ का इन कवियों ने निर्वाह किया। इन नव विकर्षाधारो का इतना सफल और वैविध्यपूर्ण प्रयोग हिन्दी-काव्य मे इससे पूर्व नही हुआ था। प्रगीत-रचना मे यह शैली विशेष अनुकूल सिद्ध हुई, वास्तव मे इन प्रयोगो का विकास ही नए ढग के प्रगीत और गीत लिखने के कारण हुआ।

(घ) सम छन्दो का विषम रूप मे प्रयोग भी पर्याप्त हुआ। इस नवीनता का कारण अशत: मुद्रण मे सुविधा और सौन्दर्यवर्द्धन का प्रयत्न था। अनेक बड़े छन्द—ताटक, वीर, गीतिका आदि यति-स्थान से विभाजित होकर विषम रूप मे मुद्रित किये गए। ऐसे मे छन्द के पहले और तीसरे चरण के उत्तर भाग से इन विषम छन्दो के दूसरे और चौथे चरण का निर्माण होता है। इस प्रकार एक सम छन्द के दो चरण विषम के चार चरणो मे परिणत हो जाते है। यह प्रयत्न या तो छोटी पक्तियो मे प्रगीत-रचना के लिए किया गया, या मुद्रण की सुविधा और सौन्दर्य की सिद्धि के लिए। इस प्रवृत्ति का आरम्भ भी 'शकर', प्रसाद, गुप्त आदि की कविताओं में मिलता है।

(ङ) भिन्न तुकान्त रचना—इन छन्दो की अन्तिम और महत्त्वपूर्ण विशेषता है। यद्यपि ऐसा एकाध प्रयोग भारतेन्दु-युग की रचनाओ मे, और श्रीधर पाठक की कविताओ मे हो चुका था, परन्तु शास्त्र-विहित मात्रिक और वर्णिक छन्दो की तुक से मुक्ति का व्यापक आन्दोलन द्विवेदीजी और उनके युग के कवियों से आरम्भ होता है। द्विवेदीजी निरन्तर कवि-वर्ग को

अतुकान्त छन्द-रचना की प्रेरणा देते रहे और स्वयं भी प्रयोग करते रहे। वर्णिक छन्दो की अतुकान्त रचना कोई नई बात नही। सस्कृत मे गणात्मक वृत्तो का प्रयोग इसी रूप मे होता रहा था, परन्तु यह परम्परा काल के गर्त मे लुप्त हो चुकी थी और हिन्दी-काव्य के लिए अपरिचित थी, अत: कम-से-कम इसके पुनरुद्धार का श्रेय इस काल के कवियो को अवश्य दिया जायगा। मात्रिक छन्दो की तुक के बन्धन से मुक्ति का प्रयास पन्त और प्रसाद आदि की लेखनी से हुआ और इसके उपरान्त इनके द्वारा प्रवर्तित इस रचना-विधि का पालन निरन्तर होता रहा।

(३) नवीन मिश्र छन्दों का निर्माण—पिंगल-शास्त्र मे कुछ मात्रिक मिश्र छन्दो—छप्पय, कुण्डलिया आदि का तो विधान किया ही गया है और इन छन्दों का प्रयोग भी पर्याप्त होता रहा है परन्तु आधुनिक कविता मे भिन्न-भिन्न मात्रिक छन्दो के योग से अनेक मिश्र छन्दाकार बनाये गए। इनके लिए मात्रिक छन्दो का ही प्रयोग किया गया। कुछ छन्द कवियों की मौलिक प्रतिभा से निर्मित हुए व अन्य के लिए शास्त्रीय छन्दो की पक्तियो के मिश्रण से एकाई बनाकर सम्पूर्ण कविता में उसकी आवृत्ति की गई। मिश्र छन्दो के अनेक नूतन और सफल प्रयोग नाथूराम शर्मा 'शकर' ने द्विवेदी-युग मे किये। उनकी इस प्रकार की छन्द-योजनाएँ सरल और स्पष्ट हुआ करती थी। प्राय वे दो मात्रिक छन्द लेकर उनकी पंक्तियाँ एक विशष क्रम से मिलाकर मिश्र छन्द की एक एकाई का निर्माण कर लिया करते थे। बाद मे प्रगीत की लोकप्रियता के साथ मिश्र छन्दो के अनेकानेक कलात्मक, वैचित्र्य और सुरुचिपूर्ण आकार प्रचलित हुए। दो से अधिक छन्दों की जटिल योजनाओ के साथ मुक्त और शास्त्रीय छन्दो के कठिन और जटिलतर रचना-विधान का भी प्रचलन हुआ। सभी कवियो ने अपने-अपने ढग से, अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर इस प्रकार के प्रयोग किये, और इनमे सभी नही परन्तु अधिकांश सफल हुए, क्योकि ये मिश्रण प्राय: विषय और शैली की आवश्यकता को दृष्टि मे रखते हुए ही किये जाते हैं। इस प्रपच से किसी काव्यधारा व वाद का कोई कवि नही बचा और यह परम्परा द्विवेदी-युग से आधुनिकतम कवियो तक यथावत् चली आई। प्रेष्य भाव की लय के अनुसार उसके मूल स्वरूप और उत्थान-पतन की व्यजना के लिए परम्परासिद्ध छन्दों का अनुसन्धान करने के स्थान पर, अपने हाथो अपनी आवश्यकतानुसार छन्दो का मिश्रण और प्रयोग, हिन्दी-काव्य को इस युग के कवियों का बहुत स्तुत्य योगदान है। इन मिश्र छन्दो मे कभी शास्त्रीय छन्दो का आधार ग्रहण किया गया, कभी नितान्त मौलिक छन्द रचना की गयी और कही कुछ शास्त्र-विहित छन्दों की पक्तियों के साथ मौलिक छन्द मिलाकर छन्द-निर्माण किया गया। हर दृष्टि से इन प्रयासो मे नवीनता और वैचित्र्य प्राप्त होता है।

(४) अन्य स्वदेशी-विदेशी भाषा-साहित्य से छन्दो का ग्रहण—हिन्दी की आधुनिक छन्द-योजना पर अन्य भाषाओ मे सर्वाधिक प्रभाव उर्दू के छन्द-विधान का है। उर्दू की बहर का प्रयोग रीतिकाल में घनानन्द के काव्य से आरम्भ हो जाता है। तदुपरान्त आधुनिक काल के आरम्भिक काव्य में भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र द्वारा भी इस लय का प्रयोग किया गया है। बहर उर्दू के किसी छन्द-विशेष का नाम नही। उन खास अल्फाज को बहर कहा जाता है जिन पर शेर का वजन तोला और जाँचा जाता है। यह खास वजन जिन टुकड़ो से बनता है उसे अरकान और हर टुकडे को रुक्न कहा जाता है। उर्दू मे इन रुक्नो के नाम हैं और उनसे जो

अरकान या लय बनती है वह बहर का आधार होती है। भिन्न-भिन्न रुक्नो पर आधृत बहरे भी भिन्न-भिन्न हो जाती है। अत: बहर खास लय या अल्फाजो के वजन के आधार पर निर्मित छन्द का नाम है। इसलिए जब कहा जाता है कि उर्दू की बहर का प्रयोग हिन्दी-कविता मे हुआ, तो अभिप्राय होता है कि छन्द का आधार मात्राएं और गण न रहकर, शब्दो के उच्चारण-सम्बन्धी एक खास वजन और लय हो गया है। उर्दू की बहर का अनेक रूपो मे प्रयोग ला० भगवानदीन, 'हरिऔध', 'त्रिशूल' आदि कवियो ने किया। छायावाद के कवियो मे इस लय का सर्वाधिक प्रयोग 'निराला' के काव्य मे—उनके गीतो और गजलो मे मिलता है। नई कविता पर सर्वाधिक प्रभाव 'निराला' की कविता का रहा। जिस प्रकार मुक्त छन्द की परम्परा को इन कवियो ने 'निराला' के आदर्श पर आगे बढाया, उसी प्रकार उन्होने जिस उदारता से स्वच्छन्दतापूर्वक अनेक प्रकार की उर्दू बहर का प्रयोग किया था, नए कवियों ने भी बहर का लयाधार अपने अनेक छन्दो मे ग्रहण किया और कर रहे है।

अन्य छन्दो मे बगला के पयार और अँगरेजी के सॉनेट का उल्लेख बहुधा विद्वानो द्वारा किया गया है। पयार छन्द का आधार जिस प्रकार वर्ण-गणना है, उसी प्रकार हिन्दी के मुक्तक वृत्तो घनाक्षरी आदि का आधार भी वर्ण-सख्या है, अत पयार छन्द का तो कही-कही सफल प्रयोग हिन्दी-काव्य मे हुआ, परन्तु सॉनेट अपने-आपमे कोई छन्द नही, एकाधिक छन्दों का अन्त्यानुप्रास के निश्चित क्रम के अनुसार निबन्धन है। हिन्दी-कविता मे अँगरेजी के सॉनेट मे प्रयुक्त विविध छन्दों का तो क्या, उसके अन्त्यक्रम का भी यथावत् पालन नही हुआ है। प्राय: हिन्दी के किन्ही छन्दो मे रचित चौदह पक्तियो की कविता को सॉनेट कह दिया जाता है। सॉनेट, अत: छन्द का प्रकार नही मुक्तक की विशेष रचना-विधा है जिसमे हिन्दी के कवियो ने अपनी रुचि और सुविधानुसार हिन्दी के परम्परागत अथवा स्वनिर्मित छन्दो का प्रयोग किया है।

साहित्यिक छन्दो के अतिरिक्त लोक-गीतो की विभिन्न छन्द-लयो का प्रयोग भी साहित्यिक रचनाओं मे किया गया। माधव शुक्ल, श्रीधर पाठक आदि ने द्विवेदी-युग मे ग्राम्य गीतो से ये छन्दाकार ग्रहण किये और उनके उपरान्त कजली, बिरहा, आल्हा आदि तथा अन्य लोक-गीतो की लय के साथ ये छन्दाकार भी नियमित रूप से काव्य-रचना मे प्रयुक्त होते रहे। महादेवी वर्मा, 'निराला', नरेन्द्र और नए कवियो में प्राय: सभी ने ग्राम-गीतो की लय और छन्द-रचना का प्रयोग अपनी कविताओ मे किया है। महादेवी के प्रयोग अधिक सहज हैं। 'निराला' के गीतों में सर्वत्र इन छन्दों के प्रयोग में सफलता नही मिली। इधर नए खेवे के कवि ग्राम-गीतों की लय का अपने छन्दो मे विशेष रूप से प्रयोग कर रहे है। इस प्रभाव को उन्होने स्वयं स्वीकार किया है—"एक विशिष्टता है लोक-गीतो और लोक-प्रचलित धुनो की ओर झुकाव। यह उसकी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। कारण चाहे राजनीति का जनवाद हो, चाहे अधिक आसान या अधिक गहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले रूपाकारो की खोज। जहाँ ये प्रयोग सफल हुए है, वहाँ बडी ही प्यारी चीजें लिखी गई हैं। और ऐसे प्रयोग किये हैं बहुत से कवियो ने, केदार और नागार्जुन जैसे शुद्ध जनवादियो ने, गिरिजाकुमार जैसे सगीत-खोजियो ने, नरेश कुमार जैसे उभय-पन्थियो ने और अज्ञेय जैसे संस्कारियो ने।"[1]

१. नये पत्ते—जनवरी-फरवरी अंक १९५३, नई कविता—अज्ञेय, पृ० ८८

(५) स्वच्छन्द छन्द-निर्माण—छायावाद के उन्मेष और अभिव्यंजना-कला के अन्य अंगों मे स्वच्छन्दता के साथ, छन्द-विधान मे भी इन कवियो ने स्वच्छन्दता का परिचय दिया। भाव के सहज सगीत पर विशेष बल देने के कारण तदनुकूल बाह्यावरण के निर्माण की आवश्यकता भी इन्हे प्रतीत हुई। अत. पन्त और 'निराला' ने पदो मे मात्रा-सख्या सम्बन्धी अनेक परिवर्तन किये। कभी-कभी तो भाव-लय मे परिवर्तन के साथ छन्द की प्रति एक या दो पक्ति के उपरान्त मात्रा-सख्या मे परिवर्तन मिलता है। कभी यह परिवर्तन अपेक्षाकृत मन्थर गति से होता है, परन्तु इस सम्बन्ध मे किसी निश्चित नियम का आधार नही लिया जाता। एक-एक पद्य मे कही-कही अनेक छन्दो की पक्तियों का मिश्रण रहता है परन्तु ये परिवर्तन तर्कहीन पद्धति और मनमाने ढग से केवल रचनागत वैचित्र्य के लिए नही किये जाते। वर्तमान जीवन मे मध्ययुग की अपेक्षा कही अधिक गतिशीलता उत्पन्न हो गई है। जीवन के साथ मनुष्य की भावनाएँ भी अधिक गत्यात्मक और नानारूपिणी हो गई है। भावनाओं की तीव्र गति, उत्थान-पतन, गम्भीरता, विभिन्न भावावेगों के समय, अनुपात आदि को ध्यान मे रखते हुए ही इन छन्दो मे यह निश्चय किया जाता है कि कहाँ, कब और किस रूप मे मात्रा-परिवर्तन और विरामादि का उपयोग किया जाय। किसी विशेष भाव की गम्भीरता या चपलता को व्यजित करने के लिए प्राय: छन्द की पक्तियो को छोटा-बडा कर दिया जाता है। आज की अनेकरूपिणी भावनिधि की व्यजना के लिए छन्द-निर्माण के क्षेत्र मे यह मौलिक परिवर्तन आवश्यक ही था। पन्त ने स्वयं 'पल्लव' की भूमिका में इस बात को स्पष्ट किया है कि उन्होने भावो की तीव्रता या असमानता या गति को प्रकट करने के लिए, छन्दो की पक्तियो की मात्राओ मे कमी या वृद्धि की है। इस प्रकार के अनेक भावप्रेरित नवीन छन्दों की उद्‌भावना 'निराला' और अन्य सभी कवियो ने की।

गीतो मे नवीन सगीत-लयों के विधान के लिए भी इस प्रकार की मिश्र छन्द-योजना अनिवार्य थी। प्रेष्य भावना के अनुकूल छन्द में एक विशेष लय की सृष्टि के लिए, कवि छन्द मे छोटी-बडी पक्तियो का प्रयोग करते रहे। इन गीतो मे भी लय का विधान पुरानी पद-शैली के समान निश्चित बन्धनो व नियमो के अनुसार नही किया गया। कवि अपनी भावना और रुचि के अनुकूल वैचित्र्यपूर्ण लय का विधान करने के लिए, विविध पंक्तियो से गीत की एक कड़ी का निर्माण करता है। 'बच्चन' ने इस प्रकार की अनेक सुघर और सुगठित छन्द-योजनाएँ प्रस्तुत की। महादेवी और रामकुमार वर्मा के गीतो की छन्द-योजना अपेक्षाकृत सरल, गति सम और मात्राओ, तुक आदि के निश्चित क्रम मे बँधी रहती है।

स्वच्छन्द छन्द का दूसरा रूप मुक्त छन्द के विकास और प्रयोग मे मिलता है। मुक्त छन्द के रूप-निर्माण मे कवि छन्द के प्रतिष्ठित नियमों के विरुद्ध विद्रोह करता हुआ, अपने भावों की स्वच्छन्द व्यजना के लिए उनकी अन्त प्रेरित लय के अनुरूप, छन्द का विधान करता है। मन में उठने वाले भावों की एक अपनी लय होती है। वे जिस गति से, जिस अनुपात में और जिस क्रम से मन मे उठते-गिरते है उसे व्यजित करने के लिए, भाव-लय को रूपान्तरित करने के लिए, कवि छन्द-लय का तदनुकूल निर्माण करता है। इसके लिए उसे छन्दो के पूर्व प्रतिष्ठित ढाँचो मे प्राय: परिवर्तन करने पड़ते है। इसी प्रवृत्ति के आधार पर हिन्दी में मुक्त छन्द का

विकास हुआ है। इन मुक्त छन्दो का आधार शास्त्रीय नही होता। इनका आधार होता है कवि की भावनाओ की तीव्रता, मनोवेग और आवेश। इस छन्द का आधुनिक युग मे प्रयोग और प्रचार 'निराला' के काव्य से हुआ। 'निराला' से पूर्व श्रीधर पाठक इस छन्द का प्रयोग कर चुके थे परन्तु सफल विकास नही। 'निराला' के छन्दो मे उनकी भाव लय का प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म गति-परिवर्तन लक्षित किया जा सकता है। इस छन्द का अनुकरण 'निराला' के उपरान्त अबाध गति से हुआ, परन्तु सर्वत्र सफल नही। मुक्त छन्द-रचना नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के वरदान द्वारा ही सम्भव है, अत. इस छन्द का आश्रय अन्य शास्त्रीय छन्दो की साधना मे असफल होने की स्थिति मे नही लिया जा सकता। वस्तुत: मुक्त छन्द के प्रयोग मे कवि के सामने अनेक कठिनाइयाँ आती है। शास्त्रीय छन्दों मे छन्द को नियमो के आधार पर नाप-तौलकर उसकी सफलता-असफलता का निर्णय किया जा सकता है, परन्तु मुक्त छन्द का आधार कवि की अपनी भावनाओ की गतिचर्या की विवेकसयत पकड और तदनुकूल छन्द-निर्माण की क्षमता होती है। इस दिशा मे जरा-सा भी असयत, असतुलित प्रयोग इस छन्द को विकृत बना सकता है। मुक्त छन्द मे सार्वजनीनता नही होती, क्योकि उसका आधार जो भाव-लय होती है वह व्यक्ति-व्यक्ति की संवेदना और सस्कार के अनुसार भिन्न हो सकती है, अतः इसकी प्रेषणीयता मे प्राय बाधाएँ उपस्थित होती है। इसी कारण आरम्भ मे जब मुक्त छन्द का प्रचार हुआ तो नियत छन्दाकारो मे बँधी कविता के अभ्यस्त कानो ने इसका स्वागत नही किया, और अनेक रूपों मे इनका विरोध हुआ। परन्तु तीव्र विरोध के बीच भी मुक्त छन्द-रचना के सफल-असफल प्रयोग होते रहे और प्रगतिवाद, प्रयोगवाद की कविता मे यह छन्द-शीर्ष स्थान पा गया।

कुछ मुक्त छन्दों का विकास हिन्दी के परम्परागत मुक्तक छन्द घनाक्षरी की लय पर किया गया। 'निराला' के मुक्त छन्द-निर्माण के विषय मे भी यह धारणा व्यक्त की जाती है, परन्तु कवि का अपना कथन इस मत की पुष्टि नहीं करता। वे कवित्त या घनाक्षरी की लय का समावेश अपने छन्दो मे आकस्मिक और संयोगजन्य मानते है प्रयत्न-साध्य नही। इस छन्द के विषय मे इसके आविष्कारक की धारणा है—"मुक्त-छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमि मे रहकर भी मुक्त है। इस पुस्तक के तीसरे खण्ड मे जितनी कविताएँ हैं, सब इस प्रकार की है। उनमे नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त-छन्द का सा जान पडता है। कही-कही आठ अक्षर आप ही आप आ जाते है। मुक्त-छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।" परन्तु इसी प्रसग मे कुछ आगे चलकर उन्होने सकेत किया है कि "मुक्त-काव्य कवित्त-छन्द की बुनियाद पर सफल हो सकता है।"[1] इसी से सकेत ग्रहण कर बाद मे अनेक कवियो ने घनाक्षरी के आधार पर मुक्त-छन्द का विकास किया, और कुछ छन्द मात्रिक लय के आधार पर विकसित किये गए। इस दिशा मे कुछ अत्यन्त सगीतमय नए मुक्त छन्दो का विधान गिरिजाकुमार माथुर ने किया है। उन्होने यह प्रयत्न विवेकपूर्वक और सायास किया है और अपनी छन्द-रचना-विधि का सम्यक् परिचय 'तार-सप्तक' के वक्तव्य में दिया है—"मुक्त-छन्द का मैंने सम्पूर्ण विधान रचा है। मुक्त-छन्द को दो भागो मे विभक्त

---

१. परिमल—निराला, भूमिका, पृष्ठ १६

किया है, वर्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपान्तर।'' सवैये के विरामों पर स्थित एक नए प्रकार का बहुत सगीतमय मुक्त छन्द लिखा है (आज हैं केसर रग रंगे)। एक कविता मे एक ही प्रकार का मुक्त-छन्द प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हूँ।"[1] इसके आगे भी लेखक ने मुक्त छन्द के अशुद्ध-शुद्ध प्रयोग के विषय मे बहुत कुछ कहा और कवित्त के आधार पर निर्मित मुक्त छन्द की अत्यन्त सूक्ष्म विशेषताओं का परिचय देने का प्रयत्न भी किया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि स्वय मुक्त-छन्द के लिए पुन: एक बन्धन का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील है। इसके अतिरिक्त उस सब सैद्धान्तिक प्रपच का, अपने प्रयोगो में वे अक्षरश: पालन कर सके है, इसमें सन्देह है। हाँ इतना तो सत्य ही है कि उन्होने सवैये की लय पर निर्मित एक नया संगीतमय मुक्त छन्द हिन्दी-कविता को दिया।

मुक्त-छन्द का सामान्यत: विवेकसंयत और सफल प्रयोग बहुत कम कवियों द्वारा संभव हो सका है। शास्त्रीय छन्दों से विरक्ति दिखाना आज की कविता का फैशन हो गया है, अत: वस्त्राभूषणो की भाँति कविता को भी इस बाह्यावरण में बरबस ढकेल दिया जाता है। ऐसा दो ही स्थितियो मे होता है—या तो जब प्राचीन छन्द साधे नहीं सधते अथवा नवीनता के आग्रह से उन्हें साधने का प्रयत्न नही किया जाता। परिणामत: समर्थ-असमर्थ सभी कवि इस दिशा मे लेखनी चला देते हैं। मुक्त-छन्द के नाम पर कविता के छन्द-क्षेत्र में इतनी अव्यवस्था व्याप्त है कि स्वय इसके प्रचारको को इस विषय मे शका उत्पन्न हो गई है—"नई कविता पर नजर जाते ही छन्दो की भीड़ दिखाई पड़ती है जिनमे से अनेक छन्द अपनी विचित्र आकृतियो के कारण अपाहिज से लगते है। यति, गति, मात्रा का अनियम मन को आक्रान्त कर लेते है।[2]

ऐसी अनेक कविताएँ उदाहरणस्वरूप उद्धृत की जा सकती हैं, जिनमें आवश्यकता न होने पर भी पंक्तियाँ तोड़कर छोटी-बड़ी कर दी जाती हैं, अथवा गद्यवत् कविता को ऊपर-नीचे छोटी-बडी पक्तियो मे सजा दिया जाता है, जिससे उसके कविता होने की भ्रान्ति बढ़ती रहे, अन्यथा मुक्त-छन्द के भावप्रेरित प्रवाह और आवेग के नाम पर अपाहज आकृति और गद्य की जड़-गति के अतिरिक्त उसमे कुछ नही होता। आशा है केवल उन गम्भीरचेता सस्कारी कवियों से जो पर्याप्त समय तक शास्त्रीय छन्दों की साधना के अभ्यासी रहकर भी भाव की प्रेरणा और आवश्यकता के कारण इस दिशा मे मुड़ रहे है, अथवा उन तरुण कवियों से जिन्हें इन प्रयोगों में आस्था के साथ प्रतिभा का वरदान और विवेक का सयम प्राप्त है।

---

१. तारसप्तक—गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ ४१

२. नये पत्ते—अंक ४ मार्च—नई कविता में रूप-विधान और वस्तु-तत्त्व--भारतभूषण अग्रवाल, पृष्ठ २२

उपसंहार

उपसंहार

बीसवी शती के हिन्दी-काव्य का महत्त्व द्विविध है—साहित्यिक और ऐतिहासिक। काव्यत्व की दृष्टि से इस युग की कविता मे जो उत्कर्ष, सतत नवीनता और बहुविध प्रगति और विकास मिलता है वह इसके सभी तत्त्वो मे वर्तमान है—रूप-विधाओ मे भी। प्रत्येक परिवर्तन, प्रवर्त्तन, और आन्दोलन के मूल मे कोई प्रवृत्ति सूत्र-रूप मे वर्तमान रहती है। यदि इस दृष्टि से इस युग की कविता मे रूप-विधा-निर्माण के मूल सूत्र की ओर इगित किया जाय तो उसे सतत परिवर्तन का उद्योग कहा जा सकता है। यही प्रवृत्ति कविता के मूल मे इस शती के आरम्भ से क्रियाशील है और इसी के सुपरिणाम-स्वरूप हिन्दी-काव्य मे रूप-विधाओ की दृष्टि से पुरानी परम्पराओ का बहुविध विकास, नवीन प्रभावो का ग्रहण व मौलिक सृजन उन्मुक्त रूप से होता रहा है। हर विधा मे यह प्रयोग और परिवर्तन इतनी त्वरा से सम्पन्न हो रहा है कि परम्परागत शास्त्रीय परिभाषाएँ इनके लिए निरर्थक, और नवीन लक्षण-निर्माण का प्रयत्न व्यर्थ प्रतीत होता है। रूढि और प्रगति की स्थिति सापेक्ष होती है। जब एक दिशा मे निरन्तर प्रयोग और पालन से कोई रीति, रूढ़ि का रूप धारण कर लेती है, तब प्रायः उसके उन्मूलन का प्रयत्न और नवीन राहों का अन्वेषण होता है। किसी रचना-पद्धति को रूढ घोषित करने के लिए समय के तत्त्व की अपेक्षा है, परन्तु इस युग के काव्य मे रूप-विधा सम्बन्धी परिवर्तन और प्रयोग एक ओर प्राचीन रचना-विधि, बेजान आकारो और रूढ लक्षणो के विरुद्ध होत रहे है, दूसरी ओर अपने समकालीन, अथवा कुछ समय या एक पीढी पूर्व की कविताओ के विरुद्ध ये कवि विद्रोह और प्रतिक्रिया को जन्म देते है। अनेक कवियो की परवर्ती रचनाओ मे अपनी ही आरम्भिक रचनाओ के विरुद्ध प्रतिक्रिया देखी जा सकती है।

आधुनिक कविता मे रूप-विधाओ के क्षेत्र मे पहला परिवर्तन परम्परा के त्याग से सम्बन्धित है। यों परम्परा अपनी होती है, अतः संस्कारो मे इस प्रकार बस जाया करती है कि कभी-कभी प्रयत्न करने पर भी छुडाये नही छूटती। इसी कारण कुछ रूप-विधाओ मे लक्षणों की परम्परा चेतन या अवचेतन मे वर्तमान रहने के कारण सामर्थ्य और काव्य-विषय अनुकूल न होने पर भी विशेष विधाओ का प्रयोग करने का प्रयास किया गया है, और कभी-कभी किसी काव्य-रूप की व्यवहार में कमी देखकर कटिबद्ध हो उस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है—परन्तु ऐसा बहुत कम हुआ है और प्रायः महाकाव्यो की रचना-लालसा से ये उपक्रम किये गए। मुक्तक और निबद्ध विधाओ मे ये दुस्साध्य प्रयत्न नही हुए। इस प्रकार के महाकाव्यो मे रूप- विधा से सम्बन्धित बाह्य रूढियो का निर्वाह ही मिलता है, महाकाव्यत्व नहीं। दूसरी ओर कुछ रचनाएँ इस प्रकार की हैं जिनमे रूप-विधा सम्बन्धी बाह्य और गौण लक्षणों के निर्वाह के

अतिरिक्त प्रायः सभी विशेषताएं महाकाव्योचित है। ऐसी स्थिति मे प्राचीन लक्षण-निरूपण का निकष व्यर्थ सिद्ध हो चुका है, और नवीन लक्षण-निर्माण के महत् प्रयास की पूर्ति से पूर्व ही उसे व्यर्थ सिद्ध करने वाले नवीन प्रयोगो का आविर्भाव असम्भव नही। अतः इस दिशा मे प्रयत्न लक्षणों में बाँधने का नही उनसे मुक्ति का होना चाहिये। विभिन्न रूप-विधाओ के सर्वथा अनिवार्य प्रमुख लक्षणों की स्वीकृति कर शेष को कवि की मौलिक प्रतिभा के ऊपर छोडकर यदि उन्हें उस प्रयोग-विशेष की विशिष्टताएँ स्वीकार कर लिया जाय तो काव्यरूपों के निर्णय से सम्बद्ध विवाद और मतभेद बहुत दूर तक समाप्त हो सकता है। कम-से-कम ऐसी विधाओ के विषय मे तो यह किया ही जा सकता है जिनका सम्बन्ध परम्परा से है। परम्परा से सम्बद्ध विधाओं—महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि के सम्बन्ध मे निर्णय और मूल्यांकन का आधार उपर्युक्त दृष्टिकोण ही रहा है। साथ ही इनकी नूतन विशेषताओ और अन्य प्रभावों की व्याख्या करने का प्रयत्न भी किया गया है। इन सभी प्रयोगो का पर्यवेक्षण किसी एक सामान्य लक्षण-तालिका को दृष्टि मे रखते हुए असम्भव था। इनमे परम्परा से मुक्ति ही नही, परस्पर इतना अन्तर है कि एक ही प्रकार की अनेक रचनाओं का वर्ग-विभाजन सम्भव नही हो सकता, फिर भी कुछ समान प्रवृत्तियो को दृष्टि मे रखते हुए इनमे समानताओ और विषमताओ के निर्देश का यथा-संभव प्रयत्न किया गया है।

बाह्य शिल्प के अतिरिक्त, शैली और विषय-निरूपण की दृष्टि से इन प्रबन्धो मे बहु-रूपता और नवीनता मिलती है। मुख्य रूप से वस्तु-जगत् के साथ आत्म-जगत्, मूर्त के साथ अमूर्त को अपनाने मे, तथा समाख्यान के साथ नाट्य, गीति आदि शैलियो के प्रयोग मे सभी प्रमुख कृतियो की कुछ मौलिकताएँ हैं। ऐसी विशेषताएँ है जो शास्त्र-निर्मित ढाँचो मे फिट नही होतीं। इसलिए पुराने फ्रेमो को त्यागने की, अथवा उनकी धातु बदलने की आवश्यकता है, उनकी रक्षा के लिए नवीन प्रयोगों का तिरस्कार नहीं किया जा सकता।

महाकाव्य और खण्डकाव्य के चिरप्रचलित रूपों मे परिवर्तन के अतिरिक्त अनेक ऐसे अन्य काव्य-रूप है, जिन्हे इन दोनो प्रकारो के अन्तर्गत समाहित नही किया जा सकता, परन्तु मूलतः ये रचनाएँ प्रबन्ध ही हैं। इनमे से कुछ की परम्पराएँ पुरानी है, परन्तु दीर्घकाल से अव्यवहृत रहने के कारण अख्यात हो गई है—यथा पर्यायबन्ध। कुछ अपेक्षाकृत नवीन है, कम-से-कम इन विधाओं का वर्तमान रूप परम्परा से भिन्न है—इनमे आख्यानक गीतियाँ और लघु पद्य कथाएं आती हैं। इनका प्रयोग अन्य विधाओ की तुलना में कम हुआ है। इन विधाओं के लिए बन्धाबन्ध जैसे किसी मध्यवर्ती नाम की उद्भावना न करके इनका विवेचन प्रबन्ध रूपों के अन्तर्गत ही पृथक् अध्याय मे किया गया है, इसलिए, कि किसी मध्यवर्तिनी विधा की स्थिति कम-से-कम रूप-विधान की दृष्टि से असम्भव है। कोई रचना, रूप की दृष्टि से प्रबन्ध या मुक्तक मे से एक हो सकती है तथा आकार, शैली, विषय-निरूपण आदि की दृष्टि से उसके अनेक भेद किये जा सकते हैं। बन्ध की दृष्टि से इन दोनों के बाहर कोई तीसरी स्थिति सम्भव नहीं हो सकती, इसी कारण समग्र प्रबन्ध को दो खण्डो मे, और उनको पृथक् अध्यायो मे विभाजित किया गया है।

कुछ ऐसे प्रयोगो का, जो शैली की दृष्टि से नवीन है, तथा जिनका काव्य-रूप विवाद

का विषय रहा है, उनकी मूल विशेषताओं के आधार पर विधा-निर्णय का प्रयत्न किया गया है। 'कुरुक्षेत्र', 'यशोधरा' और 'विष्णुप्रिया' को अतः खण्डकाव्य के क्षेत्र मे नए प्रयोग स्वीकार किया है तथा 'उन्मुक्त' को गीति नाट्यो मे नवीन सृष्टि। इसी प्रकार 'तुलसीदास', 'नहुष' आदि खण्डकाव्य की दिशा मे कुछ ऐसे अभूतपूर्व प्रयत्न है, जिनकी विधा की नीव प्राचीन और रूप-निर्माण नव्य है। प्रयत्न किया गया है कि इनकी मूलतः प्राचीन, और प्रयोग सम्बन्धी नवीन विशेषताओ का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया जाय।

कुछ काव्य-रूप ऐसे है जिनकी न नीव पुरानी है न भवन। ऐसी विधाओ के लिए नवीन चेतना, विदेशी साहित्य से सम्पर्क और कवियो की नवोन्मेषिनी प्रतिभाएँ उत्तरदायी हैं। इन सबका सुपरिणाम है अनेक नवीन विधाओ का उद्भास। सभी प्राचीन और नवीन विधाओं मे नाट्य और गीति शैलियो का प्रयोग और प्रभाव प्रचुर है। कुछ ऐसी विधाओ का सृजन भी इस युग के काव्य मे हुआ, जिनमे इन उभय शैलियो का प्रभाव नही, योग परिलक्षित होता है। इनके साथ वर्तमान वैज्ञानिक युग की चिर प्रगतिशील बौद्धिक प्रवृत्तियो ने भी इन विधाओ को प्रभावित किया है। अतः ऐसी रचनाओं का एक समुदाय आधुनिक काव्य मे उपलब्ध है जिन्हे गीति-नाट्य, पद्य-नाट्य तथा काव्य-रूपक आदि नामो से पुकारा जाता है। गीति-नाट्य शब्द उन सभी नाट्य विधाओ के लिए प्रयोग मे प्रचलित हो गया है जिनका माध्यम पद्य और विधि नाटकीय है, परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वे सभी 'गीति' और 'नाट्य' नही। इसलिए इन रचनाओ को हमने काव्य-रूपक कहा है—काव्य इनमे पद्यात्मकता का बोधक है और रूपक नाट्य-तत्त्व की स्थिति का, परन्तु इनमे ऐसी रचनाएं गिनी-चुनी है जिन्हे गीति-नाट्य कहा जा सके। इनमे परस्पर भी शिल्प के आधार पर पर्याप्त अन्तर है। अतः इस पारस्परिक सूक्ष्म अन्तर के आधार पर बाह्य स्थूल समानताओं का निषेध करते हुए इनका रूप-विवेचन प्रस्तुत किया गया है। घटना, भावना और विचार की अपेक्षाकृत महत्ता के कारण इन रचनाओ के अनेक रूप हो गए है। 'तारा' और 'सौवर्ण' के काव्य-रूपको को एक समान कैसे स्वीकार किया जा सकता है? अतः इनकी अन्तर्वर्ती विभिन्नताओ के साक्षात्कार का प्रयत्न हमने किया है। इसके साथ ही एकपात्रीय सलाप (मॉनोलॉग) आदि के रूप मे जो नवीन विधाएँ प्रयोग में लाई गईं उनकी भी रूप-सम्बन्धी विशेषताओं का यथासम्भव निरूपण किया है।

प्रबन्ध के दूसरे खण्ड मे मुक्तक विधाओ का विवेचन है। बन्ध को आधार मानते हुए मुक्तक का भी दो वर्गों मे स्फुट और सयुक्त मुक्तक अथवा अनिबद्ध व निबद्ध मुक्तक मे विभाजन किया है। एक विशेषता इस युग की मुक्तक-रचना मे स्पष्ट है। प्रबन्ध की अपेक्षा परिमाण और रूप-वैविध्य मुक्तक विधाओ मे कही अधिक है। इसका प्रमुख कारण है इस युग की अनवरत गतिशीलता, भाग-दौड और मानव का अति व्यस्त जीवन जिसमे क्षण भर रुककर मुक्तक-रचना करना अधिक सुगम है, बृहत् प्रबन्धो की रचना और पठन का अवकाश उतना नही। दूसरा कारण—हिन्दी साहित्य पर जिस विदेशी साहित्य का प्रभाव सर्वाधिक पड़ा है उसमे मुक्तक विधाओ का वैविध्य और आधिक्य है। अभिप्राय यह नही कि प्रबन्ध रचनाओं का इस युग मे अभाव है। विवेच्य युग के उपरान्त 'तारक-वध', 'एकलव्य' और 'उर्वशी' आदि बृहत् प्रबन्धों का प्रकाशन तो हो ही चुका है, नई चेतना के नगीत-शोधी कवि गिरिजाकुमार माथुर भी

प्रबन्ध-रचना मे दत्तचित्त हैं। परन्तु रूप-वैविध्य प्रबन्धो मे उतना नही प्राप्त होता जितना मुक्तक विधाओ मे।

इस युग की मुक्तक रचनाओ की सबसे बड़ी विशेषता अनेकानेक नवीन रूपों का ग्रहण और आविष्कार है। रूप-विधाओं की दृष्टि से पूर्ववर्ती मुक्तक-रचना का क्षेत्र अत्यन्त सीमित और रूढ हो चुका था। मुक्तक रचनाएँ दोहा, कवित्त, सवैया आदि की स्फुट छन्द रचनाओं मे, और निबद्ध व गीति रचनाएँ भक्त कवियो की पदावली मे परिसीमित हो गई थी। कुछ लोक-गीतो के प्रयोग भी साहित्यिक रचनाओ मे होते थे, परन्तु शैली, बन्ध, छन्द-विधान सभी दृष्टियो से अनेकरूपता आधुनिक कविता मे मिलती है उसका शताश भी पूर्ववर्ती काव्य मे प्राप्त नही। विधाओ की यह नवीनता अभिव्यजना के सभी तत्वो मे प्राप्य है—शैली, भाषा, छन्दयोजना, बन्ध, अलकृति, सभी मे। अनिबद्ध और निबद्ध मुक्तको में से भी रूप-वैविध्य, निबद्ध कविताओ मे अधिक मिलता है। मुक्तक-शैलियो मे परम्परा का निर्वाह अपेक्षाकृत अधिक है और जहाँ नवीनता है वहाँ विशेष काव्योत्कर्ष नही उपदेश और नीति-कथन की नीरसता है। इन सभी रूपो मे नवीनता का आभास भारतेन्दु-युग की कविता से ही मिलने लगता है जो द्विवेदी-युग और उससे भी अधिक छायावाद-युग तक आते-आते काव्य-व्यापी आन्दोलन का रूप धारण कर लेता है।

आरम्भ मे अनेक रूप-विधाओ का प्रवेश आँग्ल काव्य के सम्पर्क और प्रभाव से इस युग की कविता मे हुआ। ओड, एलेजी, सॉनेट, सॉङ्ग, एपिसिल आदि विधाएँ हिन्दी कविता के लिए सर्वथा नवीन थी। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इन विधाओं का केवल आधार मात्र हिन्दी के कवियो ने लिया है, कुछ आरम्भिक रचनाएँ एव कुछ विशेष कवियो की शैली पर ही आँग्ल काव्य का प्रभाव अधिक पडा, परन्तु इन विधाओ का यथावत् रूप मे ग्रहण और निर्वाह बहुत कम कवियो ने किया है। इन विधाओ का जो स्वरूप आग्ल साहित्य मे मिलता है उससे हिन्दी-काव्य मे ये रचनाएँ बहुत भिन्न हो गई है। उदाहरण के लिए ओड, अँगरेजी काव्य मे सदैव सम्बोध-गीति के रूप मे नही लिखा जाता, उसकी शैली के सम्बन्ध मे भी निश्चित धारणाएँ व मान्यताएँ है, परन्तु हिन्दी-काव्य मे यह शब्द हर प्रकार की सबोध-गीति के लिए रूढ हो गया है। इसी प्रकार सॉनेट के छन्दो का तो क्या, अन्त्यक्रम का भी ठीक निर्वाह शायद ही किसी हिन्दी सॉनेटकार ने किया हो। साधारण चौदह पक्तियो की मनमाने ढंग से लिखी कविताएँ इस लेबिल के अन्तर्गत प्रचार पाती रही। यह बात अँगरेजी साहित्य से गृहीत अधिकाश विधाओ के विषय मे सत्य है। पत्र-गीतियाँ भी इन कवियो ने सर्वथा भिन्न रूप मे लिखी। हाँ, इनकी भाषा, शैली, अलकार, प्रगीत-रचना आदि पर अँगरेजी काव्य की अभिव्यजना का प्रभाव है।

काव्य-रूपो की भाँति अतुकान्त छन्दों का प्रयोग सस्कृत के वर्ण-वृत्तो के अनुकरण पर किया गया, और मुक्त छन्द का विकास बँगला के पयार छन्द से प्रेरणा ग्रहण कर, हिन्दी के मुक्तक वृत्त घनाक्षरी के आधार पर। परोक्ष रूप से ब्लेंक वर्स और फ्री वर्स का प्रभाव इन आविष्कारक कवियो की चेतना पर भले ही रहा हो, परन्तु इनका आधार भारतीय छन्द ही थे। बाद मे कविता पर आँग्ल-काव्य का प्रभाव स्वीकार करना उसी प्रकार फैशन का विषय हो गया जैसे विदेशी वेशभूषा और केश-प्रसाधन का अनुकरण गर्व की भावना से किया जाता है। कभी-कभी

भ्रान्तिवश भी जब इस प्रकार के प्रभावों का सन्देह व्यक्त किया जाता है तो रचयिता इस भ्रांति को प्रोत्साहन देने में अभिमान की अनुभूति करते हैं। विदेशीयता के इस आग्रह ने कुछ इस प्रकार नारे का रूप धारण कर लिया कि इसके नाम पर कविता में पर्याप्त अनाचार भी फैलता रहा। अतिशय बौद्धिक प्रयास, विचित्र अभिव्यंजना, पाठक को नए प्रयोगों से स्तम्भित कर चौंका देना, छन्दों के चित्र-विचित्र रचना-विधान, संगीत का त्याग, भाषा का अप्रचलित विशिष्ट अर्थों में प्रयोग आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके प्रयोग से इन कवियों ने अपनी अभिव्यंजनागत मौलिकता के कारण पाठक का ध्यान आकर्षित कर साहित्य में स्थान बना लिया। सहज रूप में इन्होंने जो कविताएँ लिखी उसकी परम्परा और मूल पूर्ववर्ती काव्य में स्पष्ट रूप से खोजे जा सकते हैं। जो कविताएँ सायास, चमत्कार-उद्भावना के उद्देश्य से लिखी गई उन पर अवश्य टी० एस० इलियट और डी० एच० लॉरेंस आदि का प्रभाव है। यों मूलरूप में ये प्रयत्न प्राचीन अलंकार-वादियों की ऊहात्मक शैली और चमत्कृत अलकार-योजना की प्रवृत्ति के समकक्षी है, दोनों युग के कवियों में दृष्टिकोण और सिद्धान्तों का विशाल अन्तर अवश्य है। प्रेरणा भिन्न है, परन्तु चमत्कार भाव का उतना नहीं जितना शैली का है। छन्दों में भी संगीतात्मकता के अनिवार्य गुण के त्याग के कारण गद्यात्मकता और गत्यवरोध उत्पन्न हो गया है। मुक्त छन्द का प्रयोग सर्वत्र सफल नहीं।

इन कतिपय परिसीमाओं के अतिरिक्त नई कविता ने रूप-विधान की दृष्टि से बहुत कुछ दिया है। उर्दू और लोक-गीतों के प्रभाव से कुछ अत्यन्त सहज और सुन्दर रचनाएँ इस काव्य में की गई। अन्य भाषाओं से ग्रहण के विषय में इनकी दृष्टि उदार है। क्रमशः इन कवियों को यह भी भान होने लगा है कि परम्परा और संस्कार का आमूल विद्रोह और विदेशी साहित्य के पीछे उनकी यह दौड़ जिसके कारण उनके अन्तर के संस्कारों और सिद्धान्तों में ही विरोध उत्पन्न हो गया है, अन्ततः उनकी काव्य-रचना के उत्कर्ष के मार्ग में बाधक होगी, अतः उनमें से अधिकाश संस्कारी और परम्परा के प्रति आस्थावान होने का दावा करने लगे है। काव्य के प्रति नवीन राहों के अन्वेषण का यह सतत प्रयत्न प्रगीति की दृष्टि से निश्चय ही शुभ है। इन कवियों ने अभिव्यंजना के क्षेत्र मे नूतन छन्द, भाषा, अलंकार, वर्णन-शैली और नवीन विधाएँ, सभी कुछ दिया है, और निरन्तर दे रहे हैं। नवीनता के नाम पर होने वाले प्रयत्नों में से कूड़ा-करकट बहुत कुछ छट चुका है। अधुनातन प्रकाशनों में इनकी अभिव्यक्ति अधिक विवेक-सयत हो गई है। नवीन विधाओं के क्षेत्र मे इनका योगदान निरन्तर गतिशील है। 'कुछ कविताओं' मे शमशेर बहादुरसिंह ने कुछ नूतन मुक्तक विधाएँ प्रस्तुत की है। धर्मवीर भारती की 'सात गीत वर्ष' आदि भी इस क्षेत्र की नवीन रचनाएँ है। अन्य प्रकाशनों में केदारनाथसिंह की 'अभी बिल्कुल अभी', जगदीश गुप्त की 'शब्द-दश' और ठाकुरप्रसादसिंह की 'वंशी और मादल' उल्लेखनीय है। इन प्रकाशनों से मुक्तक काव्य के उज्ज्वल और नवीन भविष्य की आशा होती है, अभिनन्दन के अवसर की प्रतीक्षा है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

अग्निपुराण

अभिनव भारती—अभिनवगुप्त

काव्यप्रकाश—मम्मट

काव्यमीमासा—राजशेखर

काव्यादर्श—दण्डी

काव्यानुशासन—हेमचन्द्र

काव्यालंकार—भामह

काव्यालंकार—रुद्रट

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति—वामन

ध्वन्यालोक—आनन्दवर्द्धन

नाट्य-शास्त्र—भरत

रसगगाधर—जगन्नाथ

साहित्यदर्पण—विश्वनाथ।

हिन्दी

१ आत्मनेपद—अज्ञेय।

२. आधुनिक साहित्य—नन्ददुलारे वाजपेयी।

३ आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ—डा० नगेन्द्र।

४ आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना—डा० पुत्तूलाल शुक्ल।

५ आधुनिक हिन्दी नाटक—डा० नगेन्द्र।

६ आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० श्रीकृष्णलाल।

७ काव्य के रूप—गुलाबराय।

८. काव्य दर्पण—रामदहिन मिश्र।

९ काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दूबे।

१०. गुप्तजी की कला—डा० सत्येन्द्र

११. गोस्वामी तुलसीदास—आ० रामचन्द्र शुक्ल।

१२ बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य—डा० प्रतिपालसिंह।

१३ भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा—स० डा० नगेन्द्र ।
१४ मैथिलीशरण गुप्त—कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता
—डा० उमाकात गोयल ।
१५ महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा० उदयभानुसिह ।
१६ मैथिलीशरण गुप्त—व्यक्ति और काव्य—डा० कमलाकांत पाठक ।
१७ रसज्ञ-रजन—आ० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।
१८ रीतिकाव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र ।
१९ साकेत एक अध्ययन—डा० नगेन्द्र ।
२० साहित्य का मर्म —डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
२१ साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दरदास ।
२२ सियारामशरण गुप्त—डा० नगेन्द्र ।
२३ वाङ्मय विमर्श—प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।
२४ विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र ।
२५. विदेशो के महाकाव्य—गोपीकृष्ण गोपेश ।
२६. हिन्दी कविता में युगान्तर—डा० सुधीन्द्र ।
२७ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव—डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा ।
२८ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डा० शम्भूनाथसिह ।
२९. हिन्दी साहित्य—डा० भोलानाथ
३० हिन्दी साहित्य—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
३१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—,, ,,
३२ हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल ।

पत्र-पत्रिकाएँ

१ सरस्वती ।
२ आलोचना ।
३ समालोचक ।
४. नए पत्ते ।

अंगरेज़ी

1	An Introduction to the Study of Literature	by W H Hudson
2	A Study in Epic Development	I T Myers
3	Cambridge History of English Literature Volumes I—XIV	Ed by Sir A. Ward & A R Waller
4	Classical Background of English Literature	J A K Thomson
5.	Elizabethan Lyric	Catherine Ing
6	English Epic & Heroic Poetry	W M Dixon
7	Epic & Romance	W P Ker.
8	From Virgil to Milton	C M Bowra
9	Form and Style in Poetry	W P Ker
10.	Form in Literature	H Weston
11	Forms in Modern Poetry	Herbert Read
12	Literary Criticism in Antiquity	J W H Atkins
13	Lyric	John Drinkwater
14	Lyrical Poetry from Blake to Hardy	H J C Grierson
15	Oxford Lectures on Poetry	A C Bradley
16	Phases in English Poetry	Herbert Read
17	Poetic-Process	George Whelley
18	Poetics of Aristotle	Ed Butcher.
19	„ „	Ed T. A Maxon
20.	Poetry & Drama	T S Eliot.
21	Principles of Criticism	Worsfold
22	Process of Literature	A M Mackenzie
23.	The Criticism of Poetry	Burton
24	The Epic & its Background	E M W Tillyard
25	The Epic	L Abercrombie
26	The Making of Literature	Scott James
27.	The Metres of English-Poetry	Enid-Hamer.

ENCYCLOPAEDIAS AND DICTIONARIES

1 Encyclopaedia-Britannica
2. Oxford English Dictionary.
3 Cassell's Encyclopaedia of Literary terms
4. Apte's Dictionary—(Sanskrit-English)
5 Moniar-Williams Dictionary—(Sanskrit-English)